सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१७

(फरवरी–जून १९२०)

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१७

(फरवरी – जून १९२०)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भारत सरकार

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें फरवरी १९२० से जून १९२० तक की पाँच महीनोंकी सामग्री संगृहीत है। यह अवधि भारतमें गांधीजीके असहयोग आन्दोलनके अरुणोदयकी अवधि है। खिलाफतके प्रश्नको लेकर भारतीय मुसलमानोंके मनमें उत्पन्न चिन्ताकी ओर मित्र-राष्ट्रोंने कोई ध्यान नहीं दिया; और फलस्वरूप मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंके प्रति देशमें असन्तोष का बीजारोपण हुआ। मई १९२० में हंटर कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई और उसीके साथ भारत सरकारका खरीता और भारत मन्त्रीकी स्वीकृति भी। इनके प्रकाशनने मानो आगपर घीका काम किया। गांधीजीने देशको पहले यह सलाह दी थी कि प्रस्तुत सुधारोंपर रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर उनपर अमल करना चाहिए; किन्तु हंटर कमेटीके निर्णय, सरकारके खरीते तथा निर्णय और उनपर भारत मन्त्रीकी सहमतिके प्रकाशनके बाद उन्हें यह कहनेपर बाध्य होना पड़ा कि देश उस सरकारको सहयोग न दे जिसने न्यायके प्रति ऐसी उपेक्षा दिखाई है। गांधीजी द्वारा अपने कथनमें यह परिवर्तन साधारण नहीं माना जा सकता। वास्तवमें यह परिवर्तन साम्राज्यके प्रति गांधीजीके अबतक चले आ रहे रुखसे एकदम अलग था। अभीतक गांधीजी इस ब्रिटिश दावेको मानते चले आ रहे थे कि साम्राज्यका कारबार कुछ नैतिक और राज-नैतिक सिद्धान्तोंके अनुसार चलता है; और भारतको साम्राज्यमें बने रहनेके कारण काफी लाभ हुआ है। इस बार गांधीजीका यह विश्वास बिलकुल हिल गया और उन्होंने देशसे अपील की कि वह अपने भीतर इतनी नैतिक शक्ति पैदा करे जिसके बलपर या तो साम्राज्यको सुधारा जा सके या फिर उसे समाप्त किया जा सके। गांधीजीके नेतृत्वका मुख्य सिद्धान्त ही यहाँसे बदल गया।

देश जिस मनःस्थितिमें था उसमें प्रत्यक्ष कार्रवाई करनेकी अपील, लोगोंको बहुत पसन्द आई और स्पष्ट हो गया कि राष्ट्र गांधीजीके नेतृत्वमें चलनेके लिए बिलकुल तैयार है। खिलाफत आन्दोलनमें मुसलमान नेताओंने भी गांधीजीकी सहायता और सलाहका स्वागत किया। गांधीजी कार्यक्रमके नैतिक पहलूपर जितना जोर देते थे, वह खिलाफतके मुसलमान नेताओंकी समझमें नहीं आता था; तथापि उन्होंने तत्का-लीन परिस्थितियोंमें तदनुसार चलनेका वचन दिया। वाइसरायसे १९२० में जिस खिला-फत शिष्टमण्डलने भेंट की थी, गांधीजी उससे भी सम्बन्धित थे। उस समय उन्होंने असहयोग आन्दोलनकी योजनापर भी विचार किया था। मौलाना अबुल कलाम आजादने दूसरे खिलाफत सम्मेलनके अवसरपर २९ फरवरी, १९२० को कलकत्तामें अपने अध्यक्षीय भाषणमें मुसलमानोंसे असहयोग आन्दोलनको अपनानेके लिए कहा और ७ मार्चको गांधीजीने समाचारपत्रोंमें वक्तव्य देकर आन्दोलनका कार्यक्रम स्पष्ट किया। इसी वर्षके अप्रैल और मई महीनोंमें एक शिष्टमण्डल लेकर इंग्लैंड जानेकी बात उठी और कहा गया कि गांधीजी ही शिष्टमण्डलका नेतृत्व करें। गांधीजीने कहा कि यदि मुस्लिम नेतागण उक्त प्रस्तावपर दृढ़ बने रहें तो वे नेतृत्व करनेकी बात सोच सकते हैं। इस

तरह हम देखते हैं कि इस खण्डसे सम्बन्धित अवधिमें राजनीतिक क्षेत्रमें गांधीजीकी प्रमुख चिन्ताका विषय खिलाफत आन्दोलन ही था।

गांधीजीने अपने-आपको खिलाफत आन्दोलनके साथ एकरूप बना लिया था। इसमें उनके उद्देश्य और औचित्य दोनोंको लेकर काफी शंकाएँ उठाई गईं। आलोचकोंने कहा कि एक तर्क-असंगत धार्मिक भावनाका सहारा लेकर गांधीजी हिन्दू और मुसलमानोंको अंग्रेजोंके खिलाफ एक करना चाहते हैं और इसमें उनका मंशा ब्रिटिश सरकारको आफतमें डालना है। गांधीजीने बड़े धैर्यके साथ इन शंकाओंका उत्तर दिया: "सरकारोंको या किसी अन्य व्यक्तिको परेशान करना मेरे सिद्धान्तके विरुद्ध है।" (पृष्ठ ३८४) "मैं पूरी शक्तिसे इस मामलेमें इसीलिए पड़ा हूँ, क्योंकि ब्रिटेनके वादे, शुद्ध न्याय और धार्मिक भावना सभी बातोंका इसमें संयोग है। मैं ऐसी परि-स्थितिकी कल्पना कर सकता हूँ जिसमें विशुद्ध न्याय एक बात कहे और अंध-धार्मिक भावना उससे बिलकुल उलटी। उस हालतमें मुझे इस धार्मिक भावनाका ही विरोध करना चाहिए और विशुद्ध न्यायका पक्ष लेना चाहिए।" (पृष्ठ ४४७) उन्हें इस बातका पूरा भरोसा था कि मुसलमान खिलाफतके मामलेमें सही मार्गपर हैं। मुसल-मानोंकी धार्मिक भावना कहती थी कि आर्मीनिया और अरब देशोंकी आत्मनिर्णय सम्बन्धी बात तभी मानी जा सकती है जब वे टर्कीके सुलतानकी प्रभुसत्ता स्वीकार करें। गांधीजीकी व्याख्याके अनुसार अंग्रेजोंने जो वादे किये थे उनमें मुसलमानोंकी इस धार्मिक भावनाका खयाल रखनेकी बात निहित थी। इतना तो बिलकुल ही ठीक है कि इस दलीलका मुख्य उद्देश्य मध्यपूर्वमें मित्र-राष्ट्रोंके राजनीतिक इरादोंपर पर्दा डालना था और उस हदतक यह दलील कोई ईमानदारीकी दलील नहीं थी। इसलिए गांधीजीने महसूस किया कि नैतिक और राजनैतिक दोनों दृष्टियोंसे ब्रिटिश-सरकार और भारतीय मुसलमानोंमें न्याय भारतीय मुसलमानोंके पक्षमें है।

दूसरा आक्षेप यह था कि भारतीय मुसलमानोंकी उस धार्मिक भावनाका समर्थन करके, जिसका सम्बन्ध देशसे बाहरकी शक्तियोंके साथ था, गांधीजी सारे देश और विशेषत: हिन्दुओंको गलत रास्तेपर ले जा रहे हैं। गांधीजीने इसका जवाब देते हुए कहा कि यदि मुसलमानोंकी माँग मूलत: गलत नहीं है, तो पड़ोसी-धर्मके नाते हमें उनसे सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए और उनकी माँगका समर्थन करना चाहिए। खिलाफतसे अपने सम्बन्धको स्पष्ट करते हुए जून १९२० को उन्होंने वाइसरायको लिखा: "मैं समझता हूँ कि एक ऐसे कट्टर हिन्दूके नाते, जो अपने मुसलमान देश-भाइयोंके साथ घनिष्ठतम मैत्री-सम्बन्ध रखनेका इच्छुक है, मैं यदि इस संकटकी घड़ीमें उनका साथ न दूं तो भारत-माताकी अयोग्य सन्तान सिद्ध होऊँगा। मेरी नम्र सम्मतिमें उनका पक्ष न्याय्य है।" (पृष्ठ ५४७) इस तरह हम देखते हैं कि गांधीजीके विचारमें खिलाफतका प्रश्न हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रश्नसे जुड़ा हुआ था। फरवरी १९२० को उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा: "तब हिन्दू-मुस्लिम एकता किस बातमें निहित है और उसको बढ़ानेका सबसे अच्छा तरीका क्या है? उत्तर सीधा-सादा है। वह इस बातमें निहित है कि हमारा एक समान उद्देश्य हो, एक समान

लक्ष्य हो और समान सुख-दुःख हों। और इस समान लक्ष्यकी प्राप्तिके प्रयत्नमें सहयोग करना, एक-दूसरेका दुःख बँटाना और परस्पर सहिष्णुता बरतना, इस एकताकी भावनाको बढ़ानेका सबसे अच्छा तरीका है।" (पृष्ठ ५२) बिना-किसी शर्तके मुसलमानोंकी माँगका हिन्दुओं द्वारा प्रबल समर्थन, मुसलमानोंके मनमें सद्भावना उत्पन्न किये बिना और एकताके बन्धनोंको दृढ़ बनाये बिना नहीं रह सकता था। गांधीजीके प्रयत्नोंके फलस्वरूप १९२०के मध्यमें ऐसी प्रतीति हुई कि हिन्दुओं और मुसलमानोंकी शाश्वत मैत्रीकी नींव पड़ गई है।

जिस तरह खिलाफतके बारेमें, उसी प्रकार असहयोग आन्दोलनके विषयमें भी आशंकाएँ व्यक्त की गईं। श्रीमती एनी बेसेंटने भी यही विचार व्यक्त किया कि असहयोग आन्दोलन हिंसक कार्रवाइयोंका रूप धारण कर लेगा। गांधीजी इस आशंकाको ठीक नहीं मानते थे। २८ अप्रैल, १९२० को 'यंग इंडिया' में लिखते हुए उन्होंने कहा: "किन्तु मुझे किसी दुष्परिणामकी आशंका नहीं है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि प्रत्येक उत्तरदायी मुसलमान समझता है कि अगर असहयोगको सफल बनाना है तो उसमें हिंसा बिलकुल न होनी चाहिए।" (पृष्ठ ३८६) उन्होंने यह भी कहा: "यह तो हम नहीं कहते कि खून-खराबी कदापि नहीं हो सकती, लेकिन मेरे खयालसे खून-खराबी न हो इसके पूरे उपाय कर लेनेके बाद हमें अपने कार्योंमें लगे रहना चाहिए।" (पृष्ठ ४०७) असहयोगका एक अन्य व्यावहारिक पक्ष सामने रखते हुए उन्होंने कहा: "मेरी दृढ़ मान्यता है कि यदि असहकार आन्दोलन आरम्भ न हुआ होता तो खून-खराबी कबकी शुरू हो गई होती। असहकारके कारण ही खून-खराबी नहीं हुई है। मुसलमान भाइयोंका खून खौल रहा है, लेकिन हिन्दू उनके साथी हैं, इस विचारसे वे धीरज रखे हुए हैं।" (पृष्ठ ४५५) फिर भी कार्यक्रम-पर अमल तो धीरे-धीरे ही किया जाना था और प्रत्येक कदमपर जनताकी प्रतिक्रिया सावधानीसे देखते रहना भी आवश्यक माना गया था।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, मई १९२० में हंटर समितिकी रिपोर्टके प्रकाशनसे ब्रिटिश शासनके कथित नैतिक आधारका पर्दा फाश हो गया। पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरने लोगोंका पक्ष ठीक तरहसे पेश किये जानेकी सुविधा देनेसे इनकार कर दिया था और इसलिए कांग्रेस उक्त समितिकी कार्रवाईमें भाग लेनेसे इनकार कर चुकी थी। इसके बावजूद गांधीजीने सोचा था कि हंटर समिति अपूर्ण साक्षियोंके आधार-पर भी ठीक निष्कर्षोंतक पहुँचनेकी कोशिश करेगी। स्वयं कांग्रेसने भी एक जाँच-समिति नियुक्त कर दी थी। गांधीजी उसके सदस्य थे। समितिने जो जानकारी हासिल की उसके आधारपर गांधीजीने विवरण तैयार किया और वह मार्च १९२० में प्रकाशित भी हुआ। लगभग १५ दिनोंतक रात-दिन काम करके गांधीजीने उक्त रिपोर्ट तैयार की। रिपोर्ट अहमदाबादके आश्रममें रहकर तैयार की गई थी। यह कोई कानूनी मसविदा या निरी पत्रकारितासे सम्बन्धित लेख नहीं था। इसके पहले गांधीजी बड़े परिश्रमके साथ पूरे पंजाबका दौरा कर चुके थे और इसलिए यह विवरण एक असाधारण विवरण है। इसमें पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर सर माइकेल ओ'डायरकी राष्ट्र-

विरोधी नीतिके फलस्वरूप होनेवाली पंजावकी दुर्घटनाको बिलकुल सही दृष्टिकोणसे दिखाकर एक उचित पृष्ठभूमिमें प्रस्तुत किया गया है। विवरणमें उल्लिखित निष्कर्ष और उसके सम्बन्धमें की गई माँगोंको गांधीजीने बड़े संयमके साथ प्रस्तुत किया। कोई भी माँग ऐसी नहीं थी कि जिसे अनुचित कहा जा सके और न उन माँगोंकी भाषा ही किसी प्रकारसे असंयत थी। इसके विपरीत सरकारी समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टमें पंजावकी घटनाको केवल कानून और प्रशासनकी एक समस्या मानकर विचार किया गया था और सरकारी कर्मचारियोंके अत्याचारोंको केवल गलतफहमीके कारण उत्पन्न भूल-चूकका नाम देकर नाममात्रकी सजा देनेकी सिफारिश की गई थी। गांधीजीने इसे 'चोर-चोर मौसेरे भाई' (पोलिटिकल फ्रीमैसनरी) की संज्ञा दी और कहा कि यह रिपोर्ट इस बातका अतिरिक्त कारण है कि हम सरकारसे सहयोग करना बन्द कर दें।

राष्ट्रीय जीवनमें राजनीतिक कार्रवाइयाँ सामूहिक उन्नतिकी दिशामें केवल एक कदम हैं, इस बातको गांधीजी जब अवसर मिलता था तभी लोगोंके सामने पेश करते रहते थे। उनका कहना था कि राजनीतिक क्षेत्रके अतिरिक्त अनेक ऐसे क्षेत्र ह जिनमें जनताको अपना कर्तृत्व सफल करना चाहिए। अप्रैल १९२० में गांधीजी मित्रोंके अनुरोधपर अखिल भारतीय होमरूल लीगमें शामिल हुए। उन्होंने उसकी अध्यक्षता भी स्वीकार की। और तब वहाँ अपने कार्यक्रमकी अनेक मुख्य बातोंपर जोर दिया; स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दुस्तानीका प्रचार और क्षेत्रोंकी हदतक क्षेत्रीय भाषाओंका सार्वजनिक कामोंमें उपयोग। (पृष्ठ १०७-८) अन्य स्थानोंपर उन्होंने अस्पृश्यता निवारणकी जरूरतपर भी बहुत जोर दिया।

साहित्यके विषयमें भी उन्होंने यह कहा कि उसे राष्ट्रीय आकांक्षाओंका प्रतिबिंब बनना चाहिए और राष्ट्रके प्रयत्नोंको अग्रसर करनेमें मदद करनी चाहिए। ३ अप्रैल, १९२० को अहमदाबादमें आयोजित छठी गुजरात साहित्य परिषद्में उन्होंने साहित्यिकोंसे कहा कि वे जनताको दृष्टिमें रखकर लिखें ताकि जिस संस्कृतिकी हम सेवा कर रहे हैं, वह संस्कृति सन्त और किसानको पास-पास लानेमें समर्थ हो सके। जो साहित्य केवल कल्पनासे उत्पन्न होता है और कल्पनाको ही अभिव्यक्त करता है, गांधीजीके लेखे, वह निकम्मा है। अपनी राय व्यक्त करते हुए वे किसी भी विद्वद्-समाजमें हिचकिचाते नहीं थे, यहाँतक कि सौन्दर्य-प्रधान जीवनके हिमायती रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सामने भी उन्होंने अपने इस मतको स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त किया। इन दोनों महापुरुषोंके दृष्टिकोणमें जो अन्तर था, आगे चलकर वह सार्वजनिक विवादका विषय भी बना।

गांधीजीने यह बात हमेशा खुलकर ही कही कि उनके जीवनका उद्देश्य मोक्ष पाना है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो उन्होंने सदा यही बात स्पष्ट की कि वे मूलत: एक धार्मिक पुरुष हैं। धर्मसे उनका अभिप्राय ". . . हिन्दू धर्मसे नहीं है जिसकी मैं बेशक और सब धर्मोंसे ज्यादा कीमत आँकता हूँ। मेरा मतलब उस मूल धर्मसे है जो हिन्दू धर्मसे कहीं उच्चतर है, जो मनुष्यके स्वभावतक का परिवर्तन कर देता है, जो हमें अन्तरके सत्यसे अटूट रूपसे बाँध देता है और जो निरन्तर अधिक शुद्ध

और पवित्र बनाता रहता है। (पृष्ठ ४४२) वे ऐसी धार्मिक मनोवृत्ति रखते हुए और वास्तवमें राजनीतिकी ओरसे बिलकुल उदासीन रहते हुए भी केवल राजनीतिके क्षेत्रमें ही किसलिए लगे रहते हैं, इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा: "इसका कारण सिर्फ इतना ही है कि राजनीतिक विषयोंमें इस तरह भाग लिये बिना आज मैं अपने धर्मकी रक्षा कर सकता हूँ अथवा नहीं, इस बारेमें मुझे शंका है।" (पृष्ठ ५४) यह बात भी नहीं है कि केवल कर्मयोगकी भावनासे निष्काम सेवाका उद्देश्य सामने रखकर उन्होंने राजनीतिक या सामाजिक क्षेत्रमें कदम रखा हो; उनका सिद्धान्त था कि जो व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवनको पूर्ण बनानेकी इच्छा करता है वह अपने आसपासकी उपेक्षा कर ही नहीं सकता। उनकी मान्यता थी कि यदि संसारकी सेवा करनी है तो हमें उसके नैतिक और आध्यात्मिक जीवनमें परिवर्तन लानेके उपाय करने पड़ेंगे। गोखलेने राजनीतिमें आध्यात्मिकताके प्रवेशपर जोर दिया था। गांधीजीने भी इस सिद्धान्तके प्रति जागरूक रहकर प्रायः उसपर जोर दिया। अखिल भारतीय होम-रूल लीगके सदस्योंसे उन्होंने कहा: "जहाँ मैं लीगसे यह उम्मीद नहीं करता कि सविनय अवज्ञाके मेरे तरीकोंमें वह मेरा अनुसरण करे, वहाँ मेरी पूरी-पूरी यह कोशिश भी रहेगी कि हमारे राष्ट्रकी सभी गति-विधियोंमें सत्य और अहिंसाको स्वीकार करवा सकूँ।" (पृष्ठ ३८२)

यद्यपि गांधीजीको अपने और दूसरोंके जीवन शुद्ध और पवित्र बनानेकी पक्की धुन थी तथापि वे दूसरोंके प्रति सदैव उदार भी बहुत थे — किसी शिशुकी तरह भोले और स्नेहशील। जिन व्यक्तियोंका उनसे निजी सम्बन्ध आया या जो विभिन्न कार्यक्षेत्रोंमें उनके सहयोगी बने, उन सबके सामने वे आचारका एक आदर्श उपस्थित करते थे और उस आदर्शसे च्युति सहन नहीं करते थे। किन्तु तदनुसार आचरण करनेमें जिन कठिनाइयों और संघर्षोंमें से सम्बन्धित व्यक्तियोंको गुजरना पड़ता था, उनकी ओर वे पूरा ध्यान देते थे और उनकी परेशानियोंको हल करनेके लिए रात-दिन एक कर देते थे। एस्थर फैरिंग और महादेव देसाईके नाम लिखे हुए जो पत्र इस खण्डमें सम्मिलित किये गये हैं, वे इस दृष्टिसे द्रष्टव्य हैं और उनसे यह भी मालूम हो जाता है कि गांधीजीके शब्द किस तरह दुखते हुए घावोंपर अचूक मरहमका काम करते थे।
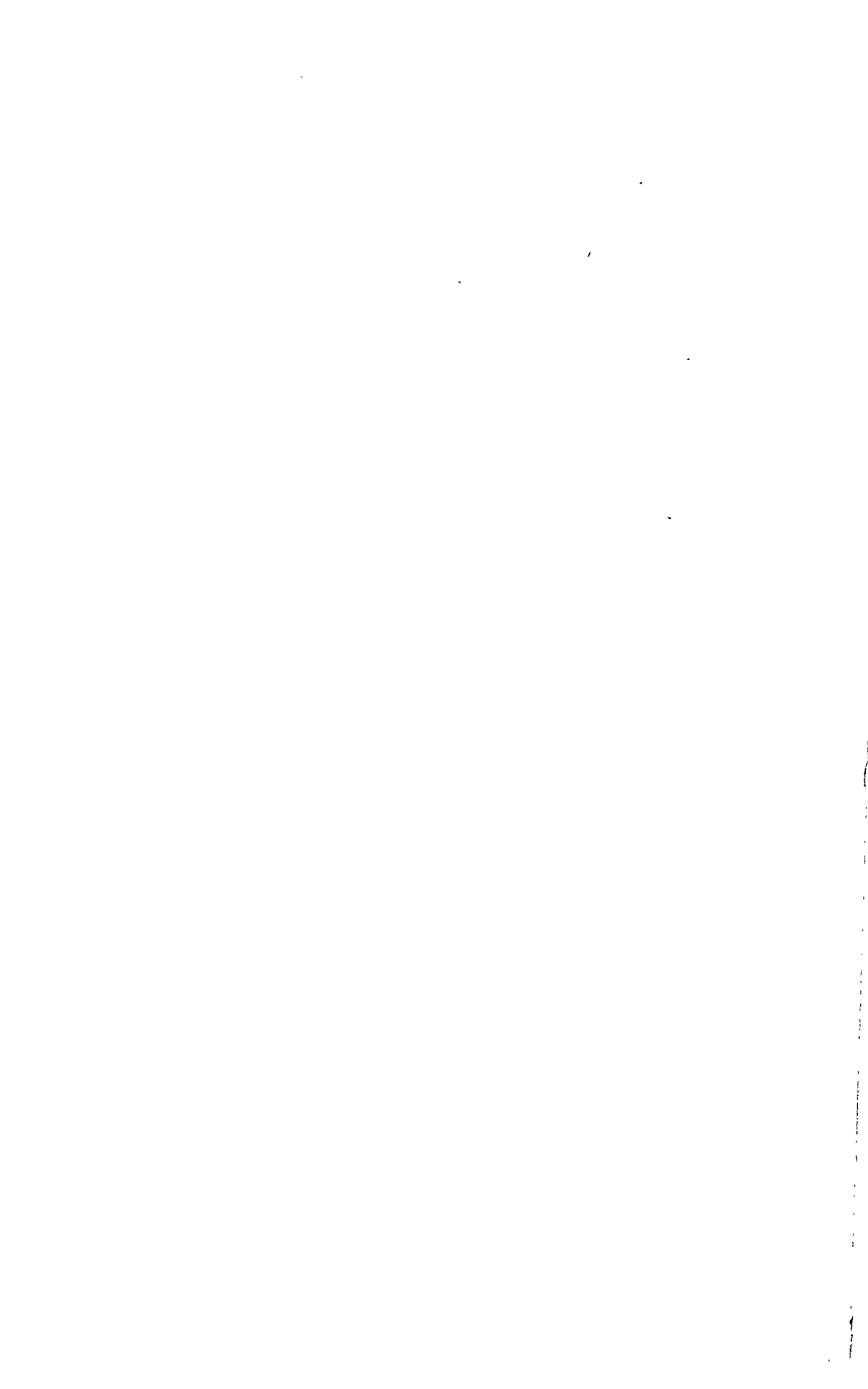
आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका कार्यालय, नई दिल्ली; राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता; भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी), पूना; 'हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट'का कार्यालय, बम्बई; महाराष्ट्र सरकारका गृह-विभाग; श्री नारायण देसाई, श्री छगनलाल गांधी, श्री नानजीभाई मणिलाल देसाई, अहमदाबाद; श्रीमती राधाबेन चौधरी, कलकत्ता तथा श्री ए० एच० वेस्ट; 'ऑल अबाउट द खिलाफत', 'इंडिया इन १९२०', 'रिपोर्ट ऑफ द कमिश्नर्स एपाइंटेड बाई द पंजाब सब-कमिटि ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस', 'द स्टोरी ऑफ माइ लाइफ', 'बापुनी प्रसादी', 'महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', 'महादेवभाईनी डायरी', 'माई डियर चाइल्ड', 'लैटर्स ऑफ श्रीनिवास शास्त्री' और 'स्वदेशी धर्म' पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'अमृतबाजार पत्रिका', 'इंडियन रिव्यू', 'गुजराती', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'ट्रिब्यून', 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'बुद्धिप्रकाश', 'मधपुडो', 'यंग इंडिया', 'लीडर' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए हम राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया), अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, जामिया मिलिया पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मंत्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद और श्री प्यारेलाल नायर तथा कागजातोंकी फोटो-नकलमें मदद करनेके लिए सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्लीके फोटो-विभागके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामोंको सामान्यतः जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारणोंमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन हिन्दी और गुजरातीके व्यक्तिगत पत्रोंमें गुजराती सम्वत्के अनुसार तिथि दी गई थी उनमें ईसवी सन्‌के अनुरूप तिथि भी दे दी गई है। कुछ पत्रोंकी लेखन-तिथिका निर्णय बाह्य या आन्तरिक साक्ष्यके आधारपर किया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें डाल दिया गया है। जिन लेखोंपर लेखन-तिथि दी गई है, अथवा ज्ञात की जा सकी है, उन्हें तदनुसार क्रमबद्ध किया गया है। शीर्षकके अन्तमें सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ संख्याएँ विभिन्न हैं; इसलिए हवाला देनेमें केवल उसके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. खिलाफत

खिलाफतका[1] प्रश्न अर्थात् टर्कीके साथ समझौतेका सवाल इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसके सम्मुख अन्य सब प्रश्न कम महत्त्वके लगते हैं, क्योंकि इस प्रश्नके सन्तोपजनक हलपर हिन्दुस्तानकी शान्ति निर्भर करती है। फिलहाल अपने शस्त्रबलके द्वारा सरकार कृत्रिम शान्ति भले ही बनाये रखे, लेकिन यदि इस प्रश्नका सन्तोषप्रद हल न निकला तो शस्त्रबलके आधारपर स्थापित किया हुआ शान्तिका यह वातावरण लम्बे अर्सेतक नहीं टिक सकता। कुछेक प्रश्न ऐसे होते हैं कि जिनका निपटारा सन्तोपजनक न होनेपर उनके प्रति जो असन्तोषकी भावना होती है, उसे भी कालान्तरमें भुला दिया जाता है। लेकिन खिलाफतके प्रश्नका निपटारा यदि असन्तोषकारक हुआ तो यह असन्तोष कालान्तरमें भुलाया नहीं जा सकेगा बल्कि उसका प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ेगा और उससे ज्यादा अशान्ति फैलेगी।

इसलिए प्रत्येक भारतीयका यह कर्त्तव्य है, वह पहले इस बातको अच्छी तरह समझ ले कि यह प्रश्न कैसा है और इसका निपटारा किस तरहसे किया जाना चाहिए; और फिर इसका सन्तोषपूर्ण हल निकालनेकी दिशामें प्रयत्न करे। जिस बातसे सात करोड़ मुसलमानोंका दिल दुखी होता है उससे हिन्दुओंको भी चोट पहुँचनी चाहिए। इसलिए हम समय-समयपर इस प्रश्नको जनताके सम्मुख पेश करनेमें हिचकिचाते नहीं हैं। इस विषयमें जनताका जितना कर्त्तव्य है उतना ही सरकारका भी है।

माननीय वाइसराय महोदयके पास जो शिष्टमण्डल गया था[2] उसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही शामिल थे। वाइसराय महोदयका उत्तर विवेकपूर्ण था। उन्होंने शिष्टमण्डलके प्रति पूर्ण भद्रताके साथ व्यवहार किया और अपने बहुत सारे कार्योंसे समय निकालकर उससे भेंट की। इस सबके लिए शिष्टमण्डलको वाइसराय महोदयके प्रति अपना आभार प्रगट करना चाहिए। लेकिन इस बार सिर्फ विवेक और विनयसे ही मुसलमान भाइयों अथवा पूरी जनताको सन्तोष हो जाये, सो बात नहीं है। विवेकके बिना एक कदम भी नहीं बढ़ा जा सकता, लेकिन कभी-कभी निरे विवेकसे भी कार्य सिद्ध नहीं होता। यह अंग्रेजी कहावत कि चुपड़ी बातोंसे पेट नहीं भरता[3], इस मौकेपर सही उतरती है।

वाइसराय महोदयने बताया कि टर्कीने मित्र-राष्ट्रोंके विरुद्ध तलवार उठानेकी जो भूल की यदि उसकी सजा टर्कीको भोगनी पड़े तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात

१. खिलाफत आन्दोलनका उद्देश्य टर्कीके सुलतानको (प्रथम विश्व-युद्धसे पूर्व) जो अधिकार प्राप्त थे उन्हें फिरसे दिलवाना था।

२. २० जनवरी, १९२० । शिष्टमण्डलमें हकीम अजमल खाँ, मौलाना अबुल कलाम आजाद, अब्दुल बारी, मुहम्मद अली और शौकत अली तथा गांधीजी शामिल थे।

३. फाइन वर्ड्स बटर नो पारस्निप्स।

478

नहीं है। इस तर्कको कोई भी मुसलमान स्वीकार नहीं कर सकता। जिस समय टर्की जर्मनीके साथ मिला उस समय तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री एस्क्विथने कहा था कि जर्मनीके साथ मिलनेमें सुलतानका कोई हाथ नहीं है, यह भूल थोड़ेसे तुर्क लोगोंकी है, और इसके लिए टर्कीको कष्ट सहन नहीं करना पड़ेगा। उक्त महोदयने ऐसा किसलिए कहा? विवेक-बुद्धि अथवा न्यायकी खातिर नहीं, बल्कि ऐसा कहनेका मन्शा यह था कि मुसलमान सिपाहियोंमें अशान्ति न फैले। परिणाम भी मन्शाके मुताबिक हुआ। मुसलमान सिपाही अपनी वफादारीपर दृढ़ रहे। लोगोंको इस तरह आश्वस्त करनेके लिए प्रयुक्त वचनोंको अब मेटा नहीं जा सकता। यदि मेटा गया और इससे मुसलमानोंके हृदयोंको चोट पहुँची तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं होगी। इसलिए माननीय वाइसराय महोदय द्वारा दी गई धमकी अथवा उनके द्वारा की गई भविष्यवाणी, असन्तोषजनक ही कही जायेगी। उसके उत्तरमें शिष्टमण्डलने जो वक्तव्य प्रकाशित[1] किया है वह उचित है। हम आशा करते हैं कि सरकार वक्तव्यपर अधिकसे-अधिक ध्यान देगी।

मुसलमानोंकी माँग क्या है? खिलाफत अर्थात् टर्कीका राज्य। लड़ाईके समय उसकी जो सत्ता थी वह लगभग कायम रहनी चाहिए। उस राज्यमें मुसलमानोंके अलावा जो लोग हैं उनके हकोंको सुरक्षित रखनेके लिए मित्र-राष्ट्र जो आश्वासन लेना चाहें वे भले ही लें लेकिन टर्कीकी सत्ता नष्ट नहीं होनी चाहिए। उसी तरह अरब देशपर जिसे जज़ीरत-उल-अरब[2] कहते हैं, तथा मुसलमानोंके अन्य पवित्र स्थलों-पर खलीफाकी हकूमत रहनी चाहिए। यहाँपर आपत्ति उठाई गई है कि अरब लोग भी मुसलमान हैं; उन्हें अरबमें स्वराज्य क्यों न मिले? उसके उत्तरमें मुसलमान भाई कहते हैं कि जिसके अन्तर्गत अरबोंको स्वराज्य मिले ऐसी योजना भले ही बनाई जाये, लेकिन उनका दावा है कि उनपर मुसलमानोंके अतिरिक्त किसी दूसरेका शासन नहीं हो सकता। मुसलमान भाइयोंकी माँग बिलकुल उचित है, और उनकी माँगको अस्वीकार किया जाये तथा उसके फलस्वरूप अशान्ति फैले तो इसमें दोष मुसलमानोंका नहीं बल्कि सरकारका माना जायेगा।

सरकारने मुसलमानोंकी माँगको शान्ति सम्मेलनके सम्मुख सही ढंगसे रखा है; लेकिन इतना करना ही पर्याप्त नहीं है। सरकार इस प्रश्नको अपना ही प्रश्न माननेके लिए बँधी हुई है। सरकार जिस हदतक ईसाइयोंकी है उसी हदतक मुसलमानों और हिन्दुओंकी भी है। और जिस तरह वह ईसाइयोंके अधिकारोंको दरगुजर नहीं कर सकती वैसे ही वह मुसलमानोंके अधिकारोंको भी दरगुजर नहीं कर सकती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-२-१९२०

१. २० जनवरी, १९२० ।

२. इसका शाब्दिक अर्थ है "अरबका द्वीप समूह" इसमें सीरिया, फिलस्तीन और मेसोपोटामिया तथा अरब प्रायद्वीप आते हैं ।

२. पत्र : एस्थर फैरिंगको[1]

लाहौर

रविवार [सुबह, १ फरवरी,][2] १९२०

रानी बिटिया,

तुम बिलकुल रानी बिटिया नहीं हो। मुझे तुमने कितने दिनोंसे एक पंक्ति भी लिखकर नहीं भेजी। यों अन्य लोगोंसे मुझे तुम्हारे बारेमें समाचार मिलता रहता है। तुम किसी विवाहमें शामिल हुई थीं यह खबर मुझे कुछ अटपटी लगी। यह किसलिए? अपरिचित व्यक्तियोंके बीच तुम कैसे रही होगी? यदि तुम वहाँ कर्त्तव्यभावनासे प्रेरित होकर गई थीं तो तुमने भूल की; ऐसे उत्सवोंमें शरीक होना कदापि तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है। यदि तुम मन-बहलावके खयालसे गई थीं तो मेरी समझमें नहीं आता वहाँ तुम्हारा वांछित मन-बहलाव क्या हुआ होगा। वह उत्सव था कहाँ? वे लोग कौन थे? क्या वे अंग्रेजी जानते थे? वहाँ तुम्हें भोजनमें क्या मिलता था? तुम्हारे सोनेकी क्या व्यवस्था थी? तुम किसके सुझावपर वहाँ गई थीं? ये सारी बातें मुझे बड़ी ही अजीब लग रही हैं। मैं नहीं चाहता कि तुम बिना सोचे-समझे ऐसे प्रयोग करो। आज रविवार है, प्रातःकालका समय है और मैं तुम्हारे बारेमें यही सब सोचकर चिन्तित हूँ। मैं जानता हूँ कि चिन्तित होना मूर्खता है। हम सबके ऊपर परमात्मा है; वह अपने भक्तोंकी रक्षा करता है और उनका मार्ग-दर्शन करता है। परन्तु तुमने मुझे अपने आपको मेरी बेटी कहनेका सौभाग्य दिया है। "हे ईसामसीह, अपने हृदयम तूने हमें जगह दी है; हमें अपनी शरणमें ले।"[3]

प्रगाढ़ स्नेह सहित,

तुम्हारा,

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. डेनमार्ककी एक ईसाई मत-प्रचारिका, जो १९१६ में भारत आईं और बादमें साबरमती आश्रममें रहने लगीं; गांधीजी उनसे पुत्रीवत् व्यवहार करते थे।

२. यह और आगेवाला पत्र एक ही दिन लिखे गये थे, देखिए अगला शीर्षक।

३. प्रसिद्ध ईसाई भजन, "रॉक ऑफ एजेज"।

३. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर
रविवार [१ फरवरी, १९२०][1]

रानी बिटिया,

संलग्न पत्र[2] मैंने सुबह लिखा था। मुझे तुम्हारा पेंसिलसे लिखा पत्र अभी-अभी मिला है। मैं साफ देख रहा हूँ कि निमन्त्रण स्वीकार करके तुमने गलती की। तुम छोटी और अनुभवहीन हो। तुम्हारा हृदय कुन्दन जैसा है, परन्तु उसे सुस्थिर बनानेकी जरूरत है। बिना पतवारके एक बड़ा जहाज क्या है? वह कहाँ जाता है? क्या वह मार्ग-विचलित नहीं हो जाता? आज मेरा हृदय तुम्हारे लिए रो रहा है। तुमने एक ऐसा वातावरण[3] छोड़ दिया है, जहाँ एक खास ढंगसे तुम अपना विकास कर सकती थीं; अब तुम एक ऐसे वातावरणमें[4] आ गई हो जहाँ यदि तुम उस वातावरणको आत्मसात् कर सको तो कहीं अधिक विकास कर सकती हो। ध्यान रखना कि अपने स्वभावकी स्वच्छन्दताके कारण तुम अपना नुकसान न कर लो। एक अनुशासित अन्तरात्माकी आज्ञाका ही पालन करना चाहिए। वह ईश्वरकी आवाज है। एक अनुशासन-विहीन अन्तरात्मा विनाशकी तरफ ले जाती है, क्योंकि उसकी आवाज शैतानकी आवाज होती है। काश मैं तुम्हारे पास होता।

> **प्रभु, प्रभु, कहकर मुझे पुकारनेवाला प्रत्येक व्यक्ति स्वर्गके साम्राज्यमें नहीं जा सकता, परन्तु जो व्यक्ति स्वर्गमें विराजमान मेरे पिताकी इच्छानुसार कार्य करता है, वही उस साम्राज्यमें प्रवेश करेगा।**

मैं यह उद्धरण स्मृतिके आधारपर ही दे रहा हूँ परन्तु इससे काम चल जायेगा।

अपने-आपको अनुशासनमें जरूर रखो। मगनलालसे[5] सलाह लिये बगैर कभी कुछ न करो। उसे बड़े भाई-जैसा समझो। उसके साथ घनिष्ठता स्थापित करो। जिस

१. पत्रके मजमूनसे प्रतीत होता है कि यह एस्थर फैरिंगका ३० जनवरी, १९२० का पत्र (देखिए खण्ड १६) मिलनेके तुरन्त बाद लिखा गया था। सन् १९२० में उस तारीखके बाद पहला रविवार १ फरवरीको पड़ा था।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. डेनिश मिशन, जिससे एस्थर फैरिंग सम्बद्ध थीं।

४. साबरमतीका सत्याग्रह आश्रम।

भोजनकी तुम्हें आवश्यकता हो, माँग लो; जितना विश्राम तुम्हें चाहिए उतना लो, और अपने मन तथा शरीर दोनोंको स्वस्थ रखो।

मुझे पूरे विवरण सहित रोज एक पत्र लिखा करो।

मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा और अपने मनकी करनेकी तुम्हारी इस आदतके लिए तुम्हें और भी प्यार करूँगा।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

४. पत्र : मगनलाल गांधीको

लाहौर
रविवार [१ फरवरी, १९२०][1]

चि० मगनलाल,

मुझे एस्थरका एक पत्र मिला है। उसी सिलसिलेमें यह दूसरा पत्र तुम्हें लिख रहा हूँ। लिखा उसे भी है। उसने जाकर[2] बड़ी भूल की है। इसे मैं उसकी दुर्बलता मानता हूँ। यही पवित्र आत्माका पतन है। वह स्वतन्त्रताका बहुत ज्यादा दम भरती है। किसीसे सलाह लेनेमें शर्म मानती है। वह बिना पतवारके जहाज-जैसी है। उसका हृदय विशाल है, लेकिन उसका सदुपयोग करनेमें वह असमर्थ है।

उसे मैंने लिखा है कि वह तुमको अपना बड़ा भाई समझकर तुम्हारी आज्ञाका पालन करे; तुम्हारे साथ सलाह-मशविरा करे। तुम उससे मिलना और उसकी आवश्यकताओंके बारेमें पूछताछ करना। अगर जरूरत जान पड़े तो वह तुम्हारे साथ भी रह सकती है। सम्भव है कि अकेली बा उसे न सँभाल सके। इस समय मैं आश्रममें रह सकता तो कितना अच्छा होता। मेरा हृदय आज बहुत व्याकुल है। एस्थरने कोई पाप किया है—ऐसा तो नहीं जान पड़ता; लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि पाप करनेमें कोई देर नहीं लगती; यह मेरा भय भी हो सकता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८२) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

१. यह पत्र उसी दिन लिखा गया था जिस दिन कि पिछला शीर्षक।
२. वे एक विवाहोत्सवमें भाग लेनेके लिए गई थीं।

५. पत्र : नरहरि परीखको

[१ फरवरी, १९२० के आसपास][1]

भाईश्री नरहरि,[2]

एस्थरने जाकर भारी भूल की है। उसे और मगनलालको मैंने बहुत बार लिखा है। अगर एस्थर स्वयं पढ़नेके लिए दे तो मैंने उसे जो पत्र लिखे हैं वे सब पढ़ने योग्य हैं। यहाँ बैठा-बैठा मैं तुम सबका अध्ययन कर रहा हूँ और ऐसा करते हुए स्वयं भी सीख रहा हूँ।

काकाके[3] सम्बन्धमें तुम ठीक ही लिखते हो। अगर काकाका स्वास्थ्य और भी सुधरेगा तो वे इससे भी अधिक उन्नति कर सकेंगे। मैं काकासे जबसे मिला हूँ तभीसे उनपर से मेरी दृष्टि हटी नहीं है। लेकिन काकाको अनुकूल वातावरणकी जरूरत है। प्रतिकूल वातावरणमें सम्भव है, वे कुम्हला जायेंगे। वे अभी कुछ अर्सेसे बहुत उपयोगी कार्य कर रहे हैं। 'फोर्सफुल' के लिए 'जबरदस्त' शब्द काम दे सकता है लेकिन इसमें ठीक-ठीक भाव नहीं आता। मैं कोई दूसरा शब्द सोचूंगा। इस समय तो कुछ लोग मिलनेके लिए आ गये हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११८८६) से।

६. पंजाबकी चिट्ठी[4] – १०

लाहौर

माघ सुदी १३ [२ फरवरी, १९२०]

दो शिष्टमण्डल

फीजी और ब्रिटिश गियानासे [दो] शिष्टमण्डल अभी कुछ समयसे भारत आये हुए हैं।[5] फीजीके टापू आस्ट्रेलियाके पास हैं। वहाँ पिछले पचास वर्षोंसे भारतीय

१. १ फरवरी, १९२० को एस्थर और मगनलाल गांधीको लिखे गये पत्रोंके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र इसी तारीखको लिखा गया था।

२. नरहरि द्वारकादास परीख।

३. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर, "काकासाहब" के नामसे विख्यात।

४. गांधीजीने १९१९ के नवम्बर और दिसम्बर तथा फिर फरवरी १९२० में पंजाबकी यात्रा की थी। वहींसे वे नवजीवनके लिए हर हफ्ते एक पत्र भेजा करते थे; इस पत्र-मालाकी पहली चिट्ठी नवजीवनके ९ नवम्बर, १९१९ के अंकमें प्रकाशित हुई थी। देखिए खण्ड १६, पृष्ठ २८९।

५. दोनों ही गैरसरकारी शिष्टमण्डल थे।

गिरमिटियोंकी मददसे ईख गन्ना बोया जाता है। उसके द्वारा आस्ट्रेलियाकी सेन्ट्रल शुगर कम्पनीने करोड़ों कमाये हैं। गिरमिट-प्रथा कितनी बुरी है, इसका भाई एन्ड्रयूजने[1] हूबहू चित्रण किया है। लेकिन वाइसराय महोदयके कड़े रवैयेके कारण, अब तो उन गिरमिटियोंकी गिरमिट भी समाप्त हो गई है जिनका समय अभी पूरा नहीं हुआ था।[2]

ब्रिटिश गियाना, दक्षिण अमरीकाका एक भाग है। यह भूमध्य रेखाके दक्षिण-में स्थित है। वहाँ भी गन्नेकी फसल खूब होती है और एक एकड़में तीन टनतक खाँड निकल सकती है। भारतमें एक एकड़में एक टन खाँड तैयार होती है। फिल-हाल खांड-समिति इस प्रश्नकी जाँच कर रही है। इस समितिके एक प्रख्यात सदस्य श्री बरजोरजी पादशाह भी हैं; इसलिए यह माना जा सकता है कि उसका परिणाम कुछ अच्छा निकलेगा। उनके कथनानुसार फिलहाल तो सम्भव है कि हमें गन्नेकी फसलसे नुकसान उठाना पड़ रहा हो। आयातकी गई खाँड हमें सस्ती पड़ती है और भारत-में खाँडका उत्पादन न करनेसे किसीकी रोजी भी नहीं मारी जाती। यह बात मैंने जैसी सुनी है वैसी ही यहाँ दे रहा हूँ। मैं यह भी नहीं कह सकता कि श्री पादशाहके इस सम्बन्धमें ये अन्तिम निष्कर्ष हैं और न मैं फिलहाल इस सम्बन्धमें कुछ चर्चा ही करना चाहता हूँ। ब्रिटिश गियानाकी बात करते हुए प्रसंगतः ही यह खबर दे रहा हूँ।

खाँडके व्यापारमें हमारी स्थिति चाहे कैसी ही क्यों न हो लेकिन ब्रिटिश गियाना और फीजी तो सिर्फ खाँडके व्यापारसे ही समृद्ध हुए हैं।

ब्रिटिश गियानामें भी गिरमिटिया जाते थे। वहाँ कोई समझदार व्यक्ति नहीं गया इसलिए वहांके गिरमिटियोंके सम्बन्धमें हम कुछ नहीं जानते। वहाँ भी अब गिरमिटियोंका जाना बन्द हो गया है।

इसलिए दोनों देशोंके सामने अपनी सम्पन्नताको बनाये रखनेका भारी प्रश्न खड़ा हो गया है। यदि उन्हें और भारतीय मजदूर न मिले तो उनके लिए स्थिति चिन्ता-जनक हो जायेगी।

अंग्रेज मजदूरोंसे काम नहीं लिया जा सकता। इन देशोंमें अंग्रेज घर बनाकर नहीं रह सकते। वहाँकी आबोहवा उन्हें माफिक नहीं आती इसलिए यदि भारतीय मजदूर न मिले तो उन्हें चीन अथवा ऐसे ही अन्य मुल्कोंपर दृष्टिपात करना पड़ेगा। भारतीयोंके समान सरलता और नम्रता चीनके मजदूरोंमें नहीं है—ऐसा लगता है कि उन्हें इस बातका [पर्याप्त] अनुभव है कि चीनी मजदूरोंमें भारतीयों-जैसी सरलता और नम्रता नहीं है।

ये दोनों शिष्टमण्डल भारत सरकार और प्रजापक्षके लोगोंके साथ सलाह-मश-विरा करने तथा स्वाधीन भारतीय मजदूर इन दोनों स्थानोंमें किस प्रकार जा सकते हैं, यह जानने और वैसा प्रबन्ध करनेके लिए आये हैं। इन दोनों शिष्टमण्डलोंसे मेरी

१. सी० एफ० एन्ड्रयूज (१८७१–१९४०); ब्रिटिश मिशनरी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गांधीजीके एक निकट सहयोगी; दीनबन्धुके नामसे प्रसिद्ध।

२. फीजी सरकारने २ जनवरी, १९२० से गिरमिटको रद कर दिया था।

यहाँ भेंट हुई है। ब्रिटिश गियानासे यहाँके महान्यायवादी[1] तथा वहाँ रहनेवाले कुछ-एक पुराने भारतीय सज्जन शिष्टमण्डलमें आये हैं। फीजीसे वहाँके बिशप और एक दूसरे अंग्रेज सज्जन आये हैं। ब्रिटिश गियानाकी माँग यह है कि हमारे किसान वर्गके लोग स्वतन्त्र रूपसे वहाँ जायें और खेती करें। वहाँ उनमें से किसीको भी मजदूरी करनेकी जरूरत नहीं है। ब्रिटिश गियानामें भारतीयों और गोरोंके बीच समानता है। यह वहाँके गोरोंका गुण नहीं बल्कि वहाँकी स्थितिका परिणाम है। गोरे अधिकांशतः अधिकारी-वर्गके हैं और खेती आदि वे कर नहीं सकते। वहाँके गोरोंने हमारे प्रति द्वेष-भावको छोड़ दिया है, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। फिर भी इतनी बात तो सच है कि ब्रिटिश गियानामें कमसे-कम इस समय अन्य देशोंकी तरह [जाति] भेद नहीं है, और यदि भारतीय लोग वहाँ जाकर बस जायें तो उन्हें पूर्व आफ्रिकामें जैसी तकलीफ उठानी पड़ रही है, वैसी न उठानी पड़ेगी।

फीजीमें भिन्न स्थिति है। फीजीका शिष्टमण्डल स्वतन्त्र [धंधा करनेवाले] भारतीय नहीं, वरन् स्वतन्त्र रूपसे मजदूरी करनेवाले भारतीयोंको माँगता है। वे गिरमिटमें बँधकर नहीं बल्कि स्वतन्त्र रूपसे मजदूरी करनेके लिए जायें जिस तरह कि वे सिंगापुर आदि स्थानोंमें जाते हैं।

इन दोनों माँगोंके सम्बन्धमें मेरी राय माँगी गई है; मैंने अभी सार्वजनिक रूपसे अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है। किन्तु मैंने ब्रिटिश गियानाके महान्याय-वादीके सम्मुख जो-कुछ विचार[2] प्रकट किये थे, उनपर वे मेरे हस्ताक्षर ले गये हैं।

मुझे लगता है कि अभी हम "कॉलोनिस्ट"[3] भेजनेको तैयार नहीं; लोगोंमें [अभी] इतनी स्वतन्त्रता, इतनी आत्मनिर्भरता नहीं आई है। इसलिए स्वतन्त्र रूपसे मजदूरों-का जाना मुझे मुश्किल दिखाई देता है। किसान स्वतन्त्र रूपसे वहाँ जायें और रहें, यह भी मुझे अभी सम्भव नहीं दिखाई देता।

हममें उतनी चातुरी नहीं है, बाहर जानेका शौक नहीं है और बाहर जानेकी उतनी जरूरत भी नहीं है। यदि साहसिक लेकिन अज्ञानी वर्ग जाये तो उसके पीछे विद्वान् पारमार्थिक वर्ग भी जाना चाहिए। वैसे व्यक्ति जायें और लोकसेवा करें तो बहुत अच्छा काम हो सकता है, ऐसी मेरी मान्यता है। किन्तु वैसा वर्ग हिन्दु-स्तानमें ही थोड़ा है, उसमें से बाहर जानेवाले व्यक्ति कहाँसे मिल सकते हैं? इसलिए यद्यपि मैं किसान वर्गके लोगोंको श्रमिकके रूपमें कानूनके जरिये बाहर जानेसे रोकना नहीं चाहूँगा, तथापि ऐसे व्यक्तियोंको बाहर जानेके लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष-रूपसे प्रोत्साहन भी नहीं दूँगा। फिलहाल तो मैं पाठकोंके सम्मुख अपनी नम्र राय ही पेश कर सकता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-२-१९२०

७. पत्र : एल० फ्रेंचको[1]

लाहौर
३ फरवरी, १९२०

मार्शल लॉके अन्तर्गत तथा अन्य प्रकारसे सजा पाये हुए उन राजनीतिक या अर्ध-राजनीतिक कैदियोंके सम्बन्धमें रोज ही पूछताछ की जा रही है जो अभीतक रिहा नहीं किये गये हैं। मैंने जानकारी हासिल करने तक ही चिन्ता नहीं की है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि रिहाईके योग्य सभी सम्भव बन्दियोंकी सूची तैयार करनेमें समय तो लगेगा ही।

किन्तु यदि आप मुझे यह बता सकें कि भाई परमानन्द[2] सहित अन्य बन्दी तथा वे, जिन्हें लाहौर-षड्यंत्रके मुकदमोंमें सजा दी गई थी, रिहा किये जानेवाले हैं अथवा नहीं, [तो कृपा हो]।

अभी हालमें रिहा किये गये व्यक्तियोंसे जो इकरारनामे लिखाये गये हैं, उनके बारेमें लोग एतराज उठा रहे हैं। यह फर्क[3] क्यों किया गया है, क्या इसका कारण बताना सम्भव होगा?

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१०२) से।

८. ब्रिटिश गियाना और फीजीके शिष्टमण्डल[4]

[४ फरवरी, १९२० के पूर्व][5]

इस समय भारतमें विदेशोंसे दो शिष्टमण्डल आये हैं। एक ब्रिटिश गियानासे आया है, जिसके नेता वहांके महान्यायवादी डा० न्यूनन हैं और दूसरा फीजीसे, जिसके नेता पॉलीनेशियाके बिशप हैं। ये दोनों शिष्टमण्डल अपने-अपने उपनिवेशोंके

१. पंजाब सरकारके मुख्य सचिव।

२. पंजाबके एक क्रान्तिकारी नेता, जिन्हें कालेपानीकी सजा दी गई थी, परन्तु बादमें रिहा कर दिया गया था; आगे चलकर वे अखिल भारतीय हिन्दू महासभाके अध्यक्ष हुए।

३. मुख्य सचिवने अपने ६ फरवरी, १९२० के उत्तरमें कहा कि सम्राट्की घोषणाके अन्तर्गत ७३४ बन्दियोंमें से ६३८ रिहा किये जा चुके हैं और उनके बारेमें, जिन्हें लाहौर-षड्यन्त्रके मुकदमोंमें सजा दी गई थी (जिनमें भाई परमानन्द भी थे) अभी विचार हो रहा है। उन्होंने यह भी लिखा कि अधिक गम्भीर अराजनीतिक अपराधोंके अभियुक्तोंसे ही इकरारनामे लिखाये गये हैं।

४. देखिए "पंजाबकी चिट्ठी-१०", २-२-१९२०; "पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको", ४-२-१९२० के पूर्व और "पत्र: डा० न्यूननको", ५-२-१९२० भी।

५. यह लेख स्पष्ट ही ४ फरवरीसे पहले लिखा गया; देखिए "पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको", ४-२-१९२० के पूर्व।

लिए भारतीय मजदूर लेनेके उद्देश्यसे यहाँ आये हैं। अबतक दोनों उपनिवेशोंको गिरमिटिया मजदूर मिलते थे। मौजूदा गिरमिट दोनों ही उपनिवेशोंमें अभी हालमें ही रद किये गये हैं।

विभिन्न उपनिवेशोंमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेके सम्बन्धमें परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयका रुख सामान्यतः सही रहा है, और इस मामलेपर जन-इच्छाको उन्होंने बहुत साफ ढंगसे प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा कि भारतसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह स्वयं हानि उठाकर उपनिवेशोंकी सुविधाका विचार करे; और साथ ही जो स्वतन्त्र भारतीय अपनी स्थिति सुधारनेके विचारसे किसी उपनिवेशमें जाना चाहेंगे उन्हें भारत सरकार वहाँ जानेसे रोक भी नहीं सकती। वाइसराय महोदयने यह भी कहा कि इन शिष्टमण्डलोंसे बातचीत करने और प्रश्नपर विचार करनेके लिए शायद गैर-सरकारी सदस्योंकी एक समिति नियुक्त की जायेगी[1] और सरकार उस समितिकी सलाहके अनुसार कार्य करेगी।

आइए, अब हम स्थितिपर विचार करें। ब्रिटिश गियानाका शिष्टमण्डल अपने बागानोंके लिए खेतिहर ढंगके स्वतन्त्र भारतीयोंको अपने यहाँ बसाना चाहता है। फीजीका शिष्टमण्डल गिरमिटियोंके बजाय स्वतन्त्र मजदूर चाहता है। दोनों उपनिवेश ऊष्ण कटिबन्धमें पड़ते हैं और मुख्यतः गन्ना उगाते हैं। ये उपनिवेश दक्षिण आफ्रिका और पूर्व आफ्रिकाके पठारोंकी तरह नहीं हैं जहाँ यूरोपीय उपनिवेशी रह सकें। ये यूरोपीयोंके बसने लायक नहीं है। किन्तु उनका विकास यूरोपीय पूँजी लगाकर भारतीय श्रमिकोंकी सहायतासे किया जा रहा है। यदि उन्हें नौकरों या मुकद्दमोंके रूपमें भारतीय मजदूर नहीं मिलते तो उन्हें किसी दूसरे स्रोतका — शायद चीनका — सहारा लेना पड़ेगा।

मुझे दोनों शिष्टमण्डलोंसे मिलनेका अवसर मिला है और ब्रिटिश गियानाके शिष्टमण्डलसे तो मैं कई बार मिला हूँ। ब्रिटिश गियानासे गिरमिटिया भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहारकी कोई शिकायत नहीं मिली है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश गियानामें कोई कानूनी असमानता नहीं है। फीजीके कानूनमें भी शायद कोई बहुत बड़ी असमानता नहीं है। मैं यह भी समझता हूँ कि फीजीकी सरकार और खेत-मालिक अब भारतीय मजदूरोंसे अधिक अच्छा व्यवहार करने और अधिक अच्छी शर्तोंपर काम लेनेको तैयार हैं।[2]

किन्तु हमारे लिए विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या हम इन उपनिवेशोंमें भारतीय मजदूरोंको भेजना चाहते हैं, और यदि भेजना चाहते हैं तो शर्तें क्या ऐसी हैं कि उनसे भारतीयोंकी नैतिक तथा आर्थिक स्थितिमें सुधार होगा।

खोलें जो नवयुवकोंको अपनी जीवन-संगिनियाँ ढूंढ़नेके उद्देश्यसे थोड़े समयके लिए भारत आनेके लिए प्रोत्साहित करें। सच तो यह है कि इस भारी कठिनाईकी चर्चा करते हुए मैं यह कहनेका लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ कि अगर दोनों शिष्टमण्डल अपनी शक्ति अपने आसपासके वातावरणको स्वच्छ करनेमें ही लगायें तो उनके उद्देश्यके प्रति लोगोंका रुख अधिक अच्छा और सहायक होगा।

इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र प्रवासकी कोई भी योजना तबतक सफल नहीं हो सकती जबतक हमारे और अंग्रेजोंके सम्बन्धमें सर्वत्र काफी सुधार नहीं हो जाता। दक्षिण आफ्रिकाके अंग्रेज भारत, फीजी या ब्रिटिश गियानाके अंग्रेजोंसे किसी भी तरह बुरे नहीं हैं। दक्षिण आफ्रिकामें अपने स्वार्थोंके सम्बन्धमें उनकी जो अदूरदर्शितापूर्ण कल्पना है उसके कारण वे भारतीयोंको वहाँसे निकाल बाहर करनेकी माँग कर रहे हैं। वहाँ उनकी अन्तरात्मा और स्वार्थके बीच द्वंद्व चल रहा है। ब्रिटिश गियानामें जो उनकी अन्तरात्माकी आवाज कहती है, वही उनके स्वार्थकी भी माँग है। इसलिए वे चाहते हैं कि भारतीय वहाँ बसनेके लिए जायें। किन्तु जैसे दक्षिण आफ्रिकाके अंग्रेज भारतीयोंको अपनी बराबरीका नहीं मानते वैसे ही वहाँके अंग्रेज भी नहीं मानते। लेकिन जो बात इससे भी बुरी है वह यह कि कोई साधारण भारतीय स्वयं भी यह नहीं समझता कि वह अंग्रेजोंकी बराबरीका है। इसलिए दोनोंमें परस्पर अविश्वास है; यदि एक दूसरेसे घृणा करता है तो दूसरा पहलेसे भय खाता है। उनके सम्बन्ध जबतक सामान्य और स्वाभाविक नहीं हो जाते तबतक इन उपनिवेशोंके लिए स्वतन्त्र प्रवासको प्रोत्साहन देना या उसका समर्थन करना भी उचित नहीं है।

मैं समझता हूँ कि इन शिष्टमण्डलोंको जैसे प्रवासियोंकी आवश्यकता है वैसे प्रवासी प्राप्त करनेके लिए वे एक प्रकारकी एजेन्सी या ब्यूरो खोलना चाहते हैं। स्वतन्त्र मजदूरोंके रूपमें भारतीयोंके फीजी जानेकी कल्पना करके मेरा मन विचलित हो उठता है। आज उनमें सोचने-समझनेकी जितनी क्षमता है, उसको देखते वे फीजी जानेके बाद स्वतन्त्र और गिरमिटिया मजदूरोंका भेद नहीं समझ पायेंगे। ब्रिटिश गियानामें खेतिहर लोगोंकी समझमें यही नहीं आयेगा कि वे मेहनत और हुनरका क्या उपयोग करें और फलतः खेतोंमें मजदूरी करते फिरेंगे। इस स्वतन्त्र एजेन्सीके साथ-साथ हमारी ओरसे भी एक ऐसी ही सलाहकार एजेन्सी होनी चाहिए जो लोगोंको अपना रास्ता चुननेमें मदद कर सके। मैंने डा० न्यूननको सुझाव दिया है कि प्रयोगके तौरपर एक जहाज मजदूर भेजे जायें और यह भी कि उनके साथ श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजको या ब्रिटिश गियानाके मजदूरोंकी स्थितिका ज्ञान रखनेवाले किसी अन्य प्रमुख भारतीयको भी भेजा जाये, जो अध्ययनके बाद उसपर अपनी रिपोर्ट दे। फिलहाल तो ज्यादासे-ज्यादा इतना ही करना सम्भव है। और मैं आशा करता हूँ कि न तो प्रस्तावित गैर-सरकारी समिति और न जनता ही इससे कुछ अधिकके लिए तैयार होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-२-१९२०

९. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

[४ फरवरी, १९२० के पूर्व][1]

प्रिय श्री शास्त्री,[2]

मैं जानता हूँ कि फीजी और ब्रिटिश गियानाके शिष्टमण्डल[3] आपसे मिल चुके हैं या शीघ्र ही मिलनेवाले हैं। मैंने अभी-अभी 'यंग-इंडिया' के लिए एक लेख[4] भेजा है, जो इस सप्ताहके बादवाले बुधवारसे पहले नहीं छप सकता। वह यथासमय आपके पास भेज दिया जायेगा। परन्तु इस बीच में आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि आयोगके उद्देश्योंके बारेमें मुझे सन्देह है। आयोगके सदस्योंमें सदाशयता तो है, परन्तु वे हमारी कठिनाई समझनेमें असमर्थ हैं। मेरा खयाल है कि इस समय हम किसी भी रूपमें भारतीयोंके प्रवासका समर्थन नहीं कर सकते। यह ऐसा ही है जैसे कि खराब दूधमें अच्छा दूध मिला दें तो अच्छा भी खराब हो जाता है। फीजी और ब्रिटिश गियानामें वातावरण गिरमिटिया प्रथाकी दुर्गंधसे दूषित है। इस घातक दुर्गंधके दूर हो जानेके पश्चात् ही हम और प्रवासी भेज सकते हैं। यह सच है कि अब वहाँ जो भी मजदूर जायेंगे अपनी मर्जीसे जायेंगे और वहाँ वे स्वतन्त्र मजदूरोंकी तरह ही रहेंगे। फिर भी, हमें अपने देशवासियोंको सलाह तो देनी ही है। मैंने डा० न्यूननको सुझाव दिया है कि यदि वे किसी सुसंस्कृत भारतीयको ब्रिटिश गियाना जाकर वहाँकी स्थिति देखने और उसपर अपनी रिपोर्ट देनेकी व्यवस्था कर सकें तो अच्छा होगा। मैंने यह भी कहा है कि अगर आजमाइशी तौरपर एक बार जहाज-भर खेतिहर वहाँ भेज दिये जायें तो मैं बेजा नहीं मानता। क्या आप अमृतलाल ठक्कर[5] या तिवारीको[6] इन स्थानोंका दौरा करनेके लिए भेज सकते हैं? डा० न्यूनन पूरा खर्च देनेको राजी हो गये हैं।

आशा है, आपका स्वास्थ्य ठीक चल रहा होगा।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७३९३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. जिस लेखके प्रकाशनका उल्लेख गांधीजी इस पत्रमें कर रहे हैं, वह **यंग इंडिया**में बुधवार, ११ फरवरी, १९२० को छपा था। अतएव वह लेख और यह पत्र दोनों बुधवार ४ फरवरी, १९२० से पहले ही लिखे गये होंगे।

२. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री (१८६९–१९४६); शिक्षा-शास्त्री और वक्ता; भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के अध्यक्ष, १९१५-२७; केन्द्रीय विधान-परिषद् तथा कौंसिल ऑफ स्टेटके सदस्य; दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय सरकारके एजेन्ट जनरल।

३ और ४. देखिए पिछला शीर्षक।

५. अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर (१८६९–१९५१); गुजराती इंजीनियर; जिन्होंने सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके आजीवन सदस्यकी हैसियतसे पूरे समयका सामाजिक सेवा कार्य हाथमें ले लिया और बादमें हरिजनोंके कल्याणार्थ अपना समय और जीवन व्यतीत किया।

६. वेंकटेशनारायण तिवारी, सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके सदस्य।

१०. पत्र : एस्थर फैरिंगको

बुधवार [४ फरवरी, १९२०][1]

रानी बिटिया,

तुम्हारे पत्र मिल गये हैं। जो हो गया उसपर अब पछताना बेकार है। सवाल यह है कि अब बात सुधरे कैसे? ईस्टरके अवसरपर या चाहे जब तुम अवश्य ही जहाँ चाहो जा सकती हो। सबसे ज्यादा ध्यान तुम्हारे मानसिक सुख और आध्यात्मिक आनन्दका रखना है। जिस 'अनियमितता'की बात तुम लिख रही हो, उसका एल० के० द्वारा परीक्षित एक अत्युत्तम इलाज है — वह यह कि कटिस्नान और घर्षण स्नानका अभ्यास करना, अलोना तथा अन्य बिना मसालोंवाला भोजन करना। इस-पर आश्रममें हमारे पास एक पुस्तक है। उसे पढ़ लेना। इस बातको कि यह पुस्तक आश्रममें है एस० के० और अन्य लोग जानते हैं। बाने भी इन विधियोंको अनेक वर्षोंतक आजमाया है और बहुत लाभ उठाया है। जबतक तुम वहाँ हो, इन्हें जरूर आजमाओ। डबलरोटी मँगानेमें संकोच हरगिज मत करना। वह बहुत आसानीसे मिल जाती है।

मैं तुम्हारी इस बातसे सहमत हूँ कि तुम्हें शान्तिपूर्वक भगवद्‌चिन्तनके लिए समय मिलना ही चाहिए। तुम अहमदाबादके गिरजाघरमें क्यों नहीं जातीं? मेरा यह आशय नहीं है कि तुम कॉन्वेंटमें न जाओ। ईश्वर तुम्हारा मार्गदर्शन करेगा और शक्ति तथा प्रकाश देगा।

स्नेह और मंगल कामनाओं सहित,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

११. पत्र : बाबू ब्रजसुन्दर दासको

२, मुजंग रोड
लाहौर
५ फरवरी, १९२०

प्रिय बाबू ब्रजसुन्दर दास,

उड़िया-आन्दोलनके सम्बन्धमें आपका मुद्रित परिपत्र मिला।[1] कागज-पत्र अभी नहीं मिले, शायद आप बादमें भेजेंगे। फिर भी मैं चाहता हूँ कि आप मुझे आन्दोलनकी प्रगतिके बारेमें लिखते रहें। इस विषयपर 'यंग इंडिया' में लिख रहा हूँ।[2] मेरा खयाल है कि 'यंग इंडिया' आपके पास आता है।

हृदयसे आपका,

अध्यक्ष
उड़िया पीपुल्स एसोसिएशन
कटक

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१०५)की फोटो-नकलसे।

१२. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर
बृहस्पतिवार [५ फरवरी, १९२०][3]

रानी बिटिया,

मैं देखता हूँ कि मैंने तुम्हारा दिल दुखाया है, मुझे क्षमा करना। मैंने वैसा इसलिए लिखा कि मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ। मेरा खयाल है कि तुम्हारा यहाँ आना बेकार है, क्योंकि मैं ११ तारीखसे[4] दौरेपर रहूँगा। इसलिए अगर तुम आई भी तो मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकूँगा। आशा है, बहुत देर हुई तब भी २३ तारीख[5]-तक मैं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। फिर कमसे-कम कुछ समयतक तो हम तुम साथ रहेंगे ही। इस बीच तुम कटि-स्नान और घर्षण-स्नान (सिट्ज़ बाथ) करो। और वहाँ

१ और २. देखिए "उत्कलकी पुकार", १८-२-१९२०।

३. यह पत्र एस्थर फैरिंगको लिखे गये गांधीजीके ४-२-१९२० के पत्रके बाद ही लिखा गया लगता है।

४. गांधीजी ११ फरवरीसे १५ फरवरीतक पंजाबमें दौरेपर थे।

५. गांधीजी २२ फरवरीको साबरमती आश्रम पहुँचे।

जो डाक्टर है, उससे तुम अपनी परीक्षा भी क्यों न करा लो? यदि मैं तुम्हारी जगह होता तो तनिक भी आगा-पीछा न करता। परन्तु, मैं तुमपर दबाव डालना नहीं चाहता।

मंगल कामनाओं एवं स्नेह सहित,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१३. पत्र : डा० न्यूननको

५ फरवरी, १९२०

प्रिय डा० न्यूनन,

इस पत्रके साथ मैं 'डेली आरगोजी' से लिया गया एक उद्धरण, जो श्री पोलकसे[1] प्राप्त हुआ है, भेज रहा हूँ। इसमें आप देखेंगे कि ब्रिटिश गियानामें एक ऐसा दल जान पड़ता है जो आपकी योजनाका विरोधी है। वे लोग स्पष्टत: यह मानते हैं कि यह योजना उपनिवेश-योजना (कॉलोनाइज़ेशन स्कीम) नहीं है, बल्कि ऐसी है, जिसका उद्देश्य मजदूर प्राप्त करना है। क्या आप कृपया मुझे सूचित करेंगे कि यह कौन-सा दल है और आप जिस स्थितितक पहुँचनेकी इच्छा रखते हैं, उसका ठीक स्वरूप क्या है? मैंने 'यंग इंडिया'के लिए एक लेख लिखा है, जिसमें मैंने इस विषयपर अपने विचार व्यक्त किये हैं; उसके प्रकाशित होते ही उस अंककी एक प्रति आपको भेज दी जायेगी। 'आरगोजी'के इस उद्धरणने मुझे कुछ विचलित जरूर किया है और इसने मुझे 'यंग इंडिया'के लिए लिखे अपने लेखको एक बार फिर पूर्ण रूपसे दोहरा जानेको प्रेरित किया है। मेरा इरादा है कि जरा-सा अवकाश मिलते ही मैं इस सम्बन्धमें अपने विचार लिख डालूं कि अगर किसी उपनिवेश-योजनाको सन्तोषप्रद होना है और आपमें से जो लोग प्रवासमें विश्वास रखते हैं, कमसे-कम उनका भी समर्थन प्राप्त करना है तो उसे कैसा होना चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३९३) से।

१४. पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

२, मुजंग रोड
लाहौर
५ फरवरी, १९२०

प्रिय श्री शास्त्री,

आपका पत्र मिला। उत्तर एक-दो दिनमें देनेकी आशा करता हूँ। इस बीचमें इस पत्रके साथ एक लेखका उद्धरण भेज रहा हूँ जो मुझे श्री पोलकसे प्राप्त हुआ है। यों भी प्रवासकी किसी योजानपर, चाहे वह कागजपर कितनी ही अच्छी क्यों न हो, विचार करना कठिन है लेकिन इस उद्धरणको देखकर तो वह और भी कठिन लगता है। फिर भी, मैं एक ऐसी योजनाका मसविदा लिखनेका प्रयास कर रहा हूँ जो प्रवास-सम्बन्धी किसी योजनापर विचार करनेको राजी होनेवालोंके लिए एक न्यूनतम योजनाका काम देगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३९३) से।

१५. तार: चित्तरंजन दासको[1]

लाहौर
[५ फरवरी, १९२० या उसके बाद][2]

यहाँसे निकल पाना असम्भव। २० से पहले काम[3] जरूर समाप्त कर देना है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१०४) की फोटो-नकलसे।

१. चित्तरंजन दास (१८७०-१९२५); प्रसिद्ध वकील और कांग्रेसी नेता, वक्ता और लेखक; १९२१ में कांग्रेसके अध्यक्ष निर्वाचित।

२. यह तार ५ फरवरी, १९२० के एक तारके जवाबमें भेजा गया था, जिसमें गांधीजीको, सम्भवतः फरवरीके अन्तिम सप्ताहमें मौलाना आजादके सभापतित्वमें होनेवाले बंगाल प्रान्तीय खिलाफत सम्मेलनमें शामिल होनेके लिए बुलाया गया था। गांधीजीने चित्तरंजन दासके तारका उत्तर उसी तारकी उलटी तरफ लिख दिया था। प्रत्यक्ष है कि यह उत्तर ५ फरवरीको या उसके बाद ही लिखा गया होगा।

३. पंजाबके उपद्रवोंकी जाँचसे सम्बन्धित काम; क्योंकि रिपोर्टके मसविदेको अन्तिम रूप देनेके लिए २० फरवरी, १९२० को कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त किये गये आयुक्तोंकी बैठक बनारसमें होनेवाली थी।

१६. खादीकी कीमत

बम्बईसे विट्ठलदास जेराजाणी समाचार देते हैं कि इस समय बम्बईमें खादीकी खपत कम हो गई है अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि बिलकुल खत्म हो गई है। यह खबर पढ़कर मुझे दुःख हुआ, अलबत्ता, आश्चर्य नहीं हुआ। दुःख हुआ क्योंकि खादीकी कम खपत यह सूचित करती है कि हमारा उत्साह क्षणिक है और यह कि उसके पीछे धार्मिक वृत्ति अथवा भावना नहीं है। जो जनता धर्म समझकर मैला पानी पीनेको तैयार रहती है, जो हिन्दू लोग धर्म मानकर रेलगाड़ीमें खानेसे छूत लग जानेके भयसे भूखे रह सकते हैं, जो मुसलमान लोग अमुक ढंगसे तैयार न किये गये मांसका त्याग करते हैं, वे लोग यदि यह मानें कि खादीका प्रयोग करना दया-धर्म है, वह एक पवित्र वस्तु है, तो वे उसका त्याग नहीं करेंगे।

सारी खादी एक समान अच्छी नहीं होती, उसमें सलवटें पड़ती हैं, उसके कोट-पतलूनमें कड़ापन नहीं रहता, वह इतनी सिकुड़ जाती है कि हाथकी कलाईसे कुहनी तक पहुँच जाती है। उसमें चलनीके समान छेद हो जाते हैं, यहाँतक कि उसमें से मूँगके दाने भी निकल जाते हैं। इन सब बातोंका किसी-किसीको अनुभव हुआ होगा। मेरा अनुभव यह है कि मैं खादीके कुरते आदि ज्यों-ज्यों पहनता जाता हूँ त्यों-त्यों वे मुलायम होते जाते हैं। उसकी बनी धोतियाँ भी मुझे तो भारी नहीं मालूम होतीं और अब मिलकी बनी धोतियाँ पहनना मुझे कठिन लगता है। हो सकता है कि यह सब मेरा भ्रम हो किन्तु मुझे तो उसमें धर्म जान पड़ता है।

यह सब खादी बनती कैसे है? उसका सूत अधिकांशतः गरीब बहनों द्वारा कता हुआ होता है। उनमें से कितनी ही बहनें तो किसी तरह अपने दिन काटती थीं, अब उनका जीवन काफी सुधरा है, अथवा वे पहले जो कोई धन्धा नहीं करती थीं, उसके बदले अब कुछ नहीं तो दिनका एक आना तो कमा लेती हैं। उससे अपने घरकी भाजी खरीद सकती हैं, अपने बच्चोंके लिए दूध ले सकती हैं। जिस एक आनेको हम बम्बईमें [व्यर्थ ही] फेंक देते हैं, गाँवमें उस एक आनेकी कीमत चार आनेके बराबर तो है ही।

इस खादीको बुननेवाले वे लोग हैं जो अपना बुनाईका धन्धा छोड़ बैठे थे, अथवा छोड़नेकी तैयारीमें थे।

खादीका प्रयोग स्वदेशीका आधार-स्तम्भ है क्योंकि जो मोटे सूतसे और आसानीसे बुना जा सकता हो ऐसा कपड़ा खादी ही है। अभी तो खादीको मशीनसे बने वस्त्रसे होड़ भी नहीं करनी पड़ती। खादीकी खपतसे ही लाखों गरीब व्यक्ति अपने घर बैठे ईमानदारीसे आजीविका प्राप्त कर सकते हैं।

यह खादी दिन-प्रतिदिन सुधरती जायेगी, सुधर रही है। इसके अनेक उपयोग हैं। यदि इसकी कमीजें आदि नहीं बनाई जा सकतीं तो ढीला कुर्ता, बनियान आदि तो बनाये ही जा सकते हैं, छोटे और बड़े रूमाल, तकियों और गद्दियोंके खोल तो

बनाये ही जा सकते हैं; तोशक बन सकते हैं। ऐसे अनेक उपयोग हो सकते हैं। मैं यह भी नहीं कहता कि जिनको जरूरत नहीं है वे लोग खादीका प्रयोग करनेकी खातिर व्यर्थ पैसे खर्च कर दें। इससे भी जनताको पूरा लाभ नहीं मिलेगा। लेकिन यह जरूर कहूँगा कि हम जिस-जिस रूपमें खादीका उपयोग कर सकते हैं, उस-उस रूपमें हमें उसका ही उपयोग करना चाहिए। मनमें खादीका ही प्रयोग करनेकी लगन रहे तो हम समझ सकेंगे कि इसका कहाँ-कहाँ सदुपयोग हो सकता है।

ज्यादा खादी तैयार करनेके सम्बन्धमें आन्दोलन चल ही रहा है, खादीका अधिक उत्पादन हो ही रहा है। इसको बेचनेकी व्यवस्था भी होनी चाहिए। उसमें बम्बईके व्यापारियोंकी मदद चाहता हूँ। खादीमें उचित सुधार किये जानेके सुझाव भी उपयोगी सिद्ध होंगे। जहाँ-जहाँ स्वदेशी भंडार खुले हुए हैं वहाँ-वहाँ उनके व्यवस्थापकोंको खादी मँगवा लेनी चाहिए। खादीके समान ही अन्य माल भी तैयार होने लगेगा। हाथसे बुने स्वदेशी मालका शौक जब जनतामें पैदा होगा तभी हाथसे कताई और बुनाई करनेका काम तीव्रतासे चलने लगेगा।

इस सम्बन्धमें मुझे पंजाबमें जो अनुभव हो रहा है उससे मैं देखता हूँ कि यदि लोगोंमें स्वदेशीकी शुद्ध भावना उत्पन्न हो जाये तो बहुत बड़ी संख्यामें पंजाबकी स्त्रियाँ कातनेका अपना पुराना काम शुरू कर दें। पंजाब ऐसा प्रदेश है जो स्वदेशीका धाम हो सकता है। पंजाबमें कपास पैदा होती है, वहाँ लगभग प्रत्येक स्त्रीको कातना आता है, वहाँ बुनकर हैं; जो भी सामग्री चाहिए वह पंजाबमें है। लेकिन इस समय बम्बई व्यापारका मुख्य केन्द्र है इसलिए वहाँके व्यापारियोंकी मदद चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-२-१९२०

१७. मजदूरोंकी स्थिति

हिन्दुस्तानके सम्मुख आज दो रास्ते हैं, या तो वह पश्चिमकी नीतिको यानी इस सिद्धान्तको स्वीकार कर ले कि "जिसकी लाठी उसकी भैंस", अर्थात् शक्ति ही सत्य है; सत्य ही शक्ति है—सो नहीं। या फिर वह पूर्वके सिद्धान्तको मान्य करे। वह यह है कि जहाँ धर्म है वहाँ ही जय है, साँचको आँच नहीं है; निर्बल और सबल, दोनोंको न्याय प्राप्त करनेका समान अधिकार है।

इन दो नीतियोंमें से किसी एकका चुनाव करनेके इस कार्यका श्रीगणेश मजदूर-वर्गको करना है। यदि हिंसाके द्वारा वेतनोंमें वृद्धि करानी सम्भव हो तो क्या उन्हें ऐसा करना चाहिए? उनका अधिकार चाहे जैसा हो लेकिन हिंसाका सहारा लेना तो कदापि उचित नहीं होगा। हिंसाकी कार्रवाई करके अधिकार प्राप्त करनेका रास्ता आसान तो लगता है लेकिन अन्ततः वह दुरूह सिद्ध होता है। जो तलवार चलाते हैं वे तलवारसे ही मरते हैं। तैराकोंकी मृत्यु बहुधा पानीमें ही होती है।

यूरोपकी ओर देखो। वहाँ कोई भी सुखी दिखाई नहीं देता, क्योंकि किसीको सन्तोष ही नहीं है। मजदूरोंको मालिकोंपर और मालिकोंको मजदूरोंपर विश्वास नहीं है। दोनोंमें एक तरहकी शक्ति है लेकिन वह तो भैंसोंमें भी होती है; वे मरते दम-तक लड़ते ही रहते हैं। हर तरहकी गति, प्रगति नहीं होती, यूरोपकी जनता आगे बढ़ती जाती है, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। उसके पास धन है, इसका यह मतलब नहीं कि नीति और धर्म भी है। दुर्योधनके पास बहुत धन था, लेकिन वह विदुर और सुदामाकी अपेक्षा गरीब था। विदुर और सुदामाकी आज विश्व पूजा करता है। दुर्योधनका नाम हम उसके दुर्गुणोंका त्याग करनेकी खातिर ही लेते हैं।

तब हमें क्या करना चाहिए? बम्बईमें मजदूरोंने बहुत बल दिखाया।[1] मुझे सारे तथ्योंको जाननेका अवसर नहीं मिला। लेकिन मैं यह तो देख सका कि वे [उससे भी] अधिक अच्छे ढंगसे लड़ सकते थे। हो सकता है, सारा दोष मालिकोंका रहा हो। सामान्यतया कहा जा सकता है कि मालिक-मजदूरोंके झगड़ेमें अकसर मालिकोंका अन्याय ज्यादा होता है। लेकिन जब मजदूरोंको अपने बलका पूरा भान हो जायेगा तब — मैं समझ सकता हूँ, बल्कि देख सकता हूँ — वे मालिकोंसे भी अधिक अन्याय कर सकेंगे। मजदूरोंमें यदि मालिकोंके जितना ज्ञान आ जाये तो मालिकोंको मजदूरोंकी शर्तोंके अनुसार ही काम करना पड़े। यह बात तो स्पष्ट है कि मजदूरोंमें ऐसा ज्ञान कभी भी नहीं आ सकता। वैसा होगा, तब मजदूर, मजदूर रहेंगे ही नहीं — मालिक ही हो जायेंगे। मालिक केवल पैसेके बलपर ही नहीं जूझते उनमें अक्ल, चतुराई आदि भी रहते ही हैं।

इसलिए हमारे सम्मुख यह सवाल है कि मजदूरोंको — वे जैसे हैं वैसे रहते हुए भी, उनमें कुछ विशेष जागरण आनेके बावजूद — किस तरह व्यवहार करना चाहिए। मजदूर अपनी संख्या अथवा अपने बाहुबलपर अर्थात् हिंसापर आधार रखेंगे तो वे आत्महत्या करेंगे और देशके उद्योगको नुकसान पहुँचायेंगे। यदि वे केवल न्याय-पर दृढ़ रहकर, न्याय प्राप्त करनेके लिए दुःख सहन करेंगे तो वे हमेशा विजय प्राप्त करेंगे, इतना ही नहीं बल्कि मालिकोंको सुधारेंगे, उद्योगोंमें वृद्धि करेंगे और मालिक तथा मजदूर दोनों एक परिवारके सदस्योंकी तरह रहेंगे। मजदूरोंकी स्थितिपर विचार करते समय निम्नलिखित बातोंको अवश्य ध्यानमें रखना चाहिए:

१. कामके घंटे इतने ही होने चाहिए जिससे मजदूर लोगोंके पास आरामका समय बच रहे।

२. वे शिक्षा प्राप्त कर सकें, ऐसे साधन होने चाहिए।

३. उनके बच्चोंको जितना आवश्यक है उतना दूध, कपड़ा और पर्याप्त शिक्षा मिलनेके साधन प्राप्त होने चाहिए।

४. मजदूरोंके रहनेके घर स्वच्छ होने चाहिए।

५. ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि बूढ़े होनेतक वे इतना बचा सकें जिससे बुढ़ापेमें उनका निर्वाह हो सके।

१. २० जनवरी, १९२० को बम्बईमें मिल-मजदूरोंने हड़ताल की थी।

आज इनमें से एक भी शर्तका पालन नहीं किया जाता। इसमें दोनों पक्षोंका दोष है। मालिक सिर्फ मजदूरीसे सम्बन्ध रखते हैं। मजदूरोंका क्या होता है, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। सामान्यतः उनका सारा प्रयत्न कमसे-कम वेतन देकर अधिकसे-अधिक काम लेनेका होता है। [दूसरी ओर] मजदूर ऐसी युक्तियाँ रचते रहते हैं कि अधिकसे-अधिक वेतन लेकर कमसे-कम काम किस तरह किया जाये।

परिणाम यह है कि मजदूरोंके वेतनमें वृद्धि होती है फिर भी काममें सुधार नहीं होता। दोनोंके बीचके सम्बन्ध निर्मल नहीं होते, और मजदूर अपनी वेतन-वृद्धिका सदुपयोग नहीं करते।

इन दोनों पक्षोंके बीच तीसरा पक्ष उठ खड़ा हुआ है। वह मजदूरोंका मित्र बन गया है। इस पक्षकी जरूरत है। उसमें जिस हदतक मैत्री-भावना है, केवल परमार्थकी दृष्टि है, उस हदतक ही वह मजदूरोंका मित्र बन सकता है।

अब ऐसा समय आ रहा है जब मजदूरोंको कई तरहसे गोटीकी तरह इस्तेमाल करनेका प्रयत्न किया जायेगा। इस स्थितिपर राजनैतिक क्षेत्रमें भाग लेनेवाले व्यक्तियोंको विचार करना चाहिए। वे क्या करेंगे? अपना स्वार्थ देखेंगे अथवा मजदूरोंकी और कौमकी सेवा करेंगे? मजदूरको मित्रोंकी आवश्यकता है। मजदूर सहारेके बिना आगे नहीं बढ़ सकते। ये सहारा देनेवाले लोग कैसे हैं, इसपर मजदूरोंकी स्थितिका दारोमदार होगा।

काम बन्द करना, 'स्ट्राइक' तथा हड़ताल करना — ये चमत्कारी वस्तुएँ हैं लेकिन इनका दुरुपयोग करना कठिन नहीं है।[1] मजदूरोंको मजबूत यूनियनों — संघोंकी स्थापना करनी चाहिए और संघकी अनुमतिके बिना हड़ताल नहीं की जानी चाहिए। हड़ताल करनेसे पहले मालिकोंके साथ सलाह-मशविरा भी करना चाहिए। यदि मालिक पंच नियुक्त करें तो पंचायतके सिद्धान्तको स्वीकार करना चाहिए और पंचकी नियुक्ति होनेपर उसका निर्णय दोनोंको, पसंद आये या न आये, स्वीकार करना चाहिए।

'नवजीवन' के पाठको! आप यदि मजदूरोंकी स्थिति सुधारनेमें दिलचस्पी लेते हों, मजदूरोंके मित्र बनना चाहते हों, उनकी सेवा करना चाहते हों तो आप उपर्युक्त विचारोंको पढ़कर समझ सकेंगे कि आपके सामने एक ही राजमार्ग है — दोनों पक्षोंके बीच कौटुम्बिक सौहार्द पैदा करके मजदूरोंको ऊँचा उठाना। वैसा करनेके लिए सत्याचरणके समान अन्य कोई सीधा रास्ता नहीं है। मजदूरोंको अधिक वेतन मिले, केवल इससे ही आपको सन्तोष नहीं होना चाहिए। आपको इस बातकी भी जाँच करनी चाहिए कि वे किन साधनोंके द्वारा अधिक वेतन पाते हैं, और उसका क्या उपयोग करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८–२–१९२०

१. १९२० में भारतमें २०० हड़तालें हुईं। **इंडिया इन १९२०**, अध्याय ५।

१८. पत्र : एस्थर फैरिंगको

रविवार [८ फरवरी, १९२०][1]

रानी बिटिया,

मैंने तुम्हारा एस० को लिखा हुआ दर्द-भरा पत्र देखा। मुझे खुशी है कि तुमने उसमें अपने दिलकी सारी बातें उँडेल दी हैं। मैंने आज तुम्हें यह तार[2] दिया है कि यदि ठहरना जरा भी सम्भव हो तो मेरे पहुँचनेसे पहले वहाँसे न जाओ।[3] मैं तुमसे कई दिन प्रातःकालमें लम्बी बातचीत करना चाहता हूँ, जिसके लिए समय केवल आश्रममें ही मिल पाता है। मैं तुमसे यह भी आग्रह करना चाहता हूँ कि जिन स्नानोंका सुझाव मैंने दिया है, उन्हें अवश्य करो। वहाँ कह दो कि तुम्हारे पास पानी पहुँचा दिया जाया करे।

किसने कहा कि तुम रानी बिटिया नहीं हो? अपने अद्भुत प्रेम और दिलकी सचाईसे तुमने अपने-आपको मेरा सबसे अधिक प्रिय बना लिया है। तुम एक क्षणके लिए भी यह न सोचना कि तुम्हारी योग्यताके बारेमें मेरे हृदयपर जो छाप है, वह तुम्हारे स्वभावकी स्वच्छन्दताके कारण जरा भी बदल सकती है। तुम्हें अपने भीतर कहाँ मजबूती लानी है, यह बताना मेरा अधिकार है। यदि शरीर प्रभुका मन्दिर है तो उसकी पूरी-पूरी हिफाजत करना जरूरी है — उससे लाड़ अवश्य न किया जाये, लेकिन उसके प्रति उपेक्षा या उदासीनता भी अवश्य ही नहीं होनी चाहिए।

सदैव मंगल कामनाओं और हार्दिक प्रेम-सहित,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. पत्रके मजमूनसे लगता है कि यह एस्थर फैरिंगके नाम रविवार, १ फरवरी, १९२० को लिखे पत्रके बाद और रविवार, १५ फरवरी, १९२० को लिखे पत्रसे पहले लिखा गया था। १५ फरवरीको ही गांधीजी लाहौरसे रवाना हुए थे। अतः यह पत्र इन दो तिथियोंके बीच पड़नेवाले रविवार अर्थात् ८ फरवरीको ही लिखा गया होगा।

२. यह तार उपलब्ध नहीं है।

३. साबरमती आश्रमसे।

१९. पत्र : नरहरि परीखको

रविवार [९ फरवरी, १९२०][1]

भाईश्री नरहरि,

तुम्हारे आजके पत्रने तो मुझे घबराहटमें डाल दिया है। लेकिन परसों तुम्हारा जो तार मिला वह बादकी तारीखका होना चाहिए ऐसा भाई जीवराज मेहताका अनुमान है। और इससे तथा अन्य किसी भी तारके न आनेसे शान्ति मिलती है। पंजाबका काम न हो तो मैं यहाँ अब एक क्षणके लिए भी न रहूँ बल्कि वहाँ आकर महादेवसे गले मिलूँ। लेकिन फिलहाल तो मैं उन्हें तुम सब लोगोंके द्वारा ही गले लगा सकता हूँ। ऐसे अनेक बादल मेरे सिरपर आए और चले गये। यह भी चला जायेगा — इस विश्वासके आधारपर मैं काम कर रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११८८४)की फोटो-नकलसे।

२०. पत्र : एल० फ्रेंचको

लाहौर
९ फरवरी, १९२०

प्रिय श्री फ्रेंच,

मेरे ३ तारीखके पत्रका[2] आपने शीघ्र ही सविस्तार और स्पष्ट जवाब दिया, उसके लिए आपका आभारी हूँ। मुझे विश्वास है कि जिस ढंगसे शाही घोषणाको[3]

१. डा० जीवराज मेहता इस महीनेमें कुछ समयतक गांधीजीके साथ थे; (देखिए "पंजाबकी चिट्ठी-१३", २९-२-१९२०)। १६ फरवरी, १९२० को जिस दिन रविवार पड़ता था, दोनों बनारस पहुँचे। ऐसा लगता है कि गांधीजीने यह पत्र नरहरि परीखको ३१ जनवरी, १९२० (देखिए खण्ड १६) के आसपास लिखे गये पत्रके बाद लाहौरसे लिखा होगा, जहाँ वे २३ जनवरी, १९२० और १५ फरवरी, १९२० के बीचकी अवधिमें अधिकांशतः रहे थे। नरहरि परीखको लिखे पत्रमें उन्होंने महादेव देसाईकी बीमारीकी चर्चा की है। तो अगर हम ऐसा मानें कि यह पत्र अगले रविवार यानी २ तारीखको लिखा गया था तो इसका मतलब इस तिथिको खींचकर बहुत पीछे ले आना होगा। अस्तु, ऐसा मानना अधिक समीचीन लगता है कि यह पत्र ९ फरवरी, १९२० को पड़नेवाले रविवारको लिखा गया था।

२. देखिए "पत्र : एल० फ्रेंचको", ३-२-१९२०।

३. यह घोषणा २३ दिसम्बर, १९१९ को जारी की गई, जिसमें राजनैतिक बन्दियोंको सम्राट् द्वारा क्षमादान दिया गया था।

अमली रूप दिया जा रहा है, उसे हर कोई पसन्द कर रहा है, और मैं आशा करता हूँ कि शेष कैदी भी, चाहे वे मार्शल लॉके अन्तर्गत या अन्य विशेष कानूनोंकी रू से दण्डित हुए हैं, शीघ्र ही रिहा कर दिये जायेंगे।

हालमें ही रिहा किये गये लोगोंसे लिये गये इकरारनामोंके सम्बन्धमें आपने जो दलील दी है, मैं स्वीकार करता हूँ कि उसमें बल है, तथापि मैं यह निवेदन किये बिना भी नहीं रह सकता कि यदि लोगोंको बिना शर्तके रिहा किया गया होता तो अधिक शोभाजनक होता, खास करके इसलिए कि साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि अधिकांश लोगोंको अकारण ही सजाएँ दी गई थीं।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७११४) तथा नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया: होम: पोलिटिकल (ए), मार्च १९२०, सं० ३२७ से।

२१. भेंट: समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंसे[1]

लाहौर
९ फरवरी, १९२०

मैं नहीं मानता कि यह एक सशक्त आयोग[2] है; निष्पक्ष तो निश्चय ही नहीं है। जहाँतक विचारार्थ विषयोंकी बात है, मैं उसके बारेमें कोई आपत्ति नहीं करना चाहता। सच तो यह है कि यदि जरा भी सम्भव होता तो मैं आयोग वगैरहका कोई सहारा लेता ही नहीं, और जमीन तथा व्यापार-सम्बन्धी राहत अन्य उपायोंसे हासिल करता। परन्तु मुझे कुछ ऐसा लगता है कि जमीनकी मिल्कियत और व्यापार-सम्बन्धी अधिकारोंको, जो आज खतरेमें पड़ गये हैं, सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन सुरक्षित करा सकते हैं। पूरी स्थिति इस बातपर निर्भर है कि भारत सरकार सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनके जरिये कितना जोर लगाती है। दक्षिण आफ्रिकासे हमारे लोगोंने अभीतक कोई तार नहीं भेजा है, यद्यपि उसकी उम्मीद प्रति क्षण कर रहा हूँ। ऐसी स्थितिमें अधिक कुछ बता पाना कठिन है। श्री एन्ड्रयूज[3] मौक़ेपर हैं, यह बड़ी सान्त्वनाप्रद बात है। वे जनताको जानते हैं और वर्तमान दक्षिण आफ्रिकी मन्त्रिमण्डलके सदस्यों तथा दक्षिण आफ्रिकाके अन्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंको भी जानते हैं।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, १०–२–१९२०

१. दक्षिण आफ्रिकी आयोगके सम्बन्धमें।

२. दक्षिण आफ्रिकी सरकार द्वारा दक्षिण आफ्रिकामें एशियाइयोंके जमीन-जायदाद रखने व व्यापार करनेके अधिकारके प्रश्नपर विचार करनेके लिए नियुक्त किया गया आयोग। भारत सरकारकी ओरसे सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनने आयोगकी मदद की थी। आयोगने मार्च १९२० से जुलाई १९२० तक अपना कार्य किया।

३. सी० एफ० एन्ड्रयूज दिसम्बर १९१९ से मार्च १९२० तक आफ्रिकामें थे।

२२. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर
मंगलवार [१० फरवरी,][1] १९२०

रानी बिटिया,

तुम्हारा भेजा हुआ प्यार-भरा तार और तुम्हारे दो पत्र मुझे एक ही रोज मिले। तुम्हारे पिताजीके सम्बन्धमें तुम्हारा पत्र मिलनेके पहले ही मैं तुम्हें तार भेज चुका था। मेरा निश्चित मत है कि उस बुलावेके जवाबमें तुम्हें यथासम्भव शीघ्र जाना चाहिए।[2] बात इतनी है कि जानेसे पहले तुमसे बहुत-सी बातें कर लेना चाहता हूँ। आजकल तुम शरीरसे कमजोर हो लेकिन इसके लिए चिन्ता न करो। मैं चाहूँगा कि आश्रमको तुम अब भी अपने घर-जैसा मानो। तुम जब भी चाहो वहाँ वापस आ सकती हो। यदि तुम मद्रास अभी चली जाना चाहती हो और डेनमार्क जाते समय आश्रम वापस आना चाहती हो तो तुम वैसा कर सकती हो। परन्तु मैं इसे अधिक पसन्द करूँगा कि मद्रास जानेसे पहले मैं तुमसे मिल लूँ। परन्तु जो तुम्हारी समझमें सबसे अच्छा ठहरे, वही करना। गर्म पानीसे स्नान करो; तुम्हें दोनोंसे छुटकारा मिल जायेगा। कटि-स्नानसे तुम्हें लाभ अवश्य होगा।

मैं चाहता हूँ कि देवदास[3] तुम्हारे साथ जाये। मिलनेपर इस सम्बन्धमें उससे और तुमसे भी बात करूँगा। पर [तुम्हारे साथ] महादेव जाये यह विचार मुझे अधिक अच्छा लगता है।

'डी०' के पास एक मिशनरीकी दी हुई एक छोटी-सी पुस्तक है। उसका नाम "इनर श्राइन" है। उसके एक भजनमें मैंने ये पंक्तियाँ पढ़ीं; "आज मेरे प्राण मधुर दुःख और विषण्ण सुखसे आप्लावित हैं,"[4] और मुझे तुरन्त तुम्हारा खयाल हो आया। सुखपूर्ण दुःख और दुःखपूर्ण सुख, ये अद्भुत व्यंजनाएँ हैं। परन्तु आज बस इतना ही।

प्रेम और मंगल कामना-सहित,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१. गांधीजी रविवार १५ फरवरी, १९२० को लाहौरसे रवाना हुए थे यह पत्र रवाना होनेसे कुछ दिन पहले लिखा गया लगता है।

२. डेनमार्क वापस।

३. देवदास गांधी (१९००-१९५७) गांधीजीके सबसे छोटे पुत्र; सन् १९१७ में चम्पारन जिलेके गांवोंमें कार्य किया और १९३० के नमक सत्याग्रहके सिलसिलेमें जेल गये; **हिन्दुस्तान टाइम्स**के प्रबन्ध सम्पादक, "इंडियन ऐंड ईस्टर्न न्यूजपेपर्स सोसाइटी" के दो बार अध्यक्ष।

४. "विद हैपी ग्रीफ ऐंड मोर्नफुल जॉय, माई स्पिरिट नाउ इज़ फिल्ड।"

478

२३. पंजाबकी चिट्ठी – ११

[११ फरवरी, १९२० के पूर्व][1]

जलियाँवाला बाग

जलियाँवाला बाग अब राष्ट्रकी सम्पत्ति हो गया है; पंडित मालवीयजीने कांग्रेस अधिवेशनमें[2] इस आशयकी बात कही थी। लेकिन बादमें उसमें भारी विघ्न उपस्थित हो गये थे। उस विषयमें लिखा-पढ़ी नहीं हुई थी और उसके कुछ भागीदारोंने अपने निश्चयको बदल दिया था। उन्होंने सोचा कि बागके थोड़ेसे भागको राष्ट्रको देकर बाकी भागमें व्यापार किया जाये। लोगोंने उन्हें बहुत समझाया कि श्मशान-भूमिके टुकड़े नहीं किये जाने चाहिए। बागका एक भी कोना ऐसा नहीं है जो निर्दोष व्यक्तियोंके रक्तसे सना हुआ न हो। इसलिए व्यापारिक दृष्टिसे उसका उपयोग करना उचित नहीं होगा। और फिर भारतके एक अनन्य सेवकने यह घोषित कर दिया है कि सारा बाग राष्ट्रकी सम्पत्ति बन गया है, इसलिए भी बागके टुकड़े नहीं होने चाहिए। तथापि जिन भागीदारोंने अपने निर्णयको बदल दिया था, वे अपने उस निर्णयसे नहीं हटे। अन्तमें पंडितजी और स्वामी श्रद्धानन्दजीको[3] अमृतसर जाना पड़ा। अब इस सम्बन्धमें एक समझौता हो गया है और कच्ची लिखा-पढ़ी भी हो गई है।

पाँच लाख

उसकी कीमत पाँच लाखसे ऊपर आँकी गई है, और इस रकमको तीन महीनेके अन्दर भर देनेका करार किया गया है। यदि उस समयतक पूरी रकम न दी जा सकी तो जनताके हाथसे जमीन निकल जानेका पूरा भय है।

अब दूसरा कदम यह है कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी इस रकमको इकट्ठा किया जाये। उत्तम तो यह होगा कि इस कार्यमें सब लोग अपनी सामर्थ्यके अनुसार पैसा दें, इससे राष्ट्रका गौरव बढ़ेगा और वह ऊँचा उठेगा। यह बाग एक असाधारण स्थल है, पवित्र स्थान है। इसे हम तीर्थ-स्थानके रूपमें प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। कांग्रेसके अधिवेशनके समय हजारों व्यक्ति इस बागको देखने गये, हजारों लोग तो इसी कामके लिए आये थे। हरद्वार हिन्दुओंका तीर्थ-स्थान है, लेकिन इसमें जैन, सिख, और अन्य लोग जो अपने आपको हिन्दू नहीं मानते, नहीं आते हैं। मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदियोंके लिए तो वह तीर्थ-स्थान है ही नहीं। जलियाँवाला बाग

१. "पंजाबकी चिट्ठी-१२", १५–२–१९२० में गांधीजीकी जिस गुजरात यात्राका जिक्र किया गया है, यह चिट्ठी सम्भवतः उससे पूर्व लिखी गई थी।

२. यह अधिवेशन अमृतसरमें हुआ था।

३. महात्मा मुंशीराम (१८५६–१९२६); बादमें श्रद्धानन्दके नामसे प्रसिद्ध आर्यसमाजके राष्ट्रवादी नेता जिन्होंने दिल्ली और पंजाबके सार्वजनिक जीवनमें प्रमुख भाग लिया था।

हिन्दुस्तानमें जन्मे और हिन्दुस्तानमें रहनेवाले सब लोगोंके लिए पवित्र स्थान है, अथवा हम उसे ऐसा बनाना चाहते हैं। हमारी इस इच्छाकी उत्पत्ति द्वेषभावमें नहीं वरन् मारे गये निर्दोष व्यक्तियोंके प्रति प्रेमभावमें है। बागका दर्शन करके हम जनरल डायरकी[1] कठोरताका स्मरण नहीं करना चाहते। लोग सदासे भूल करते आये हैं। उनकी भूलोंको याद रखकर हम द्वेषभावनाको पोषित नहीं करना चाहते, पर निर्दोष व्यक्तियोंकी यादको भुलानेसे राष्ट्रका नाश होता है। निर्दोष व्यक्तियोंका निरपराध मारा जाना इस देशके लिए एक ऐसा अवसर है जिसका उपयोग करके वह ऊपर चढ़ सकता है। और जिस तरह खर्चीला व्यक्ति अपने धनको सँभालकर न रखनेके कारण भिखारी बन जाता है, ठीक उसी तरह जिस राष्ट्रके लोग ऐसी घटनाकी स्मृति-को अपने मनमें सँजोकर नहीं रखते वे भी भिखारी बन जाते हैं। इसके विपरीत यदि वे इस धनका संग्रह करते हैं तो अवश्य उन्नति करते हैं। पाँच सौ अथवा एक हजार निर्दोष व्यक्ति यदि ज्ञानपूर्वक मृत्युका आलिंगन करें तो वह देश एकाएक ऊँचा उठ सकता है और उसका परिणाम इतना महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है कि वह एक चमत्कार माना जाये। जलियाँवाला बागमें जिस तरहसे निर्दोष व्यक्तियोंकी मृत्यु हुई है उससे हमें चमत्कारपूर्ण परिणामकी उपलब्धि भले ही न हो, लेकिन वह घटना हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता स्थापित करनेमें, हिन्दुस्तानमें जाग्रति लानेमें इस युगकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना मानी जायेगी। इसलिए उसको चिर-स्मरणीय बनाना हमारा फर्ज है।

यह विचार यदि ठीक हो तो पाँच लाख रुपया इकट्ठा करनेमें छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सभी भाग ले सकते हैं। एक ही व्यक्ति पाँच लाख रुपये दे दे तो अपने आलस्य और निष्क्रियताके कारण हम प्रसन्नता अनुभव करेंगे लेकिन इससे बागकी पवित्रताकी कीमत कम हो जायेगी। यदि तीन करोड़ बीस लाख व्यक्ति एक-एक पैसा दें तो पाँच लाख रुपया इकट्ठा हो जायेगा तथा यह बात तो सब स्वीकार करेंगे कि इस तरहसे इकट्ठ किये गये धनसे खरीदी जानेवाली जमीन अत्यन्त पवित्र होगी। यदि एक ही दिन चिंतन करनेके बाद इतने व्यक्ति अपने पैसे दें तो उसकी यह पवित्रता और भी बढ़ जायेगी।

आज ही से यह सवाल उठ खड़ा हुआ है कि इतने धनको इकट्ठा करनेके लिए किस तरहकी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे धन-संग्रहका खर्च कम हो और चोरी न हो। इस बातका भय पैदा हो गया है कि बागके लिए धन उगाहनेके बहाने लुच्चे लोग पैसा उगाहकर उसका दुरुपयोग करेंगे।

व्यावहारिक उपाय

इसका व्यावहारिक उपाय यह है कि प्रत्येक गाँवमें ईमानदार व्यक्ति पैसा उगाहनेके कामका बीड़ा उठा लें और वे तुरन्त उस पैसेको मुख्य समितिके पास भेज दें। परिचितके अलावा किसी औरको पैसा कदापि न दिया जाये। परिचित अर्थात्

१. रेनॉल्ड एडवर्ड हैरी डायर (१८६४–१९२७); अमृतसर क्षेत्रका कमान्डिंग ऑफीसर जिसने जलियाँवाला बागमें सभाके लिए एकत्रित लोगोंकी शान्त भीड़पर गोली चलानेका आदेश दिया था; देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५–३–१९२० ।

जिसपर विश्वास हो वह व्यक्ति। इस परिचित व्यक्तिको अपने गाँवके लोगोंको तुरन्त हिसाब दे देना चाहिए।

धन उगाहनेकी विधि

धन उगाहनेवालेको किसीपर दबाव नहीं डालना चाहिए, सिर्फ पूरी जानकारी देनी चाहिए। यद्यपि हमारा उद्देश्य पैसा-पैसा उगाहकर धन इकट्ठा करना होना चाहिए तथापि सब यथाशक्ति दें — यही उचित है। अमीर और गरीब एक समान दें, ऐसा संसारमें आजतक नहीं हुआ और न होना ही चाहिए, यह तो स्पष्ट है। लेकिन उतना ही करके बैठ जाना उचित नहीं है। 'अधिकस्य अधिकं फलम्' के न्यायसे भी दें, यह हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा करनेसे दूसरोंपर कम बोझ पड़ता है तथा कार्य भी शीघ्रतासे सधता है। अपना भाग देकर सन्तोष मान लेना कंजूसीका लक्षण है। प्रेमपूर्वक किये गये कार्योंमें महान् उदारता निहित होती है। प्रेममें किसी कार्यको तराजूपर तोलनेकी गुंजाइश नहीं होती और जहाँ होती है वह प्रेम, प्रेम नहीं है। वह तो व्यापारिक वृत्ति है। यहाँ व्यापारिक वृत्तिके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। यह रकम हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी सब लोगोंसे उगाही जायेगी। मुझे उम्मीद है कि 'नवजीवन' के पाठक इस पवित्र कार्यमें अपना हिस्सा देंगे। उन्हें इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए कि तुरन्त छः लाखकी राशि एकत्रित करनी है।

समितिकी रिपोर्ट

वाइसराय महोदयको हंटर समितिकी[1] रिपोर्ट मार्चके पहले हफ्तेमें मिलेगी, यह समाचार हमने समाचारपत्रोंमें पढ़ा है। हमारी समितिकी[2] रिपोर्ट तुरन्त ही प्रकाशित होनी चाहिए,[3] गवाहियाँ प्रायः छप चुकी हैं। इस कार्यकी जिम्मेदारी श्री जयकरने[4] ली है। रिपोर्ट लगभग तैयार है। रिपोर्टकी जाँच करने और उसे पास करनेके लिए १९ तारीखको काशीमें समितिके सदस्योंकी[5] बैठक होनेवाली है और यह आशा की जाती है कि रिपोर्ट २० फरवरीको पास होकर छपनेके लिए भेज दी जायेगी। रिपोर्टकी छपाईपर भारी खर्च आयेगा, तथा रिपोर्ट और गवाहियोंको मिलाकर एक प्रतिकी कीमत आठ रुपये होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५–२–१९२०

१. यह समिति बम्बई, दिल्ली और पंजाब प्रान्तोंमें अप्रैल महीनेमें हुए उपद्रवोंकी जाँच करनेके लिए भारत सरकार द्वारा २४ अक्तूबर, १९१९ को नियुक्त की गई थी। समितिने सरकारको अपनी रिपोर्ट ८ मार्चको पेश की थी और यह २८ मई, १९२० को प्रकाशित की गई थी।

२. पंजाबमें हुए उपद्रवोंकी जाँचके लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा नियुक्त उप-समिति।

३. यह २५ मार्च, १९२० को प्रकाशित हुई थी। देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५–३–१९२०।

४. मुकुन्दराव रामराव जयकर (१८७३–१९५९); बम्बईके वकील और उदार दलीय नेता; पूना विश्वविद्यालयके उप-कुलपति।

५. मो० क० गांधी, चित्तरंजन दास, अब्बास एस० तैयबजी।

२४. पत्र : एस्थर फैरिंगको

बृहस्पतिवार [१२ फरवरी,][1] १९२०

रानी बिटिया,

सुबह मुंह धोते समय मुझे तुम्हारा तथा महादेवका ही ध्यान सबसे अधिक आया। मैंने तुम्हें अहमदाबादमें रोक रखा है।[2] परन्तु क्या मैंने यह ठीक किया है, यदि तुम्हारा स्वास्थ्य और गिर गया तो मैं तो कहींका नहीं रह जाऊंगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम मेरा इन्तजार सिर्फ तभी करो जब तुम्हारा स्वास्थ्य थोड़ा-बहुत भी ठीक रहे। अन्यथा तुम्हारे मद्रासमें लौटनेपर ही हम मिलेंगे। महज इसलिए ठहरना अनिवार्य न समझो कि मैंने वैसी इच्छा व्यक्त की है। शुद्धतम स्नेह व्यक्त करना तलवारकी धारपर चलनेके समान है। 'मेरा मुझमें कुछ नहीं; जो कुछ है सो तोर,'[3] ऐसा कहना तो सरल है, किन्तु इसपर आचरण करना बहुत कठिन है। हम कभी नहीं कह सकते, यहाँतक कि जब हमें लगता है हम पूर्ण रूपसे प्रेममय हैं तब भी नहीं कह सकते कि इस समय हममें स्वार्थ नहीं है। इसपर मैं जितना ज्यादा सोचता हूँ उतना ही मुझे अपनी बहुधा कही हुई बातकी सत्यता भासित होती है। प्रेम और सत्य एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। दोनों ही का आचरण अत्यन्त कठिन है और केवल ये ही दो चीजें हैं, जिनके लिए जीनेमें जीवनकी सार्थकता है। यदि कोई व्यक्ति भगवान्के बनाये सभी जीवोंसे प्रेम नहीं करता तो वह सत्यपरायण नहीं हो सकता; अतएव सत्य और प्रेम त्यागके पूर्ण स्वरूप हैं। इसलिए मैं ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा कि मैं और तुम, दोनों इस सत्यको अच्छी तरह समझ सकें।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१ और २. देखिए "पत्र : एस्थर फैरिंगको", १०-२-१९२०।
३. "नन ऑफ सेल्फ, ऐंड ऑल ऑफ दी"।

२५. पत्र : नरहरि परीखको

लाहौर
बृहस्पतिवार [१२ फरवरी, १९२०][१]

भाईश्री नरहरि,

तुम्हारे पत्र नियमपूर्वक आते रहते हैं। इनसे मुझे बहुत शान्ति मिलती है। मेरे पत्रोंको, तुम्हारी इच्छा हो, तो ही, महादेवको पढ़वाना। फाड़कर फेंकना चाहो तो फाड़ डालना।

मैं वहाँ २३ तारीखको आनेकी उम्मीद करता हूँ। २२ तारीखको भी पहुँच सकता हूँ। डाक्टरका[२] पत्र भेजकर ठीक ही किया।

दीपक[३] रोटी और गुड़के अलावा दाल-सब्जी आदि भी खाता है या नहीं? वह अपने मामाके यहाँ फिर कभी गया था या नहीं? उसे प्रत्येक रविवारको जानेका न्यौता मिला हुआ है। इस रविवारको तुम्हीं पैदल साथ ले जाओ तो ठीक होगा।

एस्थरकी दशा शोचनीय है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११८८७) की फोटो-नकलसे।

२६. पत्र : नरहरि परीखको

[१३ फरवरी, १९२०][४]

भाईश्री नरहरि,

तुम्हारे पत्रोंमें दो बातोंका उत्तर देना बाकी रह जाता है। दीपकको लानेसे तुम्हारा काम बढ़ गया है, यह बात सही है। यह भी सच है कि इससे तुम्हारे काममें विघ्न पड़ेगा। तथापि गुजराती भाषा-भाषीके अतिरिक्त किसी औरको न लेनेके नियमका पालन करनेमें मुझे दिक्कत दिखाई देती है। दीपक जिन शर्तोंको मानकर

१. पंजाबकी अपनी तीन सप्ताहकी यात्राके पश्चात् गांधीजी २२ फरवरी, १९२० को अहमदाबाद पहुँचे थे। लाहौरमें बिताये अन्तिम बृहस्पतिवारको यही तारीख पड़ती थी।

२. सम्भवतः डाक्टर जीवराज मेहता।

३. सरलादेवी चौधरानीका लड़का। जनवरी १९२० को वह आश्रमके स्कूलमें दाखिल हुआ था।

४. जैसा कि पत्रमें बताया गया है, गांधीजीने यह पत्र सरगोधासे लिखा था, जहाँ वे अपनी पंजाब यात्राके दौरान इस तारीखको गये थे।

यहाँ आया है उन्हें मानकर कोई आये तो उसे हम इनकार कैसे कर सकते हैं —यह बात मेरी समझमें नहीं आती। इसके बावजूद तुम जो चाहोगे मैं उसे ही मान लूंगा। अन्ततः कार्यका भार तो तुमपर ही है। इसलिए तुम्हारे वाक्यको मैं अपना कानून मानूंगा। किन्तु मुझे जो कहना होगा सो तो कहूँगा। जिस बच्चेको अपने आश्रमके स्कूलमें भर्ती करें उसे अन्ततः गुजरातीके माध्यमसे ही शिक्षा लेनी होगी इस सूत्रको मैं बिलकुल स्वीकार करता हूँ। दीपकके सम्बन्धमें मैंने यह नहीं कहा है कि उसे बँगलाकी मार्फत शिक्षा दी जाये। मैंने तो यह चाहा कि अगर हम उसकी बँगला भाषाके लिए कुछ प्रबन्ध कर सकते हों तो करें। यह बात तो दीपकपर ही लागू मानता हूँ। दीपककी स्थितिका दूसरा कोई लड़का तो देशमें है नहीं, जिसे हमारे पास आना पड़े। सरलादेवी एक ही बंगालिन हैं जिन्होंने पंजाबीसे विवाह किया है और अपने बच्चेकी मातृभाषाको बनाये रखनेका आग्रह करती हैं। इस तत्त्वका पोषण किया जाना चाहिए। तुम सब अर्थात् तुम, काका आदि बँगला जानते हो और अभी तो मणीन्द्र वहाँ है, इसीसे मैंने इच्छा की थी कि दीपक अपना बँगलाका अभ्यास जारी रखे।

दूसरी बात, दीपकके पत्र लिखनेके एक निश्चित समयके सम्बन्धमें : इस बारेमें मुझे पूरा विश्वास है कि तुमने अपने विचार व्यक्त करनेमें उतावली दिखाई है। नियमित रूपसे पत्र लिखनेका काम यान्त्रिक ही होना चाहिए। जो भी वस्तु स्वाभाविक —हार्दिक—हो जाती है वह यान्त्रिक ही होती है। महादेवको तुम दो बजे फलोंका रस देते हो, उस क्रियामें तुम ऐसे तल्लीन हो जाते हो कि वह क्रिया यान्त्रिक हो जाती है। 'यान्त्रिक'के दो अर्थ हैं। एक वह जो मूढ़ दशामें यंत्रकी भाँति किया गया अथवा हुआ हो; दूसरा वह जो यन्त्रकी तरह नियमपूर्वक किया गया अथवा हुआ हो। पहला त्याज्य है दूसरा ग्राह्य है। अपनी माताके प्रति दीपकका उज्ज्वल प्रेम हो तो पत्र लिखना अच्छा है, यह जाननेके बाद उसके लिए अमुक समय निर्धारित करके और उसे पवित्र समझकर वह उसका पालन जरूर करेगा। हररोज एक ही समयपर हृदयसे किया गया गायत्रीका पाठ जितना फलीभूत होता है उतना नियम बिना रोज अथवा किसी भी समयपर किया गया पाठ फलीभूत नहीं होता। नियममें ही जीवनका उत्कर्ष है। मुझे लगता है कि अब तुम्हारे पास इसके बारेमें कहनेको कुछ बाकी नहीं बच रहता। लेकिन अगर रहता हो तो मिलनेपर समझाना अथवा मुझे काशीके[1] पतेपर लिखना।

आज सरगोधामें हूँ। कल लाहौर और परसों रविवारको काशीकी ट्रेनमें। महादेवसे मैंने कल माफी माँगी है। मेरा हेतु तो अत्यन्त शुद्ध था। मैंने जिस समय यह पत्र लिखा था उस समय "कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनामार्तिनाशनम्" श्लोकका स्मरण किया था। सबके दुःख एक जैसे ही हैं—ऐसी कल्पना तो मैंने नहीं की थी। मैं उनके दुःखसे दुःखी होता रहता था और उसकी दवा करता रहता था। हमारी भावनाएँ कितनी जटिल होती हैं और हमारी तपश्चर्या कितनी अल्प है,

१. गांधीजी १६ फरवरीसे लेकर २१ फरवरी, १९२० तक बनारसमें थे।

इसका ध्यान मुझे महादेवके दुःखसे हुआ। महादेवने तो अपने दुःखको हँसकर धो डाला यह उसकी अच्छाई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११८८९) की फोटो-नकलसे।

२७. भाषण : सरगोधामें

१३ फरवरी, १९२०

. . .महात्माजी ढाई बजे जनताके समक्ष आये। उस समय उन्होंने आर्यसमाज-भवनमें नगरकी महिलाओंके बीच एक छोटा-सा भाषण देते हुए कहा कि आप लोगोंको हमेशा सभामें आनेके पश्चात् शान्त रहना चाहिए और जो-कुछ कहा जाये उसे ध्यानसे सुनना चाहिए। आप लोगोंको सूत कातना चाहिए। इसके बाद वे नगर निगमके उद्यानकी ओर चल पड़े। . . .

. . .महात्माजी थोड़ी ही देर बोले, जिसमें उन्होंने सेनामें भरतीके उन आपत्तिजनक तरीकोंका संक्षिप्त रूपसे जिक्र किया, जिन्हें महायुद्धके दिनोंमें इस जिलेके कुछ अधिकारियोंने अपने उत्साहातिरेकमें अपनाया था। उन्होंने कहा कि कुछ लोग गलतीसे यह समझ बैठे हैं कि साथ खाने-पीनेसे ही विभिन्न समुदायोंके बीच पारस्परिक प्रेम उत्पन्न हो सकता है, परन्तु यह धारणा गलत है। प्रेम हृदयका गुण है, इसलिए यह एक-दूसरेके दुःख-सुखमें सम्मिलित होकर, स्वधर्मका परित्याग किये बिना ही, उत्पन्न और परिवर्धित किया जा सकता है। सभामें सम्मिलित होते समय श्रोताओंको कठोर अनुशासनका पालन करना चाहिए। चूँकि हमारा देश संसार-भरमें सबसे अधिक गरीब है — जहाँ प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय २४ या २५ रुपयेसे ज्यादा नहीं है — इसलिए स्वदेशीको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि चूँकि हमारे देशमें प्रतिवर्ष बाहरी देशोंसे ६० करोड़ रुपयेका तो केवल कपड़ा ही आया करता है, इसलिए हमें सूत कातना और कपड़ा बुनना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, २२-२-१९२०

२८. अपील : जलियाँवाला बाग स्मारक कोषके लिए

अमृतसर
१४ फरवरी, १९२०

जनताको यह सूचित करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि पिछली कांग्रेस द्वारा पास किये गये प्रस्तावके अनुसार जलियाँवाला बाग राष्ट्रके लिए अब हासिल कर लिया गया है। कांग्रेसकी इच्छाओंको पूरा करनेके लिए निम्न हस्ताक्षरकर्त्ताओंकी एक समिति नियुक्त की गई थी। क्रय-मूल्य अन्तिम रूपसे ५,४०,००० (पाँच लाख चालीस हजार) रुपये निश्चित किया गया है; जिसमें खर्चा भी शामिल है, और यह रकम इसी माहकी ५ तारीखसे लेकर ३ महीनेके अन्दर विक्रेताओंको अदा कर देनी है। अमृतसरकी राधाकिशन रामकिशन फर्मके मालिक लाला दीवानचन्दको कोषाध्यक्ष और अमृतसरके लाला गिरधारीलालको[1] कोषका मन्त्री नियुक्त किया गया है। अमृतसरके सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया, पंजाब नेशनल बैंक, पंजाब ऐंड सिन्ध बैंक और इलाहाबाद बैंकमें हिसाब रखा जायेगा। चन्दे, इनमें से किसी बैंकको या उनकी शाखाओंको सीधे भेजे जायें और भेजनेकी सूचना कोषाध्यक्ष या मन्त्रीको दे दी जाये। कोषाध्यक्ष और मन्त्रीके हस्ताक्षरोंसे युक्त एक औपचारिक रसीद प्रत्येक दानदाताको भेज दी जायेगी। इस मामलेमें प्रदर्शित किये गये उत्साहको राष्ट्रकी इच्छाका सूचक मानते हुए हम भरोसा करते हैं कि दान देनेवाले लोग बिना व्यक्तिगत आग्रह-अनुरोधकी प्रतीक्षा किये ही अपना चन्दा भेज देंगे। यद्यपि कमसे-कम ६ लाख रुपयेकी जरूरत है, परन्तु हमारा लक्ष्य दस लाखतक संग्रह करनेका है; अगर इतना नहीं कर सके तो कुछ कममें भी काम चल जायेगा। यद्यपि हम अभी किसी अन्तिम निष्कर्षपर नहीं पहुँचे हैं, पर फिलहाल हमारा विचार बागको एक उद्यानके रूपमें बदल देनेका है, जिसमें एक सादा-सा स्मारक खड़ा कर दिया जायेगा और इस स्मारकपर कुछ उपयुक्त वाक्य खुदे रहेंगे, जिनसे मृतकोंकी स्मृति स्थायी बन सके और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी याद ताजा होती रहे। उसपर एक भी शब्द ऐसा नहीं होगा, जिससे किसीके प्रति कटुता या द्वेष उत्पन्न हो या उसे प्रोत्साहन मिले। इस प्रकारके वाक्योंके सम्बन्धमें तथा जमीनका उपयोग किस तरहसे हो, इसके बारेमें हम सुझाव आमन्त्रित करते हैं। हमारा खयाल है कि इसका उपयोग एक राष्ट्रीय तीर्थस्थलकी तरह किया जाना चाहिए। हम कुछ लोगोंके इस कथनका जोरदार शब्दोंमें खण्डन करना चाहते हैं कि इस स्मारकका उद्देश्य अंग्रेजोंके और हमारे बीच कटुताको स्थायी बनाना है। हम ऐसी किसी इच्छाकी कल्पना भी नहीं कर सकते, परन्तु हम इसे अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं कि १३ अप्रैलके उस मनहूस दिन जो कई सौ निर्दोष व्यक्ति गोलीसे मौतके घाट

१. लाला गिरधारीलाल, पंजाब चेम्बर ऑफ कॉमर्सके उपाध्यक्ष तथा अमृतसर फ्लोर ऐंड जनरल मिल्सके प्रबन्ध निदेशक।

उतार दिये गये थे, उनकी यादगार किसी-न-किसी रूपमें ताजी और स्थायी बनाये रहें। यह एक राष्ट्रीय महत्त्वकी घटना थी, जिसे विस्मृत नहीं होने दिया जा सकता; और हम इस नतीजेपर पहुँचे कि इस उद्देश्यको पूरा करनेका इससे बेहतर तरीका और कोई नहीं होगा कि निर्दोष लोगोंके रक्तसे रंजित इस पवित्र स्थलको लेकर उसका कुछ वैसा उपयोग किया जाये, जैसा हमने ऊपर सुझाया है। हम विश्वास करते हैं कि दल आदिका खयाल किये बिना सब लोग, जिनमें अंग्रेज भी शामिल हैं, स्मारकके लिए चन्दा देंगे और समितिके निवेदनका उत्तर अभिलेख तथा बागके इस्तेमालके सम्बन्धमें अपने सुझावोंके रूपमें देनेकी कृपा करेंगे।

मो० क० गांधी
मदनमोहन मालवीय
मोतीलाल नेहरू
श्रद्धानन्द
हरकिशनलाल
किचलू
गिरधारीलाल

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १६–२–१९२०

२९. पंजाबकी चिट्ठी – १२

लाहौरसे लौटते हुए रास्तेमें
माघ वदी ११ [१५ फरवरी, १९२०]

गुजरात

पंजाबमें गुजरात नामक एक जिला है, उसमें गुजरात मुख्य शहर है। सन् १८४९ में जो सिख-युद्ध हुआ उसमें गुजरातकी लड़ाई प्रसिद्ध है। जिस मैदानमें लड़ाई हुई थी मैंने उस मैदानको भी देखा। इस जिलेमें भी मार्शल लॉ[1] लागू किया गया था; इसीसे मैं इसे देखने गया था। यात्राके दौरान श्रीमती सरलादेवी[2] साथ थीं।

गुजरातके पास जलालपुर जट्टाँ नामक एक छोटा-सा गाँव हैं; हमें वहाँ भी जाना था। उसे केवल बुनकरोंका गाँव कहा जा सकता है। वहाँकी स्त्रियाँ कातती हैं और मर्द बुनते हैं। वहाँकी एक छोटी-सी गलीको लोगोंने हाथसे बुने कपड़ोंसे सजा रखा था। ये कपड़े मात्र सफेद खादीके न थे, वरन् खादीको लाल रंगसे रँगकर उसमें

१. अप्रैलसे जून १९१९ तक।

२. पंडित रामभजदत्त चौधरीकी धर्म-पत्नी तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी भानजी। वे और उनके पति १९११ में गांधीजीके अनुयायी बन गये थे और उन्होंने अपने पुत्र दीपकको साबरमती आश्रममें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए भेजा था।

रेशमसे काम किया गया था। ऐसे वस्त्रोंको यहाँ लोग फुलकारी[1] कहते हैं। इनमें सुन्दर बेल-बूटे कढ़े हुए होते हैं, इससे वे आँखोंको प्रिय लगते हैं। विवाहके अवसरपर वर-वधूको ऐसी फुलकारी भेंट की जाती है और वह बहुतसे परिवारोंमें सँभालकर रखी जाती है। बहुत सारी स्त्रियाँ फुलकारीके दुपट्टे ओढ़े हुए दिखाई देती ह। आजकल लोग इसके पर्दे भी बनाते हैं। मेरे बैठनेके लिए जो प्रबन्ध किया जाता है उसमें भी में ज्यादातर इस फुलकारीको देखता हूँ। उसके पीछे निहित प्रेम मुझे आनन्द प्रदान करता है।

फुलकारीके कपड़ोंसे भरे बाजारको देखकर मुझे दुःख भी हुआ। मेरा हृदय भर आया। वह सुन्दर कला और हिन्दुस्तानकी खुशहालीका बड़ेसे-बड़ा साधन लगभग समाप्त होनेकी स्थितिपर आ पहुँचा है, इस विचारने मेरे हृदयको दुःखसे भर दिया। ऐसी फुलकारीमें में जो शोभा, पवित्रता और पैसेकी बचत देखता हूँ वह सब मुझे विलायतकी बनी साड़ियोंमें दिखाई नहीं देती। कातनेमें हिन्दुस्तानके घरोंकी बरकत है। उस धन्धेके चले जानेसे बरकत खत्म हो गई है।

गुजरातमें, यद्यपि कमिश्नरने मार्शल लॉ लगाये जानेकी माँग नहीं की थी, लेकिन फिर भी जब वह लगाया गया तो उन्होंने तार द्वारा पुछवाया कि कहीं यह बम्बई प्रदेशके गुजरातके लिए तो नहीं है। इतना निर्दोष था पंजाबका यह गुजरात। वहाँ क्या हुआ, यह तो में लिखना नहीं चाहता। लेकिन हंटर समितिके सम्मुख उपर्युक्त बात आ चुकी है, इसीसे में यहाँ उसका जिक्र कर रहा हूँ।

सरगोधा

गुजरात एक रात रहनेके बाद हम सरगोधा गये। सरगोधा एक नया बसा हुआ गाँव है। नहरोंके समीप ऐसे कितने ही गाँव बसे हुए हैं। यह गाँव शाहपुर जिलेमें है। वहाँ जानेका उद्देश्य रंगरूटोंकी भरतीके समय लोगोंको जो तकलीफ सहनी पड़ी, उसकी जाँच करना था। सरगोधामें हम रातको पहुँचे। लेकिन रातके दस बजे भी लोगोंका उत्साह कम नहीं हुआ था। [निकटस्थ] गाँवोंसे हजारों व्यक्ति आये थे और सारे बाजारमें असंख्य बत्तियाँ दिखाई देती थीं।

शाहपुर जिलेके लोग दूसरे जिलोंके लोगोंसे भिन्न प्रकारके दिखाई दिये। वे शरीरसे कद्दावर होते हुए भी अल्पबुद्धि, भोले और अज्ञानी हैं। सिपाहीसे बहुत डरते हैं और अपनी रक्षा करनेमें बिलकुल असमर्थ हैं। ज्यादातर ये लोग मुसलमान हैं लेकिन लगता है भुखमरीके कारण कुम्हला गये हैं। नहरोंकी खुदाईसे उनमें भुखमरी तो बहुत कम हो गई है लेकिन लोगोंको सार्वजनिक जीवनकी तनिक भी शिक्षा न मिलनेके कारण वे असहाय ही रह गये हैं।

मलकवाल

सरगोधासे हम मलकवाल गये। मलकवाल गुजरात जिलेका एक शहर है; बड़ा जंकशन स्टेशन होनेके कारण यह प्रसिद्ध हो गया है। वहाँ भी मार्शल लॉ लागू किया

१. मूलमें यहाँ 'फुलवारी' है, सही शब्द 'फुलकारी' ही है।

गया था। मलकवालके लोगोंको इतना अधिक दबा दिया गया है कि नेताओंमें हमें निमन्त्रित करनेकी हिम्मत न थी। लेकिन जनता और नेताओंके बीच इस समय पूरा मेल नहीं है। इसलिए जब लोगोंको खबर मिली तब वे इतनी ज्यादा संख्यामें आये कि सारा स्टेशन ही भर गया और आसपासके गाँवोंसे इतने लोग आये कि शान्ति रखना मुश्किल हो गया। लेकिन नेता लोग तो डरके मारे दूर ही रहे। मलकवालमें रातको रहना था। सबेरे आसपासके गाँवोंके स्त्री-पुरुषोंने बाजे बजाते हुए आकर हम सबको जगा दिया और लोगोंकी भीड़ इतनी ज्यादा हो गई कि शान्तिसे बैठकर बातचीत करना अथवा [घटनाओंकी] जानकारी लेना असम्भव हो गया। अन्तमें मैं लोगोंको निकटके मैदानमें ले गया और वहाँ सभा की; तभी कुछ शान्ति मिल सकी। इस तरहकी सब सभाओंमें यद्यपि हजारों व्यक्ति होते हैं तथापि अध्यक्ष और भाषण करनेवाला व्यक्ति सिर्फ मैं ही होता हूँ, अथवा ऐसा कहूँ कि कोई भी अध्यक्ष नहीं होता। दिन प्रतिदिन इन सभाओंमें स्त्रियोंकी उपस्थितिमें वृद्धि होती दिखाई देती है। मलकवालसे ११ बजे हम लालामूसा के लिए रवाना हुए।

मार्गके दृश्य

यह मुख्य लाइनपर जंकशन स्टेशन है और मलकवालसे ढाई घंटेका रास्ता है। बीचमें चार-पाँच स्टेशन आते हैं। इन स्टेशनोंके दृश्योंका वर्णन करना असम्भव है। लगभग प्रत्येक स्टेशनपर ट्रेन कुछ ही मिनटोंके लिए रुकती थी फिर भी सैकड़ों व्यक्ति —पुरुष और स्त्रियाँ— इकट्ठे हो जाते थे। बीचमें बाहुद्दीन नामक एक स्टेशन है। यह गाँव अपेक्षाकृत बड़ा कहा जा सकता है। स्टेशनके आसपास जहाँतक मेरी नजर जाती थी वहाँतक स्त्री-पुरुष नजर आते थे और स्त्रियाँ मुझसे मिलनेके लिए पुरुषोंके संग होड़ कर रही थीं। प्रत्येक स्थानपर स्त्रियोंके अपने हाथके कते सूतका प्रसाद मुझे मिलता था। लेकिन धींगा नामका एक स्टेशन जहाँ ट्रेन पाँच-सात मिनट रुकी होगी, वहाँका दृश्य तो मुझे अद्भुत लगा। स्त्रियाँ पुरुषोंके पीछे खड़ी थीं; वहाँसे वे एकके बाद एक सूतके गोले अथवा गुच्छियाँ फेंकती जाती थीं और ट्रेनमें बैठे हुए हम लोग तथा बीचमें खड़े व्यक्ति उनको लपक लेते थे। स्त्रियोंकी भावनाओंको मैं समझ सका था और मेरा हृदय हर्षसे भर उठा था। इतनी सारी स्त्रियाँ मेरे प्रति अद्भुत प्रेम किस कारण व्यक्त करती हैं इस प्रश्नका उत्तर मुझे धींगा स्टेशनके इस चमत्कारसे मिला। मेरी दृढ़ मान्यता है कि पंजाबकी स्त्रियाँ मेरे सन्देशको समझ गई हैं। उन्हें इस बातका आभास हो गया है कि स्वदेशीमें सिर्फ हिन्दुस्तानका पैसा बचानेकी ही बात नहीं है, उसमें स्त्रियोंके शीलकी रक्षा है, ईश्वर-भक्ति है और उसमें हिन्दुस्तानकी मुक्ति है। और फिर स्त्रियाँ सत्याग्रहके निर्दोष सन्देशको अनायास ही अपनी प्रेरणा-शक्तिसे बिना समझाये ही समझ गई हैं और इससे उन्हें भारी शान्ति और आश्वासन मिला है। वे यह मानती हैं कि यदि मेरे सन्देशपर हिन्दुस्तान अमल करे तो हिन्दुस्तानमें और हिन्दुस्तानकी मार्फत जगत्‌में शान्तिका प्रसार हो तथा सत्ययुगका प्रवेश हो। यह सब इस युगमें हो अथवा न हो, तो भी ये दोनों वस्तुएँ श्रद्धापूर्वक प्रयत्न करने योग्य हैं, यह बात स्त्रियाँ समझ गई हैं और इसी कारण वे निर्भयतापूर्वक

उत्तरोत्तर अधिक संख्यामें मेरे पास आती जाती हैं। अपनी इस यात्राके दौरान मुझे यह विश्वास हो गया है और यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि स्त्रियाँ यह सब देखकर हर्षोन्मत हो गयी हैं कि हम अपने विरोधीके साथ प्रेमपूर्वक, बिना किसी द्वेषके, लड़ सकते हैं, अधिकारियोंको निर्भयतापूर्वक उनके दोष बता सकते हैं और अधिकारियोंको उन्हें सुनना पड़ेगा।

मैं चाहता हूँ कि इससे पाठकगण यह न समझें कि मैं आत्मश्लाघा कर रहा हूँ। मैंने हंटर समितिको अपनी अपूर्णताके सम्बन्धमें जो उत्तर दिया है[1] वह मात्र मेरी विनयका सूचक नहीं था। यह उत्तर अक्षरशः सही था। मैंने कहा था कि मैं सम्पूर्ण सत्याग्रही होनेका दावा नहीं कर सकता। सम्पूर्ण सत्याग्रही होता तो इस वाक्यको लिखनेकी भी मुझे जरूरत न रहती और इस बातका भय भी नहीं रहता कि कहीं मुझपर आत्मश्लाघाका आरोप न लगाया जाये। मैंने कभी किसी समय भी अपनी प्रशंसा नहीं की है, यह दावा करनेका साहस भी मैं नहीं कर सकता। लेकिन पाठकोंसे उनके मनमें सत्यके प्रति, स्वदेशीके प्रति पूर्ण दिलचस्पी पैदा करनेकी खातिर मैं ज्ञानपूर्वक तथा सावधानी बरतते हुए इतना कहनेकी अनुमति लेता हूँ कि पंजाबकी स्त्रियोंका यह अलौकिक भाव मेरे व्यक्ति-रूपके प्रति नहीं है, वरन् उन्हें मुझमें जिस सत्यके दर्शन हुए हैं तथा मेरे द्वारा उन्हें स्वदेशीके जिस सीधे-सादे स्वरूपकी प्रतीति हुई है उसीसे वे अब मेरे प्रति आकर्षित हो गई हैं। पुरुषोंका प्रेम भी कुछ कम नहीं है, लेकिन इस प्रेमकी निर्मलताके सम्बन्धमें मुझे सन्देह है। उनमें से कुछ तो मेरे प्रति इसलिए प्रेम-भाव रखते हैं कि मैं सरकारके विरुद्ध लड़नेवाला हूँ, कितने ही लोग यह मानते हैं कि यद्यपि मैं कुछ कहता नहीं हूँ तथापि द्वेष-भावसे खूब भरा हुआ हूँ, अलबत्ता इस भावको कार्यकुशल होनेके कारण ही छुपाये रखता हूँ। कुछेक लोगोंकी यह मान्यता है कि मुझमें संघर्ष करनेकी शक्ति तो काफी है, लेकिन बुद्धिका अभाव होनेके कारण मैं मूर्ख हूँ; तो भी मेरी शक्तिका उपयोग करना और उसकी हदतक मेरे प्रति पर्याप्त प्रेम-भाव दिखाना अनुचित नहीं है। बाकीके लोग स्वयं सत्य और स्वदेशीके प्रेमी होनेके कारण तथा यह मानकर कि इन दोनों विषयोंके सम्बन्धमें मैं उनकी अपेक्षा अधिक अनुभव रखता हूँ, मेरे प्रति निर्मल प्रेम रखते हैं। इस तरह अपने इस सन्देहके कारण कि पुरुषोंका भाव मिश्रित प्रकारका है जब अनेक व्यक्ति मेरे चारों ओर घिर जाते हैं तब मैं उलझनमें पड़ जाता हूँ, घबरा जाता हूँ; और मुझे यह भय बना रहता है कि कहीं वे और मैं दोनों मिलकर कोई अनर्थ न कर बैठें। लेकिन स्त्रियोंके बारेमें तो मेरे मनमें, स्वप्नमें भी यह भाव उत्पन्न नहीं होता। वे मुझसे एक ही भावनासे मिलना चाहती हैं, इसलिए हजारोंकी संख्यामें उनकी उपस्थिति मुझे शान्ति प्रदान करती है, सत्याग्रह और स्वदेशीके प्रति मेरी श्रद्धामें वृद्धि कर, मेरी दृढ़ताको और भी दृढ़ करते हुए, मुझे और भी अधिक उत्साहित करती हैं तथा अपने कार्यमें मुझे और भी अधिक प्रवृत्त करती हैं। यदि मैं पुरुषोंमें भी स्त्रियोंके जैसा ही निर्मल भाव स्फुरित कर सकूँ तो एक वर्षके भीतर ही हिन्दुस्तान कितना

१. ९ जनवरी, १९२०को अहमदाबादमें हंटर-समितिके सम्मुख गवाही देते समय।

उन्नत हो जायेगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती और तब स्वराज्य तो हस्तामलकवत् हो जायेगा।

श्रीमती सरलादेवीके एक मुसलमान नौकरने उनसे कुछ बात कही, और उन्होंने मुझसे कही। उसको यहाँ प्रस्तुत करते हुए तथा पाठकोंसे उसपर मनन करनेका अनुरोध करते हुए मैं इस चिट्ठीको समाप्त करूँगा। सरलादेवीको अनेक स्त्री-पुरुष माताजी कहकर सम्बोधित करते हैं। उस नौकरने कहा: "माताजी, महात्माजी सब स्त्रियोंके सामने जो चरखा कातनेकी बात करते हैं सो बिना सोचे-समझे नहीं करते। वे तो ईश्वरभक्त हैं और यह मानते हैं कि उसके द्वारा हिन्दुस्तानकी स्त्रियाँ अपने धर्मकी रक्षा कर सकती हैं, यह सत्य है इसीसे वे ऐसा करते हैं।" श्रीमती सरलादेवीने यह कहते हुए कि यह नौकर भक्त और भला व्यक्ति है स्वदेशी सम्बन्धी उसके विचारोंको मेरे सम्मुख रखा। अज्ञानी कहा जानेवाला पुरुष भी इतना समझदार हो सकता है, यह देख सरलादेवी चकित हो गईं। मुझे खुशी तो हुई लेकिन आश्चर्य नहीं हुआ। अज्ञानी कहलानेवाले पुरुषोंके पास मैंने ज्ञानका जितना भण्डार देखा है और उनसे मैं जितना ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ उतना मुझे किसी औरसे नहीं मिला है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-२-१९२०

३०. पत्र: एल० फ्रेंचको

२, मुजंग रोड
लाहौर
१५ फरवरी, १९२०

प्रिय श्री फ्रेंच,

मैं अभी-अभी सरगोधासे लौटा हूँ। वहाँ मैंने अनेक व्यक्तियोंके मुखसे उस अत्याचारकी कहानी सुनी जो उनपर भरतीके दिनोंमें तहसीलदार नादिर हुसैन शाह, जिसकी १९१८में नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी गई,[1] तथा अन्य अधिकारियोंने किया था। मैं समझता हूँ कि गत युद्धके दौरान भरतीके लिए कुछ असामान्य प्रयत्न करना जरूरी था, और किसी-न-किसी तरहका नैतिक दबाव भी अवश्यम्भावी था। मेरा यह भी खयाल है कि छोटे अधिकारियोंमें कुछ हदतक उत्साहातिरेक होना ही था, और...[2]

परन्तु जो कहानियाँ मुझे कई गवाहों — स्त्रियों तथा पुरुषों दोनों — ने बार-बार सुनाई हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती और मुझे पूरा भरोसा है कि लोगोंपर जो जुल्म किये गये, उन्हें श्रीमान्[3] माफ करना नहीं चाहेंगे।

१. देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५-३-१९२०।
२. इसके बाद अंग्रेजीमें जो शब्द आये हैं, उनका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता।
३. पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर।

मेरे सामने जो वक्तव्य दिये गये हैं, उनसे प्रकट होता है कि ग्रामीणोंको बड़ी संख्यामें एक साथ बुलाया गया और अमानवीय यातनाएँ देने और तरह-तरहसे बेइज्जत करनेकी धमकी देकर उनसे कहा गया कि अपने बेटोंको, यदि वे सेनामें भरती होनेकी उम्रके हैं तो, भरती कराओ। कहा जाता है कि इसके लिए आदमियोंको नंगा किया गया, उनके चूतड़ोंपर कोड़े लगाये गये और कोड़े लगाते समय उन्हें काँटोंपर झुकाये रखा गया। और फिर औरतोंको इस तरहसे अपमानित किये गये मर्दोंको घसीट ले जानेको मजबूर किया गया। औरतोंको भी इस कारण नग्न किया गया और उनके साथ अभद्र व्यवहार किया गया कि उनके पति और लड़के अपनेको छिपाकर रख रहे थे। यह भी बताया गया है कि पुरुषोंपर झूठे आरोप लगाकर और अन्य अनेक प्रकारसे उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई की गई। मृत तहसीलदारकी हत्याके सिलसिलेमें कई गाँवोंमें दाण्डिक पुलिस तैनात कर दी गई है, और पुलिसवाले गरीब ग्रामीणोंसे गैर-कानूनी ढंगसे पैसे वसूल करते हैं।

मेरी नम्र रायमें यह एक ऐसा मामला है जिसकी बारीकीसे जाँच-पड़तालकी जरूरत है और जिन अधिकारियों द्वारा ग्रामीणोंका सताया जाना सिद्ध हो जाये, उन्हें ऐसा करनेके अवसरसे वंचित किया जाये। मेरा यह खयाल भी है कि दाण्डिक पुलिस तुरन्त हटा ली जानी चाहिए और गाँववालोंसे जबरदस्ती रोज-रोज जो रकम वसूल की जाती है, उससे उन्हें मुक्ति मिलनी चाहिए।

हमें जो बयान दिये गये हैं, वे इतने गम्भीर हैं कि मैं उन्हें प्रकाशित करनेसे पहले कमसे-कम श्रीमान्‌के ध्यानमें ले आना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। यदि श्रीमान् उन्हें देखना चाहें तो मैं इन बयानोंको उनके पास सहर्ष भेज दूँगा। इस मामलेपर मैं श्रीमान्‌से मिलनेको, तथा सच्ची स्थितिको प्रकाशमें लानेके लिए जो भी मदद कर सकता हूँ वह देनेको, भी तैयार हूँ।

मैं आज कलकत्ता मेलसे बनारसके लिए रवाना हो रहा हूँ। मेरा पता होगा: मार्फत पंडित मदनमोहन मालवीय। मैं वहाँ २० तारीख तक रहूँगा; उसके बादका पता होगा — साबरमती, बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे। मैं ६ मार्चके बाद किसी दिन श्रीमान्‌से मिल सकता हूँ। आवश्यक कामके कारण मुझे कमसे-कम इस तारीख-तक पंजाबके बाहर रहना होगा।

यदि आप मुझे यह लिखनेकी कृपा करें कि श्रीमान्‌की इस महत्त्वपूर्ण मामलेमें क्या इच्छा है, तो मैं उसे एक अनुग्रह मानूंगा।

हृदयसे आपका,

एल० फ्रेंच
पंजाब सरकार कैम्प

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१२५) से।

३१. पत्र : एस्थर फैरिंगको

बनारस जाते हुए ट्रेनमें
रविवार [१५ फरवरी, १९२०][1]

रानी बिटिया,

मैं बनारस जा रहा हूँ[2] और हम शीघ्र ही मिलेंगे। कितना अच्छा होता कि तुम मेरे साथ होतीं और देवदासकी तरह मेरी सेवा करती होतीं। मैं जानता हूँ कि यह काम तुम्हें बड़ा सुखकर लगता और मुझे भी अच्छा लगता। वैसे तो पिताके स्थानकी पूर्ति कोई नहीं कर सकता परन्तु इस देशमें, जिसे तुमने अपना बना लिया है, मैं तुम्हारे लिए अपनी सामर्थ्य-भर इस स्थानकी पूर्ति करना चाहूँगा। स्वास्थ्य-लाभके लिए तुम्हें डेनमार्क जाना पड़ रहा है, इस बातको सोचकर मैं लज्जित हो रहा हूँ। मुझे इससे अधिक खुशी किसी और बातसे न होती कि मैं तुम्हें पूर्ण स्वस्थ और एक अधिक पूर्ण ईसाई मतानुगामिनी तथा श्रेष्ठतर पुत्रीके रूपमें डेनमार्क भेजता। तुममें इसी जीवनमें सम्पूर्ण रूपसे विकसित होनेकी समस्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। भगवान् तुम्हारी सभी प्रिय इच्छाएँ पूरी करे और तुम्हें मानव-समाजकी महान् सेवाका एक निमित्त बनाये। भारतके लिए तुम्हारा प्रेम मानव-समाजके प्रति तुम्हारे प्रेमकी अभिव्यक्तिके रूपमें ही स्वीकार्य होगा। 'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर"[3] — यह एक उच्चकोटिकी वन्दना है, अपने ढंगकी सर्व-श्रेष्ठ।

ईश्वर करे यह तुम्हारे लिए तथा मेरे लिए भी सच्ची उतरे।

समस्त स्नेह सहित,

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

'ए०' को तुम अपने दिलकी सारी बात बता देना।[4]

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. एस्थर फैरिंग भारतसे डेनमार्कके लिए १९२० में रवाना हुई और उस वर्ष १५ फरवरीको गांधीजी लाहौरसे बनारसके लिए रवाना हुए थे।

२. एक सभाके लिए, जहाँ पंजाब कांग्रेस उप-समितिकी रिपोर्टके मसविदेको अन्तिम रूप दिया जानेवाला था।

३. नन ऑफ सेल्फ एंड ऑल ऑफ दी।

४. नेशनल आर्काइव्समें जो फोटो-नकल उपलब्ध है उसमें यह वाक्य नहीं मिलता।

३२. उत्कलकी पुकार

'उड़िया' की[1] अपेक्षा 'उत्कल' कहीं ज्यादा अच्छा शब्द है। उत्कल यूनियन कान्फरेंसके भूतपूर्व मन्त्री तथा उत्कल पीपुल्स एसोसिएशन, कटकके[2] अध्यक्ष माननीय श्री ब्रजसुन्दर दासने एक छपा हुआ परिपत्र प्रचारित किया है। वे अपने इस पत्रमें कहते हैं :

> उड़िया लोग चार प्रशासनोंके अधीन कर दिये गये हैं — बिहार, मद्रास, बंगाल और मध्यप्रान्त। वे हर जगह अल्पसंख्यक हैं। इस हालतमें एक स्वतन्त्र इकाईके रूपमें उनका विकास असम्भव हो गया है। वे गत पन्द्रह वर्षोंसे प्रशासनिक एकीकरणके लिए संघर्ष कर रहे हैं। चूंकि वे विनयशील हैं और अपनी बात मनवानेके लिए आन्दोलन वगैरह नहीं करते, इसलिए उनके बार-बार प्रार्थना करनेके बावजूद अधिकारियोंने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। भारतकी प्रगतिमें उसके किसी भी हिस्सेकी प्रगतिकी अवगणना नहीं की जा सकती। नया भारत राष्ट्र एक प्राचीन जातिकी राखपर खड़ा नहीं किया जा सकता।

हमें माननीय बाबू ब्रजसुन्दर दास द्वारा प्रयुक्त भाषापर कोई विवाद छेड़नेकी जरूरत नहीं है। यह शिकायत उचित है और भाषाके आधारपर पुनर्गठनका एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़ा करती है। यह शानदार जाति यदि बिना किसी उचित कारणके चार भागोंमें बाँट दी जाती है तो वह कभी स्वाभाविक प्रगति नहीं कर सकती, और प्रगति करनेका हक तो उसे भी है ही। हमें भरोसा है कि जनता उड़िया आन्दोलनको सहानुभूतिपूर्ण भावसे देखेगी और समझेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८–२–१९२०

३३. जलियाँवाला बाग

इस बागको खरीदनेके सम्बन्धमें एक दुर्भाग्यपूर्ण बाधा आ गई थी।[3] लेकिन माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय, संन्यासी स्वामी श्री श्रद्धानन्द और स्थानीय नेताओंके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप अब यह बाग राष्ट्रकी सम्पत्ति बन गया है। हाँ, शर्त यह है कि इसका क्रय-मूल्य इस माहकी ६ तारीखसे लेकर तीन महीनेके भीतर चुका दिया जाये। यह मूल्य है ५,३६,००० रुपये और यह राशि इस निर्धारित समयमें ही एकत्र कर लेनी है।

१. लगता है यहाँ मूल अंग्रेजीमें गांधीजी उड़ीसाके स्थानपर भूलसे उड़िया लिख गये थे।

२. उड़ीसाकी पुरानी राजधानी।

३. देखिए "पंजाबकी चिट्ठी-११", ११–२–१९२० के पूर्व।

अतएव इस बागको राष्ट्रकी ओरसे खरीदनेके औचित्यपर विचार करना आवश्यक है, विशेषत: इसलिए कि कुछ शिक्षित समझदार लोगोंने भी इसपर आपत्ति की है। और हमारे सामने कानपुर स्मारकका[1] जो उदाहरण है, उसे देखते हुए इस रुखपर कोई आश्चर्य भी नहीं होना चाहिए। लेकिन आपत्ति उठानेवाले लोगोंके प्रति पूर्ण सम्मान-भावके साथ मुझे कहना पड़ता है कि इस बागको न खरीदना राष्ट्रके लिए लज्जाकी बात होती। क्या हम उन पाँच सौ या इससे भी अधिक लोगोंको कभी भूल सकते हैं जो नैतिक और कानूनी, दोनों दृष्टियोंसे निरपराध होनेपर भी मार डाले गये थे? अगर उन्होंने जानबूझकर स्वेच्छासे मृत्यु स्वीकार की होती, जिस समय उनपर पचास राइफलोंसे गोलियोंकी बौछार की जा रही थी[2], उस समय अगर उन्होंने अपनी जगह डटे रहकर उनको झेला होता तो इतिहासमें उनका नाम सन्तों, शूरवीरों और देशभक्तोंके रूपमें लिया जाता। लेकिन जिस रूपमें यह दुर्घटना घटी उस रूपमें भी यह सर्वाधिक राष्ट्रीय महत्त्वकी बात है। वेदना और कष्टोंसे ही राष्ट्र प्रसूत हुआ करते हैं। जो लोग हमारी राजनीतिक स्वतंत्रताकी लड़ाईमें बिना किसी अपराधके या दूसरोंके अपराधोंके चलते अपने प्राण गँवा बैठें या अन्य कष्ट झेलें, यदि हम उनकी स्मृतिको सम्मानसे सँजोकर नहीं रखते तो हमें एक राष्ट्र माने जानेका कोई अधिकार नहीं है। जब हमारे असहाय देश-भाइयोंका निर्ममतापूर्वक कत्लेआम किया जा रहा था उस समय हम उनकी रक्षा नहीं कर पाये। अगर हम चाहें तो इस अन्यायका बदला लेनेसे इनकार कर सकते हैं। और अगर हम ऐसा करते हैं तो उससे राष्ट्रको कोई क्षति नहीं होगी। लेकिन क्या हम मृत व्यक्तियोंकी स्मृतिको स्थायित्व प्रदान करने और वे अपने-अपने परिवारोंमें अपने पीछे जिन लोगोंको छोड़ गये हैं उन्हें यह दिखा देनेसे भी इनकार करेंगे — या कर सकते हैं — कि उनके दुःखसे हम भी दुःखी हैं। ऐसा करनेका तरीका होगा एक राष्ट्रीय स्मारक-स्तम्भ खड़ा करके दुनियाको यह बता देना कि इन लोगोंकी मृत्युके रूपमें हममें से प्रत्येकने अपने प्यारे कुटुम्बियोंको ही खोया है। यदि राष्ट्रीय चेतनामें बन्धुत्वकी इतनी भावना भी न हो तो मेरे लिए वह कोई अर्थ नहीं रखती। मेरे विचारसे भावी संततियोंको यह बता देना हमारा कर्त्तव्य है कि सच्ची स्वतन्त्रताकी ओर अग्रसर होते हुए हमें जलियाँवाला बागके कत्लेआम-जैसे अन्यायपूर्ण कार्योंकी पुनरावृत्तिके लिए तैयार रहना चाहिए। हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे उसकी पुनरावृत्ति न हो, हमें ऐसे किसी दुष्काण्डको आमंत्रित भी नहीं करना चाहिए, लेकिन अगर वह आ जाये तो हमें उसका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। मैं कभी नहीं चाहूँगा कि हम राष्ट्रीय जीवनके इस संघर्षमें जूझनेसे हिचकें। अमृतसर कांग्रेसकी[3] सबसे बड़ी सीख यह थी कि पंजाबके कष्टोंसे राष्ट्र हतोत्साह नहीं हुआ है, बल्कि उसने उन कष्टोंको एक स्वाभाविक

१. सन् १८५७ के विद्रोहके सम्बन्धमें।

२. जलियाँवाला बागमें पचास सिपाहियोंने जनरल डायरके नेतृत्वमें गोलियाँ चलाई थीं; देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५-३-१९२०।

३. यह अधिवेशन सन् १९१९ के दिसम्बर-महीनेमें हुआ था।

चीजके रूपमें ग्रहण किया। हममें से कुछ लोगोंने बड़ी मूर्खतापूर्ण भूलें कीं और उनका परिणाम निर्दोष लोगोंको भोगना पड़ा। भविष्यमें हमें ऐसी भूलोंसे बचनेकी कोशिश करनी चाहिए, लेकिन अपने सारे प्रयत्नोंके बावजूद, सम्भव है, हम सभी लोगोंको सद्बुद्धिपूर्ण रास्तेपर न ला सकें। अतः हमें ऐसे अवसरके लिए तैयार रहना चाहिए जब निर्दोष लोगोंको फिर इसी तरहके कष्ट सहने पड़ सकते हैं, और इसके लिए तैयार रहनेका तरीका होगा अब देशको यह बता देना कि उन निरपराध मारे गये लोगोंको तथा उनके परिजनोंको कभी भुलाया नहीं जायेगा, बल्कि उन निर्दोष मृत लोगोंकी स्मृतिको पवित्र थातीके रूपमें सँजोकर रखा जायेगा और वे अपने परिवारोंमें अपने पीछे जिन लोगोंको छोड़ गये हैं, उन्हें आवश्यकता पड़नेपर राष्ट्रसे यह अपेक्षा करनेका अधिकार होगा कि वह उनकी जीविकाका प्रबन्ध करे। यह इस स्मारकका प्रमुख और प्रथम अभिप्राय है। और फिर क्या उस अवसरपर मुसलमानोंका रक्त हिन्दुओंके रक्तके साथ मिलकर नहीं बहा? इसी तरह क्या सिखोंका खून सनातनियों और आर्यसमाजियोंके खूनके साथ मिलकर नहीं बहा? इस स्मारकको हिन्दु-मुस्लिम ऐक्यकी उपलब्धिके सतत और सच्चे प्रयासका एक राष्ट्रीय प्रतीक होना चाहिए।

लेकिन अभी आपत्ति करनेवालोंकी आपत्तिका उत्तर देना तो शेष ही है। क्या यह स्मारक कटुता और दुर्भावनाको भी स्थायी नहीं बना देगा? यह बात तो न्यासियों-पर निर्भर करेगी। और अगर मैं उन्हें जानता हूँ तो मैं कहूँगा उनका ऐसा कोई इरादा नहीं है। मैं यह भी जानता हूँ कि वहाँ उपस्थित विशाल जनसमुदायका भी इरादा यह नहीं था। मैं यह नहीं कहना चाहता कि उन लोगोंके मनमें कोई कटुता थी ही नहीं। कटुता थी और वह कोई दबे-छिपे रूपमें भी नहीं थी। लेकिन स्मारक बनानेके विचारके पीछे कोई कटुता थी ही नहीं। जिसने यह पागलपनका काम किया उसे और उसके पागलपनको लोग भूलना चाहते हैं और इसे भूलनेमें उन्हें मदद देनी चाहिए। यदि हम भी जनरल डायर जैसे ही गैरजिम्मेदार हों और हमें वैसा अवसर मिले तो सम्भव है हम भी वही करें जो जनरल डायरने किया। गलती करना मानव-स्वभावका अंग है, लेकिन अगर हम सबसे गलती होनेकी सम्भावना है और यदि हम अपने दुष्कृत्योंके लिए दण्डित किये जाने और बार-बार उनका स्मरण दिलाये जानेके बजाय क्षमा कर दिया जाना अधिक पसन्द करेंगे तो गलतियोंको क्षमा कर देना भी मानव-स्वभावका उतना ही अभिन्न अंग है। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि हम जनरल डायरकी बरखास्तगी-की माँग न करें। किसी पागल आदमीको ऐसे स्थानपर नहीं रखा जा सकता जहाँसे वह अपने पड़ोसियोंको हानि पहुँचा सके। लेकिन जैसे किसी पागल आदमीके प्रति हमारे मनमें दुर्भावना नहीं होती वैसे ही जनरल डायरके प्रति भी ऐसी कोई भावना नहीं रखनी चाहिए। अतः मैं हर तरहकी कटुता और दुर्भावनाको स्मारकसे अलग रखकर इसे एक पुनीत स्मृति समझूँगा और इस बागको एक ऐसा तीर्थस्थान मानूँगा जिसके दर्शनार्थ, जाति, वर्ग, या धर्मका भेद माने बिना, सबको आना चाहिए। मैं अंग्रेजोंसे अनुरोध करूँगा कि वे हमारी भावनाको समझें। मैं उन्हें आमन्त्रित करता हूँ कि [दिसम्बर १९१९की] शाही घोषणामें निहित भावनाका अनुसरण करते हुए वे भी

इस स्मारकके लिए चन्दा दें और इस प्रकार हमें अपने देशमें जागृति लानेमें, जिस स्वतन्त्रताका उपभोग वे स्वयं कर रहे हैं उसे उसी ब्रिटिश संविधानके अन्तर्गत प्राप्त करनेमें और जिस हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके बिना भारत सच्ची प्रगति नहीं कर सकता उस ऐक्यको चरितार्थ करनेका जो प्रयास हम कर रहे हैं, उस प्रयासमें वे भी हाथ बँटायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-२-१९२०

३४. पत्र: मोतीलाल नेहरूको[1]

बनारस
२० फरवरी, १९२०

सेवामें
माननीय पंडित मोतीलाल नेहरू
पदेन अध्यक्ष, उप-समिति
आल इंडिया कांग्रेस कमेटी
लाहौर

महोदय,

१४ नवम्बर, १९१९को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी पंजाब उप-समितिने आपको तथा माननीय फजलुल हक[2], श्री चित्तरंजन दास, श्री अब्बास तैयबजी[3] और मो० क० गांधीको आयुक्त और श्री के० संतानम्को सचिव नियुक्त किया था, जिनका काम गत अप्रैलमें हुई पंजाबकी घटनाओंसे सम्बन्धित बयानोंकी, जो पहले ही उप-समिति द्वारा या उसकी ओरसे इकट्ठे किये जा चुके हैं, जाँच करना, उनकी बारीकीसे छानबीन करना, तथ्योंका मिलान करना और विश्लेषण करना, तथा जहाँ आवश्यक समझा जाये वहाँ और भी तथ्य जुटाकर इन बयानोंकी पूर्ति करना तथा उसके बाद उनसे सम्बन्धित अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करना था।

राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष मनोनीत होनेपर आपने आयुक्तके पदसे इस्तीफा दे देना जरूरी समझा। उप-समितिने उसे विधिवत् स्वीकार कर लिया था और चूंकि आपके

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त किये गये आयुक्तोंने रिपोर्टका जो मसविदा तैयार किया था उसके साथ गांधीजीने यह पत्र पंडित मोतीलाल नेहरूको भेजा था। गांधीजी द्वारा तैयार किया गया मूल मसविदा उपलब्ध नहीं है। इस हस्तलिखित रिपोर्टको गांधीजीने श्री एम० आर० जयकरकी सहायतासे अन्तिम रूप दिया था। देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५-३-१९२०।

२. राष्ट्रीय मुस्लिम नेता; द्वितीय विश्व-युद्धके समय बंगालके मुख्य मन्त्री।

३. १८५३-१९३६; गुजरातके राष्ट्रीय मुस्लिम नेता।

द्वारा इस्तीफा दिये जानेके समयतक बयान लेनेका काम लगभग पूरा हो चुका था, अतः आपके स्थानपर कोई अन्य आयुक्त नियुक्त नहीं किया गया।

माननीय फजलुल हकको उनके आनेके तुरन्त बाद किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके सम्बन्धमें वापस बुला लिया गया था। अतएव उनके स्थानपर बम्बईके वकील श्री एम० आर० जयकरको नियुक्त किया गया।

हमने अपना काम १७ नवम्बर, १९१९ को शुरू किया।

हमने १७००से ऊपर गवाहोंके बयानोंकी जाँच की और लगभग ६५० बयानोंको प्रकाशनार्थ छाँटा है, जिन्हें आप साथमें भेजी जा रही रिपोर्टके खण्डोंमें शामिल पायेंगे। जो बयान शामिल नहीं किये गये हैं, वे अधिकतर ऐसे बयान थे जो एक ही तरहकी बातें प्रमाणित करते थे।

हममें से किसी-न-किसीके द्वारा प्रत्येक स्वीकृत बयानकी जाँच कर ली गई है और उसे तभी स्वीकृत किया गया है जब हम लोग बयान देनेवालेकी प्रामाणिकतासे सन्तुष्ट हो गये। यह बात मनियाँवाला तथा आसपाससे प्राप्त कुछ उन बयानोंपर लागू नहीं होती, जिनमें से अधिकांश बयान हमारी प्रार्थनापर श्री लाभसिंह, एम० ए०, बैरिस्टर द्वारा एकत्र किये गये थे। ऐसे प्रत्येक बयानके नीचे उनका नाम दिया हुआ है। गवाहसे पर्याप्त प्रश्नोत्तर किये बिना कोई बयान स्वीकार नहीं किया गया।

आप देखेंगे कि कई गवाह प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और अपने जिले या गाँवके नेता हैं।

यह भी देखेंगे कि कुछ गवाहोंने अधिकारियोंके विरुद्ध गम्भीर आरोप लगाये हैं। प्रत्येक मामलेमें हमने गवाहोंको चेतावनीके रूपमें सूचित कर दिया था कि आप लोग जो आरोप लगा रहे हैं उनके परिणाम क्या निकल सकते हैं, और उनको तभी शामिल किया गया जब गवाह अपने बयानोंपर, यह जाननेके बावजूद दृढ़ रहे कि वे व्यक्तिगत जोखिम उठा रहे हैं और उनकी अतिशयोक्ति या उनके असत्य भाषणके कारण हमारे उद्देश्यको क्षति पहुँच सकती है, दृढ़ रहे। हमने उन बयानोंको अस्वीकार कर दिया है जिनका पुष्टीकरण नहीं किया जा सका, यद्यपि कुछ मामलोंमें हम बयान देनेवालोंकी बातपर विश्वास करनेको तैयार थे। उदाहरणार्थ, औरतोंके प्रति दुर्व्यवहारके सम्बन्धमें दिये गये बयान ऐसे ही थे।

यह कहनेकी जरूरत नहीं कि हमारी जाँच मार्शल लॉके क्षेत्र तथा उन जिलों[1]-तक ही सीमित थी, जिनमें उसकी घोषणा की गई थी। मुख्य-मुख्य स्थानोंपर हम लोग स्वयं गये। इस प्रकार लाहौर, अमृतसर, तरनतारन, कसूर, गुजराँवाला, वजीराबाद, निजामाबाद, अकालगढ़, रामनगर, हाफिजाबाद, साँगला हिल, शेखूपुरा, चूहड़खाना, लायलपुर, गुजरात, मलकवाल और सरगोधा हममें से कोई-न-कोई स्वयं गया था। अधिकांश स्थानोंमें विशाल आम सभाएँ की गईं और जनतासे अपने बयान देनेके लिए कहा गया। पहलेसे लिये गये बयानोंको इन सभाओंमें लोगोंके सामने रखा गया और उन्हें आमन्त्रित किया गया कि जो लोग इन बयानोंकी यथार्थताको चुनौती देना

१. अमृतसर, लाहौर, गुजराँवाला, गुजरात और लायलपुर ।

चाहते हों वे अपने बयान लिख भेजें। साथ ही उन्हें यह आश्वासन भी दिया गया कि उनके बयानोंको बिलकुल गुप्त रखा जायेगा। लेकिन हमें कोई भी खण्डन प्राप्त नहीं हुआ।

अपने निष्कर्षोंको मजबूत बनाने या संशोधित करनेके उद्देश्यसे हमने उपद्रव जाँच समितिके[1] समक्ष दिये गये सभी सबूतोंका निःसंकोच उपयोग किया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि साथमें दिये गये बयानोंमें से बहुतेरे लॉर्ड हंटरकी समितिकी बैठकें शुरू होनेसे पहले हमें प्राप्त हो चुके थे।

अधिकतर बयान देशी भाषाओंमें दिये गये। हमने उनका अत्यन्त शुद्ध अनुवाद उपलब्ध कर सकनेकी चेष्टा की है परन्तु हमारी रिपोर्टके साथ दिये गये बयानोंको मूल जैसा ही समझना चाहिए, क्योंकि हमने इन बयानोंके अनुवादोंके आधारपर गवाहों-से दुबारा पूछताछ करके तदनुसार उनमें आवश्यक सुधार या संशोधन कर लिये थे।

हमने मार्शल लॉ आयुक्तों या समरी अदालतों द्वारा किये गये फैसलोंके रेकर्डोंका, जहाँतक वे हमें मिल सके, अध्ययन भी किया है और हमने कई ऐसे मामलोंके, जो भरतीके दौरान भरतीके तरीकोंके सम्बन्धमें खड़े हुए थे, अदालती विवरण भी देखे।

अन्तमें हम यह बात प्रकट कर देना चाहते हैं कि जहाँ-जहाँ हम लोग गये, उन सब स्थानोंके प्रमुख व्यक्तियोंके और लाहौर तथा अन्य स्थानोंके उन अनेक कार्य-कर्त्ताओंके हम आभारी हैं जिन्होंने हमारी ऐसी मूल्यवान सहायता की जिसके बिना हम निर्धारित समयमें काम समाप्त न कर पाते।

आपके विश्वस्त,
मो० क० गांधी
सी० आर० दास
अब्बास एस० तैयबजी
एम० आर० जयकर

[अंग्रेजीसे]

रिपोर्ट ऑफ द कमिश्नर्स एपॉइंटेड बाइ द पंजाब सब-कमिटी ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस

३५. भाषण: खिलाफत और हिन्दू-मुस्लिम एकतापर

बनारस
२० फरवरी, १९२०

. . . टाउन हालके मैदानमें तीसरे पहर ३–३० बजे खिलाफतकी एक आम सभा हुई . . .। मौलाना शौकत अली[1] और अबुल कलाम आजादके अतिरिक्त सभामें आनेवाले विशिष्ट व्यक्तियोंमें श्री गांधी, पंडित मदनमोहन मालवीय, पंडित मोतीलाल नेहरू, लाला हरकिशनलाल और पंजाबके अन्य नेतागण थे . . .। हकीम मुहम्मद हुसैन खाँको सभापति चुना गया . . .।

भारतके प्रेमी और प्रेमभाजन श्री गांधी गगनभेदी हर्षध्वनिके बीच उठे। उन्होंने खिलाफतके प्रश्न तथा हिन्दू-मुस्लिम एकतापर अपने विचार प्रकट करते हुए इसपर जोर दिया कि ये दोनों जातियाँ अपने-अपने धर्मके आदेशोंका पालन करते हुए भी एक दूसरेके प्रति शुद्ध और सच्चा प्रेमभाव रख सकती हैं। उन्होंने श्री कैंडलरसे[2] हुई भेंटका उल्लेख भी किया, जिसमें श्री कैंडलरने उनसे पूछा था कि क्या हिन्दू लोग मुसलमानोंके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्थापित करनेको तैयार हैं। महात्माजीने कहा कि मैंने उत्तरमें उनसे कहा कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए यह कदापि जरूरी नहीं कि दोनों जातियोंके बीच परस्पर विवाह-सम्बन्ध और खानपान हो। मैंने उनसे पूछा:

जब जर्मन और अंग्रेज एक ही जातिके हैं और एक ही धर्मके अनुयायी हैं और उनका आपसमें विवाह आदिका सम्बन्ध भी था तब यदि एकताके लिए यही सब जरूरी है, तो उन्होंने एक-दूसरेसे युद्ध क्यों किया?

श्री गांधीने हिन्दुओंसे जोरदार शब्दोंमें अपील की कि वे खिलाफतके आन्दोलनमें, जिसका उद्देश्य बड़ा पवित्र है, मुसलमानोंकी मदद करें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २३–२–१९२०

१. एक प्रमुख राष्ट्रीय मुसलमान और राजनीतिक नेता, जिन्होंने अपने भाई मौलाना मुहम्मद अलीके साथ खिलाफत आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया था।

२. एडमंड कैंडलर, विख्यात अंग्रेजी पत्रकार; उन दिनों पंजाबके प्रचार-अधिकारी; उन्होंने गांधीजीको कुछ खुले पत्र लिखे थे, जिनमें उन्होंने खिलाफतके सवालपर गांधीजीके रुखपर शंकाएँ उठाई थीं।

३६. भाषण : विद्यार्थियोंकी सभामें[1]

२१ फरवरी, १९२०

श्री गांधी हिन्दीमें बोले[2] और उन्होंने अपने भाषणमें तुलसीदासका उल्लेख अनेक बार किया। उन्होंने विद्यार्थियोंको पूरी ईमानदारी बरतनेका उपदेश देते हुए कहा कि इसे केवल नीतिके रूपमें ही नहीं अपनाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि पंजाबमें मार्शल लॉके कारण विद्यार्थियोंने बड़ी मुसीबतें उठाईं, परन्तु वे भी सर्वथा निर्दोष नहीं कहे जा सकते। विद्यार्थियोंको राजनीतिका अध्ययन करना चाहिए परन्तु उसमें सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिए। विद्यार्थियोंका आदर्श संयम होना चाहिए न कि स्वेच्छाचारिता। उन्होंने भरतके जीवनसे संयमके दृष्टान्त प्रस्तुत किये और कहा कि यदि यहाँके विद्यार्थी संयमके प्राचीन आदर्शपर चलनेमें असफल रहे तो विश्वविद्यालयके अस्तित्वका औचित्य नहीं रहेगा और इसके निर्माताओंको प्रोत्साहन नहीं प्राप्त होगा। मैं गुजरात कालेज [अहमदाबाद] के लगभग प्रत्येक विद्यार्थीको जानता हूँ, और उनमें से कुछको अपने अध्यापकोंमें ही खामियाँ दिखाई देती हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि अध्यापकोंने भौतिकतावादी प्रणालीके अन्तर्गत शिक्षा ग्रहण की है, परन्तु विद्यार्थियोंको उचित है कि अपने गुरुओंके प्रति श्रद्धाभाव रखना सीखें, उनमें दोष न निकालें। उन्होंने पंडित मालवीयकी सेवाओंकी प्रशंसा करते हुए कहा कि उनका जीवन अध्यापकों और विद्यार्थियोंके लिए दृष्टान्त-रूप है।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २३-२-१९२०

१. हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारसमें छात्रोंकी यह सभा विश्वविद्यालयके उप-कुलपतिकी अध्यक्षतामें हुई थी।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

३७. पत्र : एस्थर फैरिंगको

आश्रम

रविवार [२२ फरवरी, १९२०][1]

रानी बिटिया,

आज सवेरे लौटनेपर मुझे तुम्हारे तीन स्नेह-पत्र मेरी प्रतीक्षा करते हुए मिले। तुम्हारे पत्रोंमें सरलता, आत्म-समर्पण तथा प्रभुमें विश्वासकी ध्वनि देखकर मुझे आनन्द हुआ। प्रभुमें विश्वास तो तुममें हमेशा ही रहा है। परन्तु इन पत्रोंमें वह विश्वास अधिक गहराईमें पहुँचा हुआ प्रकट हो रहा है। ईश्वर करे, तुम्हारी यह आस्था उत्तरोत्तर दृढ़तर होती जाये और अन्तमें तुम सब सन्देहोंसे मुक्त हो जाओ, और इस तरह प्रत्येक परिस्थितिमें तुम प्रफुल्लित रहने लगो। कारण, हम जैसे-जैसे जीवनयात्रामें आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे हमेशा ही ऐसी समस्याएँ उपस्थित होती रहती हैं, जिनमें निर्णय करना आवश्यक होता है, और वे सबसे कठिन तब हो जाती हैं जब शैतानकी आवाज ईश्वरीय आवाजसे मिलती-जुलती प्रतीत होती है। केवल अटल विश्वास, पूर्ण नम्रता और परम विनयशीलता ही हमें सही निर्णय करनेमें समर्थ बनाते हैं।

उम्मीद है कि मैं आश्रममें कमसे-कम एक सप्ताह रहूँगा। उसके पश्चात् पखवारे-भर एकान्त-स्थानमें पूरा विश्राम करनेकी आशा करता हूँ।

निश्चय ही आज रातको सोने जाते समय मुझे तुम्हारी बहुत याद आयेगी।

सस्नेह,

तुम्हारा,

बापू

[पुनश्च:]

तुम्हें यह जानकर दुःख होगा कि एस० के पिताने तुम्हारी घड़ी लौटा दी है। इसका महत्त्व वापस कर देनेमें नहीं, वरन् लौटानेके पीछे जो इरादा है, उसमें है। डेनमार्क जानेके लिए जब तुम इधर आओ तब घड़ी ले लेना।

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. मूल पाठसे स्पष्ट है कि यह पत्र २२ फरवरी, १९२० को, जिस दिन गांधीजी आश्रम पधारे थे, लिखा गया था।

३८. पत्र : नौरोजी खम्भाताको

आश्रम, साबरमती
मंगलवार [२३ फरवरी, १९२०][1]

भाई नौरोजी खम्भाता,

आपका पत्र मिला। जालको उसके नवजोत[2] संस्कारके अवसरपर हम दोनोंके आशीर्वाद।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री बहराम नौरोजी खम्भाता
इब्राहीम नौरोजी खम्भाता
नं०, ८, नैपियर रोड
कैम्प, पूना

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५८००) से।
सौजन्य : तहमिना खम्भाता

३९. हिन्दू-मुस्लिम एकता

श्री कैंडलरने कुछ समय पूर्व मेरे साथ अपनी एक काल्पनिक भेंटका वर्णन किया था और उसके दौरान यह प्रश्न उठाया था कि अगर मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें जो-कुछ कहता हूँ, सच्चे हृदयसे कहता हूँ तो क्या मैं किसी मुसलमानके साथ बैठकर खा-पी लूँगा और किसी मुसलमानको अपनी लड़की ब्याह दूँगा। एक दूसरे रूपमें कुछ मित्रोंने मुझसे फिर यह प्रश्न पूछा है। क्या हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए आपसमें खान-पान और विवाह-सम्बन्ध होना आवश्यक है? प्रश्नकर्त्ता कहते हैं कि यदि ये दोनों बातें आवश्यक हैं तो सच्ची एकता कभी नहीं आ सकती, क्योंकि करोड़ों सनातनी लोग सहभोजके लिए कभी भी तैयार नहीं होंगे और परस्पर विवाह-सम्बन्धके लिए तैयार होना तो और भी कठिन है।

मैं उन लोगोंमें से हूँ जो जाति-प्रथाको हानिकर नहीं मानते। मूलतः जाति-प्रथा एक अच्छी प्रथा थी और उससे राष्ट्रका बड़ा कल्याण हुआ। मेरे खयालसे यह विचार कि राष्ट्रीय विकासके लिए दोनों मजहबोंके लोगोंका साथ बैठकर खाना-पीना और परस्पर विवाह सम्बन्ध रखना आवश्यक है, एक वहम है जो हमने पाश्चात्य दुनियासे

लिया है। भोजन करना उतनी ही महत्त्वपूर्ण क्रिया है, जितनी महत्त्वपूर्ण जीवनकी सफाई-सम्बन्धी अन्य आवश्यकताएँ हैं। और यदि मानव-जातिने, अपने-आपको बहुत हानि पहुँचाकर, भोजनका सम्बन्ध धर्मसे न जोड़ दिया होता और उसे एक सुख-भोगकी वस्तु न बना दिया होता तो हम यह क्रिया भी वैसे ही एकान्तमें सम्पन्न करते जैसे जीवनकी अन्य आवश्यक क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं। सच तो यह है कि हिन्दुत्वकी उच्चतम संस्कृतिमें भोजनके प्रति यही दृष्टिकोण रखा गया है और अब भी ऐसे हजारों हिन्दू हैं जो किसीके सामने भोजन नहीं करते। मैं बहुतसे सुसंस्कृत पुरुषों और स्त्रियोंके नाम बता सकता हूँ जो भोजन बिलकुल एकान्तमें किया करते थे, किन्तु जिनके मनमें किसी भी व्यक्तिके प्रति दुर्भाव नहीं था और वे सबसे अत्यन्त मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते थे।

परस्पर विवाह-सम्बन्ध तो और भी कठिन प्रश्न है। यदि भाई और बहन एक-दूसरेसे विवाहका खयालतक किये बिना आपसमें अत्यन्त सौहार्दपूर्वक रह सकते हैं, तो मेरी लड़की प्रत्येक मुसलमानको अपना भाई समझे और प्रत्येक मुसलमान मेरी लड़कीको अपनी बहन समझे इसमें मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती। धर्म और विवाहके सम्बन्धमें मेरे विचार बड़े दृढ़ हैं। हम अपनी भोजन या विवाहकी लालसा-पर जितना अधिक अंकुश रखेंगे, धार्मिक दृष्टिसे हम उतने ही ऊपर उठेंगे। यदि मेरी लड़कीसे विवाह प्रस्ताव कर सकनेके इच्छुक किसी भी युवकके अधिकारका औचित्य मुझे स्वीकार करना पड़े अथवा यही मानना पड़े कि मेरे लिए हर किसीके साथ भोजन करना आवश्यक है तब तो मुझे संसारसे सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाकर रखनेकी कोई आशा ही न रह जायेगी। मेरा दावा है कि मेरा समस्त संसारसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बना हुआ है। मैंने कभी भी किसी मुसलमान या ईसाईसे झगड़ा नहीं किया है; किन्तु मैंने सालोंतक मुसलमानों या ईसाइयोंके घरोंमें फलोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाया है। यह निश्चित बात है कि मैं पकाया हुआ भोजन एक थालमें अपने बेटेके साथ भी नहीं खाऊँगा और न जिस पात्रमें उसने मुँह लगाया हो उसे धोये बिना उसमें पानी ही पीऊँगा। किन्तु इन मामलोंमें मैंने जो संयम या निषेध बरता है उसके कारण मुसलमानों या ईसाई मित्रोंसे या अपने बेटोंसे मेरे घनिष्ठ सम्बन्ध-पर कभी कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा है।

किन्तु एक साथ खाने-पीने और परस्पर विवाह-सम्बन्ध रखनेसे ही फूट, झगड़े और इससे भी बदतर चीजें कभी रुक नहीं गई हैं। पाण्डवों और कौरवोंका साथ बैठकर खाना-पीना भी होता था और उनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध[1] भी था, फिर भी वे बिना तनिक भी दुविधाके एक-दूसरेके गले काटनेके लिए टूट पड़े। अंग्रेजों और जर्मनोंके बीचकी कटुता अभीतक समाप्त नहीं हुई है।

सचाई यह है कि साथ बैठकर खाना-पीना और पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध करना मैत्री और एकताके लिए आवश्यक नहीं है, यद्यपि वे प्रायः उनके प्रतीक माने जाते हैं। किन्तु उनमें से किसीपर भी आग्रह करनेसे हिन्दू-मुस्लिम एकताके मार्ग-

१. मूल अंग्रेजीमें 'इण्टरमैरिज' शब्द है जो स्पष्टतः चूक है।

में सहज ही बाधा पड़ सकती है और पड़ रही है। यदि हम अपने मनमें यह विश्वास करके बैठ जायें कि हिन्दू और मुसलमान जबतक परस्पर खान-पान और विवाहका सम्बन्ध न करें तबतक एक नहीं हो सकते तो हमारे बीचमें एक कृत्रिम दीवार खड़ी हो जायेगी जिसे गिराना, हो सकता है, लगभग असम्भव हो जाये। और फिर उदाहरणके तौरपर यह समझिए कि अगर मुसलमान लड़के हिन्दू लड़कियोंसे प्रेम-याचना करना विधि-सम्मत मानने लगें तो हिन्दुओं और मुसलमानोंकी दिनोंदिन बढ़ रही एकताके मार्गमें बहुत ही गम्भीर बाधा पड़ जायेगी। अगर हिन्दू माता-पिताओंको ऐसी किसी बातकी शंका [भी] हो गई तो आज उन्होंने मुसलमानोंको अपने घरोंमें जो खुला प्रवेश देना शुरू कर दिया है, उसे वे बन्द कर देंगे। मेरे विचारसे हिन्दू और मुसलमान युवकोंके लिए इस मर्यादाको स्वीकार करना आवश्यक है।

मैं तो यह बिलकुल असम्भव मानता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान परस्पर विवाह-सम्बन्ध करनेके बाद एक दूसरेके धर्मको अक्षुण्ण रख पायेंगे। और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी सच्ची खूबसूरती इसी बातमें है कि दोनों मजहबोंके लोग अपने-अपने मजहबके प्रति ईमानदार रहते हुए एक-दूसरेके प्रति भी ईमानदार रहें। कारण, हम चाहते हैं कि कट्टरसे-कट्टर हिन्दू और मुसलमान भी, वे आजतक जिस तरह एक-दूसरेको अपना स्वाभाविक शत्रु मानते आये हैं, उसी तरह अब एक-दूसरेको अपना स्वाभाविक मित्र मानें।

तब हिन्दू-मुस्लिम एकता किस बातमें निहित है और उसको बढ़ानेका सबसे अच्छा तरीका क्या है? उत्तर सीधा-सादा है। वह इस बातमें निहित है कि हमारा एक समान उद्देश्य हो, एक समान लक्ष्य हो, और समान सुख-दुःख हों। और इस समान लक्ष्यकी प्राप्तिके प्रयत्नमें सहयोग करना, एक-दूसरेका दुःख बँटाना और परस्पर सहिष्णुता बरतना, इस एकताकी भावना बढ़ानेका सबसे अच्छा तरीका है। जहाँतक एक समान लक्ष्यकी बात है, वह हमारे सामने है, हम चाहते हैं कि हमारा यह महान् देश महानतर और स्वशासित हो जाये। हमारे दुःख भी बहुत हैं, जिन्हें हम एक दूसरेके साथ बँटा सकते हैं। और आज यह देखते हुए कि खिला-फतके प्रश्नपर मुसलमानोंकी भावना बहुत तीव्र है और उनका मामला न्यायसंगत भी है, हिन्दुओंके लिए मुसलमानोंकी मित्रता प्राप्त करनेका इससे अधिक अच्छा उपाय और क्या हो सकता है कि वे मुसलमानोंकी माँगका हृदयसे समर्थन करें। दोनों मजहबोंके लोग कितना ही खान-पान क्यों न रखें, लेकिन उनका प्रेम-बन्धन उतना मजबूत नहीं हो सकता जितना कि खिलाफतके सवालपर हिन्दुओंके इस तरहसे सहायता देनेपर होगा।

और पारस्परिक सहिष्णुता तो सदैव और सभी जातियोंके लिए एक आवश्यकता ही है। यदि मुसलमानोंकी ईश्वर-पूजाकी पद्धतिको, उनके तौर-तरीकों और रिवाजोंको हिन्दू सहन नहीं करेंगे या अगर हिन्दुओंकी मूर्ति-पूजा और गो-भक्तिके प्रति मुसलमान असहि-ष्णुता दिखायेंगे तो हम शान्तिसे नहीं रह सकते। सहिष्णुताके लिए यह आवश्यक नहीं है कि मैं जो-कुछ सहन करता हूँ उसे मैं पसन्द भी करूँ। मैं शराब पीना, मांस खाना और तम्बाकू पीना बहुत ही नापसन्द करता हूँ; किन्तु मैं हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों

सभीके बीच उन्हें सहन करता हूँ — वैसे ही जैसे मैं उनसे अपेक्षा रखता हूँ कि इन चीजोंसे मेरा परहेज रखना उन्हें भले ही पसन्द न हो, लेकिन वे इसे सहन अवश्य करें। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचके सारे झगड़ेकी जड़ यही बात है कि दोनों एक-दूसरेपर अपने विचार लादना चाहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-२-१९२०

४०. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें[1]

२५ फरवरी, १९२०

आज हम यहाँ जो इकट्ठे हुए हैं, उसका उद्देश्य यह है कि मजदूर अपने संघकी स्थापना करें और उससे सम्बन्धित नियमों और प्रस्तावोंको पास करें।

यह काम करनेसे पहले मुझे आपको कह देना चाहिए कि हम आज जो संगठन खड़ा करने जा रहे हैं, उसका क्या उद्देश्य है, यह अच्छी तरहसे समझ लिया जाना चाहिए। दो अथवा तीन वर्ष पूर्व पूज्य अनसूयाबेनने[2] बुनकर संघकी स्थापना करनेका विचार किया और इस दिशामें कुछ काम भी शुरू किया। लेकिन उस समय मेरी सलाह यह थी कि यह बहुत जोखिमका काम है और मजदूरोंकी सेवा करनेके हेतु यदि हम इस कामको हाथमें लें और बादमें पूरी तरहसे निभा न सकें तो इससे [हमारे हाथों] मजदूरोंकी सेवाके बदले उनका बहुत ज्यादा नुकसान हो सकता है। मैं यह भी नहीं कहता कि आज मुझे इस बातका भय नहीं है। लेकिन मैं देख रहा हूँ, हिन्दुस्तानकी हालत कुछ हद-तक इतनी बदलती जा रही है कि हमें अपनी स्थितिका सूक्ष्म रूपसे अध्ययन और पर्य-वेक्षण करनेकी तथा उसे सँभालनेके लिए ऐसे संगठनोंकी आवश्यकता है। मैं आपको जो समझाना चाहता हूँ वह इतना ही है कि अपने संगठनका संचालन करनेके लिए यदि हमारे पास ईमानदार और कार्यको अच्छी तरह समझनेवाले व्यक्ति न हुए तो हम अपने पाँवों आप कुल्हाड़ी मारेंगे। ऐसे लोग हमारे पास न हों तो हमें संघ आदिकी स्थापना करनेके जंजालमें नहीं पड़ना चाहिए। दो वर्ष पहले मैंने यही कहा था और आज भी यही कहता हूँ।

आजकल हिन्दुस्तानमें, मजदूर-वर्गमें अनेक तरहकी हलचलें जारी हैं। लड़ाईके[3] बादसे ब्रिटिश और यूरोपीय राज्यों द्वारा शासित सब देशोंमें इतनी खलबली मची हुई है कि यदि मजदूर लोग अपने हितोंकी ओर ध्यान न देंगे, उनकी रक्षा न करेंगे तो वे कुचले जायेंगे। आज जो लोग एक राष्ट्रके रूपमें खड़े नहीं हो सकते, अन्य राष्ट्रोंके साथ अपने कदम नहीं मिला सकते, वे टिक नहीं सकते। आज राज्यतन्त्र ही ऐसा हो

१. विभिन्न मिलोंके कताई-विभागोंके मजदूर, मजदूर-संघकी स्थापनाके सम्बन्धमें विचार करनेके लिए इकट्ठे हुए थे।

२. अनसूयाबेन साराभाई, सामाजिक कार्यकर्त्री; अहमदाबादके उद्योगपति अम्बालाल साराभाईकी बहन।

३. प्रथम विश्व-युद्ध, १९१४-१८।

गया है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति उसमें अपना भाग अदा न करे, अपने हितोंको न जाने तो वह अवश्य ही कुचला जाये। प्राचीनकालमें ऐसा होता था कि राजा क्या करता है, यह देखनेकी, उसका नाम लेनेकी भी हमें जरूरत न होती थी। कर दे दिये, समय पड़नेपर हिम्मत-भरा उत्तर दे दिया अथवा रिश्वत देकर समय निकाल दिया, इतना ही काफी होता था। अब ऐसा समय नहीं रहा कि यह सब करके कोई बच सके। इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक राज्य-प्रशासनसे आज हमारे सम्बन्ध कुछ इस तरह जुड़ गये हैं कि यदि हम उसमें गहरे उतरकर उसे निकटसे देखना तथा अपने हितोंको समझना न सीखें तो हम अवश्य ही कुचले जायें। इसीसे मैं धार्मिक वृत्तिवाला तथा जिसे राजनीतिमें कोई रस ही नहीं है ऐसा व्यक्ति होनेपर भी पिछले कुछेक महीनोंसे इसमें ही लीन हो गया हूँ। इसका कारण सिर्फ इतना ही है कि राजनैतिक विषयोंमें इस तरह भाग लिये बिना आज मैं अपने धर्मकी रक्षा कर सकता हूँ अथवा नहीं, इस बारेमें मुझे शंका है। और मैं आपसे यही बात सीधे-सादे शब्दोंमें कहना चाहता हूँ कि अब भविष्यमें मजदूर-वर्गका भी राजनीतिमें कम या ज्यादा भाग लिये बिना गुजारा नहीं होगा।

गुजरे जमानेमें तो हमारा परिचय अपने खेतोंसे था, [उस समय] मिलें न थीं, मिल-मालिक न थे और न मिलोंसे सम्बन्धित कानून थे; आज यह सब-कुछ हो गया है। इसलिए यह क्या है — इसे जान लेना चाहिए। धर्मके अथवा कुटुम्बके भी कायदे-कानून हैं, लेकिन हम उन्हें कानून नहीं कहते; कारण उनमें सजा अथवा जुरमानेकी बात नहीं होती। अब ऐसा समय आ गया है कि कोई एक ही व्यक्ति न तो हमारा भला कर सकता है, न नुकसान। हमें अपने काम-काजको खुद ही चलाना होगा। इसमें यह भी सम्भव है कि सरकारमें, विधान परिषदोंमें हमारी ओरसे जो प्रतिनिधि जायें वे हमारे नामपर हमारा ही गला काटें। इसलिए भी हमें इसके सम्बन्धमें जानकारी हासिल करनी होगी। अपने बच्चोंका लालन-पालन हम कैसे करें, उन्हें शिक्षा देनेकी सुविधा इतनी कम क्यों है, अनाजके भाव कैसे बढ़ते हैं, यह सब हमें जानना होगा। जो माताएँ यहाँ बैठी हैं उन्हें भी, बच्चोंका लालन-पालन कैसे किया जाये — यह सीखना होगा। पाठशालाएँ खुलेंगी और एक समय ऐसा भी आयेगा जब हमें अनिवार्य रूपसे बच्चोंको उन पाठशालाओंमें भेजना पड़ेगा। इसलिए यदि हम यह जाननेकी कोशिश नहीं करेंगे कि इन सब बातोंसे हमारा क्या हित या अहित होगा और आत्मनिर्भर नहीं बनेंगे तो हम मरे हुएके समान हैं। वणिकों और ब्राह्मणोंके संघ तो हमारे यहाँ पहलेसे ही हैं, क्षत्रियोंके भी हैं लेकिन कुछ भिन्न प्रकारके। अब ऐसा समय आ गया लगता है कि जब मजदूर भी ऐसे संघकी स्थापना करें जिसमें बुनकर, लुहार, कतवैये आदि इकट्ठे होकर अपना संगठन कर सकें, अपने गुण-अवगुण जानें और अवगुणोंको दूर करनेके उपाय करें। मैं फिर आपको चेतावनी देता हूँ कि आप भले ही अपना संगठन खड़ा करें, संघ बनायें लेकिन जो नियम निर्धारित करें, जिन व्यक्तियोंको चुनें, जिन व्यक्तियोंके हाथों अपने हितोंकी बागडोर दें — उन नियमोंका निर्धारण और उन व्यक्तियोंका चुनाव इस कार्यके उत्तरदायित्वको समझकर ही करें। इन व्यक्तियोंपर आप न केवल अपने पैसे तथा कारोबारके सम्बन्धमें

कड़ी निगाह रखें वरन् इन लोगोंने आपके नामपर क्या-क्या किया, आपके नामसे कहाँ-कहाँ हस्ताक्षर किये — इन सब बातोंकी भी निगरानी रखें।

दूसरी एक और बात मुझे आपसे कहनी है। आपमें जो लोग यह मानते हों कि मिल-मालिकोंके विरुद्ध लड़ने, उन्हें दबानेकी खातिर हम इस संघकी स्थापना कर रहे हैं अथवा हम इन संघोंका ऐसा उपयोग कर सकेंगे, उन्हें मैं चेतावनी देता हूँ कि वे लोग इस संघमें शामिल होनेका विचार छोड़ दें। मिल-मालिकोंको दबानेका अथवा उन्हें नुकसान पहुँचानेका कोई कार्य मैंने इस जिन्दगीमें नहीं किया है और न ही मेरे हाथों यह होनेवाला है। लेकिन अगर वे मजदूरोंको दबाते हैं तो उससे मजदूरोंको मुक्त करवानेके लिए मैं अपनी गर्दन कटवानेको तैयार हूँ। पूज्य अनसूयाबेन और भाई शंकरलालको[1] मिल-मालिकोंके प्रति तनिक भी द्वेष-भाव नहीं है। वे सिर्फ मजदूरोंकी सेवा करना चाहते हैं; यह बात मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। इसीलिए जब-जब मुझे अवसर मिलता है तब-तब मैं उनके इस काममें सहयोग देता हूँ तथा इसी कारण उन्हें भी समय-समयपर यही कहता हूँ कि यदि आप सचमुच मजदूरोंकी सेवा करना चाहते हों तो आपको मजदूरों और मिल-मालिकों, दोनोंके हितोंकी कामना करनी चाहिए। मिल-मालिकोंको सेवाकी जरूरत नहीं है; मजदूर गरीब, मासूम और भोले हैं, उनको सेवाकी जरूरत है। संघ बनाकर [हमें] मिल-मालिकोंको दबाना नहीं है, सिर्फ मजदूरोंकी ही रक्षा करनी है और इतना करनेका हमें अवश्य ही अधिकार है।

आज यदि मजदूरोंको अपने बच्चों और स्त्रियोंको कारखानोंमें काम करनेके लिए भेजना पड़ता हो तो इसे बन्द करवाना हमारा फर्ज है। मजदूरोंके बच्चोंको ३–४ रुपयेकी अधिक आमदनीकी खातिर अपनी शिक्षाका नुकसान करके मजदूरी करनेके लिए जाना पड़ता है, यह कदापि नहीं होना चाहिए। मजदूरी बालकोंके लिए नहीं है, स्त्रीके लिए भी कारखानेकी मजदूरी नहीं है। उसके लिए घरमें काफी काम है, उसे बच्चोंका पालन-पोषण करनेकी ओर ध्यान देना चाहिए; पति जब थका-माँदा घर आये तब उसे शान्ति प्रदान करना, उसकी सेवा करना, वह क्रोधित हो तो उसे शान्त करना और घरमें बैठे-बैठे कोई और काम हो तो उसे करना — ये सब उसके काम हैं। यदि हम चाहते हों कि हमारा गृह-जीवन सुन्दर हो, मधुर हो तो हमें यह करना ही चाहिए। पुरुषोंकी तरह बाहर जाकर काम करना स्त्रियोंके लिए [उचित] नहीं है। अगर हम अपनी स्त्रियोंको कारखानोंमें भेजेंगे तो हमारी गृहस्थीको कौन चलायेगा। स्त्रियाँ घर छोड़कर बाहर काम करने जायें तो हमारा गृहस्थ जीवन नष्ट हो जायेगा तथा वर्ण-संकरकी परिस्थिति पैदा होगी। जो लोग यूरोपका उदाहरण पेश करते हैं और यह पूछते हैं कि वहाँ किस तरह हजारों स्त्रियाँ पुरुषोंके काम करती हैं तथा स्त्री-पुरुष इकट्ठे काम करते हैं, उनको मेरा उत्तर यह है कि 'यूरोपकी मुझे कोई परवाह नहीं है।' सामाजिक रीति-रिवाजोंका मुझे जो थोड़ा-बहुत सूक्ष्म ज्ञान हुआ है, उसके आधार-पर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि स्त्री और पुरुष दोनों साथ मजदूरी करने जाते हैं

१. शंकरलाल बैंकर, अहमदाबादके एक सामाजिक कार्यकर्ता तथा मजदूर नेता; वे **यंग इंडिया** और **नवजीवन**, **बॉम्बे क्रॉनिकल** तथा बम्बईकी सत्याग्रह सभासे भी सम्बन्धित रहे हैं।

तो उसमें दोनोंकी अवनति है। इसलिए आप अपनी स्त्रियोंको बाहर काम करनेके लिए मत भेजिए, उनके शीलकी रक्षा कीजिए। यदि आपमें मर्दानगी हो तो कुछ ऐसा प्रबन्ध करना आपका काम है जिससे कोई व्यक्ति आपकी स्त्रियोंपर बुरी निगाह न डाल सके। आज विवश होकर मजदूरोंको अपनी इच्छाके विरुद्ध अपनी स्त्रियों और बच्चोंसे काम करवाना पड़ता है। यह बात भी सच है कि इससे छुटकारा पानेके लिए उन्हें अधिक वेतन मिलना चाहिए। यदि संघ बनाया जाये, तो उसकी मार्फत यह सब सरलतासे हो सकता है।

इसलिए ऐसे संघकी स्थापना करते समय आपको विचारपूर्वक तीन बातोंका निश्चय करना है:

१. संघके नियमोंकी जाँच कर लें।

२. मिल-मालिक ऐसी सत्ताका उपभोग न करें जिससे वे मजदूरोंपर हावी हो जायें।

३. आपको संघमें शामिल होनेके लिए प्रवेश-शुल्क देना होगा और फिर हर महीने कुछ चन्दा देना पड़ेगा।

तत्पश्चात् आपको इस बातपर विचार करना चाहिए कि यदि आपको अधिक वेतन मिलने लगे तो आप उसका क्या करेंगे? इस अतिरिक्त धनको यदि मैं शराब-खानेमें खर्च कर दूँ, चाय पीऊँ, पकौड़ियाँ खाऊँ तो इसकी अपेक्षा उसका न मिलना ही बेहतर है। लेकिन यदि इस अतिरिक्त धनसे मैं अपनी स्त्रीको राहत दूँ, उसे शिक्षा दूँ, उसके लिए शिक्षिका रखूँ, बच्चोंको लिखाऊँ-पढ़ाऊँ, अपने वस्त्रोंको साफ करूँ, सील और गन्दगीसे भरे घरसे अच्छे घरमें रहने जाऊँ तो इन पैसोंका मिलना अच्छा है। और यह सब हम संघ बनाकर कर सकते हों तो संघकी स्थापना करना ठीक है। लेकिन इन सबके सम्बन्धमें अभी मेरे मनमें सन्देह है और मैं आपसे बार-बार कहता हूँ कि यदि हम यह सब भूल जायेंगे तो आपकी सेवाकी आकांक्षा करनेवाले हम और आप — दोनों पाप योनिमें पड़ेंगे।

एक समय ऐसा था जब सब लोगोंमें धार्मिक-वृत्ति थी। इन सारी प्रवृत्तियोंमें शामिल होकर और हाथ बँटाकर मैं यह देखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ कि क्या इस रास्तेपर चलकर भी देशके लोगोंमें प्राचीन धार्मिक वृत्तिको फिरसे जाग्रत किया जा सकता है? मेरी दृढ़ मान्यता है कि यदि हममें यह जाग्रति आ जाये तो इस कठिन समयमें हम लोग बच जायेंगे, नहीं तो हमारा मरण निश्चित है। यह धार्मिक वृत्ति कोई बहुत कठिन चीज नहीं है, यह बिलकुल सादी वस्तु है और सब लोग आसानीसे इसका विकास कर सकते हैं। मैं आपसे कानमें कहे देता हूँ कि जो स्वेच्छाचारी है, स्वच्छन्द वृत्तिका है, संयमका पालन नहीं करता वह धर्मसे दूर है। जो किसीका अहित नहीं करता, किसीका खोटा पैसा न लेता है और न देता है, वह धर्मको समझता है। हम शराबी, लुच्चे और लफंगे हों तो हमारा जीना और कमाना सब बेकार है; यदि हम सच्चे, अच्छे, सरल, विवेकी और धार्मिकवृत्तिवाले बनें तो हमारा जीवन सार्थक है। हमारा संघ भले ही बने; उससे हममें मेल होगा, एकता बढ़ेगी, हम विधिपूर्वक

काम करना सीखेंगे। मुझे मालूम है, मिल-मालिक [भी] यही चाहते हैं कि संघ बने तो ठीक हो। आजकल किसीको कोई और किसीको कोई, इस तरह सबको अपनी-अपनी कठिनाइयों और शिकायतोंका समाधान अलग-अलग करना पड़ता है। यदि संघ हो तो उसके अधिकारियोंसे मिलकर सब-कुछ सुचारु रूपसे किया जा सकता है। इस तरह इसमें दोनों पक्षोंका हित है, इसलिए आप अच्छी तरहसे सोच-समझकर यह काम कीजिएगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-२-१९२०

४१. पत्र : बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको[1]

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
२७ फरवरी, १९२०

पंजीयक,
उच्च न्यायालय,
बम्बई

प्रिय महोदय,

मैं इस पत्रके साथ एक वक्तव्य भेज रहा हूँ, जो ३ मार्चको न्यायालयमें पढ़ना या दाखिल करना चाहता हूँ। यह तारीख मेरे विरुद्ध जारी किये गये कैफियत-तलबी आदेश[2] (रूल निसी) की सुनवाईके लिए निश्चित की गई है। साथमें श्री महादेव देसाईका वक्तव्य भी भेज रहा हूँ।

आपका विश्वस्त,

[संलग्न]

[गांधीजीका वक्तव्य]

मेरे विरुद्ध जारी किये गये कैफियत-तलबी आदेशके सम्बन्धमें निवेदन है कि:

उपर्युक्त आदेश जारी किये जानेसे पहले मेरे तथा इस न्यायालयके पंजीयकके बीच कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था। मैंने ११ दिसम्बरको पंजीयकके नाम एक पत्र[3] लिखा, जो

१. इस पत्र तथा दोनों संलग्न वक्तव्योंका मसविदा गांधीजीकी लिखावटमें है।

२. यह आदेश गांधीजी और महादेवभाईके खिलाफ न्यायालयकी मानहानिके आरोपमें की गई अदालती कार्रवाईके सिलसिलेमें जारी किया गया था। कारण यह था कि गांधीजी द्वारा सम्पादित और महादेव भाई द्वारा प्रकाशित **यंग इंडिया**में सम्पादकीय टिप्पणीके साथ एक पत्र छाप दिया गया था, जो अहमदाबादके जिला जज बी० सी० कैनेडीने बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकके नाम लिखा था। देखिए "क्या यह न्यायालयकी मानहानि थी?", १०-३-१९२० भी।

३. पत्रके लिए देखिए खण्ड १६, पृष्ठ ३५०-५१।

मेरे आचरणको काफी स्पष्ट कर देता है। अतएव मैं उक्त पत्रकी एक प्रति संलग्न कर रहा हूँ। मुझे खेद है कि मुख्य न्यायाधीश महोदयकी दी हुई सलाहको[1] मानना मैंने सम्भव नहीं पाया है।

मुझे विश्वास है कि सम्मानित न्यायालय मुझसे ऐसी क्षमा-याचना नहीं चाहेगा जो हार्दिक न हो और न एक ऐसे कार्यके लिए खेद व्यक्त करनेको कहेगा जिसे मैंने एक पत्रकारका अधिकार तथा कर्त्तव्य माना है। अतएव यह सम्मानित अदालत कानूनकी शान बनाये रखनेके लिए जो भी दण्ड मुझे देगी उसे मैं सहर्ष और सादर स्वीकार करूँगा।

प्रकाशक श्री महादेव देसाईको दिये गये नोटिसके बारेमें मैं कहना चाहता हूँ कि सम्बन्धित पत्र और टिप्पणी उन्होंने मेरी प्रार्थना और परामर्शपर ही छापी थी।[2] इसके अलावा मैं इसलिए भी उक्त सलाह माननेमें असमर्थ रहा हूँ कि श्री कैनेडीका पत्र छापकर या उसमें लिखी बातोंपर टिप्पणी प्रकाशित करके मैंने कोई कानूनी या नैतिक अपराध किया है, ऐसा मैं नहीं मानता।

[**महादेव देसाईका वक्तव्य**]

मेरे विरुद्ध जारी किये गये कैफियत-तलबी आदेशके बारेमें निवेदन है कि मैंने 'यंग इंडिया' के सम्पादक द्वारा पेश किया गया बयान पढ़ लिया है और उसमें उन्होंने अपने कार्यका औचित्य सिद्ध करनेके लिए जो तर्क प्रस्तुत किया है, उससे मैं सहमत हूँ। अतएव सम्मानित न्यायालय जो भी दण्ड मुझे देगा, उसे मैं सादर और सहर्ष स्वीकार करूँगा।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१२८) से।

४२. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको[3]

फाल्गुन सुदी, ८ [२७ फरवरी, १९२०][4]

तुम्हारा पत्र कल मिला। मैं वहाँ सोमवारको[5] पहुँचनेकी आशा करता हूँ। इसलिए मैं उत्तर स्वयं नहीं लिख रहा हूँ; एक छोटा-सा उत्तर बोलकर लिखवा रहा हूँ।

१. उनके सुझाये हुए तरीकेसे क्षमा माँग लेनेकी सलाह।

२. **यंग इंडिया**, १०-३-१९२० में जो वक्तव्य छपा है, वह यहीं समाप्त हो जाता है।

३. मथुरादास त्रिकमजी (१८९४-१९५१); गांधीजीकी सौतेली बहनके पौत्र; समाजसेवी, लेखक और गांधीजीके अनुयायी; बम्बई कांग्रेस कमेटीके मन्त्री (१९२२-२३); बम्बई नगर-निगमके सदस्य (१९२३-२५)।

४. मथुरादास द्वारा लिखित **आत्म-निरीक्षण**के पृ० ५८ की पाद-टिप्पणी २ से पता चलता है कि सभा, जिसकी कि गांधीजीने पत्रमें चर्चा की है, ३ मार्च, १९२० को हुई थी।

५. गांधीजी बुधवार ३ मार्च, १९२० को बम्बई पहुँचे थे।

आज मेरा शरीर बिल्कुल थक गया है इसलिए मैं लेटा हुआ हूं। थोड़ा आराम करनेसे यह सब-कुछ ठीक हो जायेगा। जहां तुमने एक सुपुत्रकी तरह मेरी सेवा की है वहां मुझे भला तुमसे असन्तोष कैसे हो सकता है? मैं तो तुम्हारे होनेकी वजहसे अपने पत्र-व्यवहारके[1] सम्बन्धमें बिल्कुल निश्चिन्त हो इधर-उधर घूमता था। तुम न होते तो देवदास बीमार पड़ जाता अथवा मुझे भी बहुत सारे काम अधूरे छोड़ देने पड़ते . . . विशेष सोमवारको।

[गुजरातीसे]

बापूनी प्रसादी

४३. भाषण : अहमदाबादमें

२७ फरवरी, १९२०

आप सब लोग शायद जानते होंगे कि अभी कुछ अर्सेसे मैं अपंग-सा हूँ, इसलिए इस समय मैं आपके सामने बैठे-बैठे भाषण दूंगा। मुझे उम्मीद है, इसके लिए आप सब लोग मुझे माफ करेंगे।

मैं देखता हूँ कि आजकी सभाके कार्यक्रममें भाषणकर्त्ताओंकी सूचीमें मेरा नाम भी दिया गया है। मुझे बहन सरलादेवीको तथा अध्यक्ष महोदयको[2] धन्यवाद देनेका काम सौंपा गया है। आज इस सभामें जिस बहनने आपके सम्मुख भाषण दिया है, मैं उन्हें तथा अध्यक्ष महोदयको अच्छी तरहसे जानता हूँ; इसलिए मुझे जो कार्य सौंपा गया है, उसे करनेमें मुझे खुशी हो रही है।

मैं स्वयं तो भिखारी हूँ; अपनी भिक्षामें मैं विशेष रूपसे बहनोंकी खोजमें रहता हूँ। मुझे पुरुष तो हर स्थानपर मिल रहे हैं। लेकिन मैं बहनोंको प्राप्त करनेमें विशेष प्रयत्न कर रहा हूँ क्योंकि मैं मानता हूँ कि जबतक देशकी बहनें अपने भाइयोंको आशीर्वाद नहीं देतीं तबतक भारतकी उन्नति असम्भव है। मुझे खास करके अहमदाबादमें एक ऐसी बहन मिल गई है। बम्बई, मद्रास आदि स्थानोंपर भी कोई-न-कोई बहन मिल गई है। पंजाबमें मुझे सरलादेवीजी मिल गई हैं। इनसे मेरा प्रथम परिचय १९१० में हुआ था और उसके बाद हरद्वारमें मुझे इस दम्पतीके दर्शन हुए थे। सरलादेवीने मुझे पंजाब आनेका निमन्त्रण दिया। मैंने उसे स्वीकार तो कर लिया, लेकिन मुझे घबराहट हुई। उन्होंने जब मुझे यह निमन्त्रण दिया था उस समय वे वियोगिनी थीं। इसलिए मैं सोचमें पड़ गया कि वियोगिनीका आतिथ्य कैसे स्वीकार करूँ? लेकिन दूसरोंके दुःखमें शामिल होनेकी बातको मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ और इसलिए मैं

१. मथुरादासने १९१९ में बम्बईमें गांधीजीके सचिवके रूपमें कार्य किया और जनवरी-फरवरी १९२० में जब गांधीजीने पंजाबका दौरा किया उस समय वे उनके साथ थे।

२. सर रमणभाई महीपतराम नीलकण्ठ।

पंजाबमें उनके घर जाकर रहा। सगी बहन जितनी सेवा कर सकती है उतनी ही इन्होंने मेरी सेवा की। इस तरह मैं इनका ऋणी बना।

जो बहन मेरे संदेशको देशके [कोने-कोनेमें] पहुँचायेगी उसके तो मैं चरण-स्पर्श करूँगा। लेकिन मैं तो इस समय यह कहना चाहता हूँ कि इस बहनने मेरे सन्देशको नहीं बल्कि पंडित रामभजदत्तके सन्देशको आपतक पहुँचाया है। इस अवसरपर इस पतिव्रता बहनको कुछ और नहीं सूझा; इन्होंने अपने पतिके सन्देशको ही आपतक पहुँचाया है। ऐसा करके उन्होंने अपने पतिके सम्मानमें वृद्धि की है। चौधरीजीका सन्देश समस्त पंजाबका सन्देश है। यह सन्देश कहता है कि आप कभी न डरें और चाहे जो कुछ भी हो लेकिन कभी न हारें; ईश्वरके प्रति प्रेमभाव रखकर आप शांति और सब्रसे काम करें। इस सन्देशको हमें अपने हृदयोंमें लिख लेना चाहिए।

जिस तरह सुशील स्त्रियोंका उसी तरह अच्छे पुरुषोंका भी मुझे मोह है। आजकी सभाके अध्यक्ष महोदय अपनी सादगी और मिलनसार स्वभाव आदि गुणोंके कारण प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने पिताश्री द्वारा किये गये कार्यों तथा यशमें वृद्धि की है। सुधारकके रूपमें तथा अन्य तरहसे भी श्री रमणभाईने बहुत कार्य किया है। उनके सद्गुणोंको अपनाकर हम भी कुछ कार्य कर सकें तो कहा जा सकता है कि हमने बहुत किया।

मैं एक बार फिर आपकी ओरसे श्रीमती सरलादेवी और अध्यक्ष महोदयके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–३–१९२०

४४. एक पत्र[1]

[२७ फरवरी, १९२० के बाद][2]

प्रिय महोदय,

मैं इस पत्रके साथ उस बयानकी[3] एक-एक प्रति भेज रहा हूँ जो मैंने उच्च न्यायालयके पंजीयकको भेजा है और जिसे मैं आगामी ३ मार्चको, जब मेरे विरुद्ध जारी किये गये कैफियत-तलबी आदेशकी सुनवाई होगी, सम्मानित न्यायालयके सामने पढ़ना चाहता हूँ। मैं श्री एम० एच० देसाईके वक्तव्यकी एक नकल भी संलग्न कर रहा हूँ।

आपका विश्वस्त,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१२८) से।

१. पत्र किसको लिखा गया, यह ज्ञात नहीं है।

२. पत्रके मजमूनसे लगता है कि यह "पत्र: बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको", २७–२–१९२० के बाद लिखा गया था।

३. देखिए "पत्र: बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको", २७–२–१९२० के संलग्न वक्तव्य।

४५. पंजाबकी चिट्ठी – १३

पंजाब छोड़ा

यह पत्र तो मैं प्रार्थनोपरान्त आश्रममें बैठे हुए लिख रहा हूँ। आश्रममें लिखी हुई चिट्ठीको पंजाबकी चिट्ठी कैसे कहा जा सकता है? इसे पंजाबकी चिट्ठी कहनेकी धृष्टता कर रहा हूँ, क्योंकि मेरी आत्मा अभी भी पंजाबमें ही रमी हुई है। पंजाबियोंकी सरलता, सादापन, भोलापन, उदारता और उनके दुःख में भूल नहीं सकता। उनके दुःखमें थोड़ा-सा भाग लेकर मैं पवित्र बन गया हूँ। तुलसीदासने जिस दयाधर्मका — प्रेमधर्मका — बखान किया है, उसकी महिमाको मैं अब अधिक समझ सकता हूँ और यदि मुझे अवकाश मिला तो किसी समय धर्म-पालनके ठोस उदाहरणोंको मैं जनताके सामने प्रस्तुत करूँगा।

लेकिन मेरा हृदय पंजाबमें रमा हुआ है, सिर्फ इस कारणसे ही मैं इसे पंजाबकी चिट्ठी नहीं कह सकता, वरन् इस चिट्ठीमें मुख्य रूपसे पंजाबकी ही बात होगी, इसीसे उससे बाहर लिखी जानेपर भी इसे पंजाबकी चिठ्ठी कहा जा सकता है।

काशी-यात्रा

गत सप्ताह मैंने पंजाबके गुजरात जिलेकी यात्राका वर्णन किया था। इस यात्राके बाद समितिकी रिपोर्ट तैयार करनेके लिए कोई यात्रा करनी बाकी नहीं रह गई थी; इसके सिवा समितिकी रिपोर्टको पूरा करनेका समय भी आ गया था। अतः यह प्रश्न उठा कि इस रिपोर्टको पढ़नेके लिए [कांग्रेसकी जाँच-समितिके] सब सदस्य[1] किस स्थानपर एकत्र हों। पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री चित्तरंजन दास और पंडित मालवीयजीके लिए काशी उपयुक्त स्थान था, इसलिए यह निश्चय किया गया कि सब लोग काशी जायें। श्री जयकर लाहौर आ चुके थे; वे, श्री सन्तानम् और डाक्टर परसराम तथा लाला हरकिशनलाल १५ तारीखको लाहौरसे काशीके लिए रवाना हो गये। रास्तेमें लाला गिरधरलाल उन्हें अमृतसर स्टेशनपर मिले। मेरी सार-सँभाल रखनेके लिए डाक्टर जीवराज मेहता[2] भी हमारे साथ हो लिए थे। हम १६ तारीखको काशीजी पहुँच गये। स्टेशनपर महामना पंडित मालवीयजी तथा हमारे धर्मपरायण और विद्वान् भाई आनन्दशंकर ध्रुवके[3] दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया।

रिपोर्ट लिखनेका कार्य-भार मुझे सौंपा गया था। उसे मैं लाहौरमें पूरा न कर सका था। इसलिए मैं तो सारा समय उसे पूरा करनेमें व्यतीत करता था और दूसरे सदस्य उसे पढ़नेमें। उन्होंने मेरी रक्षा की। मेरे प्रति अनन्य प्रेम-भाव प्रगट करके

१. देखिए "पत्र: मोतीलाल नेहरूको", २०–२–१९२० ।

२. एक प्रसिद्ध चिकित्सक, गुजरातके प्रथम मुख्यमन्त्री; भारतीय उच्चायुक्त, लन्दन ।

३. उप-कुलपति, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ।

मुझे उबार लिया। मेरे मनमें इसकी स्मृति सदैव बनी रहेगी। मालवीयजीके प्रेमका वर्णन तो किया ही नहीं जा सकता, उन्होंने मेरी पूरी तरहसे चौकीदारी की। हमारे सम्बन्ध ऐसे हैं कि हम एक पल भी सेवाधर्मकी बात किये बिना नहीं रह सकते थे, किन्तु हमने बातचीत न करनेके संयमका पालन किया। आनन्दशंकरजीके साथ खूब सारी बातें करने, उनसे काशीजीके अनुभव सुननेका मन तो होता था, लेकिन उसे रोकना पड़ता था। इस तरह पवित्र तथा प्रेममय वातावरणमें रिपोर्टका काम पूरा हुआ। रिपोर्ट मार्चके आरम्भमें प्रकाशित होगी, ऐसी आशा की जा सकती है।

अरुणोदय

हमारे रहनेका प्रबन्ध पंडितजीके साथ ही गंगा-तटपर किया गया था। अरुणोदय और सूर्योदयका दृश्य सब स्थानोंपर भव्य होता है, लेकिन गंगाजीके तटपर तो यह दृश्य मुझे नितान्त अद्भुत जान पड़ा। आकाशमें जैसे-जैसे प्रकाश बढ़ता जाता वैसे-वैसे गंगाके पानीपर स्वर्णिम प्रकाश बिखरता जाता है और अन्तमें जब सूर्य पूर्णतः दृष्टिगोचर होता, उस समय ऐसा प्रतीत होता मानो पानीमें एक बृहदाकार स्वर्ण-स्तम्भ प्रतिष्ठापित कर दिया गया है। इस दृश्यको कितना भी देखें, आँखोंको तृप्ति ही नहीं होती थी। भक्तजनोंके कंठसे गायत्री मन्त्र अपने-आप स्फुरित हो उठता था। इस भव्य दृश्यको देखनेके बाद सूर्यकी उपासना, नदियोंकी महिमा और गायत्री मन्त्रके अर्थको मैं अधिक अच्छी तरह समझ सका।

इसी स्थानपर घूमते हुए मैंने अपने देश और अपने पूर्व-पुरखोंके बारेमें गर्वका अनुभव किया, लेकिन इसके साथ ही मुझे वर्तमान स्थितिका विचार करते हुए दुःख भी हुआ। मैंने नदीके किनारे ही लोगोंको शौचादि करते हुए देखा। 'जंगल' जाना छोड़कर अब हम नदीपर जाते हैं। इस पवित्र स्थलपर तो एसी स्थिति होनी चाहिए कि हम आँख मूँदकर नंगे पाँव चल-फिर सकें। लेकिन इसके बदले हमें बहुत सँभलकर चलना पड़ता है और ऐसी जगहसे गंगाजल पीते हुए भी घिन आती है। इस गन्दगीके बारेमें सोच ही रहा था कि मुझे काशीके विश्वनाथ मन्दिरकी याद आ गई। मन्दिरके पासकी सँकरी गली, वहाँकी गन्दगी, वहाँ देखे हुए सड़े फूलोंका ढेर, वहाँके पुजारी ब्राह्मणोंकी कठोरता और मलिनता — इन सबके विचार मात्रसे मैंने एक लम्बी साँस ली तथा मुझे भारतीयोंकी अवनतिके कारणकी याद आई, और तब मुझे पंडितजी तथा उनके कार्योंका खयाल आया। काशी विश्वविद्यालयकी सफलतासे ही भविष्यमें [हम] उनकी कीमत आँकेंगे। इस परीक्षामें क्या वे उत्तीर्ण होंगे? उनके धर्माचरणका, उनके त्यागका, भारतवर्षकी उन्होंने जो भव्य सेवा की है उसका, मुझे खयाल आया। ध्रुवजी उनके दायें हाथ हैं और इस तरह विश्वविद्यालयका कार्य-भार दो बड़े धर्मात्मा पुरुषोंके हाथमें है, इस विचारसे मुझे सान्त्वना मिली। मुझे ऐसा लगा कि यदि विश्वविद्यालयके विद्यार्थी धार्मिक और विद्वान् निकलें तो मन्दिर और गंगा-तटकी सफाईकी अपेक्षा की जा सकती है। विश्वविद्यालयमें वह शक्ति हो या न हो लेकिन प्रत्येक भारतीयका यह कर्त्तव्य है कि वह हिन्दू धर्ममें छाई हुई आन्तरिक और बाह्य मलिनताको दूर करनेके उपाय खोजे। प्रत्येक भारतीय घर बैठे-बैठे आजसे ही

इस दिशामें प्रयत्न कर सकता है। यदि हर कोई अपनी स्वच्छताका स्वयं ही पूरा खयाल रखे तो काशी विश्वनाथ मन्दिर अपने-आप — हम जितना चाहते हैं उतना — स्वच्छ हो जायेगा।

विश्वविद्यालयके विद्यार्थी

पंडितजी द्वारा विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंसे दो शब्द कहनेकी आज्ञा पानेपर मैंने काशीसे रवाना होनेके दिन सबेरे साढ़े सात बजे विद्यार्थियोंके सम्मुख विद्यार्थी-जीवन सम्बन्धी अपने विचारोंको व्यक्त[1] किया। विद्यार्थी-जीवन संन्यासकी अवस्थाके समान है इसलिए वह अवस्था पवित्र और ब्रह्मचारीकी होनी चाहिए। आज दो सभ्यताएँ विद्यार्थियोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए परस्पर होड़ कर रही हैं — प्राचीन और अर्वाचीन। प्राचीन सभ्यता संयम-प्रधान है। प्राचीन सभ्यता हमें बताती है कि मनुष्य ज्ञानपूर्वक अपनी आवश्यकताओंको जितना कम करता जाता है वह उतना आगे बढ़ता है। आधुनिक सभ्यता हमें यह सिखाती है, अपनी आवश्यकताओंको बढ़ाकर मनुष्य प्रगति कर सकता है। संयम और स्वच्छन्दतामें उतना ही भेद है जितना धर्म और अधर्ममें है। संयममें बाह्य प्रवृत्तिको आन्तरिक प्रवृत्तिकी अपेक्षा गौण पद प्रदान किया गया है। [आज] संयमशील प्राचीन सभ्यताके बदले स्वच्छन्दतामय आधुनिक सभ्यताको अपनानेका भय उपस्थित हुआ है। इस भयको दूर करनेमें विद्यार्थी बहुत सहायता कर सकते हैं। विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंकी परीक्षा उनके ज्ञानसे नहीं बल्कि उनके धर्माचरणके आधारपर होगी। इस विश्वविद्यालयमें धर्मकी शिक्षा और आचरणको प्रधानपद प्रदान किया जाना चाहिए। इसमें विद्यार्थियोंकी पूरी मदद होनी चाहिए। पंडितजी स्वयं धर्मका आचरण करनेवाले व्यक्ति हैं। उन्होंने एक धर्मात्मा पुरुषको अर्थात् आनन्दशंकरभाईको विश्वविद्यालयमें लाकर विद्यार्थियोंको अनुकूल अवसर दिया है। इस अवसरका लाभ उठाकर विद्यार्थी अपनी विद्याको धर्मसे शोभान्वित करें, ऐसी मेरी कामना है। इस तरहके विचारोंको मैंने प्रातःकाल विद्यार्थियोंके सम्मुख रखा। इन विचारोंको मैं अनेक बार भिन्न-भिन्न रूपोंमें अनेक स्थलोंपर व्यक्त कर चुका हूँ। और एक बार फिर शुभ अवसर मिलनेपर जिन्हें मैंने उस दिन काशी विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंके सामने पेश किया उन्हींका यह सार 'नवजीवन' के पाठकोंके सामने उनके मनन करनेके लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि हम अपने धर्मका विचार किये बिना राजनीतिक सुधारोंका लाभ नहीं उठा सकते। धर्मकी स्थापना इन सुधारोंसे नहीं हो सकती बल्कि धर्मके द्वारा ही इन सुधारोंकी खामियोंको दूर किया जा सकेगा।

काशीमें गुजराती

काशीमें गुजराती काफी बड़ी संख्यामें हैं, इस बातकी मुझे आजतक खबर न थी। आनन्दशंकरभाईने मुझे उनसे मिलनेका अवसर प्रदान किया था। पंडितजी भी उपस्थित थे। गुजराती भाइयोंने उसी अवसरपर पंडितजीको मानपत्र देनेका विवेकपूर्ण

१. देखिए "भाषण: विद्यार्थियोंकी सभामें", २१-२-१९२०।

कार्य किया। अपनी ओरसे उनके प्रति धन्यवाद प्रकट करते हुए मैंने दो शब्द कहे। [मैंने उनसे कहा,] गुजरातियोंमें जो दोष माने जाते हों वे उन्हें वापस गुजरातमें ही भेज देने चाहिए और जो गुण हों उनका ही विकास करना चाहिए। ऐसा करके गुजराती, गुजरात और हिन्दुस्तान दोनोंकी ही शोभा बढ़ायेंगे। अपने व्यवहारमें मनुष्यको अनेक धर्मसंकटोंका सामना करना पड़ता है, उस समय सच्चे मित्रकी जरूरत होती है। वैसे मित्रके रूपमें [उन्हें] आनन्दशंकरभाई मिले हैं। मैंने कामना व्यक्त की कि उनकी उपस्थितिका वे पूरा लाभ उठायेंगे। काशीसे दिल्ली होते हुए, वहाँ माननीय श्रीनिवास शास्त्रीसे मुलाकात करनेके बाद श्रीमती सरलादेवीको[1] लेकर मैं २३ तारीखको आश्रममें पहुँचा हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-२-१९२०

४६. हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुसलमानोंके बीच इस समय जितनी एकता है उतनी इस युगमें पहले कभी नहीं रही, अगर ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। हम सबकी कामना है कि यह एकता अविचल बनी रहे। लेकिन इस इच्छाकी पूर्तिके लिए हम जबतक प्रयत्न न करेंगे तबतक यह एकता निभ नहीं सकती, उसमें वृद्धि नहीं हो सकती।

यह एकता यदि स्वार्थसे प्रेरित होकर की गई है तो इसमें सन्देह नहीं कि स्वार्थ सधनेके बाद यह नहीं निभ सकती। इसलिए एकता बढ़नेके कारणोंकी जाँच करना जरूरी है।

इसके बारेमें कितने ही मित्रोंने मुझसे सवाल पूछे हैं; मैंने उन्हें जो जवाब दिया है उसे ही यदि यहाँ लिख दूं तो इसको लेकर जो गलतफहमी है वह सम्भवतः कुछ हदतक दूर हो जायेगी।

खिलाफतके प्रश्नमें मैं प्रमुख भाग लेता हूँ सो ठीक नहीं है, ऐसी कुछ लोगोंकी मान्यता है। उनमें से एक पक्ष यह कहता है कि हिन्दू-मुसलमानोंमें जो गहरी दुश्मनी है वह तो जा नहीं सकती। इस प्रश्नका उत्तर मैं इस स्थानपर नहीं देना चाहता। सिर्फ इतना ही कहूँगा कि यदि हम ऐसे प्रश्नोंको उठायेंगे तो अनेक समस्याओंको सुलझाना असम्भव ही हो जायेगा। मनुष्यके प्रयत्नसे सब-कुछ हो सकता है, ऐसा कहा जाता है और होता है, यह भी हम देखते हैं। तो फिर इस कामको असम्भव मान लेनेका तनिक भी कारण नहीं है।

दूसरा पक्ष कहता है कि खिलाफतका प्रश्न भले ही मुसलमानोंके दीनका प्रश्न हो, लेकिन वे न्यायपर नहीं हैं। टर्कीके साथ हमारा क्या सम्बन्ध? टर्कीके अन्यायकी सीमा नहीं है। उसके अत्याचारपूर्ण शासनके पुनः प्रतिष्ठित किये जानेमें संसारको क्या लाभ? ऐसे अनेक प्रश्न पूछे गये हैं। सबका जवाब देनेका प्रयत्न कभी और करूँगा।

१. सरलादेवी चौधरानी।

अभी तो यहाँ मुख्य मुद्देपर ही विचार करूँगा। खिलाफतके मामलेमें मुसलमान पूर्णतया न्यायपर हैं, ऐसी मेरी मान्यता है। यदि यह केवल धर्म सम्बन्धी भावनाओंकी बात हो और यदि हमारी बुद्धि उसे स्वीकार न करे तो मैं यह भी मानता हूँ कि हम ऐसे प्रश्नपर मदद करनेके लिए बँधे हुए नहीं हैं। लेकिन खिलाफतके प्रश्नके सम्बन्धमें यदि धर्मको एक ओर रख दिया जाये तो भी वे न्यायपर ही हैं। प्रेसिडेन्ट विल्सन और मित्रराष्ट्रोंने इस सिद्धान्तको स्वीकार किया था कि युद्धके समय देशोंकी जो सीमाएँ थीं वे वैसीकी-वैसी रहेंगी और किसीको भी सजा देनेके इरादेसे तनिक भी नुकसान नहीं पहुँचाया जायेगा। मुसलमान उनसे इसी सिद्धान्तका पालन करवाना चाहते हैं। उनका कहना है कि अगस्त १९१४ में टर्कीको जो सत्ता प्राप्त थी वह कायम रहनी चाहिए; अरब और मुसलमानोंके पवित्र स्थानोंपर खलीफाका अधिकार कायम रहना चाहिए। सुलतानकी ईसाई और यहूदी प्रजाके हकोंको सुरक्षित रखे जानेके विषयमें उनसे ऐसा समुचित आश्वासन ले लिया जाये जिससे उनकी प्रतिष्ठाको धक्का न पहुँचता हो। अरब स्वतन्त्र रह सकते हैं। इन सब माँगोंमें मुझे कोई भी माँग अनुचित नहीं दिखाई देती। इनमें टर्की द्वारा किये गये तथाकथित अत्याचारोंका उत्तर भी आ जाता है। ब्रिटेनके मन्त्रियोंने[1] इस आशयके वचन दिये थे। अब यदि मुसलमानोंको इतना कुछ न मिले तो उनके प्रति भारी अन्याय होगा और उनकी धार्मिक भावनाओंको ठेस पहुँचेगी। इसलिए मैं मानता हूँ कि यदि हम पड़ोसीके प्रति अपने कर्त्तव्यको निभाना चाहते हैं तो मुसलमानोंकी मदद करना हमारा कर्त्तव्य है।

लेकिन सनातनी हिन्दू मुझसे कहते हैं: "अच्छा हम मदद करेंगे, लेकिन आजकल तो हिन्दू एक प्यालेसे पानी पीते हैं, उनके साथ बैठकर खाते हैं और परस्पर लड़के-लड़कियोंके विवाहादिकी बात भी होने लगी है।" उनका यह भय सही है, लेकिन उसके लिए कोई सबल कारण नहीं है। खिलाफतके मामलेमें मदद करनेके लिए एक प्यालेसे पानी पीने, साथ खाने-पीने अथवा लड़के-लड़कीकी शादी करनेकी जरा भी जरूरत नहीं है। हिन्दू नियमपूर्वक अपने धर्मका पालन करते हुए भी जब मुसलमानको अपना भाई-जैसा मानेंगे तभी एकता होगी। मैं अपने बच्चेके जूठे-पात्रको साफ किये बिना इस्तेमाल नहीं करता और न उसे ही अपने जूठे पात्र इस्तेमाल करने देता हूँ। लेकिन इससे अपने बच्चेके प्रति मेरा प्रेम कुछ कम नहीं हो जाता। भाई-बहन [परस्पर] विवाह नहीं करते, लेकिन उनके जैसा निर्मल स्नेह हम कहाँ खोजने जायेंगे? बहुत सारे हिन्दू एक ही गोत्रमें विवाह नहीं करते; लेकिन इससे उनकी एकतामें कोई कमी नहीं आ जाती। सच बात तो यह है कि यदि हम एकता बनाये रखनेके लिए खान-पान और बेटा-बेटीके आदान-प्रदानको जरूरी समझते हैं तो हिन्दू और मुसलमानोंके बीच एकता हो ही नहीं सकती। इसीसे जब-जब मैं यह सुनता हूँ कि हिन्दू और मुसलमानने एक ही प्यालेसे पानी पिया है, उन्होंने एक ही थालीमें भोजन किया है, तब-तब मुझे दुःख होता है; क्योंकि ऐसी बातें सुनकर भी एक सनातनी हिन्दूका मन दुःखी हो जाता है। उन्हें दुःखी करनेका कारण हो और

१. श्री एस्क्विथ और श्री लॉयड जॉर्ज।

हम वैसा करें, यह एक अलग बात है। लेकिन जहाँ एक प्यालेसे पानी पीनेमें एकता नहीं है वहाँ उस क्रियाको आगे रखकर उसे एकताका सूचक मानना एकतामें विघ्न डालनेके समान है। मैं तो यह मानता हूँ कि हमने खानेकी क्रियाको झूठा महत्त्व देकर बीमारी और भुखमरीको मोल ले लिया है और संयमको मुश्किल बना दिया है। जैसी शौच-क्रिया है ठीक वैसी ही खानेकी क्रिया भी है; दोनों मलिन क्रियाएँ हैं और एकान्त-में ही करने योग्य हैं। हमें खानेमें बहुत रस आता है इसीसे इस विषयका खुले रूपसे उपभोग करते हुए हम शरमको भी छोड़ बैठे हैं। अनेक मर्यादाशील हिन्दू खाने-की क्रियाको प्रभुका नाम लेकर शरीरयात्राके निमित्त एकान्तमें करते हैं। यह बात अनुकरणीय है, मेरी तो ऐसी ही धारणा है। भले ही मेरी यह धारणा दोषपूर्ण हो, मुझे तो केवल यह सिद्ध करना है कि हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता बढ़ानेके लिए एक साथ खानेकी जरूरत नहीं है। खाने-पीनेके प्रश्नको उठाना एकतामें विघ्न डालना है।

अब हम शादी-विवाहके सम्बन्धमें विचार करें। अनेक हिन्दू-मुसलमान स्वेच्छासे एक-साथ खायें, यह हिन्दू समाज सहन कर सकता है लेकिन हिन्दू-मुसलमानोंमें शादी-विवाह तो कहीं दिखाई नहीं देता और यदि इसको प्रोत्साहन दिया जायेगा तो हिन्दू धर्म-का लोप हो जायेगा। हिन्दू मुसलमान विवाह करके एक दूसरेके धर्मका पूरी तरह निर्वाह कर सकते हैं, यह बात मुझे तो असम्भव दीख पड़ती है। धार्मिक भावनासे विहीन व्यक्तिका जीवन निरर्थक है। इस भावनाको शुद्ध रखना हो तो परस्पर एक-दूसरेके बीच विवाहादिका प्रश्न उठ ही नहीं सकता। हिन्दू अथवा मुसलमान अपने धर्मके प्रति उदासीन होकर एकता बनाये रखें तो वह एकता सच्ची एकता नहीं है, हिन्दू-मुसलमानकी एकता नहीं है। और हम तो हिन्दू-मुसलमानकी एकताके अभिलाषी हैं। उसे प्राप्त करना हो और निरन्तर उसे निभाना हो तो हमें शादी-विवाहकी बातको एकदम खत्म कर देना चाहिए। मेरी मान्यता है कि कट्टर मुसलमानोंका भी यही मत है। मुसल-मान हिन्दूका कदापि हिन्दूके रूपमें वरण नहीं कर सकता। ऐसे दम्पतीकी सन्तान किस धर्मका अनुसरण करेगी? एकको दूसरेका धर्म स्वीकार करना ही चाहिए अथवा दोनोंको धर्म-हीन रहना चाहिए अथवा नये सम्प्रदायकी स्थापना करनी चाहिए। इनमें किसी भी दशामें हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं सधती। मेरा स्वप्न तो यह है कि तिलक और कंठी-धारी वैष्णव अथवा विभूति तथा रुद्राक्षकी मालासे विभूषित नियमपूर्वक सन्ध्या-स्नानादि करनेवाला हिन्दू और नमाजी तथा परहेज करनेवाला मुसलमान सहोदर होकर रह सकें। प्रभुकी इच्छा होगी तो यह स्वप्न सत्य होकर रहेगा।

कोई सन्देहग्रस्त भाई कहेगा कि खिलाफतके मामलेमें मदद करनेसे यदि एकतामें वृद्धि होती हो तब तो वकील और मुवक्किलमें भी एकता होनी चाहिए। इसमें मुझे दो दोष दिखाई देते हैं। हिन्दुस्तानके मुवक्किल इतने सीधे हैं कि वकीलको पूरा मेहन-ताना देनेके बाद भी उसकी पूजा करते हैं। जहाँ वकील मेहनतानेकी आकांक्षा नहीं रखता वहाँ तो वह मुवक्किलको गुलामकी भाँति खरीद लेता है। जिन्होंने दादाभाईको[1]

१. दादाभाई नौरोजी (१८२५–१९१७); भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके तीन बार अध्यक्ष चुने गये; ब्रिटिश संसद (१८९३) में निर्वाचित होनेवाले प्रथम भारतीय सदस्य।

देखा तक नहीं है, जिनके साथ दादाभाई कदापि भोजन नहीं करते, ऐसे कोढ़से पीड़ित भारतीय भी इस वकीलकी पूजा करते हैं। गोखलेकी[1] निःशुल्क वकालतने उन्हें अमरत्व प्रदान किया है। यदि वाईस करोड़ हिन्दू खिलाफतके प्रश्नपर ज्ञानपूर्वक मुसलमानोंकी वकालत करें तो मेरा खयाल है कि वे आठ करोड़ मुसलमानोंके मनको सदाके लिए अपने हाथमें कर लें। मौलाना अब्दुल वारी साहबके[2] यहाँ मैं प्रेमभावसे रहा। उन्होंने मेरे लिए ब्राह्मण रसोइया बुलाया और मेरे लिए दूध उसके हाथों गरम करवाया। वे स्वयं मांसाहारी हैं, लेकिन मुझे अपने घरमें मांस तो देखने भी न दिया। उन्होंने ऐसी मर्यादाका पालन किया, इससे हम दोनोंके बीचकी मित्रता बढ़ी ही, घटी नहीं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९–२–१९२०

४७. टिप्पणियाँ

श्रीमती बेसेंटका अपमान

हम देखते हैं कि बम्बईमें[3] लालाजीके[4] स्वागतके लिए जो सभा हुई थी उसमें कुछ श्रोताओंने श्रीमती बेसेंटका[5] अपमान किया। यह सुनकर हमें अत्यन्त खेद हुआ। भारतमें जिस समय हम नवीन और सुन्दर जीवनकी आस लगाये बैठे हैं उस समय अविनय और अपनेसे विपरीत विचार रखनेवाले व्यक्तियोंके प्रति तिरस्कारका व्यवहार हमारी उन्नतिमें बाधा पहुँचानेवाली बातें हैं। सार्वजनिक जीवनमें प्रतिस्पर्धीके प्रति विनय, मान और सहिष्णुता अत्यन्त आवश्यक है। श्रीमती बेसेंटका अपमान हो, यह हमारे लिए कलंककी बात है। इस भली महिलाने थोड़े वर्षोंमें हिन्दुस्तानकी जो अनन्य सेवा की है उतनी सेवा बहुत कम भारतीयोंने की है। इस समय भले ही हमें उनके विचार नापसन्द हों, भले ही हमें उनकी भूलें दिखाई दें, तो भी जिसने हिन्दुस्तानकी भारी सेवा की है और जो अपनी उत्तरावस्थामें एक नवयुवककी भाँति उत्साह प्रकट करते हुए अब भी भारतको आगे ले जानेमें अपना सक्रिय सहयोग देती रहती हैं उनका

१. गोपाल कृष्ण गोखले (१८६६–१९१५); शिक्षा-शास्त्री और राजनीतिज्ञ; १९०५ में कांग्रेसके अध्यक्ष; भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के संस्थापक; इन्होंने गिरमिटिया मजदूरोंके मामलेकी सफलतापूर्वक हिमायत की थी।

२. (१८३८-१९२६); लखनऊके राष्ट्रवादी मुस्लिम, जिन्होंने खिलाफत आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया था और अपने अनुयायियोंसे गो-हत्या बन्द करनेका अनुरोध किया था।

३. २० फरवरी, १९२० को।

४. लाला लाजपतराय (१८६५–१९२८); पंजाबके राष्ट्रवादी नेता। वे भारतसे छः वर्ष बाहर रहनेके बाद २० फरवरी, १९२० को बम्बई पधारे थे और वहाँ उनका भारी स्वागत किया गया था।

५. श्रीमती बेसेंट गांधीजीकी नीतिसे असहमत थीं और मई १९१९ में उन्होंने होमरूल लीगको छोड़ दिया था जिसकी उन्होंने १९१६ में स्थापना की थी।

अपमान करके हम स्वयं अपना अपमान करते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस प्रकारकी विषैली वायुको तुरन्त दूर करें।

श्रीमती सरलादेवी चौधरानी

आजकल सरलादेवीजी अहमदाबाद आई हुई हैं, इसलिए 'नवजीवन'के पाठकोंको उनका थोड़ा-बहुत परिचय देना अनुचित नहीं माना जायेगा। सरलादेवीके नामसे सामान्यतया सब लोग परिचित हैं, लेकिन वे सिर्फ यही जानते हैं कि श्रीमती सरला-देवी सार्वजनिक जीवनमें कार्य करनेवाली एक विद्वान् महिला हैं। इनका विशेष परिचय तो यह है कि वे सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी भानजी हैं, कांग्रेसके भूतपूर्व प्रसिद्ध मन्त्री स्वर्गीय श्री घोषालकी पुत्री हैं और पंजाबके सुप्रसिद्ध पंडित रामभजदत्त चौधरीकी धर्मपत्नी हैं। इन्होंने १९ वर्षकी अवस्थामें बी० ए०की परीक्षा पास की और तभीसे किसी-न-किसी सार्वजनिक कार्यमें भाग लेती रही हैं। 'भारती' नामका बंगाली मासिक पत्र इन्होंने ही आरम्भ किया, और कहा जाता है कि उसमें इन्होंने अपनी लेखनीकी शक्तिका खूब परिचय दिया। इनकी कवित्व शक्ति ऊँचे स्तरकी है और बनारसमें गाया गया उनका 'नमो हिन्दुस्तान' नामका मधुर गीत सर्वत्र विख्यात है। बंगालमें समितियोंकी स्थापना करनेमें श्रीमती सरलादेवीने प्रमुख भाग लिया था; और जब युद्ध आरम्भ हुआ तब शिक्षित बंगाली फौजमें भरती होकर अपना कर्त्तव्य निभायें, इस बातका प्रचार जिस प्रभावशाली ढंगसे इन्होंने किया था उतना बहुत-कम बंगालियोंने किया होगा। पंजाबमें भी सार्वजनिक आन्दोलनमें इस महिलाका हाथ दिखाई देता है। उनमें काव्य-सर्जनकी जितनी शक्ति है उससे शायद कहीं अधिक संगीतकी शक्ति है। इसी कारण कांग्रेसमें सदा उनकी माँग की जाती है। पंडित रामभजदत्तमें भी कुछ हदतक कवित्वकी शक्ति है। उनकी एक कविता अत्यन्त प्रभावशाली और लोकप्रिय है। वह गुरुमुखीमें है और हजारों पुरुष उसे गाते हैं। वह कविता कांग्रेस अधिवेशनमें[1] गाई गई थी और इसके लिए सरलादेवीने कुछ बालक और बालिकाओंको तैयार किया था। वह लगभग सत्याग्रहियोंके गीतके रूपमें काम दे सकती है। इस कारण हम इसे इस अंकके पहले पृष्ठपर प्रकाशित कर रहे हैं और उसके साथ कठिन शब्दोंके अर्थ भी दे रहे हैं।

नडियादमें स्वदेशीका प्रचार

स्वदेशीका प्रचार करनेके लिए नडियादमें स्वदेशी भण्डार लिमिटेड कम्पनी बनाई गई है। उसमें लाख-लाखके कुल दस शेयर हैं और दस हजार शेयर दस-दस रुपयेके हैं। यह उपक्रम इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर किया गया है कि नडियाद आदि गाँवोंमें शुद्ध और मिश्रित रूपसे स्वदेशी व्रतका पालन करनेवालोंको आवश्यक कपड़ा मिल सके तथा हाथसे कते और बुने हुए कपड़ेका प्रचार किया जा सके। कम्पनी अधिकसे-अधिक सवा छः प्रतिशत नफा ले सकती है तथा एजेंटोंका कमीशन शुद्ध लाभका २५ प्रतिशत निर्धारित किया गया है। यह उपक्रम लाभ कमानेके उद्देश्यसे नहीं बल्कि

१. दिसम्बर १९१९ के अमृतसर अधिवेशनमें।

सिर्फ स्वदेशीका प्रचार करनेके उद्देश्यसे किया गया है और हम मानते हैं कि व्यवस्था करनेवाले भाई इसमें सेवा करनेके इरादेसे ही शामिल हुए हैं। इसलिए हम इसका स्वागत करते हैं। व्यवस्थापक आशा करते हैं कि दो-चार व्यक्तियोंके शेयर लेनेके बजाय बहुत सारे व्यक्ति थोड़े-थोड़े शेयर खरीदेंगे। व्यवस्थापकोंका यह भी उद्देश्य है कि इस कम्पनीके नामपर सट्टा बिलकुल नहीं होने दिया जायेगा और शेयरोंका लेन-देन केवल सट्टा करनेके उद्देश्यसे नहीं करने दिया जायेगा। हिस्सेदार भी बहुत ब्याज मिलनेके इरादेसे अपने हिस्सेका पैसा नहीं देंगे बल्कि सिर्फ स्वदेशीको प्रोत्साहन देनेके उद्देश्यसे ही शेयर खरीदेंगे, यह उम्मीद भी रखी गई है। ऐसी शर्तोंसे युक्त कम्पनीका स्वागत किया ही जाना चाहिए। इससे हमें उम्मीद है कि सामान्य वर्गके व्यक्ति इस कम्पनीके शेयर खरीदकर इस उपक्रमको बढ़ावा देंगे और व्यवस्थापक भी चाहे जैसी मुश्किलें क्यों न आयें तो भी अपने उद्देश्यसे कभी पीछे नहीं हटेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९–२–१९२०

४८. पत्र : एल० फ्रेंचको

[कलकत्ता][1]
२९ फरवरी, १९२०

प्रिय श्री फ्रेंच,

शाहपुरमें भरतीके सम्बन्धमें लिखे मेरे पत्रके[2] जवाबमें आपके १९ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ। श्रीमान्ने[3] मामलेकी जाँच करनेका जो आश्वासन दिया है उसके लिए मैं उनका आभार मानता हूँ। मुझे खेद है कि जो बयान मेरे सामने लिये गये थे, उन्हें भेजनेमें कुछ अपरिहार्य विलम्ब हो गया है। मैंने उन्हें अनुवादके लिए लाहौर छोड़ दिया था और यह कह दिया था कि उन बयानोंका अनुवाद हो जानेके तुरन्त बाद वे मेरे पास भेज दिये जायें। मैं नित्य उनकी बाट देखा करता हूँ और जैसे ही वे मुझे प्राप्त होंगे, मैं उन्हें श्रीमान्के अवलोकनार्थ उनके पास भेज दूँगा।

मैं यह भी निवेदन कर दूँ कि दाण्डिक पुलिस अब भी लाक तहसील सरगोधामें, भक लुढकां, कोट इनोमान और भलवल तहसीलके कोट राँझामें तैनात है। बयानोंके

१. यद्यपि यह पत्र गांधीजीके निजी पत्र लिखनेके कागजपर, जिसपर उनका साबरमतीका पता छपा हुआ है, लिखा है, तथापि निश्चय ही यह कलकत्तासे भेजा गया होगा, क्योंकि २९ फरवरी, १९२० को वे वहीं थे।

२. देखिए "पत्र : एल० फ्रेंचको", १५–२–१९२० ।

३. पंजाबके लेफ्टिनेंट-गवर्नर ।

विषयमें अन्तिम राय चाहे जो हो, मैं विश्वास करता हूँ कि दाण्डिक पुलिस तुरन्त ही हटा ली जायेगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१२५) की फोटो-नकलसे।

४९. पत्र : महादेव देसाईको

[२९ फरवरी, १९२० के आसपास][1]

भाई महादेव,

तुम्हें लम्बा पत्र लिखनेका समय निकाल ही नहीं पाता। डाक्टर मेहताने[2] अनायास ही तुम्हारे स्वास्थ्यका समाचार दिया। मैं खिलाफतके सिलसिलेमें आया था, वापस अहमदाबाद जा रहा हूँ। सिंहगढ़ कब आऊँगा सो तो भगवान् ही जाने।[3] मेरा खयाल है कि आनन्दानन्द[4] तुम्हें खूब पत्र लिखते रहते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती प्रति (एस० एन० ११४१०) की फोटो-नकलसे।

५०. अमृतसरकी अपीलें[5]

तो आखिर जो अच्छेसे-अच्छा वकील मिल सकता था, उसकी पैरवीके बावजूद ये अपीलें खारिज कर दी गई हैं। प्रीवी कौंसिलने भी इस गैर-कानूनी कार्य-विधिपर अपनी मुहर लगा दी है। मैं स्वीकार करूँगा कि यह फैसला मेरे लिए सर्वथा अप्रत्याशित नहीं था, यद्यपि जब सर साइमन अपील करनेवालोंकी ओरसे अपनी दलीलें पेश कर रहे थे उस समय न्यायाधीशोंने जो कुछ कहा था, उससे लोगोंको फैसला

१. यह पत्र कलकत्तासे लिखा गया जान पड़ता है जहाँ २९, फरवरी १९२० को हुए खिलाफत सम्मेलनमें गांधीजीने भाग लिया था। वे २ मार्च, १९२० को वापस अहमदाबाद पहुँच गये थे।

२. जीवराज मेहता।

३. गांधीजी सिंहगढ़ २६ मार्च, १९२० को पहुँचे थे।

४. स्वामी आनन्दानन्द या आनन्द; अहमदाबादमें सितम्बर, १९१९ में **नवजीवन**का प्रकाशन आरम्भ हुआ तभीसे अनेक वर्षोंतक नवजीवन मुद्रणालयके व्यवस्थापक रहे।

५. २४ जुलाई, १९१९ को प्रीवी कौंसिलने अमृतसरके उन २१ नागरिकोंको अपील करनेकी इजाजत दी थी जिन्हें अप्रैल १९१९ को अमृतसरमें हुए उपद्रवके सिलसिलेमें लाहौरमें सैनिक अदालत द्वारा सजा दी गई थी। उन्होंने अपील इस आधारपर की थी कि वाइसरायको सैनिक कानून अध्यादेश जारी करनेका अधिकार नहीं है और अदालतोंने जो कार्य-विधि अपनाई थी वह अनियमित थी।

अनुकूल होनेकी आशा होती थी। राजनीतिक मुकदमोंका अध्ययन करके मैंने जो राय बनाई है वह यह है कि ऊँचीसे-ऊँची अदालतोंके फैसले भी राजनीतिक मतामतसे किसी-न-किसी प्रकार प्रभावित हो ही जाते हैं। न्यायाधीशका मन शुद्ध न्यायकी भावनासे ही प्रेरित रहे, इसके लिए अपनाई गई सारी सावधानी ऐन मौकेपर व्यर्थ सिद्ध होती है। प्रीवी कौंसिल उन अन्य समस्त मानवीय संस्थाओंकी कमजोरियोंसे मुक्त नहीं हो सकती जो केवल सामान्य स्थितियोंमें ही ठीक काम कर सकती हैं। यदि यह फैसला लोगोंके पक्षमें होता तो भारत सरकार ऐसी अवर्णनीय अपकीर्तिकी भागी बन गई होती जिससे एक पीढ़ीमें भी मुक्त हो पाना उसके लिए मुश्किल होता।

इस फैसलेके राजनीतिक महत्त्वका अनुमान इस तथ्यसे लगाया जा सकता है कि जिस क्षण यह खबर लाहौरमें पहुँची उसी क्षण लाला लाजपतरायका समुचित स्वागत करनेके लिए की गई समस्त तैयारियां रद कर दी गईं और खबर है कि पंजाबकी *राजधानीमें गहरा शोक छा गया। इसलिए इस फैसलेसे सरकारकी अपकीर्ति और* भी बढ़ गई है, क्योंकि सही या गलत, जनता तो यही समझेगी कि जहाँ कोई बड़ा राजनीतिक या प्रजातिगत हितका प्रश्न सामने आ जाता है वहाँ ब्रिटिश संविधानके अन्तर्गत न्याय नहीं मिल सकता।

इस महान् अनर्थसे बचनेका एक ही तरीका है। मानव-मनपर, और विशेषतः भारतीयोंके मनपर, उदार व्यवहारका असर तुरन्त होता है। मुझे आशा है कोई आन्दोलन करने या प्रार्थनापत्र आदि देनेकी नौबत आनेसे पहले ही पंजाब सरकार या केन्द्रीय सरकार मौतकी सजाओंको तत्काल रद कर देगी और यदि सम्भव हुआ तो उसके साथ ही अपील करनेवालोंको भी रिहा कर देगी।

ऐसा करना दो कारणोंसे आवश्यक है और ये दोनों ही कारण समान रूपसे महत्त्वपूर्ण हैं। पहला तो यह कि सरकारको जनताका विश्वास फिर प्राप्त करना है जिसका उल्लेख मैं पहले ही कर चुका हूँ। और दूसरा यह है कि शाही घोषणामें[1] कही गई एक-एक बात पूरी करनी है। उस महान् राजनीतिक दस्तावेजमें उन समस्त राजनीतिक अपराधियोंको मुक्त करनेका निर्देश दिया गया है जिनकी मुक्तिसे समाजको कोई खतरा न हो। शायद कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि यदि अपील करनेवाले ये इक्कीस व्यक्ति मुक्त कर दिये जायेंगे तो उनसे समाजके लिए किसी भी तरहका खतरा पैदा हो जायेगा। उन्होंने पहले कभी कोई अपराध नहीं किया है। उनमें से अधिकतर सम्भ्रान्त और कानूनके पाबन्द नागरिक माने जाते थे। वे किसी क्रान्तिकारी संस्थाके सदस्य हों, उनकी कोई ऐसी ख्याति भी नहीं थी। यदि उन्होंने कोई अपराध किया भी था तो वह केवल क्षणिक आवेशमें किया था और उस समयकी परिस्थिति उनके लिए गम्भीर रूपसे उत्तेजक थी। इसके अतिरिक्त जनताका विश्वास है कि इन सैनिक अदालतोंने लोगोंको जो सजाएँ दी हैं उनमें से अधिकांशको किसी उचित साक्ष्यका बल प्राप्त नहीं है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि सरकार, जो अबतक रँगे हाथों पकड़े जानेवाले राजनीतिक अपराधियोंको भी छोड़ देनेका सत्कार्य करती

१. दिसम्बर १९१९ की घोषणा।

रही है, इन अपील करनेवाले लोगोंको रिहा करनेमें संकोच नहीं करेगी और इस प्रकार समस्त भारतकी सद्भावना अर्जित करेगी। जो उदारता विजयकी घड़ीमें दिखाई जाती है, वही सबसे अधिक प्रभावकारी सिद्ध होती है। और लोगोंकी रायमें अपीलोंका खारिज किया जाना सरकारकी विजय ही है।

मैं अपने पंजाबके मित्रोंसे सादर अनुरोध करता हूँ कि वे हताश न हों। हमें शान्त मनसे अपने-आपको बुरीसे-बुरी स्थितिके लिए तैयार कर लेना चाहिए। यदि ये सजाएँ कानून-सम्मत हैं, यदि ये दण्डित व्यक्ति हत्या करने या हत्या करनेके लिए दूसरोंको उकसानेके दोषी हैं तो वे सजासे क्यों बचें? यदि इन्होंने ये अपराध न किये हों — और हमारा खयाल है कि कमसे-कम इनमें से अधिकांशने तो ये अपराध नहीं ही किये हैं — तो उन सब लोगोंकी किस्मतमें जो लिखा है हम उससे बचनेकी चेष्टा क्यों करें जो एक सीढ़ी और ऊँचा उठनेका प्रयत्न कर रहे हैं? यदि हमें ऊँचा उठना है तो हम इस बलिदानसे क्यों डरें? बलिदान किये बिना कभी कोई राष्ट्र ऊपर नहीं उठा है और बलिदान तो निरपराधों द्वारा सही गई यातनाओंको ही कहा जायेगा, अपराधियों द्वारा प्राप्त दंडोंको नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–३–१९२०

५१. पत्र : एस्थर फैरिंगको

बम्बई

बुधवार [३ मार्च,][1] १९२०

रानी बिटिया,

मुकदमा चल रहा है और चूँकि मुझे कुछ मिनटोंका अवकाश मिला है, तुम्हें चन्द पंक्तियाँ लिख भेजना चाहता हूँ।

तुम मेरे ध्यानमें निरन्तर रहती हो। कभी-कभी तो जब तुम्हारे साथ हुई अपनी बातोंकी ओर खयाल जाता है और जब यह सोचता हूँ कि कुछ अवसरोंपर, जब मैंने तुम्हारे प्रति नरम होना चाहा था, मैं शायद कठोर प्रतीत हुआ होऊँगा तब मैं बेचैन भी हो जाता हूँ। हमारे शब्द हमारे इरादेके अनुसार अच्छे या बुरे नहीं माने जा सकते, बल्कि उनके बुरे या अच्छे होनेकी कसौटी श्रोतापर पड़नेवाला प्रभाव है। क्या तुम सुखी और प्रफुल्लित हो? तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है?

मैं चाहता हूँ कि तुम श्री बी० का सन्दूक उन्हें वापस कर दो। यदि तुम्हें दूसरा चाहिए तो तुम मद्रासमें खरीद लेना। तुम मुझे अपना कार्यक्रम तो सूचित करोगी ही।

१. पत्रमें उल्लिखित अदालतकी मानहानिके मुकदमेकी सुनवाई ३ मार्चको बम्बईमें हुई थी। देखिए "क्या यह न्यायालयकी मानहानि थी?", १०–३–१९२०।

मुकदमा समाप्त हो गया है, परन्तु फैसला रोक लिया गया है। मैंने तुम्हें एक तार[1] भेजा है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

५२. भाषण: खिलाफत सभा, बम्बईमें[2]

३ मार्च, १९२०

मुझसे खड़े होकर बोला नहीं जाता। इस प्रश्नपर मैं बहुत बार बोला हूँ। मेरा अपना विश्वास है कि हमारी इच्छाके विरुद्ध हमारे साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। हमारी माँगें पूरी होनी चाहिए। कलकत्ताकी खिलाफत परिषद्में[3] पास किया गया प्रस्ताव आज मेरी निगाहमें आया और उसे पढ़कर मुझे आनन्दका अनुभव हुआ। यहाँ [उक्त सभामें] मौलाना साहबने[4] हमारे कर्त्तव्यकी रूप-रेखा अंकित कर दी है। उन्होंने सम्राट्को जो कुछ कहना है सो ठोक-बजाकर कहा। आज हमपर जो अवसर आ पड़ा है, कोई कारण नहीं कि वैसा ही अवसर कल मेरे हिन्दू भाइयोंपर क्यों नहीं आ पड़ेगा? मैंने अपनी यह गर्दन खुदाके नामपर संसारके तथा आपके सामने पेश कर दी है। (वाह-वाह) इसके अतिरिक्त मैं आपको और क्या दूँ? यदि इस प्रश्नका कोई सन्तोषजनक हल न निकले और हमारे मुसलमान भाई विधान-परिषदोंसे त्यागपत्र दे दें तो मैं आपको कह सकता हूँ कि हमारे सब हिन्दू भाई भी उनका अनुकरण किये बिना न रह सकेंगे। (तालियोंकी गड़गड़ाहट) कलकत्ता-परिषद्ने बहिष्कारका[5] जो प्रस्ताव पास किया है उससे मुझे कोई सहानुभूति नहीं है। हमें बहिष्कारकी बातसे दूर रहना चाहिए। यदि हमने "जान" देनेकी तैयारीकी हो तो फिर बहिष्कारकी क्या बिसात? यह एक अत्यन्त पवित्र कार्य है। जिस चीजके लिए कीमत देनी चाहिए हम उसीके लिये देंगे। हमें समर्थ बनानेके लिये कैंटरबरी तथा यॉर्कके आर्चबिशप क्या कर सकते हैं? हमें हिन्दू भाइयोंकी पूर्ण सहानुभूति प्राप्त है। आजकल मैं थोड़ा-थोड़ा "कुरान" पढ़ने लगा हूँ। (वाह-वाह) इससे मैं आपके अधिकसे-अधिक निकट सम्पर्कमें आता जाता हूँ। हमें द्वेषसे किसीपर भी विजय प्राप्त नहीं करनी है। तलवारसे

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२. यह सभा खिलाफत समितिकी ओरसे बुलाई गई थी; मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानी इसके अध्यक्ष थे।

३. २९ फरवरी, १९२० को।

४. मौलाना अबुल कलाम आजाद, जिन्होंने सभाकी अध्यक्षता की थी।

५. ब्रिटिश मालका।

दूसरोंका सिर काटनेके बजाय अपना सिर देनेके लिए तैयार हो जाओ। (निस्सन्देह-निस्सन्देह) हमारे सब प्रतिनिधियोंको यह बात कहनेके लिए तैयार रहना चाहिए कि अगर इस प्रश्नका सन्तोषकारक हल न निकला तो हम देशके प्रशासन-कार्यमें तनिक भी मदद करनेवाले नहीं हैं।

[गुजरातीसे]

गुजराती, ७–३–१९२०

५३. भाषण : बम्बईमें[1]

४ मार्च, १९२०

इस सभाकी स्थापना करनेके लिए श्री गांधीने आन्दोलनके संगठनकर्त्ताओंको बधाई दी और आशा व्यक्त की कि जो काम सभाने हाथमें लिया है उसमें उसे सफलता मिलेगी। उन्होंने कहा, सभाके उद्देश्य साफ और सीधे प्रतीत होते हैं। अतएव यदि आप उद्देश्य-प्राप्तिके निमित्त परिश्रमसे काम करते रहेंगे तो आपको सफलता प्राप्त होगी, इसके बारेमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। जिस प्रकारका उद्देश्य आपके सामने है वैसे उद्देश्यकी सफलताके लिए सत्य और निर्भीकता परमावश्यक शर्तें हैं; और मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि आप सचाई, निर्भीकता और ईमानदारीसे काम करेंगे तो आपके प्रयत्न अवश्य सफल होंगे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ५–३–१९२०

५४. भाषण : प्रेस अधिनियमपर, बम्बईमें[2]

५ मार्च, १९२०

जिस व्यक्तिने[3] इस अधिनियमको रद करवानेके लिए सबसे अधिक संघर्ष किया है वह आज यहाँ उपस्थित नहीं है, यह सरकार और जनता दोनोंके लिए शर्मकी बात है।

१. काठियावाड़ हितवर्धक सभाकी स्थापनाके उपलक्ष्यमें माननीय श्री जी० के० पारेखकी अध्यक्षतामें मोरारजी गोकुलदास हॉलमें एक सार्वजनिक सभा हुई थी। गांधीजीने यह भाषण उसी अवसरपर दिया था।

२. यह भाषण भारतीय समाचारपत्र संघके तत्त्वावधानमें हुई एक सभाके अवसरपर दिया गया था, सभाकी अध्यक्षता सर नारायण चन्दावरकरने की थी। इसमें गांधीजीने एक प्रस्ताव द्वारा यह माँग की थी कि १९१० का समाचारपत्र अधिनियम रद किया जाये; एम० आर० जयकरने इसका समर्थन किया था। राष्ट्रवादी, नरम दलीय तथा होमरूल लीगके सदस्य इस सभाके मंचपर एक साथ इकट्ठे थे।

३. बी० जी० हॉर्निमैन (१८७३–१९४८); पत्रकार और राजनैतिक आन्दोलनकर्त्ता, बॉम्बे क्रॉनिकलके सम्पादक जिन्हें अप्रैल १९१९ में भारतसे निर्वासित किया गया था और फिर उन्हें १९२६ तक भारत नहीं आने दिया गया था।

कदाचित् सरकार भाई हॉर्निमैनको पुनः भारत[1] जाने देनेकी बातको एक ओर रखकर इस कानूनको रद करनेके लिए तैयार हो जाये लेकिन मुझे विश्वास है कि हिन्दुस्तान-की जनता तो इसे कदापि स्वीकार न करेगी। मेरे मनमें यही प्रश्न उठा करता है कि यदि जनताके मतको अभिव्यक्त करनेके लिए समाचारपत्र न हों तो सरकारको जनताकी राय कैसे मालूम हो? स्वतन्त्र समाचारपत्रोंके अभावमें सरकारको खुफिया पुलिसपर विश्वास करना पड़ता है। इससे जनता सरकारसे निवेदन करती है कि यदि खुफिया पुलिसका यह भार उसे हल्का करना हो और यदि सरकार उस जनताके सहयोगकी जरूरत मानती हो तो उसे जनमतके प्रतिनिधि स्वतन्त्र समाचारपत्रोंका मुँह बंद नहीं करना चाहिए। इस समय सरकारकी हालत उस वायुविज्ञानवेत्ता-जैसी है जो वायुमापक यन्त्रको तोड़नेके बाद हवाके दबावको जाननेकी चेष्टा कर रहा हो।

इस अधिनियमको रद करवानेके लिए केवल पत्रकारोंको ही नहीं बल्कि सारी जनताको पूरे जोशके साथ आन्दोलन करना चाहिए। यदि मैं पत्रकारोंकी परेशानियोंका विचार करने बैठूं तो एक पूरा 'महाभारत' ही लिख जाये। कभी लोग मेरी प्रशंसा करते हैं, कभी मुझपर गालियोंकी बौछार करते हैं, कभी वे अधिकारियोंका पक्ष लेते हैं तथा कभी उनकी भर्त्सना करते हैं। इन सबमें से नीर-क्षीर विवेक करनेका काम पत्रकारोंका है। लोकोपयोगी प्रत्येक वस्तुपर प्रकाश डालना पत्रकारका कर्त्तव्य है। लेकिन जो जनताके लिए उपयोगी नहीं है ऐसे एक भी विशेषणको अपने पत्रमें दाखिल न किया जाये — यह समाचारपत्र अधिनियमको रद करवानेका सबसे अक्सीर उपाय है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–३–१९२०

५५. तार : शौकत अलीको[2]

६ मार्च, १९२०

उन्नीसके[3] लिए अपील तैयार कर रहा हूँ। उसमें अपने समर्थनकी बात शर्तके साथ रख रहा हूँ। आपको मेरी सलाह है कि दृढ़ता जरूर रखिए परन्तु नरमीसे काम लीजिए। सत्यको व्यक्त कीजिए परन्तु प्रेमकी भाषामें, घृणाकी भाषामें नहीं, तभी हमारी जीत सम्भव है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०

१. सभामें के० नटराजन्ने एक प्रस्ताव पेश किया था जिसमें बम्बई सरकारसे श्री हॉर्निमैनको वापस देशमें आने देनेका अनुरोध किया गया था।

२. शौकत अली २८-२९ फरवरीको हुए बंगाल प्रान्तीय खिलाफत सम्मेलनके सिलसिलेमें कलकत्ता गये हुए थे।

३. १९ मार्च, खिलाफत दिवस।

५६. तार : के० सन्तानम्‌को

६ मार्च, १९२०

मेरे द्वारा लिये गये बयानोंका[1] अनुवाद अहमदाबाद तुरन्त भेजिए, शेष बयानोंको भी उनका अनुवाद करके भेजियेगा।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१४५) की नकलसे।

५७. 'नवजीवन' की स्थिति

'नवजीवन' पत्रको साप्ताहिकमें बदलते समय और उसका सम्पादन कार्य सँभालते[2] समय मैंने मनमें कुछ बन्धन माने थे। उनमें से कुछसे तो पाठक परिचित हैं। दो शर्तोंकी ओर मैं एक बार फिर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ।

१. 'नवजीवन' में पैसे लेकर विज्ञापन नहीं लिये जाने चाहिए।

२. नुकसान उठाकर 'नवजीवन' नहीं चलाया जाना चाहिए।

आजकल 'नवजीवन' की नौ हजार प्रतियाँ छपती हैं। जबतक बीस हजार प्रतियाँ नहीं छपतीं तबतक मुझे सन्तोष नहीं होगा और अगर यह संख्या पचास हजारतक पहुँच जाए तो मैं आश्चर्य नहीं मानूँगा। लेकिन इतनी प्रतियाँ प्रकाशित करनेकी अबतक व्यवस्था नहीं हो पाई है। हमारे पास संस्थामें इसके योग्य मशीनें और व्यक्ति भी नहीं हैं, और न उतनी प्रतियाँ आसानीसे प्रकाशित करने योग्य जगह ही है। इस सबके अतिरिक्त मेरे साथी और मैं भी इस समय ऐसी स्थितिमें नहीं हैं कि पचास हजार ग्राहकोंको आकर्षित कर सकने योग्य पर्याप्त और सुन्दर सामग्री दे सकें। ईश्वरेच्छा होगी तो ऐसा समय अवश्य आयेगा। मैं पिछले अंकको कुछ हद-तक उक्त स्तरका कह सकता हूँ। गाहेबगाहे और भी ऐसे अंक प्रकाशित हुए हैं, लेकिन अंग्रेजीमें कहावत है कि एक ही कोयलके बलपर वसन्त नहीं आ जाता। उसी तरह 'नवजीवन' के एक उत्तम अंकसे सब अंक अच्छे नहीं कहे जा सकते। सरला-देवीजी [चौधरानी] के 'बन्धु' नामक लेखके कारण अन्तिम अंक उत्तम हो गया है। यह लेख दो किस्तोंमें छपा है। इसका पूर्वार्द्ध, कुछ वर्ष पहले जब वे किसी वनप्रदेशमें रहती थीं, तब लिखा गया था। लेकिन वह था अप्रकाशित। इस बार जब मैंने उनसे

१. सन् १९१९ के पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें गांधीजी द्वारा लिये गये बयान। गांधीजी उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्टका मसविदा तैयार कर रहे थे, और उसीके लिए उन्होंने उक्त बयानोंके अनुवाद मँगाये थे।

२. ७ सितम्बर, १९१९ से।

लेखकी माँग की तब उन्होंने उसे ढूंढ़कर उसमें कुछ और सामग्री जोड़कर एक सम्पूर्ण काव्यके रूपमें मुझे भेंट किया। मूल लेख बँगलामें है। उसका अनुवाद करते समय कठिनाईका सामना करना पड़ा इसीसे 'नवजीवन' के प्रकाशनमें विलम्ब हुआ। इस लेखमें से दो-तीन अर्थ निकाले जा सकते हैं। पाठकोंको मेरी सलाह है कि वे इस लेखको दो-चार बार पढ़ जायें और आकण्ठ इसका रस-पान करें ऐसा करते हुए वे पायेंगे कि इसमें रसका अक्षय भण्डार निहित है।

यह विषयान्तर हो गया है। आजकल 'नवजीवन' घाटेमें चल रहा है। एक प्रतिका लागत मूल्य सोलह पाई पड़ता है, उसमें कागज आठ पाईका होना चाहिए। हमने आरम्भसे ही अच्छे कागजका उपयोग किया है, इससे अब उसके बदले हलका कागज लगानेकी इच्छा नहीं होती। अतएव इसके आकारको कम करके कुछ बचत करनेका निश्चय किया गया है। सोलह पृष्ठोंके स्थानपर इस बार बारह पृष्ठ दिये गए हैं। लेकिन इस तरह चार पाई भी नहीं बचतीं। इसलिए बम्बई और अहमदाबादमें प्रत्येक प्रतिका मूल्य चार पैसेके बदले पाँच पैसे रखनेका निश्चय किया गया है। इससे घाटा होना बन्द हो जाएगा। पाठक समझ जायेंगे कि जबतक हमें 'नवजीवन'-का लागत मूल्य नहीं मिलता और हमें नुकसान उठाना पड़ रहा है तबतक ग्राहकोंकी संख्या बढ़ानेका अर्थ और भी अधिक नुकसान उठाना होगा। परिणामतः वर्तमान स्थितिमें ग्राहकसंख्या बढ़ानेकी बात भी नहीं सोची जा सकती।

'नवजीवन' आरम्भ करते समय हमने आठ पृष्ठ देनेकी प्रतिज्ञा की थी, लेकिन परिस्थितियोंको अनुकूल पा यह संख्या सोलह कर दी गई है। आगे भी पाठकोंको आठसे अधिक पृष्ठोंका 'नवजीवन' मिलता रहेगा। इसके साथ ही मैं यह भी कहना चाहूँगा कि स्थानाभावके कारण विषय छोड़े नहीं जाएँगे, बल्कि विशेष प्रयत्नसे संक्षेपमें लेख प्रकाशित करके उतने ही विषयोंको समाविष्ट करनेका प्रयत्न किया जाएगा। अनेक बार समाचारपत्रोंमें निश्चित पृष्ठसंख्या भरनेकी दृष्टिसे ही लम्बे-लम्बे लेख लिखे जाते हैं। लेखक उतावलीके कारण लेखमें प्रायः अपने विचारोंको अच्छी तरह और व्यवस्थित रूपसे प्रस्तुत नहीं कर पाता। पाठकोंको उन्हें समझनेमें दिक्कत होती है अथवा जो विचार आसानीसे ग्राह्य हो सकते हैं उन्हें इस तरह घुमा-फिराकर लिखा जाता है कि उन्हें समझनेमें बहुत कोशिश करनी पड़ती है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जो लेखक 'नवजीवन' में अपनी रचनाएँ भेजते हैं उन्हें वे और भी संक्षेपमें लिखेंगे तथा अपनेको 'नवजीवन'का मालिक समझकर इसकी उन्नतिमें अपना सहयोग दें। 'नवजीवन' को प्रकाशित करनेका उद्देश्य व्यवसाय करना नहीं है, अपितु उसके माध्यमसे जनताकी थोड़ी-बहुत सेवा करना, और जनतामें नवजीवनका संचार हो जानेपर उसे यथाशक्ति सरल और सीधी राह बताते हुए जटिल प्रश्नोंको सुलझानेमें मदद करना है।

अतएव उम्मीद है 'नवजीवन' के लेखक अपनी रचनाओंको संक्षेपमें प्रस्तुत करते समय इस बातका ध्यान रखेंगे कि संक्षिप्तीकरणसे विषयवस्तुमें कोई कमी न आए।

जब कागजके भाव गिर जाएँ अथवा नवजीवन प्रेस अथवा कार्यालयमें हम सबकी अपूर्णताके कारण जो नुकसान उठाना पड़ रहा है, यदि हम उसमें कुछ परिवर्तन कर सके तो अवश्य करेंगे और तब 'नवजीवन' के पृष्ठोंकी संख्या फिरसे सोलह

कर दी जाएगी। 'नवजीवन' नुकसान उठाना नहीं चाहता; किन्तु साथ ही लाभ उठाना भी उसका उद्देश्य नहीं है। इसलिए जो-कुछ बचत होगी वह [उक्त रूपमें] पाठकों-को दे दी जाएगी। मुझे उम्मीद है कि पाठक इस बातको ध्यानमें रखते हुए तथा स्वयं अपनेको 'नवजीवन' का मालिक समझकर उसकी उन्नति में सहयोग देंगे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन ७-३-१९२०

५८. टिप्पणियाँ

सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका आगमन

साहित्य परिषद्[1] अप्रैलके महीनेमें होनेवाली है; सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर उस अव-सरपर उपस्थित होकर परिषद्को विभूषित करेंगे, ऐसी खबर मिल चुकी है। उनका आगमन छोटी-मोटी बात नहीं कही जा सकती। वे राजनैतिक पुरुष नहीं, महाकवि हैं। उनकी जोड़का कोई और व्यक्ति हिन्दुस्तानमें तो नहीं ही है। भाई एन्ड्रचूज स्वयं एक कवि हैं और वह मानते हैं कि सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी जोड़का व्यक्ति सारे यूरोपमें भी नहीं है।

वे जैसे कवि हैं वैसे ही तत्त्वज्ञानी और आस्थावान् व्यक्ति हैं। भाई एन्ड्रचूजने उन्हें धर्म-धुरन्धरकी उपमा प्रदान की है। कवीन्द्र रवीन्द्र भारतके एक अनमोल रत्न हैं। उनका काव्य धर्म, ज्ञान, नीति और अन्य शुद्ध तत्त्वोंसे भरपूर है। इस विषयमें किसीको भी सन्देह कर सकनेकी गुंजाइश नहीं है। उनकी 'गीतांजलि' और 'साधना' अपूर्व रचनाएँ हैं। उनकी कहानियाँ बालकों-जैसे विनोदसे भरी हुई होती हैं और साथ ही वे ज्ञान तथा कलासे पूर्ण होती हैं।

मेरी कामना है कि गुजरातकी राजधानी उन्हें उचित सम्मान दे। ऐसे नारे लगाना जिससे कानोंके पर्दे फट जायें, शोभनीय नहीं है। व्यक्तियोंके बड़ी संख्यामें होनेके बावजूद धक्कामुक्की किये बिना हमें हमारे जो प्रिय हैं उन्हें रास्ता देना चाहिए। हम रास्तोंको अलंकृत करें तो उसपर पाश्चात्य संस्कृतिका प्रभाव न होकर पूर्वकी सभ्यताका प्रभाव होना चाहिए। वे अच्छे कवि होनेके साथ ही चित्रकला और संगीत-के भी पारखी हैं। इसलिए हम उनके प्रति अपना जो भाव प्रकट करना चाहें वह शान्तिमय, कलापूर्ण और सब प्रकारके आडम्बरों—भावावेश—से रहित एवं शुद्ध होना चाहिए। मैं व्यवस्थापकोंसे निवेदन करता हूँ कि वे अभीसे विचार-विमर्श करके सुव्यवस्था बनाये रखनेके उपायोंको निश्चित कर लें जिससे हमारे अतिथिको कष्ट न पहुँचे और गुजरात धार्मिक उत्साहके साथ उनको ऐसा सम्मान प्रदान करे जो कवि श्री और गुजरातकी जनता दोनोंको शोभान्वित करनेवाला हो।

[गुजरातीसे]
नवजीवन ७-३-१९२०

१. गुजरात साहित्य परिषद् जिसका छठा अधिवेशन अहमदाबादमें होनेवाला था।

५९. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

[७ मार्च, १९२०][1]

श्री गांधीने अखवारोंको निम्न पत्र लिखा है:

खिलाफतका प्रश्न अब सभी प्रश्नोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। यह एक प्रथम कोटिका साम्राज्यीय प्रश्न बन गया है।

इंग्लैंडके बड़े-बड़े ईसाई धर्माध्यक्ष और मुसलमान नेता, दोनों मिलकर इस प्रश्नको दुनियाके सामने ले आये हैं। ईसाई धर्माध्यक्षोंने चुनौती दी, और मुसलमान नेताओंने उसे स्वीकार कर लिया है।

मुझे विश्वास है कि हिन्दू भाई इस बातको महसूस करेंगे कि खिलाफतके प्रश्नके आगे सुधार[2] तथा अन्य सभी चीजें नगण्य हैं।

अगर मुसलमानोंका दावा उनके धर्मग्रन्थोंके अलावा अन्य सभी आधारोंपर अनुचित होता तो केवल धर्मग्रन्थोंके आधारपर ही उसका समर्थन करनेमें किसीको संकोच हो सकता था। लेकिन जब किसी उचित दावेको धर्मग्रन्थोंकी व्यवस्थाका समर्थन भी प्राप्त हो तब तो वह दुर्निवार ही हो जाता है।

संक्षेपमें दावा यह है कि टर्की साम्राज्यकी गैर-मुस्लिम जातियोंकी सुरक्षाके पूरे आश्वासनके साथ टर्कीके यूरोपीय प्रजाजनोंको टर्कीके अधिकारमें ही रहने दिया जाये और इस्लामके तीर्थ-स्थलोंपर सुलतानका नियन्त्रण रहे तथा जज़ीरत-उल-अरब — यानी मुसलमान विद्वानों द्वारा परिभाषित अरबिस्तान — पर भी, अगर वहाँ रहनेवाले अरब लोग स्वशासन चाहें तो उन्हें स्वशासनका अधिकार देते हुए, सुलतानकी राजनीतिक प्रभुता रहे। ऐसा ही करनेका वचन लॉयड जॉर्जने दिया था[3] और यही बात लॉर्ड हार्डिंगके मनमें भी थी।[4] मुसलमान सिपाही टर्कीको उसके अधिकृत क्षेत्रोंसे वंचित करवानेके लिए कदापि न लड़ते। खलीफाको अरबिस्तानके स्वामित्वसे वंचित करनेका मतलब है खिलाफतको अर्थहीन बना देना।

जो-कुछ टर्कीका था, वह उससे जरूरी गारंटी लेकर उसे वापस कर देना सच्ची ईसाइयतके अनुरूप फल माना जायेगा, लेकिन उसे सजा देनेके लिए उससे उसकी कोई

१. खिलाफतके प्रश्नपर यह ज्ञापन-पत्र ७ मार्च, १९२० को जारी किया गया था।

२. सन् १९१९ की मॉण्टेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधार-योजना।

३. अपने ५ जनवरी, १९१८ के भाषणमें उन्होंने घोषणा की थी कि मित्र-राष्ट्र इसलिए नहीं लड़ रहे हैं कि "टर्कीको उसकी राजधानी या एशिया माइनर तथा थ्रेसके समृद्ध और प्रसिद्ध भूभागसे वंचित कर दिया जाये।"

४. स्पष्टतः तात्पर्य २ नवम्बर, १९१४ को भारत सरकार द्वारा जारी की गई इस घोषणासे है कि इस युद्धसे किसी प्रकारके धार्मिक मामलेका कोई सरोकार नहीं है।

चीज छीन लेना ताकतके जोरपर निकाला गया हल माना जायेगा। इस विजयकी घड़ीमे इंग्लैंडको या मित्रराष्ट्रोंको बहुत ही सावधानीके साथ न्यायपूर्ण आचरण करना चाहिए। तुर्कोंको सर्वथा शक्तिहीन बना देना न केवल अनुचित होगा, बल्कि इससे पूरी गम्भीरताके साथ जो घोषणाएँ की गई हैं, जो वचन दिये गये हैं, वे घोषणाएँ और वचन भी भंग होंगे। अब हम तो इस समय यही चाहेंगे कि वाइसराय महोदय, दक्षिण आफ्रिकाके "अनाक्रामक प्रतिरोध" आन्दोलनके[1] दौरान लॉर्ड हार्डिंग द्वारा अपनाये गये रुखका अनुकरण करते हुए, पूरे साहसके साथ खिलाफत आन्दोलनका नेतृत्व करनेको सामने आयें, और इस प्रकार अपने पूर्वाधिकारीकी तरह ही इस आन्दोलनका स्पष्ट और दृढ़ दिशानिर्देश करें ताकि कहीं ऐसा न हो कि यह आन्दोलन आवेशपूर्ण और गलत नेतृत्वमें पड़कर भयंकर परिणामोंका कारण बन जाये।

लेकिन परिस्थिति वाइसरायकी अपेक्षा हम हिन्दुओं और मुसलमानोंके ऊपर निर्भर है और हिन्दुओं अथवा वाइसरायसे भी अधिक मुसलमान नेताओंके ऊपर निर्भर करती है।

मुसलमान भाई तो पहलेसे ही अधीरताके लक्षण प्रकट कर रहे हैं और यह अधीरता किसी भी दिन पागलपनका रूप धारण कर सकती है, जिसका अवश्यम्भावी परिणाम हिंसा ही होगा। और मेरी तो उत्कट अभिलाषा यही है कि यह बात सबके दिमागमें उतार सकूँ कि हिंसा करना आत्मघात करनेके समान है।

मान लीजिए मित्रराष्ट्र या समझिए इंग्लैंड ही मुसलमानोंकी माँगें स्वीकार नहीं करता तो! लेकिन श्री मॉण्टेग्युने जिस बहादुरीसे मुसलमानोंके पक्षका समर्थन किया है और श्री लॉयड जॉर्जने अपनी घोषणाकी जो व्याख्या की है उसमें तो मुझे आशा ही दिखाई देती है। यह सही है कि श्री जॉर्ज कुछ आगा-पीछा करते दीखते हैं, फिर भी वे इस घोषणाके अन्तर्गत न्याय दिला सकते हैं। लेकिन हमें हर हालतमें बुरेसे-बुरे परिणामके लिए तैयार रहकर अच्छेसे-अच्छे परिणामकी अपेक्षा रखते हुए उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। अब सवाल यह है कि हम प्रयत्न किस प्रकार करें।

हमें जो-कुछ नहीं करना चाहिए, वह तो स्पष्ट है।

(१) मनसा, वाचा और कर्मणा, किसी भी प्रकारसे हमें हिंसा नहीं करनी चाहिए।

(२) इसलिए बदला लेने या सजा देनेके खयालसे ब्रिटिश मालका बहिष्कार नहीं करना चाहिए। मेरे विचारसे बहिष्कार एक प्रकारकी हिंसा ही है। इसके अतिरिक्त, अगर यह वांछित हो तब भी बिलकुल अव्यावहारिक है।

(३) जबतक हमारी न्यूनतम माँगें पूरी नहीं हो जातीं तबतक चैन नहीं लेना है।

(४) खिलाफतके सवालके साथ दूसरे सवालों, उदाहरणार्थ मिस्रके सवाल, को नहीं मिलाना चाहिए।

१. सन् १९१३ और १९१४ में।

अब हम यह देखें कि क्या-कुछ करना चाहिए :

(१) १९ तारीखको[1] कारोबार बन्द रखना और सिर्फ एक प्रस्ताव पास करके अपनी न्यूनतम मांगोंको स्पष्ट करना एक आवश्यक प्रारम्भिक कार्रवाई है, लेकिन शर्त यह है कि हड़ताल पूर्णरूपसे स्वयंस्फूर्त हो और जबतक मजदूरोंको मालिकोंकी अनुमति न मिल जाये तबतक उनसे कामसे नागा करनेको न कहा जाये। मैं तो पूरा अनुरोध करूँगा कि मिल-मजदूरोंको बिलकुल अछूता छोड़ दिया जाये। दूसरी शर्त यह है कि हड़तालमें हिंसा नहीं होनी चाहिए। मुझसे अक्सर ऐसा कहा गया है कि खुफिया पुलिसके लोग हिंसा भड़काते हैं। यह बात सर्वसामान्य आरोपके तौरपर सच होगी, यह मैं नहीं मानता। लेकिन अगर यह सच भी हो तो भी हमारा अनुशासन ऐसा होना चाहिए कि यह असम्भव हो जाये। हमारी सफलता सिर्फ इस बातपर निर्भर करती है कि हममें जनसाधारणको नियन्त्रित और अनुशासित रखने तथा उसका सही मार्गदर्शन करनेकी कितनी क्षमता है।

अब दो शब्द इस सम्बन्धमें भी कि अगर हमारी माँगें पूरी नहीं की जातीं तब क्या किया जा सकता है। बर्बर तरीका तो युद्ध है — चाहे वह खुलकर किया जाये या छिपकर। लेकिन इसका तो विचार भी नहीं करना चाहिए, भले ही वह इसी कारण हो कि यह चीज अव्यावहारिक है। अगर मैं हर व्यक्तिको यह समझा सकूँ कि यह चीज सदैव बुरी ही होती है तब तो हम अपने सभी वैध लक्ष्योंको बहुत ही जल्दी सिद्ध कर लें। कोई व्यक्ति या राष्ट्र शपथपूर्वक हिंसाका परित्याग करके जो शक्ति उत्पन्न करता है, वह दुर्दमनीय हुआ करती है। लेकिन आज मैं हिंसाके विरुद्ध जो दलीलें पेश कर रहा हूँ वे विशुद्ध रूपसे व्यवहारपर आधारित हैं अर्थात् हिंसा एक सर्वथा व्यर्थकी चीज है।

तब हमारे सामने एकमात्र असहयोगका ही उपाय रह जाता है। यह सबसे निष्कलुष उपाय है, क्योंकि अगर इसे हिंसासे सर्वथा अलग रखा जाये तो यह सबसे अधिक कारगर तरीका है। और जब सहयोग करनेका मतलब गिरावट, अपमान या अपनी प्रिय धार्मिक भावनाओंको चोट पहुँचाना हो उस समय असहयोग करना कर्त्तव्य बन जाता है। हम ऐसे अधिकारोंका अन्यायपूर्वक छीना जाना दीनभावसे बरदाश्त कर लें जिनके साथ मुसलमानोंके जीवन-मरणका सवाल जुड़ा हो, इसकी आशा इंग्लैंडको नहीं करनी चाहिए। इसलिए हमें ऊपर और नीचे, दोनों ही स्तरोंपर असहयोग शुरू करना चाहिए। जो लोग सम्मानजनक पदोंपर या मोटी तनख्वाहोंवाले पदोंपर बैठे हुए हैं, उन्हें उनसे अलग हो जाना चाहिए। जो लोग छोटे दर्जेकी सरकारी नौकरी कर रहे हैं उन्हें भी ऐसा ही करना चाहिए। लेकिन जो लोग किसीकी वैयक्तिक सेवामें लगे हुए हों, उनको असहयोग नहीं करना है। जो लोग असहयोगका तरीका नहीं अपनाते उनका बहिष्कार करनेकी धमकीको भी मैं पसन्द नहीं कर सकता। असहयोग जब स्वेच्छया किया जाये तभी कारगर होता है क्योंकि लोक-भावना और जन-असन्तोषकी

१. खिलाफत-दिवस, जो उपवास और हड़ताल करके राष्ट्रीय शोक-दिवसके रूपमें मनाया जानेवाला था।

एकमात्र कसौटी स्वेच्छया किया गया असहयोग ही है। सैनिकोंको काम करनेसे इनकार करनेकी सलाह देना अभी जल्दबाजी होगी। यह आखिरी कदम है, पहला नहीं। हमें यह कदम उठानेका अधिकार तब होगा जब वाइसराय, भारत मंत्री तथा प्रधान मन्त्री हमें असहाय छोड़ देंगे। इसके अलावा सहयोग करना बन्द करनेकी दिशामें जो भी कदम उठाया जाये, बहुत सोच-समझकर उठाया जाये। हमें धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए ताकि हम बड़ीसे-बड़ी उत्तेजनाके बीच भी अपनेको संयत रख सकें।

बहुत-से लोग कलकत्तेके प्रस्तावोंको[1] बड़ी चिन्तित दृष्टिसे देखते हैं। उन्हें इसमें हिंसाकी तैयारीकी गंध आती है। मैं उन्हें इस रूपमें नहीं देखता, हालाँकि उनमें से कुछ प्रस्तावोंका स्वर मुझे पसन्द नहीं है। जिनकी विषय-वस्तुको मैं पूरी तरह नापसन्द करता हूँ उनका जिक्र तो पहले ही कर चुका हूँ।

"क्या हिन्दू ये सभी प्रस्ताव स्वीकार कर सकते हैं?" कुछ लोग ऐसा सवाल पूछते हैं। मैं तो सिर्फ अपनी ही बात कह सकता हूँ। और वह यह है कि जबतक हमारे मुसलमान भाई पर्याप्त संयमसे काम लेते रहेंगे और जबतक मुझे इस बातका भरोसा रहेगा कि वे हिंसाका सहारा लेना या उसका समर्थन करना नहीं चाहते तब-तक मैं उनकी न्यायसम्मत माँगोंकी पूर्तिके प्रयत्नमें उनसे हार्दिक सहयोग करता रहूँगा। लेकिन जिस क्षण देखूँगा कि सचमुच हिंसा की गई है या हिंसा करनेकी सलाह दी गई है अथवा उसका समर्थन किया गया है उसी क्षण मैं सहयोग बन्द कर दूँगा तथा प्रत्येक हिन्दू, और हिन्दू ही क्यों, अन्य लोगोंको भी सहयोगसे हाथ खींच लेनेकी सलाह दूँगा। इसलिए मैं सभी वक्ताओंसे अनुरोध करूँगा कि वे गम्भीरसे-गम्भीर उत्तेजनाके क्षणोंमें भी अधिकसे-अधिक संयमसे काम लें। अगर दृढ़ताके साथ-साथ नम्रता भी बरती जाये तो विजय निश्चित है। लेकिन अगर क्रोध, घृणा, दुर्भावना, अविवेक और अन्ततः हिंसाका बोलबाला हो जाता है तब तो यह उद्देश्य निष्फल होकर ही रहेगा। अगर मुझे अकेले भी खड़ा रहना पड़ा तो मैं जानकी बाजी लगाकर उनका प्रतिरोध करूँगा। मेरा लक्ष्य संसारसे मैत्री है और मैं अन्यायका प्रबलतम विरोध करते हुए भी दुनियाको अधिकसे-अधिक स्नेह दे सकता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०–३–१९२०

१. २९ फरवरी, १९२० को आयोजित खिलाफत सम्मेलनमें पास किये गये प्रस्ताव।

६०. तार : बंगाल खिलाफत समितिको

[७ मार्च, १९२० या उसके बाद][1]

मैंने एक शासन-पत्र जारी किया है जिसमें[2] १९ तारीखके कार्यक्रमका अनुमोदन करते हुए विचार व्यक्त किये हैं। यदि आन्दोलन हिंसात्मक नहीं बन जाता है तो मरते दमतक साथ दूंगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ११-३-१९२०

६१. ६ अप्रैल और १३ अप्रैल

हम ६ अप्रैल[3] और १३ अप्रैलको[4] कभी भूल नहीं सकते। अप्रैलकी ६वीं तारीखने समस्त भारतमें एक जीवनी-शक्तिका संचार किया था और १३वीं अप्रैलने निरपराध लोगोंका रक्त बहाकर पंजाबको पूरे देशके लिए पवित्र तीर्थ बना दिया है। ६ अप्रैलको सत्याग्रह आरम्भ किया गया था। हो सकता है, कोई उसके सविनय-अवज्ञा वाले हिस्सेसे असहमत हो; किन्तु सत्य और प्रेम या अहिंसाके मूलभूत सिद्धान्तोंसे कोई भी असहमत नहीं हो सकता। अहिंसापूर्वक सत्यका आचरण करके आप समस्त संसारको अपने चरणोंमें झुका सकते हैं। सत्याग्रह तत्त्वतः राजनीतिक अर्थात् राष्ट्रीय जीवनमें सत्य और विनयको प्रविष्ट करानेका प्रयत्न-मात्र है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। और कोई सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा ले या न ले, इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि सत्याग्रहकी भावना जन-साधारणमें काफी फैल चुकी है। जो भी हो, अपने पंजाबके दौरेमें जिन हजारों पंजाबियोंसे मैं मिला हूँ उन्हें देखकर तो मुझे ऐसा ही लगा है।

इसके अतिरिक्त ६ अप्रैलको हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्वदेशीकी एक निश्चित योजना भी आरम्भ की गई थी।

६ अप्रैलको ही रौलट अधिनियमकी आधारभूत भावना समाप्त हो गई और वह एक निष्प्राण चीज बनकर रह गया। १३ अप्रैलको वह अतीव शोकपूर्ण [जलियाँवाला बागकी] घटना ही नहीं घटी बल्कि उसमें हिन्दुओं और मुसलमानोंका रक्त एक

१. पाठमें जिस "शापन-पत्र" का उल्लेख है वह ७ मार्च, १९२० को खिलाफतके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको भेजा गया वक्तव्य है (देखिए पिछला शीर्षक)। इसलिए यह तार उसी तारीखको या उसके बाद भेजा गया होगा।

२. खिलाफत दिवस।

३. १९१९, देशव्यापी हड़ताल दिवस।

४. १९१९, जलियाँवाला बागके हत्याकाण्डका दिन।

साथ, एक होकर बहा था और उसने हमारे पारस्परिक सम्बन्धको पूरी तरह सुदृढ़ कर दिया।

इन दोनों घटनाओंको किस प्रकार याद किया जाये, किस तरह उनकी स्मृतिको स्थायित्व प्रदान किया जाये? मेरा तो नम्र सुझाव है कि जो लोग ऐसा-कुछ करना चाहेंगे उन्हें आगामी ६ अप्रैलको (चौबीस घंटेका) उपवास रखना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए तथा ७ बजे सायं सारे भारतमें सार्वजनिक सभाएँ करके रौलट अधिनियमके रद किये जानेकी कामना करते हुए इस राष्ट्रीय विश्वासको अभिव्यक्त करना चाहिऐ कि जबतक यह कानून रद नहीं हो जाता तबतक इस देशमें शान्ति नहीं स्थापित हो सकती। इस कानूनका अब कोई असर नहीं रह गया है, इतना ही काफी नहीं है। सवाल तो यह है कि यह अधिनियम या तो अपमानजनक है या अपमानजनक नहीं है। यदि यह अपमानजनक है तो इसे रद किया ही जाना चाहिए। अगर यह सुधारोंसे[1] पूर्व रद कर दिया जाये तो यह बात सरकारकी सद्भावनाकी द्योतक मानी जायेगी।

६ तारीखसे आरम्भ होनेवाला पूरा सप्ताह १३ तारीखकी दुःखद घटनासे सम्बन्धित किसी कार्यमें लगाया जाना चाहिए। इसलिए मैं नम्रतापूर्वक यह भी कहना चाहता हूँ कि यह सप्ताह जलियाँवाला बाग-स्मारकके लिए धन-संग्रहमें लगाया जाना चाहिए और यह स्मरण रखना चाहिए कि हमें जो रकम इकट्ठी करनी है वह दस लाख रुपये है। गबन और धोखेके विरुद्ध चौकस रहते हुए प्रत्येक गाँव या नगर अपनी धन-संग्रह योजना आप बनाये। धन-संग्रहका कार्य १२ अप्रैलके सायंतक समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

फिर रही १३ अप्रैलकी बात। यह पवित्र दिवस उपवास और प्रार्थनामें लगाया जाना चाहिए। इसमें किसी प्रकारका दुर्भाव या रोष नहीं होना चाहिए। हम निर्दोष मृतकोंकी स्मृति कायम रखना चाहते हैं, हम इस कृत्यमें निहित अन्यायको याद नहीं रखना चाहते। राष्ट्रका उत्थान बलिदान करनेके लिए तैयार रहनेसे होगा, बदला लेनेके लिए तैयार रहनेसे नहीं। मैं यह भी चाहूँगा कि उस दिन हमारा राष्ट्र भीड़ द्वारा की गई ज्यादतियोंका[2] भी स्मरण करे और उनके लिए पश्चात्ताप करे। हम सप्ताहान्तमें भारत-भरमें सभाएँ करके प्रस्ताव पास करें, जिनमें साम्राज्यीय सरकार और भारत सरकार, दोनोंसे अनुरोध करें कि वे ऐसे प्रभावकारी कदम उठायें जिनसे इन दुःखद घटनाओंकी पुनरावृत्ति असम्भव हो जाये।

मैं यह भी अनुरोध करूँगा कि इस सप्ताहके दौरान प्रत्येक व्यक्ति — चाहे वह स्त्री हो या पुरुष — अपने-आपमें सत्याग्रह, हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्वदेशीके सिद्धान्तोंको यथाशक्ति और भी पूर्णतासे उतारनेका प्रयत्न करे। हिन्दू-मुस्लिम एकतापर जोर देनेके लिए मेरी सलाह यह है कि शुक्रवार, १२ अप्रैलको सायं ७ बजे हिन्दुओं और मुसलमानोंकी संयुक्त सभाएँ की जायें और उनमें खिलाफतके सवालको मुसलमानोंकी उचित भावनाओंके अनुसार तय करनेकी माँग की जाये।

१. सन् १९१९ के मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार, जिन्हें उस समय कार्यरूप देनेकी प्रतीक्षा थी।
२. अप्रैल १९१९ के उपद्रव।

इस प्रकार इस राष्ट्रीय सप्ताहको आत्मशुद्धि, आत्म-निरीक्षण, बलिदान, सही अनुशासन और लोगोंकी चिरपोषित राष्ट्रीय भावनाओंकी अभिव्यक्तिका सप्ताह बन जाना चाहिए। इसमें किसी प्रकारकी कटुताका आभास भी नहीं देना चाहिए और न ऐसे शब्दोंका ही प्रयोग करना चाहिए जिससे किसीको कष्ट पहुँचे। लोगोंको पूर्ण निर्भीकता और दृढ़ताका परिचय देना चाहिए।

क्या ६ तारीख और १३ तारीखको हड़ताल भी न की जाये? मेरा उत्तर है, नहीं, कदापि नहीं। जो लोग सत्य और अहिंसामें विश्वास रखते हैं उनके लिए यह सप्ताह सत्याग्रह सप्ताह है। ६ अप्रैलकी हड़ताल सत्याग्रह हड़ताल थी, क्योंकि वह सत्याग्रहका प्रारम्भ था। गत ६ अप्रैलकी हड़ताल यद्यपि स्वयंस्फूर्त थी, किन्तु वह बेजा दबावसे सर्वथा मुक्त न थी, क्योंकि उस दिन लोगोंको गाड़ियोंके उपयोग और ऐसे ही कुछ अन्य कार्य करनेसे मना तो किया ही गया था इसलिए मैं अनुशासन और प्रायश्चित्तके इस सप्ताहमें लोगोंको हड़ताल करनेकी सलाह नहीं दूँगा। इसके अतिरिक्त हड़ताल इतनी साधारण वस्तु भी न बना दी जानी चाहिए। वह बहुत असाधारण और कम अवसरोंपर की जानी चाहिए।

मैं सादर विश्वास करता हूँ कि सभी दलों और सभी वर्गोंके लोग इस राष्ट्रीय सप्ताहको मनानेमें अपना पूरा योगदान देनेका प्रयत्न करेंगे और इसका उपयोग राष्ट्रीय जागरणकी दिशामें कुछ सच्ची और ठोस प्रगतिके लिए करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १०-३-१९२०

६२. क्या यह न्यायालयकी मानहानि थी?[1]

इस प्रारम्भिक आदेशके[2] सम्बन्धमें सुनवाई इसी मासकी ३ तारीखको माननीय न्यायमूर्ति मार्टिन, हेवर्ड और काजीजीके सामने हुई। 'यंग इंडिया'के सम्पादक श्री गांधी और प्रकाशक श्री देसाईको यह स्पष्ट करना था कि अहमदाबादके जिला-जज श्री कैनेडीने उच्च न्यायालयके पंजीयकको अहमदाबादके कुछ सत्याग्रही वकीलोंके कार्यके सम्बन्धमें शिकायत करते हुए जो पत्र भेजा था, उसे अपनी पत्रिकाके ६ अगस्त, १९१९ के अंकमें टिप्पणी-सहित छापकर न्यायालयकी अवमानना करनेके जुर्ममें उनपर मुकदमा क्यों न चलाया जाये।

प्रार्थीकी ओरसे ऐडवोकेट-जनरल माननीय सर टामस स्टैंगमैन, सर्वश्री बहादुरजी और पोकॉक उपस्थित हुए। और श्री गांधी और श्री देसाई अपना पक्ष प्रस्तुत करनेके लिए स्वयं उपस्थित थे।

१. एस० वी० खेर द्वारा सम्पादित तथा नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबादसे प्रकाशित **द लॉ ऐंड द लॉयर्स** नामक संकलनमें इस लेखको गांधीजीका लिखा बताया गया है।

२. गांधीजी और महादेव देसाईके विरुद्ध जारी किया गया कैफियत-तलबी आदेश (रूल निसी); देखिए "पत्र: बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको", २७-२-१९२०।

ऐडवोकेट-जनरलने मामलेको आरम्भ करते हुए कहा कि यह कार्रवाई श्री गांधी और श्री देसाई द्वारा न्यायालयकी मानहानिके सिलसिलेमें की जा रही है; क्योंकि वे सम्बन्धित पत्रिकाके क्रमशः सम्पादक और प्रकाशक हैं, इस बारेमें कोई सन्देह ही नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि ऐसा जान पड़ता है कि पिछले अप्रैल महीनेमें श्री कैनेडीने यह देखकर कि अहमदाबादके कुछ वकीलोंने सत्याग्रहकी प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर किये हैं,[1] उनसे जवाब तलब किया था। उन्होंने पूछा था कि प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करनेके कारण उनकी सनदें क्यों न रद कर दी जायें, और चूँकि उन्हे वकीलोंका जवाब सन्तोषजनक नहीं लगा इसलिए उन्होंने २२ अप्रैल, १९१९ को उच्च न्यायालयके रजिस्ट्रारको एक पत्र लिखा। उसके फलस्वरूप उच्च न्यायालयने सम्बन्धित वकीलोंके नाम दो नोटिस जारी किये। श्री कैनेडीके पत्रकी एक नकल रजिस्ट्रारने एक वकीलके प्रतिनिधि श्री दिवेटियाको दी जिन्होंने वह नकल फिर श्री कालिदास जे० झवेरी नामक एक सत्याग्रही वकीलको दे दी और श्री झवेरीने श्री गांधीको। ६ अगस्तको यह पत्र "अहमदाबादमें ओ'डायरवाद" शीर्षकसे उनके पत्रमें प्रकाशित किया गया और उसके साथ "सत्याग्रहियोंको डिगानेकी कोशिश"[2] शीर्षकसे एक लेख इस पत्रकी आलोचना करते हुए छापा गया। (यहाँ एडवोकेट-जनरलने पत्र और लेख पढ़कर सुनाये।) उन्होंने आगे कहा कि लेखसे प्रतीत होता है कि, "ओ'डायर" से तात्पर्य उस व्यक्तिसे था जो शान्तिका भंजक हो। लेखमें कहा गया है कि जिला-जज इस मामलेमें सुनवाईसे पहले ही फैसला दे रहे हैं। लेखमें उनका व्यवहार सज्जनताके विरुद्ध ही नहीं, उससे भी बुरा, अक्षम्य बताया गया है। उनके बारेमें कहा गया है कि वे बोल्शेविज्मकी आग भड़का रहे हैं। संक्षेपमें, श्री कैनेडीके विरुद्ध ये आरोप लगाये गये हैं। फिर कार्रवाई हुई। कार्रवाईके बाद पंजीयकने श्री गांधीको एक पत्र लिखा, जिसमें उनसे मुख्य न्यायाधीशके कमरेमें उपस्थित होकर यह पत्र प्रकाशित करनेके सम्बन्धमें स्पष्टीकरण देनेके लिए अनुरोध किया गया था। श्री गांधीने तार[3] द्वारा उत्तर भेजते हुए सूचित किया कि अपनी पंजाब-यात्राके कारण वे निश्चित समयपर आनेमें असमर्थ हैं, इसलिए क्या लिखित स्पष्टीकरण दे देना पर्याप्त होगा? पंजीयकने उत्तर दिया कि मुख्य न्यायाधीश महोदय श्री गांधीके निर्धारित कार्यक्रममें बाधा डालना नहीं चाहते और लिखित स्पष्टीकरणसे काम चल जायेगा। २२ अक्तूबरको श्री गांधीने एक लिखित स्पष्टीकरण[4] भेजा। इसमें उन्होंने कहा कि उन्हें उक्त पत्र आम तरीकेसे ही मिला था। और चूँकि उन्हें वह सार्वजनिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्वपूर्ण जान पड़ा, इसलिए उन्होंने इसे छाप दिया और इसपर टिप्पणी करते हुए सोचा कि यह एक सार्वजनिक सेवाका कार्य है। इसलिए उनका

१. रौलट विधेयकोंके विरुद्ध आपत्ति प्रकट करनेके लिए यह प्रतिज्ञापत्र गांधीजीने तैयार किया था और २४ फरवरी, १९१९ को वल्लभभाई पटेल, सरोजिनी नायडू, हॉर्निमैन तथा अन्य लोगोंके साथ उन्होंने स्वयं भी इसपर हस्ताक्षर किये थे; देखिए खण्ड १५, पृष्ठ १०४-५।

२. देखिए खण्ड १६, पृष्ठ १०-१२।

३. देखिए खण्ड १६, पृष्ठ २६०; पा० टि० १।

४. देखिए खण्ड १६, पृष्ठ २६०-६१।

दावा है कि पत्रको प्रकाशित करने और उसपर टिप्पणी करनेमें उन्होंने अपने पत्रकारके अधिकारोंके भीतर काम किया है। इसके उत्तरमें पंजीयकने लिखा[1] कि मुख्य न्यायाधीश महोदय इस उत्तरसे सन्तुष्ट नहीं है, लेकिन यदि 'यंग इंडिया'के अगले अंकमें निम्न प्रकारकी क्षमा-याचना छाप दी जायेगी तो यह पर्याप्त माना जायेगा।

क्षमा-याचनाका प्रारूप

चूंकि हमने ६ अप्रैल, १९१९ को 'यंग इंडिया' में अहमदाबादके जिला-जज श्री कैनेडीका बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको लिखा गया एक व्यक्तिगत पत्र प्रकाशित किया था और चूंकि उसी दिन हमने उक्त पत्रपर कुछ टिप्पणियाँ छापीं और चूंकि हमें यह बताया गया है कि जब उक्त उच्च न्यायालयमें इस पत्रके सम्बन्धमें कुछ कार्रवाई की जा रही है उस समय उक्त पत्रको छापना या उसपर टिप्पणी करना हमारे लिए उचित न था, अतः अब हम इसके लिए खेद प्रकट करते हैं और उक्त पत्र और उसके सम्बन्धमें टिप्पणियाँ छापनेके लिए उक्त उच्च न्यायालयके माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदय और न्यायाधीशोंसे क्षमा-याचना करते हैं।

ऐडवोकेट-जनरलने कहा कि मैं तनिक विश्वासके साथ निवेदन करता हूँ कि यह क्षमायाचना ऐसी थी जो प्रतिपक्षीको प्रकाशित कर देनी चाहिए थी। मेरे खयालसे इससे नर्म क्षमा-याचनाकी बात सोचना कठिन था। फिर भी, श्री गांधीने यह क्षमा-याचना प्रकाशित नहीं की और वकीलकी सलाह लेकर पंजीयकको पत्र लिखा कि वे क्षमा-याचना करनेमें असमर्थ हैं। यह पत्र मिलनेसे पहले उच्च न्यायालयने ११ दिसम्बरको मानहानिके जुर्ममें एक नोटिस जारी करनेका आदेश दे दिया था। यह मुकदमा उसीपर आधारित है। श्री गांधीका ११ दिसम्बर, १९१९ का पूरा पत्र इस प्रकार है।[2]

इस आदेशकी सुनवाईसे कुछ दिन पूर्व २७ फरवरीको श्री गांधीने पंजीयकके नाम एक पत्र[3] लिखा, जिसके साथ श्री देसाई और वे [श्री गांधी], जो वक्तव्य न्यायालयकी सेवामें भेजना चाहते थे वे वक्तव्य भी भेज दिये। दोनों वक्तव्योंके पाठ नीचे दिये जा रहे हैं।[4]

ऐडवोकेट-जनरलने आगे कुछ निर्णयोंका उदाहरण देते हुए यह बताया कि न्यायालयकी मानहानिमें क्या-क्या बातें आती हैं। २ क्यू० बी० पृष्ठ ३६ में कहा गया है कि मानहानि दो प्रकारकी होती है: (१) ऐसा कार्य या लेख जो न्यायालयको बदनाम करनेवाला हो; (२) ऐसा कोई भी कार्य या लेख जिसका उद्देश्य न्यायकी सामान्य

१. इस पत्रपर ३१ अक्तूबर, १९१९ की तारीख पड़ी हुई थी और यह गांधीजीको ७ नवम्बर, १९१९ को लाहौरमें मिला था।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रके पाठके लिए देखिए खण्ड १६, पृष्ठ ३५०-५१।

३ और ४. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। पत्र और वक्तव्योंके पाठके लिए देखिए "पत्र: बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको", २७-२-१९२०।

और उचित प्रक्रियामें या न्यायालयकी कानूनी कार्यविधिमें रुकावट या बाधा डालना हो। ऐडवोकेट-जनरलने कहा कि इस पत्र और तत्सम्बन्धी टिप्पणीके प्रकाशनसे दो तरहसे मानहानि होती है: (१) लॉर्ड हार्डविकके शब्दोंमें इससे श्री कैनेडीको बदनाम किया गया है और (२) न्यायकी प्रक्रियामें बाधा डालनेका प्रयत्न किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि उच्च न्यायालय छोटे न्यायालयकी मानहानिके सम्बन्धमें भी दण्ड दे सकता है। अहमदाबादका जिला-न्यायालय उच्च न्यायालयकी निगरानीमें है और इसे न्यायालयके सामने जो-कुछ किया जाये, उसके अतिरिक्त और किसी बातके लिए मानहानिके आरोपमें कार्रवाई करनेका अधिकार नहीं है।

न्यायमूर्ति मार्टिनने पूछा कि क्या किसी दीवानी मुकदमेमें वादपत्र या लिखित वक्तव्यको प्रकाशित करना न्यायालयकी मानहानि है।

ऐडवोकेट-जनरलने उत्तर दिया कि हाँ, यह मानहानि है। जबतक मुकदमेकी सुनवाई नहीं होती तबतक उसके सम्बन्धमें न्यायालयसे कहीं कोई भी चीज सार्वजनिक नहीं बनती। ऐडवोकेट-जनरलने[1] (१९०६) १ किंग्ज ब्रांच पृष्ठ १३२, और (१९०३) २ के० बी० का भी हवाला दिया, और कहा कि ऐसे कागजात मुकदमा खत्म होनेके बाद प्रकाशित करने और उसके पहले प्रकाशित करनेमें अन्तर है। अन्तमें ऐडवोकेट-जनरलने यह निष्कर्ष निकाला कि श्री गांधीके लेखका भाव यह है कि चूँकि श्री कैनेडी बोल्शेविज्मकी आग भड़का रहे हैं, इसलिए अगर उच्च न्यायालय उनके पत्रके अनुसार बरताव करेगा तो वह भी वैसे ही शान्ति भंग करेगा और बोल्शेविज्मकी आग भड़कायेगा।

श्री गांधीने न्यायालयको सम्बोन्धित करते हुए कहा कि मैं अपने वक्तव्यमें जो-कुछ कह चुका हूँ उससे अधिक कुछ कहना नहीं चाहता। मेरे बहुतसे सम्मान्य मित्रोंने इस बातपर विचार करनेके लिए कहा कि मैं अभीष्ट क्षमायाचना न करके कहीं जिद तो नहीं कर रहा हूँ। मैंने इस मामलेमें बार-बार विचार किया है और न्यायालयकी राय जो भी हो, लेकिन मैं तो उससे यही विश्वास करनेका अनुरोध करूँगा कि मेरे मनमें जिद जैसी कोई बात ही नहीं है। मैं सामान्य न्यायालयका पूरा आदर करना चाहता हूँ। लेकिन दूसरी ओर मैं यह आशा भी करता हूँ कि अगर मैं अपनी सम्मान-भावना और पत्रकारिताके गौरवका भी वैसा ही खयाल रखूँ तो इसमें न्यायालयको कोई आपत्ति नहीं होगी। मैंने ऐडवोकेट-जनरलका विचार ध्यानपूर्वक सुना है और यह समझनेका प्रयत्न किया है कि वे जो-कुछ कह रहे हैं, उसमें क्या कहीं कोई ऐसी बात है जिससे मुझे प्रतीत हो सके कि मैं गलतीपर हूँ। यदि मुझे ऐसी कोई प्रतीति हो गई होती तो अपना वक्तव्य तुरन्त वापस ले लेता और क्षमा माँग लेता। मैं इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता।

न्यायमूर्ति मार्टिनने कहा कि कानूनका मुद्दा श्री गांधीके विरुद्ध है। श्री गांधीने कहा है कि एक पत्रकारकी हैसियतसे उन्होंने जो-कुछ किया है, वह करनेका उन्हें अधिकार है। किन्तु ऐडवोकेट-जनरलने उनके विरुद्ध प्रमाण दिये हैं। क्या उनके पास अपनी स्थितिके समर्थन में पेश करनेके लिए ऐसे पूर्वोदाहरणोंका कोई प्रमाण है?

श्री गांधीने कहा कि कानूनके मुद्देके बारेमें मेरा मत ऐडवोकेट-जनरलसे भिन्न है। किन्तु मेरा मामला ऐसा है कि मैं इसके लिए कानूनके मुद्देका आधार नहीं ले सकता। मैं कानूनी मुद्दोंपर बहस करना और अपने लिए मैंने जो सीमाएँ निश्चित कर रखी हैं, उनसे बाहर नहीं जाना चाहता। न्यायालय अबसे पहले बहुत-से मामलोंमें बचावके बिना ही न्याय कर चुका है और मैं चाहता हूँ, मेरे सम्बन्धमें भी यह समझा जाये कि मेरी ओरसे कोई बचाव पेश नहीं किया जा रहा है। न्यायाधीशगण कानूनके मुद्देके आधारपर जो भी निर्णय देंगे उससे मुझे पूरा सन्तोष प्राप्त होगा।

न्यायमूर्ति मार्टिनने श्री गांधीको स्मरण दिलाया कि वे स्वयं भी एक वकील हैं और वे कानूनी दृष्टिकोणसे अपने मामलेमें बहस कर सकते हैं।

श्री गांधीने कहा कि मैं इसके लिए तैयार नहीं हूँ और उन्होंने फिर यही बात दुहराई कि कानूनी मुद्देके बारेमें न्यायालयका जो भी निर्णय होगा उससे मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा। किन्तु चूँकि न्यायालयने मुझसे बहस करनेके लिए बहुत आग्रह किया है, इसलिए मैं यह कहना चाहूँगा कि मुझे नहीं लगता कि मैंने ऐसा करके मुकदमेसे सम्बन्धित किसी पक्षको हानि पहुँचाई है। माननीय ऐडवोकेट-जनरलने कहा है कि जिला-जजके सम्बन्धमें मेरी टिप्पणीसे उनकी मानहानि होती है। लेकिन मैंने जिला-जजके सम्बन्धमें, उन्हें जजके रूपमें देखते हुए टिप्पणी नहीं की थी, बल्कि एक व्यक्तिके रूपमें देखते हुए की थी।

न्यायमूर्ति मार्टिन: उदाहरणके लिए एक सनसनीदार हत्याका मामला लीजिए। मान लीजिए कि अखबार मुकदमेके चालू रहते इससे सम्बन्धित घटनाओंपर टिप्पणी करते हैं, तो इसका नतीजा क्या होगा?

श्री गांधी: मैं तो एक सामान्य जनके रूपमें दोनों मामलोंमें अन्तर करनेकी धृष्टता करूँगा। जिला-जजने यह पत्र वादीके रूपमें लिखा है, जजके रूपमें नहीं।

न्यायमूर्ति मार्टिन: नहीं, यह पत्र तो उन्होंने एक जजकी हैसियतसे, कुछ वकीलोंपर अपने न्यायाधिकरणका उपयोग करते हुए लिखा था।

श्री गांधी: मैं मानता हूँ, किन्तु वे किसी मुकदमेका निर्णय करनेके लिए न्यायालयमें नहीं बैठे हुए थे। मुझे फिर लग रहा है कि मैंने अपने लिए जो सीमाएँ निर्धारित कर रखी हैं, उनसे मैं बाहर जा रहा हूँ। न्यायालयकी मानहानिके कानूनका कुल मतलब यह है कि कोई भी व्यक्ति ऐसा कोई कार्य न करे जिससे न्यायालयमें जो मुकदमा चल रहा हो वह किसी रूपमें प्रभावित हो। लेकिन यहाँ न्यायाधीशने जो-कुछ किया है, एक व्यक्तिके रूपमें किया है। मैंने न्यायाधीशोंके निर्णयको किसी भी रूपमें प्रभावित करनेके लिए कुछ नहीं किया है।

न्यायमूर्ति मार्टिन: जब कोई मुकदमा विचाराधीन हो उस समय यदि अखबार उसपर टिप्पणी करें तो क्या यह बात खतरनाक न होगी? न्यायालय न्याय-संस्था न रह जायेगी और उसके बदले समाचारपत्र न्याय-संस्था बन जायेंगे।

श्री गांधी: मैं फिर एक अन्तर स्पष्ट करनेकी धृष्टता करूँगा। यदि कोई पुत्र अपने पितापर अनुचित रूपसे मुकदमा चलाये तो पिताके विरुद्ध मुकदमा चलाकर

पुत्रने जो आचरण किया है उसपर मेरा टिप्पणी करना उचित ही होगा और उससे न्यायालयके निर्णयपर किसी प्रकारका प्रभाव न पड़ेगा। और क्या हमारे न्यायालय लोक-सेवी व्यक्तियोंको उस समय रोकते हैं जब वे मुकदमेबाजोंको अपने दावे न्यायालयसे बाहर आपसमें बैठकर तय कर लेनेके लिए प्रेरित करते हैं, अतः मेरा निवेदन यह है कि मैंने कोई मानहानि नहीं की है। मैंने किसी भी पक्षको प्रभावित नहीं किया है और न्यायाधीशके रूपमें श्री कैनेडीके कार्यपर कोई टिप्पणी नहीं की है। मेरी उत्कट इच्छा है कि मैं न्यायालयको यह विश्वास दिला सकूँ कि श्री कैनेडीके पत्रपर टिप्पणी करते हुए मैंने न्यायालयके प्रति रंचमात्र भी असम्मान नहीं दिखाया है। हो सकता है, मैंने भूल की हो और न्यायालयके विचारसे गम्भीर भूल की हो; किन्तु मैंने गलत इरादेसे या अनादरभावसे ऐसा नहीं किया है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मैंने जो-कुछ कहा है, वह सब प्रकाशक श्री देसाईके मामलेमें भी लागू होता है।

तब न्यायमूर्ति मार्टिनने श्री गांधीका ध्यान इंग्लैंडके एक फैसलेकी ओर दिलाया जिसकी खबर हाल ही में लन्दनके 'टाइम्स' के एक अंकमें छपी थी। इस फैसलेमें एक समाचारपत्रके संपादक, प्रकाशक और मुद्रकपर मानहानिके अपराधमें जुर्माने किये गये थे।

श्री गांधी: यहाँ भी मेरा निवेदन है कि मैं दोनों मामलोंका अन्तर स्पष्ट कर सकता हूँ। मैं जब इंग्लैंडमें था उस समय वहाँ श्रीमती मेब्रिकका प्रसिद्ध मुकदमा चल रहा था। इस सवालपर सभी समाचारपत्र दो दलोंमें बँट गये थे; एक दल श्रीमती मेब्रिककी निन्दा करता था और दूसरा जज न्यायमूर्ति स्टीफेनकी खबर लेता रहता था तथा यहाँतक कहता था कि वे इस मुकदमेकी सुनवाई करनेके योग्य ही नहीं हैं।

न्यायमूर्ति मार्टिन: किन्तु यह सब तो मुकदमा खत्म होनेके बादकी बात है?

श्री गांधी: जी नहीं, जब यह मुकदमा चल रहा था तभीकी बात है। यह मुकदमा कई महीनेतक चला था और मैं इसकी हर दिनकी कार्रवाई पूरी-पूरी पढ़ जाया करता था।

न्यायमूर्ति मार्टिन: लेकिन श्री गांधी यह मुकदमा तो कई महीने नहीं कई दिन ही चला था।

श्री गांधी: निस्सन्देह, यहाँ मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसमें भूल-सुधारकी गुंजाइश है, किन्तु मैं इस बारेमें बिलकुल निश्चित हूँ कि जिन दिनों यह मामला चल रहा था, उन दिनों वहाँके अखबार इस प्रश्नको लेकर व्यंग-वक्रोक्ति और आरोप-आक्षेपसे भरे रहते थे। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि एक पत्रकारके रूपमें मैं आज भी उस हदतक नहीं जा सकता जिस हदतक वे जाते थे।

श्री देसाईने कहा कि श्री गांधीने जो-कुछ कहा है, उससे मैं सहमत हूँ। मुझे विश्वास है कि मैं अपने मामलेमें बहस करनेमें श्री गांधीकी तुलनामें बहुत अधिक अक्षम हूँ और मैं ऐसा करनेकी सोच भी नहीं सकता। न्यायाधीश महोदय जो भी

निर्णय दगे, उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक और आदरके साथ स्वीकार कर लूंगा। मुकदमेका निर्णय मुल्तवी रखा गया।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०–३–१९२०

६३. पत्र : महादेव देसाईको

बुधवार [१० मार्च, १९२०][2]

भाई महादेव,

लगता है माथेरानमें तुमने ऐसा नियम बनाया है कि मेरे न लिखनेपर तुम्हें भी न लिखना चाहिए। आज तो मैंने हद ही कर दी। सवेरे दो बजेसे काम करना शुरू कर दिया। इससे थकावट तो हो गई लेकिन खूब शान्ति मिली। संशोधनके बाद रिपोर्टको[3] नया रूप दे चुकनेपर मैं भी, अगर मेरा हृदय टूट न गया तो वैसे ही नाचूंगा-कूदूंगा जैसे छुट्टी मिलनेपर स्कूलका बच्चा प्रसन्नतासे उछलता-कूदता है।

तुम्हारी सेहत वहाँ अच्छी रहनी ही चाहिए। दुर्गा[4] कल नवसारी गई है। मेरे घोषणापत्रको[5] पढ़ा? न पढ़ा हो तो कलके 'टाइम्स' में पढ़ना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४११) से।

१. १२ मार्चको दिये गये निर्णयमें निष्कर्ष रूपमें माननीय न्यायमूर्ति मार्टिनने कहा कि "न्यायालयकी दृष्टिमें आरोप सिद्ध हो गया है। न्यायालय प्रतिवादियोंकी कड़ी भर्त्सना करता है और दोनोंको भविष्यमें ऐसा कोई आचरण न करनेको आगाह करता है।"

२. पत्रमें 'रिपोर्ट' और 'घोषणापत्र' का जिक्र आनेसे लगता है कि यह पत्र इसी तारीखको लिखा गया था।

३. सम्भवतः पंजाबके उपद्रवोंसे सम्बन्धित रिपोर्ट जो २५ मार्च, १९२० को प्रकाशित हुई थी।

४. महादेव भाईकी पत्नी।

५. सम्भवतः खिलाफतके प्रश्नपर समाचारपत्रोंको दिया गया वक्तव्य जो ७ मार्च, १९२० को दिया गया था।

६४. पत्र : एम० आर० जयकरको

साबरमती आश्रम
१० मार्च, १९२०

मैं आपको [रिपोर्टका] अधिकांश लाहौरसे और शेषांश अमृतसरसे भेज चुका हूँ।[1] मैंने हर चीजको यथासम्भव पूरी सावधानीसे देखनेकी कोशिश की है। आपने हाशियेपर जो सुझाव लिखे थे, उन सबपर मैंने विचार किया है और जिन्हें शामिल करने योग्य समझा उन्हें शामिल कर लिया है। कृपया मुझे सूचित कीजिए कि प्रगति कैसी हो रही है। क्या १६ अप्रैलतक रिपोर्ट तैयार हो जायेगी?[2]

[अंग्रेजीसे]

द स्टोरी ऑफ माई लाइफ

६५. पत्र : एम० आर० जयकरको[3]

११ मार्च, १९२०

(१)

डाक-विभागके अधिकारियोंके सौजन्यसे मैं आपको अब पूरी सामग्री,[4] यानी २४ तककी सामग्री, भेज पा रहा हूँ। दूसरी किस्तमें मैंने कुछ जोड़ा है, कृपया उसपर गौर कर लेंगे। इस बार काफी अच्छी सामग्री भेजनेकी आशा करता हूँ।

(२)

आज थोड़ी और सामग्री भेज रहा हूँ। मेरे सन्तोषके लिए इतना काफी है। सच तो यह है कि अब मैं बहुत ज्यादा थक गया हूँ, और दुहरानेका काम तो मुझे बहुत भारी लग रहा है। रात में बिलकुल आराम नहीं कर पाया।

मैं चाहता हूँ, इस कामको भरसक सर्वांगपूर्ण बनाऊँ।

१. तात्पर्य सन् १९१९ के पंजाबके उपद्रवोंकी रिपोर्टके मसविदेके अंशोंसे है। यह रिपोर्ट जयकरकी देख-रेखमें बम्बईमें मुद्रित हुई थी।

२. के० सन्तानम्ने जो कांग्रेस पंजाब जाँच-आयोगके मन्त्री थे समाचारपत्रोंको सूचित किया था कि रिपोर्ट १६ अप्रैलको प्रकाशित हो जायेगी; परन्तु वह वस्तुतः २५ मार्चको प्रकाशित हुई थी।

३. इस शीर्षकमें तीन पत्र हैं, जो गांधीजीने श्री जयकरको पंजाबके उपद्रवोंपर कांग्रेस-रिपोर्टकी प्रेसको भेजी गई प्रतिके बारेमें एक ही दिन लिखे थे।

४. पंजाबके उपद्रवोंपर तैयार की गई कांग्रेसकी रिपोर्टकी प्रेस-प्रतिका हिस्सा।

(३)

श्री दासने[1] जो सबूतोंका सारांश तैयार किया है और जिस पूरक सामग्रीको जोड़नेका सुझाव दिया है, उसे मैंने ध्यानसे पढ़ लिया है। मैंने तो समझा था कि वे कुछ विशेष गवाहोंके बयानोंको इकट्ठा करके प्रस्तुत करेंगे और मैं उनका अध्ययन कर सकूँगा। जो भी हो, अभी जो सारांश मेरे सामने है, वह बिलकुल सन्तोषप्रद नहीं है, और इनसे भी बड़ी बात यह है कि उन्होंने जिस ढंगपर विवेचन करनेका सुझाव दिया है, अगर उस ढंगसे विवेचन किया जाये तो इस रिपोर्टकी, जो मेरे विचारसे अन्यथा सन्तोषप्रद है, सारी खूबी नष्ट हो जायेगी। श्री दासने जो मुद्दे प्रस्तुत किये हैं, वे मुझे तो अलग-अलग कड़ियों-जैसे दिखाई देते हैं, जिन्हें आपसमें जोड़ा नहीं जा सकता जबकि मैं तो यह चाहता हूँ कि वे ईंटोंकी तरह एक-दूसरेसे जुड़ते जायें और एक सड़क बन जाये जिसपर चलकर पाठक लक्ष्यतक पहुँच जाये। वैसे तो मैं चाहूँगा कि उन्होंने जो परिकल्पना[2] सुझाई है, उसका विवेचन रिपोर्टमें अवश्य करूँ, लेकिन जबतक कुछ साफ सबूत सामने न हों, तबतक वैसा नहीं कर सकता।

इसका विवेचन प्रस्तुत करनेके लिए आप खुद इस चीजका अध्ययन करें और अगर आप अन्यथा सोचें तो मैं चाहूँगा कि इस मुद्देसे सम्बन्धित बयानोंको आप खुद एकत्र करें और फिर इस परिकल्पनाका विवेचन प्रस्तुत करें। आप जो-कुछ भी लिख देंगे उसपर मैं हस्ताक्षर कर दूँगा, बशर्ते कि आप श्री दासने जो-कुछ कहा है, उससे आगे न जायें। उन्होंने तो यह बात हम दोनोंपर ही छोड़ दी है। मैं नहीं चाहता कि आप यों ही मेरे तर्कको स्वीकार कर लें। जो चीज मुझे बिखरी हुई और असम्बद्ध लगती है, हो सकता है, वह आपको बिलकुल सुसम्बद्ध लगे। यदि आप कोई भिन्न दृष्टिकोण अपनाते हैं तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। अगर श्री दास हममें से किसी एककी भी सारी शंकाएँ दूर कर देते हैं तो मैं उनकी बात भी मान लूँगा। यदि आपको यह मामला इतना महत्त्वपूर्ण लगे कि इसपर सलाह-मशविरा किये बिना नहीं चल सकता तो उसके लिए यहाँ आ जाइए। कृपया इसे अपनी टिप्पणीके साथ श्री दासको भेज दें।

[अंग्रेजीसे]

द स्टोरी ऑफ माई लाइफ

१. चित्तरंजन दास, कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त आयोगके सदस्य।

२. इस पत्रके सम्बन्धमें श्री जयकर अपनी जीवनी **द स्टोरी ऑफ माई लाइफ** (पृ० ३३२) में कहते हैं: "यह इस प्रश्नके संदर्भमें था कि क्या इस विचारकी पुष्टिके लिए काफी प्रमाण हैं कि डायरने लोगोंको जलियाँवालाके अहातेमें पहुँचा देनेका एक जाल बिछा रखा था, ताकि उन्हें भरपूर सजा दी जा सके। मेरी और मोतीलाल तथा दासकी राय थी कि इस आरोपको सिद्ध करनेके लिए काफी प्रमाण हैं, और इसलिए रिपोर्टमें इसकी चर्चा की जानी चाहिए; किन्तु गांधी हमारे मतसे बिलकुल असहमत थे।"

६६. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

आश्रम
साबरमती
११ मार्च, १९२०

प्रिय गुरुदेव,

आपके दो तार मिले थे — एक वह जो बनारसके पतेपर था और फिर वहाँसे यहाँ भेजा गया और दूसरा वह जो यहींके पतेपर था। पहुँचकी सूचना अबतक भेजनेमें असमर्थ रहा। आपने निमन्त्रण[1] स्वीकार किया है, इसके लिए हम सब आपके बहुत आभारी हैं। हम इस बातका भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं कि आपको कार्यक्रमों या तमाशोंकी भरमारसे ज्यादा कष्ट न दिया जाये। क्या आप पत्र द्वारा, और यदि आवश्यक हो तो तार द्वारा, मुझे यह सूचित करनेकी कृपा करेंगे कि आप गुजरातको कितना समय दे सकेंगे और क्या आप एक या दो महत्त्वपूर्ण केन्द्रोंमें जा सकेंगे? दूसरा प्रश्न आपके निवासके सम्बन्धमें है। क्या आप आश्रममें ठहरेंगे? आपके आश्रममें ठहरनेसे मुझे जो प्रसन्नता होगी वह और किसी बातसे नहीं हो सकती। मेरी उत्कट इच्छा है कि अपने निवास-कालमें आप समझ लें कि आश्रम क्या है और यह किस उद्देश्यको लेकर चल रहा है। मेरी यह भी इच्छा है कि आप आश्रममें उन तमाम लोगोंको, जो आपके शिष्य रह चुकनेका दावा करते हैं, अपनी उपस्थितिका लाभ दें। गुजराती लड़के-लड़कियोंके तथा उस सिंधी लड़के गिरधारीके[2] अतिरिक्त किसकी याद आपको बनी होगी? मणीन्द्र भी अभी यहीं है और सरलादेवीका[3] पुत्र दीपक भी आश्रममें ही है। यह आश्रम अहमदाबाद शहरके केन्द्रसे लगभग चार मील दूर, साबरमतीके किनारे एक टीलेपर स्थित है।

अब आप चाहें तो आश्रममें ठहरें अथवा अहमदाबादके किसी निजी बँगलेमें, जिसमें सभी आधुनिक सुविधाएँ हों। कहनेकी जरूरत नहीं कि हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य आपके स्वास्थ्य और सुख-सुविधाका ध्यान रखना है; और आपकी इच्छाओंका पालन हर प्रकारसे किया जायेगा। आप यदि कोई और विशेष व्यवस्था या वस्तुओंकी इच्छा रखते हों तो कृपया यह भी अवश्य सूचित कीजियेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

१. अहमदाबादमें गुजराती साहित्य परिषद्के २ से ४ अप्रैल, १९२० तक होनेवाले छठे अधिवेशनमें व्याख्यान देनेके लिए।

२. जे० बी० कृपलानीके भतीजे।

३. सरलादेवी चौधरानी।

[पुनश्च :]

परिषद् ३ दिन चलेगी — २ से ४ अप्रैलतक।

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ४६२७) की फोटो-नकल से।

६७. तार : गोकर्णनाथको[1]

अहमदाबाद
१२ मार्च, १९२०

अप्रैलके पहले सप्ताहमें तो यहीं रहना पड़ेगा।[2]

गांधी

मूल अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ५९९०) की फोटो-नकलसे।

६८. पत्र : एम० आर० जयकरको[3]

१३ मार्च, १९२०

(१)

मैंने [रिपोर्टको] आज समाप्त करनेकी कोशिश की, परन्तु कर नहीं पाया। फिर भी मेरा खयाल है कि मैंने कम्पोजीटरोंको[4] प्रतीक्षामें नहीं रखा।

मैंने देखा हाशियेपर कसूरके बारेमें एक टिप्पणी अंकित है। लेकिन भीड़के आचरणके बारेमें जो बातें कही गई हैं, उन्हें तो मैं नरम करके ही पेश करना चाहूँगा। ऐसा कर नहीं पाया हूँ। मैंने जो-कुछ लिखा है, उसके प्रत्येक शब्दका औचित्य सिद्ध किया जा सकता है। परन्तु जहाँ मैं स्पष्ट निर्णयपर नहीं पहुँच पाया हूँ, वहाँ आप शायद मजमूनमें जरूरी फेर-बदल कर देनेकी जिम्मेदारी लेना चाहेंगे। कसूरकी

१. यह तार लखनऊके प्रसिद्ध वकील और नेता श्री गोकर्णनाथ मिश्रको भेजा गया था। उस समय वे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके महामन्त्री थे।

२. कारण शायद यह था कि गुजरात साहित्य परिषद्के सिलसिलेमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर अप्रैलके प्रथम सप्ताहमें गुजरात आनेवाले थे। देखिए "तार : गोकर्णनाथको", १५-३-१९२०।

३. इस शीर्षकमें तीन पत्र हैं, जो गांधीजीने श्री जयकरको पंजाबके उपद्रवोंपर कांग्रेस-रिपोर्टको प्रेसको भेजी गई प्रतिके बारेमें एक ही दिन लिखे थे।

४. तात्पर्य कर्नाटक प्रिंटिंग प्रेस, बम्बईके कम्पोजीटरोंसे है। इस छापेखानेमें पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट छापी जा रही थी।

भीड़ने बहुत ही शरारत-भरा व्यवहार किया था और हमें इस बातको साफ तौरपर स्वीकार कर लेना चाहिए।

(२)

आज आपको में बहुत ही थोड़ी सामग्री भेज रहा हूँ, परन्तु मेरा खयाल है कि पहले ही इतना काफी भेज चुका हूँ कि कम्पोजीटर लोग खाली न बैठेंगे। मुझे यह काम कल जरूर ही समाप्त कर डालना है, चाहे रात-भर क्यों न जागना पड़े।

(३)

ईश्वरको धन्यवाद है! सामग्रीका अन्तिम अंश भेज रहा हूँ। कृपया हर चीजको बहुत ध्यानसे पढ़िएगा। डा० परशुरामसे यह जानकर मुझे दुःख हुआ कि आप अस्वस्थ थे।

[अंग्रेजीसे]

द स्टोरी ऑफ माई लाइफ

६९. प्रेस अधिनियम और श्री हॉर्निमैन

प्रेस अधिनियम रद करनेके सम्बन्धमें बम्बईमें जो सभा[1] आयोजित की गई थी, वह महत्त्वपूर्ण थी। सर नारायण चन्दावरकरने[2] यह बात सिद्ध कर दी है कि प्रेस अधिनियमके रद होनेसे लोगों और सरकार दोनोंको ही समान लाभ है। शुतुरमुर्गके विषयमें यह कहा जाता है कि जब वह संकटको सामने पाता है तब अपना सिर रेतमें गड़ा लेता है और समझ लेता है कि अब कोई भय नहीं है। वह अन्ततः संकटसे घिर जाता है। प्रेस अधिनियम बनाकर सरकारने अपनेको शुतुरमुर्गकी परिस्थितिमें डाल दिया है। सरकारके प्रति [यदि] लोकभावना अच्छी नहीं है, और समाचारपत्र उसे अभिव्यक्त करनेका साधन है; किन्तु इसलिए उनको दबानेका प्रयत्न करनेसे लोकभावना दब नहीं सकती। इसके अलावा प्रेस अधिनियमको विधि-पुस्तिकामें सन्निविष्ट करके सरकारकी अवस्था उस वायुविज्ञानवेत्ताके समान हो गई है जो वायुमापक यन्त्रको तोड़नेके बाद हवाकी स्थितिको जाननेका प्रयत्न कर रहा हो। प्रेस अधिनियमका विधि-पुस्तिकामें समावेश करके सरकारने लोकभावना किस दिशामें बहती है और उसका स्वरूप क्या है — ये सब बातें जाननेके यन्त्रको तोड़ डाला है और फलस्वरूप वह जनताकी प्रवृत्तिको पहचाननेमें असमर्थ हो गई है। इसलिए प्रेस अधिनियमको रद करना अथवा करवाना सरकार और जनता दोनोंका ही कर्त्तव्य है।

१. ५ मार्च, १९२०।

२. नारायण गणेश चन्दावरकर (१८५५–१९२३); बम्बईके नरमदलीय नेता, जिन्होंने सभाकी अध्यक्षता की थी।

लेकिन प्रेस अधिनियमको बनाये रखनेमें हमें सरकारकी जिस प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं, श्री हॉर्निमैन उसीके शिकार हुए हैं। लोकमतकी मुखर अभिव्यक्तिको सरकार कभी सहन नहीं कर सकती। इसलिए लोकमतको दृढ़तापूर्वक प्रकट करनेके कारण सरकार श्री हॉर्निमैनको भी सहन न कर सकी। श्री हॉर्निमैनने लोकमतका विकास करनेमें जिस क्षमताका परिचय दिया है वैसी क्षमता बहुत कम लोगोंमें पाई जाती है। उन्होंने जनतामें जिस उत्साहका संचार किया है वैसा बहुत कम लोग कर सके हैं। यदि एक बार हम यह मान भी लें कि श्री हॉर्निमैनमें वैसी शक्ति नहीं है, फिर भी सामान्य न्यायकी दृष्टिसे विचार करनेपर भी श्री हॉर्निमैनपर कोई अपराध सिद्ध नहीं किया जा सका है। इस सबके बाद भी सरकार मनमानी करके उन्हें देशमें न आने दे, इस बातको जनता कभी सहन नहीं कर सकती। श्री हॉर्निमैनकी पद्धति तथा मतसे मेल खानेवाले व्यक्ति ही उन्हें छुड़ानेका प्रयत्न करें, यह जरूरी बात नहीं है। उनसे मतभेद होनेके हमारे पास अनेक कारण हैं। उनकी भाषा अनेक बार आवश्यकतासे अधिक तीखी होती है। तथापि हमारे मनमें इस विषयमें तनिक भी शंका नहीं है कि उन्हें हिन्दुस्तानमें प्रवेश करनेका उतना ही अधिकार होना चाहिए जितना किसी भी व्यक्तिको हो सकता है। इसलिए उक्त सभाने श्री हॉर्निमैनके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पास किया है, हम उसका स्वागत करते हैं। इतना ही नहीं, हम यह भी मानते हैं कि उन्हें वापस हिन्दुस्तानमें लानेके निमित्त यह आन्दोलन जारी रखा जाना चाहिए तथा उनके विरुद्ध बम्बई सरकारने जो आदेश जारी किया है[1] उसे वह वापस ले ले — इसके लिए जनताको कड़े कदम उठाने चाहिए। इसी सभामें एक तीसरा प्रस्ताव[2] भी पास किया गया है जिसके अनुसार जिन-जिन प्रेसोंसे जमानतें ली गई हैं उन्हें वे वापस कर दी जानी चाहिए। हमें आशा है कि सरकार उपर्युक्त तीनों बातोंपर गौर करेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन १४–३–१९२०

१. प्रस्ताव पेश करते समय नटराजनने कॉमन्स सभाकी कार्यवाहीका जिक्र किया जिसमें भारत-मन्त्रीने कहा था कि श्री हॉर्निमैनकी वापसी पूर्णतः बम्बई सरकारपर निर्भर करती है।

२. इस प्रस्तावमें अन्य बातोंके अलावा सरकारको इसके लिए धन्यवाद दिया गया था कि उसने प्रेस अधिनियमके अधीन कुछ प्रेसों और समाचारपत्रोंसे ली गई जमानतें खारिज कर दी थीं, और साथ ही उससे शेष मामलोंमें भी ऐसी जमानतें खारिज कर देनेका अनुरोध किया गया था।

७०. पत्र : एस्थर फैरिंगको[1]

आश्रम
१४ मार्च, १९२०

रानी बिटिया,

मैं अवश्य तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा; मेरे लेखे इससे बढ़कर कुछ किया भी नहीं जा सकता। जिस संगीनीमें से तुम इस समय गुजर रही हो उसमें तुम्हारे मित्र-गण तुम्हारी कोई बड़ी मदद नहीं कर सकते। ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।

कभी न कभी हर व्यक्ति और राष्ट्रके सामने
उपस्थित होता है वह क्षण
जब उसे सत और असत्के संघर्षमें
चुनना पड़ता है अपना पक्ष
शिव और अशिवके बीच!
महान् कोई उद्देश्य, भगवानका नया कोई मसीहा
हर एकको अवसर देता है खिलने या झरनेका,
बाँट देता है अपने दाहिने और बायें
[विनयशील] मेषों
और [उद्दंड] अजाओंके दलोंको!
और विकल्प-वरण यह
प्रकाश और अन्धकारका
चलता ही रहता है, चलता ही रहता है।

आशा करता हूँ कि अगर बना तो रोज ऐसा एक-न-एक उद्धरण चुनकर और अपनी प्रार्थनासे आविष्ट करके तुम्हें भेजता रहूँगा। आजका अंश लॉवेलकी रचना-में से है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

१. एस्थर फैरिंगके डॉ० ई० के० मेननसे विवाह-सूत्रमें बँधनेपर बड़ी टीका-टिप्पणी की गई थी। उस समय गांधीजीने सान्त्वना और साहस बँधानेवाले ग्यारह पत्र लिखे थे। यह पहला पत्र है।

[पुनश्च:]

मेरे मामलेका[1] फैसला हो गया है। सुना है कि अदालतने हम दोनोंकी[2] भर्त्सना की है, किन्तु दण्ड नहीं दिया।

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

७१. तार : गोकर्णनाथको

अहमदाबाद
१५ मार्च, १९२०

गोकर्णनाथ
लखनऊ

सर रवीन्द्रनाथ अहमदाबाद आनेवाले हैं।[3] क्या उस समय अहमदाबादमें सभाकी जा सकती है। वह सम्भव न हो तो बम्बईमें करें।

गांधी

मूल अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ५९८९) की फोटो-नकलसे।

७२. तार : गिरधारीलालको[4]

१६ मार्च, १९२०

घोषणा-पत्रके[5] अनुसार आपको हड़ताल[6] करनी चाहिए और सार्वजनिक सभामें भाग लेना चाहिए।

गां०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१३८) की फोटो-नकल से।

१. बम्बई उच्च न्यायालयमें पेश मामला। देखिए "क्या यह न्यायालयकी मानहानि थी?", १०-३-१९२०।

२. गांधीजी और महादेव देसाई।

३. रवीन्द्रनाथ १ अप्रैलको वहाँ पहुँचनेवाले थे और ५ तारीख तक रहनेवाले थे। अप्रैलके दूसरे सप्ताहमें गांधीजी और रवीन्द्रनाथ दोनोंको बम्बई पहुँचना था।

४. यह तार गिरधारीलालके इस तारके जवाबमें था: "कृपया तार दीजिए कि क्या अमृतसरमें हड़ताल कराई जाये और हिन्दू लोग प्रस्तावमें किस हदतक सहयोग दें।"

५. देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", ७-३-१९२०।

६. १९ मार्च, खिलाफत दिवसको।

७३. पत्र : एस्थर फैरिंगको

बम्बई
१६ मार्च, १९२०

प्रार्थनासे कितना-क्या हो जाता है
इसकी संसार कल्पना नहीं कर सकता।
इसलिए रात और दिन मेरे लिए
किसी झरनेकी तरह मुक्त वाणीमें प्रार्थना करो।
क्योंकि मनुष्य यदि भगवानको जानकर भी
अपने लिए और अपनेको मित्र माननेवालोंके लिए
हाथ उठाकर प्रभुसे दुआ न माँगे
तो वह उन भेड़ और बकरियोंसे
किस तरह बेहतर है
जो बिना सोचे अपनी देहको ही पुष्ट करते रहते हैं?
यह [प्रार्थना] ही है वह स्वर्णमेखला
जिससे यह मण्डलाकार धरित्री प्रभुके चरणोंमें बँधी हुई है।

टेनीसन

रानी बिटिया,

आज तुम्हारे दुःखमें ऊपरकी कविता भेजकर हाथ बँटा रहा हूँ। इससे दुःख शायद कुछ हल्का हो।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

७४. खिलाफत

इलाहाबादके 'लीडर' और 'यंग इंडिया' में स्पष्ट मतभेद हो गया है। मैं 'लीडर'-का इतना आदर करता हूँ कि वह जो भी विचार प्रकट करता है उसे स्वीकार करनेके लिए मैं बहुत प्रयत्न करता हूँ। किन्तु पिछले कुछ समयसे कितनी ही कोशिश-के बावजूद मैं उसके विचारोंको स्वीकार करनेमें असफल ही रहा हूँ। इसका सबसे ताजा उदाहरण है बहिष्कार और असहयोगके मामलेमें वह उलझन, जिसमें 'लीडर' पड़ गया है। मैंने सोचा था कि मेरा अर्थ स्पष्ट है और उसमें कोई असंगति नहीं है। बहिष्कार एक दण्ड है और उसकी कल्पना बदलेकी भावनासे की जाती है। अंग्रेजी मालके बहिष्कारके पीछे विचार ऐसा है कि अंग्रेजी माल दूसरे मालसे, जैसे कि जापानी मालसे, चाहे अच्छा ही क्यों न हो, लेकिन मुझे उसे न खरीदना चाहिए क्योंकि ब्रिटिश मन्त्रियोंने हमारे साथ जो अन्याय किया है या कुछ अंग्रेजोंने खिला-फतके बारेमें जो अत्यन्त दायित्वहीन और अशिष्ट भाषाका प्रयोग किया है उसका बदला मैं अंग्रेज जनतासे लेना चाहता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि इन स्थितियोंमें बहि-ष्कार हिंसाका ही एक रूप है।

असहयोगका आधार भिन्न है। यदि सरकार अन्याय करती है तो उससे सहयोग करनेका मतलब यह है कि मैं भी उसके इस अन्यायमें सहभागी हूँ और इस प्रकार उसके लिए अन्याय करना सम्भव बनाता हूँ। इस हालतमें उस सरकारको सहयोग न देना मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु ऐसा दण्डके रूपमें या बदला लेनेकी भावनासे नहीं, बल्कि इसलिए करना है कि उस अन्यायका दायित्व मुझपर न आ सके। दरअसल अगर मैं उस सरकारकी गाड़ी बिलकुल रोक भी दूँ तो यह उचित ही होगा। इसलिए इस सम्बन्धमें मेरा विचार बिलकुल स्पष्ट है कि असहयोग बहिष्कारसे उतना ही भिन्न है जितना हाथी गधेसे।

मैं जो हिंसाको अस्वीकार करता हूँ और हड़तालको स्वीकार करता हूँ, उसमें 'लीडर' को असंगति दिखाई देती है। किन्तु मुझे उसमें कोई असंगति दिखाई नहीं देती, क्योंकि मुझे लगता है कि यह आवश्यक नहीं कि हड़तालसे हिंसा हो ही। कोई भी व्यक्ति उचित कार्य करनेसे बराबर इसीलिए कतराता नहीं रह सकता कि उसमें खतरेकी भी आशंका होती है। कदाचित् 'लीडर' की कठिनाईका कारण उसका यह विश्वास है कि जोरदार और निश्चित कार्रवाई करना जरूरी नहीं है और मित्रराष्ट्रों द्वारा विपरीत निर्णय[1] किये जानेपर भी भारतके मुसलमानोंके लिए शान्त रहना सम्भव है। मेरी रायमें यदि कोई ऐसी अहिंसात्मक कार्य-पद्धति नहीं निकाली गई जिससे इस प्रश्नका उचित समाधान हो जाये तो यह आन्दोलन[2] अवश्य ही हिंसाका समर्थन

१. टर्कीके सुल्तानकी राजनीतिक और आध्यात्मिक सत्ताके सम्बन्धमें।

२. खिलाफत आन्दोलन।

करेगा। पूरी जोरदार कार्रवाई करनेमें भी हिंसाका खतरा है, किन्तु हमें मात्र इसी भयके कारण उचित कार्य करनेसे डरना नहीं चाहिए कि कहीं उसका गलत अर्थ न लगा लिया जाये और उसके फल-स्वरूप अनर्थ न हो जाये। मानवीय दृष्टिसे कहें तो जो सम्भव है वह इतना ही कि गलतियों और गलतफहमीसे बचते हुए, ईश्वरमें विश्वास रखकर हम आगे बढ़ते जायें। मैं जानता हूँ कि यदि खिलाफतके प्रश्नके उचित हलसे कम कोई चीज इस प्रश्नपर हिंसाको टाल सकती है तो वह यही चीज, यही रास्ता है। इसलिए मैं विश्वास करता हूँ कि सब विचारोंके भारतीय इस आन्दोलनमें सम्मिलित होंगे। अगर हिन्दू लोग एकमत होकर कोई दृढ़ रुख अपनायेंगे तो उससे मुसलमानोंके हृदयमें साहस और आशाका संचार होगा। किसी भी तरहकी ढिलाई या उपेक्षाका परिणाम होगा निराशा और निरुत्साह।

बहुत-कुछ यही बात सत्याग्रहके विरुद्ध उठाई जानेवाली आपत्तिके बारेमें भी कही जा सकती है। मैं अब भी यही मानता हूँ कि फिलहाल विशुद्ध और उत्कृष्ट ढंगका सत्याग्रह करनेमें तो अकेला मैं ही समर्थ हूँ। लेकिन अगर इस विश्वासके कारण मैं सत्याग्रहका प्रयोग ही न करूँ तब तो उसका कभी प्रसार ही नहीं होगा। किन्तु यहाँ इसके अतिरिक्त एक अन्य तर्क-दोष भी है। अगर सत्याग्रह सविनय प्रतिरोधके रूपमें किया जाये तो उसमें अशोभन बातें होनेकी सम्भावना तो है ही। किन्तु हड़ताल कोई नया शस्त्र नहीं है और वह सत्याग्रहके अन्तर्गत आ भी सकता है, नहीं भी आ सकता। और न असहयोगके लिए ही सत्याग्रह होना कोई आवश्यक है। जब माननीय पं० मदनमोहन मालवीयने इम्पीरियल कौंसिलसे त्यागपत्र दिया था[1] या जब सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपनी उपाधिसे मुक्त कर दिये जानेका अनुरोध किया था[2] तो उन्होंने ये कदम सत्याग्रहीके रूपमें नहीं उठाये थे। बेशक व्यापक असहयोग करनेमें खतरा है, किन्तु यह तो केवल एक सामान्य सत्य ही बताना है। याद रखनेकी एक बात यह है कि खिलाफत मुसलमानोंके लिए जीवन और मरणका प्रश्न है। उनके लिए इसका उचित समाधान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इधर हिन्दुओंका पुनीत कर्त्तव्य है कि जबतक उनके मुसलमान भाई अहिंसाके मार्गपर दृढ़ रहकर काम कर रहे हों तबतक वे उनके लिए अपना सब-कुछ दे दें। और मैं तो नहीं मानता कि उन्हें उस मार्गपर दृढ़ रखनेके लिए इससे कोई अच्छा उपाय भी है कि समस्त हिन्दू, ईसाई, पारसी और यहूदी, जिन्होंने भारतको अपना देश बना लिया है, पूरे मनसे उनका समर्थन करें और उन्हें हिंसाका आश्रय लिये बिना अपनी शिकायत दूर करवानेके प्रभावकारी उपाय सुझायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-३-१९२०

१. ६ अप्रैल, १९१९ को।

२. उन्होंने अपनी 'नाइटहुड' की उपाधि १ जून, १९१९ को त्याग दी।

७५. पत्र : एस्थर फैरिंगको

वम्बई
१७ मार्च, १९२०

मुझे दृष्टि दो, हे मेरे प्रभु, हे मेरे स्वामी
कि सभी चीजोंमें मैं तुम्हारे दर्शन कर सकूँ।
और जो कुछ करूँ सो तुम्हारे निमित्तसे करूँ;
हर वस्तु तुम्हारा अंश प्राप्त करे।
इतना तुच्छ तो कुछ भी नहीं हो सकता
जो तेरे निमित्तकी आभासे
चमक न उठे, धुल न जाये।
जो समर्पित होकर सेवा करता है
वह रोजमर्राको दिव्य वना देता है;
जो तुम्हारे नियमानुसार एक कमरा भी झाड़ता है
वह कमरेको और झाड़नेको
एक सौन्दर्य सौंपता है।
समर्पण ही वह स्पर्श-मणि है
जिसे छूकर सव-कुछ कंचन हो जाता है;
भगवान जिसे छू दें और स्वीकार कर लें
वह कंचनसे कम कैसे हो सकता है।

जॉर्ज हर्बट

रानी विटिया,

कामना करता हूँ कि इसकी किसी एक पंक्ति, शब्द या विचारसे तुम्हारा दुःख हल्का हो सके।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

७६. पत्र: मगनलाल गांधीको

[१७ मार्च, १९२०][1]

चरखेकी अवधिको बढ़ाना चाहो[2] तो बढ़ा सकते हो; वैसे तुमने जो उत्तर लिखा है वह ठीक है। यदि उस व्यक्तिका चरखा अच्छा सिद्ध हुआ तो उसे कुछ पुरस्कार देंगे। मेरी मान्यता है कि हम आश्रममें खादीका उतना उपयोग नहीं करते जितना कि हमें करना चाहिए। सरलादेवीने भी इस बारेमें टीका की है। स्त्रियोंके शरीरपर खादी बिलकुल ही न हो कमसे-कम मुझे तो इसका कोई सबब दिखाई नहीं देता। खादीको रँगवाना चाहो तो रँगवा सकते हो, लेकिन बालिकाएँ खादीकी ढीली चोली पहनें तो इसमें कोई बुराई नहीं जान पड़ती। स्त्रियोंको तो खादीकी चोली पहननेमें कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। सन्तोक, राधा और रुखीको समझा सको तो समझाना।

मुझे २० को दिल्ली जाना पड़ेगा। २२ तारीखको दिल्लीमें होऊँगा। २३ को दिल्लीसे बम्बई आऊँगा। बादमें सम्भवतः एक सप्ताहके लिए सिंहगढ़ जाऊँगा। इस बीच डाक अभी वहीं आती रहे; महत्त्वपूर्ण पत्रोंका तुम अथवा नरहरि[3] उत्तर लिख देना। ऐसी व्यवस्था करना जिससे मुझे सारी डाक २४ तारीखको बम्बईमें मिल जाये। तबतक डाकको सँभालकर रखना ताकि मुझे कुछ और निर्देश देने हों तो दे सकूँ।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८३) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी

१. २१ से २४ मार्चतक गांधीजी दिल्लीमें थे और २६ से ३० मार्च, १९२० तक सिंहगढ़में। १७ और १९ मार्चको वे बम्बईमें थे; स्पष्टतः यह पत्र वहींसे लिखा गया था।

२. संकेत स्पष्टतः ५–१०–१९१९ के **नवजीवन**में देशी चरखेके अच्छे नमूनेके लिए पुरस्कारकी जो घोषणा की गई थी, उस ओर है। देखिए खण्ड १६, पृष्ठ २२३-२४। चरखा-पुरस्कार प्रतियोगिता ३१ मार्च, १९२० को अहमदाबादमें हुई थी।

३. नरहरि द्वारकादास परीख, १९१७ से साबरमती आश्रममें गांधीजीके रचनात्मक कार्यकर्ताओंके दलके एक सदस्य।

७७. पत्र : एस्थर फैरिंगको

बृहस्पतिवार [१८ मार्च, १९२०][1]

प्रभु, मेरा जीना या मेरा मरना
मेरे हाथमें नहीं है।
तुम्हें प्यार करना और तुम्हारी चाकरी बजाना
मेरा प्राप्य है,
और तुम्हारी करुणाके हाथों मुझे मेरा यह प्राप्य
मिलना ही चाहिए!
अगर जीवन दीर्घ हो
तो मुझे खुशी होगी कि मैं दीर्घ कालतक
तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा।
अगर जीवनके दिन इनेगिने मिलें
तो भी उदासी क्यों अपनाऊँ!
क्यों अनन्त कालतक उड़ते रहनेकी इच्छा रखूँ!
अँधेरे जिन कक्षोंसे ईसा खुद गुजरे हैं,
मुझे वे उनसे अधिक अँधेरे कक्षोंसे तो नहीं ले जा रहे हैं!
जो कोई भगवानके राज्यमें पहुँचता है
उसे इस द्वारसे होकर गुजरना होता है।
प्रभु, तुम तभी आओ जब तुम्हारी करुणा
मुझे तुम्हारे दर्शनका पात्र बना चुके!
क्योंकि जब तुम्हारे लौकिक काम भी मधुर हैं,
तो तुम्हारी [दिव्य] प्रभुता कितनी मधुर होगी!
[दिव्य] उस जीवनका मेरा ज्ञान अल्प है
श्रद्धाके मेरे चक्षु दुर्बल हैं;
किन्तु यह पर्याप्त है कि ईसा सर्वज्ञ हैं;
मैं उनके आँचलका छोर पकड़े रहूँगा!

रिचर्ड बैक्स्टर

१. गांधीजीने १७ मार्च, १९२० और २१ मार्च, १९२०को पत्र लिखे थे। साधन-सूत्रमें इन दोनों तारीखोंके बीच दो तिथिहीन पत्र हैं। २१ मार्चके पत्रमें गांधीजीने लिखा है कि मैंने कल तुम्हें नहीं लिखा। अर्थात् २०को पत्र नहीं लिखा गया। इसलिए ये तिथिहीन दो पत्र क्रमशः १८ और १९ मार्चके होंगे।

रानी बिटिया,

फिर शाम हो गई है और मेरा मन तुम्हारे बारेमें सोचसे भर उठा है। अपने इन विचारोंको मैं भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर रहा हूँ जिसने तुम्हें और मुझे रचा है। वह इन विचारोंका तुम्हारे हितमें जो उपयोग हो सकेगा, करेगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

७८. पत्र : मैनलीको

[१८ मार्च, १९२० के पूर्व][1]

प्रिय श्री मैनली,

पत्रके लिए धन्यवाद। अहमदाबादके बारेमें आप किसी तरहका अन्देशा न करें। मिल-मजदूरोंकी देख-भाल करनेके लिए कुमारी अनसूया साराभाई अहमदाबादमें रुक गई हैं। श्री वल्लभभाई पटेल[2] डाक-कर्मचारियोंकी देख-भाल कर रहे हैं।[3] वास्तवमें, कल मुझे किसी ओरसे कोई गड़बड़ी होनेकी आशंका नहीं है। श्रीमती मैनलीसे मेरा यथोचित कह दें।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१४१) की फोटो-नकलसे।

१. भारतके अन्य स्थानोंकी तरह अहमदाबादमें भी १९ मार्चको, यानी खिलाफत-दिवसपर, हड़ताल होनेवाली थी। इसी सिलसिलेमें बम्बईकी सी० आई० डी० पुलिसके डिप्टी कमिश्नर श्री मैनलीने गांधीजीको एक पत्र लिखा था और उनसे अहमदाबादकी स्थितिका सही अन्दाजा पानेमें मदद माँगी थी। यह पत्र गांधीजीने उसी पत्रके जवाबमें लिखा था। इसलिए यह अवश्य ही १९ मार्चके पूर्व कभी लिखा गया होगा।

२. सरदार वल्लभभाई पटेल (१८७५–१९५०); उस समय अहमदाबादके एक प्रमुख कांग्रेस नेता, जो बादमें स्वतंत्र भारतके प्रथम उप-प्रधान मंत्री बने।

३. डाक-कर्मचारी उस समय हड़तालपर थे।

७९. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको[1]

बम्बई
१८ मार्च, १९२०

प्रिय श्री शास्त्री,

चूंकि मैंने पिछले वर्ष कांग्रेसके कामकाजमें सक्रिय भाग लिया था, इसलिए मुझसे किसी संगठनमें शामिल होकर और भी सक्रिय रूपसे भाग लेनेको कहा गया है। यह मांग उन लोगोंकी ओरसे आई है जिनके साथ काम करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, यद्यपि उनके संगठनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने मुझसे अखिल भारतीय होमरूल लीगमें सम्मिलित होनेको कहा है। उत्तरमें मैंने उनसे यह कह दिया है कि अपनी इस आयुमें, जबकि अनेक विषयोंपर मेरे कुछ निश्चित विचार बन चुके हैं, मैं किसी भी संगठनमें उसकी नीतिसे स्वयं प्रभावित होनेके लिए नहीं, बल्कि उसकी नीतिपर प्रभाव डालनेके लिए ही सम्मिलित हो सकता हूँ। इसका यह मतलब नहीं कि मैं नये विचार ग्रहण करनेके लिए अपना दिमाग खुला नहीं रखूँगा या मैं इस तरह खुले दिमागका आदमी नहीं हूँ। मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि कोई भी नया विचार मुझे तभी प्रभावित कर सकेगा जब वह उतना ही ज्यादा जोरदार हो। मैंने मित्रोंके सामने निम्नलिखित मुद्दे प्रस्तुत किये हैं, जिनपर मेरे कुछ निश्चित विचार हैं :

(१) यदि हम एक राष्ट्रके रूपमें अपनी प्रतिष्ठा कायम करना चाहते हैं तो देशके राजनैतिक जीवनमें ज्यादासे-ज्यादा ईमानदारी लानी होगी। इससे प्रारम्भमें ही एक यह बात निकलती है कि इस समय हमें हर हालतमें पूरी दृढ़ताके साथ सत्यके मार्गको स्वीकार करना है।

(२) स्वदेशी हमारा तात्कालिक लक्ष्य होना चाहिए। जिन्हें कौंसिलकी सदस्यता प्राप्त करनेकी आकांक्षा हो उनसे कह दिया जाये कि वे देशके उद्योगों — खासकर वस्त्र-उत्पादन — को पूरा-पूरा संरक्षण देनेकी प्रतिज्ञा करें।

(३) हिन्दी और उर्दूके मिश्रणसे निकली हिन्दुस्तानीको पारस्परिक सम्पर्कके लिए राष्ट्रभाषाके रूपमें निकट भविष्यमें स्वीकार कर लिया जाये। अतएव भावी सदस्य इम्पीरियल कौंसिलमें इस तरह काम करनेको वचनबद्ध होंगे जिससे वहाँ हिन्दुस्तानीका उपयोग प्रारम्भ हो सके और प्रान्तीय कौंसिलोंमें भी वे इस तरह काम करनेको प्रतिज्ञाबद्ध होंगे जिससे वहाँ, जबतक हम राष्ट्रीय काम-काज चलानेके लिए अंग्रेजीको पूरी तरह छोड़ देनेकी स्थितिमें नहीं आ जाते तबतकके लिए, कमसे-कम वैकल्पिक

1. इस पत्रकी प्रतियाँ गांधीजीने निजी तौरपर नटेसन आदि कुछ अन्य मित्रोंको भी देखनेके लिए भेजी थीं।

माध्यमके रूपमें सम्बन्धित प्रान्तोंकी भाषाओंका उपयोग प्रारम्भ हो सके। वे हमारे स्कूलोंमें हिन्दुस्तानीको, देवनागरी लिपि या वैकल्पिक रूपमें उर्दू लिपिके साथ, अनिवार्य द्वितीय भाषाकी तरह दाखिल करानेके लिए भी वचनवद्ध होंगे। अंग्रेजीको साम्राज्यीय सम्पर्क, राजनयिक सम्बन्ध तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारकी भाषाके रूपमें मान्यता दी जायेगी।

जहाँतक सम्भव हो, यथाशीघ्र प्रान्तोंके भाषावार पुनर्विभाजनके सिद्धान्तको स्वीकार करना।

(५) हिन्दू-मुस्लिम एकताको तत्त्वतः और राजनैतिक तथा धार्मिक दृष्टिकोणसे एक अपरिवर्तनीय निष्ठाके रूपमें स्वीकार करना। इसके लिए पारस्परिक सहायता, पारस्परिक सहिष्णुता तथा किसी वर्गके दुःखको सबका दुःख मानना अपेक्षित है। होमरूल लीगके अधिकृत कार्यक्रममें से रोटी-बेटीके सम्बन्धके द्वारा एकताके प्रचारकी जो बात है, वह इसमें से निकाल दी जायेगी, और खिलाफतके सवालपर प्रबल सहयोगकी बात शामिल कर ली जायेगी। मित्रोंसे बातचीतके दौरान मैंने उनसे यह भी कहा है कि मैं लीगसे अपने सविनय अवज्ञाके सिद्धान्तको अधिकृत तौरपर मान्यता देनेको कहूँगा। मैंने उनसे यह भी कहा है कि मैं किसी भी दलसे सम्बन्धित नहीं हूँ और लीगको एक ऐसा निर्दलीय संगठन बनाना चाहूँगा जो दल वगैरहका खयाल किये बिना ऐसे सभी ईमानदार लोगोंकी सहायता करे जिनमें, वे जिस तरहकी भी सेवा करना पसन्द करें, उसके साथ न्याय करनेकी क्षमता हो। मेरे विचारसे तो लीग कांग्रेस-विरोधी संगठन नहीं बन सकती। प्रत्युत इसे तो आजकी ही तरह कांग्रेसके उद्देश्योंको आगे बढ़ानेके लिए काम करना चाहिए।

मेरी खूबियों-खामियोंसे तो आप अच्छी तरह परिचित हैं। फिर आपकी क्या सलाह है? लीगमें शामिल होऊँ या नहीं?[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

लेटर्स ऑफ वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री

१. गांधीजी २८ अप्रैल, १९२० को लीगमें शामिल हो गये और उसका अध्यक्षपद भी स्वीकार किया।

८०. पत्र: एस्थर फैरिंगको

[१९ मार्च, १९२०][1]

जीवनके तमाम दुर्योगोंमें मैं गाता रह सकता था,
हरएक रातको मैं दिनमें बदल सकता था
अगर अहम्‌ने मुझे चारों तरफसे
इतना न कस रखा होता;
जो मैं करता हूँ या कहता हूँ
अगर वह सब उससे इतना आश्लिष्ट न होता!!
मेरा एक-एक विचार स्वार्थसे भरा है
हवामें ओछे किले बाँधता रहता है।
मैं दूसरोंके प्रति प्यारको
एक मुलम्मेकी तरह बरतता हूँ ताकि थोड़ा चमकदार दिखूं।
मैं कल्पना करता हूँ कि सारा संसार
मेरे गुण-दोष देखनेमें लगा है।
वह मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करे तो भी मुझे यही लगता है
कि वह मेरी सहज प्राप्य प्रशंसा लाचार होकर कुढ़ते हुए कर रहा है।
हाय, बड़ीसे-बड़ी गतिके साथ जीकर भी हम
अहम्‌की इस घृणित झाँकीको बहुत पीछे छोड़कर नहीं निकल पाते।
हम ज़रा धीमे पड़ जायें
तो वह हमारे साथ कदम मिलाकर चलता है;
और रातको जब हम सो जाते हैं,
वह हमारे सिरहाने आ बैठता है।
हे प्रभु, अपने किसी हित या स्वार्थकी बात सोचे बिना
कहीं मैं दूसरोंके लिए अपना जीवन चला जाने देता,
कितना अच्छा होता कि मैं अपना आपा
अपने बन्धुओंके लिए खो देता और केवल उन्हींके लिए जीता।

१. देखिए "पत्र: एस्थर फैरिंगको", १८-३-१९२० की पाद-टिप्पणी १।

रानी बिटिया,

तुम अपना वादा भूल गईं। इतने लम्बे अरसेतक मुझे अपनी खबरसे वंचित रखना ठीक नहीं है। आजके लिए ऊपरकी कविता चुनी है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

८१. भाषण: खिलाफतपर[1]

१९ मार्च, १९२०

यह मेरे लिए अतीव प्रसन्नताकी बात है कि इस महती सभाका एकमात्र प्रस्ताव[2] प्रस्तुत करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

आजके शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकी भव्य सफलताके लिए मैं संयोजकों और स्वयंसेवकोंको बधाई देता हूँ। कारोबार बन्द रखनेके क्या-क्या परिणाम हो सकते हैं, इस सम्बन्धमें हमें बहुत सारी चेतावनियाँ दी गई थीं। लेकिन खिलाफत-समिति इस बातके लिए बधाईकी पात्र है कि उसके प्रयाससे कमसे-कम बम्बईके लोगोंका व्यवहार इस सम्बन्धमें बड़ा अच्छा रहा। हड़ताल बिलकुल स्वयंस्फूर्त और ऐच्छिक थी। किसी

१. यह भाषण बम्बईमें खिलाफत-दिवसपर आयोजित एक सार्वजनिक सभामें दिया गया था, जिसमें कोई तीस हजार हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य धर्मावलम्बी नागरिक मौजूद थे। सभाकी अध्यक्षता मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानीने की थी।

२. प्रस्तावका पाठ निम्नलिखित था: "बम्बईके हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य नागरिकोंकी यह सभा, ब्रिटेनमें मुसलमानोंके और सारे भारतके मर्मको आघात पहुँचानेके उद्देश्यसे चल रहे हिंसात्मक और अनुत्तरदायित्वपूर्ण आन्दोलनके प्रति तीव्र विरोध प्रकट करती है, और विश्वास करती है कि महामहिमके मन्त्रिगण तथा अन्य जो राजनयिक भारतको एक स्वतंत्र साझेदारके रूपमें साम्राज्यमें शामिल रखना चाहते हों वे सब न केवल इस आन्दोलनसे अपने-आपको अलग रखेंगे बल्कि खिलाफतके सवालका कोई ऐसा निबटारा करायेंगे जो महामहिमके करोड़ों मुसलमान प्रजाजनोंकी उचित और धार्मिक भावनाओंके अनुरूप हो; और इस तरह वे भारतके लोगोंको इस बातके लिए आश्वस्त कर देंगे कि यूनाइटेड किंगडमके लोग उनके प्रति सख्य-भाव और सौहार्द रखते हैं।

यह सभा आगे अपनी गहरी प्रतीति व्यक्त करती है कि अगर इस सवालका किसी और ढंगसे निबटारा किया गया तो उसका परिणाम अन्ततः यह होगा कि लोग सरकारसे सहयोग करना बिल्कुल बन्द कर देंगे और इसलिए यह सभा साम्राज्यके सभी राजनयिकोंसे अनुरोध करती है कि वे ऐसा-कुछ करें जिससे भारतीयोंकी वफादारीपर इतना कठिन दबाव न पड़े।

साथ ही यह सभा इस तथ्यको भी ध्यानमें लाना चाहती है कि भारतीयोंकी उचित भावनाओंको प्रभावकारी बनानेके लिए संयुक्त रूपसे जो भी कदम उठाना आवश्यक होगा उसमें न वचनसे और न

तरहके बाहरी दबावका उपयोग नहीं किया गया। मैंने समितिको सलाह दी थी कि मिल-मजदूरोंसे हड़तालमें शामिल होनेको न कहा जाये, और यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि समितिने उस सलाहका पूरा पालन किया।

आये दिन देशकी विभिन्न औद्योगिक पेढ़ियोंमें मजदूरों और मालिकोंके बीच तनाव बना ही रहता है।[1] इस चीजको देखते हुए हम मजदूरोंको, जबतक उनके मालिक स्वेच्छासे उन्हें अनुमति न दे दें तबतक, अपने कामसे अनुपस्थित होनेको प्रेरित न करें तो अच्छा है।

हमारे प्रस्तावके चार भाग हैं। पहले भागमें एक आपत्ति की गई है और एक निवेदन। आपत्ति की गई है खिलाफतके प्रश्नपर इंग्लैंडमें प्रारम्भ किये गये हिंसापूर्ण और अनुत्तरदायित्वपूर्ण आन्दोलनके विरुद्ध; और निवेदन मंत्रियों तथा अन्य राजनयिकोंसे किया गया है। निवेदन यह कि वे इस आन्दोलनमें भाग न लें और इस सवालका कोई ऐसा सम्मानजनक निबटारा करायें जो भारतके मुसलमानोंकी उचित धार्मिक भावनाओंके अनुरूप हो, और इस तरह वे हमें आश्वस्त कर दें कि ब्रिटेनके लोग हमारे प्रति सौहार्द और मित्र-भाव रखते हैं। प्रस्तावके दूसरे हिस्सेमें सम्बन्धित लोगोंको आगाह किया गया है कि अगर सवालका कोई प्रतिकूल निबटारा किया गया तो सम्भव है, उसके परिणामस्वरूप सरकारके साथ सहयोग करना बिलकुल बन्द कर दिया जाये।[2] ऐसे किसी निबटारेका मतलब होगा, भारतीयोंकी वफादारीपर अनुचित दबाव डालना, और अगर दुर्भाग्यवश असहयोग बन्द करने-जैसी कोई कार्रवाई करना जरूरी हुआ तो फिर उत्तेजना फैलनेकी भी सम्भावना है। प्रस्तावके तीसरे हिस्सेमें लोगोंको वचन अथवा कर्म, किसी भी तरहसे हिंसा करनेके खिलाफ स्पष्ट शब्दोंमें चेतावनी दी गई है, और कहा गया है कि इस महती सभाके विचारसे किसी भी प्रकारकी हिंसाका परिणाम इस पवित्र उद्देश्यके लिए घातक होगा और इससे इसकी अपूरणीय क्षति होगी। यहाँतक तो यह प्रस्ताव हिन्दुओं, मुसलमानों तथा जिन

कर्मसे ही हिंसाका सहारा लिया जायेगा और इसका यह दृढ़ मत है कि इस आन्दोलनके सिलसिलेमें की गई किसी प्रकारकी हिंसा इसके लिए बहुत घातक सिद्ध होगी और इससे इसकी अपूरणीय क्षति होगी।

अगर यह संयुक्त कार्रवाई असफल रह जाती है तो मुसलमान लोग ऐसे कदम उठानेका अपना अधिकार सुरक्षित रखते हैं जो परिस्थितिको देखते हुए आवश्यक लग सकते हैं।

इस सभाके अध्यक्षको इस प्रस्तावकी एक प्रति परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयकी सेवामें इस निवेदनके साथ प्रेषित करनेका अधिकार दिया जाये कि वे महामहिम सम्राट्को भी यह प्रस्ताव भेज दें।"
अमृतबाजार पत्रिका, २४-३-१९२०।

१. उदाहरणके लिए जमशेदपुरके टाटा इस्पात कारखानेके मिल-मजदूरोंका झगड़ा ले सकते हैं जिसमें हड़तालियोंपर पुलिस और सैनिकोंने १५ मार्चको गोलियाँ भी चलाई थीं।

२. गांधीजीका असहयोगका कार्यक्रम जनताके सामने पहले-पहल २६ जनवरी, १९२० को मेरठमें आयोजित खिलाफत कान्फ्रेंसमें रखा गया। २९ फरवरी, १९२० को कलकत्तेमें आयोजित दूसरी कान्फ्रेंसमें मौलाना आजादने अपने अध्यक्षीय भाषणमें इस कार्यक्रमके "मुसलमानों द्वारा स्वीकार करनेकी" सिफारिश की।

अन्य लोगोंके लिए यह देश मातृभूमिके समान है या जिन्होंने इसे अपने देशके रूपमें अंगीकार कर लिया है, उन सबके बीच एक संयुक्त अभिसन्धि है।

और इस संघर्षके दौरान इस तरह संयुक्त रूपसे जो-कुछ भी किया जायेगा, उसके लिए तो यह प्रस्ताव अहिंसाकी नीतिके पालनका अनिवार्य विधान करता है; लेकिन 'कुरान'के अनुसार मुसलमानोंके कुछ विशेष दायित्व हैं, जिनके निर्वाहमें हिन्दू शामिल हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। इसलिए मुसलमान लोग, अहिंसक असहयोगके असफल होनेपर, न्याय प्राप्त करनेके लिए ऐसे सभी उपायोंका आश्रय लेनेका अपना अधिकार सुरक्षित रखते हैं जिनकी व्यवस्था इस्लामके धर्मग्रंथोंमें की गई हो। मैं इस प्रस्तावसे अपनी हार्दिक सहमति व्यक्त करता हूँ। मेरे विचारसे इसका स्वर पूरी तरहसे विनय और मर्यादापूर्ण है। मैं देखता हूँ कि इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए शिया और सुन्नी, हिन्दू और पारसी सभी बड़े ही सौम्य और शिष्ट ढंगसे मिलजुलकर अपने विरोधका प्रदर्शन कर रहे हैं। हिन्दुओंका कपड़ेका यह भारी बाजार पूरी तरह बन्द रहा, उनके कारोबारकी पेढ़ियाँ भी बन्द रहीं, इससे स्पष्ट है कि वे मुसलमानोंकी माँगसे पूरी तरह सहमत हैं। लन्दनमें जो नापाक आन्दोलन[1] प्रारम्भ किया गया है, उससे भारतीयोंकी भावना इतनी उबल पड़ी है कि जबतक न्याय नहीं कर दिया जाता तबतक वह शान्त नहीं हो सकती। हमें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ और आश्चर्य भी कि अपने भारत-सम्बन्धी समस्त ज्ञान और अनुभवके बावजूद लॉर्ड कर्जनने भी इस मूर्खतापूर्ण आन्दोलनमें हाथ बँटाया है।

आशाकी किरण

फिर भी ये जो विपत्तिके बादल उमड़ आये हैं, उनके बीच आशाकी एक किरण दिखाई दे रही है। श्री मॉन्टेग्यु हमारे पक्षका बड़ी दृढ़ताके साथ समर्थन करते रहे हैं। श्री लॉयड जॉर्जने भी आखिरकार अपनी स्मरणीय घोषणाको फिर दुहराया है,[2] हालाँकि तनिक आगा-पीछा करते हुए। मेरा खयाल है, भारत सरकार हमारी माँग पूरी करानेके लिए बड़ी दृढ़तासे कार्रवाई कर रही है। आंग्ल-भारतीय अखबारोंका रुख भी अमैत्रीपूर्ण नहीं है। बल्कि 'टाइम्स आफ इंडिया' और बंगाल चैम्बर ऑफ कामर्सने तो हमारे पक्षका जोरदार समर्थन भी किया है। इस प्रस्तावका सभी अंग्रेजोंको आवाहन है कि वे सत्यकी ध्वजाके नीचे एकत्र होकर, अपने जातीय सम्मान और ब्रिटिश प्रधान मंत्रीके वचनकी रक्षा करें। ब्रिटेनसे भारतके जो सम्बन्ध हैं उनके प्रति मेरी वफादारी किसीसे कम नहीं है, लेकिन अपना सम्मान बेचकर, अपने देशभाइयोंके एक वर्गकी गहरी धार्मिक भावनाओंका बलिदान करके वफादारीका तमगा लगाये रहना

१. तात्पर्य शायद इंग्लैंडमें तुर्कोंके खिलाफ किये जा रहे प्रचारसे है। इस प्रचारमें तुर्कोंपर मानवताके विरुद्ध अपराध करनेका आरोप लगाया गया था।

२. २६ फरवरी, १९२० को लॉयड जॉर्जने कॉमन्स सभामें घोषणा की कि "१९१८ के जनवरी महीनेमें जो वचन दिया गया था वह सभी दलोंसे पूरी तरह सलाह-मशविरा करनेके बाद दिया गया था। यह वचन स्पष्ट रूपसे बिना किसी शर्त-बन्धनके और सोच-समझकर दिया गया था. . . भारतमें इसका परिणाम यह हुआ कि उसी क्षणसे फौजी भरती बड़े जोर-शोरसे होने लगी।"

REPORT

OF

THE COMMISSIONERS

APPOINTED BY

THE PUNJAB SUB-COMMITTEE

OF

THE INDIAN NATIONAL CONGRESS.

Vol. I Report.	price Rs. 2.
Vol. II Evidence.	price Rs. 5.
Vols. I and II together.	price Rs. 6.

1920

कांग्रेसकी रिपोर्ट : पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें

मुझे कभी भी स्वीकार नहीं है। जिस वफादारीकी कीमत अपनी आत्मा देकर चुकानी पड़े वह वफादारी किसी कामकी नहीं, और अगर गत युद्धके दौरान हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही वर्गोंके भारतीय सिपाहियोंकी जानी-मानी सेवाओंके[1] बावजूद एक ब्रिटिश राजनयिक द्वारा दिया गया वचन तोड़ दिया जाता है तो फिर वह स्रोत ही नहीं रह जायेगा जिससे भारतको वफादारीकी प्रेरणा मिलती है। मैं आशा छोड़ रहा हूँ, ऐसी बात नहीं। लेकिन अगर आशा निराशामें परिवर्तित हो जाती है और वह अवांछित स्थिति सामने आ जाती है तो ईश्वर ही जानता है कि हमारी इस सुन्दर मातृभूमिमें क्या कुछ घटित होगा। हम इतना ही जानते हैं कि फिर जबतक अन्यायका निराकरण नहीं हो जायेगा और आठ करोड़ मुसलमानोंकी भावनाओंको सन्तुष्ट नहीं कर दिया जायेगा तबतक सरकार अथवा जनताको न तो शान्ति नसीब होगी और न चैन।

बिलकुल खरा खेल

आशा है, इतनी-सी बात तो सभी समझते होंगे कि अपने मुसलमान देशभाइयोंका साथ देना हिन्दुओंके लिए आवश्यक क्यों है? अगर साधन और सिद्धि दोनों शुद्ध हैं तो हम मुसलमानोंके साथ पूरा सहयोग करें, हम दोनोंको स्थायी रूपसे एक सूत्रमें बाँधनेवाली इससे अधिक कारगर चीज तो मुझे दिखाई नहीं देती। लेकिन एक इतने पवित्र उद्देश्यकी प्राप्तिमें वचन या कर्म, किसी भी तरह हिंसाके लिए कोई गुंजाइश नहीं हो सकती और न होनी चाहिये। हमें अपने विरोधीको घृणासे नहीं, प्यारसे जीतना है। अन्यायीको प्यार करनेमें जो कठिनाई है, उसे मैं स्वीकार करता हूँ, लेकिन विजय निर्विघ्न समतल मार्गपर आगे बढ़नेमें निहित नहीं है, वह तो दृढ़ता और साहसके साथ विघ्न-बाधाओंको पार करनेमें छिपी हुई है। और किसी न्याय्य तथा पवित्र उद्देश्यके लिए लड़नेमें संकल्पकी दृढ़ता और अदम्य इच्छा-शक्ति — कमसे-कम इन दो गुणोंकी अपेक्षा तो हमसे की ही जाती है। इसके अतिरिक्त, हिंसासे इस महान् उद्देश्यका सिर्फ अहित ही हो सकता है। इससे एक सनसनी, उत्तेजना फैल सकती है, लेकिन हम ऐसी उत्तेजनाओंके दौरसे गुजरकर कभी भी अपने लक्ष्यतक नहीं पहुँच पायेंगे। इसलिए इस प्रस्तावका अहिंसासे सम्बन्धित हिस्सा आत्मसंयममें निहित बुद्धिमत्ताको स्पष्ट रूपसे स्वीकार करता है और सभी वक्ताओंके लिए ऐसे असंयत या अतिरंजित भाषण करनेसे बचनेका विधान करता है, जिनका परिणाम केवल खून-खराबी, निष्ठुरतापूर्ण दमन-कार्य और सरकार तथा जनता दोनोंका अपमान ही हो सकता है। लेकिन मुसलमान बिलकुल खरा खेल खेलना चाहते हैं।

मुसलमानोंका दायित्व

वे किसी तरहका दुराव-छिपाव नहीं चाहते। इसलिए उनमें से कुछने प्रस्तावमें एक और धारा जोड़ देनेका आग्रह किया है। इसका तात्पर्य यह है कि अगर अहिंसात्मक उपाय असफल हो जाते हैं तो वे ऐसे अन्य उपायोंका सहारा लेनेके लिए स्वतंत्र हैं

१. भारतीय सेनाकी प्रशंसा करते हुए महारानी अलेक्जेंड्राने जो पत्र लिखा था उसे ३० जनवरी, १९२० को भारतके तत्कालीन प्रधान सेनापतिने कौंसिलके सभा-भवनमें पढ़कर सुनाया था।

जिनका विधान उनके लिए 'कुरान'में किया गया है। और वे उपाय ये हैं कि जब उनके धर्मपर आघात किया जाये तो जिस देशमें ऐसा आघात किया जाता है, या तो उसे छोड़कर वे चले जायें और या फिर आघात करनेवालेके विरुद्ध लड़ाई छेड़ दें। और इस प्रकार इस प्रस्तावमें, निस्सन्देह, बहुत ही शालीन और स्पष्ट ढंगसे उन तमाम अवस्थाओंका पूर्व-संकेत दे दिया गया है, जिनसे होकर यह आन्दोलन गुजरेगा, और अन्तिम अवस्था होगी खूनी क्रान्ति। भगवान् न करे कि इस देशको किसी ऐसी क्रान्ति और उसकी समस्त भयंकरताओंसे गुजरना पड़े, लेकिन इस खिलाफतके सवालपर लोगोंकी भावनाएँ इतनी तीव्र और इतनी गहरी हैं कि अगर शान्तिपूर्ण उपाय असफल रह जाते हैं और इस समस्याका कोई अन्यायपूर्ण निवटारा किया जाता है तो यह देश एक ऐसे क्रान्तिकारी आन्दोलनकी चपेटमें पड़ सकता है, जैसा आन्दोलन हमने पहले कभी नहीं देखा है; और अगर ऐसी कोई स्थिति आती है तो उसका दायित्व अंग्रेजोंपर होगा तथा हिन्दुओं और भीरु मुसलमानोंपर। अगर अंग्रेज लोग इस सम्बन्धमें सिर्फ हमारी गहरी भावनाको और एक न्यायपूर्ण निर्णयकी जरूरत देख सकें तो सब-कुछ ठीक ही होगा। अगर हिन्दू लोग पड़ोसीके नाते अपने कर्त्तव्यको समझें और मुसल-मानोंके साथ सक्रिय सहयोग करें तो वे संयुक्त और सर्वथा शान्तिपूर्ण प्रयासके बलपर अधिकारियोंको कोई न्यायसंगत हल निकालनेको मजबूर कर सकते हैं। और जो मुसलमान भीरु हैं वे अगर इस संकटकी घड़ीमें अपनी भीरुता छोड़कर हिंसाके हिमा-यतियोंको यह दिखा दें कि इस्लामका कोई अनुयायी युद्धसे भागनेवाला नहीं है तो इस तरह वे भी रक्तपातको रोकेंगे। और अगर तब भी हमारी किस्मतमें क्रान्ति ही बदी है तो वह उस समय आयेगी जब ईमानदार, सम्माननीय और नेक-रूह मुसलमान अपने-आपको बिलकुल निराशाकी स्थितिमें पायेंगे और ऐसा महसूस करेंगे कि अंग्रेज, हिन्दू और स्वयं उनके सहधर्मी लोग उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि सारा भारत एक होकर सर्वशक्तिमान्से प्रार्थना करेगा और न्यायके लिए ऐसी आवाज बुलन्द करेगा जिसकी उपेक्षा कोई नहीं कर सकेगा। अन्तमें, मैं यह आशा भी करता हूँ कि सरकार विवेकसे काम लेगी और क्रोधमें आकर कोई ऐसी दमनात्मक कार्रवाई नहीं करेगी जिससे क्रान्तिको फूट पड़नेका अवसर मिले। हम आशा करते हैं कि सरकार यह समझेगी कि भारत अब कोई अबोध शिशु नहीं है और समान परिस्थितियोंमें भारतीयोंके मनमें भी वैसी ही भावनाएँ उठती हैं जैसी अंग्रेजोंके मनमें उठती हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-३-१९२०

८२. पत्र : एल० फ्रेंचको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
२० मार्च, १९२०

श्री एल० फ्रेंच
पंजाब सरकारके मुख्य सचिव
लाहौर

प्रिय श्री फ्रेंच,

मैं सरगोधाके बयान अभीतक नहीं भेज सका था। आशा है इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।[1] मैं उन्हें अपने साथ अहमदाबाद नहीं लाया था, और एक स्थानीय कार्यकर्त्ताके द्वारा कुछ और बयान लिये जा रहे थे। और फिर मैं यात्रामें ही रहा हूँ। मुझे जो बहुत सारे बयान मिले हैं, उनमें से कुछ चुने हुए बयान अब मैं आपको भेज रहा हूँ। यथासमय आपके उत्तरकी आशा करूँगा। बड़ी कृपा हो अगर यह सूचित करें कि दाण्डिक-पुलिस (प्यूनिटिव पुलिस) हटा ली गई है या नहीं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१२६ पी०) की फोटो-नकलसे।

८३. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

२० मार्च, १९२०

प्रिय मित्र,

आशा है आपने ६ अप्रैलसे १३ अप्रैलतक वह सप्ताह मनानेका मेरा सुझाव[2] पढ़ लिया होगा जिसे सत्याग्रह-सप्ताह कहा जा सकता है। मैं आशा कर रहा हूँ कि सप्ताहके दौरान दस लाख रुपये इकट्ठा करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि स्वयंसेवक जानी-मानी साखवाले लोग हों और उनकी ईमानदारीमें किसी तरहके सन्देह-को गुंजाइश न हो तो हमें रसीदोंकी कोई जरूरत नहीं, सभी लोगोंसे सीधे चन्दा ले लेना काफी होगा। धनवान स्त्री-पुरुष अपने सुपरिचित क्षेत्रोंमें जाकर चन्दा इकट्ठा कर सकते हैं। किन्तु जिस बातपर मैं और जोर देना चाहता हूँ वह कामका तरीका नहीं, बल्कि खुद काम ही है। आशा है मैंने जिस तरीकेसे यह सप्ताह मनानेका सुझाव दिया है उस तरीकेसे उसे मनाने या १३ तारीखके कत्लेआमके[3] सिलसिलेमें एक स्मारक

१. देखिए "पत्र: एल० फ्रेंचको", २९-२-१९२०।
२. यंग इंडियामें प्रकाशित; देखिए "६ अप्रैल और १३ अप्रैल", १०-३-१९२०।
३. जलियाँवाला बागमें।

बनानेकी वांछनीयताके बारेमें कोई मतभेद नहीं होगा। मेरी सलाह है कि लोगोंके सामने इस विषयको प्रस्तुत करते समय उनके मनमें शहीदोंकी स्मृति जगायें, किये गये अत्याचारोंकी स्मृति नहीं।

मुझे विश्वास है कि जो लोग सत्याग्रहके तरीकेको पसन्द नहीं करते वे भी उस कारणसे चन्दा इकट्ठा करनेके काममें योग देनेसे हाथ न खींचेंगे। यह सही मानेमें एक राष्ट्रीय स्मारक होना चाहिए।

लेकिन इस सप्ताहमें उपवास और प्रार्थना भी शामिल हैं, जिनपर मैं स्वयं स्मारक-से भी अधिक बल देता हूँ, क्योंकि यदि व्यापक रूपमें उपवास और प्रार्थना की जायेगी तो मैं जानता हूँ कि धन तथा जिस वस्तुकी भी हमें जरूरत है, वह सब बिना किसी और प्रयत्नके ऐसे आने लगेगी जैसे आसमानसे बरस रही हो। इस दिशामें एक अद्वितीय विशेषज्ञकी हैसियतसे मैं आपको अपना अनुभव बताना चाहता हूँ। मैं अपने किसी भी ऐसे समकालीन व्यक्तिको नहीं जानता जिसने उपवास और प्रार्थनाको, मेरी तरह विशुद्ध विज्ञानका रूप दे दिया हो और जिसने उनसे मेरे जितना प्रचुर लाभ उठाया हो। क्या ही अच्छा होता, यदि मैं इस सम्बन्धमें अपने अनुभवोंको पूरे राष्ट्रके मनमें उतार सकता और उसे पूरी जागरूकता, ईमानदारी और उत्कटताके साथ उपवास तथा प्रार्थनाका सहारा लेनेके लिए प्रेरित कर पाता। अगर हम ऐसा करें तो यह बात अविश्वसनीय तो लगेगी, लेकिन है सच कि हम राष्ट्रसे सम्बन्धित लाखों काम बिना किसी विस्तृत संगठन-समायोजन और प्रतिबन्ध-नियन्त्रणके कर ले जायेंगे। परन्तु मैं जानता हूँ कि उपवास और प्रार्थनाको, जितना प्रभावकारी मैंने पाया है, उतना प्रभावकारी बनानेके लिए तो उपवास और प्रार्थना कोई रीति-निर्वाहके रूपमें नहीं, बल्कि निश्चित आध्यात्मिक अनुष्ठानके रूपमें करने चाहिए यानी उपवास दैहिक तपके द्वारा अथवा [यदि 'बाइबिल'के प्रतीकका उपयोग करके कहा जाये तो] देहके बलिदान द्वारा जहाँ उतने ही अंशमें आत्माकी विमुक्ति है वहाँ प्रार्थना सर्वथा शुद्ध और निष्कलुष होनेके लिए हमारे अन्तःकरणकी निश्चित चेतन अभीप्सा है। और इस प्रकार जो शुद्धि प्राप्त होती है वह पुनः किसी लक्ष्यविशेषकी सिद्धिके लिए उत्सर्ग कर दी जाती है, जो स्वयं भी उतना ही विशुद्ध होता है। अतएव मैं आशा करता हूँ कि यदि आप उपवास और प्रार्थनाकी प्राचीन परम्परामें विश्वास रखते हों तो आप ६ अप्रैल और १३ अप्रैल, दोनों तिथियोंका उपयोग इसी उद्देश्यके लिए करेंगे और पड़ोसियोंको भी ऐसा ही करनेके लिए प्रोत्साहित करेंगे।

अब रह जाती है तीनों सभाओंकी[1] बात; सो मुझे विश्वास है कि उनका आयोजन आप अवश्य करेंगे और उन्हें पूर्ण रूपसे सफल बनायेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
लेटर्स ऑफ वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री

१. ६, ९ और १३ अप्रैलको।

८४. पत्र: मथुरादास त्रिकमजीको

शनिवार
२० मार्च, १९२०

मैं तुमसे [यह] कहूँ कि मैं कल रात सिर्फ आधा घंटा ही सो पाया तो पत्र न लिखनेके लिए तुम मुझे क्षमा करोगे ही। क्षमा चाहता हूँ क्योंकि तुम्हारा स्मरण मुझे सदैव बना रहता है और तुम्हारे धर्म-संकटमें[1] पत्र लिखकर भाग लेना चाहते हुए भी ले नहीं पाया। मैं मंगलवारको सवेरे वहाँ पहुँचूंगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

८५. खिलाफत

खिलाफतका प्रश्न जितना गम्भीर है उतना ही हमारे लिए वह अभिनन्दनीय अवसर भी है। गम्भीर इसलिए कि उसमें आठ करोड़ मुसलमानोंकी और इस तरह समस्त भारतवर्षकी शान्ति अन्तर्हित है। अभिनन्दनीय अवसर इसलिए कि उसका हल ढूंढ़नेमें यदि मुसलमानोंने समझदारीसे काम लिया तो उनकी नैतिक सत्ता बढ़ेगी एवं भारत नैतिक सत्तायुक्त साम्राज्यका उपभोग करेगा; हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता, बल और नीति बढ़ेगी तथा अंग्रेज भी, जो हमें हीन समझते हैं, हीन समझना बन्द कर देंगे। भाईचारा बराबरवालोंके बीच ही निभ सकता है। अंग्रेज हमें बराबरीका नहीं मानते। हम स्वयं भी अपनेको उनकी अपेक्षा हीन समझते हैं। इसलिए हमें, हिन्दू-मुसलमानोंको, इस प्रश्नको सन्तोषजनक रूपसे हल करके तीनोंमें समानताकी भावना स्थापित करनी चाहिए।

तलवार व्यक्तियोंको एक बनाती है। दोनों परस्पर भैंसेकी तरह खूब लड़झगड़कर थक जाते हैं और फिर एक दूसरेका अभिनन्दन करके भाईचारेके स्नेहपाशमें बँध जाते हैं। जो निर्बलता दिखाता है वह हीन ठहरता है। विरोधीके प्रति शरीर-बलका प्रयोग न कर आत्मबलके द्वारा भी श्रेष्ठता स्थापित की जा सकती है। यह श्रेष्ठता भयके कारण नहीं बल्कि प्रेमके कारण स्वीकार्य होती है और इससे दोनों एक हो जाते हैं। दूसरे व्यक्तिको अपनेसे नैतिक बलमें उच्च माननेमें हम हीन नहीं ठहरते और दूसरा नैतिक बलमें उच्च होनेका गर्व नहीं करता। अर्थात् दोनों एक दूसरेके प्रति आदर-

१. सक्रिय-सेवाके लिए एक निश्चित क्षेत्र चुननेके सम्बन्धमें। मार्च १९२० में गांधीजीने पंजाबपर किये गये अत्याचारोंके सम्बन्धमें कांग्रेस रिपोर्टके दूसरे भागके प्रकाशनके सिलसिलेमें उन्हें कुछ कार्य सौंपा था।

भाव रख सकते हैं, इसलिए हमें तलवारसे अंग्रेजोंको जीतनेका विचार सर्वथा त्याग देना चाहिए।

मैं यह नहीं कहूँगा कि हम शस्त्रबलका प्रयोग करनेमें एकदम असमर्थ हैं, लेकिन मैं यह अवश्य कहूँगा कि उस बलका प्रयोग करते समय हमें दम्भ, झूठ और विश्वास-घातका सहारा लेना पड़ेगा, और इनका सहारा लेते हुए अनेक अन्य झूठे साधनोंको भी अपनाना पड़ेगा। हमें उनसे लड़नेमें अपनी पूरी ताकत लगा देनी पड़ेगी और तबतक लड़ते रहेंगे जबतक दोनों लड़ते-लड़ते बेदम न हो जाएँ। एक तो वे हमें शस्त्रबलसे सजग होनेका अवसर ही नहीं देंगे, यह मनुष्य जातिका स्वभाव ही है। प्राचीन कालमें भी युद्ध-कलाके अपने ज्ञानको लोग छिपाकर रखते थे। अभिमानी व्यक्ति अपने अभि-मानकी रक्षाके लिए आवश्यक साधन दूसरेको सहज ही नहीं सौंप देता और शस्त्र-बलका अभिमान तो होता ही है। इसलिए हम यदि शस्त्रबलकी सहायतासे एक होना चाहते हों तो वे जबतक पराजय स्वीकार नहीं कर लेते तबतक हमें जूझते रहना पड़ेगा और इस सबके बाद भी हम आपसमें शत्रु ही बने रहेंगे। क्या खिलाफतके प्रश्नका निपटारा इस तरह हो सकता है?

युद्ध करनेकी योग्यता अथवा अयोग्यताके विचारको एक ओर रखकर यदि हम केवल परिणामका ही विचार करें तो भी हम देखेंगे कि शस्त्रबलसे इस समस्याका हल नहीं निकलता। खिलाफतकी लड़ाई केवल अंग्रेजोंके विरुद्ध ही नहीं है। यह लड़ाई ईसाइयोंसे भी है।[1] ईसाई अच्छी तरह संगठित हैं। वे युद्धकौशलमें प्रवीण हैं। उनके साथ युद्ध करनेके लिए [कमसे-कम] इस समय तो मुसलमान तैयार नहीं हैं; भारतके मुसलमान तो स्पष्ट ही तैयार नहीं हैं; न हिन्दू ही युद्धमें उनका मुकाबला कर सकते हैं। ऐसी स्थितिमें व्यावहारिक रूपसे यह लगभग असम्भव जान पड़ता है कि मुसलमान शस्त्रबलसे खिलाफतके प्रश्नका उचित हल प्राप्त कर सकेंगे।

लड़ाईमें उतरनेवाला व्यक्ति 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' तो कह ही नहीं सकता। इस वाक्यका प्रयोग तो नैतिक बलसे लड़नेवाला व्यक्ति ही कर सकता है, क्योंकि नीतिमय युद्धमें पराजय नामकी वस्तु तो है ही नहीं। शुद्ध साधनोंको प्रयोगमें लानेवाला व्यक्ति भाग्यका भरोसा कर सकता है लेकिन अशुद्ध साधनोंका सहारा लेनेवालेको वैसा करनेका अधिकार ही नहीं है। जान-बूझकर कुएँमें छलाँग मारनेवाला ईश्वरकी निन्दा करे तो उसे तत्काल उसकी सजा मिल जाती है। वह अकाल मृत्युका ग्रास हो जाता है। शराब पीनेवाला यदि ऐसा-कुछ कहे कि अगर 'भगवान्‌की इच्छा यही है कि मैं शराब पीऊँ तो मैं शराब पिये बिना कैसे रह सकता हूँ' तो दुनिया उसपर हँसेगी। नीतिके प्रयोगमें हम भगवान्‌पर अटूट विश्वास रखते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि नीतिका परिणाम सुन्दर ही होगा। शस्त्रबलका प्रयोग करनेवाले अपने शस्त्रोंपर ठीक वैसे ही भरोसा करते हैं जिस तरह शराबी शराबके नशेपर करता है और नशा

१. ब्रिटिश और अमरीकी समाजके प्रभावशाली व्यक्तियोंने माँग की थी कि तुर्कोंको कुस्तुन्तुनियाँसे निकाल दिया जाए और उन्हें चतुर्थ श्रेणीकी राज्य सत्ता बना दिया जाए।

उतरनेपर जिस तरह शराबी मिट्टी बन जाता है उसी तरह वे लोग भी सत्ताके टूट जानेपर मिट्टीके समान असहाय होकर रह जाते हैं।

लेकिन यदि हिन्दू-मुसलमान दोनों सत्याग्रह रूपी दिव्य-शस्त्रको धारण करें तो विजय निश्चित है। हिन्दू-मुसलमान, ईसाइयों द्वारा किये जानेवाले अन्यायमें हाथ बँटाये तो उन्हें पराजित करनेवाला कौन है? कोई भी मुसलमान मुसलमानोंपर होनेवाले अन्यायों-में हाथ न बँटाये तो यह ईश्वरीय वचनकी तरह निश्चित है कि वे कदापि पराजित नहीं हो सकते। इसीसे मैंने कहा है कि अंग्रेजोंको उनके अन्यायपूर्ण कृत्योंमें मदद न करना हमारा अधिकार है, हमारा कर्तव्य है। इस कर्तव्यको अदा करके ही मुसलमान अपने धर्मपर होनेवाले आक्रमणसे बच सकते हैं।

ब्रिटिश लेबर पार्टीने खिलाफतके प्रश्नपर जो विचार प्रकट किये हैं, उस सम्बन्धमें भी थोड़ा विचार करें। उसका सार[1] हम दूसरी जगह दे रहे हैं। उस पक्षका कहना है कि यह तो मुसलमान भी चाहते हैं कि इस्लामी साम्राज्यका[2] विभाजन कर दिया जाये। हिन्दुस्तानके मुसलमान इस बातका विरोध कैसे कर सकते हैं? अरब ओटोमनके साथ[3] न रहना चाहें तो क्या उन्हें जोर-जबरदस्तीसे उनके साथ रखा जा सकता है? एक सत्याग्रहीकी तरह मैं तो तत्काल इसका उत्तर दे सकता हूँ। मैं अरबोंकी स्वाधीनता छीन लेनेकी बातका समर्थन नहीं कर सकता, वे स्वतन्त्र अवश्य रहें, लेकिन खलीफाकी सत्ता स्वीकार करते हों। पवित्र स्थानोंपर खलीफाका अधिकार बना रहना चाहिए। यदि यह न हो सके तो मैं इसके लिए लड़ाई भले ही न करूँ लेकिन [illegible] परिणाम निकले उसमें उनकी मदद भी न करूँ। मेरे सहयोगके बिना यह अन्याय सम्भव नहीं हो सकता। यदि प्रत्येक हिन्दू-मुसलमान सरकारी नौकरी छोड़ दे तो क्या हो? या तो अंग्रेजोंको ही भारत छोड़ना पड़े अथवा उन्हें हमारी इच्छाके अनुसार चलना पड़े। इसलिए मेरे विचारसे हमें धीरज रखने और लोकमतके सही ढंगसे निर्णय लेनेकी राह देखनी चाहिए। प्रश्न है, वर्तमान जागृतिका मुसलमान सदुपयोग करेंगे अथवा दुरुपयोग? मुसलमान स्वयं अपने शत्रु बनेंगे अथवा मित्र? ईश्वर उन्हें सन्मति दे और वे ऐसी परिस्थितियोंका निर्माण करें कि हिन्दू उनकी मदद कर सकें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-३-१९२०

८६. पत्र: एस्थर फैरिंगको

इतवार, २१ मार्च, १९२०

मैं तुझसे यह कहता हूँ कि तुझे जो दिख जाये
गलीमें, राजपथपर या खुले मैदानमें,
उससे यही कह
कि वह, हम और सभी
प्यारकी एक छतकी छायामें रहते हैं —
छत जो हमारे सिरपर नीले आसमानके बराबर बड़ी है।
उससे कह कि शंका और कष्ट और भय और पीड़ा
और मनकी कसक सब मिथ्या है।
यहाँतक कि खुद मौत भी सदा रहनेवाली नहीं है,
सम्भव है कि हमें लम्बे-लम्बे मरुस्थल तय करने पड़ें;
सम्भव है कि तहखानोंके अंधकार-भरे एक रास्तेसे
दूसरा अंधकार-भरा रास्ता आ जुड़ता हो, भूलभुलैयोंके धागेसे;
इस सबके बाद भी अगर हम
एक ही पथ-प्रदर्शकके इशारेपर चलें
तो घोरतम सूने अन्तर और कृष्णतम मार्ग
दिव्य दिवसके द्वारपर पहुँचा देंगे;
और हम जो एक दूसरेसे बहुत दूर-दूरके
किनारोंपर जाल फेंक रहे हैं
अपनी खतरनाक यात्रा समाप्त करके
आखिरकार सबके-सब पितृगृहमें आ इकट्ठा होंगे।

ट्रेन्च

रानी बिटिया,

मैं रेलगाड़ीमें हूँ। दिल्ली[1] जा रहा हूँ। मैं आराम[2] नहीं ले पाया। कल मैंने तुम्हें कुछ नहीं भेजा। भेज नहीं पाया। शायद अब काफी दिनोंतक कुछ न भेज

१. गांधीजी बम्बईसे २१ मार्चको दिल्ली गये थे।

२. एक पाँवमें दर्द होनेके कारण गांधीजीको आराम लेनेकी जरूरत थी। मार्चके आखिरी हफ्तेमें आराम करनेके खयालसे वे सिंहगढ़ गये थे।

पाऊँ क्योंकि आजके बाद कल क्या होगा, कह नहीं सकता। छोटा ही सही, पत्र जरूर देना।

सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

८७. पत्र : एस्थर फैरिंगको

सोमवार [२२ मार्च] १९२०

रानी बिटिया,

आजके लिए नीचे लिखी कविता चुनी है :

जो अधःस्थित ही है उसे गिरनेका डर नहीं है,
    जो झुका हुआ है उसे घमण्ड नहीं छू पाता,
और जो नम्र है—
    भगवान उसे रास्ता दिखाता है।
मेरे पास थोड़ा या बहुत जो है
    मैं उससे सन्तुष्ट हूँ
हे प्रभु सन्तोषकी ही मुझे तृष्णा है
    क्योंकि तू उन्हें शरण देता है जो सन्तुष्ट हैं।
जो तीर्थयात्रापर निकले हैं
    बहुत तो उनके लिए बोझा ही है
यहाँ स्वल्प तो वहाँ सुख,
    यह सदा सच है और श्रेष्ठ है।

जॉन बनियन

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

८८. सत्याग्रह-सप्ताहपर विचार[1]

हम शीघ्र ही यह राष्ट्रीय सप्ताह मनानेवाले हैं। हमें विश्वास है कि यह जिस घटनाकी स्मृतिमें मनाया जायेगा उसके योग्य सिद्ध होगा। मुख्य काम होगा स्मारककी जमीनकी कीमत चुकानके लिए चन्दा करना।[2] यह स्मारक गत १३ अप्रैलको शहीदोंकी स्मृतिको स्थायित्व प्रदान करनेके लिए खड़ा किया जायेगा। चन्दा करना ही एक ऐसा काम होगा जिसे ठीक-ठीक मापा जा सकता है; यह काम पंजाबके प्रति हमारी भावनाकी ईमानदारी और गहराईकी खरी कसौटी होगा। अगर उपयुक्त कार्यकर्त्ता मिल जायें तो तीस करोड़की आबादीसे दस लाखकी रकम इकट्ठी करना कठिन नहीं है। अगर धनी-मानी महिलाओं और पुरुषोंको यह काम करनेको तैयार किया जा सके तो हफ्ते-भरके भीतर इतनी रकम इकट्ठी हो सकती है। निःसन्देह, ठीक तो यह होगा कि हर प्रान्तसे यथानुपात चन्दा इकट्ठा किया जाये। हम अगले हफ्ते ऐसी एक सूची देनेकी आशा करते हैं। लेकिन हर प्रान्तको अपने हिस्सेसे जितना अधिक हो सके, इकट्ठा करनेकी कोशिश करनी चाहिए। अगर हम अधिक रकम एकत्र कर लेते हैं तो उससे कुछ हर्ज नहीं होगा। दस लाख अधिकतम अपेक्षित रकम नहीं है, यह तो न्यूनतम है। अतः हर व्यक्तिसे अपेक्षाकी जाती है कि वह चन्दा देनेमें अधिकसे-अधिक उदारता दिखायेगा।

* * *

फिर आती है उपवास और प्रार्थनाकी बात। सच्चा उपवास शरीर, मन और आत्मा तीनोंको शुद्ध करता है। इससे शरीरका — इन्द्रियोंका निग्रह होता है और उस सीमातक आत्माको मुक्ति मिलती है। सच्ची प्रार्थनाका प्रभाव भी आश्चर्यजनक होता है। यह और कुछ नहीं, आत्मा द्वारा अधिकाधिक पवित्रता प्राप्त करनेकी आकुल आकांक्षा है। इस प्रकार प्राप्त पवित्रता सदुद्देश्योंके लिए प्रयुक्त हो तो प्रार्थनाका रूप ले लेती है। हम देखते हैं कि गायत्रीका ऐहिक उद्देश्योंके लिए भी उपयोग किया जाता है और रुग्ण व्यक्तिको स्वस्थ करनेके लिए भी उसका जाप किया जाता है। हमने प्रार्थनाका जो अर्थ बताया है, इस उदाहरणसे वह स्पष्ट हो जाता है। यही गायत्री मन्त्रका जाप जब राष्ट्रीय कठिनाइयों और आपदाओंकी घड़ियोंमें विनयपूर्वक और एकाग्र चित्तसे तथा प्रज्ञापूर्ण ढंगसे किया जाता है तो वह इन आपदाओंको टालनेका एक बहुत प्रभावपूर्ण साधन बन जाता है। ऐसा माननेसे बड़ा भ्रम और कुछ नहीं हो सकता कि गायत्रीका जाप करना, या नमाज पढ़ना या ईसाई-प्रार्थना

१. इस लेखका गुजराती अनुवाद २८–३–१९२० के **नवजीवन**में प्रकाशित हुआ था। उसे **गांधीजीनुं नवजीवन** नामसे प्रकाशित उनके लेख-संग्रहमें भी शामिल किया गया है।

२. जलियाँवाला बाग स्मारक-कोष।

करना अज्ञानियों और अन्धविश्वासियोंका काम है। उपवास और प्रार्थना शुद्धिकरणकी सबसे सक्षम प्रक्रिया है और जो चीज हमारी शुद्धि करती है वह हमें अपने कर्त्तव्य-निर्वाह और लक्ष्य-सिद्धिके लिए अधिक सामर्थ्य तो प्रदान करती ही है। अतएव अगर कभी-कभी उपवास और प्रार्थनाका वांछित प्रभाव होता नहीं दिखता तो उसका कारण यह नहीं है कि उनमें कुछ तत्त्व नहीं है, बल्कि यह है कि हमने सच्ची भावनासे प्रार्थना और उपवास नहीं किया।

इस प्रकार अगर कोई एक ओर तो उपवास करता है और दूसरी ओर दिन-भर जुआ खेलता है — जैसा कि जन्माष्टमीके अवसरपर बहुत-से लोग करते हैं — तो स्वभावतः वह न केवल उपवासके उस लाभसे वंचित रह जाता है जो अपेक्षाकृत अधिक शुद्धिके रूपमें प्राप्त होता है, बल्कि इसके विपरीत ऐसे दुर्वृत्तिपूर्ण उपवाससे उसका और पतन ही होता है। सच्चे उपवासके लिए यह जरूरी है कि उपवास करनेवाले व्यक्तिमें शुद्ध विचारोंको ग्रहण करनेकी तत्परता हो और शैतानके सभी प्रलोभनोंका प्रतिरोध करनेका संकल्प हो। वस्तुतः उसे इस चीजसे अपनेको एकाकार कर देना चाहिए। कोई प्रभुनामकी माला जपे और उसका मन चारों ओर भटकता रहे तो यह तो बिलकुल बेकारकी चीज है। अतः हम आशा करते हैं कि राष्ट्रीय उपवास और प्रार्थनाका आगामी सप्ताह सर्वत्र एक वास्तविकताका रूप धारण करेगा, वह सिर्फ औपचारिक नियम-निर्वाहका सप्ताह बनकर नहीं रह जायेगा।

* * *

देशके विभिन्न भागोंमें हजारों-लाखों मुसलमान जुमा मस्जिदोंमें जाकर सत्यकी विजयके लिए अपने अन्तःकरणसे प्रार्थना कर रहे हैं — इस भव्य दृश्यके[1] कारण खिलाफतके सवालका न्यायपूर्ण हल जितना अधिक सम्भव हो गया उतना और किसी चीजसे नहीं हुआ था। हमें यह आश्वासन देनेमें कोई संकोच नहीं कि सिर्फ प्रार्थनाके बलपर खिलाफतके सवालका उचित हल प्राप्त किया जा सकता है। हम यह जानते हैं कि प्रार्थनाके पक्षमें हम जो यह तर्क दे रहे हैं वह दोनों ओर लागू होता है, क्योंकि प्रार्थनाका मार्ग जैसे हमारे लिए खुला हुआ है, वैसे ही हमारे शत्रुओंके लिए भी। लेकिन यह तर्क प्रार्थनाके विरुद्ध नहीं जायेगा। इससे सिर्फ हमारी यह कमजोरी प्रकट होगी कि हमारा प्रार्थनाका मूल्यांकन प्रार्थनाके फलाफलसे प्रभावित है। ईश्वरसे शर्तबन्दी नहीं की जा सकती। इतना जान लेना काफी है कि प्रार्थना राष्ट्र और व्यक्तिके विकासमें अनन्त कालसे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन रही है। ईश्वर करे, सत्याग्रह सप्ताहके अवसरपर उपवास और प्रार्थनाकी परम्पराएँ अपनी समस्त मूल गरिमाके साथ प्रकट हों।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४–३–१९२०

१. तात्पर्य १९ मार्चके खिलाफत दिवसके दृश्यसे है।

८९. हिंसा बनाम अहिंसा

खिलाफत-दिवस आया और गया। यह सत्याग्रहकी अर्थात् सविनय अवज्ञाकी नहीं वल्कि सत्य और अहिंसाकी वहुत ही वड़ी सफलता और पूर्ण विजय है। इस १९ मार्चकी हड़तालके[1] समान स्वेच्छाप्रेरित हड़ताल और कभी नहीं हुई है — सो इस तरह कि लोगोंको जितना समझाना-बुझाना, जितना प्रचार करना था, सव १९के पूर्व ही किया गया। समितिने[2] मिल-मजदूरोंसे हड़ताल न करनेको कहकर आश्चर्यजनक आत्म-संयमका परिचय दिया। उसने जितनी कुशल और चुस्त व्यवस्था की थी और जिस स्पष्टताके साथ हड़तालको स्वेच्छा-प्रेरित वनानेकी वातको स्वीकार किया, उसके लिए वह अधिकसे-अधिक प्रशंसाकी पात्र है। अगर लोग वरावर वैसे ही आत्म-संयम और अनुशासनसे काम लेते रहें जैसे आत्मसंयम और अनुशासनका परिचय उन्होंने १९ तारीखको दिया और अगर साथ-साथ उनमें वलिदानकी भावना भी उतनी ही हो तो खिलाफतके सम्वन्धमें हमारी आशाएँ फलीभूत होकर रहेंगी। सिर्फ साल-भर पहले किसी भी व्यक्तिको यह विश्वास नहीं हो सकता था कि मुसलमानोंके वीच जो धर्मान्ध लोगोंका एक वर्ग है, वह जीवन-मरणके इस सवालपर शान्तिसे काम ले सकता है और सो भी एक ऐसे दिन जव निठल्ले लोगोंके पास कोई काम-धन्धा न हो। लेकिन जहाँ प्रार्थना है वहाँ निठल्लापन नहीं हो सकता। सभीको यह हिदायत दी गई थी कि कोई भी झगड़ा-टंटा न करे, क्रोधसे काम न ले; इसके विपरीत हर व्यक्ति न्यायकी प्रतिष्ठाके लिए प्रार्थना करे। यह सच है कि वास्तवमें सभीने प्रार्थना नहीं की, लेकिन प्रार्थनाकी भावना सर्वत्र व्याप्त थी और लोग जिस भावनासे प्रभावित थे वह प्रतिशोध, क्रोध और उत्तेजनाकी भावना नहीं वल्कि यही प्रार्थनाकी भावना थी। और इस तरह हमने यह आश्चर्यजनक दृश्य देखा कि हड़तालका दिन भी ऐसे सामान्य दिनोंकी तरह ही वीत गया जव हर कोई शान्ति वनाये रखनेकी आशा करता है। वम्वईकी विशाल सभाका दृश्य, जिसमें कोई तीस हजार लोग मौजूद थे, देखने लायक था। जिन हजारों लोगोंने सभामें वक्ताओंके भाषण सुने उनके चेहरोंपर दृढ़ताका भाव था, फिर भी उन्होंने न तो हर्षध्वनि की और न किसी संयमहीन तरीकेसे अपनी भावना ही प्रकट की। संयोजक लोग इस वातके लिए हार्दिक प्रशंसाके पात्र हैं कि उन्होंने इस सभाका इस ढंगसे संयोजन किया कि उसमें आधुनिक सभाओंवाली अशान्ति, उत्तेजना और अव्यवस्थाके वदले लोगोंको प्राचीन कालकी सभाओंवाली शान्ति, स्थिर संकल्प और व्यवस्थाके दर्शन हुए। जहाँ शान्ति, धीरज, संकल्प और व्यवस्था सत्याग्रहके लिए आवश्यक गुणोंको विकसित करते हैं वहाँ शोर-गुल, उत्तेजना और अव्यवस्था हिंसाका मार्ग प्रशस्त करते हैं। और इस महती सभा और सफल हड़तालका सन्देश

१. वम्वईके हिन्दू दुकानदारोंने खिलाफत दिवसपर स्वेच्छासे हड़ताल रखी थी।

२. खिलाफत समिति, वम्वई।

हिंसा नहीं, अहिंसा है। मैं आशा करता हूँ कि अधिकारीगण स्थितिको गलत रूपमें नहीं समझेंगे; वे उस स्पृहणीय भावनाको समझनेमें चूक नहीं करेंगे जो इस पूरे प्रदर्शनके पीछे व्याप्त थी और उसी तरह इस प्रस्तावके पीछे विद्यमान सराहनीय भावनाको भी समझनेमें चूक नहीं करेंगे। मेरे विचारसे तो यह प्रस्ताव ऐसा है कि इस देश या साम्राज्यके किसी भी सच्चे प्रेमीको इसपर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मैं यह आशा भी करता हूँ कि यह आन्दोलन जिस रूपमें विकसित हो रहा है, उसे भी वे देखेंगे। मैं आशा करता हूँ कि हममें जो अनुकरणीय धैर्य, आत्मसंयम और अनुशासन विकसित हो रहा है, उसका उनपर समुचित प्रभाव पड़ेगा और वे साम्राज्य-सरकारको बतायेंगे कि यद्यपि इस देशमें आज प्रशंसनीय रूपसे शांति व्याप्त है लेकिन साथ ही उसके पीछे एक गम्भीर संकल्पका भाव भी है जो उत्तरमें 'ना' को स्वीकार नहीं करेगा। मुझे आशा है कि सरकार गत अप्रैल माहके अन्यायकी पुनरावृत्ति नहीं करेगी और न इस तरहकी किसी गलतफहमीमें ही रहेगी कि आज लोगोंमें जो एक अदम्य भावना व्याप्त हो चली है और जिस भावनाके कारण वे सब-कुछ सह सकते हैं लेकिन अपमान, अप्रतिष्ठा और पराजय नहीं स्वीकार कर सकते, उस भावनाको वह अत्याचारके बल-पर कुचल देगी।[1]

लिबरल लीग-जैसी प्रतिष्ठित संस्था पूरा विचार किये बिना हड़तालसे पूर्व ही उसकी भर्त्सना करे, यह बड़े दुःखकी बात है। जो जाति आज इतनी व्यथासे पीड़ित है और जिसे अपने सामने निराशाके अतिरिक्त शायद और कुछ दिखाई नहीं दे रहा है, उसे अपनी भावनाओंको व्यवस्थित और संयमित ढंगसे व्यक्त करनेका कोई तरीका तो चाहिए ही। अभी कुछ दिन पहलेतक हम जो-कुछ सोचते थे, उसे बोलने या लिखनेसे डरते थे, इसलिए हमारी भावनाएँ हमारे मनमें ही दबी रह जाती थीं, और उनमें सड़ाँध पैदा हो गई थी, क्योंकि वे जनमतको स्वस्थ प्रकाश और वायुसे वंचित करती थीं। यही कारण था कि हमारे देशमें गुप्त रूपसे एक विप्लववादी आन्दोलन चल रहा था। लेकिन ईश्वरकी कृपासे, अब लगता है, हम उन बुरे दिनोंसे निकल चुके हैं। अब हम बिना किसी डर-भयके खुले तौरपर सोचने, बोलने, और लिखनेका साहस करने लग गये हैं। हाँ, खुलेपनमें मनुष्य जातिको जितना संयम बरतना चाहिए उतना संयम हम अवश्य बरतते हैं। मैं लिबरल लीगके सदस्योंसे और अन्य जो भी व्यक्ति या संस्थाएँ वैसे विचार रखती हों, उन सबसे अनुरोध करता हूँ कि इस सीधी-सी बातको स्वीकार करें और कायरतापूर्ण सावधानीकी अपेक्षा साहस तथा निर्भीकताको श्रेष्ठ समझें। अगर वे हमारे राष्ट्रीय जीवनमें प्रतिदिन आविर्भूत होनेवाली असंख्य शक्तियोंका उपयोग राष्ट्रोत्थानके लिए करना चाहते हों, अगर वे एक नवनिर्माणकी वेदनामें शरीक होनेका गौरवमय पद प्राप्त करना चाहते हों, तो वे समयके संकेतोंकी उपेक्षा न करें, नई पीढ़ीके विकासकी ओरसे आँखें बन्द न करें, उसकी तीव्र आशाओं और आकांक्षाओंपर तुषारपात न करें, बल्कि इस पीढ़ीके नौजवान, उत्साही और आत्म-बलिदानी दुःसाह-

१. यहाँ मूल अंग्रेजीमें कुछ शब्द छूट गये प्रतीत होते हैं। उन्हें अनुमानसे पूरा करके अनुवाद किया गया है।

सियोंके वर्द्धमान दलको नेतृत्व दें। आप उन्हें सहानुभूति दीजिए, उनके दिलकी धड़कनको पहचानिए, उसे सही मार्ग दीजिए, क्योंकि इन लोगोंको तर्कबुद्धिसे और इनकी उच्चात्माको जागृत करके समझाया-बुझाया जा सकता है। अगर आप ऐसा करेंगे तो देखेंगे कि आपके सामने देशकी पुकारपर मर मिटनेवाले लोगोंका कैसा अनुशासित दल तैयार हो गया है। लेकिन अगर वे अपने-आपको उपेक्षित अनुभव करते हैं, अगर उन्हें ऐसा लगता है कि ये पुराने लोग हमारी जरूरतोंको धैर्यपूर्वक सुननेके लिए तैयार नहीं हैं, ये हमारी कोई सहायता नहीं करेंगे तो हो सकता है कि उनमें निराशाका भाव आ जाये और वह फिर निराशोन्मादका रूप ले ले जिसके परिणाम भयंकर विनाशलीलाके रूपमें प्रकट हो सकते हैं। मुझे तो याद नहीं आता कि भारतको सत्याग्रहके मार्गपर ले चलनेका इससे कोई और अच्छा अवसर कभी आया हो — सत्याग्रहका मार्ग अर्थात् वह मार्ग जिसपर चलनेमें पराजयका कोई सवाल ही नहीं उठता और जिसपर चलनेमें अगर किसीसे कोई गलती होती भी है तो उससे किसी औरकी नहीं, बल्कि स्वयं गलती करनेवाले की ही हानि होती है। हाँ, जब मैं सत्याग्रह कहता हूँ तो उसका मतलब आवश्यक रूपसे सविनय अवज्ञा ही नहीं है, बल्कि सत्य और अहिंसा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-३-१९२०

९०. न्यायालयकी मानहानि

अहमदाबादके जिला-जजके सत्याग्रही वकीलोंसे सम्बन्धित पत्र और तत्सम्बन्धी मेरी टिप्पणीके प्रकाशनके सिलसिलेमें 'यंग इंडिया' के सम्पादक और प्रकाशकके विरुद्ध जो मुकदमा चलाया गया था उसकी सुनवाईकी लोग काफी समयसे प्रतीक्षा कर रहे थे। आखिर सुनवाई हुई और निर्णय सुना दिया गया।[1] सम्पादक और प्रकाशक, दोनोंकी न्यायालयकी ओरसे कड़ी भर्त्सना की गई है। लेकिन न्यायालय हममें से किसीको कोई सजा देनेकी सूरत नहीं निकाल सका। और अब अगर मैं इस निर्णयपर विचार कर रहा हूँ तो उसका कारण इतना ही है कि मैं सत्याग्रहीके नाते इससे एक नैतिक निष्कर्ष निकालना चाहता हूँ। जिन मित्रोंने सिर्फ मित्रताके वशीभूत होकर हमें न्यायालयकी ओरसे जिस तरहसे क्षमा-याचना करनेको कहा गया था उस तरहसे क्षमा-याचना कर लेनेकी सलाह दी थी, उन्हें मैं आश्वस्त कर देना चाहता हूँ कि मैंने उनकी सलाह किसी हठके कारण अस्वीकार नहीं की; उसका कारण तो यह था कि वहाँ सवाल एक सिद्धान्तका था। एक पत्रकारकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करते हुए कानूनका भी सम्मान करना था। कानूनको जिस रूपमें मैंने समझा उसके अनुसार मैंने अदा-

१. यह निर्णय १२ मार्च, १९२० को दिया गया था। सुनवाईके गांधीजी द्वारा प्रस्तुत विवरणके लिए देखिए "क्या यह न्यायालयकी मानहानि थी?", १०-३-१९२०।

लतकी कोई मानहानि नहीं की। लेकिन मेरा बचाव मुख्यतः इस तथ्यपर आधारित था कि अगर फिर वैसा ही अवसर उपस्थित हो और मैं उस अपराधकी पुनरावृत्ति करे बगैर न रह सकूं तो मैं माफी भी नहीं माँग सकता था। कारण, मेरी मान्यता है कि न्यायालयके समक्षकी गई क्षमा-याचना भी तभी सच्ची होती है जब वह व्यक्तिगत क्षमा-याचनाकी तरह ही हृदयसे की जाये। लेकिन साथ ही, न्यायालयके प्रति भी मेरा एक कर्त्तव्य था। मुख्य न्यायाधीश महोदयकी सलाह माननेसे इनकार कर देना मेरे लिए कोई आसान काम नहीं था, विशेषकर तब जब कि मेरे साथ उनका जो पत्रव्यवहार हुआ उसमें उन्होंने मेरे प्रति बहुत अधिक लिहाज दिखाया था। बात यह थी कि मैं बहुत ही असमंजसकी स्थितिमें पड़ा हुआ था। अतएव मैंने तय किया कि अपने बचावमें कुछ नहीं कहूँगा, बल्कि अपनी स्थितिको पूरी तरहसे स्पष्ट करते हुए एक वक्तव्य दे दूंगा और यह बात न्यायालयकी मर्जीपर छोड़ दूंगा कि अगर उसका निष्कर्ष प्रतिकूल हो तो वह हमें जैसी सजा देना ठीक समझे वैसी दे। यह दिखानेके लिए कि मैं न्यायालयकी मानहानि नहीं करना चाहता और न मामलेका ढिंढोरा पीटना चाहता हूँ, मैंने प्रचारको रोकनेके लिए असाधारण सावधानियाँ बरतीं और मेरा खयाल है कि न्यायालयको यह प्रतीति करा देनेमें मुझे बहुत अधिक सफलता मिली कि मेरी अवज्ञा — अगर इसे अवज्ञा कहा जाये तो — के पीछे उद्धतताका नहीं, बल्कि विवशताका भाव था; उसमें किसी प्रकारके क्रोध या विद्वेषका भाव नहीं, पूर्ण आत्मसंयम और सम्मानका भाव था; और अगर मैंने क्षमा-याचना नहीं की तो सिर्फ इसलिए नहीं की कि झूठी क्षमा-याचना मेरी अन्तरात्माके विरुद्ध होती। मेरे विचारसे यह सविनय अवज्ञाका लगभग उतना ही सर्वांगपूर्ण उदाहरण था जितनी सर्वांगपूर्ण सविनय अवज्ञा मैं करता आया हूँ। और मेरा खयाल है कि न्यायालयने भी इसका उत्तर अत्यन्त शोभनीय ढंगसे दिया और इस तथाकथित अवज्ञाके पीछे जो विनयशीलता थी उसे पहचाना। न्यायमूर्ति मार्टिनने कानूनकी स्पष्ट व्याख्या करते हुए मेरे विरुद्ध फैसला दिया है। लेकिन इस बातसे मुझे बड़ी खुशी होती है कि उसमें मेरे आचरणके औचित्यमें शंका नहीं की गई है। न्यायमूर्ति हेवर्डके निर्णयमें मेरे आचरणको अनाक्रामक — अर्थात् सविनय — प्रतिरोधका एक उदाहरण माना गया है और लगभग इसी आधारपर कोई सजा नहीं दी गई है। तो यहाँ हम सविनय अवज्ञाकी लगभग पूर्ण विजयका एक उदाहरण देखते हैं, और अवज्ञाका स्वरूप सविनय हो, इसके लिए यह जरूरी है कि उसमें शालीनता हो, सम्मानका भाव हो, संयम हो, उद्धतता न हो और वह किसी सुनिश्चित सिद्धान्तपर आधारित हो तथा झक या सनकमें आकर न की गई हो; और सबसे बड़ी बात यह है कि उसके पीछे घृणा या विद्वेषका लेश भी न हो। मैं नम्रतापूर्वक कहूँगा कि श्री देसाई[1] और मैंने जो अवज्ञा की वह इन सारे गुणोंसे युक्त थी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-३-१९२०

१. महादेव देसाई।

९१. पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट[1]

अध्याय १

पंजाब

(इतिहास और भूगोलकी दृष्टिसे)

इतिहासकी दृष्टिसे पंजाबको भारतका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रान्त समझा जा सकता है। वैदिक कालमें आर्य सबसे पहले यहीं आकर बसे थे। ऋग्वेदके मन्त्र सबसे पहले यहीं उच्चरित हुए थे। तक्षशिलाका महान् विश्वविद्यालय, जहाँ संसारके विभिन्न भागोंसे ज्ञानपिपासु लोग इकट्ठे हुआ करते थे, यहीं था। महाभारतके शूरवीर पाण्डवों और कौरवोंका महायुद्ध इसी प्रान्तमें हुआ था।

मिस्रका बादशाह ऑसिरिस भारतमें पहले-पहल यहीं आया था और इसी प्रदेशमें असीरियाकी रानी सेमिरामिसको, जो अपनी विशाल सेनाएँ लेकर भारतपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए आई थी, करारी हार खानी पड़ी थी। सीथियनों, तातारों और ईरानियोंको भारतमें प्रवेश करनेका प्रयत्न करते समय पंजाबके सपूतोंसे

१. यह रिपोर्ट, जिसका पूरा नाम — **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त जाँच-आयुक्तोंकी रिपोर्ट** — है, और जो २५ मार्च, १९२० को प्रकाशित की गई थी निम्न प्रमाणोंके आधारपर गांधीजीकी लिखी हुई मानी गई है:

(१) "समितिके कार्यको संगठित करनेका दायित्व मुझे सौंपा गया था और चूँकि ज्यादातर जगहोंमें जाँच करानेका काम मुझे दिया गया था, इसलिए मुझे एक दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ था . . .। इस समितिकी रिपोर्ट तैयार करनेका काम भी मुझे सौंपा गया था . . . चूँकि इस रिपोर्टको तैयार करनेका उद्देश्य एकमात्र सत्यको प्रगट करना था, इसलिए पाठक देख सकेंगे . . .।" **आत्मकथा**, खण्ड ५, अध्याय ३५।

(२) (क) "तमाम दिन गांधीजीकी रिपोर्टपर विचार करनेमें बीता।" **स्टोरी आफ माई लाइफ**; एम० आर० जयकर; खण्ड १, पृष्ठ ३२२।

(ख) "रिपोर्ट गांधीजीने तैयार की और मैंने उसमें सहायता दी।" वही, पृष्ठ ३२४।

(ग) "गांधीजीने रिपोर्टका पहला मसविदा एक छोटेसे शान्त कमरेमें बैठकर तैयार किया।" वही, पृष्ठ ३२८।

(घ) तबतक दास, मोतीलाल और तैयबजी समितिसे निकल गये थे और गांधी और मैंने रिपोर्टके प्रकाशनार्थ कठोर श्रम किया। हमारे सतत् श्रमका विवरण मेरी डायरीमें . . . अंकित है. . .। वही, पृष्ठ ३२९।

(३) इस खण्डमें छापे गये वे पत्र जो गांधीजीने मार्च १९२० में जयकरको लिखे थे।

रिपोर्ट दो खण्डोंमें प्रकाशित की गई थी। इसके पहले खण्डमें केवल रिपोर्ट थी और दूसरेमें गवाहियाँ। यहाँ केवल पहला खण्ड ही दिया गया है।

लोहा लेना पड़ा था। इसी प्रान्तमें सिकन्दर महान्का पहली बार पुरुके नेतृत्वमें एक ऐसे शत्रुसे सामना हुआ था जिसके विरुद्ध विजयी होनेपर भी उसका समस्त संसारमें अपना राज्य स्थापित करनेका स्वप्न चूर-चूर हो गया था।

मुख्य पंजाबकी भूमि सिन्धु, सतलज, रावी, व्यास, चिनाव और झेलम — इन पाँच नदियोंके पानीसे सिंचित होती है। इसीसे इसका नाम पंजाब पड़ा है। यह भारतके उत्तर-पश्चिम भागमें स्थित है। इसके उत्तरमें हिमालयका एक भाग और काश्मीर, पश्चिममें सिन्धु नदी, दक्षिणमें सिन्ध प्रदेश और राजपूताना और पूर्वमें यमुना नदी है।

पंजाबका वर्तमान क्षेत्रफल १,३५,७७३ वर्गमील है, जिसमेंसे १,००,००० वर्ग-मीलसे कुछ कम क्षेत्रपर सीधा अंग्रेजोंका राज्य है और शेषपर भारतीय राजाओं और जागीरदारोंका। सन् १९११ में इसकी आबादी दो करोड़से कुछ कम थी। यह प्रान्त पहले बहुत बड़ा था; किन्तु १९०१ में इसके एक भागको अलहदा करके एक अलग प्रान्त बना दिया गया जिसका नाम अब पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश है। सन् १९१२ में, जब ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी राजधानी दिल्ली लाई गई, इसका एक और टुकड़ा अलग कर दिया गया और दिल्ली शहर तथा उसके आसपासके प्रदेशको मिलाकर एक अलग प्रान्त बना दिया गया।

पंजाबमें ज्यादातर आबादी हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखोंकी है। सिखोंका असली घर पंजाब ही है और उनकी संख्या करीब ३५ लाख है। यहाँके लोगोंका मुख्य धन्धा खेती है; किन्तु दूसरे उद्योग भी पनप रहे हैं और पंजाबके विभिन्न नगरोंमें भापसे चलनेवाले बहुतसे कारखाने खुल गये हैं।

ब्रिटिश भारतीय सेनाके लिए सर्वोत्तम सैनिक पंजाबसे मिलते हैं। गत युद्धमें[1] अन्य सभी प्रान्तोंकी अपेक्षा पंजाबने सबसे अधिक सैनिक दिये थे।

लड़ैत जातियोंमें सिखोंका स्थान पहला है और उनके बाद आते हैं राजपूत और जाट। पश्चिमी और दक्षिणी भागोंके राजपूत और जाट जातियोंके लोग मुख्यतः मुसलमान हैं और पूर्वी और उत्तरी भागोंके हिन्दू। मध्य पंजाबके जाट ज्यादातर सिख हैं।

पंजाबने लड़ाईमें कितने सैनिक दिये, यह हम यहाँ स्वयं सर माइकेल ओ'डायरके[2] शब्दोंमें देते हैं। गत ७ अप्रैलको भाषण देते हुए उन्होंने कहा था :

> मैं पिछले साल लड़ाई और लड़ाईमें पंजाबके योगदानके सम्बन्धमें इतनी बार बोला हूँ कि उसके सम्बन्धमें आज मुझे और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। जब लड़ाई शुरू हुई तब हमारी सेनामें १,००,००० सैनिक थे।
>
> १९१७ में मैं आपसे यह कहनेकी स्थितिमें हो गया था कि हमने लड़ाईके पहले ढाई सालोंमें १,२४,००० सैनिक भरती किये थे। उसके अगले साल हमने

१. सन् १९१४-१८ का प्रथम विश्वयुद्ध।

२. पंजाबके लेफ्टिनेंट-गवर्नर, १९१३-१९।

१,२७,००० से ऊपर सैनिक भरती किये और एक साल पहले हमारी कुल भरती ढाई लाखसे ज्यादा थी। तब हम लड़ाईके बहुत ही नाजुक दौरसे गुजर रहे थे और महामहिम सम्राट्के अगस्त माहवाले सन्देश और प्रधान मन्त्रीकी अपीलके उत्तरमें मैंने इस प्रान्तके लोगोंसे कहा कि वे एक सालमें २,००,००० आदमी और भरती करें जिनमें १,८०,००० लड़ैत सैनिक हों। बहुत-से लोगोंका खयाल था कि यह माँग बहुत ज्यादा है। वे लोग यह नहीं जानते थे कि पंजाबमें कितना जोश है। अप्रैल और मईके महीने फसल-कटाईके थे, इसलिए १९१८ के उन दो महीनोंमें हमने सोच-समझकर भरतीकी गति तेज नहीं की किन्तु २१,००० रंगरूट भरती किये गये। जूनसे सितम्बरतक सभी जगह भरतीका अभियान बड़े उत्साहसे चलाया गया और उन चार महीनोंमें ७८,००० रंगरूट अर्थात् प्रतिमास १९,५०० से ज्यादा सैनिक भरती हुए। अक्तूबरमें इन्फ्लुएंजाकी बीमारीके कारण भरती घटकर १४,४२६ पर आ गई और नवम्बरमें, जब हम नया प्रयत्न प्रारम्भ करनेवाले थे, हमारे शत्रुओंने हथियार डाल दिये, लड़ाई बन्द हो गई, और भरती घटकर ६,३१३ पर आ गई; किन्तु जूनसे नवम्बरतक के ६ महीनोंमें हमने ९९,००० सैनिक अर्थात् जितने सैनिकोंका वचन दिया था उनसे आधे सैनिक भरती कर लिये थे, और अप्रैलसे नवम्बरतक के आठ महीनोंमें १,००,००० लड़ैत सैनिकोंको मिलाकर हमारा कुल योग १,२१,००० हो गया था। यदि आवश्यकता जारी रहती तो हमने अपना २,००,००० सैनिकोंका कोटा पूरा कर दिया होता। वर्तमान स्थितिमें हम यह कह सकते हैं कि हमने लड़ाईके चार सालोंमें ३,६०,००० लड़ैत सैनिक भरती किये हैं, अथवा कहना चाहिए कि हम अपने वीर पड़ोसी और मित्र देश नेपालको छोड़ दें तो हमने समस्त भारतमें होनेवाली कुल भरतीका आधेसे भी अधिक भाग अपने प्रान्तसे दिया।

३,५५,००० लड़ैत सैनिकोंमें मुख्य धर्मों और जातियोंके लोगोंका भाग मोटे तौरपर इस प्रकार है:

मुसलमान	१७०,०००
पठान	५,०००
उत्तर और मध्य पंजाबके मुसलमान, जो सामान्यतः पंजाबी मुसलमान कहे जाते हैं	१,३६,०००
दक्षिण पंजाबके मुसलमान	२५,०००
काश्मीरी	१,५००
अन्य मुसलमान	२,५००

सिख		९०,०००
	हिन्दू	९०,०००
	जाट	३०,०००
	डोगरा	२४,०००
अन्य	राजपूत	१०,०००
	अहीर	१०,०००
	गूजर	६,०००
	गौड़ ब्राह्मण	५,०००
	अन्य सब	५,०००
पंजावी ईसाई		४,०००

प्रान्तकी कुल आवादीमें मुसलमानोंका अनुपात ४/६ है। उन्होंने ४८ प्रतिशत रंगरूट दिये। एक तिहाई लोग हिन्दू हैं और उन्होंने २५ प्रतिशत रंगरूट दिये। सिखोंकी संख्या कुल आवादीके नवें भागके वरावर है। लेकिन उन्होंने भी २५ प्रतिशत रंगरूट दिये।

जैसा मैंने पिछले साल कहा था, लड़ैत सेना और भारतीय प्रतिरक्षा सेनाके लिए भी करीव-करीव सारे लड़ैत सैनिक, और सेनामें दूसरे काम करनेवाले ज्यादातर लोग, ग्रामीणोंमें से भरती किये गये। शहरोंमें रहनेवाले लोगों-पर भरतीकी अपीलका वहुत कम असर हुआ, यद्यपि लड़ाईके लिए ऋण देनेमें उन्होंने वड़ी उदारता दिखाई। किन्तु गाँवोंके ज्यादातर हिन्दुओंने भरतीमें वहुत ही गौरवपूर्ण भाग लिया और यद्यपि उनकी भरतीका अनुपात सिखोंसे वहुत कम है, किन्तु करीव-करीव उतना ही है जितना पंजावी मुसलमानोंका।

पंजावका प्रशासन एक लेफ्टिनेन्ट गवर्नरके हाथमें रहता है। उसके नीचे एक व्यवस्थापिका सभा रहती है, जिसके कुछ सदस्य निर्वाचित होते हैं और कुछ नामजद।

पंजावकी राजधानी लाहौर है और हमेशासे लाहौर ही रही है। लाहौर २,५०,००० की आवादीका एक वड़ा नगर है। यह कलकत्तासे कोई १,२०० मील, दिल्लीसे ३०० मील, कराचीसे ७८४ मील और वम्बईसे १,१६२ मील दूर स्थित है।

प्रान्तमें ५ कमिश्नरियाँ हैं, जिनको एक-एक कमिश्नर सँभालता है। ये कमि-श्नरियाँ २८ जिलोंमें वँटी हुई हैं, जिनमें से प्रत्येकका हाकिम डिप्टी कमिश्नर या कल-क्टर होता है। कमिश्नरियाँ निम्न हैं: अम्वाला डिवीजन, जिसमें पंजावका पूर्वी भाग आता है और भारत सरकारकी ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला भी शामिल है; जल-न्धर डिवीजन, जिसमें पहाड़ी भाग और अर्ध पहाड़ी भाग भी आते हैं; लाहौर डिवीजन, जिसमें मध्य भाग शामिल है; रावलपिंडी डिवीजन जिसमें उत्तर-पश्चिमी भाग आता है; और मुल्तान डिवीजन, जिसमें पंजावका पश्चिमी भाग आता है।

अध्याय २

सर माइकेल ओ'डायरका शासन

जिस दिन भारत-भरमें हड़ताल हुई उसके एक दिन बाद अमृतसर और लाहौरमें निहत्थे लोगोंपर गोलियाँ चलाये जाने और अमृतसरके हत्याकांडों और अग्निकांडोंसे तीन दिन पहले, ७ अप्रैलको एक सार्वजनिक भाषणमें सर माइकेल ओ'डायरने यह कहा था:

> सज्जनो, मेरी अक्सर आलोचना की जाती है कि मैं हमेशा पंजाबकी उपलब्धियोंकी चर्चा करता रहता हूँ। किन्तु पंजाबपर मुझे जो गर्व है उसका आधार कोई संकीर्ण क्षेत्रीय भावना नहीं है। मैं पन्द्रह वर्ष पंजाबसे बाहर रहा हूँ और इस बीच मैंने भारतके दूसरे बहुतसे भाग भी देखे हैं। दरअसल मैं कह सकता हूँ कि मैंने बहुत-से शहर, तरह-तरहके लोग और उनके रीति-रिवाज, तरह-तरहकी आबोहवा तथा कौंसिलें और सरकारें देखी हैं और उनका ज्ञान प्राप्त किया है। किन्तु मैंने यहाँ राजाओंके महलोंसे लेकर किसानोंके झोपड़ोंतक जो गुण देखे हैं, वे मुझे अन्यत्र कहीं देखनेको नहीं मिले। मैंने देखा है कि मैं पंजाबीसे, चाहे वह किसी भी वर्गका हो या उसकी स्थिति कैसी भी हो, एक मनुष्यके नाते बिना किसी सन्देह या अविश्वासके मिल सकता हूँ। मैंने देखा है कि पंजाबका जनसाधारण राजभक्त है किन्तु चापलूस नहीं है; बहादुर है किन्तु शेखीखोर नहीं है; साहसी है किन्तु स्वप्नदर्शी नहीं है; प्रगतिशील है किन्तु झूठे आदर्शोंके लिए काम नहीं करता और न छायाके पीछे भागता है। इन्हीं गुणोंके कारण पंजाब भारतके समस्त प्रान्तोंमें "सर्वाधिक सम्मानित" प्रान्त बन गया है और इन्हीं गुणों और नैतिक साहसके कारण, जिसकी आनेवाले दिनोंमें अत्यन्त आवश्यकता होगी, पंजाब प्रगति और समृद्धिके मामलेमें अगुआ रहेगा।

उन दिनों सर ओ'डायर यहाँसे प्रस्थान करनेका विचार कर रहे थे और यह उद्धरण उनके इस इच्छित प्रस्थानके पूर्व कौन्सिलमें उन्होंने जो अन्तिम भाषण दिया था, उसीसे लिया गया है।

किन्तु अपने उसी भाषणमें उन्होंने यह भी कहा था:

> इस प्रान्तकी सरकार कृतसंकल्प है और रहेगी कि यहाँ जो जनसुरक्षा युद्ध-कालमें इतनी सफलताके साथ कायम रखी गई है, उसमें शान्ति-कालमें भी कोई विघ्न उत्पन्न न हो। इसलिए लाहौर और अमृतसरमें कुछ लोगोंके विरुद्ध भारत रक्षा कानूनके[1] अन्तर्गत कार्रवाई की गई है। ये लोग किसी भी इरादेसे सही, लोगोंकी भावनाको सरकारके विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला उभार रहे थे। जिस ब्रिटिश सरकारने विदेशी शत्रुओं और आन्तरिक विद्रोहोंको कुचल दिया है,

१. यह 'आवश्यक युद्धकालीन कानून' के रूपमें १९१५ में पास किया गया था।

वह इन आन्दोलनकारियोंकी उपेक्षा कर सकती थी, किन्तु उन नौजवान और नादान लोगोंकी रक्षा करना सरकारका कर्त्तव्य है, जिन्हें ये लोग स्वयं अलग रहकर, शरारत और जुर्म करनेके लिए भड़का सकते हैं। इसलिए मैं इस अवसरपर उन लोगोंको, जिनका इस प्रान्तमें राजनीतिक गतिविधियोंसे सम्बन्ध है, यह चेतावनी देता हूँ कि वे जो सभाएँ आयोजित करेंगे, उनके समुचित संचालन, उन सभाओंमें प्रयुक्त होनेवाली भाषा और उन सभाओंके परिणामोंके लिए उन्हींको जिम्मेदार माना जायेगा। इन शर्तोंके अलावा सरकार जनताके सार्वजनिक सभाएँ करनेके अधिकारमें किसी भी प्रकारसे हस्तक्षेप करना नहीं चाहती; किन्तु इस बातको सभी जानते हैं कि जो लोग, सर्वथा उचित कारणोंसे भी, ऐसी सभाएँ संगठित करते हैं उनमें प्रायः इतना बल या नैतिक साहस नहीं होता कि वे उग्रतर वक्ताओंपर अंकुश रख सकें। और मेरा खयाल है, तथा जो ठीक ही है कि ये थोड़ेसे चीख-पुकार मचानेवाले आन्दोलनकारी बराबर जिस असंयत और प्रमादपूर्ण भाषाका प्रयोग करते हैं उसके कारण संजीदा और समझदार लोग अपनी इज्जतका खयाल करके, ऐसी सभाओंमें जानेसे बचते हैं। अतः इन सभाओंपर जिस चीजका संयतकारी प्रभाव हो सकता है, वह या तो होती ही नहीं या होती है तो उसका प्रयोग नहीं किया जाता। इसी कारण मुझे यह चेतावनी देनेकी आवश्यकता हुई है तथा यह अखबारों और वक्ताओं दोनोंके लिए है। मैं पूरी गम्भीरताके साथ यह पूछना चाहता हूँ कि क्या यही वह शान्त और उचित वातावरण है जिसकी संवैधानिक सुधारोंका मार्ग तैयार करनेके लिए आवश्यकता है? निश्चय ही नहीं; और जो लोग यह अस्वस्थ वातावरण उत्पन्न कर रहे हैं वे, जिस सुधार-सम्बन्धी ध्येयका समर्थन करना चाहते रहे हैं, उसके घोरतम शत्रु हैं। सौभाग्यकी बात है कि वे जितनी चीख-पुकार मचाते हैं, उसकी तुलनामें उनका असर बहुत कम है। उनकी आवाज पंजाबकी आवाज नहीं है।

उसके बाद उन्होंने विस्तारसे यह बताया कि किस तरह रौलट अधिनियम[1] बिलकुल निर्दोष है। उसके सम्बन्धमें वे यह बिलकुल गलत बात कह गये कि उससे पुलिसको मनमानी गिरफ्तारी, तलाशी या दस्तन्दाजीके अधिकार नहीं मिलते। जिसने भी रौलट अधिनियम पढ़ा है वह जानता है कि उसमें अवश्य ही ऐसे अधिकार हैं, और चूँकि उसमें ऐसे अधिकार दिये गये हैं, इसलिए लोगोंने उसका इतना कड़ा विरोध किया है। किन्तु सर माइकेलको रौलट अधिनियमका ऐसा कपोलकल्पित विवरण

१. यह मार्च १९१९ के तीसरे सप्ताहमें भारत-रक्षा कानूनके समाप्त हो जानेसे उत्पन्न स्थितिका सामना करनेके लिए अस्थायी कानूनके रूपमें पास किया गया था और इसके द्वारा स्थानीय सरकारोंको ऐसे लोगोंको, जिनके सम्बन्धमें यह खयाल हो कि उनका सार्वजनिक सुरक्षाके लिए खतरनाक अपराधोंसे कुछ सम्बन्ध है, गिरफ्तार और नजरबन्द करनेके निरंकुशतापूर्ण अधिकार दिये गये थे।

देकर भी सन्तोष नहीं हुआ। वे तो ६ अप्रैलके उस महान् प्रदर्शनके सम्बन्धमें भी, जिसका स्वरूप उपवासके कारण हजारों लोगोंके लिए लगभग धार्मिक बन गया था, अपनी भावना व्यक्त करनेपर आमादा थे। उन्होंने अपने ही ढंगसे उसका उपहास करते हुए कहा :

> **अभी हालमें लाहौर और अमृतसरमें जो बच्चोंके खेल-जैसे प्रदर्शन किये गये उनका अगर कोई मतलब था तो बस यह प्रकट करना कि अज्ञानी और भोलेभाले लोग, जिनमें हजारमें से एक भी इस कानूनके बारेमें कुछ नहीं जानता, कितनी आसानीसे गुमराह किये जा सकते हैं। जो लोग उन्हें सिर्फ गुमराह ही करना चाहते हैं, उनके ऊपर भारी जिम्मेदारी आती है। उन्हें मैं राष्ट्रपति लिंकनकी इस प्रसिद्ध उक्तिकी याद दिलाता हूँ: "यदि आप बहुत ही चालाक और सिद्धान्तहीन हैं तो आप सब लोगोंको कुछ समयतक और कुछ लोगोंको सदैव गुमराह कर सकते हैं। किन्तु आप सब लोगोंको सदैव गुमराह नहीं कर सकते।" जो लोग जनताके विवेकको जागृत नहीं करते, उनके अज्ञानसे लाभ उठाते हैं, उनको किसी-न-किसी दिन इसका हिसाब अवश्य चुकता करना होगा।**

७ अप्रैलको भारतमें अन्य किसी प्रान्तके गवर्नरने जनताका मजाक नहीं उड़ाया। सर माइकेल ओ'डायरके सिवा सभीने न्यूनाधिक ६ अप्रैलका अर्थ समझा; किन्तु सर माइकेलकी इच्छा यह थी कि जो लोग उनके खयालसे लोगोंके विवेकको जागृत नहीं कर रहे, उनके अज्ञान या रोषसे लाभ उठा रहे हैं, उन्हें "अपना हिसाब चुकता करनेका एक अवसर" दिया जाये। हमें बड़े दुःखके साथ आगेके पृष्ठोंमें कर्त्तव्यवश यह बताना होगा कि किसी तरह, किसी औरने नहीं बल्कि स्वयं सर माइकेलने लगभग सदा लोगोंके विवेकको जगानेके बजाय उनके अज्ञान और जोशको भड़काया, और जनता तथा अपने ऊपरके अधिकारियोंको गुमराह करके उन्होंने अपने ऊपर कितनी भारी जिम्मेदारी ली है। हमें दुःखके साथ कर्त्तव्यवश यह भी बताना होगा कि "एक दिन इसका हिसाब अवश्य चुकता करना होगा" से उनका अभिप्राय क्या था। उन्हें फिर १० तारीखको बोलनेका अवसर मिला। उन्होंने यह भाषण अमृतसर और लाहौरमें जो-कुछ हुआ था, उसकी खबर मिलनेपर सायंकाल पंजाबकी लड़ैत जातियोंके प्रतिनिधियोंके सम्मुख दिया था, जो मॉंटगुमरी भवनमें उन्हें मानपत्र देनेके लिए इकट्ठे हुए थे। हम इस भाषणकी एसोसिएटेड प्रेस द्वारा भेजी पूरीकी-पूरी रिपोर्ट यहाँ दे रहे हैं:

> मुझे यह सोचकर प्रसन्नता होती है कि आज शामको जो उत्तेजनात्मक खबर मिली है उसके बावजूद हम आज रात यहाँ इकट्ठे हुए हैं। मुझे इस अनुपम समारोहमें महान् लड़ैत जातियों — पंजाबके मुसलमानों, सिख और हिन्दुओं — के इतने अधिक प्रतिनिधियोंसे मिलकर गर्व हुआ है। ये जातियाँ यद्यपि उत्पत्ति, धर्म और रीति-रिवाजमें भिन्न हैं, फिर भी ये आपसमें एक-

दूसरेके साथ और ब्रिटिश सरकारके साथ वफादारी और बहादुरीकी दो फौलादी जंजीरोंसे बँधी हुई है।

आप प्रशासनकी कठिनाइयाँ, अव्यवस्था और अराजकताके कारण शान्तिपूर्ण और व्यवस्थित प्रगतिमें पड़नेवाली बाधाओंको रोकनेके लिए कदम उठानेकी आवश्यकता तो अनुभव करते ही हैं। आप पिछले कुछ हफ्तोंमें देख चुके हैं कि जो कानून, अराजकता और विप्लवके ऐसे विस्फोटोंसे लोगोंके जानोमालकी हिफाजत करनेके लिए पास किया गया था — और जो केवल तभी काममें लाया जायेगा जब दुर्भाग्यवश ऐसी स्थितियाँ पैदा हो जायें — उसी कानूनको एक छोटे, किन्तु बहुत चीख-पुकार मचानेवाले वर्गने लगातार झूठ बोलकर और गलतबयानी करके ऐसे रूपमें चित्रित किया, जिससे लगता है कि उसका निर्माण लोगोंके विरुद्ध एक घातक हथियारकी तरह प्रयोग करनेके लिए किया गया हो, हालाँकि सत्य यह है कि उसका उद्देश्य जबरदस्त आपत्कालीन स्थिति आनेपर उनकी रक्षा करना है। आपमें से जिन्होंने उस कानूनका अध्ययन किया है वे जानते हैं कि यह आन्दोलन कितना निराधार है। इस आन्दोलनके पीछे जिन लोगोंका हाथ है आप उनके उद्देश्योंका कुछ अनुमान उस घटनासे लगा सकते हैं, जो कुछ दिन पहले मुल्तानमें हुई। उस समय रौलट विधेयक आन्दोलनको बहाना बनाकर उन वीर पंजाबी मुसलमानों, सिखों और गोरखोंका अपमान किया गया जो भारतकी रक्षाकी लड़ाइयाँ लड़कर मोर्चेसे लौटे थे और हम जानते हैं कि इन सैनिकोंका अपमान करनेवाले लोगोंमें स्वतः कोई बहादुरी नहीं है और न जो लोग उनके घर-बारोंकी रक्षाके निमित्त लड़ रहे थे उनकी बहादुरी और वफादारीके प्रति उनके मनमें कोई सराहनाका भाव ही था। उनका उद्देश्य तो बस सरकारपर हमला करना और उन लोगोंका अपमान करना है जिन्होंने नमकहलाली की है। वफादार लोगोंको उनके निकृष्ट उद्देश्योंका विरोध करना चाहिए और वे उनका विरोध करेंगे भी। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि जिनपर आपका प्रभाव हो, उन लोगोंको आप उस कानूनमें सचमुच सरकारकी जो नीयत और नीति है वह बतायें और अज्ञानी और भोले-भाले जनसाधारण और शहरोंके निम्न वर्गोंके लोगोंको भ्रमित करने और उन्हें अपराध करने और अव्यवस्था फैलानेके लिए उभाड़नेके उद्देश्यसे जो झूठा प्रचार किया जा रहा है उसकी कलई खोलें।

आन्दोलनके अभिप्रेरकोंने सबसे पहले तथाकथित निष्क्रिय प्रतिरोधकी नीति घोषित करके यह काम शुरू किया। उसने क्या रूप लिया है? शनिवारको मुल्तानमें जो-कुछ हुआ, वह आपने सुन लिया। रविवारको लाहौर और अमृतसरमें कानून-पालक नागरिकोंके विरुद्ध दबाव और आतंकका प्रयोग किया गया और बम्बईमें वे खुल्लमखुल्ला कानून तोड़ने लगे हैं। इस आन्दोलनको यदि

तत्काल न रोका गया तो अव्यवस्था फैलेगी और खूनखराबी होगी। अमृतसर और लाहौरमें ऐसी स्थिति उत्पन्न हो चुकी है और उससे कानून-पालक नागरिकोंके जानोमालको खतरा पैदा होगा। सरकार आपसे और सभी वफादार नागरिकोंसे, चाहे उनके राजनीतिक विचार कुछ भी हों, यह उम्मीद रखती है कि इस खतरनाक आन्दोलनकी खुल्लम-खुल्ला निन्दा करनेमें उसका साथ दें और इसे जल्दी बन्द करवायें। इस मामलेमें और ऐसे ही अन्य मामलोंमें सरकारके साथ सहयोग करना आपकी युद्धके दौरान की गई सेवाओंके समान ही मूल्यवान और सराहनीय होगा।

फिलहाल स्थिति नाजुक है और आपको और सरकारको तत्काल कार्रवाई करनेकी जरूरत है। सरकार अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें नहीं झिझकेगी और आपको भी अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें मदद देगी। सरकार कानूनपर अमल करेगी और यदि उससे खून-खराबी होती है तो इसकी जिम्मेदारी उनपर होगी जो दूसरोंसे कानून तुड़वाते हैं।

यह मेरी आखिरी सलाह है और मैं जानता हूँ कि आप इसपर तत्काल कार्रवाई करेंगे और मुझे सहयोग देंगे जिससे मैं प्रान्तसे जानेसे पहले सार्वजनिक व्यवस्थाकी स्थापना कर सकूँ। ये उत्पात यद्यपि बहुत गम्भीर हैं फिर भी थोड़े क्षेत्रमें ही सीमित हैं और आपकी सहायतासे जल्दी ही समाप्त हो जायेंगे।

इस बातका स्मरण करके मुझे सदा गर्वका अनुभव होगा कि युद्धकालमें या आन्तरिक उपद्रवोंके समय जब भी मैंने पंजाबकी सैनिक जातियोंसे अपील की, वह व्यर्थ नहीं गई। मुझे विश्वास है कि आप अपनी कार्रवाईसे और जिन वफादार और तगड़े लोगोंका आप प्रतिनिधित्व करते हैं, उनकी कार्रवाईसे अगले कुछ हफ्तोंमें ही आप मेरी कृतज्ञता और सरकारकी सहानुभूतिके और भी अधिक पात्र बन जायेंगे।

अब मुझे आपसे विदा लेनी चाहिए। प्रान्तसे जाते समय मुझे यह याद रहेगा कि आपने क्या-कुछ कर दिखाया है। मैं आपको, आपके कामको और आपके हितोंको कभी भी भुला नहीं सकूँगा।

हमने इस भाषणकी पूरी नकल दे दी है, क्योंकि इससे सर माइकेल ओ'डायरकी मनोवृत्तिका पता चलता है। यह भाषण पंजाबकी सैनिक जातियोंके लिए दिया गया था। इसमें उन्होंने इन लोगोंको आम जनताके विरुद्ध भड़कानेमें कोई कसर नहीं रखी थी। उन्होंने तथ्योंको तोड़-मरोड़कर भी पेश किया है; उदाहरणार्थ मुल्तानमें सैनिकोंके विरुद्ध लोगोंके व्यवहारके सम्बन्धमें। हमने उस घटनाकी जाँच की है और हमें मालूम हुआ है कि मुल्तानमें वहाँसे गुजरनेवाले सैनिकोंका कोई अपमान नहीं किया गया। उन्होंने जानबूझकर श्रोताओंके सम्मुख रौलट अधिनियमकी व्याप्तिके सम्बन्धमें गलत-बयानी की है और जिन लोगोंको वस्तुतः राजनीतिक आन्दोलनमें भाग लेनेपर दण्ड देनेकी धमकी दी है।

अब हम सर माइकेल ओ'डायरकी प्रशासनकी संक्षिप्त रूपरेखा देना चाहते हैं। इससे यह प्रकट हो जायेगा कि उन्होंने किस प्रकार प्रत्येक वर्गको अपना विरोधी बना लिया और किस प्रकार शिक्षित वर्गोंका, जनसाधारणपर प्रभाव घटानेका प्रयत्न किया।

जब वे सन् १९१३में पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर नियुक्त किये गये उस समय उन्हें पंजाबका खासा अनुभव था। और इस पदपर आनेके बाद उन्होंने अपने प्रशासनकी कीर्ति बढ़ानेके लिए जो तरीका चुना वह था सुधार-सम्बन्धी प्रस्तावोंके प्रति तिरस्कारपूर्ण वचन कहना। नियुक्तिके कुछ सप्ताह बाद ही एक मानपत्रका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा :

> **इस प्रान्तका शासन-भार सँभालनेके बाद थोड़े ही समयमें मुझे इस सम्बन्धमें अनेक उत्तम और सद्भावनापूर्ण सुझाव मिले हैं कि लोगोंकी आकांक्षाकी पूर्तिके लिए तथा जनताको स्वशासन प्रदान करने और कार्यपालिका तथा न्यायपालिकाके कार्योंको अलग करनेकी दिशामें जो प्रयत्न किये जा रहे हैं उनमें गति लानेके लिए मुझे किस तरह शासन चलाना चाहिए और क्या-कुछ करना चाहिए। इसी तरह राज्यकी नीतिसे सम्बन्धित अन्य मामलोंके बारेमें भी मुझे कई सुझाव प्राप्त हुए हैं। इस प्रकारकी अस्पष्ट कल्पनाओंका अपना महत्त्व होता है और वे दिलचस्प भी होती हैं; किन्तु यदि प्रशासनके कर्त्तव्योंपर जोर देनेके साथ-साथ नागरिकों और प्रजाजनोंके कर्त्तव्योंपर भी जोर दिया जाता तो उनका महत्त्व और भी बढ़ जाता। सरकार जनताके जान और मालकी रक्षा करनेके अपने मुख्य कर्त्तव्यको किस प्रकार अधिक अच्छी तरहसे निभा सकती है और लोगोंमें समाजके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करनेकी भावना कैसे पैदा की जा सकती है, यदि इस सम्बन्धमें कोई व्यावहारिक सुझाव दिया जाता तो मैं इसका स्वागत करता और यदि अब भी दिया जाये तो मैं उसका स्वागत करूँगा। मेरी रायमें नीति-सम्बन्धी अन्य सब प्रश्न इनके सम्मुख गौण हैं और जबतक ये दो कर्त्तव्य पर्याप्त रूपसे पूरे नहीं कर दिये जाते तबतक वे स्थगित रखे जाने चाहिए।**

इस प्रकार उन्होंने अपने श्रोताओंको यह चेतावनी दी कि वे जिन सुधारोंको देशकी प्रगतिके लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं वे "अस्पष्ट कल्पनाएँ" हैं और वे अपने श्रोताओंसे यह चाहते हैं कि वे जान और मालको सुरक्षित करने और समाजके प्रति कर्त्तव्यकी भावना पैदा करनेमें उनकी सहायता करें। लेकिन इस सम्बन्धमें हर आम आदमीका तो खयाल यही होगा कि जान और मालको तो अब काफी सुरक्षा प्राप्त हो चुकी है और यह सुरक्षा ब्रिटिश राज्यकी एक अत्यन्त गौरवास्पद उपलब्धि मानी जाती है और उनके श्रोताओंमें सुधारोंकी जो तीव्र लालसा है, उससे समाजके प्रति उनकी कर्त्तव्यकी भावना व्यक्त होती है। उसी भाषणमें उन्होंने देशी भाषाओंके समाचारपत्रोंको भी उपदेश दिया। इसके बाद ही प्रेस ऐक्टके[1] अन्तर्गत कार्रवाई की गई। देशी भाषाओंके अनेक

१. यह भारत सरकार द्वारा १९१० में पास किया गया था।

पत्रोंसे जमानतें माँगी गई; कुछकी पहलेसे जमा की गई जमानतें जब्त कर ली गईं। उन्होंने एक महीने बाद प्रान्तीय विधान परिषद्‌के अध्यक्षकी हैसियतसे अखबारोंको दूसरी चेतावनी दी:

> यदि अबतक की गई कार्रवाईका अभीष्ट प्रभाव नहीं हुआ तो सरकार इन अपराधियोंके साथ भी वैसा ही व्यवहार करेगी जैसा वह अव्यवस्था या असन्तोष फैलानेवाले अन्य व्यक्तियोंके साथ करती है; और कानून-प्रदत्त समग्र साधनोंका उपयोग करेगी और इनमें जमानतें लेना और ली हुई जमानतोंको जब्त करना न्यूनतम है।

इस चेतावनीके बाद समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें कठोरतर नीति अपनाई गई, यद्यपि उसी भाषणमें उन्होंने स्वयं प्रान्तमें वर्तमान शान्तिके सम्बन्धमें यह कहा था:

> इस दिशामें जो भारी सफलता मिली है उसका कारण प्रशासन और लोगोंके बीचका वह पारस्परिक विश्वास और निकट सहयोग है, जो इस प्रान्तकी सदा ही विशेषता रही है।

इसके छः महीने बाद उन्हें प्रान्तमें कार्यकारिणी परिषद् स्थापित करनेके एक प्रस्ताव-पर अपने विचार प्रकट करनेका अवसर मिला। यह प्रस्ताव बहुत ही निर्दोष था; किन्तु उन्होंने १३ अप्रैल, १९१४को इसका उत्तर इस प्रकार दिया [जिसका विवरण इस प्रकार है]:

> इस प्रस्तावसे मुझे कुछ आश्चर्य ही हुआ है। इस प्रान्तके लोग प्रारम्भसे ही लेफ्टिनेंट-गवर्नरको प्रान्तका प्रमुख शासक और प्रशासनके लिए पूर्णतः उत्तर-दायी माननेके अभ्यस्त हैं। प्रान्तने इस प्रणालीके अन्तर्गत इतनी प्रगति की और ऐसी समृद्धि प्राप्त की है कि उसकी तुलना किसी भी अन्य प्रान्त या अहाते (प्रेसीडेन्सी) से की जा सकती है। यह सवाल व्यावहारिक राजनीतिके दायरेमें केवल तभी आ सकता है जब यह सिद्ध कर दिया जाये कि प्रान्तके वर्तमान प्रशासनमें कुछ दोष हैं, जिनसे उसे हानि पहुँच रही है और ये दोष कार्यकारिणी परिषद्‌से दूर हो जायेंगे।

राजद्रोह फैलानेवालोंमें से किसीपर भी चल रहे मुकदमेको वकीलकी चतुराईसे लम्बा खिंचने देना या दण्ड-विधानमें सजा दी जानेपर अपीलकी जो व्यवस्था है उसके प्रयोग द्वारा उसे दीर्घ कालतक चलते रहने देना अत्यन्त अवांछनीय है। इसलिए उन्होंने मंजूरीके लिए एक अध्यादेशका मसविदा पेश किया है जिसे स्थानीय सरकारकी मंजूरीसे इन मामलोंमें लागू करनेकी व्यवस्था है: (क) उन मामलोंमें, जिनका स्वरूप राजनीतिक या अर्ध-राजनीतिक हो, अदालती कार्रवाई संक्षिप्त करनेके लिए; (ख) इन मामलोंमें अपीलकी छूट न देनेके लिए; (ग) प्रभावित वर्गके लोगोंसे सामान्य कानूनमें दी गई विधिकी अपेक्षा अधिक द्रुतगामी विधिसे जमानत लेनेके लिए; (घ) विप्लवी अपराधियोंको सहयोग और शरण देनेवाले ग्रामप्रधानोंको सजाएँ देने और ग्रामीणोंपर जुर्माने करनेके लिए।

उन्होंने प्रान्तमें सर्वश्री तिलक और पालके[1] प्रवेशपर रोक लगाकर भारत रक्षा कानून द्वारा दी गई सत्ताका दुरुपयोग किया। उन्होंने बिना-किसी कारणके सैकड़ों स्थानीय लोगोंको नजरबन्द किया। उन्होंने देशी भाषाओंके पत्रोंके स्वतन्त्र मत-प्रकाशन-पर रोक लगा दी और पंजाबसे बाहर सम्पादित होनेवाले "न्यू इंडिया," "अमृत-बाजार पत्रिका" और "इंडिपेंडेंट" जैसे राष्ट्रवादी पत्रोंका वितरण इस प्रान्तमें रोक दिया। उन्होंने पहलेसे सेंसर किये हुए अखबारोंका प्रचार भी बन्द कर दिया और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे पंजाबके लोगोंके लिए स्वतन्त्र विचारोंका मुक्त आदान-प्रदान या समाचारपत्रोंमें अपने कष्टोंका निर्बाध प्रकाशन लगभग असम्भव हो गया और तब मुक्त भाषण और मुक्त लेखनपर रोक लगाकर स्वयं यह खयाल करने लगे और बाहरके लोगोंको भी यह बताया कि पंजाबके लोग उनके शासनमें सबसे अधिक सुखी हैं।

उन्होंने लोगोंकी राजनीतिक आकांक्षाओंको कुचलनेके लिए संकटकालीन कानूनका ही दुरुपयोग नहीं किया; बल्कि लोकसेवी लोगोंको बुलाकर धमकियाँ और चेतावनियाँ देकर शासकके रूपमें अपने पदका भी दुरुपयोग किया। लाला दुनीचन्दको, जो निरन्तर लोकसेवा करते रहे हैं, सर एम० ओ'डायरके शासनके इस पक्षका व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त हुआ है। उन्होंने हमें एक वक्तव्य दिया है। इसमें वे कहते हैं:

> भारतीय संघके मन्त्रीके रूपमें मुझे सार्वजनिक सभाएँ बुलानी होती थीं और सूचनाएँ जारी करनेके बाद मुझे सरकारके मुख्य सचिव या लाहौरके कमिश्नर मिलनेके लिए बुलाते थे और वे सभाएँ करनेमें मेरे मार्गमें सदा ऐसे अड़ंगे लगाते थे कि यदि मेरी जगह कोई दूसरा व्यक्ति होता तो लाहौरमें कभी सार्वजनिक सभाएँ न बुलाता। मुख्य सचिव और कमिश्नरने, सम्भवतः सर माइकेल ओ'डायरकी ओरसे, मुझसे अनेक बार कहा कि मैं सभामें प्रान्तके बाहरके किन-किन वक्ताओंको निमन्त्रित करूँ और किन्हें नहीं।

१. बिपिनचन्द्र पाल, (१८५८–१९३२); बंगालके शिक्षाशास्त्री, ओजस्वी वक्ता और राजनीतिक नेता।

इतना ही नहीं, बल्कि जब प्रान्तीय विधान परिषद्‌के कुछ सदस्य लाहौरमें पिछले प्रान्तीय सम्मेलनमें आये तो मुख्य सचिवने इन सज्जनोंको बुलाया और इस प्रकार लताड़ा कि उनमें ब्रैडलॉ हॉलकी दूसरी सार्वजनिक सभाओंमें उपस्थित होनेका साहस ही नहीं रहा। (बयान संख्या ५५३)[1]

१९१७ में केन्द्रीय विधान परिषद्‌के उन्नीस सदस्योंने अपने उस प्रसिद्ध ज्ञापनपर हस्ताक्षर किये, जिसमें सुधारोंके सम्बन्धमें उनके प्रस्ताव[2] दिये गये थे। उस योजनापर स्वीकृति देनेके लिए एक सभा बुलाई गई। उसकी सूचनापर हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंमें चार व्यक्ति पंजाबके थे। सर माइकेल ओ'डायरने इन लोगोंको बुला भेजा और स्वयं अपनी बुद्धिसे काम लेने और सूचनापर हस्ताक्षर करनेकी धृष्टताके लिए उनको बहुत डाँटा-फटकारा। उसके बाद कांग्रेस-लीग योजना आई और उन्होंने पंजाबको उससे अलग रखनेकी भरसक कोशिशकी और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके बीच हार्दिक एकता स्थापित करनेके प्रयत्नको व्यर्थ करनेमें कोई कसर नहीं रखी। उन्होंने श्रीमती बेसेंट और श्री तिलकके नेतृत्वमें चल रहे होमरूल आन्दोलनकी तुलना गदर पार्टी[3] और दक्षिण पश्चिम पंजाबके पागल लोगोंकी कार्रवाईसे करके मामलेको उलझानेकी कोशिश की। हालाँकि जहाँ होमरूल आन्दोलनका लक्ष्य संवैधानिक और शान्तिपूर्ण उपायोंसे साम्राज्यके अन्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना था, वहाँ गदर पार्टीका उद्देश्य बिलकुल खुले तौरपर हिंसाका प्रयोग करके अंग्रेजोंको यहाँसे निकाल बाहर करना था। दक्षिण-पश्चिम पंजाबके लोगोंने जर्मन-सहायतासे एक इस्लामी राज्य स्थापित करनेके अपने मनकगरे विचारोंके कारण बहुत-से घर बर्बाद कर दिये थे। सर माइकेल ओ'डायरने गदर आन्दोलनको बड़ी बेरहमीसे कुचला और हमें शंका है कि इसमें उन्होंने सैकड़ों बेगुनाहोंपर भी अन्याय किया। वे सन् १९१५में दक्षिण-पश्चिम पंजाबमें अरक्षित घरोंकी लूटमारपर विचार करनेका ढोंग करते रहे और उस लूटपाटको महज अनाजकी लूट मानते रहे। उन्होंने उस सम्बन्धमें तभी जोरदार कार्रवाई की जब वे बिलकुल मजबूर हो गये और जब उन्होंने यह देखा कि यह लूटपाट इतनी गम्भीर हो गई है कि इससे अफसरोंके काममें भी विघ्न पड़ सकता है।

१३ सितम्बर, १९१७ को माननीय सर मुहम्मद शफीने[4] एक प्रस्ताव पेश करके यह माँग की कि पंजाबमें विधि-निर्मात्री और प्रशासकीय प्रणाली वैसी ही कर दी

जाये जैसी बिहार और उड़ीसा प्रान्तमें है। इस नरम प्रस्तावका किसी भी ओरसे कोई विरोध नहीं हुआ। सर माइकेल ओ'डायर स्वयं इस प्रस्तावके पक्षमें बोलनेके लिए खड़े हुए, लेकिन सभी लोगोंने विस्मयके साथ देखा कि वे अपने इस भाषणमें जितनी भी असम्बद्ध बातें कह सकते थे, और शिक्षित-वर्गकी जितनी भी निन्दा कर सकते थे उन्होंने कह और कर डालीं। आखिर माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय और ज्यादा सहन नहीं कर सके तो उन्होंने भाषणके बीचमें ही टोककर वक्तासे क्षमा माँगनेको कहा और वाइसरायके कहनेपर सर माइकेलको क्षमा माँगनी पड़ी। परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयको यह स्पष्ट कर देना जरूरी जान पड़ा कि वे सर माइकेलके विचारोंसे सहमत नहीं हैं। हम सर माइकेलके भाषणसे कुछ अंश नीचे उद्धृत कर रहे हैं:

> अपने प्रान्तके सम्बन्धमें जहाँ मैं इस बातका स्वागत करूँगा कि वहाँ तेजीसे प्रगति हो, वहाँ मैं यह भी कहूँगा कि उन शर्तों (आशय मिल द्वारा स्वशासनके लिए निर्धारित तीन शर्तोंसे था) के अभी बहुत समयतक पूरी होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

उन्होंने फिर कहा:

> जो लोग भारतकी राजनिष्ठा और भारतीयों तथा भारतीय सेना, जो मुख्यतः पंजाबकी सेना है, के बलिदानके आधारपर राजनीतिक दावे पेश करते हैं, वे यदि महामहिम सम्राट्‌के प्रति अपनी राजनिष्ठा, और त्याग-बलिदानका सारा बोझ बरदाश्त करनेवाले इस प्रान्तके प्रति अपनी सहानुभूति केवल बड़ी-बड़ी बातें कहकर नहीं बल्कि किसी व्यावहारिक रूपमें, उदाहरणार्थ अन्य प्रान्तोंमें भरतीके काममें सक्रिय सहायता देकर, प्रमाणित करें तो हमें बहुत खुशी होगी।

उसी भाषणके निम्नलिखित अंशसे देखा जा सकता है कि सर माइकेलके मनमें शिक्षित-वर्गके लिए किस कदर अनादरकी भावना है:

> आजकलके इस दौरमें जब कि राजनीतिक भाषणों और राजनीतिक परचेबाजियोंके कारण हमारे बहरे-अन्धे हो जानेका खतरा पैदा हो गया है, यह हमारे हितमें है कि हम मिथ्याचार और भ्रमजालसे छुटकारा पानेके लिए कभी-कभी धरतीकी ओर भी देखें, और स्वयंसे पूछें कि इस तमाम गुलगपाड़े और कोरी बातोंसे धरतीके सपूतका, हलकी मूठ पकड़े उस आदमीका, क्या लाभ होगा जिसकी जिन्दगी एक फसलसे दूसरी फसलतक लगातार एक प्रश्न-चिह्न-जैसी बनी रहती है।

इस भाषणके फलितार्थ स्पष्ट हैं। शिक्षित-वर्गके प्रति इसी अपमानजनक उक्तिके लिए उन्हें [सर माइकेलको] क्षमा माँगनी पड़ी थी।

साधारण अंग्रेजीमें क्षमा-प्रार्थनाका अर्थ यह है कि जब किसी व्यक्तिने अपने किसी शब्द या कार्यके लिए क्षमा माँग ली तो वह उस शब्द या कार्यको फिर दोहरायेगा

नहीं। लेकिन सर माइकेल ऐसे आदमी नहीं हैं। उसी वर्ष ३० अक्तूबरको — क्षमा-प्रार्थना करनेके करीब एक माह बाद — निम्नलिखित शब्दोंमें उन्होंने लगभग वही बातें फिर दोहराईं:

> पिछले महीने केन्द्रीय विधान परिषद्में अपने एक भाषणमें मैंने इस लड़ाईमें पंजाबकी महत्त्वपूर्ण सेवाओंका जिन जोरदार शब्दोंमें उल्लेख किया वह कुछ लोगोंको अखरा। ऐसा इसलिए कि मैंने अन्य प्रान्तों और युद्धमें उनके सहयोगके प्रयासकी तुलना पंजाबसे कर दी थी। मैं अब भी अपनी इस बातपर दृढ़ हूँ कि पंजाबने साम्राज्यके लिए धन-जन, साधन-सामग्री देकर उसकी जो निष्ठापूर्ण सेवा की है वह लासानी है, और इसके बलपर वह सरकारकी ओरसे विशेष कृपा प्राप्त करनेका अधिकारी हो गया है। मैं अपना यह कथन भी फिर दोहराता हूँ कि [पंजाबकी] सैनिक जातियोंको, जिनपर त्याग और बलिदानका पूरा बोझ पड़ा है, सरकार उनकी सेवाओंके लिए औरोंके मुकाबले पुरस्कृत करनेमें प्राथमिकता दे रही है और देती रहेगी, और चूंकि तथाकथित राजनीतिक रियायतोंसे अन्य वर्गोंकी अपेक्षा ये सैनिक जातियाँ कम लाभान्वित होंगी, इसलिए हमें उनकी सेवाओंके बदले उन्हें इस ढंगसे मान्यता देने और पुरस्कृत करनेकी कोशिश करनी होगी जिसे वे उपयुक्त और वांछनीय समझें।

उनके पिछले भाषणके इस संशोधित रूपमें न केवल हमें वही अपमान दोहराया गया दीखता है, बल्कि वह और अधिक तीखे रूपमें दोहराया गया दिखता है। उन्होंने उस विषयका शिकायतके लहजेमें पुनरुल्लेख किया है और तथ्योंपर रंग चढ़ाकर यह सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि पंजाबकी युद्ध-सेवाएँ विशिष्ट रूपसे महान् रही हैं। वैसे यह ऐसा तथ्य है जिसे सिद्ध करनेकी कोई जरूरत नहीं है। वे सैनिक जातियोंको अन्य वर्गोंसे अलग करके दिखाते हैं, प्रकारान्तरसे यह कहकर उनका अपमान करते हैं कि उनमें [सैनिक जातियोंमें] राजनीतिक चेतना और आकांक्षाका अभाव है, और विशेष मान्यता और पुरस्कारका लोभ देकर उन्हें समाजके अन्य वर्गोंसे बिलकुल अलग करनेकी कोशिश करते हैं। हमने उनके भाषणका जो अंश उद्धृत किया है उसमें शिक्षित-वर्गके प्रति उनकी तिरस्कार-भावना और उसे राजनीतिक सत्ता न प्रदान करनेकी उनकी इच्छा आसानीसे देखी जा सकती है।

लेकिन शिक्षित-वर्गके प्रति उनकी अरुचि कितनी तीव्र है, इसे शायद सबसे साफ तौरपर संवैधानिक सुधारोंके प्रसंगपर दिये उनके ज्ञापन (मेमोरेंडम) में देखा जा सकता है। यह ज्ञापन भारत सरकारके ५ मार्च, १९१९ के गजटके साथ ही प्रकाशित हुआ है। सम्पूर्ण भारतके लिए शिक्षित-वर्गों द्वारा पेश की गई मांगोंका उल्लेख करते हुए वे कहते हैं:

> जब यह बात स्पष्ट है कि ये मांगें उस जन-साधारणकी मांगें नहीं हैं जिसके हित दांवपर लगे हुए हैं, बल्कि एक ऐसे अल्पसंख्यक समूहकी मांगें हैं जिसे पूरी तरह निःस्वार्थ भावनासे प्रेरित नहीं माना जा सकता और जो स्वाभाविक

तौरपर सत्ता और पद पानेको उत्सुक है, तब वैसी स्थितिमें यदि हम अपने दायित्वके प्रति ईमानदार हैं तो हमें चाहिए कि भले ही राजनीतिज्ञ लोग कितना ही आग्रहपूर्वक शोर मचायें, और कितनी ही परेशानियाँ पैदा करें, हम मूक जनताके हितोंको ही सर्वोपरि रखें और मानें। यहाँ मैं बर्ककी यह चेतावनी उद्धृत करना चाहूँगा कि "जब ब्रिटेन-रूपी शाहबलूतके पेड़की छायामें शान्तिपूर्वक जुगाली करनेवाले हजारों मवेशी आरामसे बैठे हों, उस समय घासमें छिपी आधा दर्जन झिल्लियोंकी लगातार आवाजसे अगर मैदान गूँज उठे, तो कृपया यह न मान बैठिए कि मैदानमें इन शोर मचानेवाले प्राणियोंके अलावा कोई है ही नहीं।"

इस उद्धरणमें छिपे भयानक अपमानके बारेमें हमें कुछ कहनेकी कोई जरूरत नहीं है। उसी ज्ञापनमें तथ्योंकी सर्वथा उपेक्षा करते हुए उन्होंने आगे यह दिखाया है कि शिक्षित-वर्गो और जनसाधारणमें हितोंकी कोई समानता नहीं है, और जनता शिक्षित नेताओंका साथ छोड़ने लगी है। स्वायत्त शासनके लिए श्रीमती बेसेंट, श्री तिलक, श्री जिन्ना, माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय और राजा महमूदाबाद द्वारा किये जानेवाले प्रयत्नोंको वे बहुत ही तुच्छ बतलाते हैं। ब्राह्मणेतर वर्गोंके आन्दोलनको उन्होंने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया है, अखिल भारतीय मुस्लिम लीगको एक महत्त्वहीन संगठन बताया है, सर्वश्री तिलक और पालके विरुद्ध जारी किये गये अपने निषेधात्मक आदेशके बावजूद पंजाबमें होनेवाली राजनीतिक जन-जागृतिकी भर्त्सना की है, और फिर बड़ी उदारतापूर्वक कहा है कि भावी प्रगतिका विचार करते समय "न केवल राजनीतिक वर्गोंका, बल्कि भारतीय जनताका भी ध्यान रखना चाहिए", और अपने ज्ञापनके इस अंशके अन्तमें वे कहते हैं:

मैंने इस सिद्धान्तपर इतना बल देना इसलिए जरूरी समझा क्योंकि मैंने देखा कि भारत-सरकारके प्रस्तावोंमें इसको समुचित महत्त्व नहीं दिया गया है। शायद ऐसा मान लिया गया है कि यह सिद्धान्त तो रहेगा ही। लेकिन ऐसे गम्भीर दायित्वकी बात अप्रकट नहीं रखनी चाहिए। उसके अभावमें ये प्रस्ताव ऐसे लगते हैं जैसे विचारणीय प्रश्न केवल यह हो कि शिक्षित-वर्गोंके एक अमुक भागकी महत्त्वाकांक्षाओंको किस प्रकार सन्तुष्ट किया जाये। शिक्षित-वर्ग निःसन्देह जनताका प्रतिनिधित्व करनेका दावा करते हैं, लेकिन पिछले कुछ महीनोंमें जो-कुछ प्रकाशमें आया है उसे देखनेके बाद शायद इस दावेके खोखलेपनका भण्डाफोड़ करनेकी जरूरत नहीं रह जाती। किसी भी व्यावहारिक कसौटी — धार्मिक दंगोंकी रोक-थाम, विभिन्न दलोंके पारस्परिक मतभेदोंका निपटारा, फौज या सुरक्षा-दलके लिए रंगरूटोंकी भरती — पर कसकर देख लीजिए और आप पायेंगे कि जब-कभी इनमें से कोई भी प्रश्न सामने आता है उस समय राजनीतिज्ञ लोग पीछे हट जाते हैं। भला करनेकी उनकी ताकत सामान्यतः शून्य है, लेकिन

अपने विवेकहीन और दुष्टतापूर्ण हस्तक्षेपसे वे मुश्किल बढ़ा अवश्य सकते हैं, और कभी-कभी ऐसा करते भी हैं।

स्वशासनके पक्षमें तर्क देते हुए अक्सर कहा जाता है कि देशी रियासतोंमें मजहबी दंगे बिलकुल नहीं होते। इसके अनेक कारण हैं, लेकिन एक प्रधान कारण यह है कि वहाँ पेशेवर राजनीतिज्ञोंका कोई अस्तित्व ही नहीं है, और यदि हो भी तो उन्हें हस्तक्षेप नहीं करने दिया जाता। रियासतोंमें होनेवाले मजहबी दंगोंमें से एक भयंकर दंगा हाल ही में भोपालमें शिया और सुन्नियोंके बीच हुआ था, और इस दंगेको भड़कानेमें मुख्य हाथ, अपना प्रचार करनेके लिए उत्सुक, बम्बईके एक मुसलमान वकीलका था। पंजाबमें हालाँकि साम्प्रदायिक भावनाएँ अक्सर बहुत उग्र हो जाती हैं, लेकिन दंगा या खून-खराबी होनेकी स्थिति शायद ही कभी आती है। इसकी वजह सिर्फ यह है कि स्थानीय अधिकारी जानते हैं कि आपसमें सुलह-समझौता करानेके लिए किन लोगोंपर निर्भर किया जाये। ये लोग राजनीतिज्ञ नहीं हैं, बल्कि अपने हलकेमें प्रभाव रखनेवाले शान्त प्रवृत्तिके लोग हैं।

यहाँ हम सर माइकेल ओ'डायरको यह सिद्ध करनेकी कोशिश करते हुए देखते हैं कि सम्पूर्ण भारतके राजनीतिक-वर्गके लोग व्यावहारिक दृष्टिसे बिलकुल फिजूल लोग हैं।

यह तो रहा शिक्षित-वर्गके प्रति सर माइकेलका दृष्टिकोण। यद्यपि उन्होंने अन्य वर्गोंको स्नेहकी दृष्टिसे देखनेका दावा किया है, किन्तु फौजमें भरती और युद्ध-कोषमें चन्दा लेनेके जो तरीके उन्होंने अपनाये हैं उनके कारण अन्य सभी वर्ग भी उनसे और उनकी सरकारसे नाराज हो गये। तब भी इस प्रश्नकी चर्चा हम काफी झिझकके साथ कर रहे हैं। युद्धके दौरान रंगरूटोंकी भरती और धन जमा करनेके लिए जोरदार अभियान चलानेकी जो आवश्यकता थी, उसे हम समझते हैं। हम यह भी अनुभव करते हैं कि यदि भारत साम्राज्यके अन्य सदस्य देशोंके साथ बराबरीकी हिस्सेदारीका दावा करता है तो उसे साम्राज्यपर पड़नेवाले बोझमें अपना हिस्सा भी बँटाना ही पड़ेगा। इसलिए, यदि हमारे लिए सम्भव होता तो हम जन और धन जुटानेके लिए अपनाये गये तरीकोंकी कोई चर्चा यहाँ न करते। लेकिन हड़तालको अभिजात प्रबुद्ध वर्गों और सामान्य जनताने सहज ही जैसा सहयोग दिया, और फिर पंजाबमें भीड़के पागलपन जैसा अप्रत्याशित प्रदर्शन हुआ, उसको समझने और उसका सही मूल्यांकन करनेके लिए उस अपूर्व प्रदर्शन और पंजाबमें हिंसाके विस्फोटकी मीमांसा करना जरूरी है। कारण, हमारा खयाल है कि रौलट अधिनियमके बारेमें चाहे जितना भी गलत प्रचार किया जाता — अर्थात् अगर मान लें कि ऐसा प्रचार किया गया था तो — सम्भवतया उसकी वजहसे तो जनसाधारण प्रदर्शन आदिमें वैसा उत्साहपूर्ण सहयोग न दे सकता और न इतने सारे लोग हिंसात्मक कार्रवाईमें शामिल हो जाते। साथ ही साम्राज्यके प्रति कैसी ही प्रबल कर्तव्य-भावना हो, उसके चलते वैयक्तिक

स्वतन्त्रताकी पवित्रताकी अवमानना नहीं की जा सकती और न गैर-कानूनी तौरपर खुले आम या गुप्त रूपसे वरती निर्दयता और अनुचित दवावकी ओरसे ही आँखें वन्द की जा सकती हैं। जो सवूत हमने इकट्ठे किये हैं और जो अदालती विवरण हमने पढ़े हैं, उनसे विलकुल सिद्ध हो जाता है कि रंगरूट भरती करने और युद्ध-कोषके लिए चन्दा तथा ऋण प्राप्त करनेके लिए जो तरीके अपनाये गये वे नैतिक और सामाजिक दवावके तरीकेसे विलकुल भिन्न थे। और ऐसी वात नहीं है कि सर माइ-केल ओ'डायर इनसे अपरिचित थे। सच तो यह है कि अनिवार्य भरतीकी वात भी खुलेआम की गई, इसका सुझाव दिया गया, इसका समर्थन किया गया, और हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि खुली अनिवार्य भरती इस तथाकथित ऐच्छिक भरतीकी तुलनामें कहीं वेहतर होती। यह तथाकथित ऐच्छिक भरती वास्तवमें अनिवार्य भरतीसे भी खराव सिद्ध हुई, क्योंकि इसमें केवल कमजोरोंको ही दवाया गया और भरती होनेके लिए मजवूर किया गया, जव कि मजवूत लोग साफ वच गये।

आइए, हम देखें कि वास्तविकता क्या थी। दिल्ली-कार्यक्रम निश्चित होनेके वाद ही ४ मई, १९१८को सर माइकेलने एक सभामें कहा: "नियमित सेनाके लिए २००,००० आदमी चाहिए — यदि सम्भव हो तो ऐच्छिक भरतीसे, लेकिन जरूरी हो तो अनिवार्य भरती करके।" उसी सभामें वोलते हुए कर्नल पॉपहम यंगने कहा:

> इस प्रयत्नका कितना भार किसपर डाला जाये, यह निश्चय करते समय यह अवश्यंभावी है कि वहुत-से लोगोंको राह दिखानी पड़े, यहाँतक कि मजवूर भी करना पड़े। हम ऐच्छिकताके आधारपर ही काम करना जारी रखेंगे। हम प्रत्येक जिले, तहसील या गाँवकी साधन-सम्पन्नताके हिसावसे उसके लिए कोटा तय कर देंगे, और ज्यादातर जगहोंसे हमें विना दवाव डाले जितनेकी जरूरत होगी, उतने आदमी मिल जायेंगे। लेकिन कर्त्तव्यकी पुकारपर सामने आनेवाले लोगोंके साथ न्याय कर सकनेकी दृष्टिसे हमें पर्याप्त सत्ता भी प्राप्त होनी चाहिए। हमें ऐसा कह सकनेकी स्थितिमें होना चाहिए कि अगर किसी स्थान विशेषके लोग सेनाके लिए अपने कोटेके आदमी नहीं दे पायेंगे तो सरकार हस्तक्षेप करेगी और उनकी ओरसे वह खुद उतने आदमी चुनकर फौजमें भरती कर लेगी।

इसी सभामें सर माइकेल ओ'डायरने निम्नलिखित वात कही:

> भरतीकी वात समाप्त करनेसे पहले में अनिवार्य भरतीके विषयमें कुछ शब्द कहूँगा। निःसन्देह, पाँच लाख सैनिकोंकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए कोई भी भारतके सारे पुरुष-समाजको अनिवार्य रूपसे फौजमें भरती करनेकी वात नहीं सोचता; और अगर भरतीको अनिवार्य वनाये विना हमारा काम चल जाये तो मुझसे ज्यादा खुशी किसीको नहीं होगी। लेकिन हालाँकि पंजावने अभी-तक ऐच्छिक भरतीके रूपमें शानदार योग दिया है, फिर भी हमें यह तथ्य स्वीकार करना पड़ेगा कि इससे उसपर वहुत अधिक भार पड़ा है और यह भी

कि कहीं यह भार ज्यादा रहा है, और कहींपर कम। जिन कबीलों और इलाकोंने इस दिशामें अपने कर्त्तव्यका पालन किया है, उनमें उन लोगोंके प्रति बहुत असन्तोष है जिन्होंने अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया है। जमींदार तबकेके लोग ऐसा सोचते हैं कि धन और जन दोनों ही मामलोंमें युद्धका ज्यादातर बोझ उन्हें ही उठाना पड़ रहा है, और ऐसे-बहुतसे वर्ग हैं जो धन या जन, दोनोंमें से कुछ भी नहीं दे रहे हैं। विभिन्न वर्गोंके ऊपर बोझकी असमानता हमेशा ही एक उचित शिकायतकी बात होती है। यह शिकायत उस समय और भी तीव्र हो उठती है जब आदमियोंकी जरूरत बराबर बढ़ती जाती है और आदमियोंकी माँग अनिवार्य होती जाती है।

कुछ क्षेत्रोंमें ऐच्छिक भरती प्रणाली विफल रही है, और इस स्थितिका सामना न करना कायरता होगी। हम वचन दे चुके हैं, और हमें समय रहते उसे पूरा करनेके लिए कदम उठाने होंगे। मेरा विश्वास है कि पंजाबमें तो बहरहाल यह भावना काफी प्रबल है कि जरूरी कोटा पूरा करनेके लिए प्रान्तके अन्दर और विभिन्न प्रान्तोंमें भी किसी-न-किसी रूपमें अनिवार्य भरतीका तरीका लागू किया जाना चाहिए; जैसे हर दस या पन्द्रह या बीस आदमियोंके बीचसे एक तगड़ा-तन्दुरुस्त आदमी पर्ची डालकर भरतीके लिए चुना जाये। इन लोगोंके सामने यह विकल्प हो कि वे सेनामें भरतीसे बचना चाहें तो राज्यको कुछ आर्थिक दण्ड देकर मुक्ति पा लें। मुझे आशा है कि मेरे श्रोताओंका एक बड़ा बहुमत मुझसे सहमत है, और यदि ऐसा हो तो यह ठीक ही होगा कि यह प्रान्त, जो अभीतक मुख्य रूपसे युद्धका भार वहन करता आया है, अपने विचार स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट करे। निर्णय करना तो खैर दूसरोंके हाथोंमें है। लेकिन सज्जनो, यह यन्त्र एकाएक तो गति नहीं पकड़ सकता, जब कि आदमियोंकी जरूरत तात्कालिक है। ऐसी दशामें जो बात जरूरी लगती है वह यह कि सरकार अपने हाथमें ऐसी सत्ता ले ले जिसके बलपर वह विभिन्न प्रान्तोंको अपने-अपने कोटेके आदमी देनेके लिए विवश कर सके, और इसके लिए पहलेसे ही सारी तैयारी कर ली जाये। हाँ, यह बात जरूर रहेगी कि यदि ये कोटे ऐच्छिकताके आधारपर पूरे हो जायेंगे तो बलात् भरती नहीं की जायेगी।

पंजाब सरकारने एक गश्ती पत्र जारी किया था जिसमें चन्दा प्राप्त करनेके लिए कुछ सुझाव दिये गये थे। इन सुझावोंको तभी कार्यान्वित किया जा सकता था जब लोगोंपर नाजायज दबाव डाला जाता। हम उस गश्ती-पत्रका एक अनुच्छेद नीचे दे रहे हैं:

मैं कहना चाहूँगा कि डिप्टी कमिश्नर, मुनासिब तौरपर किस शख्ससे कितने धनकी अपेक्षा रखी जाये, इसका तखमीना लगाकर इस [धन-संग्रह] अभियानमें काफी मदद कर सकते हैं। इस काममें उन्हें स्थानीय आय-करके

आँकड़ोंसे बड़ी सहायता मिलेगी, खासतौरसे वहाँ जहाँ तत्सम्बन्धी विशेष कार्यालय द्वारा हाल ही में नये सिरेसे कर-निर्धारण किया गया है। आय-करके आँकड़ोंसे, जिन व्यक्तियोंसे युद्ध-ऋणमें मददकी आशा की जाती है, उनकी सापेक्ष आर्थिक दशाका भी किसी हदतक एक विश्वसनीय अन्दाजा मिल जाता है और उसके आधारपर एक मोटा मापदण्ड स्थिर हो जाता है, जिसके बारेमें खयाल किया जाता है कि कुछ जिलोंमें वह लागू भी किया जा रहा है। किसी भी व्यक्तिके ऊपर कर लगाते समय उसकी जो आय कूती जाये, उस आयका औसतन आधार या एक चौथाई धन वह युद्ध-ऋणमें दे सकता है, ऐसा मानना अनुचित नहीं होगा। किसी व्यक्तिने युद्ध-ऋणमें पर्याप्त रुपया लगाया है या नहीं; सो उसी सिद्धान्तके अनुसार तय किया जाना चाहिए। मोटे तौरपर यह कसौटी, या स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार जो अन्य कसौटी ठीक लगे, उसे लागू करके डिप्टी कमिश्नरोंको बराबर यह देखना चाहिए कि उनके क्षेत्राधिकारके अन्तर्गत आनेवाले शहर और गाँव या व्यक्ति अपेक्षित योग दे रहे हैं या नहीं।

फिर डिप्टी कमिश्नरको चाहिए कि वे विशेष सभाएँ करके, साहूकारोंकी स्थानीय समितियाँ बनाकर और इसी प्रकारके अन्य उपायोंसे न्यूनतम देयके रूपमें कूती गई रकम इकट्ठी करें। इतना तो कमसे-कम उन्हें करना ही चाहिए। बड़े नगरोंमें न्यायिक अधिकारियों, अतिरिक्त सहायक कमिश्नरों या तहसील-दारोंकी अध्यक्षतामें व्यापारियोंकी स्थानीय समितियाँ संगठित करनेसे ऋणकी माँगका शायद सन्तोषजनक विभाजन हो सकेगा। विभिन्न शहरों और समुदायों द्वारा प्राप्त रकमोंके तुलनात्मक विवरण समय-समयपर प्रकाशित करके उनमें परस्पर होड़की भावना पैदा की जा सकती है। सनद, कुर्सी और विशेष प्रमाण-पत्र देनेका वादा करनेसे भी धन प्राप्त करनेमें सहायता मिल सकती है। दूसरी ओर धनवान नागरिकोंको साफ-साफ बता दिया जाये कि यदि वे इस मामलेमें अपना कर्त्तव्य नहीं करेंगे तो म्युनिसिपल नोटिफाइड एरिया कमेटियोंमें नामजदगी करते समय, या अवैतनिक मजिस्ट्रेटोंकी नियुक्तिके समय या और रूपोंमें सरकारी सम्मान देते समय इस बातको याद रखा जायेगा और उन्हें इस आधारपर ये पद और सम्मान नहीं दिये जायेंगे क्योंकि ये सम्मान तो उन्हीं लोगोंके लिए सुरक्षित हैं जिन्होंने प्रशासनकी सहायता करनेकी अपनी इच्छा कार्यरूपमें व्यक्त की है।

इसका परिणाम यह हुआ कि छोटे सरकारी कर्मचारियोंने लोगोंके ऊपर दबाव डाला। अम्बाला जिलेके एक व्यक्तिको एक पत्र लिखा गया "जिसमें उससे कहा गया था कि वह लाला रंगीलाल, सब-जजकी मार्फत डिप्टी कमिशनरको सूचित करे कि युद्ध-ऋणमें वह कितना धन लगाना चाहता है।" इस पत्रका अभिप्राय तो स्पष्ट ही है।

इस कार्यमें न्याय-व्यवस्थाकी सहायता भी ली गई है। चकवालके एक प्रथम श्रेणीके मजिस्ट्रेटने १९१७ के फौजदारी मुकदमा संख्या ८२ में एक अभियुक्तको इस टिप्पणीके साथ छोड़ दिया कि "अभियुक्त और उसके भाईने मिलकर 'अवर डे फण्ड' में ११० रुपये चन्दा दिया है, और जबानी समझौतेके अनुसार अभियुक्तको बरी किया जाता है।"

मेहरसिंह वल्द दौलतसिंह ने १९१७ के मुकदमा संख्या ३६ में उसी अदालतमें आय-करमें कमी करानेके लिए अर्जी दी थी। अर्जी रद करते हुए मजिस्ट्रेटने और बातोंके साथ यह भी कहा:

> युद्धके कारण खच्चरोंसे भारी आय होती है, लेकिन आपत्तिकर्ताने युद्ध-कोष या युद्ध-ऋणमें एक पाई भी नहीं दी है। उसके एक लड़का भी है जिसे उसने फौजमें भरती नहीं कराया है।

मुजफ्फरगढ़ जिलेमें लेहिया नामका एक गाँव है। वहाँ लोगोंकी एक बड़ी भीड़ने नायब तहसीलदारका घर घेर लिया, और चपरासी तथा गाँवके पुलिस कान्स्टेबलको मारा-पीटा। कुछ लोग गिरफ्तार किये गये। इनमें से ५२ लोगोंपर भारतीय दण्ड विधानके खण्ड १४७ के अन्तर्गत मुकदमा चलाया गया। अपील करनेपर दौरा जजने कुछ लोगोंको छोड़ दिया और कुछकी सजा घटा दी। दौरा जज श्री कोल्डस्ट्रीमने अपने फैसलेमें कहा कि "लोगोंके मनमें बिलकुल सही शिकायतें थीं जिन्हें वे किसी प्रकार व्यक्त करना चाहते थे।" उन्होंने आगे कहा:

> यह सभी जानते हैं कि मुजफ्फरगढ़के जेलदारों और लम्बरदारोंपर युद्ध-प्रयासमें मदद देनेके लिए दबाव डाले जानेके कारण वहाँके अधीनस्थ अधिकारियोंने तदर्थ ऋण प्राप्त करने और रंगरूट भरती करनेके लिए प्रयत्न किये, जिनके परिणाम-स्वरूप कई स्थानोंपर बहुत जबरदस्त झगड़े हुए। यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि अकसर ये तरीके गैरकानूनी, आपत्तिजनक, दमनकारी तथा सरकारके मंशाके विरुद्ध थे। शहरोंसे दूर, आन्तरिक क्षेत्रोंमें लोगोंको ये तरीके असह्य मालूम हुए। ये कार्य सरकारी पक्षकी ओरसे तो सिद्ध किये नहीं जा सकते थे, और इस समय जिस ढंगका मामला विचाराधीन है उसमें बचावके रूपमें उनके प्रमाण प्रस्तुत किये जायें, ऐसी अपेक्षा करना बेवकूफी होगी। न्यायकी रक्षाके लिए यह बात स्पष्ट कर देना जरूरी है, भले ही ऐसा करनेमें मुझे अदालती सिलसिलेसे बाहर जाना पड़े। जैसा कि मैंने पहले कहा, जिन तथ्योंका मैंने उल्लेख किया है, वे सर्वज्ञात हैं।

जज महोदयने यह मत व्यक्त किया कि जिन दमनकारी तरीकोंका सहारा लिया गया वे सरकारकी मंशाके विरुद्ध थे। हमने जिन-जिन संस्थानोंका दौरा किया उन सभी जगहों-पर हमें बताया गया है कि अपने अत्याचारपूर्ण व्यवहारके लिए लोगोंके बीच कुख्यात सरकारी अधिकारियोंमें से कई की, बजाय इसके कि उन्हें सार्वजनिक रूपसे फटकार बताई जाती, तरक्की कर दी गई है।

शाहपुर जिलेमें तो दुर्भाग्यवश एक तहसीलदारकी हत्या ही कर दी गई। इस मामलेकी सुनवाईके लिए एक विशेष न्यायाधिकरण नियुक्त किया गया। जिलेके ४६ निवासियोंपर मुकदमा चला, जिनमें से ४ लोगोंको फांसीकी सजा दी गई और १२ लोगोंको कालेपानीकी, ८ लोग छोड़ दिये गये और १२ व्यक्तियोंको अन्तमें निर्दोष ठहराकर बरी कर दिया गया। सर माइकेल ओ'डायरकी टिप्पणी, जिसमें से हमने उक्त तथ्य लिये हैं, में कहा गया है कि मृत तहसीलदार सैयद नादिर हुसैनपर लोगोंके साथ दुर्व्यवहार करनेके गोलमोल आरोप लगाये गये थे; और न्यायाधिकरणने सफाई पक्षको पूरी आजादी दी थी कि वह ऐसे तथ्योंने सिद्ध करे जिनसे अपराधकी गुरुता कम होती हो, लेकिन अलावा इस तथ्यके कि सैयद नादिर हुसैनने भरतीके जो तरीके अपनाये थे वे जबरन भरतीके तरीकों-जैसे थे, उसके विरुद्ध और कोई बात सिद्ध नहीं हो सकी, और न्यायाधिकरणने अपने निर्णयमें कहा कि मृत व्यक्तिकी ख्यातिपर किसी अनाचारका कलंक नहीं लग सका है।

हमारी सम्मतिमें, यह स्वीकारोक्ति कि जबरन भरतीका तरीका अपनाया गया था, स्वयं ही निन्दनीय है। लेकिन सर माइकेल ओ'डायरने मुकदमेमें दी गई गवाहियाँ अवश्य पढ़ी होंगी। मृत तहसीलदारके पेशकार मुहम्मद खाँने सबूत पक्षकी ओरसे जो बयान अदालतमें दिया वह यह है:

> तहसीलदारका तरीका यह था कि वह पटवारीसे गांवके सब पुरुषोंकी एक सूची बनवा लेता था। यह सूची मिल जानेके बाद तहसीलदार उस गांवमें जाता था और रंगरूटोंकी भरतीके मामलेमें कोई आपत्ति होती थी तो उसकी सुनवाई करता था। जिस परिवारमें तीन या चार भाई होते थे उससे वह फौजके लिए एक या दो आदमी देनेको कहता था। . . . उसने पड़ोसके गुलना इलाकेसे कुछ भगोड़ोंको पकड़कर गारदकी देखरेखमें भरती करनेवाले अधिकारीके पास भिजवाया था। . . . तहसीलदारने इस सूचीमें कई नामोंके आगे यह भी लिख रखा था कि इन्हें रंगरूट चुना गया है। . . . इस इलाकेके जमींदार, तहसीलदारके आनेकी खबर सुनकर आमतौरपर भाग जाते थे, क्योंकि वे नौकरीके आदी नहीं थे और तहसीलदारके सामने आनेसे डरते थे।

विशेष न्यायाधिकरणके अध्यक्षने अपनी टिप्पणीमें निम्नलिखित विचार व्यक्त किया था:

> नादिर हुसैन शाह जरूरतसे ज्यादा उत्साही था और व्यवहारकुशलताका सर्वथा अभाव होनेके कारण वह इन उग्र लोगोंको, जो सेनामें नौकरी करनेके अभ्यस्त नहीं थे, प्रभावित नहीं कर सकता था। . . . इन लोगोंके पीछे सैनिक सेवाकी कोई परम्परा नहीं थी . . . । ६ फरवरीको पटवारीने चक लुढ़कांकी सूचियाँ तैयार कीं। सरकारने पुरुषोंकी ऐसी एक सूची बनानेका आदेश दिया जिसमें उनके सम्बन्ध आदि तथा आयु भी लिखी जानी थी। अतः ६ फरवरीको वहांके पुरुषोंको यह मालूम हो गया कि उन्हें फौजमें भरती किया जानेवाला है, और इसके साथ ही वहाँ घबराहट और सनसनी फैल गई।

मालगुजारी सहायक (रेवेन्यू असिस्टेंट) खान अहमद हुसैन खाँने अदालतके सामने बयान दिया :

मैंने एक शिकायत यह सुनी कि उसने [मृत तहसीलदारने] पुरुषोंको उनकी औरतोंके सामने नंगा खड़ा होनेपर विवश किया . . . मैंने ऐसी कोई घटना नहीं सुनी जिसमें किसी औरतको काँटोंसे यन्त्रणा पहुँचाई गई हो, लेकिन मैंने यह अवश्य सुना कि पुरुषोंको कँटीली झाड़ियोंके बीचमें रोककर रखा गया। जून माहकी इन घटनाओंके बारेमें मैंने बस सुना-भर है। मैंने यह सब होते हुए अपनी आँखोंसे कभी नहीं देखा। मैंने जो-कुछ कहा है, वह मैंने जेलदारों और अन्य जमींदारोंकी जबानी सुना है। हजारा मियानीके गुलाम मुहम्मदने मुझे बताया कि कौरा कोट और पठानोंके किसी गाँवमें भी, शायद गुरनामें, कुछ औरतोंके साथ बुरा व्यवहार किया गया था। उसने मुझे बताया कि कुछ औरतोंको पहले मीढ़ रांझा, और वहांसे भुलवल ले जाया गया ताकि उनके सम्बन्धी पुरुषोंपर दबाव पड़े और वे या तो लौट आयें या फौजमें भरती हो जायें। मैंने यह भी सुना कि तहसीलदारके साथियोंने फरार हो जानेवाले आदमियोंकी फसल मवेशियोंसे चरवा दी और उनके घरोंको लूट लिया। मैंने सुना है कि बूचाकलांके शेर अलीके पास तहसीलदारके जोड़े हुए १५,००० या १७,००० रुपये थे। लोगोंका कहना था कि यह रुपया भरतीके मामलेमें मिली घूसका था। मैंने यह भी सुना है कि शेर अलीने यह रुपया खुद हड़प लिया। . . . गांववालोंकी शिकायत सिर्फ फौजमें भरतीके बारेमें थी। वे फौजमें भरती नहीं होना चाहते थे . . .। यह मैंने बादमें जाकर सुना कि घुल्लापुरकी दो औरतोंपर जूनके महीनेमें अत्याचार किया गया था। खुद तहसीलदारने मुझे बताया कि छानीरेहांमें बहुत-से पुरुष भाग गये थे, और इसलिए उनपर दबाव डालनेके खयालसे उस (तहसीलदार) ने गांववालोंकी खड़ी फसल मवेशियोंसे चरवा दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि फरार लोग वापस लौट आये। तहसीलदारके आनेसे पहले ही गांववाले गांव छोड़कर भाग गये थे।

अदालतने स्वभावतः यह निष्कर्ष नहीं निकाला कि मृतक व्यक्तिके विरुद्ध दुर्व्यवहारका आरोप सिद्ध होता है। उसने कहा :

मालगुजारी सहायक, खान अहमदखांने हमारे अनुरोधपर तहसीलदारके व्यवहारके बारेमें जो-कुछ सुना था, वह सब बता दिया। लेकिन कुल मिलाकर हमारे सामने जो सबूत आये हैं उनसे प्रकट होता है कि सबूत पक्ष द्वारा जो तर्क स्वीकार किया गया है, अर्थात् यह कि भरतीका तरीका जबरन भरतीके समान था, इस तथ्यके अलावा तहसीलदारके विरुद्ध लगाया गया दुर्व्यवहारका अन्य कोई दृष्टान्त सिद्ध नहीं हुआ है।

इस सबन्धमें सरकारी विज्ञप्तिमें कहा गया कि "उसने लोगोंका अपमान नहीं किया था और न उनकी भावनाओंको ही ठेस पहुँचाई थी।" अदालतने ऐसी कोई बात अपने निर्णयमें नहीं कही है कि जिसके आधारपर सरकारी विज्ञप्तिमें इस प्रकारका दावा किया जा सके। इसके विपरीत यदि सरकार मालगुजारी सहायकको प्राप्त और अदालत-को दी गई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारीके आधारपर सचाईका पता चलाना चाहती तो उसने, हत्याके मुकदमेसे अलग, तहसीलदारके विरुद्ध लगाये गये दुर्व्यवहारके आरोपों-की गहरी जाँच-पड़ताल कराई होती।

हमने कुछ बहुत ही व्यक्तिगत किस्मके साक्ष्य जमा किये हैं, जो चूँकि अत्यन्त गम्भीर ढंगके हैं इसलिए उन्हें हम इस रिपोर्टके साथ नहीं छाप रहे हैं। ये साक्ष्य गांधीजीने जमा किये हैं; और वे ही इस मामलेमें पंजाब सरकारसे लिखा-पढ़ी कर रहे हैं।

उसी जिलेमें एक दूसरा मामला हुआ जिसमें कहा जाता है कि लोगोंकी भीड़ने एक गाँव घेर लिया और सात आदमियोंकी गिरफ्तारी रोकनेकी कोशिश की। इस भीड़पर पुलिसने गोली चलाई और कुछ लोग हताहत हुए। अदालतने बचाव पक्षकी यह दलील रद कर दी कि लोग चूंकि फौजमें भरती होनेसे डरते थे, इसलिए उन्होंने विरोध किया था। लेकिन विरोध किया गया और गोली चलाई गई, यह तथ्य ही इस आरोपको सिद्ध करता है कि अत्याचारपूर्ण तरीके अपनाये गये थे।

मुल्तान डिवीजनमें कबीरवाला तहसीलकी कोर्ट ऑफ वार्डसके अन्तर्गत आने-वाली एक रियासतका मैनेजर भरती करनेके लिए खीजी कबीलेमें गया। वहाँ कुछ हाथापाई और मारपीट हुई, जिसमें कुछ लोग हताहत हुए। सरकारी वकीलने मैनेजरके विरुद्ध मुकदमा चलानेकी अनिच्छा प्रकट कर दी। तथापि यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि मैनेजर कबीलेवालोंके बीच क्यों गया, और उन लोगोंने किस बातका और किस कारण विरोध किया?

आंशिकरूपसे इस प्रश्नका जवाब हमें सर माइकेल ओ'डायर द्वारा प्रकाशित किये गये भरतीके आँकड़ोंसे मिल जाता है। दिसम्बर १९१७ के अन्तमें मुल्तान जिलेमें भरती होनेवालों की कुल संख्या ७५९ यानी प्रति ५८६ पुरुषोंके पीछे १ थी। नवम्बर १९१८ के अन्ततक यह संख्या बढ़कर ४,६३६ यानी प्रति ९३ पुरुषोंके पीछे १ हो गई। ऐसी आश्चर्यजनक वृद्धि तो दबाव और जबरदस्तीके तरीकोंसे ही सम्भव हो सकती है। कमिश्नरने कहा:

> मुझे लगता है कि चन्द लोगोंको छोड़कर जिलेके अन्य प्रमुख व्यक्तियोंने अपना कर्त्तव्य नहीं किया है। बजाय इसके कि वे अपने परिवारके लोगोंको फौजमें भरती करायें, उन्होंने अपनेसे छोटे तबकेके लोगोंको पैसा देकर या मजबूर करके भरती करानेकी कोशिश की; कुछ मुखियोंने दबावके आपत्तिजनक तरीके अपनाये, जिसके परिणामस्वरूप कहीं-कहीं सार्वजनिक शान्तिभंग होनेकी वारदातें भी हुईं। बहुत-से मामलोंमें दूसरे जिलों और डिवीजनोंके बाहरी लोगोंको अपने यहाँका दिखाकर उन्हें धोखेसे फौजमें भरती करनेकी सफल कोशिशें की गईं; हालाँकि ऐसा करना सरकारी आदेशके विरुद्ध था।

रहा हो या सोच-समझकर किया गया हो, इसके बाद ही तत्कालीन डिप्टी कमिश्नरका तबादला हो गया और उनकी जगह कर्नल ओ'ब्रायन नियुक्त हुए। उनके आते ही भरतीकी रफ्तार एकदम बढ़ गई। अगस्त १९१८ में गुजराँवालामें आयोजित एक दरबारमें सर माइकेल ओ'डायरने भरतीके परिणामके बारेमें इस प्रकार कहा :

एक वर्ष पहलेतक गुजरांवालाके ३,३८८ आदमी फौजमें थे, अर्थात् कुल पुरुष जनसंख्यामें १५० के पीछे केवल एक आदमी। पिछले महीनेके अन्ततक उसके ११,७६५ आदमी फौजमें थे, अर्थात् मर्दोंकी कुल जनसंख्यामें से प्रति ४४ पुरुषोंके पीछे एक आदमी, और फौजी-सेवाकी उम्रके आदमियोंमें से प्रति १४ पुरुषोंके पीछे एक आदमी। इस प्रकार आपने एक सालके अन्दर ८,५०० जवान दिये हैं। यह सफल संगठनका एक शानदार उदाहरण है, जिसका मुख्य श्रेय आपके डिप्टी कमिश्नर कर्नल ओ'ब्रायन और उनके सहायकोंके प्रेरणाप्रद और उत्साहपूर्ण मार्गदर्शनमें आपकी जिला युद्ध-परिषद् द्वारा किये गये अविश्रान्त प्रयत्नोंको है, जिन प्रयत्नोंमें प्रभागीय भरती-अफसर मेजर बार्न्स तथा उनके सह-कारियोंने भी खासा हाथ बँटाया।

भरतीके काममें सफलता जिन तरीकोंसे प्राप्त की गई उनका विशद् विवरण हमें गुजराँवाला, मनियाँवाला, चूहड़खाना, हाफिजाबाद और अन्य स्थानोंके प्रत्यक्षदर्शियोंसे मिला है। हमने जो बहुत सारे बयान इकट्ठे किये हैं उन्हें हम परिशिष्टमें दे रहे हैं। यहाँ हम उनमें से केवल एक विशिष्ट बयानका कुछ अंश दे रहे हैं। यह बयान गुजराँवाला जिलेमें रतालीके हिस्सेदार, सरदार खाँने बैरिस्टर श्री लाभसिंह, एम० ए०, बार-एट-लॉके सामने दिया था, जिन्हें साक्ष्य एकत्र करनेके लिए विशेष रूपसे नियुक्त किया गया था। सरदार खाँने कहा :

तहसीलदार बैशाखके महीनेमें हमारे गाँवमें आया। रातको डुग्गी पीटकर मुनादी करा दी गई कि सुबह सब लोग गाँवके दायरे [मैदान]में उपस्थित हो जायें। चूंकि यह फसलकी कटाईका मौसम था और साथ ही लोगोंमें जबरदस्ती फौजमें भरती किये जानेका भय भी था, इसलिए सुबह थोड़ेसे ही लोग दायरेमें इकट्ठे हुए। इसपर तहसीलदारने लगभग ६० या ७० लोगोंपर जुर्माना ठोक दिया। जुर्मानेकी कुल रकम १,६०० रुपये थी। लोगोंको फिर आदेश दिया गया कि वे गुजराँवाला स्थित मुख्य कार्यालयमें हाजिर हों, जो गाँवसे १८ मील दूर पड़ता है। जब नियत दिनको लोग वहाँ गये तो उन्हें एक कतारमें खड़ा कर दिया गया और उनमें से ७ जवानोंको छाँट लिया गया। यह तहसीलदार फतेहखाँने खुद किया। बाकी लोगोंको गालियाँ दी गईं, मारा-पीटा गया और उनसे कहा गया कि वे और रंगरूट लायें। (बयान संख्या ५९१)।

निरस्त किया गया।

गवाह संख्या २६ के जी० एस० उतमसिंहने यह रकम देनेमें आनाकानी की तो उनपर अभियोग लगाकर मुकदमा चला दिया गया। लेकिन रकम अदा करनेपर मामला वापस ले लिया गया।

सामाजिक एक सहायता कोष: प्रति मुरब्बा जमीनपर १० रुपयेकी रकम नियत की गई। चूँकि बचनेका कोई तरीका नहीं था, इसलिए लोगोंको यह रकम देनी पड़ी।

लम्बरदारोंको रंगरूट भरती करके देना पड़ता था, और न देनेपर उन्हें दण्डस्वरूप लम्बरदारीके अधिकारोंसे वंचित कर देनेकी व्यवस्था थी। कईको तो सचमुच लम्बरदारीसे वंचित कर दिया गया। इस प्रकार एक रंगरूटका मूल्य ५०० रुपयेतक था। पुलिस लोगोंको पकड़कर उनसे शान्ति बनाये रखनेके लिए मुचलका माँगती थी। मजिस्ट्रेट जमानतपर छोड़नेसे इनकार कर देता था और लोगोंको हवालात भेज देता था, और जबतक वे रंगरूट देनेका वादा नहीं करते, उन्हें वहीं पड़े रहना पड़ता था। अभियुक्तों द्वारा रंगरूटके रूपमें भरती स्वीकार करनेपर उनके विरुद्ध फौजदारीके मुकदमे वापस ले लिये जाते थे। (बयान सं० ५१६)

इस प्रकार सर माइकेल ओ'डायरने पंजाबमें नवजीवनका संचार कर दिया और पंजाबियोंमें अभूतपूर्व एकताकी भावना उत्पन्न कर दी। इसलिए जब गत अप्रैल माहमें उन्होंने पंजाबकी एकता और भारतकी एकताका प्रत्यक्ष स्वरूप देखा तो वे किंकर्तव्य-विमूढ़से रह गये और ७ अप्रैलको उन्होंने झल्लाहटमें अपना वह भाषण दिया जिसमें से कुछ अंश हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं। उन्होंने अपने लौह-शासनके दौरान पंजाबको

जिस गुलामीकी जंजीरमें जकड़ दिया था, उससे मुक्त होनेके लिए छटपटाती पंजाव-की जनताके उत्साहको एक वार फिर तोड़ डालना चाहा, और उसे तोड़नेकी हरचन्द कोशिश भी की। उन्हें नेताओंके हर ईमानदारी-भरे भाषणमें खतरेकी गंध आने लगी, हर सम्मिलित कार्रवाईमें षड्यंत्रका आभास होने लगा, और अन्ततः अपना आपा भूल-कर उन्होंने डा० सत्यपाल[1], डा० किचलू[2] और श्री गांधीके विरुद्ध अपने आदेश जारी कर डाले। उन्हें जरूर ही पता रहा होगा कि जो समाज उनके शासनसे पहलेसे ही चिढ़ा वैठा है, उसपर इन आदेशोंका असर आखिरकार यही होगा कि वह प्रचण्ड रूपसे भड़क उठेगा। हम तो यहाँतक कहना चाहेंगे कि उन्होंने जनताको हिंसा करनेके लिए आमन्त्रित किया ताकि वे उसे कुचल सकें। परिशिष्टमें जो साक्ष्य दिये गये हैं, उनसे प्रकट होता है कि उन्होंने पंजावियोंको अपने कार्योंसे वहुत ही प्रवल रूपसे उत्तेजित कर दिया, जिसके चलते वे कुछ समयके लिए आत्मसंयम खो वैठे। उन्हें इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी है, लेकिन इसके साथ ही उन्होंने अपूर्व शीघ्रतासे फिर अपने ऊपर नियन्त्रण कर लिया है, तथा उन्हें, जिन्हें अधिकांशतः विना किसी अपराधके ही कष्टोंकी जिस अग्नि-परीक्षासे गुजरना पड़ा, उसमें से वे विलकुल शुद्ध होकर निकले हैं, और सर माइकेल ओ' डायरने उन्हें समझदारीका जो प्रमाणपत्र दिया था, उन्होंने अपने आपको उसके योग्य सिद्ध कर दिया।

अध्याय ३

रौलट विधेयक

पिछले अध्यायमें यह वात पर्याप्त रूपसे स्पष्ट हो जाती है कि पंजावकी जनताको प्रान्तीय-प्रशासनने तरह-तरहसे तंग किया, और जनताके स्वाभाविक नेताओं, अर्थात् शिक्षित-वर्गों, के प्रति सरकार द्वारा अपनाये गये तिरस्कारपूर्ण रवैयेने इन नेताओंके लिए जनताको नियन्त्रणमें रख सकना लगभग असम्भव कर दिया था। तो ऐसा था वातावरण जव रौलट विधेयक पंजावकी जनताके सामने आये।

यह सर्वविदित है कि जिस समय ये दो विधेयक प्रकाशित किये गये[3], उस समय भारतमें विप्लवकी प्रवृत्तिसे सम्वन्धित अपराधोंका लगभग कोई अस्तित्व नहीं था। सच तो यह है कि पिछले कई वरसोंसे, वंगाल और पंजावको छोड़कर भारतके शेष सभी भागोंमें इन प्रवृत्तियोंका कोई असर नहीं रह गया था। वंगालमें आतंककारी दलका जन्म उस समय हुआ जव वंग-भंगके विरुद्ध असन्तोषकी भावना अत्यन्त उग्र हो गई थी। पंजावमें इस दलके उदयका कारण पंजाव सरकार द्वारा उठाये गये वे विभिन्न कदम थे जिनसे जनतामें जोरोंका असन्तोष फैला और कैनेडाके गर्वीले सिख प्रवासियोंके साथ हुए घोर दुर्व्यवहारके कारण इस चीजने अत्यन्त गम्भीर रूप धारण कर लिया। इन सिखोंके असन्तोषकी छूत पंजावके कुछ स्थानीय लोगोंको भी लगी; और 'कोमा-गाटा मारू' नामक जहाजसे लौटनेवाले इन प्रवासियोंके मामलेमें सरकारने जो जवरन

१ और २. इन नेताओंके परिचयके लिए देखिए रिपोर्टका अध्याय ५, भाग १ ।
३. ये विधेयक फरवरी १९१९ में प्रकाशित किये गये थे ।

था, ध्यानमें रखते हुए अब भारत सरकार भारत सुरक्षा अधिनियमको रद कर देगी और खुफिया विभागकी अवांछित निगहबानीसे उसे मुक्ति मिल सकेगी।

इसलिए जब एकाएक ये दोनों विधेयक उसके सामने आये तो वह आश्चर्यचकित रह गई। विधेयकोंको प्रस्तुत करते हुए वाइसराय महोदयने जो भाषण दिया उससे यह बेचैनी और बढ़ गई, क्योंकि भाषणसे ऐसा प्रकट होता था जैसे इन विधेयकोंका उद्देश्य सुधारोंके अन्तर्गत अंग्रेज अफसरोंकी सुरक्षाको जो खतरा था, उसे दूर करना हो। भारतीयोंका इस विषयमें क्या रवैया है, इसे श्री गांधीने अपना सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करते समय समाचारपत्रोंको भेजे गये अपने निम्नलिखित पत्रमें[1] स्पष्ट किया :

श्री गांधीने अपने पत्रमें जिस सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाकी चर्चा की, वह हम नीचे दे रहे हैं।

अब हम यथासम्भव संक्षेपमें विधेयक संख्या २ पर विचार करेंगे, जो रौलट अधिनियमके नामसे जाना जाता है। हम विधेयक संख्या १ पर विचार नहीं करेंगे, क्योंकि स्पष्टतः जान पड़ता है कि सरकारने उसे वापस ले लिया है।

इस अधिनियमका यह प्रचलित नाम भारत सरकार द्वारा १० दिसम्बर, १९१७ को नियुक्त की गई राजद्रोह समितिके अध्यक्ष न्यायमूर्ति रौलटके नामपर पड़ा है। इस समितिका काम निम्नलिखित था :

> **(१) भारतमें विप्लववादी आन्दोलनसे सम्बन्धित अपराधमूलक षड्यन्त्रोंके स्वरूप और व्यापकताकी जाँच करके बताना, और**
>
> **(२) षड्यन्त्रोंका मुकाबला करते हुए उपस्थित होनेवाली कठिनाइयोंकी जाँच करना और उनपर विचार करना, तथा उनसे सरकार कारगर ढंगपर निपट सके, इसके लिए यदि कोई कानून बनानेकी आवश्यकता हो तो उस कानूनके विषयमें सरकारको परामर्श देना।**

समितिकी बैठकें और कार्यवाही गुप्त रहे, ऐसा निर्देश था। समितिने १५ अप्रैल, १९१८ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। लाहौरमें चार बैठकोंके अलावा समितिकी सारी बैठकें कलकत्तामें हुईं। न्यायमूर्ति श्री रौलटने रिपोर्टके साथ सरकारको भेजे गये अपने पत्रमें लिखा :

> **जैसा कि हमारी नियुक्ति करनेवाले आदेशपत्रमें निर्देशित किया गया था, हमने अपनी हर बैठक गुप्त रूपसे की।**

लोगोंको आज भी यह नहीं मालूम हो सका है कि समितिके सामने किस प्रकारके बयान दिये गये या बयान देनेवाले कौन लोग थे। स्वभावतः इन गवाहोंसे जनताकी ओरसे कोई जिरह नहीं की गई, क्योंकि समितिमें जनताका कोई प्रतिनिधि नहीं था।

उक्त दोनों विधेयक इसी समितिकी सिफारिशोंका नतीजा थे। हमने समितिकी रिपोर्ट और सिफारिशें पढ़ी हैं। चूंकि इन सिफारिशोंका मंशा एक ऐसी परिस्थितिसे निपटनेकी तजवीज करना था जो सिफारिशें करते समय मौजूद ही नहीं थीं, इसलिए

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रके पाठके लिए देखिए खण्ड १५, पृष्ठ १२४-२५।

[illegible]

[illegible]

अराजकतावादी लोग मानसिक असन्तुलनकी ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थितिमें है, इसीलिए क्या हम यह कहेंगे कि चूँकि ये लोग राजनीतिक रियायतोंसे सन्तुष्ट होनेवाले नहीं हैं इसलिए हम उनके बारेमें सोचेंगे ही नहीं; और हम उनसे साथ केवल कानूनी तौरपर निपटेंगे? मेरे विचारसे ऐसा रवैया रखकर चलना स्वस्थ राजनयिकता नहीं है। हमें चाहिए कि हम उन्हें ऐसे सन्तोषजनक सुधार दें जिनसे उनकी राजनीतिक स्वतन्त्रताकी आकांक्षाकी कुछ पूर्ति हो। लेकिन आखिर जिन्हें सन्तुष्ट करना है, वे अराजकतावादी नहीं हैं। हमें तो उस सामान्य वातावरणको सुधारना है जिसमें अराजकता पनपती है, और जब अराजकतावादी लोग देखेंगे कि उन्हें कहींसे कोई सहानुभूति नहीं प्राप्त हो रही है, और जिस भूभागपर पूर्ण सन्तोष और राजनीतिक समृद्धि व्याप्त है, वहाँ वे अपने कुटिल सिद्धान्तोंका प्रचार नहीं कर सकते तब वे कानूनके हाथों न भी मरें तो भी अपने-आप मर जायेंगे।

इससे माने हुए दमनकारी कानूनसे निर्दोष लोगोंको डरनेकी जरूरत नहीं है, ऐसा कहनेपर माननीय श्री शास्त्रीने जो जवाब दिया वह भी ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा :

कोई खराब कानून एक बार पास हो जानेके बाद हमेशा खराब आदमियोंके ही विरुद्ध प्रयुक्त हो, ऐसा नहीं है। . . . मैंने देखा है कि बहुत-सी

१. यह भाषण केन्द्रीय विधान परिषदमें ७ फरवरी, १९१९ को दिया गया था।

सरकारें घबराहटकी स्थितिमें पड़ जानेपर —— और हो सकता है, बहुत मामूली-सी घटनाओंके कारण भी वे ऐसी स्थितिमें पड़ जायें —— अपना सन्तुलन खो बैठी हैं। मैंने दमन और आतंकका राज्य स्थापित किये जाते भी देखा है; और देखा है, हम भारतीयोंके बीच जो श्रेष्ठसे-श्रेष्ठ और नेकसे-नेक व्यक्ति हैं, उन्हें सन्देहका शिकार होते, और सरकारके खुफिया विभागके भयसे दिन-रात त्रस्त रहते। . . . जब सरकार दमनकारी नीति अपनाती है तब निर्दोष लोग सुरक्षित नहीं रहते। उस हालतमें मेरे जैसे लोगोंको निर्दोष नहीं माना जायेगा। उस समय निर्दोष तो केवल वही आदमी होगा जो राजनीतिसे कोई वास्ता न रखे, जो अपने समयकी सार्वजनिक गतिविधियोंमें कोई भाग न ले, जो अपने घरमें बैठकर चुपचाप ईश्वर प्रार्थना करे, सरकारी कर अदा करता जाये और पूरे सरकारी अमलेको बराबर सलाम करता रहे। जो आदमी राजनीतिमें दखल देता हो, किसी सार्वजनिक कार्यके लिए चन्दा इकट्ठा करता घूमता हो, जो आदमी सार्वजनिक सभाओंमें बोलता हो, वह उस समय सरकारकी निगाहमें संदिग्ध व्यक्ति बन जाता है। मैं सदैव इन दोनोंके बीचकी स्थितिमें रहता आया हूँ, अतः यदि और कोई वजह न हो तो भी व्यक्तिगत कारणवश कहना चाहूँगा कि कार्यपालिकाके हाथमें इतनी सख्त ढंगकी सत्ता होनेसे केवल खराब आदमियोंको ही चोट नहीं पहुँचेगी। इसकी चोट अच्छे और बुरे दोनोंपर पड़ेगी, और इसके परिणामस्वरूप इस देशमें लोकभावनाका ऐसा ह्रास होगा और राजनीतिक चेतनाका इतना अधिक पतन होगा कि उत्तरदायी सरकार-सम्बन्धी आपकी सारी बातें महज मजाक बनकर रह जायेंगी। आप अपनी विधान परिषदोंकी सदस्य-संख्या भले ही बढ़ा लें, मताधिकारका आधार भले ही और अधिक व्यापक कर दें, लेकिन तब इन परिषदोंमें जो लोग आयेंगे वे सब चापलूस होंगे, कमजोर लोग होंगे, और एक दिखावटी लोकतान्त्रिक सरकारके अन्तर्गत दमनकारी सत्तासे युक्त नौकरशाही स्वच्छन्द शासन करेगी। दुष्टोंको दण्डित करनेके लिए हम सभी उत्सुक हैं। हममें से कोई नहीं चाहता कि दुष्टताकी सजा न दी जाये किन्तु . . . दुष्टोंको भी एक निश्चित तरीकेसे सजा दी जाये। मुझे याद है कि जब स्कैफिंग्टनको गोलीसे उड़ाया गया था[1], तब सारी दुनिया स्तब्ध रह गई थी। . . . यहाँतक कि युद्धमें भी, जब सम्पूर्ण मानवतामें भय और उत्तेजनाका भाव व्याप्त होता है, और जब हर व्यक्ति केवल एक ही चिन्ता करता है और वह यह कि शत्रुपर किस प्रकार विजय प्राप्त की जाये, उस समय भी, श्रीमन्, युद्धके कानून होते हैं। आपको खेलके नियमोंका पालन करना है। जब किसी देशमें अपराधी लोग अपराध करते हुए घूम रहे हों, उस समय उन्हें भी अंकुशमें लानेके कुछ तरीके हैं। यह उचित नहीं है कि आप उन्हें मनमाने तौरपर

१. सन् १९१६ में डब्लिनके ईस्टर विद्रोहके सिलसिलेमें ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा।

[illegible]

[illegible]

आह! कितना अच्छा हो, अगर इस संसारमें नेक इरादे हमेशा कामयाब ही हों। सामाजिक और राजनीतिक, दोनों ही कोटिके कानूनोंका इतिहास — वे जिन श्रेष्ठ उद्देश्योंसे बनाये गये — उनकी विफलताके दृष्टान्तोंसे भरा पड़ा है। जो कानून गरीबी दूर करनेके इरादेसे बनाये गये, उनके परिणामस्वरूप गरीबी और अधिक बढ़ गई . . .और मैं माननीय सर विलियम विन्सेंटसे यह निवेदन करना चाहूँगा कि ये जो कानून इस समय हमारे सामने रखे गये हैं उनका उद्देश्य यद्यपि राजनीतिको शुद्ध बनाना है — हो सकता है, उनका प्रयोग खतरनाक ढंगसे राजनीतिका दमन करनेके लिए किया जाने लगे। अगर आप ऐसे किसी कठोर कानूनको विधि-पुस्तकमें शामिल करते हैं तो उसका मतलब होगा कार्यपालिकाके अत्युत्साही अधिकारियोंको ऐसी सत्ता दे देना जो मेरे खयालसे प्रशासनिक शान्ति बनाये रखनेके लिए आड़े-टेढ़े रास्तोंको अपनानेकी छूट देना है।

इस दमनकारी कानूनको जनताका कोई समर्थन प्राप्त नहीं था, और सरकार द्वारा अपने भारतीय सहयोगियोंके "सर्वसम्मत और प्रबल" विरोधके बावजूद इसे पास करनेके प्रयत्नके विरुद्ध चेतावनी देते हुए उन्होंने विधान परिषद्से पूछा:

भारतीयोंमें से अब आपके साथ कौन है? भारतकी करुण कहानी संक्षेपमें इन शब्दोंमें कही जा सकती है कि आपने भारतमें इतने सौ बरसतक जो शासन किया है वह जनतासे अलग रहकर किया है और लोकमतका कोई जिम्मेवार हिस्सा आपके पीछे नहीं रहा है। लोकमतका कोई अंग आपका समर्थन

१. वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य, १९१९-१९२२।

नहीं करता। नामजद सदस्योंने इस विधेयकको अपना समर्थन नहीं दिया है; जमींदार सदस्योंने अपना समर्थन नहीं दिया है। जो सदस्य वकील हैं, वे इसे स्वीकार करनेको कतई तैयार नहीं हैं; जो सदस्य व्यापारी-वर्गके हैं वे इसे स्वीकार नहीं करते। और फिर भी माननीय सर जॉर्ज लाउण्डेजने[1] हमसे कहा है कि "हमें यह कानून पास करना ही होगा, क्योंकि हमें विश्वास है कि यह बिलकुल सही है: हमें आपका सहयोग पाकर खुशी होती, आपका सहयोग प्राप्त करनेकी हमारी चाहे जितनी भी इच्छा हो, मगर अपनी जिम्मेदारी समझते हुए अब हम उसके बगैर भी इसे पास करायेंगे।" मैं माननीय विधि-सदस्यके साहसकी सराहना करता हूँ। जिस सरल भावसे उन्होंने कहा कि "आज हमपर जिम्मेदारी है: लेकिन आपके ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं है" उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ। हम इस स्थितिको समझते हैं। श्रीमन् इस विधेयकके लिए, हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं है, और इसीलिए मैं यह माननेसे इनकार करता हूँ कि जब इस मामलेको सही रूपमें जन-मतके सामने रखा जायेगा तो वह कहेगा — जैसा कि माननीय सर विलियम विन्सेंट सोचते प्रतीत होते हैं कि इस स्थितिमें अंग्रेज जनताके कुछ वर्ग शायद ऐसा ही कहते — कि हमारी जिम्मेदारी थी और हमने उससे बचनेकी कोशिश की, किन्तु हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं है।

इसके बाद निम्नलिखित गम्भीर चेतावनीके साथ श्री शास्त्रीने अपना भाषण समाप्त किया:

अब, श्रीमन् मुझे सिर्फ एक बात और कह देनी चाहिए, और वह उस देशकी भावनाके साथ न्याय करनेके लिए, जिसकी ओरसे मैं यहाँ इस समय बोल रहा हूँ। मैं नहीं समझता जब माननीय विधि-सदस्य महोदयने कहा कि हममें से कुछ लोग आन्दोलनकी धमकियाँ दे रहे हैं, तो उसके पीछे उनका मंशा भी बिलकुल वैसा ही कहनेका था। मेरा तो खयाल है कि विधेयकके विरुद्ध यहाँ जितने लोग बोले हैं, उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं कही है जिसे ईमानदारीके साथ आन्दोलनकी धमकी बताया जा सके। मैं कहना चाहूँगा कि हममें से किसीमें, नरम दलवालोंमें से तो किसीमें निश्चय ही, इतनी ताकत नहीं है कि वह देशमें हिंसात्मक आन्दोलन खड़ा कर सके। यह असम्भव है। आन्दोलनकी स्थिति तो वहाँ पहलेसे ही होगी। यदि यहाँ बोले गये हमारे शब्दोंका सर्व-सामान्य राजनीतिक वातावरणपर कुछ भी प्रभाव होता है तो यह निश्चय है कि लोगोंके हृदय स्पन्दित हो रहे होंगे। आन्दोलन तो मौजूद ही है। मैं सरकारी पक्षके अपने सहयोगियोंको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि अभीतक इस

१. वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य, १९१५–१९२०।

माननीय श्री मजहरुल हक
„ खान बहादुर मियाँ मुहम्मद शफी
„ खान जुल्फिकार अली खाँ
„ श्री जी० एस० खापर्डे
„ राय बी० डी० शुक्ल बहादुर
„ श्री के० के० चन्दा
„ श्री मौंग बाह ट्

माननीय सर गॉडफ्रे फैल
„ श्री एफ० सी० रोज़
„ श्री सी० एच० केस्टीवेन
„ श्री डी० एस० ग्रे
„ लेफ्टिनेन्ट कर्नल आर० ई० हॉलैंड
„ सर्जन-जनरल डब्ल्यू० आर० एडवर्ड्स
„ श्री जी० आर० क्लार्क
„ ए० पी० मुडीमैन
„ श्री सी० ए० बेरन
„ श्री पी० एल० मूअर
„ श्री एम० एन० हॉग
„ श्री टी० इमर्सन
„ श्री ई० एच० सी० वाल्श
„ श्री सी० ए० किन्केड
„ सर जॉन डोनाल्ड
„ श्री पी० जे० फैगन
„ श्री जे० टी० मार्टिन
„ श्री डब्ल्यू० जे० रीड
„ श्री डब्ल्यू० एफ० पाइस
„ श्री एच० मॉक्रीफ स्मिथ

इस विधेयकके लिए जिम्मेदार सदस्यने इसमें कुछ ऐसे मामूली परिवर्तनोंका सुझाव स्वीकार कर लिया, जिनसे विधेयकके उद्देश्य और उसकी व्याप्तिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, और इस प्रकार यह विधेयक १८ मार्चको अन्तिम रूपसे पास हो गया।[1] इसके परिणामस्वरूप तीन उल्लेखनीय व्यक्तियों — पंडित मदनमोहन मालवीय, श्री मजहरुल हक और श्री एम० ए० जिन्ना — ने विधान परिषद्से त्यागपत्र दे दिया।

अब हम रौलट अधिनियमकी व्यवस्थाओंपर सरसरी नजर डालकर देखेंगे कि इस अधिनियमके विरुद्ध जो देशव्यापी और अभूतपूर्व आन्दोलन हुआ, वह उचित था या नहीं।

मूलतः यह कानून एक स्थायी कानून बननेवाला था, किन्तु प्रवर समितिमें एक संशोधन स्वीकार किया गया जिसमें इसकी अवधि युद्ध-समाप्तिके बादसे तीन वर्ष नियत की गई। हमारे विचारसे इस अवधि निर्धारणके सिद्धान्तके आधारपर इस अधिनियमका विरोध करनेके सवालपर कोई असर नहीं पड़ता।

१. मार्च १९१९ में। गांधीजी दिल्लीमें केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभामें इस विधेयकपर होनेवाली बहसके दौरान केवल एक बार वहाँ उपस्थित थे। इस एक अवसरको छोड़कर वे केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाकी कार्रवाई सुनने कभी नहीं गये।

[illegible]

> यह आवश्यक है कि साधारण फौजदारी कानूनके पूरकके रूपमें अतिरिक्त व्यवस्था की जाये और क्रान्तिकारी तथा विप्लवकारी आन्दोलनोंका मुकाबला करनेके लिए सरकार संकटकालीन अधिकारोंका प्रयोग कर सके।

यह [illegible] विधेयक [illegible] लागू होता है। [illegible] श्रीमान् गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिलको यह अधिकार दिया गया है कि यदि वे समझें कि ब्रिटिश भारतके किसी भागमें क्रान्तिकारी अथवा विप्लवकारी आन्दोलनोंको बढ़ावा दिया जा रहा है, और ऐसे आन्दोलनोंसे सम्बद्ध अपराधोंके [illegible] इतने अधिक हो गए हैं कि सार्वजनिक सुरक्षाके लिए ऐसे अपराधोंके मामलेमें जल्दी-जल्दी मुकदमा चलाना, उनका निपटारा करना आवश्यक हो गया है, तो वे [श्रीमान् गवर्नर जनरल] इस आशयकी घोषणा कर सकते हैं; और उसके साथ ही [विधेयकके] प्रथम भागकी व्यवस्थाएँ जिलोंमें उल्लिखित क्षेत्रविशेषके ऊपर लागू हो जायेंगी। इस कानूनके समर्थक हालाँकि स्वीकार करते हैं कि इसके द्वारा कार्यपालिकाको बहुत अधिक सत्ता दी गई है, लेकिन उनका कहना है कि इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि इसका उपयोग केवल तभी होगा जब श्रीमान् गवर्नर जनरल-जैसे उच्चाधिकारियोंको सन्तोष हो जायेगा कि क्रान्तिकारी अथवा विप्लवकारी आन्दोलनोंको बढ़ावा दिया जा रहा है, और उन आन्दोलनोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सुनियोजित ढंगके अपराध इस प्रकार होने लगे हैं कि मामलेके फैसलोंके लिए जो सामान्य सुविधाओंकी व्यवस्था है, उसे उठा लेना चाहिए। आइए, देखें कि इन उच्चाधिकारियोंको सामान्यतः किस प्रकार इस बातका सन्तोष हो गया है कि वस्तुतः ऐसी स्थिति मौजूद है। शुरुआत पुलिसके सबसे अदना कर्मचारीके जरिये होती है जिसकी दिलचस्पी अक्सर अपराधोंकी स्थितिको बढ़ा-चढ़ाकर बतानेमें होती है, जो अपने खेद-जनक अज्ञानके कारण अक्सर प्रस्तुत तथ्योंको ठीक-ठीक समझ नहीं पाता, और जो आमतौरपर भ्रष्टाचारसे मुक्त नहीं होता। यह अदना वरिष्ठ अफसरको सूचित करता है कि एक विप्लववादी आन्दोलन संगठित किया जा रहा है, और इस आन्दोलनके सिलसिलेमें अपराध किये जा रहे हैं। वह वरिष्ठ अधिकारी तहकीकात करता है। वह सन्तुष्ट हो जाता है, और अगर सन्तुष्ट न हो तो उक्त कान्स्टेबल और सबूत प्रस्तुत करता है, भले ही वे फर्जी हों, और इस प्रकार वह रिपोर्ट जो मूलतः ही दूषित हो, या जिसका शायद कोई महत्त्व न हो, ऊपर बढ़ती जाती है और ज्यों-ज्यों वह ऊपर जाती है त्यों-त्यों उसका महत्त्व बढ़ता चला जाता है और अन्तमें उसके बल-पर श्रीमान् गवर्नर जनरल एक घोषणा करके उस रिपोर्टको ऐसा महत्त्व प्रदान कर देते हैं जिसके वह सर्वथा अनुपयुक्त है। पंजाबकी घटनाओंको देखनेसे हमारा अभिप्राय बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा। यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि किस प्रकार महज अफवाहों या सन्देहोंने बढ़ते-बढ़ते क्रान्तिकारी आन्दोलनोंका ठोस रूप ग्रहण कर लिया, और किस प्रकार बिलकुल निर्दोष व्यक्ति भी कभी-कभी अधिकारियोंकी दुष्टता, और

लगभग सभी मामलोंमें उनकी प्रकके कारण की गई अदालती कार्रवाई और ऐसे ही अत्याचारके शिकार हो जाते हैं।

अब हम सुनियोजित ढंगके अपराधोंमें से कुछ-एकपर नजर डालें और देखें कि वे आखिर हैं क्या? इनमें राजद्रोह करना तो एक अत्यन्त बारीक कानूनी सवाल है; घातक अस्त्रोंसे लैस होकर दंगा करना; विभिन्न वर्गोंमें शत्रुता उत्पन्न करना; खतरनाक हथियारोंसे गंभीर चोट पहुँचाना; जबरदस्ती धन-सम्पत्ति छीनने या गैर-कानूनी कामके लिए मजबूर करनेके उद्देश्यसे चोट पहुँचाना; लूट-पाट या डकैती आदि करनेकी नीयतसे किसी व्यक्तिको शारीरिक क्षति पहुँचानेका भय दिखाना; आदि शामिल हैं। इस प्रकार यदि एक बार मनमें यह सन्देह जम-भर जाये कि किसी विप्लववादी आन्दोलनका कहीं कोई अस्तित्व है तो फिर किसी सरकारी कानूनकी जोरदार आलोचना, कोई मजहबी दंगा, हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा, निजी स्वार्थवश जबरदस्ती कोई जायदाद या माल हथियाना या पेशेके तौरपर की गई डकैती आदि सभी काम ऐसे आन्दोलनसे सम्बन्धित बताये जा सकते हैं।

और यह तुर्त-फुर्त मुकदमा किस प्रकारका होगा? हम उसे विधेयकके प्रस्तावकके शब्दोंमें ही देते हैं। ये मुकदमे "बिना अपराध-आरोपणके, बिना अपीलके अधिकारके गुप्त रूपसे और तेजीके साथ" निबटाये जायेंगे। मुकदमेकी पूरी या आंशिक सुनवाईके लिए अदालत प्रान्तमें जिस स्थानपर वांछनीय समझे वहाँ बैठ सकती है, और एडवोकेट-जनरलके कहनेपर उच्च न्यायालय जहाँ सामान्यतः बैठता है, उससे भिन्न स्थानपर बैठ सकता है।

खण्ड ७ में कहा गया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिताकी इस अधिनियमके भाग १ से जिस हदतक विसंगति होगी, उस हदतक वह इस अधिनियमके अन्तर्गत चलाये गये मुकदमोंपर लागू नहीं होगी। खण्ड ८ के द्वारा, इस प्रकारके जिन मुकदमोंमें मृत्यु-दण्ड दिया जाये, उनकी प्रक्रिया भी संक्षिप्त करके वैसी ही बना दी गई है जैसी प्रक्रिया "मजिस्ट्रेट द्वारा वारंटके मुकदमोंकी सुनवाईमें" अपनाई जाती है। अभियुक्तको केवल एक बार मुहलत देनेका अधिकार दिया गया है, और सो भी ज्यादासे-ज्यादा १४ दिनोंके लिए। खण्ड १८ द्वारा साक्ष्य अधिनियम (एविडेंस ऐक्ट) के दो सबसे महत्त्वपूर्ण खण्डोंको बरतरफ कर दिया गया है। भारतीय साक्ष्य अधिनियमके खण्ड ३२ और ३३ में अन्य बातोंके साथ-साथ यह व्यवस्था भी की गई है कि मृत गवाहके बयानको केवल तभी स्वीकार किया जा सकता है, जब वह बयान उस गवाहके आर्थिक हितोंके विरुद्ध हो और उसपर पहले ही जिरह हो चुकी हो। यदि मजिस्ट्रेटके सामने बयान देनेवाला कोई व्यक्ति मर जाये या लापता हो जाये, या गवाही देनेमें असमर्थ हो और अदालतको सन्तोष हो कि उक्त गवाहकी मृत्यु, उसका लापता हो जाना या उसकी असमर्थता अभियुक्तके हितमें है, तो रौलट अधिनियमके खण्ड १८ के अनुसार उक्त दोनों खण्डोंमें दी गई सुरक्षाएँ बिलकुल बरतरफ कर दी गई हैं। यह ऐसा खण्ड है जिसके बलपर न्यायका गला घोटा जा सकता है। किसी अदालतके लिए यह जान सकना अत्यन्त कठिन काम है कि किसी गवाहकी मृत्यु या उसके लापता होने या उसके

खण्ड २४ सरकारको "अपने आदेशोंपर अमल करवानेके लिए उचित तौरपर जरूरी लगनेवाले साधन" का प्रयोग करनेका अधिकार देता है। इस प्रकार, जरासे सन्देहपर कोई अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति भी अपनेको पूर्णतया पुलिसकी कृपापर निर्भर पायेगा। यदि यही निरोध है तो फिर यह रोगसे भी बुरा है, और यह एक ऐसा निरोध है जिससे वह रोग निरुद्ध होनेके बजाय उभरेगा ही जिसकी रोक-थाम करना इसका उद्देश्य है।

यह भाग २ स्थानीय सरकारपर रोक लगानेके उद्देश्यसे एक विशेष यन्त्रको जन्म देता है। इस यन्त्रको तहकीकात-मण्डल कहा गया है। इस मण्डलका काम होगा स्थानीय सरकार द्वारा खण्ड २२ के अन्तर्गत जारी किये गये आदेशोंपर पुनर्विचार करना, और इस उद्देश्यसे ऐसे आदेशोंकी, अनिवार्यतः गुप्त रूपसे जाँच करना।

> यह मण्डल प्रत्येक मामलेमें अपनी कार्यवाहीके किसी चरणमें सम्बन्धित व्यक्तिको अपने सामने उपस्थित होनेका एक उचित अवसर देगा, और वह व्यक्ति यदि इस तरह उपस्थित होगा तो उस व्यक्तिको इसके विरुद्ध लगाये गये अभियोगके बारेमें बतायेगा।

खण्ड २६, जिसमें से हमने ऊपरका उद्धरण लिया है, विशेषरूपसे इस बातकी व्यवस्था करता है कि जिस व्यक्तिके विरुद्ध इस प्रकार अभियोग लगाया गया हो, उसका प्रतिनिधित्व कोई वकील नहीं कर सकता, और "न स्थानीय सरकारको ही किसी वकीलसे अपना पक्ष प्रस्तुत करवानेका अधिकार होगा।" इस खण्डमें मण्डलके लिए यह निर्देश भी है कि वह "सम्बन्धित व्यक्तिको ऐसा कोई तथ्य न बताये जिसके बताये जानेसे सार्वजनिक सुरक्षा या किसी व्यक्तिकी सुरक्षाको खतरा हो सकता हो।" यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऐसे व्यक्तियोंके लिए सामान्यतः प्रयुक्त होनेवाला शब्द "अभियुक्त" इस भागमें प्रयुक्त नहीं किया गया है और फिर भी सम्बन्धित व्यक्तिको बाजाब्ता सुनवाईकी तमाम असुविधाओंसे गुजरना पड़ता है जबकि उसे ऐसी सुनवाईके समय दी जानेवाली कोई वास्तविक सुरक्षा उपलब्ध नहीं कराई गई है। तो यदि यह "सम्बन्धित व्यक्ति"

> तहकीकात-मण्डलसे किसी व्यक्तिको उपस्थित करने अथवा कोई दस्तावेज या वस्तु पेश करनेकी प्रार्थना करता है, तो वह उस व्यक्तिको उपस्थित करायेगा या उस दस्तावेज या वस्तुको पेश करायेगा, बशर्ते कि वह ऐसे किन्हीं कारणोंसे, जिन्हें वह लिखित रूपमें दर्ज कर देगा, यह सब करना गैरजरूरी न समझे।

गोया न्यायका इतना सब मजाक ही काफी नहीं हो, खण्ड २६ में आगे यह व्यवस्था भी की गई है कि "जाँच करते समय यह मण्डल साक्ष्य कानूनके नियमोंका पालन करनेको बाध्य नहीं होगा।" इसपर हम यह कहनेकी हिमाकत करेंगे कि उक्त उद्धृत खण्ड द्वारा जैसी स्वेच्छाचारपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी गई है, उसमें वह व्यक्ति भी निष्पक्ष न्याय नहीं कर सकता जो पूरी तरह न्यायकी परम्पराओंसे बँधा हुआ हो।

[illegible]

भाग ३ [illegible] जाते हैं:

> लेकिन यह [भाग ३] तभी प्रभावी होगा जब गवर्नर-जनरल सन्तुष्ट हो कि षड्यन्त्रकारी अपराध इस हदतक किये गये हैं या किये जा रहे हैं कि उनसे सार्वजनिक सुरक्षाको खतरा उत्पन्न हो गया है।

भाग ३ तब प्रभावी होता है जब षड्यन्त्रकारी अपराध इतने बड़े पैमानेपर किये जा रहे हों कि सार्वजनिक सुरक्षाके लिए ऐसे अपराधोंके पूर्ण-पूर्ण मुकदमे चलाना खतरनाक हो गया हो। भाग २ तब प्रभावी होता है जब ऐसे अपराध इतने बड़े पैमानेपर किये जा रहे हों कि सार्वजनिक सुरक्षाको खतरा उत्पन्न हो गया हो। इस प्रकार, इन दोनों स्थितियोंके अन्तर [illegible] बहुत बारीक है, और इसके बावजूद भाग २, खण्ड ३४, स्थानीय सरकारको अधिकार देता है कि वह किसी संदिग्ध व्यक्तिका मामला किसी खास अधिकारीके सामने ले जाये, और उस अधिकारीकी रायपर विचार करनेके बाद वह ऐसा कोई भी आदेश जारी कर दे जिसकी सत्ता उसे भाग २ में खण्ड २२ के अन्तर्गत दी गई है, और इससे भी आगे, वह किसी भी संदिग्ध व्यक्तिको बिना वारंट गिरफ्तार करने और जैसा उचित समझे वैसी स्थितिमें और उन प्रतिबन्धोंके साथ उसे नजरबन्द रखनेका आदेश दे दे, लेकिन यह सजायाफ्ता कैदियोंके लिए निश्चित किए गए ढंगकी नजरबन्दी न हो। वह अपने आदेशमें उल्लिखित स्थानकी तलाशीका निर्देश भी दे सकती है। फिर जब आदेश जारी हो जायें, उसके बाद अपनाया जानेवाला रास्ता वही होगा जैसा कि भाग २ के अन्तर्गत है, और इस प्रकार गिरफ्तार व्यक्तिको तहकीकात-मण्डल द्वारा तथाकथित जाँच-पड़ताल करनेके बाद बिना उचित मुकदमा या सुनवाईके दो वर्षतक नजरबन्द रखा जा सकता है। और जब यह ध्यान आता है कि यह अधिनियम इसलिए नहीं पास किया गया है कि यदा-कदा इक्के-दुक्के संदिग्ध व्यक्तिको नजरबन्द किया जाये, बल्कि इसकी रचना जानबूझकर इसलिए की गई है कि परेशानी और उत्तेजनाके मौकोंपर बहुत बड़ी संख्यामें लोगोंको बन्द किया जाये, तब हमारे लिए एक ऐसे शासनकी कल्पना करना कठिन नहीं होगा जिसमें कानून और व्यवस्थाके बजाय संगठित आतंक और अव्यवस्था या छद्मरूपमें फौजी कानूनका साम्राज्य हो।

भाग ४ उन व्यक्तियोंके ऊपर लागू होता है जिनसे भारत सुरक्षा अधिनियमके अन्तर्गत पहले ही निपटा जा चुका है और जिन्हें यह सहज ही भाग २ की व्यवस्थाओं-के अन्तर्गत रख देता है, और उनपर भी जो लोग बंगाल राजकीय बन्दी विनियमकी व्यवस्थाओंके अन्तर्गत कैदमें हैं और जिन्हें यह भाग ३ के अन्तर्गत ला देता है। यह भारत प्रवेश अध्यादेश (इनग्रेस इनटू इंडिया आर्डिनेंस)[1] से प्रभावित लोगोंको भी इस अध्यादेश की समाप्तिपर भाग २ की व्यवस्थाओंके अधीन ले जाता है।

अगर प्रभावित क्षेत्रके सम्बन्धमें भाग १, २ और ३ के अन्तर्गत जारी की गई अधिसूचनाएँ रद हो जायें तो भाग ५ में व्यवस्था है कि इन अधिसूचनाओंके रद किये जानेके बावजूद "इस अधिनियमके अधीन किया जानेवाला कोई भी मुकदमा, जांच-पड़ताल या आदेश जारी रखा जा सकता है या लागू किया जा सकता है और ऐसी किसी जाँच-पड़तालके पूरी हो जानेपर कोई भी आदेश, जो अन्यथा दिया जा सकता था, दिया जा सकता है और उसे इस तरह तामील किया जा सकता है, मानो ऐसी अधिसूचना कभी रद ही नहीं की गई।" यह, ब्रिटिश भारतमें जहाँ भाग ३ लागू नहीं होता वहां भी भाग ३ से प्रभावित लोगोंकी गिरफ्तारीकी सत्ता देता है और फिर इस तरह गिरफ्तार किये गये ऐसे व्यक्तिपर, जैसी भाग ३ में व्यवस्था है, उसी प्रकार कारंवाई की जायेगी, मानो जहांतक उस व्यक्तिका सम्बन्ध है उसपर सम्पूर्ण ब्रिटिश भारतमें भाग ३ लागू होता हो।

खण्ड ४२ इस बातकी व्यवस्था करता है कि [रौलट] अधिनियमके अन्तर्गत जारी किये गये आदेशोंपर किसी भी अदालतमें कोई आपत्ति नहीं उठाई जायेगी और "इस अधिनियमके अन्तर्गत शुद्ध मतिसे किये गये किसी भी कार्यके लिए किसी व्यक्तिके खिलाफ किसी प्रकारकी नालिश, मुकदमा या अदालती कारंवाई नहीं की जा सकेगी।" अन्तिम खण्ड व्यवस्था करता है कि अधिनियम द्वारा प्रदत्त सत्तासे स्थानीय सरकारको प्राप्त अन्य किन्हीं भी अधिकारोंमें कोई कमी नहीं होगी, बल्कि यह उन अधिकारोंमें सम्मिलित मानी जायेगी।

यह है वह अधिनियम जिसके कारण भारतमें पहली बार ऐसा भारी तूफान उठ खड़ा हुआ और [जिसके सम्बन्धमें] सरकारकी ओरसे ऐसा दावा किया जाता है कि इस विधेयकके बारेमें तथ्योंको गलत ढंगसे और बढ़ा-चढ़ाकर प्रचारित किया गया है। हमारा विश्वास है कि यह अधिनियम ऐसा है ही नहीं कि जनतामें इसके गलत प्रचारकी गुंजाइश हो। हाँ, सरकारकी ओरसे इसे अलबत्ता गलत रूपमें प्रस्तुत किया गया है। जैसे अतिरंजनकी शिकायत की गई है उसका एक विशेष नमूना यह मुहावरा है: "न अपील, न दलील, न वकील," जिसके अर्थ हैं कि न अपील हो सकती है, न दलीलकी गुंजाइश है और न वकील ही किया जा सकता है। हमारी रायमें यदि जनताकी ओरसे की गई विधेयककी सबसे खराब व्याख्या यही है तो इसमें विधेयककी बुराइयोंको कम करके ही बताया गया है, बढ़ाकर नहीं। हमारी

१. यह अध्यादेश १९१४ में पास किया गया था और इसका उद्देश्य भारतमें प्रवेश करनेवाले किसी भी व्यक्तिकी स्वतन्त्रता प्रतिबन्धित करना था।

[illegible] ... अनुचित काम किया है।

अध्याय ४

सत्याग्रह

इस रौलट अधिनियमको लेकर समूचे भारतके भीतर भारतीय नरमदलोंने और उग्र भारतीय अनुयायियोंने विरोधका ऐसा तूफान खड़ा कर दिया था जैसा पहले कभी नहीं देखा गया था और इसी अधिनियमका प्रतिरोध करनेके लिए श्री गांधीने अपना सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया।

सत्याग्रह क्या है और इसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है, लोगोंको इसका एक धुंधला-सा ही ज्ञान है। अतः हम सत्याग्रहके प्रणेताके ही शब्दोंमें एक विशेष लेखके रूपमें उसे नीचे दे रहे हैं, जो उन्होंने हमारे लिए तैयार किया है:

> पिछले तीस वर्षोंसे मैं सत्याग्रहका उपदेश देता और उसपर अमल करता रहा हूँ। सत्याग्रहको जिस रूपमें मैं आज समझता हूँ उसके अनुसार सत्याग्रहके सिद्धान्त क्रमिक रूपसे विकसित होते रहे हैं।
>
> 'सत्याग्रह' शब्द मैंने दक्षिण आफ्रिकामें उस शक्तिको अभिव्यक्त करनेके लिए गढ़ा था[2] जिसका प्रयोग वहांके भारतीयोंने पूरे आठ वर्षोंतक[3] किया था और इस शब्दको इसलिए गढ़ा गया था कि इसमें और उस समय इंग्लैंड और दक्षिण आफ्रिकामें अनाक्रामक प्रतिरोधके नामसे चलनेवाले आन्दोलनमें अन्तर व्यक्त किया जा सके।
>
> व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे इसका अर्थ है "सत्यपर आग्रह" अर्थात् सत्यबल। मैंने इसे प्रेमबल या आत्मबल भी कहा है। सत्याग्रहको व्यवहारमें लाते समय इसके आरम्भिक चरणोंमें मैंने यह बात जानी कि सत्यकी खोजमें अपने विरोधीके विरुद्ध किसी प्रकारकी हिंसाके लिए कोई गुंजाइश नहीं है, बल्कि विरोधीको

१. सन् १९१९ के भारत सरकार अधिनियम (गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट) में सन्निहित मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार।

२. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ २३ तथा १२६-२७।

३. १९०६ से १९१४ तक।

धीरज और सहानुभूतिके द्वारा गलत रास्तेसे विमुख करना चाहिए। कारण कि जो चीज एक व्यक्तिको सही लगती है वही दूसरे व्यक्तिको गलत लग सकती है। और धीरजका मतलब है स्वयं कष्ट सहना। इस प्रकार सत्याग्रह-सिद्धान्तने जो अर्थ ग्रहण किया वह है, अपने विरोधीको नहीं बल्कि स्वयंको कष्ट देकर सत्यको प्रतिष्ठित करना।

अनाक्रामक प्रतिरोध और सत्याग्रहमें वैसा ही अन्तर है जैसा दक्षिणी ध्रुव और उत्तरी ध्रुवमें। अनाक्रामक प्रतिरोधकी परिकल्पना कमजोर लोगोंके अस्त्रके रूपमें की गई है, और इसमें अपने उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए शरीरबल या हिंसा वर्जित नहीं है। इसके विपरीत सत्याग्रहकी कल्पना सशक्ततम व्यक्तिके अस्त्रके रूपमें की गई है और इसमें किसी भी प्रकारकी हिंसाके लिए कोई स्थान नहीं है।

जब डैनियलने मीडों और पारसियोंके ऐसे कानूनोंकी अवज्ञा की जो उसकी अन्तरात्माकी आवाजके खिलाफ थे, और इस अवज्ञाके परिणामस्वरूप मिले दण्डको सर झुकाकर सह लिया, उस समय वह विशुद्धतम ढंगका सत्याग्रह कर रहा था। सुकरात जिस चीजको सही मानता था, एथेंसके नौजवानोंको उसकी सीख देनेसे वह कभी बाज नहीं आया, और इसके लिए उसे जो सजा दी गई उसे उसने बहादुरीके साथ झेल लिया। प्रह्लादने अपने पिताके आदेशोंको नहीं माना, क्योंकि वह उन्हें अपनी आत्माके विरुद्ध मानता था। उसने बिना शिकायत किये और खुशी-खुशी अपने पिता द्वारा दी गई यन्त्रणाएँ सह लीं। कहते हैं, मीराबाईने भी अपनी आत्माकी आवाजपर अपने पतिको नाराज कर दिया था, उनसे अलग रहनेमें ही सन्तोष माना और पतिकी इच्छाके आगे झुकनेके लिए उसे जो भी कष्ट दिये गये बताये जाते हैं, उन्हें निर्विकार मनसे शान्तिपूर्वक सहन किया। प्रह्लाद और मीराबाई, इन दोनोंने ही सत्याग्रहका पालन किया। यह ध्यान देनेकी बात है कि न तो डैनियलकी और न सुकरातकी, न प्रह्लादकी और न मीराबाईकी अपने उत्पीड़कोंके प्रति कोई दुर्भावना रही थी। आज डैनियल और सुकरात अपने-अपने राज्यके आदर्श नागरिक माने जाते हैं, तथा प्रह्लादको आदर्श पुत्र और मीराको आदर्श पत्नी माना जाता है।

सत्याग्रहका यह सिद्धान्त नया नहीं है; यह तो महज घरेलू नियमोंको राजनीतिक जीवनपर लागू करना है। पारिवारिक झगड़े और मतभेद आमतौर पर प्रेमके नियमके अनुसार निपटा दिये जाते हैं। परिवारके पीड़ित सदस्यके मनमें अन्य सदस्योंके प्रति इतना आदर होता है कि जो लोग उससे भिन्न मत रखते हैं, उनके प्रति बिना क्रोध किये या बदलेके भावसे बिना कुछ किये, वह अपने सिद्धान्तोंके लिए पीड़ा सहन कर लेता है। और चूँकि क्रोधका शमन और स्वयं कष्ट-सहनकी विधि अत्यन्त कठिन है, अतः वह छोटी-छोटी बातोंको सिद्धान्तका जामा नहीं पहनाता बल्कि सभी मामूली बातोंपर खुशीके साथ

आवश्यकताके अन्य संभवतः समाहार हो जाता है और इस प्रकार दूसरोंकी शान्तिमें बाधा डाले बिना स्वयं भी आन्तरिक शान्ति पानेको प्रेरित करता है। इस प्रकार, वह चाहे परिणाम भले या किसी सिद्धान्तको स्वीकार कर ले, उसकी व्यावहारिक परिणतिके बारेमें मतभेद बहुत कम ही होता है। ऐसा सिद्धान्त सम्पूर्ण मानव समाजमें सहयोगकी भावना पर आधारित सम्बन्धोंका निर्माण करता है।

मैं अनुभव करता हूँ कि जबतक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें, दूसरे शब्दोंमें राज्य और राजनीतिक जीवनमें, इस सामाजिक नियमको निश्चित रूपसे मान्य और स्वीकार नहीं किया जाता तबतक [विभिन्न राष्ट्र] सम्पर्कमें एक नहीं हो सकेंगे और न उनके बीच परिस्थितियाँ सम्पूर्ण मानवजातिके लिए समान रूपसे हितकारी हो ही सकती हैं। जिस हदतक कोई राष्ट्र इस [सामाजिक] नियमका पालन करता है, उसी हदतक उसे सभ्य कहा जा सकता है।

प्रेम केवल नियम और कुछ नहीं, सत्यका ही एक नियम है। बिना सत्यके प्रेम नहीं हो सकता। बिना सत्यका प्रेम स्वार्थ हो सकता है, उदाहरणार्थ दूसरे राष्ट्रोंको नुकसान पहुँचाकर अपने राष्ट्रसे प्यार करना; या फिर वह मोह है, जैसा कि किसी युवकका किसी युवतीके प्रति होता है, या फिर ऐसा प्रेम विवेकशून्य और अन्धा होता है, जैसा कि अज्ञानी माँ-बापका अपनी सन्तानके लिए होता है। सच्चा प्रेम शरीरसे ऊपर है और उसमें पक्षपातकी कोई गुंजाइश नहीं होती। इसीलिए सत्याग्रहकी एक सिक्केसे तुलना की गई है जिसके सीधी ओर प्रेम लिखा है और उल्टी ओर सत्य। यह सिक्का सभी जगह चलता है और इसकी कीमत आँकी नहीं जा सकती।

सत्याग्रह आत्मनिर्भर है। इसका प्रयोग करनेसे पहले विरोधीकी सहमति लेना जरूरी नहीं है। सच तो यह है कि प्रतिपक्षी जब प्रतिरोध करता है उस समय यह सबसे अधिक निखरता है। इसीलिए यह दुर्दमनीय है। सत्याग्रही जानता ही नहीं कि पराजय क्या चीज है, क्योंकि वह सत्यके लिए संघर्ष करते हुए कभी थकता नहीं। इस संघर्षमें मृत्यु मुक्ति-रूप है और जेलखाना स्वतन्त्रताके द्वार जैसा।

इसे आत्मबल भी कहा जाता है, क्योंकि यदि सत्याग्रही यह विश्वास लेकर चलता हो कि मृत्युका मतलब संघर्षका अन्त नहीं, बल्कि उसकी चरम परिणति है, तो उसके लिए अपने अन्दर आत्माके अस्तित्वको स्वीकार करना आवश्यक है। शरीर तो आत्माभिव्यक्तिका एक साधनमात्र है; और सत्याग्रही जिस सत्यको लेकर चलता है, विपक्षी द्वारा उस सत्यके दर्शन कर सकनेमें यदि यह शरीर आड़े आये तो वह सहर्ष उसका त्याग कर देता है। वह अपने शरीरका परित्याग इस निश्चित विश्वासके साथ करता है कि यदि किसी बातसे उसके विरोधीके विचार बदल सकते हैं तो सहर्ष अपने शरीरका बलिदान करनेसे तो ऐसा अवश्य ही होगा। और चूँकि वह जानता है कि शरीरका नाश हो

जानेके वाद भी आत्मा अक्षुण्ण वनी रहती है, इसीलिए वह वर्तमान शरीरके रहते ही सत्यकी विजय होते देखनेके लिए अधीर नहीं होता। सच तो यह है कि सत्याग्रही उस समय जिस सत्यको अभिव्यक्त करता है, उस सत्यको विपक्षी भी देखें, इसका प्रयत्न करते हुए मर जानेकी क्षमतामें ही विजय निहित है।

और चूँकि सत्याग्रही विपक्षीको कभी पीड़ा नहीं पहुँचाता, और सदैव विनय-भरे तर्क द्वारा उसकी विवेकबुद्धिको, या आत्मत्याग द्वारा उसके हृदयको छूनेकी कोशिश करता है, इसलिए सत्याग्रह दोहरा कल्याणप्रद है — एक ओर तो जो व्यक्ति सत्याग्रह करता है, यह उसका कल्याण करता है और दूसरी ओर यह जिसके विरुद्ध किया जाता है, उसका भी कल्याण करता है।

तथापि यह आपत्ति की जाती रही है कि सत्याग्रहकी जो हमारी कल्पना है वैसे सत्याग्रहका पालन कुछ गिने-चुने लोग ही कर सकते हैं। मेरा अनुभव इससे भिन्न वात सिद्ध करता है। एक वार इसके दो सरल सिद्धान्त — सत्य-निष्ठा और स्वयं कष्ट सहकर सत्यपर आग्रह — समझ लिये जायें, फिर तो उसका पालन कोई भी कर सकता है। इसपर अमल कर सकना उतना ही कठिन या आसान है जितना किसी भी अन्य सद्‌गुणपर। सत्याग्रहपर अमल करनेके लिए उसका पूरा दर्शन समझना उसी तरह अनावश्यक है, जैसे कि मद्य-त्याग करनेके लिए उसका दर्शन जानना जरूरी नहीं है।

आखिरकार, जिसको सत्य जैसा दिखे उस सत्यपर आग्रह करनेकी आवश्यकतासे तो कोई इनकार नहीं ही करता। और यह समझना अत्यन्त सरल है कि पशुवलसे अपने विरोधीको भी उस सत्यको स्वीकार करनेके लिए विवश करना भद्दी वात है। दूसरी ओर यदि तर्कसे असत्यका अहसास नहीं करवाया जा सकता इसलिए उसे स्वीकार कर लिया जाए — यह तो और भी लज्जाजनक है। उस हालतमें एकमात्र सच्चा और सम्मानजनक रास्ता यही है कि जान चली जाये तो भी उसे स्वीकार न किया जाये। यदि संसारसे कभी गलतियोंको विलकुल दूर किया जा सकता है तो केवल तभी दूर किया जा सकता है। जो गलती या भूल अन्तःकरणको चोट पहुँचाती हो उसके साथ कोई समझौता नहीं हो सकता।

किन्तु राजनीतिक क्षेत्रमें जनताकी ओरसे यह संघर्ष चलाये जानेका मतलव है मुख्यतः अन्यायपूर्ण कानून-रूपी गलतियोंका विरोध। जव याचिकाएँ आदि देकर आप कानून वनानेवालेको उसकी गलतीका अनुभव न करा सकें, तव यदि आप इस अन्यायपूर्ण कानूनको स्वीकार न करना चाहते हों तो आपके सामने एक ही रास्ता रह जाता है और वह यह कि आप स्वयं कष्ट-सहन करके, अर्थात् कानूनकी अवज्ञाका दण्ड आगे वढ़कर स्वीकार करके, उसे उस कानूनको वापस लेनेके लिए मजवूर कर दें। इसीलिए जनताको सत्याग्रह ज्यादातर सविनय अवज्ञा या सविनय प्रतिरोधके रूपमें दिखता है। कानूनकी यह अवज्ञा विनयपूर्ण इसलिए है कि वह अपराधमूलक नहीं है।

[illegible] है, और [illegible] है। [illegible] कानूनोंको [illegible] करके, जिन्हें भंग करना नैतिक अपराध नहीं है, [illegible] मेरे मतमें सत्याग्रहका व्यावहारिक पक्ष और उसका [illegible] परिमाणमें है और इसका सिद्धान्त इतना सरल है कि इसकी शिक्षा बच्चोंको भी दी जा सकती है। मैंने हजारों स्त्री, पुरुष और बच्चोंको, जिन्हें आमतौरपर गिरमिटिया भारतीय कहा जाता है, सत्याग्रहकी शिक्षा दी और उसके परिणाम बहुत ही अच्छे निकले।

जब रौलट विधेयक प्रकाशित किये गये थे, उस समय मैंने अनुभव किया कि वे मानव-स्वातन्त्र्यपर इतने अधिक बन्धन लगाते हैं कि उनका ज्यादासे-ज्यादा विरोध किया जाना चाहिए। मैंने यह भी देखा कि भारतीयोंमें विधेयकोंके प्रति विरोध-भावना बढ़ रही है। वैधानिक परम्परा और पूर्व दृष्टान्तोंसे निर्देशित होनेवाली भारत सरकार-जैसी किसी सरकारकी तो बात ही क्या, मेरा तो मत है कि किसी भी निरंकुश सरकार हो, उसे ऐसे कानून बनानेका अधिकार नहीं है जो देशकी सम्पूर्ण जनताके विरुद्ध पड़ते हों। मैंने यह भी अनुभव किया कि इस बातको लेकर जो आन्दोलन फूट पड़नेवाला है, उसे यदि निष्फल नहीं होना है, और हिंसात्मक स्वरूप ग्रहण करनेसे बचाना है, तो उसे एक सुनिश्चित दिशा देना जरूरी होगा।

इसलिए मैंने देशके सामने सत्याग्रहको स्वीकार करनेका प्रस्ताव रखा, और ऐसा करते समय मैंने उसके सविनय प्रतिरोधके पहलूकी ओर विशेष ध्यान दिलाया। और चूंकि यह एक बिलकुल अन्तर्मुखी और शुद्धिकारक आन्दोलन है, इसलिए मैंने सुझाव दिया कि ६ अप्रैलको एक दिनका उपवास रखा जाये, प्रार्थना की जाये और सब काम-काज बन्द रखा जाये। भारतके सभी भागोंमें, यहांतक कि छोटे-छोटे गांवोंमें भी, इस सुझावपर शानदार तरीकेसे अमल किया गया, हालांकि न तो इसका कोई संगठन ही किया गया था और न पहलेसे कोई बड़ी तैयारी ही की गई थी। इसका विचार जैसे ही मेरे मनमें आया, मैंने उसे जनताके सामने रख दिया था। ६ अप्रैल, [१९१९] को जनताकी ओरसे कोई हिंसा नहीं हुई और न पुलिसके साथ कोई उल्लेखनीय संघर्ष ही हुआ।

हड़ताल बिलकुल ऐच्छिक और स्वतःस्फूर्त थी। मैंने गत २४ मार्चको मद्रासमें निम्नलिखित सन्देश प्रकाशित करनेके अलावा उक्त विचारको प्रचारित करनेके लिए कोई कार्रवाई नहीं की :

जैसा कि मैंने कई सभाओंमें बतानेका प्रयास किया है, सत्याग्रह तत्त्वतः एक धार्मिक आन्दोलन है। यह शुद्धिकरण और प्रायश्चित्तकी एक प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य है स्वयं कष्ट सहकर सुधार करवाना या शिकायतें दूर करवाना; इसलिए मैं सुझाव देना चाहता हूँ कि १९१९के विधेयक संख्या २को वाइसराय-की स्वीकृति प्रकाशित होनेके बाद दूसरे रविवार (अर्थात् ६ अप्रैल)का दिन प्रतिष्ठा-भंग और प्रार्थनाके रूपमें मनाया जाये। चूँकि इस दिवसके अनुरूप ही एक कारगर सार्वजनिक प्रदर्शन भी होना चाहिए, अतः मैं निम्नलिखित सलाह देना चाहता हूँ :

(१) जिनके सामने धार्मिक या स्वास्थ्य-सम्बन्धी व्यवधान न हों, ऐसे सभी वयस्क स्त्री-पुरुष पिछली रातके भोजनके बादसे आरम्भ करके २४ घंटेका उपवास रखें। यह उपवास किसी भी रूपमें भूख-हड़ताल नहीं माना जाना चाहिए, और न यही कि इसका उद्देश्य सरकारपर कोई दबाव डालना है। इसे तो सत्याग्रहियोंके लिए एक आवश्यक आत्मानुशासन मानना चाहिए जो उन्हें उनकी शपथमें उल्लिखित सविनय अवज्ञा करनेके योग्य बनायेगा। अन्य लोगोंके लिए यह उपवास उनकी चोट खाई हुई भावनाकी तीव्रताका एक छोटा-सा प्रतीक माना जाये।

(२) सार्वजनिक हितके कामोंको छोड़कर शेष सारे काम उस दिन स्थगित रखे जायें। बाजार और व्यापारिक संस्थान बन्द रखे जायें। जिन कर्म-चारियोंको रविवारको भी काम करना पड़ता है, वे अपने मालिकोंसे पहलेसे अनुमति लेनेके बाद ही काम स्थगित करें।

मैं बिना हिचक इन दो सुझावोंको सरकारी नौकरोंसे भी अपनानेकी सिफा-रिश करता हूँ। कारण, यद्यपि यह निःसन्देह बिलकुल ठीक है कि वे राजनीतिक चर्चा और सभाओंमें भाग न लें, लेकिन मेरी रायमें उन्हें यह असन्दिग्ध अधि-कार भी प्राप्त है कि जब प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हों तो वे, जैसा मैंने यहाँ बताया है, वैसे सर्वथा सीमित तरीकेसे अपनी भावनाएँ व्यक्त करें।

(३) उस दिन भारतके सभी भागोंमें, यहाँतक कि गाँवोंमें भी, सार्व-जनिक सभाएँ की जायें, जिनमें दोनों विधेयकोंको वापस लेनेकी प्रार्थना करते हुए प्रस्ताव पास किये जायें।

यदि मेरी सलाह स्वीकार करने योग्य समझी जाये, तो संगठन करनेका आवश्यक काम हाथमें लेनेकी पहली जिम्मेदारी विभिन्न सत्याग्रह संघोंपर होगी, लेकिन मैं आशा करता हूँ कि अन्य सभी संघ और संगठन भी इस प्रदर्शनको सफल बनानेमें हाथ बँटायेंगे।

सत्याग्रहके सिद्धान्तका जैसा विवेचन श्री गांधीने किया है, उसके अनुसार एक नैतिक [illegible] शस्त्रास्त्रके रूपमें यह सुन्दर और अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होता है। किन्तु इसे लोगोंके [illegible] व्यावहारिक रूप दे सकना उतना आसान नहीं है जितना कि पहली नजरमें लगता है। ऐसे अनुशासनका पालन करनेके लिए धैर्य और आत्म-नियन्त्रणकी [illegible] मात्रामें होना बहुत जरूरी है। और ये गुण ऐसे हैं जो साधारणतः इस प्रकार सभी [illegible] जब जनतामें [illegible] होती है। यदि सत्याग्रहको एक [illegible] सिद्धान्तके रूपमें बहुत सारे लोगोंके लिए इसलिए [illegible] भी यह जरूरी है कि सत्याग्रहका सिद्धान्त ऐसा हो [illegible] और इसीलिए [illegible] भी [illegible]। लेकिन जोश [illegible] जब किसी आन्दोलनमें शामिल होता है तब आत्मनियन्त्रण करनेकी अपेक्षा हिंसा करनेके लिए ही ज्यादा तत्पर होता है। [illegible] यह है कि सार्वजनिक क्षेत्रोंमें लोग ऐसा धैर्य अक्सर खो देते हैं। श्री गांधी भी [illegible] कि वे ऐसा ही धैर्य-भाव राजनीतिके क्षेत्रमें भी [illegible]।

बहरहाल, इस जगह सत्याग्रहकी व्यावहारिकतापर और अधिक विचार करनेकी जरूरत नहीं है। इतना स्पष्ट है कि इस प्रकारके हानिरहित सिद्धान्तके प्रचारसे सरकारका केवल भला ही हो सकता है। और सैकड़ों आदमियोंसे हमने जो पूछताछ की है, उसके आधारपर हम पूरे विश्वासके साथ यह मानते हैं कि यदि आन्दोलनमें भाग लेनेवाले लोगोंमें सत्याग्रहकी भावना व्याप्त न होती तो परिणाम अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा भयंकर होते। भारतके अन्य भागोंमें जनताने जैसा अनुकरणीय आत्म-नियन्त्रण दिखाया वह यह नहीं सिद्ध करता कि स्वभावमें वे पंजाबियोंसे बहुत अधिक भिन्न हैं, बल्कि यह सिद्ध करता है कि सत्याग्रहका संयतकारी प्रभाव इतना प्रबल था कि वह सरकार द्वारा बारबार रौलट अधिनियम थोपे जानेके विरुद्ध जनताके कोपको नियन्त्रणमें रख सका। यदि राज्यके कानूनोंका उल्लंघन करते समय जनता संयम और अनुशासन छोड़े बिना अपने रोष और विरोधको अभिव्यक्त कर पाई होती तो बहुत मुमकिन है कि सरकार बहुत पहले ही जनताकी इच्छाके सामने झुक जाती।

किन्तु लोगोंमें जो सत्याग्रहकी भावना थी पंजाब सरकारने उसकी इतनी कड़ी परख की कि उसके लिए सत्याग्रहका संयतकारी प्रभाव भी अपर्याप्त सिद्ध हुआ। यदि सर माइकेल ओ'डायरने सत्याग्रहके संयतकारी प्रभावको समझा होता और जनताके साथ सहयोग किया होता, जैसा कि अन्य प्रान्तोंकी सरकारोंने कमोबेश किया, तो पंजाबको जो भयंकर कष्ट सहने पड़े वे न सहने पड़ते और गत कुछ महीनोंका इतिहास कुछ और ही होता।

हम यह मानते हैं कि सत्याग्रहका सही आचरण किया जाये तो जनतापर पशु-बलसे शासन कर सकना असम्भव हो जायेगा, और इसीलिए, जिन कानूनोंको जनता नापसन्द करे, उन कानूनोंको कारगर ढंगसे अमलमें लाना अगर बिलकुल असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायेगा। लेकिन एक ऐसे राज्यमें, जिसके संविधानके अनुसार सरकारके लिए एक निर्धारित ढंगसे शासितोंकी स्वीकृति प्राप्त करना जरूरी हो, यह बात शिकायतका कोई आधार नहीं हो सकती।

अव हमारे लिए यह देखना ही वाकी रह जाता है कि पंजावमें हत्या, आगजनी और लूटपाटकी जो घटनाएँ हुईं उनके लिए सत्याग्रह जिम्मेदार था या नहीं। जैसा कि हम दिखा चुके हैं, सत्याग्रहके प्रचारका परिणाम किसी भी रूपमें हिंसात्मक नहीं हो सकता था, क्योंकि सत्याग्रह तो स्वयं ही हिंसाका विरोधी है। लेकिन सत्याग्रहके सविनय अवज्ञा-वाले रूपके प्रचारको आसानीसे गलत समझा या समझाया जा सकता है, और इसलिए सावधानी वरतते हुए ही ऐसा करना चाहिए। सविनय प्रतिरोधका समर्थन करते समय अधिकसे-अधिक सावधानी रखनेकी आवश्यकताको हम स्वीकार करते हैं। कानूनके लिए अनादरकी भावना पैदा करना आसान है, किन्तु राज्यके कानूनोंकी सविनय अर्थात् अहिंसात्मक अवज्ञा करके कष्ट-सहन करनेकी भावना उत्पन्न करना उतना आसान नहीं है। इसलिए सविनय प्रतिरोधका प्रचार वहीं किया जा सकता है जहाँ आत्म-पीड़नके लिए पहले ही से जमीन तैयार कर ली गई हो। हमने देखा कि श्री गांधीने विना पर्याप्त तैयारीके वड़े पैमानेपर सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करनेकी अपनी गलतीको ईमानदारीके हाथ स्वीकार किया, जो हमारी रायमें विलकुल ठीक भी था, और आन्दोलनको तत्काल स्थगित कर दिया।[1]

वहरहाल पंजावमें सत्याग्रहके सविनय प्रतिरोधवाले हिस्सेको न तो सही ढंगसे समझा गया और न हृदयंगम किया गया, और उसपर अमल तो और भी नहीं किया गया। यों हड़तालका सविनय प्रतिरोधसे कोई सम्वन्ध नहीं है। हड़ताल अगर स्वेच्छासे की गई हो, हिंसासे पूरी तरह मुक्त हो, और उसका उद्देश्य गलती करनेवालेके विरुद्ध दुर्भाव व्यक्त करना नहीं वल्कि उसके गलत कामोंसे विरोध प्रकट करना हो तो ऐसी हड़ताल सत्याग्रहका एक अंग हो सकती है। फिर, भारतमें हड़ताल वहुत पुराना अस्त्र है। यहाँ इसका प्रयोग लोग ठीक वैसी ही परिस्थितियोंमें करते आये हैं जिन परि-स्थितियोंमें इसका प्रयोग अप्रैल माहमें पंजावमें किया गया था। इसलिए भीड़ने जो भी ज्यादतियाँ कीं, उनसे न तो सत्याग्रहका कोई सम्वन्ध था और न हड़तालका। जिन कारणोंसे वैसी घटनाएँ हुईं उनपर आगेके पृष्ठोंमें विचार किया जायगा।

अध्याय ५

मार्शल लॉ

भाग १ : सामान्य

शिक्षित भारतीयोंके प्रति सर माइकेल ओ'डायरका व्यवहार कैसा था और फौजी भरतीके सिलसिलेमें उनके तरीके कैसे थे, इस दृष्टिसे हम उनके प्रशासनपर विचार कर चुके हैं। हमने यह दिखानेकी कोशिश की है कि किस प्रकार सर माइकेल ओ'डायरने सभी वर्गोंके पंजावियोंको अपनेसे विमुख कर दिया था। हमने रौलट अधिनियम और उसके परिणामोंके वारेमें भी काफी विस्तारसे वताया है। इस अधिनियमको रद करानेके लिए भारत-भरमें जो व्यापक आन्दोलन हुआ, उसका स्वरूप कैसा था, यह भी हमने

१. जुलाई १९१९ में

दिखाया है। इसमें सत्याग्रहके सन्देशके और उसकी सत्याग्रहके सिद्धान्तोंका विवेचन प्रस्तुत किया है, और इसकी समझमें इसमें यह बात बहुत स्पष्ट रूपसे दिखा दी है कि ६ अप्रैलको मुस्लिम उत्सव वगैरहमें दोनों धर्मावलम्बियोंमें ... किसी प्रकारकी कोई हिंसा नहीं उत्पन्न हुई, और सत्याग्रहकी ऐसी कल्पना उसके प्रणेताने की है गया ... लिए इसमें उसको प्रस्तुत किया है, उस रूपमें सत्याग्रह हिंसासे पूर्णतः मुक्त है। दूसरी बात जो यह है कि उसके प्रचार और प्रसार द्वारा जनताको राजद्रोहसे शान्ति और आत्मसंयमकी भावनाके लिए अधिक अनुकूल स्थिति उत्पन्न होगी। इससे यह भी दिखाया है कि रौलट अधिनियमके विरुद्ध दोनोंमें सन्देश और सत्याग्रह दोनोंने जनताको अपनी शिकायत प्रकट करनेमें सहायता दी थी और उसमें स्फूर्तिका संचार किया था। सर माइकेल ओ'डायर जिस व्यवस्थाके प्रतीक थे ऐसी सरकारके प्रति पंजाबकी जनताके मनमें कोई प्रेमभाव नहीं था। वह उससे पूर्ण तरह असन्तुष्ट थी। यह असन्तोष भरतीके कारण और गहरा हो गया था। लोगोंको आशा थी कि युद्धके बाद हर तरहकी अच्छा समय आयेगा। लेकिन इसके विपरीत युद्धका अन्त होनेके साथ उनकी आर्थिक संकटपूर्ण स्थिति और स्पष्ट होकर सामने आ गई है। इस प्रकार जो असन्तोष उत्पन्न हुआ, वह खिलाफत आन्दोलनके कारण और जोर पकड़ गया। मुसलमानोंको ब्रिटिश सरकारके इरादोंमें शक हो गया, और दरअसल ऐसे शकके लिए वाजिब कारण मौजूद थे।

यह अप्रैलकी घटनाओंको ठीकसे समझनेके लिए ऊपर दिये गये तथ्योंको समझना जरूरी है। इन तथ्योंसे इनकार करना सम्भव नहीं है।

६ अप्रैलको पंजाबमें पूर्ण हड़ताल रही। पंजाबमें, और पंजाब ही क्या, सारे भारतमें यह एक अभूतपूर्व दृश्य था। उस दिन नेता और जनता एक व्यक्तिकी भांति मिलकर काम करते प्रतीत होते थे। हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पूरा भ्रातृ-भाव था। सारे देशमें रौलट अधिनियमका विरोध करते हुए प्रस्ताव पास किये गये और उसे रद करनेकी मांग की गई। ६ अप्रैलका प्रदर्शन जनताकी इच्छाकी शान्तिपूर्ण अभिव्यक्ति था।

किन्तु सर माइकेल ओ'डायरके लिए इसे सहन करना मुश्किल हो गया। उन्हें हड़ताल और हिन्दू-मुस्लिम एकता, दोनों ही चीजोंमें ब्रिटिश शासनके लिए खतरेकी गंध आई। उनके लिए यह एक ब्रिटेन-विरोधी गठबंधन था, जिसे किसी भी कीमतपर तोड़ना बहुत जरूरी था। यहांतक कि लाहौरके नेताओंके विरुद्ध चलाये गये मुकदमेमें भी उनके शान्तिपूर्ण कार्योंको बढ़ा-चढ़ाकर "षड्यंत्र और युद्ध छेड़ना" बताया गया। विशेष न्यायाधिकरण संयोजक मण्डल (कनवीनिंग अथॉरिटी) ने लाहौरके मामलेका जो संक्षिप्त विवरण तैयार किया उसमें कहा गया है:

> वह कानून जिसे लोग आमतौरपर रौलट अधिनियमके नामसे जानते हैं, केन्द्रीय विधान परिषद् द्वारा १८ मार्च, १९१९को पास किया गया। इसपर पंजाबके बाहरके कुछ लोगोंने, जिनके साथ अभियुक्तोंका सम्बन्ध था, एक आम षड्यन्त्र रचा जिसका मंशा उग्र सभाओंका आयोजन करना, और सरकारके विरुद्ध जन-भावनाको भड़कानेके इरादेसे आम हड़ताल करवाना और इस प्रकार

सरकारको इतना आतंकित कर देनेका था कि वह उस कानूनके विरुद्ध निपेधाज्ञा जारी करानेकी कोशिश करे। इसी योजनाके अनुसार सारे भारतमें, और विशेष रूपसे पंजावमें, उक्त पड्यन्त्रकारियोंने, जिनमें अभियुक्त भी शामिल थे, ३० मार्चके दिन आम हड़तालकी घोपणा की, जिसके पीछे उनका मंशा अव्यवस्था उत्पन्न करना, देशके आर्थिक जीवनको ठप करना और सरकारके प्रति द्रोह और घृणाके भाव पैदा करना था।

इसके वाद कई सभाओंका एक मोटा व्यौरा प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें इस विवरणमें, "उपद्रवकारी मजमा" कहा गया है, और फिर दो अनुच्छेद हैं जिन्हें इस सरकारी प्रारूपकारकी ही भापामें उद्धृत करना हमें जरूरी लगता है:

> ९ अप्रैलको, सरकारके विरुद्ध द्रोह और शत्रुभाव भड़कानेके आम पड्यन्त्रके अनुसार, जिस समय रामनवमीका जुलूस निकल रहा था, उस अवसरपर अभियुक्त रामभजदत्त, गोकुलचन्द, धर्मदास सूरी और दूनीचन्द तथा अन्य लोगोंने विधिवत् स्थापित सरकारके विरुद्ध हिन्दू और मुसलमानोंके भाईचारेको वढ़ावा दिया। १० अप्रैलको पंजाव सरकारने शान्ति और व्यवस्था कायम रखनेकी दृष्टिसे गांधी नामक एक पड्यन्त्रकारीको प्रान्तमें प्रवेश करनेसे रोक दिया और उसी दिन दो अन्य पड्यन्त्रकारियोंको, जिनके नाम सत्यपाल और किचलू हैं, अमृतसरसे निष्कासित करनेकी आज्ञा दी। शान्ति और व्यवस्था वनाये रखनेकी दृष्टिसे उठाये गये सरकारके इन एहतियाती कदमोंको पड्यन्त्रकारियोंने सम्राट्के विरुद्ध युद्ध छेड़नेका एक सर वना लिया है।

हम इन अनुच्छेदोंको इसलिए उद्धृत कर रहे हैं कि जिससे हमने जो वातें कहीं हैं वे स्पष्ट हो जायें; अर्थात् यह कि हड़ताल, हड़तालसे पहले और उसके वाद होनेवाली सभाओं और हिन्दू-मुस्लिम भाईचारेको सरकारके लिए खतरा समझा गया। ऐसा भी नहीं है कि हड़ताल और हिन्दू-मुस्लिम भाईचारेके वारेमें ऐसी धारणा वादमें वनी। सर माइकेल ओ'डायर ७ अप्रैलको विलकुल स्पष्ट शब्दोंमें अपने मनकी वात प्रकट कर चुके थे। उस दिनके उनके भापणके अंश हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं। उन्होंने जालन्धरके वैरिस्टर माननीय रायजादा भगतरामसे भेंट की थी। उनसे भी सर माइकेलने हड़तालके विरुद्ध अपनी तीव्र भावना व्यक्त की थी, जैसा कि माननीय भगतराम द्वारा दिये गये वयानसे देखा जा सकता है। इस वयानमें रायजादा भगतराम कहते हैं:

> (पंजाव विधान परिपद्की) वैठकके वाद मैं ड्राइंग रूममें लेफ्टिनेंट गवर्नरसे मिला। उन्होंने मुझसे पूछा कि जालन्धरमें कैसी हड़ताल हुई। मैंने उत्तर दिया कि हड़ताल पूरी हुई और किसी प्रकारकी गड़वड़ी नहीं हुई। सर माइकेलने मुझसे पूछा कि मेरी रायमें इसका कारण क्या था। मैंने उत्तर दिया, "मेरी समझमें इसका कारण श्री गांधीका आत्मवल था।" इसपर सर माइकेलने अपना मुक्का हिलाया और कहा, "रायजादा साहव याद रखिए, गांधीके आत्मवलसे भी वड़ी एक ताकत है।" (वयान ६५०)

[illegible] इन्हीं नेताओंमें पंजाबका राज-नीतिक [illegible] के लिए [illegible] थे। [illegible] इसका [illegible] जिस प्रकार इनमें [illegible] हम आगे देखेंगे।

मार्शल लॉ

भाग २ : अमृतसर

अमृतसरको हम सबसे पहले लेंगे, क्योंकि [illegible] प्रतिक्रिया नहीं [illegible] हुई। महत्त्वकी दृष्टिसे अमृतसरका लाहौरके बाद दूसरा नम्बर है। लेकिन कई दृष्टियोंसे यह लाहौरसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इसकी आबादी १,६०,००० है। यहाँ स्वर्ण-मन्दिर है जो सिखोंका सबसे बड़ा पूजा-स्थल है। पंजाबका सबसे बड़ा व्यापार-केन्द्र होने और स्वर्ण-मन्दिरके कारण यहाँ पंजाबके सभी भागोंसे, और बाहरसे भी यात्री और पर्यटक आते रहते हैं।

अप्रैलके मध्यमें हिन्दुओंका नववर्ष आरम्भ होता है। उस दिन अमृतसरमें बहुत बड़ा पशु मेला भी लगता है। नववर्ष दिवसको बैसाखी कहते हैं, और यह दिवस धार्मिक और व्यापारिक दोनों ही महत्त्व रखता है। प्रतिवर्ष इस दिन यहाँ आसपासके और दूर-दूरके लोग बहुत बड़ी संख्यामें आते हैं। बैसाखीसे पहले रामनवमीका उत्सव मनाया जाता है।

अमृतसरमें ६ अप्रैलका दिन पूरी तरह मनाया गया; मुसलमानों, सिखों और अन्य सभी हिन्दुओंने उस दिन पूरी हड़ताल रखी। यह हड़ताल स्वतःस्फूर्त और ऐच्छिक थी। भीड़के व्यवहारमें आपत्ति करने लायक कोई चीज नहीं दिखाई दी। और ऐसी कोई घटना नहीं हुई, जिसपर खेद प्रकट किया जाता या जिसकी खास खबर दी जाती।

९ अप्रैलको रामनवमी थी। यह मुख्यतः हिन्दुओंका धार्मिक त्योहार है। लेकिन इस बार इस अवसरका उपयोग हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए किया गया। उत्सवमें मुसलमानोंने आगे बढ़कर हिस्सा लिया। भाईचारा उत्पन्न करनेवाले इस उत्सवके आयोजकोंमें डा० किचलू और डा० सत्यपाल भी थे। इन दोनों नेताओंने अपनी सार्वजनिक सेवाओंके कारण बहुत पहले ही काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी।

डा० सैफुद्दीन किचलू एक मुसलमान बैरिस्टर हैं और उनकी वकालत बहुत अच्छी चलती है। वे कैम्ब्रिजके स्नातक हैं और मन्स्टरसे उन्हें डाक्टर आफ फिलासफीकी उपाधि प्राप्त हुई थी। वे अलीगढ़में भी पढ़ चुके हैं। उनकी आयु ३५ वर्ष है। वे विवाहित हैं और उनके दो बच्चे हैं। कई वर्षोंसे वे हिन्दू-मुस्लिम एकताके काममें लगे हैं।

डा० सत्यपाल हिन्दू हैं, जातिसे खत्री। वे पंजाब विश्वविद्यालयके बी० ए०, एम० बी० हैं। युद्धके दौरान वे अदनमें लेफ्टिनेन्ट, आई० एम० एस० के रूपमें किंग्स कमिशन पाकर एक वर्षतक रह चुके हैं। वे डा० किचलूके साथ सार्वजनिक काम करते रहे हैं। अमृतसर रेलवे स्टेशनपर भारतीयोंको प्लेटफार्म टिकट दिया जाना बन्द होनेपर

उन्होंने उसके विरुद्ध जो सफल आन्दोलन किया उससे काफी लोकप्रिय हो गये। रौलट अधिनियम विरोधी आन्दोलनमें इन दोनों नेताओंकी लोकप्रियता और भी बढ़ी। इन दोनोंने सत्याग्रहका समर्थन किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि और जगहोंकी तरह ही अमृतसरमें भी रौलट आन्दोलनमें धीरे-धीरे पहलेकी अपेक्षा बहुत ज्यादा लोग दिलचस्पी लेने लगे, और ज्यों-ज्यों यह आन्दोलन अधिक जोर पकड़ता गया त्यों-त्यों अपने अनवरत प्रयत्नोंके कारण ये दोनों नेता जनताके अधिक प्रिय होते गये।

२९ मार्च, १९१९ को पंजाब सरकारकी आज्ञासे डा० सत्यपालको सार्वजनिक सभाओंमें बोलनेसे मना कर दिया गया और वे अमृतसरमें नजरबन्द कर दिये गये।

जैसा कि पिछले अध्यायमें कहा गया है, भारतके कुछ हिस्सोंमें ३० मार्चको भी हड़ताल हुई। और अमृतसर एक ऐसा ही स्थान था।

अमृतसरमें ३० मार्चको होनेवाली सभामें, सरकारी कथनके अनुसार ३०,००० से ३५,००० लोग शामिल हुए, लेकिन सभी रिपोर्टोंमें यह बात समान रूपसे कही गई है कि सभा शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गई, और एक भी अशोभनीय घटना नहीं हुई। सभामें जो लोग बोले, उन्होंने सभाके शान्तिपूर्ण और धार्मिक स्वरूपपर विशेष बल दिया। ये हैं डा० किचलूके शब्द जो उन्होंने अपने भाषणके अन्तमें कहे थे:

> हम राष्ट्रीय हितोंके लिए अपने निजी स्वार्थोंका बलिदान करनेको सदैव तैयार रहेंगे। महात्मा गांधीका सन्देश आपके सामने पढ़कर सुना दिया गया है। समस्त देशवासियोंको प्रतिरोध करनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि इस पवित्र नगर या देशको खूनकी धारामें डुबो दिया जाये। हमारा प्रतिरोध अहिंसात्मक होना चाहिए। आप अपनी आत्माकी आवाजके अनुसार काम करनेको तैयार रहिए, हालांकि इसके बदले आपको जेल भेजा जा सकता है, या आपपर नजरबन्दी आदेश लागू किया जा सकता है।
>
> और फिर:
>
> आप लोग किसीको पीड़ा या दुःख न पहुँचायें। शान्तिपूर्वक घर जाइए। बागमें टहलिए। किसी पुलिसवाले या किसी गद्दारके खिलाफ ऐसे कठोर शब्द न निकालिये जिससे उसे पीड़ा पहुँचे, या जिससे शान्ति भंग होनेकी सम्भावना पैदा हो जाये।

लेकिन सर माइकेल ओ'डायर अमृतसरकी हड़ताल और सभाके कारण बहुत असन्तुलित हो उठे। अतः उन्होंने डा० किचलूपर भी वही आदेश जारी कर दिया जो डा० सत्यपालपर किया था। इस आदेशपर ३ अप्रैलकी तारीख पड़ी है और उसमें कहा गया है कि:

> जबतक और कोई आदेश न दिया जाये तबतक डा० किचलू (क) अमृतसर शहरकी म्युनिसिपल सीमामें रहेंगे, (ख) समाचारपत्रोंके साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे कोई सम्पर्क न रखेंगे, और (ग) किसी सार्वजनिक सभाका

आन्दोलन न करेंगे, उसमें भाग न लेंगे और न किसी सभामें भाषण देंगे — चाहे वह व्यक्तिशः उपस्थित होकर हो या लिखित रूपमें अपने विचार भेजकर।

[illegible] गोकुलचन्द, पंडित [illegible] और स्वामी [illegible] भी ऐसे ही परिपत्र जारी किये गये। इन आदेशोंने अमृतसरकी जनताको उत्तेजित अवश्य किया, किन्तु [illegible] उसमें कतई नहीं। तारीख ८ अप्रैलको शहरमें फिर पूरी हड़ताल हुई, और [illegible] आदमियोंकी सभासे कहीं अधिक बड़ी सभा हुई। अमृतसरके एक बैरिस्टर, श्री [illegible] ने हमें इस सभाकी कार्यवाही, जिसमें कहा जाता है कि १०,००० लोगोंने भाग लिया। [illegible] रिपोर्टमें यह भी बताया गया है कि सभामें प्रस्ताव पास करके सरकारसे अनुरोध किया गया कि डा० सत्यपाल तथा अन्य लोगोंके खिलाफ जारी किये गये आदेश वापस ले लिये जायें। सरकारी आदेशोंके खिलाफ जो भाषण दिये गये उनका विशेष निम्नलिखित अंशसे देखा जा सकता है। यह अंश हमने उस रिपोर्टसे लिया है जो इस समय हमारे सामने है:

> उन [नेताओं] का एकमात्र अपराध यह है कि उन्होंने हम सबको रौलट अधिनियमका असली उद्देश्य बता दिया था।

एक प्रस्ताव रौलट अधिनियमको रद करनेकी माँग करते हुए भी पास किया गया। सभाकी कार्यवाही समाप्त करते हुए अध्यक्षने कहा:

> आजकी सभा पिछले रविवारकी सभासे भी कहीं अधिक सफल रही है। अपनी राय अभिव्यक्त करनेका आपका मंशा पूरा हो गया है। इस समय लोगोंको आवेशसे नहीं बल्कि धीरजसे काम लेना चाहिए। महात्मा गांधीकी सलाह है: इस लड़ाईमें हम धैर्यपूर्वक पीड़ा और दुःख सहन करेंगे और इस प्रकार अपने-आपको हिंसा और निष्ठुरता बरतनेसे बचायेंगे। असत्य नाकामयाब होगा और सत्यकी विजय होगी। यदि आप मानसिक शान्ति, धीरज और संयमसे काम लेंगे तो इस सभाका जबरदस्त प्रभाव पड़ेगा। किन्तु यदि जरा भी गड़बड़ होगी, और दो आदमी भी एक दूसरेसे लड़ेंगे तो इसके परिणाम बुरे होंगे और इस सभाका कोई असर नहीं होगा। इसलिए श्रोताओंसे अनुरोध है कि वे सभा-स्थलसे बिलकुल शान्तिपूर्वक जायें और कोई जुलूस वगैरह न बनायें।

ऊपरका उद्धरण हमने जिस रिपोर्टसे लिया है, उसपर ८ अप्रैलकी तारीख पड़ी है। रिपोर्टके अन्तमें कहा गया है:

> जनताने अध्यक्षके आदेशोंका पूरा पालन किया।

९ अप्रैलका दिन, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, रामनवमीका दिन था। नेताओंने तय किया था कि उस दिन हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पूरा भाईचारा रहना चाहिए। सामान्यतया रामनवमी एक धार्मिक त्योहार है, लेकिन चूँकि मुसलमानोंने उसमें

१. अमृतसरसे प्रकाशित वकतके सम्पादक ।

भाग लेनेका फैसला किया था, इसलिए इस उत्सवका महत्त्व निस्सन्देह बहुत बढ़ गया था। रामनवमीका जुलूस बहुत बड़ा था, जिसमें मुसलमानोंने बहुत बड़ी संख्यामें भाग लिया। डा० सत्यपाल और डा० किचलूने अलग-अलग स्थानोंपर खड़े होकर जुलूसको देखा। इन दोनों नेताओंके निकटसे गुजरते वक्त जुलूसवालोंने उनकी जय-जयकारके नारे लगाये। अमृतसरके डिप्टी कमिश्नरने भी जुलूस देखा, और जब जुलूसके बैन्ड-बाजेवाले दस्ते उनके सामनेसे गुजरे तो उन्होंने "गॉड सेव द किंग" की धुन बजाई। इस अवसरपर भी इतने विशाल प्रदर्शनके बावजूद कोई दुःखद घटना या दुर्घटना नहीं हुई।

इस सारे सार्वजनिक प्रदर्शन और राष्ट्रीय चेतनाकी मुक्त अभिव्यक्तिको देखकर जनताकी आकांक्षाओंसे सहानुभूति रखनेवाले किसी भी कल्पनाशील शासकका हृदय खुशीसे भर गया होता। लेकिन सर माइकेल ओ'डायर यह सब देखकर क्रोधसे भर गये। उन्हें यह देखकर गुस्सा आया कि उनके इन आदेशोंके फलस्वरूप, जिनका जिक्र हम कर चुके हैं, जनता भयभीत होनेकी जगह और भी उद्धत हो गई थी और उसकी माँगें और मुखर हो गई थीं। अतः लगभग ठीक उसी समय जब कि यह जन-प्रदर्शन व्यवस्थित और बिलकुल नियमित रूपमें जारी था, पंजाब सरकारके सचिवालयमें एक आदेशका मसविदा तैयार किया जा रहा था, जिससे जनताकी शान्ति भंग तथा नष्ट होनेवाली थी, क्योंकि लेफ्टिनेन्ट गवर्नरने डा० किचलू और डा० सत्यपालको निर्वासित करनेका फैसला कर लिया था। यह आदेश अमृतसरमें ९ अप्रैलको काफी रात गये पहुँचा, और १० अप्रैलको डिप्टी कमिश्नरने डा० किचलू और डा० सत्यपालको बुलवाकर वह आदेश उनपर जारी किया, और एक मोटरमें बैठाकर उन्हें एक अज्ञात स्थानकी ओर भेज दिया। इसकी खबर सारे अमृतसरमें बिजलीकी तरह फैल गई। तत्काल एक भीड़ इकट्ठी हो गई। यह भीड़ मातम मनानेवालोंकी भीड़ थी। सभी नंगे सर थे, बहुत-से नंगे पैर भी थे, और किसीके हाथमें छड़ी वगैरह नहीं थी। ये लोग अपने प्रिय नेताओंकी रिहाईके लिए डिप्टी कमिश्नरसे प्रार्थना करने उसके बँगलेकी ओर जा रहे थे। यह जुलूस अमृतसरकी सभी मुख्य सड़कोंसे गुजरा — नेशनल बैंक, टाउन हॉल और क्रिश्चियन मिशन हॉल, इन सभी इमारतोंके सामनेसे होते हुए आगे बढ़ा। ये इमारतें वही इमारतें थीं, जिन्हें थोड़े ही समय बाद भीड़के कुछ लोगोंके हाथों ध्वस्त हो जाना था। इस तरह जुलूस शान्तिपूर्वक आगे बढ़ रहा था, लेकिन रेलवेके ओवर-ब्रिजपर इसकी प्रगतिको वहाँ तैनात फौजी गारदने रोक दिया। भीड़ने रास्ता माँगा और कहा कि हम लोग फरियाद करनेके लिए डिप्टी कमिश्नरके बँगलेपर जाना चाहते हैं। उसने आगे बढ़नेकी कोशिश की और फौजी गारद थोड़ी दूर पीछे हट गई। भीड़ आगे बढ़ी, फौजी गारदने गोली चलाई जिससे कुछ लोग मरे और कुछ घायल हो गये। भीड़ पीछेको लौटी, लेकिन अब यह एक शान्तिपूर्ण भीड़ नहीं रह गई थी। अब यह ऐसी भीड़ थी, जिसे अपने नेताओंको रिहा करवानेकी कोशिशोंमें नाकामयाब कर दिया गया था, और जो अब अपने बीच कुछ लोगोंके मारे जाने और घायल होनेके कारण क्षुब्ध हो उठी थी। ये क्रुद्ध

और पुलके और [illegible] कुछ [illegible] और गये, और कुछ लोग [illegible] ओर गये। [illegible] पुलकी [illegible] भागे भर गये। पीछे ही [illegible] के पास फिर एक भीड़ जमा हो गई। [illegible] लोगोंके [illegible] और [illegible] थे। दोनों ही [illegible] था।

इसी बीच, यह सोचकर [illegible] लोगोंने डिप्टी कमिश्नरके सामने पेश-[illegible] की थी। उन्हें [illegible] दे दी गई। [illegible] अमृतसरके पुलिस डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट श्री प्लोमरने उन्हें बताया कि एक बड़ी भीड़ रेलवे मालगोदामकी ओर गई है। अतः कुछ लोग फ़ौरन ही उधर गये और कुछ लोग रेलवे मालगोदामकी ओर गये। भीड़को समझा-बुझाकर रेलवे मालके स्थानोंसे ये हटाते रहे। किन्तु हॉल-ब्रिजके पास स्थिति ज्यादा कठिन थी। सर्वश्री सलारिया और मकबूल महमूद एक ओर तो भीड़को समझानेकी कोशिश कर रहे थे, और दूसरी ओर अधिकारियोंको गोली चलानेसे रोकनेकी कोशिश कर रहे थे। एक स्थिति तो ऐसी आई जब लगा कि उन्हें सफलता मिल जायेगी, लेकिन उसी समय भीड़में से कुछ लोगोंने सैनिकोंपर पत्थर या लकड़ीके टुकड़े फेंके और सैनिकोंने तुरन्त गोली चला दी। करीब बीस आदमी मारे गये और बहुतसे घायल हुए। स्वयं श्री सलारिया और श्री मकबूल महमूद बाल-बाल बच गये। सैनिक अधिकारियोंने इस बातपर खेद प्रकट किया कि जिस समय ये दोनों लोग भीड़के बीचमें थे और भीड़को तितर-बितर होनेके लिए समझा-बुझाकर अधिकारियोंकी सहायता कर रहे थे, उस समय उन्होंने गोली चलानेका आदेश दिया। इसके बाद भी मकबूल महमूद सिविल अस्पताल गये और वहांसे घायलोंकी प्राथमिक चिकित्साके लिए डा० धनपत रायको अपने साथ लेकर लौटे। अस्पतालसे स्ट्रेचर भी आये थे, लेकिन कहा जाता है कि श्री प्लोमरने उन्हें यह कहकर वापस करवा दिया कि लोग इसका प्रबन्ध अपने-आप करेंगे। कुछ घायलोंको डा० किदारनाथके घर ले जाया गया। वे जनाना अस्पतालके निकट ही रहते थे। कहा जाता है कि श्रीमती ईस्डन[1] घायलोंको देखकर हँस पड़ीं और बोलीं कि हिन्दू और मुसलमान जिस लायक थे उनके साथ वही हुआ। इसपर लोग अस्पतालमें घुस गये और श्रीमती ईस्डनको ढूंढ़नेकी कोशिश करने लगे। लेकिन इसी बीच मौका पाकर श्रीमती बेंजामिनने उन्हें छिपा दिया था, और इस प्रकार भीड़से उनकी रक्षा हो पाई। उत्तेजित भीड़ने नेशनल बैंकको लूट लिया और उसके मैनेजर श्री स्टुअर्ट तथा एकाउन्टेन्ट श्री स्कॉटकी हत्या कर दी। जो भीड़ रेलवेके माल गोदाममें गई थी, उसने रेलवेके एक गार्ड श्री रॉबिन्सनकी हत्या कर दी। भीड़ने अलाएन्स बैंकपर भी हमला किया और जब उसके मैनेजर श्री थॉमसनने रिवाल्वरसे गोली चलाई तो भीड़ने क्रुद्ध होकर उन्हें मार डाला और उनकी लाशको नीचे फेंक दिया और बैंकके फर्नीचरके साथ ही उसे भी फूंक दिया। छावनीमें काम-करनेवाले एक इलेक्ट्रिशियन, सार्जेन्ट रॉलैण्डको रिगो ब्रिजके पास मार डाला गया।

१. म्युनिसिपल जनाना अस्पतालकी महिला डाक्टर।

टाउन हॉल, डाकखाना और मिशन हॉल जला दिये गये, और भगताँवाला रेलवे स्टेशनका भी कुछ हिस्सा फूँक दिया गया। चार्टर्ड बैंकपर भी हमला करनेकी कोशिश की गई, लेकिन इस बैंकके भारतीय कर्मचारियोंने स्थितिको बचा लिया और बैंकको कोई गम्भीर क्षति नहीं पहुँच पाई। इसी समय मिस शेरवुड[1] साइकिलपर कहीं जा रही थीं। उनपर भी हमला किया गया, किन्तु उनको उनकी एक भारतीय छात्राके पिताने बचा लिया। भीड़में निस्सन्देह कुछ बदमाश लोग भी थे, जिन्होंने मौका देखकर नेशनल बैंकके गोदामको लूटना शुरू कर दिया। यहाँ हम यह भी बता दें कि उसके बादसे अभीतक कुछ पुलिसवालोंको भी उनके पाससे लूटका माल बरामद होनेके कारण गिरफ्तार किया जा चुका है। १० अप्रैलको शामके ५ बजेतक तोड़-फोड़ और लूटपाटका काम खत्म हो चुका था।

अमृतसरकी जनताको उनके प्रिय नेताओंका निर्वासन करके जिस तरह उत्तेजित किया गया वह अत्यन्त गम्भीर और अनावश्यक था। फिर जब निहत्थे लोगोंकी भीड़ शान्तिपूर्ण उद्देश्यसे डिप्टी कमिश्नरके बँगलेकी ओर जा रही थी तब उसे आगे बढ़नेसे रोककर, और भीड़ द्वारा आगे बढ़नेका आग्रह करनेपर उसके ऊपर गोली चलाकर उसे और अधिक उत्तेजित किया गया। यहाँ इस तथ्यको दुहराने और इसपर जोर देनेकी जरूरत है कि ओवर-ब्रिजपर पहुँचने और गोली चलनेसे पहलेतक भीड़ने कोई हिंसात्मक काम नहीं किया था। यह कह सकना मुश्किल है कि अगर भीड़को डिप्टी कमिश्नरके बँगलेकी ओर जाने दिया गया होता, और वहाँ उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई होती, जिसकी कि काफी सम्भावना थी, तब उस हालतमें क्या होता। यह बहुत-कुछ इस बातपर निर्भर करता कि डिप्टी कमिश्नर भीड़के साथ कैसा व्यवहार करते। यह बात माननी होगी कि भीड़ हठ कर रही थी, और यदि अधिकारियोंको लगा कि भीड़ हिंसात्मक कार्रवाई करेगी, तो हम अधिकारियोंको भीड़की प्रगति रोकनेके लिए दोषी माननेको तैयार नहीं हैं। मार्शल लॉ आयोगके सामने दी गई गवाहियों, और लॉर्ड हंटरकी समितिके[2] सामने सरकारी पक्षकी ओरसे प्रस्तुत गवाहियों और जो साक्ष्य हमने एकत्र किये हैं उन सबका अध्ययन करनेके बाद हम इस नतीजेपर पहुँचते हैं कि गोली चलानेका कतई कोई कारण मौजूद नहीं था। गोली चलानेसे पहले अधिकारियोंने बीचके उन उपायोंको बिलकुल आजमानेकी कोशिश नहीं की जिन्हें सामान्यतः सभी सभ्य देशोंमें काममें लाया जाता है। भीड़के नेताओंके साथ बातचीत करके उन्हें समझाने-बुझानेकी या बहलाने-फुसलानेकी कोई कोशिश नहीं की गई और न पहले मामूली शक्तिका प्रयोग करके भीड़को हटानेका ही प्रयत्न किया गया। जैसे ही भीड़ने जबरदस्ती आगे बढ़नेकी कोशिश की, बस सीधे गोली चलानेका हुक्म दे दिया गया। इस देशमें कार्यपालिकाके अधिकारियों और फौजका यह आम कायदा ही बन

१. स्थानीय मिशन स्कूलमें पढ़ानेवाली एक अंग्रेज महिला।

२. पंजाबके उपद्रवोंकी जाँचके लिए लॉर्ड हंटरकी अध्यक्षतामें यह समिति भारत सरकारने अक्तूबर १९१९ में नियुक्त की थी।

[illegible] है कि वे किसी [illegible] नहीं उठाते, या दूसरे शब्दोंमें कहें तो उनकी निगाहमें भारतीयोंकी जानकी कोई कीमत रह नहीं गई है।

[illegible] वकील श्री मकबूल महमूद, जो श्री सलारियाके साथ भीड़को समझानेकी कोशिश कर रहे थे, दूसरी बार [illegible] गोलीबारीके [illegible] हैं :

> मैंने और सलारियाने डिप्टी कमिश्नर और अफसरोंसे मिलकर कहा कि वे पीछे हट जायें और गोली न चलायें, क्योंकि हमें अब भी आशा थी कि हम भीड़को वापस ले जा सकेंगे। भीड़में से कुछ लोगोंने सैनिकोंपर लकड़ी और पत्थर फेंके। सैनिकोंने फौरन भीड़को बिना आगाह किये या सूचना दिये गोलियोंकी बौछार कर दी। मेरे दायें-बायेंसे गोलियाँ सनसनाती हुई निकलीं। भीड़ २०–२५ हताहतोंको छोड़कर तितर-बितर हो गई। जब गोलियाँ चलनी बन्द हो गईं तब मैंने सैनिकोंके पास जाकर उनसे पूछा कि क्या उनके पास हताहतोंको ले जानेके लिए एम्बुलेंस गाड़ी या प्राथमिक चिकित्साका कोई इन्तजाम है। मैं सहायताके लिए भागकर अस्पताल जाना चाहता था, जो पास ही था। किन्तु सैनिकोंने मुझे जाने नहीं दिया। आखिरमें श्री सीमोरने मुझे जानेकी इजाजत दे दी . . . । जब गोली चली उस समय डिप्टी कमिश्नर स्वयं उपस्थित थे। वे जानते थे कि श्री सलारिया और मैं वकील हैं, और यह कोशिश कर रहे थे कि भीड़को हटाकर शहर वापस ले जायें। यह संयोग ही था कि हम दोनों जिन्दा बच गये। मेरा अब भी यही विश्वास है कि यदि अधिकारियोंने कुछ धीरज रखा होता तो हम भीड़को वापस ले जानेमें सफल हो जाते। यह दुःखकी बात है कि गोली चलानेका निर्णय करनेसे पहले अधिकारियोंने हताहतोंको ले जानेवाली एम्बुलेंस गाड़ी या प्राथमिक चिकित्साकी कोई व्यवस्था नहीं की। मेरा विश्वास है कि यदि समयपर उचित चिकित्साकी व्यवस्था हो जाती तो कुछ घायलोंको बचाया जा सकता था। कुछ ही गोलियाँ चलनेके बाद भीड़ एकदम पीछे हटने लगी, किन्तु जब लोग भागने लगे थे उसके बाद भी गोलियाँ चलती रहीं। कइयोंकी पीठमें गोलियाँ लगीं। घायलोंमें अधिकतरके कटिभागसे ऊपर, मुँहपर या सिरपर गोलियाँ लगीं। (बयान ५, पृष्ठ ३०-३१)

स्मरण रहे कि भीड़ने अभीतक कोई ज्यादती नहीं की थी, इसलिए उस उतावली, उदासीनता या निर्ममताका कोई कारण नहीं था, जो कि इस गवाहके अनुसार स्पष्टतः अधिकारियोंने दिखाई।

इसलिए जहाँ एक ओर हम देशनिकालेके दण्ड और गोलीबारीकी भर्त्सना करते हैं और दोनोंको अनुचित मानते हैं, और हताहतोंके लिए एम्बुलेंस गाड़ीकी व्यवस्था न रखना अमानुषिक समझते हैं, वहाँ हम यह भी मानते हैं कि भीड़ द्वारा मनमाने तौरपर निर्दोष व्यक्तियोंकी हत्या और सम्पत्तिका विनाश किसी तरह उचित नहीं

ठहराये जा सकते। वैंकोंके मैनेजर अपने गुणोंके कारण लोकप्रिय थे। दूसरे लोग, जिनका खून किया गया था, भीड़के लिए अपरिचित थे और वे सर्वथा निर्दोष थे। कुमारी शेरवुड एक ईमानदार ईसाई शिक्षिका थीं, और श्रीमती ईस्डेनने कितनी ही आपत्तिजनक वात क्यों न कही हो, लेकिन भीड़ने जो-कुछ किया, उसे उचित नहीं ठहराया जा सकता। इमारतोंको ध्वस्त करना निरा पागलपन था; और हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि अमृतसरकी जनताने इससे पहले जो अद्‌भुत आत्मसंयम दिखाया था, उससे प्राप्त सारा लाभ — सारी नेकनामी इस भीड़के वहशियाना और अशोभनीय व्यवहारसे खत्म हो गई।

क्या इन ज्यादतियोंको रोका जा सकता था? क्या इन निर्दोष व्यक्तियोंके प्राण वचाये जा सकते थे? पुलिस क्या कर रही थी? कोतवाली और टाउन हॉलकी इमारतें एक ही ब्लॉकमें हैं। कोतवालीमें पुलिस काफी संख्यामें मौजूद थी। भीड़ने कोतवालीकी ओर आँख भी नहीं उठाई, जवकि उसने दण्ड-भयकी तनिक भी परवाह न करते हुए पासके ही टाउन हॉलको जला डाला। जलाई गई अधिकांश दूसरी इमारतें भी कोतवालीके समीप ही थीं। पुलिसको यह भी सूचना थी कि वैंकोंको जलाया जा रहा है। इस समय पुलिसका यह स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वह और जरा चुस्तीसे कुछ कार्रवाई करती और अपनी जान जोखिममें डालकर भी, कमसे-कम उन अंग्रेजोंको वचानेका यत्न करती, जिनकी हत्या की गई।

ये हत्याएँ और आगजनीकी घटनाएँ अधिकारियोंके लिए इतनी आकस्मिक थीं कि वे कुछ समयके लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। लेफ्टिनेन्ट गवर्नरने फौरन श्री किचिनको लाहौरसे रवाना किया। हंटर समितिके सामने अपनी गवाहीमें श्री किचिन कहते हैं कि सड़कपर उन्हें वहुत सारे लोग मिले। लाहौरसे अमृतसरतक लगभग ३५ मील लम्वा रास्ता उन्होंने मोटरसे तय किया और उन्हें किसीने हाथ नहीं लगाया। यह १० अप्रैलको तीसरे पहर, लगभग ४ वजे की वात है। रातको ११ वजेके लगभग मेजर मैकडॉनल्डके नेतृत्वमें सैनिकोंसे भरी एक रेलगाड़ी आई। श्री किचिनने उन्हें वताया कि "स्थिति उनके वसके वाहर हो गई है और उन्हें ऐसे कदम उठाने चाहिए जो सैनिक दृष्टिसे आवश्यक हों।" अपनी गवाहीमें वे आगे कहते हैं कि "उन्होंने उन्हें यह सलाह दी कि सैनिकोंका एक पर्याप्त वड़ा दस्ता शहरमें भजें जो वहाँकी सूचना लाये या उन लोगोंको लाये जो मारे न गये हों। यह कर दिया गया।" इसपर लॉर्ड हंटरने पूछा कि किसी सिविल मजिस्ट्रेटको क्यों नहीं भेजा गया?" श्री किचिनने उत्तर दिया:

> **मेरा खयाल था कि सैनिक टुकड़ीको लड़ते हुए आगे वढ़ना पड़ेगा, और सिविल मजिस्ट्रेटकी उपस्थितिसे एक ऐसी कार्रवाईमें उलझन पड़ती जो कि शुद्ध सैनिक कार्रवाई थी। . . . वचे हुए लोगोंको वाहर निकाल लाया गया और कोतवालीमें और भी सैनिक तैनात कर दिये गये। यह सव विना किसी प्रति-रोध या लड़ाईके हो गया।**

वे १२ तारीखको लाहौर भेज दिये [illegible]। [illegible] फौजको भेज दिया। लाहौर पहुँचनेपर उन्होंने [illegible] इसकी सूचना दी, और [illegible] दे दी। दूसरे दिन [illegible] फिर [illegible] हुए, पर उन्हें वहाँ [illegible] कोई [illegible] नहीं दिखाई दी। [illegible] पहुँच गये थे; उन्होंने [illegible] मुकाम कायम कर लिया था और [illegible] ले लिया था।

[illegible] लोगोंको गिरफ्तार करना। उन्होंने शहरमें प्रवेश किया और बिना किसी भी प्रकारके प्रतिरोध या आपत्तिके [illegible] गिरफ्तारियाँ कीं।

अब हम यह देखेंगे कि [illegible] इस [illegible] किया। १० तारीखकी रातको शहरको रामभरोसे छोड़ दिया गया, पर कोई दुर्घटना नहीं हुई। ११ तारीखकी तड़के ही वे मृतकोंका अन्तिम संस्कार करना चाहते थे। पहले तो सैनिक अधिकारियोंने एक अर्थीके साथ चारसे अधिक व्यक्तियोंको जानेकी इजाजत ही नहीं दी। इससे लोगोंमें बहुत असन्तोष फैल गया। वे अर्थियोंको जुलूस बनाकर ले जाना चाहते थे। उन्होंने अधिकारियोंको इस बातपर राजी करनेके लिए अपने प्रतिनिधि भेजे। बहुत कहने सुननेके बाद इजाजत तो मिल गई किन्तु यह आज्ञा दी गई कि जुलूस २ बजेसे पहले वापस हो जाये। जुलूस बहुत बड़ा था, किन्तु आज्ञाका अक्षरशः पालन हुआ और सब काम निश्चित समयसे पहले पूरा कर लिया गया। १२ अप्रैलको हंसराजने, जो आगे चलकर अमृतसर षड्यंत्र काण्डमें मुख्य मुखबिर बना, ढाब खटीकानमें एक सभा की और उसने ऐलान किया कि एक और सभा १३ अप्रैलको जलियाँवाला बागमें होगी, जिसका सभापतित्व लाला कन्हैयालाल करेंगे। लाला कन्हैयालालने स्वयं इस बातसे इनकार किया है कि उनसे इस तरहकी किसी सभाका सभापतित्व करनेके लिए कहा गया था या उन्होंने इसके लिए स्वीकृति दी थी। वे ७५ वर्षके हैं और पुराने तथा सम्मानित वकील हैं, एवं बहुत ही लोकप्रिय हैं। (बयान २९)। उनका बयान सच है, इस बातमें हमें तनिक भी सन्देह नहीं है। हमारा खयाल है कि उनके नामका उपयोग लोगोंको भारी संख्यामें जमा करनेके लिए ही किया गया था।

इसके बाद जो-कुछ हुआ, उसे समझनेके लिए अमृतसरका जो चित्र वहींके एक सज्जनने, जो कुछ दिनोंके लिए बाहर गये हुए थे, खींचा है, उसे सामने रखना जरूरी है। यह चित्र प्रस्तुत करनेवाले सज्जन हैं लाला गिरधारीलाल, जो पंजाब व्यापार मण्डलके उपाध्यक्ष और अमृतसर फ्लोर ऐंड जनरल मिल्स कम्पनीके प्रबन्ध निदेशक हैं। वे कहते हैं :

> मैं ११ अप्रैलको लगभग ११.३० बजे सुबह कलकत्ता मेल द्वारा कानपुरसे अमृतसर पहुँचा . . .। अमृतसरके निकट नहरके पुलपर और उससे आगे भी मैंने पुलिसके दस्ते देखे जो रेलकी पटरियोंकी रक्षाके लिए तैनात थे। गाड़ी जब स्टेशनपर पहुँची तो स्टेशन एक सैनिक चौकी-जैसा लग रहा था। सर्वत्र सैनिक और बन्दूकें ही दिखाई पड़ती थीं . . . न कहीं कोई कुली था और न कोई

सवारी। ज्यों ही मैं प्लेटफार्मसे निकला मेरी भेंट सरदार विक्रमसिंहसे हो गई। उन्होंने मुझे सलाह दी कि या तो मैं वापस वहीं चला जाऊँ जहाँसे आया था, या कमसे-कम किसी भी हालतमें शहरमें प्रवेश न करूँ। चूँकि वे बहुत घबराये हुए थे — जैसा कि मुझे लग रहा था — अतः उन्होंने ज्यादा देर मुझसे बातचीत नहीं की। एक रेलवे कर्मचारीकी कृपासे, बीस मिनट प्रतीक्षा करनेके बाद और बड़ी कठिनाईसे, मुझे एक कुली मिला जो मेरा सामान स्वर्ण मन्दिर तक ले गया। वहाँ पैदल चलनेवालोंके लिए जो पुल है उसपर कुछ यूरोपीय सैनिकोंका पहरा था, जो सब चीजोंकी अच्छी तरह तलाशी लिये बिना किसीको शहरमें प्रवेश नहीं करने देते थे। अगर किसीके पास किसी तरहकी छड़ी होती थी, तो वह अवश्य ही उससे रखवा ली जाती थी। मेरे सामानको अच्छी तरह उलट-पुलटकर देखनेके बाद मुझे आगे जाने दिया गया। गाड़ियोंके पुलके ऊपरसे किसीको जानेकी इजाजत नहीं थी। यह हाल कई दिनों, सम्भवतः १५ अप्रैलतक, चला। शहरके बाहर हर कदमपर राइफलें और संगीन लिये हुए पुलिस या फौजके सिपाहियोंके अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता था। शहरके अन्दर कहीं पुलिसका एक भी सिपाही ड्यूटीपर नहीं दिखाई पड़ता था।... शहरमें प्रवेश करते ही सबसे पहले जिस चीजने मेरा ध्यान खींचा वह यह थी कि जल-पूर्ति बिलकुल बन्द कर दी गई थी ... फिर शामको मैंने देखा कि खास शहरमें बिजली भी काट दी गई थी। जहाँतक मुझे याद है, यह परेशानी भी अगर ज्यादा नहीं तो १८ या १९ अप्रैलतक तो चली ही। स्वर्ण मन्दिरकी ओर जाते हुए मैंने हिंसात्मक कार्रवाइयोंके चिह्न देखे। टेलिग्राफके तार कटे हुए थे और कुछ इमारतें जली पड़ी थीं। (बयान १, पृष्ठ १-२)

सरकारी साक्ष्यके अनुसार भी जल-आपूर्ति और बिजली तीन-चार दिनोंतक बन्द रही, और यह स्पष्ट है कि लोगोंको इस निर्दयतासे बिजली-पानीसे वंचित करनेके पीछे इरादा पूरे शहरको उस हिंसाके लिए दण्ड देना था जिसमें कुछ ही लोगोंने भाग लिया होगा और जिसे रोकनेमें, जैसा कि लॉर्ड हंटरने एक गवाहको बताया, शान्तिप्रिय नागरिक असमर्थ रहे।

१३ अप्रैलको सुबह ९.३० बजेके लगभग जनरल डायरने एक अंगरक्षक टुकड़ीके साथ शहरमें प्रवेश किया और एक घोषणा की। यह घोषणा, लॉर्ड हंटरके सामने जनरल डायरकी गवाहीके अनुसार, तीन भागोंमें थी। इसका अन्तिम भाग ही इस अवसरपर महत्त्वका है। वह इस प्रकार है:

"शहरमें या शहरके किसी भी भागमें या शहरके बाहर किसी भी प्रकारका कोई भी जुलूस किसी भी समय निकालनेकी मुमानियत है। इस प्रकारके किसी भी जुलूस, या ४ व्यक्तियोंके किसी भी जमघटको गैर-कानूनी जमघट माना जायेगा और आवश्यक होनेपर शस्त्र-बलसे तितर-बितर कर दिया जायेगा।"

जनरल डायरसे बारीकीसे पूछताछ की गई कि 'आवश्यक होनेपर' की शर्त और "जुलूस" के साथ-साथ प्रयुक्त हुए शब्द "जमघट" का क्या अर्थ है। "आवश्यक

होनेपर" का अर्थ यह हो सकता है कि 'और यह अफसर और किसी प्रकार निरु-पाय न हो गये', और "अफसर" का अर्थ हो सकता है किसी 'आवेशहीन स्वल्प-मत अफसर', [illegible] जमा ही जाता घोषणाके अनुसार गैरकानूनी जमाव हो जायेगा।

जनरल डायर, जैसा कि शहरमें आगे बढ़ते गये, थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक दुभाषिया इस घोषणाको पंजाबी और उर्दू में पढ़ता गया। शहरके मुहल्लोंमें जनरल डायरको उन्हींके बयानानुसार "इधर-उधर" जाना पड़ा। लोगोंको जमा करनेके लिए ढोल पीटा जाता था। [जनरल डायर] को एक नक्शा दिया गया, जिसमें उन स्थानोंपर निशान लगे थे जहाँ घोषणा पढ़ी गई थी, और उन्होंने स्वीकार किया कि शहरके कई भागोंमें वह नहीं पढ़ी गई थी। हमने उस नक्शेका [illegible], जो साथमें [illegible] है, अध्ययन किया है। शहरका काफी बड़ा भाग, और वह भी सबसे अधिक आबादीवाला भाग, जनरलने अछूता ही छोड़ दिया था। इस बातके प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं कि बहुत कम नागरिकोंको इस घोषणाके बारेमें मालूम था। इसके अलावा, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, १३ अप्रैल बैसाखीका दिन था। यह हिन्दुओंका नववर्षका दिन है और आसपासके गाँवोंसे लोग बहुत बड़ी संख्यामें शहरमें आ गये थे, जिन्हें घोषणाके बारेमें कुछ भी मालूम नहीं था। सरकारी गवाहोंने इस बातको स्वीकार किया है कि इस प्रकारके लोग आये और उन्होंने घोषणा नहीं सुनी होगी।

जिस समय यह घोषणा हो रही थी, उसी समय या कुछ आगे-पीछे एक लड़का अमृतसरकी गलियोंमें एक कनस्तर बजा कर ऐलान कर रहा था कि ४ बजे जलियाँवाला बागमें एक सभा होगी और लाला कन्हैयालाल इसका सभापतित्व करेंगे। इस बारेमें शंका हो सकती है कि लड़केने यह ऐलान ठीक-ठीक किस समय किया, लेकिन हमारे सामने जो साक्ष्य हैं, उनके अनुसार यह ऐलान जनरल डायरकी घोषणासे कुछ समय पहले किया गया था। लाला कन्हैयालाल कहते हैं :

> मैंने सुना कि कुछ लोगोंने (जिनका पता जहाँतक मुझे मालूम है अबतक नहीं लगा है) १३ अप्रैलको यह ऐलान किया कि मैं जलियाँवाला बागमें एक भाषण दूंगा। इससे लोगोंका यह खयाल बना कि मैं तत्कालीन स्थितिके बारेमें उन्हें कोई ठीक सलाह दूंगा। (बयान २९, पृष्ठ ७३)

करीब १२ बजकर ४५ मिनटपर जनरल डायरको सूचना दी गई कि उसी दिन अपराह्णमें ४ बजकर ३० मिनटपर जलियाँवाला बागमें एक बड़ी सभा होनेवाली है। जनरल डायर स्वीकार करते हैं कि सभाको रोकनेके लिए उन्होंने कोई कदम नहीं उठाया। "मैं चाहता हूँ, आप यह बतायें", लॉर्ड हंटरने कहा, "कि आपने जलियाँवाला बागमें भीड़ जमा होनेसे रोकनेके लिए कोई कदम क्यों नहीं उठाया?" जनरलने उत्तर दिया :

> मैं जितनी जल्दी हो सकता था वहाँ गया। मुझे अपने सैनिकोंको संगठित करना था, स्थितिपर विचार करना था . . . मैंने सोचा, मैंने उन्हें सावधान कर दिया था कि वे जमा न हों और यह काफी था।

लॉर्ड हंटरने प्रश्न किया :

क्या सैनिक दस्तोंकी व्यवस्था करनेके लिए १२.४० से ४ बजे तकके समयकी आवश्यकता हुई ?

जनरल डायरने उत्तर दिया :

दरअसल मुझे विश्वास नहीं था कि मैंने जो-कुछ उस दिन सुबह किया था उसके बाद वे सचमुच जमा होंगे। मुझे यह खयाल नहीं आया कि कुछ सैनिक और भेजकर लोगोंको आगाह कर दूं कि वे सभामें न जायें।

चार बजे उन्हें निश्चित सूचना मिली कि सभा सचमुच शुरू हो गई है। जल्दी ही वे नाकेबन्दीके लिए सैनिक लेकर शहरकी ओर चल पड़े। इनमें २५ राइफल-धारी गोरखे और २५ सिख भी शामिल थे। उनके साथ ४० गोरखे और थे, जिनके पास खुखरियाँ थीं और वे अपने साथ दो बख्तरबन्द गाड़ियाँ भी लेते गये। वे साधारण "टहलनेकी चाल" चलते हुए गये। जब लॉर्ड हंटरने प्रश्न किया कि उन्होंने यह क्यों आवश्यक नहीं समझा कि वहाँ पहुँचनेमें कुछ अधिक शीघ्रता की जाये, तो उन्होंने उत्तर दिया :

नहीं जनाब, गरमी बहुत थी, हम साधारण कदम-चालसे ही चले।

वे ५ बजे या सवा पाँच बजे शामको बागमें पहुँचे।

जलियाँवाला बाग क्या है? "बाग" शब्द जगहको देखते दरअसल ठीक नाम नहीं है। "जालियाँ" उसके मूल मालिकोंका जाति-नाम है; "वाला" सम्बन्धबोधक शब्द है। "बाग" जिसका अर्थ बगीचा है, दरअसल मकानोंसे घिरा एक परती जमीनका टुकड़ा है। उस समय यह जमीन एक निजी सम्पत्ति थी और उसके कई मालिक थे। जैसा कि संलग्न नक्शेसे[1] साफ है, यह स्थान एक असमान आयत है। इस आयतमें तीन पेड़ हैं, एक टूटी-फूटी गुम्बददार समाधि है और एक कुआँ है। अन्दर जानेका मुख्य रास्ता एक तंग गलीसे है, सौभाग्यवश जिसमें बख्तरबन्द गाड़ियाँ नहीं जा सकती थीं। अन्दर जानेके लिए और कोई नियमित रास्ते नहीं थे, किन्तु ४–५ स्थानोंपर सँकरे रास्ते थे, जिनमें से होकर बाहर निकला जा सकता था। इस अहातेके प्रवेशस्थल-पर ज़मीन कुछ ऊँची है और सैनिकोंको तैनात करने और सामनेकी भीड़पर गोली चलानेके लिए बहुत उपयुक्त है। इसलिए जब जनरल डायरने अपने ९० सैनिकोंके साथ बागमें प्रवेश किया, उस समय भीड़के लिए बाहर निकल सकनेका कोई आसान रास्ता नहीं था।

जो गवाही हमारे सामने है, उसके अनुसार जनरल डायरके पहुँचनेसे पहले सभामें, जिसमें लगभग २०,००० लोग थे, हंसराज व्याख्यान दे रहा था। वे और थोड़े-से दूसरे लोग एक कामचलाऊ मंचपर खड़े थे। इसे नक्शेमें चिह्नित स्थानपर देखा जा सकता है। सैनिकोंके पहुँचनेसे पहलेसे एक वायुयान सभास्थलके ऊपर मँडरा रहा था। हंसराजने लोगोंसे कहा कि वे भयभीत न हों। श्रोताओंमें बहुत-से लड़के और बच्चे थे, और कुछ

१. देखिए पृष्ठ १९३ के सामनेवाला चित्र।

और हिन्दुओंको बोरमें लेकर आये थे। लोगोंके पास लाठियाँ आदि नहीं थीं। खुफिया पुलिसके भी कुछ लोग सभामें मौजूद थे। उनमें से दो व्यक्तियोंको हंसराजसे बातें करते देखा गया। जनरल डायरने स्थानके निकट ऊँची भूमिपर आकर बगलमें २५ सैनिक खड़े और ओर २५ सैनिक खड़े और तैनात कर दिये। इसके बाद जो-कुछ हुआ, उसे उन्हींके शब्दोंमें दिया जाता है:

प्र० — जब आप बागमें पहुँचे तो आपने क्या किया?

उ० — मैंने गोली चलाई।

प्र० — एकदम?

उ० — तत्काल। मैंने इस विषयमें विचार कर लिया था और मेरा खयाल है कि यह निर्णय करनेमें मुझे ३० सेकिण्डसे अधिक नहीं लगे कि मेरा क्या कर्त्तव्य है।

प्र० — जहाँतक भीड़का सम्बन्ध है, वह क्या कर रही थी?

उ० — जब, वे लोग सभा कर रहे थे, बीचमें एक ऊँची-सी चीजपर एक व्यक्ति खड़ा था। उसके हाथ हिल रहे थे। स्पष्ट ही वह भाषण दे रहा था। जहाँतक मैं अनुमान कर पाया, वह आयतके ठीक बीचमें था, कहना चाहिए कि जहाँ मेरे सैनिक तैनात थे वहाँसे लगभग ५० या ६० गज दूर।

जनरलने यह स्वीकार किया था कि ऐसे बहुतसे लोग हो सकते थे, जिन्होंने घोषणाके बारेमें कुछ न सुना हो। अतः लॉर्ड हंटरने प्रश्न किया:

यह सम्भावना स्वीकार करनेपर कि भीड़में ऐसे लोग हो सकते थे जिन्हें घोषणाकी जानकारी नहीं थी, क्या आपको यह नहीं सूझा कि गोली चलानेकी आज्ञा देनेसे पहले भीड़को तितर-बितर हो जानेके लिए कहना उचित होगा?

उ० — नहीं, उस समय मुझे यह नहीं सूझा। मुझे केवल यह महसूस हुआ कि मेरी आज्ञाका उल्लंघन हुआ है, फौजी कानूनकी अवहेलना हुई है और मेरा कर्त्तव्य है कि मैं तुरन्त राइफलों द्वारा गोली चलाऊँ।

प्र० — जब आपने भीड़को तितर-बितर किया, क्या उससे पूर्व भीड़ने किसी भी प्रकारकी कोई कार्रवाई की थी?

उ० — नहीं जनाब, वे भाग गये थे — उनमें से कुछ लोग।

प्र० — क्या वे भागने लगे?

उ० — हाँ, जब मैंने गोलियाँ चलाना शुरू किया तो मध्य भागमें जो बड़ी भीड़ थी वह दाहिनी ओरको भागने लगी।

प्र० — फौजी कानूनका ऐलान तो किया नहीं गया था। इसलिए आपने जब यह कदम उठाया, और जो एक अत्यन्त गम्भीर कदम था, तो क्या उससे पहले आपने यह उचित नहीं समझा कि इस सम्बन्धमें डिप्टी कमिश्नरसे

गांधीजी और गुरुदेव, अहमदाबादमें (अप्रैल, १९२०)
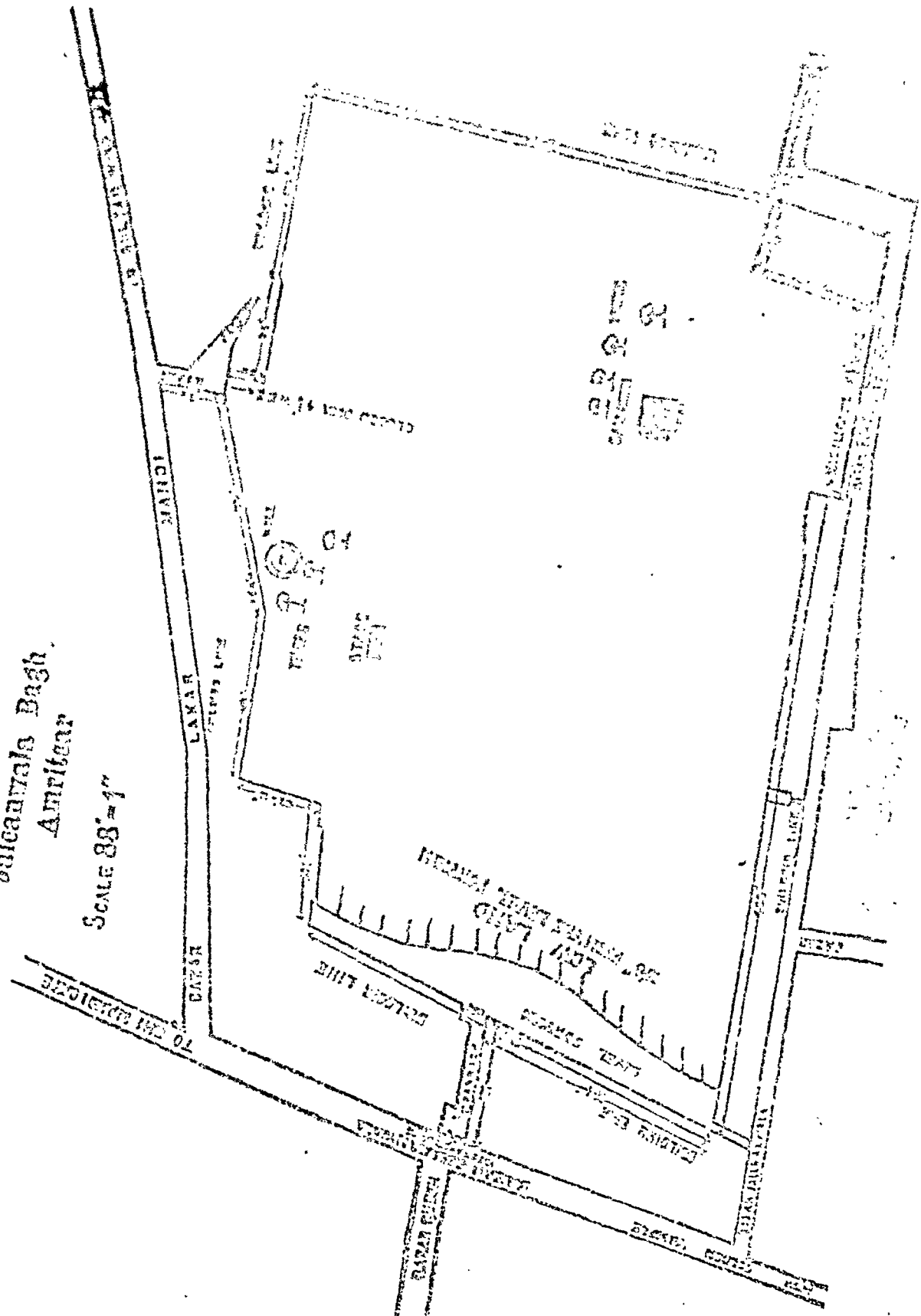
नक्शा : जलियांवाला बाग, अमृतसर

परामर्श ले लें, जो शहरमें अमन बनाये रखनेके लिए जिम्मेदार असैनिक अधिकारी थे?

उ० – इस समय कोई डिप्टी कमिश्नर नहीं था, जिससे में परामर्श करता। मैंने यह ठीक नहीं समझा कि इससे आगे और किसीसे सलाह लूं। मुझे एकदम यह निर्णय करना पड़ा कि मुझे क्या करना चाहिए। मैं सैनिक दृष्टिसे इस निर्णयपर पहुँचा कि मुझे तुरन्त गोली चलानी चाहिए और मेरे लिए यह न करना अपने कर्त्तव्यसे डिगना होगा। . . .

प्र० – क्या गोली चलानेमें आपका उद्देश्य भीड़को तितर-बितर करना था?

उ० – नहीं जनाब, मेरा इरादा था कि तबतक गोली चलाता रहूँ जबतक कि वे तितर-बितर न हो जायें।

प्र० – क्या आपके गोली चलाते ही भीड़ तितर-बितर होने लगी थी?

उ० – तुरन्त।

प्र० – क्या आपने गोली चलाना जारी रखा?

उ० – जी हाँ।

प्र० – जब भीड़ने यह प्रकट कर दिया था कि वह तितर-बितर हो जायेगी तो आपने गोली चलाना बन्द क्यों नहीं किया?

उ० – मैंने सोचा कि मेरा यह कर्त्तव्य है कि तबतक गोली चलाता रहूँ जबतक वह बिलकुल छँट न जाये। यदि मैं कम गोली चलाता तो फिर तो मेरा गोली चलाना ही गलत होता।

फिर कई प्रश्नोंके उत्तरमें जनरल डायरने बताया कि वे लगभग १० मिनटतक गोली चलाते रहे; कि उन्हें "भीड़को तितर-बितर करनेके इस प्रकारके तरीकोंका कोई सैनिक अनुभव" नहीं था; कि "शायद बिना गोली चलाये भी वे भीड़को तितर-बितर" कर सकते थे। किन्तु उन्होंने गोली चलाई क्योंकि "वे सब फिर वापस आ जाते और उनपर हँसते और उनकी स्थिति हास्यास्पद हो जाती।" एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने गोली चलानेके लिए निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किये:

मुझे लगा कि वे मुझपर और मेरे सैनिकोंपर एकाएक हमला करना चाहते हैं। इस सबसे यह जाहिर था कि यह एक व्यापक आन्दोलन था और केवल अमृतसरतक ही सीमित नहीं था, और वहाँकी स्थिति एक व्यापक सैनिक कार्रवाईकी स्थिति थी जो केवल अमृतसरतक ही सीमित नहीं थी।

जनरल डायरने १६५० गोलियाँ चलाई थीं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यदि वे बख्तरबन्द गाड़ियोंको बागके अन्दर ले जा सकते तो अवश्य ऐसा करते और उनसे गोलियाँ चलवाते; उन्होंने गोली चलाना इसलिए बन्द किया कि कारतूस खत्म हो गये थे और भीड़ बहुत घनी थी। उन्होंने घायलोंकी प्राथमिक चिकित्सा या उन्हें ले जानेकी कोई व्यवस्था नहीं की थी। उनके विचारसे, उस समय घायलोंकी

[illegible] कमजोर नहीं था। यह एक निःशस्त्र-सम्मेलनका प्रश्न था। लोगोंकी भगदड़ बन्द होते ही न [illegible] भी आये। जनरल डायरने "गोली चलाना बीच-बीच उस समय बिलकुल [illegible] हुक्म देते थे जब भीड़ सबसे अधिक घनी जान पड़ती थी।" यह [illegible] इनकार नहीं किया कि वे भागनेमें [illegible] गोली चला रहे थे उन्होंने स्वीकार किया कि वे (जनरल डायर) "यह निश्चय कर चुके थे कि लोगोंको यहाँ इकट्ठे होनेकी सजा दी जाये।"

अब हम इस भयानक और [illegible] दृश्योंके प्रत्यक्षदर्शी गवाहोंके मुँहसे प्रस्तुत करेंगे। हम लाला गिरधारीलालके बयानका हवाला पहले ही दे चुके हैं। उन्हें बागके नजदीक ही एक मकानसे सारा दृश्य देखनेको मिला:

> मैंने सैकड़ों लोगोंको जहाँ-तहाँ मरते देखा। सबसे बुरी बात यह थी कि गोलियाँ उन रास्तोंकी ओर चलाई जा रही थीं जहाँसे लोग बाहरकी ओर भाग रहे थे। निकलनेके लिए केवल ४–५ छोटे-छोटे रास्ते थे और इन सभी रास्तोंपर भीड़के ऊपर गोलियोंकी सचमुच बौछार हो रही थी, और . . . कई लोग भागती हुई भीड़में पैरोंके नीचे कुचलकर मर गये। खूनकी नदियाँ बह रही थीं। जो लोग जमीनपर लेट गये थे उनपर भी गोलियाँ चलाई गईं। . . . मृतकों या घायलोंकी देखभालके लिए अधिकारियोंने कोई प्रबन्ध नहीं किया था। . . . तब मैंने घायलोंको पानी पिलाया और उनकी जो सहायता मैं कर सकता था वह की। . . . मैंने पूरी जगहका चक्कर लगाया और वहाँ पड़ी लगभग प्रत्येक लाशको देखा। जगह-जगहपर मृतकोंके ढेर लगे हुए थे। मृतकोंमें वयस्क और किशोर दोनों ही थे। किसीकी खोपड़ी खुल गई थी, किसीकी आँख गोलीसे उड़ गई थी, किसीकी नाक, किसीका सीना, किसीके हाथ-पैरोंके टुकड़े-टुकड़े उड़ गये थे। . . . मेरा खयाल है, उस समय १,००० से अधिक लाशें बागमें होंगी। . . . मैंने देखा कि लोग जल्दी-जल्दी भाग रहे थे और बहुतोंको अपने घायल या मृतक परिजनोंको वहाँ छोड़ना पड़ा, क्योंकि उन्हें भय था कि रातके आठ बजेके बाद उनपर फिर गोली चलाई जायेगी।" (बयान १, पृष्ठ १०-११)

यहाँ यह बता देना ठीक होगा कि १२ अप्रैलको डुग्गी पीटकर जो घोषणा की गई थी उसका दूसरा भाग इस प्रकार था:

> शहरमें रहनेवाले किसी भी व्यक्तिको ८ बजेके बाद घरसे निकलनेकी इजाजत नहीं है। ८ बजेके बाद यदि कोई व्यक्ति बाहर दिखाई देगा तो उसे गोली मारी जा सकती है।

गवाहने आगे कहा है:

> बहुतसे घायल जो बागसे निकलनेमें किसी तरह कामयाब हो गये, रास्तेमें घावोंके कारण मर गये और सड़कोंपर पड़े रहे। वैसाखीका पर्व अमृतसरकी जनताने इस प्रकार मनाया।

जहाँतक मृतकोंकी संख्याका सम्बन्ध है, यह दिलचस्प बात है कि सरकारके अपने कथनके ही अनुसार उसकी जाँच २० अगस्तसे पहले शुरू नहीं हुई, यानी गोलीकाण्डके ४ महीने बाद। तब श्री टॉमसनने घोषित किया कि २९० से अधिक लोग नहीं मरे थे। यों अब उन्होंने सेवा समिति द्वारा दी गई संख्या मान ली है जो ५०० है और जो प्रत्येक व्यक्तिका पूरा पता लगानेके बाद निश्चित की गई है, और कमसे-कम है। ठीक-ठीक संख्या कभी भी ज्ञात नहीं हो सकेगी, किन्तु बहुत सावधानीसे जाँच करनेके बाद हमारा विचार है कि लाला गिरधारीलालने जो हिसाब लगाकर १,००० की संख्या बताई वह किसी प्रकार अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। उस छोटी-सी जगहमें २०,००० लोगोंपर, और सो भी जिधर भी भीड़ सबसे ज्यादा घनी दिखाई दी उधरको, गोलियोंकी बौछार करनेके बाद यदि सैनिक लोग १,००० व्यक्तियोंको भी नहीं मार सके हों तो यही कहा जायेगा कि उन्हें ठीकसे गोली चलाना नहीं आता था। याद रहे कि हँसलीकी तरफसे और हँसलीके अन्दर भी, जो एक तंग गली है और नक्शेमें दाईं ओर दिखाई गई है,[1] गोलियाँ चलाई गईं। इस गलीके सामनेवाले छज्जे-पर हमने गोलियोंके निशान देखे; और हमारे सामने इस बातकी गवाही पेश की गई है कि बागके बाहर वहाँसे निकलनेके सभी रास्तोंपर सैनिक तैनात थे और जब लोग इन रास्तोंपर भाग रहे थे उस समय उनपर गोलियाँ दागी गईं? इसमें सन्देह नहीं कि जनरल डायरकी योजना यह थी कि अधिकसे-अधिक लोग मारे जायें और यदि मरनेवालोंकी संख्या १,००० से अधिक नहीं थी तो इसमें उनका दोष नहीं। उनके कारतूस खत्म हो गये थे और गली इतनी सँकरी थी कि वे अपनी बख्तरबन्द गाड़ियाँ बागके अन्दर नहीं ले जा सके थे।

१३ तारीखकी वीभत्स घटनाओंका तफसीलसे बयान कर सकना — जस्टिस रैंकिनके शब्दोंमें, उसकी "भयंकरता" का पूरा-पूरा विवरण देना — सम्भव नहीं है। उनको अच्छी तरह समझनेके लिए यह आवश्यक है कि सब सरकारी गवाहियोंको, और जो गवाहियाँ हमने प्रकाशित की हैं, उन्हें पूरा पढ़ा जाये। १० अप्रैलकी हिंसात्मक घटनाओंके बाद अंग्रेज अधिकारी क्रुद्ध हो गये थे, और शायद यह उचित ही था। वे ही लोग, जिनके प्रति वे सौजन्यसे पेश आया करते थे, अब उनके लिए अरुचिकर हो गये थे। अमृतसरके एक जाने-माने नागरिक लाला ढोलनदास ऐसे ही लोगोंमें से थे। जब वे अधिकारियोंकी प्रार्थनापर उनसे मिलने गये तो उन्होंने उन्हें क्रुद्ध पाया।

> सभी लोग बहुत ही उत्तेजित मनःस्थितिमें थे। यहाँतक कि श्री सीमूरने यह कहा बताते हैं कि एक-एक यूरोपीयकी जानके लिए एक-एक हजार हिन्दुस्तानियोंको कुर्बान कर दिया जायेगा। किसीने सुझाव दिया कि शहरपर गोलाबारी की जाये। इसपर लाला ढोलनदासने अधिकारियोंको सूचित किया कि यदि किसी भी प्रकार स्वर्ण मन्दिरके किसी हिस्सेको छुआ गया या उसको क्षति पहुँची तो भयंकर संकट उत्पन्न हो जायेगा, क्योंकि यह मन्दिर सारे पंजाबके लिए पवित्र स्थल है। (बयान १, पृष्ठ ७)

१. देखिए पृष्ठ १९३ के सामनेका चित्र।

११ अप्रैलको बैरिस्टर श्री मुहम्मद शादिक, कुछ और लोगोंके साथ अधिकारियों-के पास मृतकोंके अन्तिम संस्कारके सिलसिलेमें बात करने गये। वे कहते हैं:

> जो बातचीत मैंने उनसे की उससे मुझे लगा कि चूँकि यूरोपीय लोगोंकी हत्याएँ हुई हैं अतः उनके खूनका बदला अवश्य लिया जायेगा और यदि जरा भी प्रतिरोध या अवज्ञा हुई या शान्तिभंग हुई तो पर्याप्त शक्तिका उपयोग किया जायेगा और यदि आवश्यक हुआ तो शहरपर गोलाबारी भी की जायेगी। (बयान १९)

सब-असिस्टेंट सर्जन डॉ० बालमुकुन्द कहते हैं कि ११ अप्रैलको सिविल सर्जन कर्नल स्मिथने नीचे लिखे शब्द कहे:

> जनरल डायर आ रहे हैं और वे शहरपर बमबारी करेंगे। उन्होंने नक्शा खींचकर हमें बताया कि किस-किस स्थानपर गोले गिराये जायेंगे और किस प्रकार आधे घंटेके अन्दर शहरको तहस-नहस कर दिया जायेगा। मैंने बताया कि मैं शहरमें रहता हूँ और पूछा कि यदि बमबारी हुई तो मेरा क्या होगा। उन्होंने मुझे सलाह दी कि यदि मैं अपनी जान बचाना चाहता हूँ तो अच्छा होगा कि मैं शहर छोड़ दूँ और अस्पतालमें रहने लगूँ। (बयान २०, पृष्ठ ५६)

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि १३ अप्रैलकी "विभीषिका" की पृष्ठभूमि क्या थी। एक जबरदस्त प्रहार करना बाकी था। गोलाबारी करनेका विचार स्पष्टतः छोड़ दिया गया। १३ अप्रैलकी सभाके रूपमें एक बहुत अच्छा अवसर हाथ आ गया और जनरल डायरने उससे लाभ उठाया। श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजने उसे कत्लेआम कहा है जो ग्लैंकोके कत्लेआमकी[1] ही तरह था। यदि अमानुषिकताका मूल्यांकन करनेके लिए उसे श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है तो हम समझते हैं कि ग्लैंकोका कत्लेआम जलियाँवाला बागके कत्लेआमसे भी बुरा था, किन्तु आजके युगमें औचित्यका जो स्तर अपेक्षित है, उसे ग्लैंकोके कत्लेआमके दिनोंमें सैनिक नियमावलियोंमें मान्यता नहीं मिली थी। हमारे खयालसे जिन लोगोंने घोषणा सुनी थी उन्होंने भी उसके उस भागका ठीक-ठीक महत्त्व या अर्थ नहीं समझा था, जिसमें सभाओं आदिपर रोक लगाई गई थी। उस सभामें घोषणाकी खुली अवहेलना करके एक भी व्यक्ति नहीं गया था। सैनिक अधिकारियोंको उत्तेजनाका कोई कारण नहीं दिया गया था, और न अमृतसरमें या अमृतसरके बाहर ही कोई ऐसी बात हुई थी, जिससे कत्लेआमका औचित्य ठहरता। यह एक सोच-विचारकर किया हुआ अमानुषिक कृत्य था और यदि भारतमें अंग्रेजी शासन इस अक्षम्य अपराधसे मुक्त होना चाहता है तो जनरल डायरको उनकी कमानसे फौरन मुक्त करके न्यायोचित कार्रवाई की जानी चाहिए।

उन्होंने लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने कहा है कि सर माइकेल ओ'डायरने उनके कार्यका समर्थन किया है। हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक ऐसे व्यक्तिने, जो पंजाबकी जनताका संरक्षक था, मानवताके प्रति ऐसे जघन्य अपराधका किस प्रकार

१. यह कत्लेआम सन् १६९२ में विलियम और मेरीके शासनकालमें स्कॉटलैंडमें हुआ था।

समर्थन किया। सैनिक कानूनके अन्तर्गत भी — चाहे वह तथ्यगत हो या विधिवत् — सैनिक कमांडर शालीनताके कुछ नियमोंसे बँधे होते हैं। हम निवेदन करना चाहते हैं कि जनरल डायरने इन नियमोंकी पूर्ण रूपसे अवहेलना कर दी। हम फिर यह कह दें कि हम किसी भी रूपमें अंग्रेजोंकी हत्या या आगजनीका न तो समर्थन करना चाहते हैं और न उसको कम करके बताना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि उनके लिए कोई सफाई नहीं दी जा सकती। किन्तु एक क्रुद्ध भीड़के किसी भी कृत्यके आधारपर चाहे वह कितना ही जघन्य हो, निर्दोष जनताके उस कत्लको उचित नहीं ठहराया जा सकता जिसके लिए जनरल डायर दोषी हैं।

चौदह अप्रैलका दिन जनताने मृतकों और घायलोंको उठानेमें और मृतकोंको जलाने या दफनानेमें बिताया। इसके लिए अधिकारियोंकी इजाजत लेना आवश्यक था, और जो संक्षिप्त-सा फरमान जारी किया गया वह इस प्रकार था:

> **सर्वसाधारण जब भी चाहे, अपने मृतकोंको जला या दफना सकता है। किसी भी प्रकार कोई प्रदर्शन न हो।**

लॉर्ड हंटरने १४ तारीखको शहरकी हालतके बारेमें प्रश्न किये, जनरल डायरने उत्तर दिया:

> **मैं यह देखनेके लिए शहरमें घूमा कि मेरे आदेशका पालन हुआ है या नहीं। मैं उन स्थानोंमें भी गया जहाँ सैनिक तैनात थे। सब-कुछ शान्त था।**

२ बजेके लगभग नागरिकों, नगरपालिकाके सदस्यों, मजिस्ट्रेटों और व्यापारियोंकी एक बैठक कोतवालीमें बुलाई गई जिसमें कमिश्नरने निम्नलिखित भाषण दिया:

> **आप लोग शान्ति चाहते हैं या युद्ध? हम हर तरह तैयार हैं। सरकारके पास सब शक्ति है। सरकारने जर्मनीको जीत लिया है और वह सब-कुछ कर सकती है, जनरल डायर आज आदेश जारी करेंगे। शहर उनके नियन्त्रणमें है, मैं कुछ नहीं कर सकता। आप लोगोंको उनके आदेशोंका पालन करना पड़ेगा। (बयान १, पृष्ठ ११)**

इसके बाद कमिश्नर श्री किचिन चले गये। जनरल डायर सर्वश्री माइल्स इर्विंग, रिहिल, प्लोमर और सैनिक अंगरक्षकोंके साथ ५ बजेके लगभग आये। वे तेजीसे कमरेमें घुसे और उनके पीछे-पीछे दूसरे लोग भी। सब लोग अत्यन्त क्रुद्ध थे। जनरलने उर्दूमें एक भाषण दिया। उसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है:

> **आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि मैं एक सिपाही और सैनिक हूँ। आप लोग युद्ध चाहते हैं या शान्ति? अगर आप लोग युद्ध चाहते हैं तो सरकार उसके लिए तैयार है; यदि आप शान्ति चाहते हैं तो मेरे आदेशपर चलिए और अपनी दुकानें खोल दीजिए, अन्यथा मैं गोलियाँ चलाऊँगा। मेरे लिए जैसा फ्रांसका मोरचा वैसा अमृतसरका। मैं सैनिक हूँ और सीधी कार्रवाई करूँगा। न मैं दाईं ओर जाऊँगा, न बाईं ओर। यदि आप युद्ध चाहते हैं तो साफ कहिए।**

अगर शान्ति रखनी है तो मेरा आदेश है कि तुरन्त सब दुकानें खोल दी जायें। आप लोग सरकारकी बुराई करते हैं और जर्मनी और बंगालमें पढ़े लोग राजद्रोहकी बातें करते हैं। मैं इन सबकी रिपोर्ट भेजूंगा। आदेशोंका पालन कीजिए। इसके अलावा और कोई चीज मुझे मंजूर नहीं। मैंने तीस सालसे अधिक समयतक सेनामें नौकरी की है। मैं हिन्दुस्तानी सिपाहियों और सिख लोगोंको भलीभांति समझता हूँ। आपको शान्ति रखनी होगी अन्यथा बलपूर्वक राइफलोंके जरिये दुकानें खुलवाई जायेंगी। आप मुझे बदमाशोंके बारेमें खबर कीजिए। मैं उन्हें गोलीसे उड़ा दूंगा। मेरे आदेशोंका पालन कीजिए, और दुकानें खोल दीजिए। यदि आप युद्ध चाहते हैं तो वैसा कहिए।

जनरल डायरके बाद डिप्टी कमिश्नर श्री माइल्स इर्विंगने भाषण दिया। हम उनके भाषणमें से दो वाक्य प्रस्तुत करते हैं:

आप लोगोंने अंग्रेजोंको मारकर बुरा काम किया, इसका बदला आप लोगोंसे और आपके बच्चोंसे लिया जायेगा।

१५ तारीखको सभी दुकानें खोल दी गईं। १३ तारीखकी प्रतिशोधात्मक कार्रवाई, १४ तारीखके भाषण और फिर दुकानोंका खुल जाना — इन सबके बाद तो कोई भी यही सोचता कि साधारण असैनिक शासन फिर शुरू हो जायेगा। किन्तु यह नहीं होनेको था। पूरा बदला अभी नहीं लिया गया था। और इसलिए सैनिक कानूनकी घोषणा[1] कर दी गई, और अबतक जो चीज तथ्य रूपमें मौजूद थी, उसपर कानूनकी मोहर लग गई। सैनिक कानून ९ जूनतक चालू रहा और अमृतसरके लोगोंकी जिन्दगी तरह-तरहसे दुश्वार बना दी गई:

१. जिस सड़कपर कुमारी शेरवुडपर आक्रमण हुआ था वह लोगोंपर कोड़े लगानेके लिए नियत कर दी गई, और आने-जानेवालोंको मजबूर किया गया कि वे वहाँसे पेटके बल रेंगते हुए गुजरें।

२. सबको मजबूर किया गया कि वे सलाम करें — कहनेको केवल अंग्रेज अफसरोंको, किन्तु वास्तवमें सभी अंग्रेजोंको। ऐसा न करनेपर गिरफ्तार करने और जलील करनेकी धमकी दी गई।

३. छोटी-छोटी बातोंके लिए भी कोड़े लगते थे — सार्वजनिक रूपसे भी तथा और तरहसे भी।

४. शहरके सब वकीलोंको बिना वजह विशेष पुलिस-सिपाही बना दिया गया और उनसे साधारण कुलियोंकी भाँति काम कराया गया।

५. किसीके दरजे-रुतबेका खयाल किये बिना लोगोंकी अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियाँ की गईं। और नजरबन्दीके दौरान उनसे अपराधकी स्वीकृति या गवाही लेनेके लिए या सिर्फ उन्हें जलील करनेके लिए उनकी बेइज्जती की गई, उन्हें तकलीफें और अवर्णनीय यन्त्रणाएँ दी गईं।

१. १५ अप्रैलको।

६. अपराधोंकी जाँचके लिए विशेष अदालतें स्थापित की गईं। जिन्होंने कानूनके नामपर बहुत अन्याय किया और फिर न्यायके नामपर अन्यायके शिकार होनेवाले इन लोगोंको अपीलका भी अधिकार नहीं दिया गया।

अब हम उस आदेशपर आते हैं जिसे रेंगनेका आदेश कहा जाता है। जिस गलीमें लोगोंको रेंगना पड़ता था, वह एक तंग और घनी आबादीवाली जगह है। इसके दोनों ओर दुमंजिली इमारतें हैं और उसमें से कई सँकरी-सँकरी गलियाँ निकलती हैं, जिनमें बहुत-से मकान हैं। इस गलीके निवासियोंके लिए, यदि उन्हें सौदा खरीदनेके लिए या शहर जाना होता था तो इसके सिवा कोई चारा नहीं था कि वे उसके किसी भागसे गुजरें — रेंगते हुए आयें और जायें। स्वास्थ्य-सफाई सम्बन्धी कोई भी सहायता बिना रेंगे हुए नहीं मिल सकती थी। जिस गलीके लिए यह आदेश जारी किया गया था, उसकी पूरी लम्बाई लगभग १५० गज है। साथका नक्शा देखनेपर इसके बीचोबीच एक आयत दिखाई देगा, जिसपर 'टिकटिकी' लिखा हुआ है।[1] यह चौखटा कोड़े लगानेके लिए विशेष रूपसे खड़ा किया गया था। यह आदेश ८ दिन-तक लागू रहा। यद्यपि जनरल डायरने इसको "चारों हाथ-पैरोंसे चलना" कहा है, और इसे अखबारोंमें "हाथ और घुटनोंका आदेश" कहा गया है, लेकिन इसका तरीका यह था कि लोगोंको पेटके बल लेटना पड़ता था और फिर छिपकलीकी तरह रेंगना होता था। यदि रेंगनेवाला जरा भी घुटनोंको उठाता या मोड़ता था तो उसकी पीठपर राइफलके कुन्दे पड़ते थे, इसलिए चलनेका काम केवल पेट और हाथोंके बल करना पड़ता था। यह गली, हिन्दुस्तानकी अधिकांश गलियोंकी भाँति ही गन्दी है और कूड़े-कचरेसे भरी है और इसमें कंकड़-पत्थर भी हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि आदेश जबानी ही दिया गया था और ऊपरके अधिकारियोंके आदेशसे फिर वापस ले लिया गया था। जनरल डायरने इस आदेशके लिए ये कारण प्रस्तुत किये :

> मुझे लगा कि स्त्रियोंको पीटा गया है। स्त्रियोंको हम पवित्र मानते हैं। मैंने इसपर बहुत विचार किया कि ऐसे भयंकर कार्योंके लिए उपयुक्त सजा क्या हो सकती है। मेरी समझमें नहीं आया कि क्या करना चाहिए। इसमें कुछ संयोगका तत्त्व रहा। जब मैं सन्तरियोंको देखने गया तो मैंने आज्ञा दी कि एक त्रिभुजाकार ढाँचा खड़ा किया जाये। मैंने महसूस किया कि इस गलीको पवित्र समझा जाना चाहिए। इसलिए मैंने दोनों ओर सन्तरी तैनात कर दिये और उन्हें आज्ञा दी कि "इधरसे किसी भी हिन्दुस्तानीको गुजरने न दिया जाये" मैंने यह भी कहा, "यदि उन्हें यहाँसे जाना ही हो तो उन्हें हाथ-पैरोंके बल चलकर जाना होगा।" मेरे मनमें यह विचार ही नहीं आया कि कोई भी आदमी जिसके होश-हवाश दुरुस्त हों ऐसी स्थितिमें स्वेच्छासे वहाँसे गुजरना चाहेगा।

१. देखिए पृष्ठ १९३ के सामनेका चित्र ।

इस तरह जान-बूझकर इतना दुष्टतापूर्ण दण्ड देनेका दूसरा उदाहरण मुश्किलसे ही मिलेगा। कुमारी शेरवुडपर १० अप्रैलको आक्रमण हुआ था और आदेश १९ तारीखको जारी किया गया। इसका पालन उन लोगोंको भी करना था जिन्होंने कुमारी शेरवुडको शायद कभी देखा भी नहीं होगा। हो सकता है, उन्होंने कुमारी शेरवुडपर किये गये इस कायरतापूर्ण हमलेकी निन्दा भी की हो, और मैं समझता हूँ अमृतसरके अधिकांश लोगोंने अवश्य ही ऐसा किया होगा। किन्तु ऐसे ही लोगोंको इस दण्डका भागी होना पड़ा। जो आदमी दण्डके ऐसे नित नये तरीके ढूंढ़ता रहता है और फिर लोगोंको ऐसे दण्ड देनेमें मजा लेता है, उसकी मनोवृत्तिको क्या कहा जाये? सन्तरी सुबह ६ बजेसे रातको ८ बजेतक तैनात रहते थे। इसलिए जब लॉर्ड हंटरने पूछा कि ऐसा आदेश जारी करनेकी क्या आवश्यकता थी जिसका उद्देश्य विधिवत् निवास करनेवाले नागरिकोंको चारों हाथ-पैरोंसे चलनेके लिए मजबूर करना था, तो जनरल डायरने उत्तर दिया: "वे इसके अतिरिक्त और किसी भी समय आ-जा सकते थे", यानी रातको १० बजेके बादसे सुबह ६ बजेतक। (१५ तारीखको समय ८ बजे शामसे बदलकर १० बजेतक कर दिया गया था।) जनरल डायर भूल गये कि एक दूसरा आदेश इसके विरुद्ध पड़ता था, क्योंकि रात १० बजेके बाद कोई घरसे नहीं निकल सकता था और यदि कोई निकलता तो उसे गोली मारी जा सकती थी। फिर भी वे उसी उत्तरमें आगे यह भी कह गये:

> मैं नहीं समझता कि इससे लोगोंको कोई बहुत असुविधा हुई। यदि उन्हें थोड़ी-सी तकलीफ उठानी भी पड़ी तो सैनिक कानूनके अनुसार इसमें कोई हानि नहीं है। वे जीवनके लिए आवश्यक चीजें अन्य साधनोंसे प्राप्त कर सकते थे। यदि उन्हें थोड़ीसी दिक्कत उठानी पड़ी तो उसमें कुछ किया नहीं जा सकता था।
>
> लॉर्ड हंटरने कहा:
>
> आप यह तो मानेंगे कि अशान्तिके दिनोंमें शान्तिप्रिय नागरिकोंके लिए उपद्रव रोकनेमें सहायता देना कठिन हो जाता है। इसलिए यह उचित नहीं है कि इस तरहका दण्ड केवल उपद्रवी भीड़के लिए रखा जाये और कानूनपर चलनेवाले नागरिकोंको उससे अलग रखा जाये?
>
> जनरल डायरने उत्तर दिया:
>
> जी हाँ, वे कानूनपर चलनेवाले नागरिक थे, पर मैंने उस समय केवल दुष्टोंको दण्ड देनेकी बात ही सोची थी।
>
> प्र० – किन्तु इस गलीमें उन लोगोंका बहुत आना-जाना नहीं था, जिन्होंने कुमारी शेरवुडको पीटा था?
>
> उ० – नहीं, पर मैंने वहाँ गलीके बीचमें एक मंच खड़ा कर दिया था और मेरा इरादा था कि जब वे लोग मिल जायेंगे जिन्होंने कुमारी शेरवुडको पीटा था तो मैं उन्हें कोड़े लगाऊँगा। उनको कोड़ोंसे मारनेका मेरा पक्का इरादा था।"

एक क्षणके लिए हम देखें कि वास्तवमें हुआ क्या। लाला ईश्वरदास अमृतसर की एक बड़ी फर्ममें सहायक हैं। १८ अप्रैलको वे लाला लाभचन्दके घर गये। यह घर नक्शेमें[1] निशान लगाकर दिखाया गया है। अचानक श्री प्लोमर सैनिकोंके साथ गलीमें पहुँच गये। लाला ईश्वरदास और उनके मित्र एक खिड़कीसे झाँक रहे थे। श्री प्लोमरने उनपर अपना चावुक घुमाया और उनसे कहा कि खड़े होकर सलाम करें। लाला लाभचन्दसे अपने मकानका एक भाग सैनिकोंके रहनेके लिए खाली कर देनेको कहा गया।

गवाह कहता है:

> अपराह्नके लगभग ४ वजे ईश्वरदास, पन्नालाल, मेलाराम और मैंने घर जाना चाहा किन्तु पुलिसने इसकी इजाजत नहीं दी। हमने दुवारा इजाजत माँगी, किन्तु यह इजाजत इस शर्तपर दी गई कि हम गलीमें से रेंगते हुए जायें। इस तरह हम सवको पेटके वल रेंगकर गलीमें से गुजरना पड़ा। दूसरी किसी सड़कसे हम अपने घरोंको नहीं जा सकते थे। (वयान १०४, पृष्ठ १६३)

हम यहाँ वता दें कि यह आदेशका पहला दिन था और उसकी घोषणा नहीं हुई थी — न लिखित, न जवानी। लोग तभी उसके वारेमें जान पाये जव वह कार्यान्वित किया जा रहा था।

एक दूसरे गवाह लाला मेघामल, जो कपड़ेके व्यापारी हैं, कहते हैं:

> मेरा घर कूचा कूड़ीचान (रेंगनेवाली गलीसे निकलनेवाला एक गलियारा) में है, और मेरी दूकान गुरु वाजारमें है। कूचा कूड़ीचानमें जिस दिन पहले-पहल सैनिक तैनात किये गये, उसी दिन मैं जव शामको लगभग ५ वजे घर लौट रहा था तो मुझे सैनिकोंने रोक लिया और मुझे पेटके वल रेंगनेका आदेश दिया गया। किन्तु मैं भाग खड़ा हुआ और तवतक वहाँसे दूर रहा जवतक सैनिक चले नहीं गये। उस दिन मैं रातको ९ वजे घर पहुँचा और मैंने देखा कि मेरी स्त्री वुखारमें पड़ी हुई है। उसे देनेके लिए घरमें पानीतक नहीं था और न डाक्टरका प्रवन्ध हो सकता था, न दवाईका। मुझे वहुत रातको स्वयं पानी भरकर लाना पड़ा। इसके वादके सात दिनोंतक मेरी स्त्री विना इलाजके पड़ी रही, क्योंकि कोई भी डाक्टर पेटके वल रेंगनेके लिए तैयार नहीं हो सकता था। (वयान ११४)

इस गलीमें एक जैन सभा मन्दिर है, जिसमें कुछ साधु रहते हैं। मंदिरके नजदीक अफीमके ठेकेदार लाला रलियारामका एक मकान है। जव वे अपनी दुकान जा रहे थे तो उन्हें रेंगनेके लिए मजवूर किया गया। वे कहते हैं:

> जव मैं रेंग रहा था तो उन्होंने मुझे वूट मारे और राइफलके कुंदोंसे भी मुझपर चोटें कीं। उस दिन मैं खाना खानेके लिए घर नहीं गया।... पूरे ८

[1] १. देखिए पृष्ठ १९३ के सामनेवाला चित्र।

478

> दिनोंतक कहीं एक भी मेहतर नहीं दिखाई दिया। इसलिए घरोंका कूड़ा नहीं उठाया जा सका और पाखाने भी साफ नहीं किये गये। भिश्ती भी लगातार गैरहाजिर रहा। . . . न हमें सब्जियां मिल सकीं और न खानेकी दूसरी चीजें। (बयान १०२)

जैन मन्दिरके लाला गनपतराय, जो इसी गलीमें रहते हैं, अपने बयानमें कहते हैं :

> जो लोग पूजाके लिए सड़कपर स्थित मन्दिर जाना चाहते थे उन्हें भी उसी प्रकार रेंगनेके लिए विवश किया गया (बयान १२२)।

लाला देवीदासको, जिनका बैंकका रोजगार है, रेंगनेका आदेश दिया गया। उन्होंने कहा कि वे वापस अपने घर लौट जायेंगे, लेकिन उन्हें रेंगनेके लिए बाध्य किया गया। वे कहते हैं :

> पहले मैंने अपने हाथों और घुटनोंके बल चलनेकी कोशिश की पर मुझे संगीनसे धमकाया गया और मुझे पेटके बल रेंगना पड़ा। (बयान ९९)

काहनचन्द पिछले २० सालसे अन्धे हैं। उन्हें भी रेंगनेको बाध्य किया गया और उनको ठोकरें मारी गईं। (बयान १०५)

अब्दुल्लाको, जो पेशेसे अध्यापक हैं, रेंगना पड़ा और जब वे रास्तेमें सुस्ताने-को रुके तो उनको बूटों और राइफलके कुंदोंसे पीटा गया। स्थूलकाय होनेके कारण उनका सारा शरीर जहाँ-तहाँ छिल गया। (बयान १०६)

जिस समय रेंगनेके आदेशको कार्यान्वित किया जा रहा था उसी समय दूसरी ओर पवित्र कबूतरों और दूसरे पक्षियोंको मारा गया। गलीके एक सिरेपर स्थित पिंजरापोलको, जहाँ जानवरोंकी देख-भाल होती है और जो एक पवित्र स्थान माना जाता है, भ्रष्ट किया गया। गलियोंमें स्थित कुओंको सैनिकोंने उनके नजदीक पेशाब करके दूषित कर दिया। (बयान १२१)

सरकारी साक्ष्यके अनुसार ५० व्यक्तियोंको रेंगनेकी बर्बरतापूर्ण और अमानुषिक सजा दी गई।

जिन लोगोंको जबरदस्ती सलाम करनेकी बेइज्जतीका शिकार नहीं होना पड़ा है वे आसानीसे यह नहीं समझ सकते कि जिसको यह करनेके लिए बाध्य किया जाता है उसे कितने अपमानका अनुभव होता है। हम लोग भी, जिन्हें सलाम करनेकी मजबूरीसे गुजरनेवालोंकी जबानी उसका विवरण सुननेको मिला है, अन्दाजा ही लगा सकते हैं कि उनको कैसा लगा होगा। सलामीका आदेश, जिसे एक १,६०,००० की आबादीवाले शहरमें लागू किया गया, कोई छोटी बात नहीं थी। इसका अर्थ था खड़े होना और दायें हाथको एक खास तरीकेसे घुमाना। फिर इसमें कोई आश्चर्य नहीं — कुछ गवाह ऐसा बताते हैं — कि ठीकसे सलाम न करनेके लिए उन्हें गिरफ्तार किया गया। और आदेश केवल ठीक तरह सलाम करवानेमें ही समाप्त नहीं होता था; जो यह नहीं कर पाते थे, उन्हें कई प्रकारकी सजाएँ दी जाती थीं।

लाला हरगोपाल खन्ना, बी० ए०, १८ अप्रैलको कुछ मित्रोंके साथ एक गलीसे गुजर रहे थे। उन्होंने घोड़ोंपर आते हुए पुलिसके कुछ सिपाही देखे और उनके पीछे-पीछे

जनरल डायरको। उन्हें हाथके इशारेसे बुलाया गया। लाला हरगोपालने जाकर फौजी ढंगसे सलाम किया। इसपर उनसे कहा गया कि उन्हें सलाम करना नहीं आता और आज्ञा दी गई कि वे दूसरे दिन रामबागमें हाजिर हों। उन्होंने जनरल डायरको सलाम करके उनसे विदा ली और शहरमें पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री प्लोमरसे पूछा कि रामबागमें वे किस जगह हाजिर हों। श्री प्लोमरने तुरन्त एक सिपाहीको आज्ञा दी कि उन्हें कोतवाल साहबके पास ले जाये। वहाँ पहुँचनेपर उन्हें २–३ और व्यक्तियोंके साथ गीले फर्शपर बिठाया गया। ७ बजे शामतक उनके साथ कुछ और भी आदमी हो गये। कोतवालीमें उन्हें खुले आसमानके नीचे बैठकर या लेटकर रात बितानी पड़ी। उनके ऊपर गुरखा सन्तरियोंका पहरा बिठा दिया गया। दूसरे दिन सुबह साढ़े आठ बजे उन्हें रामबाग ले जाया गया। वहाँ उन्हें तबतक धूपमें खड़ा रखा गया जबतक फौजके एक हवालदारने उन्हें सलाम करना नहीं सिखा दिया। इसके बाद उन्हें छोड़ दिया गया। (बयान ९५ या ९६)

एक अवैतनिक मजिस्ट्रेट मियाँ फीरोजदीन कहते हैं:

> जनरल डायर और श्री प्लोमरको सलाम करते समय खड़े न होनेके अपराधमें लोगोंको कोड़ोंसे पीटा जाता था। जो लोग सलाम नहीं करते थे उन्हें कभी-कभी गिरफ्तार कर लिया जाता था। इस तरह लोगोंको कोड़ोंकी सजा देते और गिरफ्तार करते मैं कई बार अपनी आँखोंसे देख चुका हूँ। लोग इतने आतंकित हो गये थे कि बहुतसे तो सामान्यतः दिन-भर खड़े रहते थे ताकि उनसे कोई भूल न हो जाये। और उन्हें इस तरहका दण्ड न भुगतना पड़े। मैंने "सामान्यतः" कहा है क्योंकि वे जहाँ किसी मोटरकी आवाज सुनते थे कि उठ खड़े होते थे। मैंने स्वयं यह किया। (बयान २)

कोड़ोंकी सजा, जहाँतक वह सार्वजनिक रूपसे दी जाती थी, न सिर्फ जलालत-भरी थी, बल्कि यातनापूर्ण भी थी और जो-कुछ सरकारी गवाहीमें कहा गया है उसके अलावा यह विचार कर सकना कठिन है कि आखिर कोड़ोंकी सजा दी क्यों गई। सरकारी गवाहीके अनुसार कोड़ोंकी सजा तथाकथित "सैनिक अनुशासन" को भंग करनेके लिए दी जाती थी, और जहाँतक उन लोगोंका सम्बन्ध है जिन्होंने कुमारी शेरवुडको पीटा था, जनरल डायरने स्वीकार किया है कि उनका इरादा रेंगनेवाली गलीमें उनपर कोड़े लगाना था। इस तरह ६ लड़कोंको चौखटपर कोड़े लगाये गये। चौखट नक्शेमें[1] निशान लगाकर दिखाई गई है। प्रत्येकको टिकटिकी (तिकोना ढाँचा) पर बाँधा गया और ३०–३० कोड़े मारे गये। उनमें से एक, सुन्दरसिंह

> चार कोड़े पड़ते ही बेहोश हो गया पर एक सिपाहीने उसके मुँहमें कुछ पानी डाला और उसे होश आ गया। उसपर कोड़े फिर पड़ने लगे। वह फिर बेहोश हो गया, किन्तु उसे पूरे तीस कोड़े लगाकर ही छोड़ा गया। जब उसे वहाँसे

१. देखिए पृष्ठ १९३ के सामनेवाला चित्र।

> ले जाया गया, उस समय उसके सारे शरीरसे खून वह रहा था और वह विलकुल वेहोश था।
>
> दूसरे लड़कोंके साथ भी यही व्यवहार हुआ और जब उनपर कोड़े पड़ रहे थे तब उनमें से अधिकतर वेहोश हो गये।
>
> उन सबके हथकड़ियाँ डाल दी गईं और चूंकि वे खुद दो कदम भी चल सकनेमें असमर्थ थे, पुलिस उन्हें घसीटकर ले गई। उन्हें किलेमें ले जाया गया। (वयान ११५, ११७ और ११८)

जनरल डायरने अपनी गवाहीमें कहा है कि वकील सिपाहियोंने उपयोगी काम किया और श्री किचिनने कहा है कि वकील लोगोंने यह काम पसन्द किया। आइए, देखें कि वकील लोग खुद इस प्रकार पुलिस सिपाही नियुक्त किये जानेके वारेमें और जो काम उन्हें करना पड़ा उसके वारेमें क्या कहते हैं। हम लाला कन्हैयालालका पहले ही जिक्र कर चुके हैं। वे अमृतसरके सबसे पुराने वकील हैं। वे भी इस सम्मानसे वच नहीं सके। वे कहते हैं:

> मैं आगे यह भी कह दूं कि शहरके दूसरे सब वकीलोंके साथ-साथ मुझे भी विशेष सिपाही वननेको वाध्य किया गया। यह नियुक्ति २२ अप्रैलको हुई, जवकि शहरमें शान्ति-सुव्यवस्था कायम रखनेके लिए इस तरहकी नियुक्तिकी जरा भी आवश्यकता नहीं थी। इसके लिए पुलिसके सिपाही ही पर्याप्त थे, और सचमुच शहरमें उन दिनों शांति थी। इस वुढ़ापेमें मुझे एक कुलीकी तरह काम करना पड़ा—कुर्सियां और मेजें उठाकर एक जगहसे दूसरी जगह ले जानी पड़ीं और सख्त धूपमें शहरकी गश्त लगानी पड़ी। और जिस तरह हमें दुर्वचन कहे गये और जलील किया गया, उससे हमारी यातना और भी वढ़ गई। मैं यह नहीं मान सकता कि शहरमें शान्ति-सुव्यवस्था कायम रखनेके लिए हमें पुलिस सिपाहियोंके रूपमें नियुक्त करना आवश्यक था। यह दरअसल हमें दण्ड देनेके लिए किया गया था। शहरका वकील-मण्डल सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेता है और रौलट कानूनके विरुद्ध जो आन्दोलन हुआ उसमें भी उसने प्रमुख रूपसे भाग लिया था। इसीलिए सभी वकीलोंको इस प्रकार दण्डित किया गया। (वयान २९)

उच्च न्यायालयके वकील और नगरपालिकाके सदस्य लाला वालमुकंद भाटिया विशेष सिपाहियोंकी नियुक्तिकी रस्मका विवरण देते हुए कहते हैं:

> हम लोगोंको जमीनपर विठाया गया और फिर हमारे सामने दो नागरिकोंको टिकटिकीसे वांधकर कोड़े लगाये गये। यह दृश्य देखनेकी हमें विशेष रूपसे आज्ञा हुई। शामको सभी वकीलोंको एक पंक्तिमें खड़ा किया गया।

इन लोगोंको लेफ्टिनेन्ट न्यूमेनके अधीन रख दिया गया। उन्होंने इनमें से एक वकीलको ठोकर मारनेकी धमकी दी। उन सवको आज्ञा दी गई है कि वे दिनमें तीन वार उनके सामने हाजिरी दें, और वाकी दिन शहरमें गश्त लगायें।

श्री भाटिया कहते हैं :

दूसरे शब्दोंमें, हमें दिन-भर उपस्थित रहना पड़ता था, या तो बागमें या शहरमें। हमें बार-बार याद दिलाई जाती थी कि हम महज पुलिसके सिपाही हैं, और हमारी किसी भी भूलका दण्ड केवल कोड़े या जेल ही नहीं, बल्कि मृत्यु भी हो सकता है। हमसे कुलियोंकी तरह काम कराया गया। हमें बहुत सारे लोगोंके सामने, जो हमारा आदर करते हैं, मेज कुर्सियाँ लाने ले जानेका आदेश दिया गया, यद्यपि इस कामके लिए अर्दली और दूसरे नौकर काफी संख्यामें मौजूद थे।

उन्हें विशेष रूपसे यह सिखाया गया कि सलाम कैसे करना चाहिए। १२ तारीख-को उन्हें छुट्टी दे दी गई। श्री भाटिया भी लाला कन्हैयालालकी भाँति यह मानते हैं कि यह सब शहरके सारे वकीलोंको दंडित करनेके उद्देश्यसे किया गया। (बयान ९१)

पंडित राजेन्द्र मिश्र और दूसरे वकील भी उपर्युक्त आरोपोंका समर्थन करते हैं और कहते हैं कि इस प्रकार उनकी बेइज्जती की गई और उनके साथ बदसलूकी की गई, यद्यपि उन्होंने अधिकारियोंकी सहायता की थी। (बयान ९४)

कुल मिलाकर ९३ वकीलोंको इस तरह जलील किया गया। यह बात छोड़ दें कि अपने सामान्य पेशेसे इस प्रकार वंचित कर दिये जानेके कारण उनको अनावश्यक रूपसे कितनी आर्थिक हानि सहनी पड़ी।

शायद सबसे परेशान करनेवाली सजा, फौजी कानूनके दरम्यानकी गई अन्धा-धुन्ध गिरफ्तारियाँ और जेलमें होनेवाला दुर्व्यवहार था। जिन दिनों गिरफ्तारियोंका दौर चल रहा था, उन दिनों कोई भी नागरिक अपने-आपको इससे सुरक्षित नहीं समझता था।

लाला गिरधारीलाल कहते हैं :

जहांतक मुझे याद है, पुलिसने १२ अप्रैलसे लोगोंको गिरफ्तार करना शुरू किया। उसके बाद यह सिलसिला फिर नहीं रुका। रोज-रोज हर पेशे और तबकेके लोग गिरफ्तार किये जाने लगे——ऐसे लोग जो शान्तिपूर्वक अपने-अपने धन्धोंमें लगे थे। किसी भी मामलेमें यह नहीं बताया गया कि उसपर आरोप क्या है।

उनके एकदम हथकड़ियाँ डाल दी जाती थीं और उन्हें हवालातमें बन्द कर दिया जाता था, जिसमें उन्हें कई-कई दिनतक या महीनों रखा गया। यह भी नहीं बताया गया कि उनपर क्या आरोप है, न उन्हें यह अवसर दिया गया कि मित्रों या सम्ब-न्धियोंसे मिल सकें या सलाह कर सकें। जब श्री बदरुल इस्लाम अली खाँको गिर-फ्तार किया गया तो लोगोंने यह अर्थ लगाया कि इस शहरमें कांग्रेस आन्दोलनसे सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्तिको इसी तरह सजा भुगतनी होगी। लाला गिरधारीलाल ७ अप्रैलको अमृतसरसे चले गये थे, और ११ तारीखको कानपुरमें एक रिश्तेदारको सख्त बीमारीकी हालतमें छोड़कर वापस लौटे थे। इसलिए वे फिर कानपुर वापस जाना

चाहते थे। बड़ी कठिनाईसे उन्हें अमृतसर छोड़नेके लिए अनुमतिपत्र मिला। २१ अप्रैलको वे कलकत्ता मेलसे रवाना हुए। व्यास नदीपर जो पुल है उसपर गाड़ी रोक दी गई और सब हिन्दुस्तानी मुसाफिरोंके असबावकी वारीकीसे छानबीन की गई। कुछ देर वाद उन्हें सूचित किया गया कि अमृतसरके अधिकारियोंने उन्हें तलब किया है। वे कानपुरमें पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टके सामने उपस्थित हुए। सुपरिन्टेन्डेन्ट उनके साथ बहुत सौजन्यतासे पेश आये, और पुलिसकी देखरेखमें उन्होंने लाला गिरधारीलालको अमृतसर भेज दिया। उनके हाथमें एक अखवार था, क्योंकि जो पुलिस सब-इन्स्पेक्टर उनके साथ था उसने उन्हें इसकी इजाजत दे दी थी। अमृतसरके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट इसे बरदाश्त नहीं कर सके। पर सब-इन्स्पेक्टरने शान्तिपूर्वक उन्हें बताया कि लाला गिरधारीलालको अख-वार खरीदनेकी इजाजत उसने ही दे दी थी, क्योंकि कानपुरमें उसके अफसरका ऐसा कोई आदेश नहीं था कि उनकी स्वतन्त्रतापर इस प्रकार प्रतिवन्ध लगाया जाये। लाला गिरधारीलालको तुरन्त हथकड़ियां पहना दी गईं और जब उन्होंने पूछा कि उन्हें क्यों गिरफ्तार किया जा रहा है तो कोई जवाब नहीं दिया गया। २२ तारीखको दिनके ११ वजेसे दूसरे दिन सुवह ८ वजेतक उन्हें कुछ खानेको नहीं मिला। उन्हें एक छोटी-सी कोठरीमें वन्द कर दिया गया, जिसमें १०–११ आदमी और थे। कोठरीके एक कोनेमें एक वदवूदार पेशावका वरतन रखा था। दूसरे दिन सुवह शौचादिके लिए उन सवको कुछ मिनटोंके लिए वाहर जाने दिया गया और फिर वन्द कर दिया गया। न उन्हें नहाने दिया गया, न कपड़े ही वदलने दिये गये। पानी भी वड़ी कठिनाईसे उन्हें मिल सका, सो भी एक दयालु सिपाहीकी मेहरवानीसे। मईका महीना सालका शायद सवसे गरम महीना होता है और आदमियोंसे ठसाठस भरी एक छोटी-सी तंग कोठरीमें कितनी तकलीफ हो सकती है इसका अनुमान आसानीसे लगाया जा सकता है। कुछ समय वाद उन्हें कुछ अधिकारियोंके सम्मुख पेश किया गया। उनमें से एकने उनके प्रति भद्दे और अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग किया। २४ मईको उन्हें हवालातसे छोटी जेलमें ले जाया गया। जो भोजन उन्हें दिया गया वह "आदमीके खाने योग्य नहीं था।" २७ मईको वे और उनके साथी लाहौर ले जाये गये। एक-एक हथकड़ीसे दो-दो आदमी वँधे हुए थे। उनके पास किसीको आने नहीं दिया गया। जिन लोगोंने उनसे वात करनेका साहस किया, उन्हें उसी समय गिरफ्तार कर लिया गया। लाहौर-के रेलवे स्टेशनसे अदालततक, लगभग २ मीलका फासला, उन्हें पैदल तय करना पड़ा। पुलिस इन्सपेक्टरने उन्हें रास्तेमें पानी भी नहीं पीने दिया। अदालत पहुँचनेपर उन्हें दिन-भर अदालतके वाहर इन्तजार करना पड़ा। उसके वाद उन्हें सेंट्रल जेल ले जाया गया और वहाँ प्रत्येकको एक-एक लोहेके पिंजड़ेमें वन्द कर दिया गया जो ७ फुट लम्वा, २ फुट चौड़ा और ४ फुट ऊँचा था। नहानेका इन्तजाम वहुत गन्दा था। एक छोटीसी नाली, जिसका हर मतलवसे उपयोग होता था, उन्हें टट्टी-पेशावके लिए वताई गई। २७ तारीखको उनमें से थोड़ेसे लोगोंको, जिनके रिश्तेदारोंने आवश्यक खर्च दिया, कुछ थोड़ी वेहतर कोठरियाँ मिलीं और कुछ अच्छा भोजन दिया गया और तव कहीं उन्हें कपड़े वदलनेकी इजाजत मिली। २८ मईको उनका तवादला वोर्स्टल

जेलमें कर दिया गया। ३ जूनको अमृतसरके कुछ बन्दियोंको अदालतमें सुनवाईके लिए भेजा गया। कुछ और लोगोंको बिना यह बताये कि उनपर क्या आरोप है, अपने गवाह पेश करनेको कहा गया। लाला गिरधारीलालको बिना मुकदमा चलाये और बिना यह बताये कि उन्हें क्यों गिरफ्तार किया गया था, ६ जूनको छोड़ दिया गया। इस प्रकार अमृतसरके एक जन-नेताको, जो अधिकारियोंके लिए भी अपरिचित नहीं थे, गिरफ्तार कर पखवाड़े-भरसे अधिक दिनोंतक नजरबन्द रखा गया और उनके साथ एक साधारण अपराधीसे भी बुरा बरताव किया गया, क्योंकि हर बन्दीको, जिसपर मुकदमा चलाया जाता है, यह अधिकार है कि अपने रिश्तेदारों या कमसे-कम कानूनी सलाहकारोंसे मिल सके और जिस प्रकारका भोजन चाहे मँगवा सके। मियाँ फीरोज-दीन, जो २१ सालसे अवैतनिक मजिस्ट्रेट हैं और अमृतसरके एक रईस हैं कहते हैं कि एक ओर जहाँ अमृतसरके सम्मानित नागरिकोंको सताया और परेशान किया जा रहा था, दूसरी ओर नामी बदमाशोंको हाथ भी नहीं लगाया गया। (बयान २)

जैसा कि जाहिर है उच्च न्यायालयके वकील श्री मकबूल महमूद, जिन्होंने १० अप्रैलको अपनी जान जोखिममें डालकर पुलपर जमा भीड़को वापस ले जानेका यत्न किया था, कुछ समय बाद एक थानेदार द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए। फिर उन्हें थाने लेजाया गया और उनसे ऐसा कहलवाया गया कि "मैं रॉबिन्सन और रोलैंडके कातिलोंकी शिनाख्त कर सकता हूँ और ऐसा करनेको तैयार हूँ।" [वे कहते हैं:]

> मैंने पुलिसको बताया कि मैं पहले ही एक लिखित बयान पुलिसको भेज चुका हूँ, जिसमें मैंने कहा है कि मैं किसीकी भी शिनाख्त नहीं कर सकता। इस-पर यह बयान मेरे पास लाया गया और मुझसे कहा गया कि मैं अपने हाथसे उसे फाड़ दूँ और एक दूसरा बयान दूँ जिसमें उन लोगोंके नाम हों, जो पुलिस-की नजरमें अपराधी थे। मैंने यह करनेसे इनकार कर दिया। इसपर मुझे कुछ धमकियाँ दी गईं। किन्तु कुछ समय बाद मुझे जाने दिया गया।

इसके बाद उनका नाम बचाव पक्षके गवाहके रूपमें लिया गया। सरदार सूखासिंहने उनसे कहा कि कई लोगोंने बचाव पक्षकी तरफसे गवाही देनेसे इनकार कर दिया है और उन्हें भी ऐसा ही करना चाहिए। जब उन्होंने कहा कि उनकी आत्मा उन्हें ऐसा नहीं करने दे सकती तो इसपर सरदार सूखासिंहने कहा कि इन दिनों "किसीके अन्दर आत्मा नहीं है और जिनके अन्दर है उन्हें इसके लिए यातना सहनी पड़ती है।" उन्होंने [सूखासिंहने] आगे कहा कि वे उनकी वकालतकी सनद रद करवा देंगे और ऐसा कर देंगे कि वे झमेलेमें पड़ जायेंगे। (बयान ५)

२० अप्रैलको सरदार सूखासिंहने डा० किदारनाथ भंडारीसे, जो सीनियर असिस्टेंट सर्जन हैं और जिनकी आयु ६२ साल है, कहा कि जो भीड़ १० अप्रैलको श्रीमती ईस्डनपर आक्रमण करने गई थी, उसमें से किसीका नाम बतायें। डा० किदार-नाथने कहा कि वे ऐसा नहीं कर सकते। इसपर सरदार सूखासिंह, श्री प्लोमर और श्री मार्शलने चिल्लाकर कहा, "अच्छा, तो तुम सरकारकी मदद नहीं करोगे! तुम्हें भी गिरफ्तार किया जायेगा।" इसपर डाक्टरने उत्तर दिया, "मैंने जिन लोगों

को देखा ही नहीं, मैं उनके नाम नहीं ले सकता। आप लोग जो चाहें आप करें।" इसपर सरदार गुरासिंहने उनसे कहा कि उनके पास उनकी गिरफ्तारीका हुक्म है और वे अपनेको हिरासतमें समझें। उन्हें खाना खिलाया नहीं गया और उनके सहायक सहित उन्हें हवालातमें भेज दिया गया। दोनोंको २७ अप्रैलतक हवालातमें रखा गया। और फिर वहाँसे हटाकर छोटी जेलमें ले जाया गया। छोटी जेलमें जानेके लिए एक मील पैदल चलना था। और चूँकि उन्हें हृदरोग था, उन्होंने सवारीके लिए कहा। उन्होंने यह भी कहा कि हथकड़ियाँ पहनाकर औरोंके साथ बाजारमें फिरानेमें उन्हें सदमा लगेगा। फिर भी उन्हें ६२ अन्य कैदियोंके साथ पैदल चलकर जेल पहुँचनेके लिए मजबूर किया गया। वे कहते हैं:

> चूँकि गरमी बहुत थी, जेल पहुँचनेपर मुझे गश आ गया, पर मैं एक दयालु पुलिसवालेकी कृपासे जल्दी ही होशमें आ गया, जिसने मुझे पीनेके लिए पानी दिया।

उन्हें एक तंग कोठरीमें बन्द कर दिया गया और रोटी दी गई, जिसे वे खा नहीं सके। एक मित्रने प्रार्थना की कि उसे उनके लिए बाहरसे खाना भेजने दिया जाये। उसे अस्वीकार कर दिया गया। यह प्रार्थना भी अस्वीकार कर दी गई कि उन्हें वे कपड़े बदलने दिये जायें, "जो बदबूदार थे और जूँओंसे भरे थे।" २ मईको डिप्टी कमिश्नर जेल गये और डाक्टर भंडारीने उनसे पूछा कि उन्हें क्यों नजरबन्द किया गया है। उत्तर मिला कि उनके विरुद्ध इसके सिवा कोई आरोप नहीं है कि जब भीड़ने श्रीमती ईस्डनपर आक्रमण किया तो उन्होंने उनके प्राण बचानेका कोई प्रयत्न नहीं किया। डाक्टरने समझाना चाहा कि ऐसा कर सकना उनके लिए सम्भव नहीं था, क्योंकि जब भीड़ वहाँ गई तो उन्हें इसका पता नहीं था। पर यह बेकार सिद्ध हुआ। खैर, वे और उनका सहायक १२ मईको छोड़ दिये गये। उन्हें यह नहीं बताया गया कि आखिर उनके विरुद्ध आरोप था क्या। २० अप्रैलसे २७ अप्रैलतक जब वे कोतवाली हवालातमें थे तो एक आदमी दो बार उनके पास गया, और उसने उनसे कहा:

> आप नाहक तकलीफ भुगत रहे हैं। अगर आप भीड़में से दो-चार आदमियों-के नाम बता दें तो आपको तुरन्त छोड़ दिया जायेगा। (बयान १३)

वकील श्री मुहम्मद अमीन, मुहम्मद अकरमके पिता हैं। श्रीमती ईस्डनपर आक्रमण करनेके सम्बन्धमें मुहम्मद अकरमको मृत्युदंड दिया गया था। बादमें यह सजा कम करके ५ वर्षकी सख्त कैद कर दी गई थी। श्री मुहम्मद अमीन कहते हैं कि उनकी श्रीमती ईस्डनसे व्यक्तिगत मित्रता है, और अपने बयानमें, जो इसके साथ नत्थी है, वे कहते हैं कि उनका पुत्र, जो श्रीमती ईस्डनको मातातुल्य मानता है, बिल्कुल निर्दोष है। २० अप्रैलको वे अपने पुत्र और भाईके साथ गिरफ्तार कर लिये गये और कोतवाली ले जाये गये। वे कहते हैं:

> एक सिपाही मुझे हवालातके दरवाजेतक ले गया। वह एक तंग कोठरी थी, पर इसमें कमसे-कम ३० बदकिस्मत लोग बन्द थे। मैंने बड़ा ही भयानक

> दृश्य देखा। वे सबके सब सींखचोंके बाहर अपने हाथ फैलाकर प्रार्थना कर रहे थे कि उन्हें पीनेके लिए पानी दिया जाये। मुझे यह दृश्य देखकर गश आने लगा। मैंने एक सिपाहीसे कहा, "मुझे अन्दर जानेमें कोई ऐतराज नहीं है, पर मैं आपसे कह दूं कि मैं यहाँ १५ मिनट भी नहीं रह सकूँगा।" वह इन्स्पेक्टरके पास गया और कुछ देर बाद आकर मुझे एक दूसरी कोठरीमें ले गया, जहाँ मुझे डा० बशीर और बैरिस्टर बदरुल इस्लाम अलीखाँ बन्द मिले। इस कोठरीसे उन्होंने कुछ आदमियोंको निकाल दिया और उनकी जगह हम ६ नये आगन्तुकोंको रख दिया। मैंने अपने जीवनमें इतनी गन्दी जगह कभी नहीं देखी। हममें से अधिकांश लोग सारी रात बैठे रहे। हमने प्रार्थना भी की कि केवल उस शामके लिए हमें यह इजाजत दे दी जाये कि हम अपने-अपने घरोंसे खाना मँगवा लें, किन्तु यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई। हमने ओढ़नेके कपड़े माँगे। किन्तु इसे अस्वीकार कर दिया गया। कुछ समय बाद एक पुलिसवाला गामाके पास आया और उसने हमारी उपस्थितिमें उनसे कहा "तुम क्यों अपनी जान खतरेमें डालते हो? जिनसे तुम्हारी दुश्मनी हो ऐसे ४-५ आदमियोंके नाम गिना दो और हम तुम्हें गवाह बना देंगे।" गामाने कहा, "मेरा कोई दुश्मन नहीं जिसका नाम बताऊँ।" पुलिसवाला चला गया और थोड़ी ही देरमें फिर आ गया और गामासे उसने कहा, "देखो, कयामका नाम बता दो और दूसरे लोगोंके बारेमें जो तुम्हारी इच्छा हो कहो।" पुलिस जिस प्रकार झूठी गवाही गढ़ रही थी उससे हम बहुत घबरा गये। हमने समझ लिया कि अब खैर नहीं है।

इस गवाहने जेलकी हालतका वर्णन भी किया है। उन्हें दो-दोको हथकड़ीसे जोड़कर तंग कोठरियोंमें रखा गया और इसी हालतमें शौच आदिके लिए भी ले जाया जाता था। उन्होंने प्रार्थना की कि कमसे-कम जब वे टट्टीमें हों तबतक के लिए हथकड़ियाँ उतार दी जायें, किन्तु यह प्रार्थना नहीं मानी गई। चिलचिलाती धूपमें उन्हें चारों ओर चक्कर लगाते रहनेको बाध्य किया गया — हम समझते हैं, शायद व्यायामके लिए? ३६ घंटेतक उन्हें किसी प्रकारका भोजन नहीं दिया गया और नंगे फर्शपर सोनेको बाध्य किया गया। बादमें चलकर हथकड़ियाँ निकाल ली गईं।

> जो खाना हमसे खानेको कहा गया वह था एक ओर पड़ा हुआ चनेका एक छोटा-सा ढेर और दूसरी ओर एक बाल्टी पीनेका पानी। नजदीक ही पेशाबके लिए एक डब्बा था। हम यह खाना नहीं खा सके और एक दिन और भूखे रहे।

दूसरे दिन स्थितिमें कुछ सुधार हुआ। उन्हें अपना-अपना खाना मँगाने और कपड़े बदलने की इजाजत दे दी गई। इस प्रकार २२ दिनतक वे किलेमें बन्द रहे। १२ मईको अदालतमें पेशीके लिए उन्हें लाहौर ले जाया गया। वे ५२ आदमी थे और

उन सबको एक जंजीरसे जोड़ दिया गया था। लाहौरमें उन्हें दिन-भर बिना भोजन या पानीके अदालतके बाहर बैठे रहना पड़ा। चिलचिलाती धूपमें उन्हें लाहौर स्टेशनसे अदालततक और अदालतसे सेंट्रल जेलतक चलकर जाना पड़ा। श्री मोहम्मद अमीन और उनके भाईको २७ मईको छोड़ दिया गया। (बयान १४)

सब-असिस्टेंट सर्जन श्रीमती नेली बेंजामिन, श्रीमती ईस्डनकी मित्र हैं। उन्होंने ही उन्हें आड़में लेकर हमलेके समय बचाया था। वे कहती हैं :

> जब यह जांच चल रही थी तो मुझे दो बार कोतवाली ले जाया गया। मुझसे यह कहनेको कहा गया कि मैंने भीड़में मोहम्मद अमीनको देखा था। मैंने जब कहा कि यह सच नहीं है तो श्री प्लोमरने मुझे जेल भेजनेकी धमकी दी। मैंने उन्हें वह सब बताया जिसकी मुझे जानकारी थी पर मैंने झूठी गवाही देनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने मुझे सरकारकी ओरसे इनाम दिलानेका भी प्रलोभन दिया यदि मैं श्रीमती ईस्डनवाली घटनाके सम्बन्धमें मोहम्मद अमीनकी उपस्थितिकी पुष्टि कर दूं। मैंने ऐसा करनेसे फिर इनकार कर दिया। (बयान १६)

कांचके बरतनोंके व्यापारी सेठ गुल मोहम्मदको २० अप्रैलको, जब वे नमाज पढ़ रहे थे, गिरफ्तार कर लिया गया और कोतवाली ले जाया गया। उनसे झूठी गवाही देनेके लिए कहा गया। इन्सपेक्टर जवाहरलालने उनकी दाढ़ी पकड़कर उनके इतने जोरसे चाँटा मारा कि उन्हें थोड़ी देरके लिए चक्कर आ गया। उसने तब उन्हें यह बयान देनेको कहा कि "डाक्टर सत्यपाल और डा० किचलूने मुझे उकसाया कि मैं ६ तारीखको हड़ताल करवा दूं। उन्होंने मुझे यह कहकर भी उत्साहित किया कि वे अंग्रेजोंको देशसे बाहर निकालनेके लिए बमोंका उपयोग करेंगे।" गवाहने ऐसा कहनेसे इनकार कर दिया। इसपर अफसरने अपने मातहतोंसे कहा कि उनको अलग ले जाकर दुरुस्त कर दें। फिर उन्हें वहाँसे कुछ कदम दूर ले जाया गया और कई सिपाहियोंने उनसे कहा कि जो-कुछ जवाहरलाल चाहता है, वह करें और उसे खुश करें। उन्होंने फिर भी इनकार कर दिया। इसपर उन्होंने उनकी एक बांह पकड़ी और एक चारपाईके पायेके नीचे दबाया, जिसपर आठ पुलिसवाले बैठ गये। "जब दर्द असह्य हो गया", गवाह कहता है, "तो मैं चिल्लाया, मेरा हाथ छोड़ दो, मैं जो-कुछ तुम चाहोगे करूँगा।" इसके बाद उन्हें फिर जवाहरलालके पास ले जाया गया। लेकिन उन्होंने फिर डाक्टरोंको फँसानेसे इनकार कर दिया। इसपर उन्हें दिन-भर एक कमरेमें बन्द रखा गया। बादके दिनोंमें उन्हें पीटा गया, चाँटे और बेंत मारे गये, उनसे कहा गया कि उन्हें अभियुक्त बनाया जायेगा और फाँसीपर लटका दिया जायेगा। यह पिटाई आठ दिनोंतक चलती रही। आठवें दिन वे फिर इच्छित वक्तव्य देनेको राजी हो गये। उन्हें मजिस्ट्रेट आगा इब्राहीमके सामने पेश किया गया, जहाँ उन्होंने वह "असत्य बयान" दुहराया, जो उनसे माँगा गया था। मुखबिर हंसराजने, जो कोतवालीमें था, उनको सलाह दी कि जैसा पुलिस चाहती है वैसा करें। दस दिनकी हवालातके बाद

उन्हें छोड़ दिया गया। शर्त यह थी कि उन्हें प्रतिदिन कोतवालीमें आकर हाजिरी देनी होगी। यह उन्होंने ९ जूनतक किया। फिर उन्हें लाहौर ले जाया गया। १६ जूनको उन्हें फौजी कानूनकी विशेष अदालतके सामने पेश किया गया, जहाँ उन्होंने सब बातें साफ-साफ बता दीं और जजोंसे कह दिया कि उन्हें यन्त्रणा दी गई थी। (बयान २१)

एक १४ सालके लड़के ब्रजलालको ९ दिनतक हिरासतमें रखा गया। दो दिन बाद उसे हंसराजके सुपुर्द कर दिया गया और फौजी कानूनकी विशेष अदालतके सामने एक झूठा बयान देनेको राजी किया गया। उस बयानको उसने हमारे सामने दी गई अपनी गवाहीमें वापस ले लिया है। (बयान २२)

मद्य-विक्रेता सरदार आत्मासिंह, जनरल डायरके सामने १३ अप्रैलको गिरफ्तार किये गये। उन्हें जुलूसके साथ चलनेको मजबूर किया गया। वे कहते हैं: "उन्होंने मेरी बाँहको एक कपड़ेसे बाँध लिया और शहरकी कई गलियोंसे मुझे घसीटते हुए ले गये।" एक अंग्रेज सिपाहीने उन्हें पीनेके लिए पानी लेनेसे रोक दिया। कुछ और लोग भी उस दिन गिरफ्तार किये गये और उनमें से ९ आदमियोंको हथकड़ियाँ डालकर बिना खाना दिये एक तंग कोठरीमें बन्द रखा गया। १५ तारीखको वे जनरल डायरके सामने ले जाये गये और एक पेड़से बाँध दिये गये। फिर उनको "लगातार गालियाँ दी गईं और उनकी हँसी उड़ाई गई।" जब जनरल डायर अपना दोपहरका भोजन कर चुके तो सरदार आत्मासिंहको उनके सामने पेश किया गया और उन्हें ८ दिनकी 'क्वार्टर-गार्ड' की सजा मिली। उन्हें यह नहीं बताया गया कि उनके विरुद्ध आरोप क्या है। कैदके दौरान एक सार्जेन्टने उनसे एक सोनेकी अँगूठी और एक वैस्ट एंड [कम्पनी] की शिकारी घड़ी, जिसपर उनका नाम लिखा था, उनसे छीन ली। (बयान ३०)

कसाई मुहम्मद इस्माइलको १८ अप्रैलके आसपास गिरफ्तार किया गया। उनके पिताको भी गिरफ्तार कर लिया गया। दोनोंको पीटा गया और तब छोड़ा गया जब उनके भाई दीनाको हाजिर किया गया। स्वयं दीनाको ३ दिनतक बन्द रखा गया और कहा जाता है कि उसे निर्दयतापूर्वक पीटा गया। (बयान ४६)

अब्दुल अजीज नामक सब्जी-विक्रेताको, एक खानसामाको गाली देनेके अपराधमें, जिसे उन्होंने अस्वीकार किया, पकड़ा गया। उन्हें जनरल डायरके सामने ले जाया गया, दो दिनतक हवालातमें बन्द रखा, दस कोड़े मारे गये और उनसे कहा गया कि १४ दिनतक अपनी दुकान बन्द रखे। (बयान १२३)

५८ सालके पेन्शनयाफ्ता सरकारी कर्मचारी लाला रलियारामसे एक सब-इंस्पेक्टरने उन लोगोंका नाम बतानेको कहा जिन्होंने कुमारी शेरवुडको पीटा था। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें कुछ पता नहीं और वे घटनास्थलपर मौजूद नहीं थे। इसपर उन्हें बेंतसे पीटा गया, उनकी दाढ़ी खींची गई, उन्हें गलीमें इधरसे-उधर चलनेको मजबूर किया गया और शामको छोड़ दिया गया। (बयान १०७)

लाला दादूमलको पीटा गया और रेंगनेको विवश किया गया। उनको और उनके पुत्रको गिरफ्तार किया गया। फिर उन्हें छोड़ा गया और फिर पकड़ लिया

गया और तब छोड़ा गया जब उन्होंने बाजारके मुखियाको पुलिसके लिए १०० रुपये दिये। उन्हें फिर गिरफ्तार किया गया और अपनी रिहाईके लिए ५० रुपये और देनेको मजबूर किया गया। पुलिसवाले उनकी दुकानपर जाते थे और जबरदस्ती घी आदि उठाकर ले जाते थे। उनके पुत्रको ८ दिनतक बन्द रखा गया और फिर ३० कोड़ोंकी सजा दी गई; कोड़े लगते समय वह बेहोश हो गया था। उसने दूसरोंके भी कोड़े लगते देखे। वह कहता है: "वे लोग दर्दसे चीख रहे थे और उनके शरीरसे खून बह रहा था।" (बयान ११६)

लाला रखारामने देखा कि धनीरामको बिठाकर उनसे दोनों टांगोंके नीचेसे हाथ ले जाकर कान पकड़वाये गये। (बयान १०८)

गुलाम कादिर तूफगर अप्रैलके तीसरे सप्ताहमें नायब-इंस्पेक्टर अमीर खां द्वारा गिरफ्तार किया गया। उनसे लूटा हुआ माल बतानेको कहा गया और जब उन्होंने इस सम्बन्धमें अनभिज्ञता प्रकट की तो उन्हें बुरी तरह पीटा गया। उनसे कुछ विशेष व्यक्तियोंको उस भीड़में शामिल देखनेका बयान देनेको कहा गया जिन्होंने भगतां-वाला रेलवे स्टेशनको जलाया था। उनकी पगड़ी उतार दी गई, उससे उनके हाथ बांध दिये गये और लगभग दस मिनटतक उन्हें एक पेड़से लटकाकर रखा गया। उन्होंने देखा कि उनके अतिरिक्त ८–९ आदमी और थे, जिन्हें यन्त्रणा दी जा रही थी। वे कहते हैं:

> मैंने पीरा गूजरको जमीनपर पट लेटे देखा और एक हवलदारको, जिसको मैं चेहरेसे जानता हूँ, थानेदार अमीर खाँकी मौजूदगीमें उनकी गुदामें एक डंडा घुसाते देखा। वे पूरे समय दयनीय रूपसे चीखते रहे पर पुलिसने कोई दया नहीं दिखाई। पूरे तीन दिन और तीन रात हमें खानेको कुछ नहीं दिया गया और इस बीच पुलिसने हमें यन्त्रणा दी। मुझे ५ दिन बाद छोड़ा गया। (बयान १४१)

नाई सिराजदीन उपर्युक्त वक्तव्यका सामान्यतः समर्थन करते हैं। उनपर भी वही गुजरा जो गुलाम कादिरपर गुजरा। (बयान १४२)

मसजिदके इमाम (नमाज पढ़ानेवाले) और मुंशी गुलाम जीलानीके साथ जो बीती वह हमारे सामने यन्त्रणाकी जितनी घटनाएँ आईं उनमें शायद सबसे बुरी है। उन्होंने रामनवमीके त्योहारके इन्तजाममें प्रमुख रूपसे भाग लिया था। उन्हें १६ अप्रैलको गिरफ्तार किया गया। उनका बयान इतना विशद है कि इमामके साथ क्या गुजरी, इसे समझनेके लिए उसे पूराका-पूरा पढ़ना चाहिए।[१] (बयान १३४) गवाहने अपने साथ किये गये व्यवहारके बारेमें जो-कुछ कहा है, उसका मियाँ फीरोजदीन, अवैतनिक मजिस्ट्रेट (बयान २) और श्री गुलाम यासीन, बैरिस्टर (बयान ६) समर्थन करते हैं। मुहम्मद शफी (बयान १३९) ने गुलाम जीलानीको दी गई कुछ यन्त्रणाएँ अपनी आँखों देखीं और उन्होंने उनकी करुण चीत्कार भी सुनी। वे कहते हैं कि उसी दिन खैरदीन नामक एक और व्यक्तिके साथ भी उसी प्रकारका व्यवहार किया गया और उसकी हालत इतनी खराब हो गई कि जो चोटें उसे पहुँची थीं उनके कारण वह

मर ही गया। (बयान १३९)। मियाँ कमरुद्दीन खाँ जमींदार कहते हैं कि मौलवी गुलाम जीलानी अपनी रिहाईके फौरन बाद उन्हें मिले। उन्होंने वे घाव देखे, जो उन्हें लगे थे और जो वृत्तान्त उन्होंने तब सुनाया था वह बयान वैसा ही है जो उन्होंने हमारे सामने दिया है। (बयान १४०)। गुलाम मोहम्मदने उन्हें तथा खैरदीनको यन्त्रणा पहुँचाई जाते देखा। वे कहते हैं कि खैरदीन कुछ दिन पूर्व घावोंसे मर गया। (बयान १३८) हाजी शमसुद्दीन जमींदारने भी मौलवी गुलाम जीलानी और स्वर्गीय खैरदीनको यन्त्रणा दी जाती देखी। हाजी साहबको पुलिसने तलब किया था। वे कहते हैं:

> **पुलिसवालोंने उनकी गुदामें एक डंडा घुसेड़ा। वे दयनीय हालतमें थे। मैंने उनका मल-मूत्र निकलते देखा। पुलिसने हम सबसे, जो बाहर थे, कहा कि जो गवाही नहीं देंगे उन सबका यही हाल होगा। (बयान १३५)**

गवाह १३६–३७ भी जीलानी और खैरदीनको दी गई यन्त्रणासे सम्बन्धित बयानकी पुष्टि करते हैं। पशमीना-विक्रेता मलिक अब्दुल हुई, पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टका तार मिलनेपर १५ मईके आसपास लाहौरसे अमृतसर गये। वहाँ उन्हें इन्स्पेक्टर जवाहर-लालके सुपुर्द कर दिया गया। जवाहरलालने उन्हें इनाम और वेतनवृद्धिका प्रलोभन दिया, यदि वे डाक्टर किचलूके खिलाफ झूठी गवाही देनेको तैयार हो जायें। जब उन्होंने इनकार किया तो उन्हें धमकी दी गई कि उन्हें भी अभियुक्तोंमें शामिल कर दिया जायेगा। जब सब धमकियाँ और सब समझाना-बुझाना बेकार गया तो उन्हें एक कमरेमें ले जाकर "निर्दयतापूर्वक" पीटा गया। भयभीत होकर वे अन्तमें झुक गये। उनका बयान लिख लिया गया और उन्हें फौजी अदालतमें तलब किया गया। वे आगे कहते हैं:

> **मैंने सब बात सच-सच कह देनेका निश्चय किया . . . मैंने जजोंको बताया कि मुझसे झूठी गवाही दिलवानेके लिए पुलिसने मुझे कितना परेशान किया। अपना बयान देकर मैं बाहर आ गया। नायब कोर्टने मुझे गिरफ्तार कर लिया और मुझे पुलिसके कमरेमें ले जाने ही वाला था कि मैं चीख उठा। इसपर कुछ बैरिस्टर जो इस मुकदमेके सम्बन्धमें अदालतमें उपस्थित थे और जिनमें मुकन्द-लाल पुरी, श्री हसन और दूसरे लोग थे, घटनास्थलपर आ गये। . . . नायब कोर्टके चंगुलसे अपनेको छुड़ाकर मैंने जजोंको पूरी कहानी बताई। मुख्य न्याया-धीशने मुझे दूसरे रास्तेसे घर जानेकी आज्ञा दी। (बयान १४८)**

बैरिस्टर श्री बदरुल इस्लाम अली खाँ को १९ अप्रैलको गिरफ्तार किया गया। पुलिसवाले उनकी स्त्रीके शयनकक्षमें घुस गये और जब उन्होंने उनसे बाहर जानेको कहा तो उन्होंने इनकार कर दिया। खाँ साहबको कोतवाली ले जाया गया। वहाँ श्री प्लोमरने ऊँची आवाजमें कहा, "यह है वह आदमी जो पंजाबका लेफ्टिनेंट गवर्नर बनना चाहता है।" उन्होंने अपने बयानमें बताया है कि किस प्रकार झूठी गवाही देनेके लिए उनपर दबाव डाला गया। उन्होंने उस कोठरीका भी वर्णन किया है

जिसमें उन्हें और उनके साथ दूसरे बन्दियोंको बन्द करके रखा गया; उन्होंने बताया कि उन्हें किस तरह जलील किया गया और उन आरोपोंकी चर्चा की है जो उनपर लगाये गये थे। अन्तमें उन्हें रिहा कर दिया गया। वे अपना बयान इस प्रकार समाप्त करते हैं:

> गुलाम जिलानी नामक एक व्यक्तिको यन्त्रणा देकर पुलिसने उससे मेरे विरुद्ध झूठी गवाही दिलवानेका प्रयत्न किया। मेरे मुकदमेकी सुनवाईके दौरान मार्शल लॉ कमिशनके सामने उसने यह बात स्वीकार की। इस प्रकार मुझे गिरफ्तार करके ढाई महीनेतक हिरासतमें रखा गया और मृत्युदण्ड देनेके लिए मुझपर मुकदमा चलाया गया। (बयान ८८)

बैरिस्टर श्री गुरदयाल सिंह सलारियाको भी गिरफ्तार किया गया। वे उन लोगोंमें से थे जिन्होंने १० अप्रैलको अपनी जान हथेलीपर रखकर भीड़को पुलसे वापस लौटानेका प्रयत्न किया था। वे भी उस अपमानजनक व्यवहारका वर्णन करते हैं, जो उनके साथ किया गया। वे २३ मईसे ५ जुलाईतक हिरासतमें रहे। (बयान ८७)

झूठी गवाही तैयार करनेके उद्देश्यसे सरकार द्वारा की गई अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों और लोगोंको दी गई यन्त्रणाओंका वर्णन करते हुए हमने जो-कुछ लिखा है वह शायद फौजी कानूनके नामपर किये गये जुल्म और ज्यादतियोंकी कहानीका सबसे काला अध्याय है। जलियाँवाला बाग कांडका नाटकीय प्रभाव दहला देनेवाला था। किन्तु अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियोंके तरीकेसे लोगोंको जिस तरह तिल-तिलकर घुलाया गया, उसके शिकार केवल वे लोग ही नहीं हुए जिन्हें गिरफ्तार किया गया, बल्कि वे भी हुए जिन्हें बराबर गिरफ्तार होनेका भय बना रहता था, क्योंकि जैसा हमारे एकत्र किये बयानोंसे स्पष्ट है, इन गिरफ्तारियोंका कोई निश्चित तरीका नहीं था। हर वर्ग और हर स्तरके लोगोंके साथ यह व्यवहार हुआ। कोई अपनेको सुरक्षित नहीं समझता था। हम यह भी कहना चाहते हैं कि इस सम्बन्धमें गवाही इकट्ठी करनेमें हमने बहुत सावधानी बरती है। जब हमने यह जाँच शुरू की तो हमारे मनमें अविश्वास था, किन्तु जब एकके बाद एक बयान हमारे सामने आने लगा तो हम सामान्य आरोपपर विश्वास करनेको विवश हो गये। सरकारको अधिकसे-अधिक चोट पहुँचानेवाले बयानोंकी इतनी पूरी तरहसे पुष्टि हुई है कि हमारा खयाल है वे जाँच करनेपर किसी भी अदालतमें सही प्रमाणित होंगे।

हम यहाँ यह भी कह दें कि हमारे पास पुलिस द्वारा रिश्वत लिये जानेके प्रचुर प्रमाण थे। किन्तु हमने अमृतसरसे इस सम्बन्धमें गवाही नहीं ली, क्योंकि गवाहोंने हमें अपना विश्वास तो दिया, पर अपने नाम प्रकट करनेको वे तैयार नहीं हुए। यदि सरकार इस कोटिके भ्रष्टाचारके सम्बन्धमें सचाई जानना चाहती है तो हमारा सुझाव है कि वह इस सम्बन्धमें जाँच करे और जो लोग गवाही देनेके लिए आगे आयें उन्हें सुरक्षाका आश्वासन दे। हमें विश्वास है कि सरकार इस श्रेणीके अपराधियोंको आड़ नहीं देना चाहती और हमें यह भी विश्वास है कि यदि वह हमारे सुझावके अनुसार कदम उठायेगी तो वह पुलिस विभागकी सबसे बड़ी खराबियोंको दूर कर डालेगी।

यन्त्रणा सम्बन्धी बयानोंकी भी जांच होनी चाहिए। सारी बातें सरकारके सामने हैं। इतने तफसीलके साथ दी गई साक्षीकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

यह दिखानेके लिए अब अधिक कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जिन मुकदमोंके लिए झूठी गवाही प्राप्त करनेका एक संगठित प्रयत्न किया गया, उनमें गम्भीर और विस्तृत रूपसे न्यायका हनन हुआ होगा, चाहे ये मुकदमे फौजी अदालतोंमें हुए हों या समरी अदालतोंमें या क्षेत्रीय अधिकारियोंके सामने। इन अदालतोंके गठनके बारेमें कुछ कहना अप्रासंगिक नहीं होगा। फौजी अदालतोंमें तीन-तीन सदस्य होते थे। उन्हें मुकदमेको सरसरी जांच करके निबटानेकी सत्ता होती थी और मृत्यु-दण्डतक देनेका अधिकार था। वे कोई गवाही दर्ज करनेको बाध्य नहीं थे और उनके फैसलोंके विरुद्ध अपील नहीं हो सकती थी। दूसरी ओर समरी अदालतोंमें एक ही सदस्य, आमतौर पर एक मजिस्ट्रेट, होता था और ये अवर न्यायाधिकारवाली अदालतें थीं। ये दो वर्ष की कैद और १,००० रुपयेतक जुर्मानेकी सजा दे सकती थीं। उनके फैसले भी आखिरी होते थे और किसी ऊँची अदालतमें उनके विरुद्ध अपील नहीं हो सकती थी। हमने इन अदालतोंमें हुए मुकदमोंका प्रकाशित ब्यौरा पढ़ा है और सरकारी आंकड़े भी देखे हैं और हम इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि अधिकांश फैसले गलत हैं। आंकड़ोंके अनुसार अमृतसर जिलेमें फौजी अदालतोंके सामने १८८ व्यक्तियोंपर मुकदमा चलाया गया, जिनमें ३ को बरी किया गया। क्षेत्रीय अधिकारियों और समरी अदालतोंके सामने १७३ व्यक्तियोंपर मुकदमा चला, जिनमें से ३२ को बरी किया गया, छोड़ दिया गया या मुक्त किया गया।

शाही घोषणाको[1] दृष्टिमें रखते हुए और यह देखते हुए कि उक्त फौजी अदालतों द्वारा सजा पाये[2] अधिकांश लोगोंको मुक्त कर दिया गया है, इन मुकदमोंके ब्यौरेमें जाना आवश्यक नहीं। लेकिन इतना कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि जिन मामलोंमें जायदादकी जब्तीके साथ-साथ न्यूनतम सजाका विधान था, वे मामले केवल हड़ताल करवाने या रौलट कानूनके विरोधमें भाषण देने-जैसे आरोपोंपर आधारित थे। केवल एक मुखबिरकी गवाहीके आधारपर अग्रणी नेताओंपर गम्भीर अपराध करनेके आरोप लगाये गये। खैर, हम फौजी अदालतोंके मुकदमोंकी तब अधिक विस्तृत रूपसे चर्चा करनेकी आशा रखते हैं जब हम लाहौरकी घटनाओंपर आयेंगे। अमृतसरकी घटनाओंका विवेचन हम इतना कहकर समाप्त करेंगे कि अधिकारियोंने डा० किचलू और डा० सत्यपालको देश-निकाला देकर एक ऐसी भारी भूल की जिसे अपराधकी श्रेणीमें रखा जायेगा। कमसे-कम इतना तो है ही कि गोली चलानेमें अनावश्यक जल्दबाजी की गई। यदि अधिकारियोंने युक्ति और नरमीसे काम लिया होता तो देश-निकाले की घटनाके बावजूद भीड़ द्वारा की गई ज्यादतियोंको रोका जा सकता था। भीड़ द्वारा की गई ये ज्यादतियाँ, किसी भी सूरतमें बहुत बुरी और निन्दाके योग्य थीं।

१. जो २३ दिसम्बर, १९१९ को जारी की गई थी और जिसमें राजनैतिक बन्दियोंको क्षमा-दान दिया गया था।

२. पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें लगभग १,८०० व्यक्तियोंको सजा मिली थी।

जलियाँवाला बागका कत्लेआम अमानुषिक और प्रतिहिंसापूर्ण था और जो स्थिति उस समय थी या जो घटनाएँ बादको घटीं उन्हें देखते यह सर्वथा अनावश्यक और अनुचित था; और स्वयं जनरल डायरके बयानके अनुसार अमृतसरमें फौजी कानून किन्हीं स्थानीय कारणोंसे उचित नहीं ठहरता और उसकी अवधि बढ़ाना अधिकारका मनमाना दुरुपयोग था तथा उस कानूनपर अमल करना एक सभ्य सरकारके लिए बिलकुल अनुपयुक्त था।

२. तरन तारन

तरन तारन अमृतसर जिलेका एक भाग है और रेलवे स्टेशन है। यह अमृतसरसे १६ मील दूर है और सिखोंके केन्द्रके रूपमें इसका स्थान अमृतसरके बाद दूसरा है। पुलिस सब-इन्स्पेक्टर द्वारा आरोप लगाया गया था कि यहाँ खजानेको लूटनेका प्रयत्न किया गया। हमारे पास जो साक्ष्य है वह सिद्ध करता है कि यह आरोप बिलकुल बनावटी था। फिर भी इस आरोपके आधारपर लोगोंकी एक विशाल संख्याको समरी अदालत द्वारा सजा दी गई है।

लाहौर शहर

राजनैतिक महत्त्वकी दृष्टिसे लाहौर पंजाबका प्रथम कोटिका नगर है। यह उसकी राजधानी और सरकारका सदर मुकाम है। फिर भी हमने अमृतसरको पहले लिया, क्योंकि एक तो सिखोंके गढ़के रूपमें उसका जो महत्त्व है उसके अतिरिक्त, गड़बड़ी पहले वहीं शुरू हुई थी और दूसरे, सरकारकी नीति अमृतसरमें ही निश्चित हुई थी। लाहौर एक बड़ा जंकशन है और यहाँसे पेशावर, कलकत्ता, कराची और बम्बईको गाड़ियाँ जाती हैं। लाहौर और दिल्लीके बीच २९८ मीलका फासला है। छावनीके इलाकेको छोड़कर लाहौरकी जनसंख्या २,५०,००० है, जिसमें मुसलमान तबका ज्यादा है और हिन्दुओंकी संख्या मुसलमानोंकी संख्याकी लगभग एक तिहाई है।

लाहौरमें लड़कोंके दस और लड़कियोंके दो कालेज हैं। इसके अतिरिक्त लड़कों और लड़कियोंके लिए बहुत सारे हाईस्कूल भी हैं। पंजाब विश्वविद्यालय भी यहीं है। यहाँसे अंग्रेजीके दो दैनिक पत्र निकलते हैं: एक तो सामान्य रूपसे नौकरशाही और यूरोपीय वाणिज्यके हितमें निकलता है और दूसरेकी निष्ठा भारतके राष्ट्रीय हितोंके प्रति है। जन-भाषाओंमें यहाँसे कई दैनिक और सप्ताहिक पत्र निकलते हैं, इसलिए शिक्षित-वर्गके लोग लाहौरमें पंजाबके सब शहरोंसे अधिक हैं और रोजकी घटनाओंकी जितनी खबर इस शहरके लोगोंको मिलती है उतनी पंजाबके किसी और स्थानके लोगोंको नहीं। पंजाबकी यह विशेषता रही है, और सर माइकेल ओ'डायरने इसके लिए उसे बधाई भी दी है, कि उसे भारतीय राजनीतिसे अपेक्षाकृत कम लगाव रहा है। किन्तु हालमें यहाँ राजनीतिक जीवन संगठित किया जाने लगा था और इसमें नेतृत्व लाहौर कर रहा था। सर माइकेल ओ'डायरके उस भाषणसे, जो उन्होंने अपने कार्य-कालके श्रीगणेशके अवसरपर कौंसिलमें दिया था और जिसका हम पहले जिक्र कर चुके हैं, इस जागरणको बल मिला। फिर रौलट कानून जारी होनेके बाद भारतमें जो राजनीतिक

गतिविधि बढ़ी उसमें पंजाबने भी भाग लिया और लाहौर इसमें सबसे आगे था। जब श्री गांधीने सत्याग्रहकी घोषणा की तो पंजाबके नेता अन्तिम क्षणतक यह निश्चय नहीं कर पाये कि उसे स्वीकार करें या न करें। और वास्तवमें ऐसा कोई नहीं दिखाई दिया जिसने सत्याग्रहकी शपथ ली हो — लाहौरमें तो निश्चित रूपसे नहीं। किन्तु अनशन और हड़तालकी बात दूसरी थी। उनके पालनमें किसी शपथकी आवश्यकता नहीं थी और उनका लगातार चलते रहना भी आवश्यक नहीं था। किन्तु इस प्रश्नपर भी लोग अपना मत निश्चित कर पाये थे, ऐसा नहीं लगता। न वे यही मानते थे कि श्रीगांधीके आह्वानकी जनतापर क्या प्रतिक्रिया होगी। इस सम्बन्धमें उन्होंने श्री गांधीके पत्रको प्रकाशित और वितरित करनेका निश्चय किया। ज्यों ही सरकारको मालूम हुआ कि हड़ताल होनेवाली है, वह घबरा उठी। ४ अप्रैलको लाहौरमें पुलिसने एक नोटिस निकाला, जिसके द्वारा बिना पहलेसे इजाजत लिये जुलूस निकालने या सभा करनेपर रोक लगा दी गई। ५ तारीखको डिप्टी कमिश्नरने नेताओंको मिलनेके लिए बुलाया। पण्डित रामभजदत्त चौधरी[1] और दूसरे नेताओंने अपने बयानोंमें कमिश्नरसे हुई इस भेंटका पूरा विवरण दिया है और इसके बादकी घटनाओंका भी हाल बताया है। इस भेंटमें नेताओंने यहाँतक कहा कि यदि सरकार यह चाहती है कि उन्होंने जो सभा करनेका निश्चय किया है, वह न की जाये तो वे उसका इरादा छोड़ देनेको तैयार हैं। किन्तु डिप्टी कमिश्नर निम्नलिखित शर्तोंसे ही सन्तुष्ट हो गये:

(क) ५ तारीखकी शामतक सबको यह अधिकार होगा कि नागरिकोंको हड़तालके पक्ष या विपक्षमें समझायें।

(ख) ६ तारीखको हड़तालके पक्ष या विपक्षमें कोई प्रचार नहीं होगा।

(ग) सभा की जा सकती है, किन्तु कोई उत्तेजनापूर्ण भाषण न हो।

जब ६ तारीखका दिन आया तो लाहौर शहरमें पूर्ण हड़ताल थी — ऐसी, जैसी कि पहले कभी नहीं हुई थी। हजारों लोगोंने, जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे, हड़ताल रखी। लोग नदीमें नहाने गये और लौटते हुए एक जुलूसमें संगठित हो गये। असलमें देखें तो यह पुलिसके उस नोटिसका उल्लंघन था, जिसका जिक्र ऊपर किया गया है। किन्तु जुलूस सर्वथा व्यवस्थित था। पुलिसने बुद्धिमानी की और हस्तक्षेप नहीं किया। किन्तु जब जुलूस माल रोडकी ओर मुड़ा तो उसे डाकघरसे आगे नहीं जाने दिया गया। जुलूसको वापस मोड़नेके लिए उन्हें नेताओंका सहयोग मिला। लाला दुनीचन्द[2] और डा० गोकलचन्द नारंग[3] सहायताको आये और जुलूसको माल रोडपर आगे बढ़नेसे रोकनेमें कामयाब हो गये।

किन्तु सर माइकेल ओ'डायरको क्या चीज परेशान कर रही थी, इसका कुछ आभास मिलता है। कहते हैं, वे अपनी बातचीतमें बार-बार यह विचार प्रकट करते

१. एक स्थानीय नेता और कवि, जिन्होंने अपनी पत्नी सरलादेवी चौधरानीके साथ पंजाबके सार्वजनिक मामलोंमें प्रमुख रूपसे भाग लिया।

२. लाहौर नगरपालिकाके एक लोकप्रिय सदस्य।

३. प्रमुख बैरिस्टर और लाहौरके नेता; वे एक घोड़ेपर चढ़ गये और जुलूसको वापस शहर ले गये।

रहे थे कि पंजाबमें कोई हड़ताल नहीं होगी। इसलिए जब पंजाबकी राजधानीमें भी ऐसी पूर्ण हड़ताल हो गई तो उन्हें बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने कहा, इस तरहकी मुकम्मल हड़ताल करानेकी कीमत मैं नेताओंसे अवश्य वसूल करूँगा।

तीसरे पहर ब्रैडलॉ हॉलमें एक सभा हुई जिसमें हजारों आदमी उपस्थित थे। लाहौरमें ऐसी सभा पहले कभी नहीं हुई थी। सर माइकेल ओ'डायरने सी० आई० डी० के सुपरिन्टेन्डेन्टको इस सभामें उपस्थित रहनेके लिए विशेष रूपसे तैनात कर दिया। इस सभामें जो भाषण हुए, उनका पूरा विवरण लिखा गया। हमने उसे देखा है। यद्यपि इन भाषणोंका लहजा पुरजोर था और रौलट कानूनको रद करानेके जनताके अधिकारपर आग्रह प्रकट किया गया था, लेकिन उनमें राजद्रोहकी कोई बात नहीं थी, और निश्चय ही ऐसा कुछ नहीं था जिसका किसी भी रूपमें इस प्रकार अर्थ लगाया जाये कि वह हिंसाके लिए उकसावा था। ७ और ८ को कुछ नहीं हुआ।

९ अप्रैलको रामनवमी वैसे ही मनाई गई, जैसे अमृतसरमें मनाई गई। लोग आनन्दोत्सवमें लगे रहे और इस अवसरका उपयोग उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर भाईचारेको बढ़ानेके लिए किया। इस प्रकार पहले जिस त्योहारका स्वरूप शुद्ध धार्मिक हुआ करता था, सौभाग्यसे वह पिछले कुछ वर्षोंसे एक राष्ट्रीय त्योहारमें बदल गया है। जुलूसके साथ सरकारी अधिकारी भी थे। जहाँ-कहीं भी लोगोंको उनकी उपस्थितिका ज्ञान हुआ, उन्होंने हर्षध्वनि की।

इस प्रकार १० तारीखतक सब कुछ शान्त था, लेकिन सर माइकेल ओ'डायर नहीं। उन्हें विदित था कि श्री गांधीको डा० सत्यपालने अमृतसर आने और सत्याग्रहका अपना सिद्धान्त समझानेके लिए आमन्त्रित किया है। उनको यह भी विदित था कि श्री गांधी उनके और संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्दजीके निमन्त्रणपर दिल्ली जानेवाले थे, और ८ तारीखको बम्बईसे दिल्लीके लिए प्रस्थान कर चुके थे। सर माइकेलसे यह सहन नहीं हुआ और वाइसरायकी स्वीकृति लेकर उन्होंने पंजाबमें श्री गांधीका प्रवेश रोक दिया और पहले ही स्टेशनपर[1] उन्हें गिरफ्तार करके बम्बई प्रेसिडेंसी भेज दिया, जहाँ उन्हें नजरबन्द कर दिया गया। श्री गांधीकी गिरफ्तारी और नजरबन्दीका समाचार लोगोंको १० तारीखको लाहौरमें "सिविल ऐंड मिलिटरी गजट" में छपनेपर मिला, और बिना किसी संगठन या प्रयत्नके तुरन्त दुकानें बन्द हो गईं। ४ बजते-बजते सब काम ठप हो गया। कुछ नागरिकोंने एक जुलूस बनाया और माल रोडकी ओर चल दिये। अनारकली पहुँचते-पहुँचते यह जुलूस बहुत बड़ा हो गया, किन्तु चूँकि ६ अप्रैलको पुलिसने जुलूसको माल रोडपर आगे रोक दिया था, अतः इस जुलूसका अधिकांश भाग फॉर्मन क्रिश्चियन कालेजके नजदीक रुक गया। किन्तु लगभग तीन चार सौ आदमियोंने जिनमें विद्यार्थी भी थे, माल रोडपर जानेका निश्चय किया। उनका इरादा यह था कि गवर्नमेंट हाउस जायें और श्री गांधीकी रिहाईकी माँग करें। जैसे ही यह पता लगा, पुलिसका एक दस्ता भीड़के पीछेसे होकर निकला, और जुलसके आगे जाकर घूम पड़ा

१. पलवल स्टेशनपर, जो दिल्ली और मथुराके बीच पड़ता है।

उसने ओ'डायर सैनिक क्लबके नजदीक जुलूसको आगे बढ़नेसे रोक दिया। लेकिन भीड़ने पुलिसकी बात नहीं मानी। गोली चलानेका हुक्म दिया गया। २–३ जानें गईं और अधिक लोग घायल हुए। भीड़ पीछे हट गई। मृतकों और घायलोंको पुलिस उठाकर ले गई। रास्तेमें गुजरते हुए डाक्टरोंकी सहायता अस्वीकार कर दी गई। इस प्रकार उखड़ी हुई भीड़को पुलिस धीरे-धीरे पीछेकी ओर ढकेलती हुई अनारकलीसे होकर लाहौरी गेटके बिल्कुल पासतक ले गई। यहाँपर भी पुलिसने भीड़को तितर-बितर करना चाहा। जैसा कि पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ब्रॉडवेने हंटर समितिके सामने कहा है, उन्होंने आधे घंटेसे अधिक समयतक इस सम्बन्धमें भीड़से बातचीत की। इसी बीच पण्डित रामभजदत्त चौधरीको शहरसे बाहर उनके घर, स्थितिकी सूचना मिल गई। वे भागे-भागे घटना-स्थलपर पहुँचे और उन्होंने अधिकारियोंकी सहायता करनी चाही। उनसे कहा गया कि भीड़को पीछेकी ओर मोड़ें और उसे तितर-बितर करें। पण्डितजीने अपनी ओरसे कोशिश की, पर उनकी आवाज उन्हीं लोगोंतक पहुँची जो समीप थे। इसलिए उन्होंने एक ऊँचे आसनसे भाषण दिया; पर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट अधीर हो रहा था। डिप्टी कमिश्नरको भी बुलवाया गया था, और अब वह भी आ गया था। पण्डित रामभजदत्त चौधरी डिप्टी कमिश्नरके पास पहुँचे और कुछ समय माँगा, ताकि वे भीड़को समझा-बुझा सकें और उसे हट जानेके लिए तैयार कर सकें। किन्तु श्री फाइसनने उन्हें केवल दो मिनटका समय दिया और कहा कि यदि उतने समयके अन्दर भीड़ तितर-बितर न हुई तो वे गोली चलानेका हुक्म दे देंगे। पण्डितजीने आपत्ति की कि इतने समयमें वे भीड़के ऊपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगे, किन्तु श्री फाइसन अपनी बातपर अड़े रहे। फिर भी पण्डितजीने कोशिश की और कुछ हदतक वे भीड़के एक भागको पीछे हटानेमें कामयाब भी हो गये पर श्री फाइसन अपनी बातके पक्के निकले और दो मिनटका समय समाप्त होते ही उन्होंने गोली चलानेका हुक्म दे दिया। लगभग उतने ही व्यक्ति मरे और घायल हुए जितने ओ'डायर सैनिक क्लबके नजदीक हुए थे। गोलीबारीसे भीड़ तो तितर-बितर हो गई, किन्तु लोगोंके दिलोंमें कटुता पैदा हो गई।

हमारा मत है कि दोनों बार गोलीबारीको टाला जा सकता था। भीड़ निहत्थी थी। वह कई सार्वजनिक इमारतोंके सामनेसे होकर गुजर चुकी थी, जिनमें क्रिश्चियन कालेजके अतिरिक्त वाई० एम० सी० ए०, अलायंस बैंक ऑफ शिमला, बैंक ऑफ बंगाल, डाकखाना, तारघर, उच्च न्यायालय और बड़ा गिरजाघर भी शामिल थे। जैसा कि अमृतसरमें हुआ, यहाँ भी अधिकारियोंने गोली चलानेसे पहले जो कदम उठाने चाहिए थे, नहीं उठाये और यह उनकी भूल थी कि उन्होंने पण्डित रामभजदत्त चौधरी को, जो सचमुच भीड़को हटानेकी भरसक कोशिश कर रहे थे, काफी समय नहीं दिया। भीड़ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। हमारा खयाल है कि हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंमें समान परिस्थितियोंमें लोगोंकी भीड़की भावनाएँ लगभग वैसी ही उग्र होती हैं और उसमें वैसी ही दृढ़ता या कहिए कमजोरी होती है जैसी कि पंजाबी भीड़में। हम यह इसलिए कह रहे हैं कि हमने ऐसा कहते सुना है कि पंजाबकी भीड़ इस तरहकी किसी दूसरी

भीड़से भिन्न होती है और वह अधिक उद्दण्ड तथा हठी होती है। हमारी राय इससे भिन्न है। हममें से कुछने पंजाबकी एक बड़ी भीड़को लाठी घुमाते ही तितर-बितर होते देखा है। लाहौर, कसूर या अमृतसरकी भीड़ निस्सन्देह बहुत उग्र थी, किन्तु वह मामूली गोलीबारीके आगे भी नहीं टिक सकी। हमारा खयाल है कि स्वयं सरकारी साक्ष्यमें इन भीड़ोंके जितनी विशाल होनेकी बात कही गई है उतनी विशाल भीड़ अगर दुनियाके किसी और हिस्सेमें एकत्र होती तो वह, इन भीड़ोंके विरुद्ध जितने कम सिपाही खड़े किये गये थे उतने सिपाहियोंकी एक न चलने देती। सरकारी गवाहीके आधार-पर हम जानते हैं कि १० अप्रैलको बम्बईमें एक विशाल भीड़को दो दर्जन घुड़सवारोंने उसके अन्दर घोड़े दौड़ाकर तितर-बितर कर दिया था, और उपद्रव करनेपर उतारू बम्बई-के पायधुनी मुहल्लेकी भीड़की उद्दण्डता तो विख्यात ही है। हमें तो कुछ ऐसा लगता है कि जैसे सामान्य रूपसे हिन्दुस्तानमें और विशेष रूपसे पंजाबमें इस तरहका कोई अलि-खित नियम हो कि पुलिस कभी भी किसी तरहका खतरा न उठाये और छोटीसे-छोटी बातपर गोली चला दे। यदि एक सभ्य सरकारकी कसौटी यह है कि वह किसी तुच्छसे-तुच्छ नागरिकके जीवनको भी सस्ता न समझे तो हमें भय है कि पंजाब सरकार इसमें बिलकुल खरी नहीं उतरी है। जिन लोगोंकी रक्षा सरकारका उत्तरदायित्व है उनके जीवनके प्रति उपेक्षाके लिए यह बहाना स्वीकार नहीं किया जा सकता कि शासक जातिके लोग शासित जातिके लोगोंकी तुलनामें बहुत ही कम हैं। कुछ अधिकारियोंने अपने आदेशोंके सम्बन्धमें किये गये प्रश्नोंके जिस अन्यमनस्कतासे उत्तर दिये हैं उससे हमारा यह विश्वास मजबूत हो गया है कि यदि अधिकारियोंने कुछ धैर्य और सूझ-बूझ-से काम लिया होता और नागरिकोंके जीवनको कुछ मूल्यवान समझा होता तो जिन गोलीकांडोंका हमने जिक्र किया है उन्हें टाला जा सकता था। हमारा यह विश्वास इस बातसे और भी दृढ़ होता है कि हमारे ध्यानमें आनेवाले प्रत्येक मामलेमें भीड़के तितर-बितर होनेके बाद घायलोंकी देख-भालके लिए कोई भी प्रबन्ध आवश्यक नहीं समझा गया।

किन्तु अब हम फिर अपनी कहानीपर आयें। यह बात आश्चर्यजनक तो लगती है, पर जैसा हम देख चुके हैं, अधिकारियोंने घायलोंके सम्बन्धियोंको उन्हें ले जानेकी अनुमति नहीं दी। इससे बहुत कटुता और रोष पैदा हो गया। इसलिए ११ तारीखको भी हड़ताल जारी रही। नेताओं और अधिकारियोंके बीच बराबर बातचीत चलती रही। नेताओंने अपनी समस्त उत्कटताके साथ प्रार्थना की कि मृतकों और घायलोंको उन्हें वापिस दे दिया जाये, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अधिकारी चाहते थे कि उनकी ओरसे बिना किसी प्रकारकी रियायत दिखाये हड़ताल समाप्त कर दी जाये। हमने लाहौरके नेताओंसे उनकी रिहाईके बाद कई बार भेंट की है। उन्होंने हमें अपने बयान देनेकी कृपा की है। हमारा खयाल है कि अधिकारियों द्वारा घायलों और मृतकोंको वापस न करनेपर भी, अधिकांश नेताओंने हड़ताल समाप्त करनेका पूरा प्रयत्न किया, पर इसमें वे सफल नहीं हुए। ११ तारीखको बादशाही मसजिदमें एक विशाल सभा हुई, जिसमें हड़ताल समाप्त करनेकी बातपर विचार हुआ, किन्तु कोई

फल नहीं निकला। डिप्टी कमिश्नरके साथ फिर एक भेंट हुई, जिसमें नेताओंने सुझाव दिया कि उन्हें एक और सभा इस शर्तपर करने दी जाये कि सभा-स्थलके आसपास कहीं भी सैनिक तैनात नहीं किये जायेंगे। पंडित रामभजदत्त चौधरीने इस बातकी पुष्टि की है कि श्री फाइसनने इस प्रकारकी शर्त स्वीकार की थी। श्री फाइसन इससे इनकार करते हैं। जो गवाही हमारे पास है, उससे श्री चौधरीकी बातकी पुष्टि होती है। बादशाही मसजिदमें एक विशाल सभा हुई। सभामें बहुत रोष था। केवल पंडित रामभजदत्त चौधरी अपनी बुलन्द आवाजके कारण लोगोंसे अपनी बात कह सके। बिना किसी अन्तिम निर्णयपर पहुँचे सभा समाप्त हो गई; और जब लोग अपने-अपने घरोंको लौट रहे थे, फौजने गोलियाँ चला दीं। फौजकी ओरसे कहा जाता है कि गोली चलाना आवश्यक हो गया था, क्योंकि भीड़ उद्दण्डतापर उतारू हो गई थी। यदि यह सच है कि श्री फाइसनने फौज हटा लेनेका वायदा किया था तो वहाँ उसकी उपस्थिति ही अनुचित थी। इस बार भी कुछ जानें गईं। इससे जनताका रोष और भी बढ़ा और नेताओंका काम प्रायः असम्भव हो गया। नेताओंमें फिर विचार-विमर्श हुआ। उधर अधिकारियोंका रुख उत्तरोत्तर कड़ा होता गया। कुछ नेताओंसे भेंट करते थे और कुछसे मिलनेसे इनकार कर देते थे। हड़ताल चलती रही। यह खतरा हो गया था कि भुखमरी फैल जायेगी और फलस्वरूप लूट-पाट होगी। इसलिए लोगोंने लंगरखाने खोले। ये चन्देसे चलाये गये और इस प्रकार १५ अप्रैलका दिन आ गया। १६ तारीखको पंजाबके एक बड़े भारी व्यवसायी लाला हरकिशन लाल, लाहौर नगरपालिकाके एक अत्यन्त लोकप्रिय सदस्य लाला दुनीचन्द, जो लगातार बड़ी लगनके साथ सार्वजनिक सेवाका कार्य करते आये थे और पंडित रामभजदत्त चौधरीको डिप्टी कमिश्नरने मिलनेके लिए बुलाया। लेकिन वहाँ हुआ यह कि उन्हें गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया गया। उनके निर्वासनके तुरन्त बाद लाहौरमें मार्शल लॉ की घोषणा कर दी गई। उस समय नेताओंको डिप्टी कमिश्नरने बताया कि मार्शल लॉ की घोषणा हड़तालको तोड़नेके लिए की जा रही है और कर्नल जॉन्सनने अपनी गवाहीमें साफ-साफ कहा है कि यदि लोग दुकानें स्वयं न खोलते तो वे दुकानें फौजके जिम्मे कर देते और जबरदस्ती उनका माल बेचते। यह चेतावनी सचमुच दी भी गई और लाहौरके अभिमानी दुकानदारोंको फौजके दबावमें अपनी दुकानें खोलनेकी जलालत उठानी पड़ी। अपने रोषकी प्रकट अभिव्यक्तिके रूपमें हड़ताल जारी रखना लोगोंके लिए ठीक था या गलत, इस प्रश्नपर हम विचार नहीं करेंगे। किन्तु चाहे यह सही रहा हो या गलत, लोगोंने अगर अपनी दुकानें खोलनेसे इनकार किया तो कोई अपराध नहीं किया। मगर उन्हें सैनिक बलकी धमकी देकर दुकानें खोलनेको मजबूर करना अपराध था। और हमें लगता है कि सरकारके दृष्टिकोणसे भी राहत पानेके साधनके रूपमें शान्तिपूर्ण हड़तालका तरीका हिंसात्मक उपायकी अपेक्षा लाख दर्जे अच्छा होना चाहिए।

खैर, कर्नल जॉन्सनने लार्ड हंटरके सामने अपनी राय दी कि पंजाबके दूसरे भागोंमें 'बगावत' न फैलने देनेके लिए लाहौरमें मार्शल लॉ जरूरी था। हमारा विचार है कि

लाहौरमें मार्शल लॉ लागू करना किसी भी प्रकार उचित नहीं ठहराया जा सकता। लाहौरमें जनताने जान या मालको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचाई थी। बादशाही मसजिदकी एक सभामें एक सी० आई० डी० अफसरकी जो पिटाई हुई, उसे हम सार्वजनिक हिंसाका नाम नहीं देते। जिन लोगोंने इस अधिकारीको पीटा, उन्होंने निःसन्देह एक अनुचित कार्य किया; पर यदि इतनी-सी बातके आधारपर मार्शल लॉको उचित बताया जाने लगेगा, तब तो मार्शल लॉ एक असामान्य बात न होकर जीवनका सामान्य नियम बन जायेगा। लाहौरके किसी भी नेताका बाहरके किसी संगठनसे सम्बन्ध साबित करनेके लिए खुले तौरपर कोई गवाही नहीं पेश की गई है। अमृतसर और लाहौरके बीच भी कोई सम्बन्ध साबित नहीं किया गया है। लाहौरकी जनताका हित इसीमें था कि लाहौरमें शान्ति और व्यवस्था बनी रहे। लाहौरकी आबादीमें कोई लड़ाकू तत्त्व नहीं हैं। इसलिए लाहौरमें मार्शल लॉ जारी किया जाना न तो लाहौरकी सुरक्षाके लिए आवश्यक था और न लाहौरसे दूसरी जगह गड़बड़ीका फैलना रोकनेके लिए। ऐसा करना लाहौरके नागरिकोंकी दृढ़ वफादारीपर अनुचित लांछन लगाना था। यहाँ हम ब्रिटिश संविधान और सम्राट्के प्रति वफादारीमें और अपने ऊँचे पदको कलंकित करनेवाले सम्राट्के एक अत्याचारी प्रतिनिधिका हर तरहसे समर्थन करनेमें जो भारी अन्तर है, उसे स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

ये उपद्रव, वे चाहे जहाँ-कहीं भी हुए, सर माइकेल ओ'डायरके शासनके विरुद्ध अनुशासित प्रदर्शन थे। अपने शासनके प्रारम्भसे ही सर माइकेलने हर सम्भव उपायसे पढ़े-लिखे वर्गके लोगोंको अपनेसे विमुख कर लिया। उन्होंने युद्ध-सहायताके लिए जनतासे जन और धनकी माँग करनेमें जो अत्युत्साह दिखाया, उससे आम जनता नाराज हो गई। हम किसी ऐसे युद्धमें सहायता देनेके लिए, जिसमें साम्राज्यका अस्तित्व ही दाँवपर लगा हुआ हो, जनतापर सामाजिक और नैतिक दबाव डाला जाना उचित मानते हैं। किन्तु सर माइकेल ओ'डायरने इस सम्बन्धमें शालीनताकी सीमाका अतिक्रमण कर दिया; और युद्धके लिए जन और धन उपलब्ध करनेमें अपने दूसरे बन्धुओंको पीछे छोड़ देनेके प्रशंसनीय उत्साहमें वे अपनी मर्यादा भी भूल गये; और भूल गये कि वे इसके लिए जो तरीके अपना रहे हैं वे अच्छे हैं या बुरे। नतीजा यह हुआ कि उनके मातहत अधिकारियोंने दुष्टतामें हेरोडको[1] भी मात दे दी; और जैसा कि हमने पिछले एक अध्यायमें बताया है, हमारे पास ऐसे साक्ष्य मौजूद हैं जिनसे प्रकट होता है कि अधिकारियोंने, जिनका एकमात्र ध्येय सेनाके लिए सिपाही और धन जमा करना था, ब्रिटिश शासनको कलंकित कर दिया। और इस क्षेत्रमें उन्हें जो भी मिला, बहुत बड़ी कीमत देकर मिला।

कहा गया है कि असन्तोष प्रदर्शनमें जो हिंसा हुई उसका कारण सैनिक भरतीको नहीं माना जा सकता क्योंकि जिन जिलोंमें जनतापर अनुचित दबाव डाला गया बताते हैं, वे जिले हिंसासे बिलकुल मुक्त रहे। यह कथन निःसन्देह एक हदतक सही है। किन्तु जहाँतक यह सही है, उसका कारण बिलकुल साफ है। जो लोग

१. जूडियाका अत्याचारी शासक, जिसके शासनकालमें ईसाका जन्म हुआ था।

थोड़ी या बहुत कामयाबीके साथ अपनी रक्षा कर सकते थे, वे दबावमें नहीं आये। लेकिन जो दबावका प्रतिरोध नहीं कर सके उनके बारेमें तबतक यह सम्भावना नहीं हो सकती कि वे आगे भी उसके विरुद्ध खड़े होंगे जबतक कि उन्हें अपनी शक्तिका बोध न हो जाये। किन्तु जिस प्रकार किसी दूसरेके एवजमें बलिदान किया जा सकता है उसी प्रकार दूसरेके एवजमें रोष भी प्रकट किया जा सकता है। जैसे-जैसे राष्ट्रीय चेतनाका विकास होगा वैसे-वैसे बदलेमें बलिदान और हिंसाका प्रदर्शन भी बढ़ेगा तथा सरकार और जनता दोनोंको चाहिए कि वे बुद्धिमानीके साथ चुनाव करें। कहना बेकार होगा कि बदलेमें किया गया आत्म-बलिदान बदलेमें की गई हिंसासे कहीं उत्तम है। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पंजाब सरकारने ऐसे लोगोंको, जो बदलेमें आत्म-बलिदानके लिए अपनेको तैयार कर रहे थे, हिंसाके लिए उकसाया।

किन्तु लाहौरको यह श्रेय है कि उसने चुना हुआ मार्ग कभी नहीं छोड़ा। लाहौरकी जनताने जो कष्ट उठाये वे हमारी रायमें एक अर्थमें उन कष्टोंसे भी अधिक पवित्र निधि हैं जो जलियांवाला बाग हत्याकाण्डके शिकार होनेवालोंने उठाये थे।

अब हम इन कष्टोंपर एक सरसरी नजर डालेंगे।

आफ्रिकामें शोहरत पानेवाले कर्नल जॉन्सन ५ अप्रैलसे २९ मई, १९१९ तक लाहौर मार्शल लॉ क्षेत्रके कमांडर थे। उनके शासनकी निरंकुशता इतनी व्यापक थी कि क्या ऊँच क्या नीच, सभी वर्गोंके लोग उसकी लपेटमें आ गये। हजारों विद्यार्थी भी इससे नहीं बच सके। उनके लौह शासनके सामने ऊँचेसे-ऊँचे व्यक्तिको भी झुकना पड़ा।

उनके कर्फ्यू ऑर्डरको ही लीजिए। ऐसे स्त्री, पुरुष और बच्चे, जो छोटी-छोटी जगहोंमें रहते हैं और जल्दी सो जानेके आदी हैं, इसकी असुविधाओंको उतना नहीं समझ पायेंगे जितना कि लाहौर-जैसे बड़े शहरके निवासी। लाहौरके लिए यह असह्य हो गया। जिन लोगोंको चिकित्साकी आवश्यकता थी, उन्हें भी उसके बिना ही रहना पड़ा; और जब पंडित जगतनारायणने[1] इस कठिनाईकी ओरसे संकेत किया तो इस अधिकारीने तपाकसे उत्तर दिया कि लड़ाई ठानी' है तो इस प्रकारकी कठिनाइयाँ तो झेलनी ही पड़ेंगी। कर्नल जॉन्सन-जैसे अधिकारीको, जो एक इतने जिम्मेदार पदपर थे, एक ऐसी स्थितिके बारेमें जिसे किसी भी तर्कसे "लड़ाई ठानना" नहीं कहा जा सकता था, इस प्रकारकी तकनीकी और कानूनी शब्दावलीका प्रयोग नहीं करना चाहिए था। लाहौर, बल्कि पंजाबमें जो स्थिति थी उसके लिए इस तरहके शब्द प्रयुक्त करना भाषाको भ्रष्ट करना था लॉर्ड हंटरके सामने दी गई सभी गवाहियाँ हमने पढ़ी हैं और इस वक्तव्यके समर्थनमें कि पंजाबने "सम्राट्के विरुद्ध लड़ाई ठान रखी थी", हमें एक भी तर्क या तथ्य नहीं मिला। कर्नल जॉन्सनको यह स्वीकार करना पड़ा कि लोगोंने कहीं भी हथियारोंका प्रयोग नहीं किया। जिनके पास हथियार थे और जो उनका उपयोग कर सकते थे, उन्होंने न तो स्वयं उनका उपयोग

१. संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) विधान परिषद्के सदस्य और हंटर कमेटीके तीन भारतीय सदस्योंमें से एक।

किया है और न किसी दूसरेको करने दिया। हम अभी आगे देखेंगे कि फौजी अदालतोंके जजोंकी रायमें 'लड़ाई ठानने'का अर्थ दरअसल क्या था। किन्तु, यहाँ तो हम देखते हैं कि एक पुराना और विविध अनुभव-प्राप्त ब्रिटिश अधिकारी ऐसे गैर-जिम्मेदाराना बयान दे रहा है जिसकी पुष्टिमें ऐसी कोई चीज नहीं मिलती जिसे कोई विवेकशील आदमी स्वीकार कर सके; वह स्वयं अपने ही कथनके अनुसार सुनी-सुनाई बातोंके आधारपर कार्य कर रहा है, और उन लोगोंके विरुद्ध, जिन्होंने अन्यायपूर्ण शासनके खिलाफ शान्तिपूर्वक प्रदर्शन करनेके अतिरिक्त कोई अपराध नहीं किया, सख्तसे-सख्त कदम उठा रहा है। जिन्होंने जाने-अनजाने, उचित या अनुचित रूपसे कर्फ्यू आर्डरका उल्लंघन किया, उनमें से बहुतसे लोगोंको साधारण अपराधियोंकी भाँति कोड़ोंसे पीटा गया।

कर्नल जॉन्सनने जनताको दिये गये इस आशयके एक नोटिसके "महत्त्वपर बहुत बल" दिया कि यदि उनके सैनिकोंपर कहीं कोई बम फेंका गया तो यह समझा जायेगा कि उस स्थानके १०० गजके घेरेके अन्दर रहनेवाले सब लोगोंने उसे फेंका है और वे उन लोगोंको घर छोड़कर चले जानेके लिए १ घंटेका नोटिस देंगे, जिसके बाद मन्दिरों और मसजिदोंको छोड़कर वहाँ की सब इमारतें ढहा देंगे।

उन्होंने ८०० ताँगोंको सैनिक सेवाके लिए ले लिया था। फिर यह संख्या घटाकर २०० कर दी गई और ये २०० ताँगे तबतक रखे गये जबतक मार्शल लॉ लागू रहा। उन्होंने वे सब मोटरगाड़ियाँ भी ले लीं, जिनके मालिक भारतीय थे। उन्होंने रेलों द्वारा यात्रापर भी नियन्त्रण लगा दिया ताकि "उन सज्जनोंकी कार्यवाही नियन्त्रित की जा सके जो शहरसे बाहर जिलेमें जाकर वहाँ उपद्रव करना चाहते हों।" उन्होंने एक आज्ञा जारी कर सब लंगरखाने बन्द करवा दिये। उन्होंने खाद्य वस्तुओंके मूल्य निर्धारित कर दिये। जिनके पास बन्दूकोंके लाइसेंस थे उनसे उनकी बन्दूकें भी ले ली गईं। जिन लोगोंकी "वफादारी असन्दिग्ध" थी ऐसे लोगोंको उनके इस अत्युत्साहसे बचानेके लिए सरकारको हस्तक्षेप करना पड़ा। उन्होंने बादशाही मसजिद बन्द करवानेकी[1] डिप्टी कमिश्नरकी आज्ञाको पक्का कर दिया। मसजिद खोलनेकी इजाजत तभी मिली जब संरक्षकोंने यह आश्वासन दिया कि "बादशाही मसजिदमें किसी हिन्दूको नहीं घुसने दिया जायेगा।"

कर्नल जॉन्सनने समरी अदालतें गठित कीं। उन्होंने स्वयं भी मुकदमोंकी सुनवाई की। इस प्रकार २७७ व्यक्तियोंकी पेशियाँ हुईं, जिनमें से २०१ को सजाएँ सुना दी गईं। अधिकसे-अधिक सजा थी — २ सालकी जेल, ३० कोड़े और १,००० रुपयेका जुर्माना। समरी अदालतोंके न्यायाधीशोंने ६६ व्यक्तियोंको कुल मिलाकर ८०० कोड़े लगानेके आदेश दिये थे। सबसे अधिक कोड़े खानेवाले व्यक्तिको ३० और सबसे कमवालेको ५ कोड़े लगे। इन लोगोंको सार्वजनिक रूपसे कोड़े लगाये जाते थे, परन्तु बादमें आदेश आ गया कि उनको इस तरह कोड़े नहीं लगाये जाने चाहिए। उनकी कोई भी डाक्टरी परीक्षा नहीं कराई गई। लॉर्ड हंटरने उनसे पूछा था कि क्या

१. बादशाही मसजिद २ सप्ताहतक बन्द रही और बहुत-से मुसलमान नमाज नहीं पढ़ सके।

उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि इस दण्डका काफी गम्भीर प्रभाव पड़ा था। उनका उत्तर था: "मैं तो नहीं सोचता।" उनकी रायमें तो "दण्ड देनेका यही सबसे ज्यादा दयापूर्ण तरीका" था। न्यायमूर्ति रैंकिनसे उन्होंने कहा कि जनताको आतंकित करके मैंने सैकड़ों व्यक्तियोंको सजा पानेसे बचा लिया। न्यायमूर्ति रैंकिनका खयाल था कि यह कहना बातको कुछ कड़े ढंगसे पेश करना है कि कानून-भंगके छोटे-मोटे मामलोंमें कोड़े लगानेकी पद्धतिको आम जनताके खिलाफ फौरी कार्रवाईका सबसे कारगर और सुविधाजनक तरीका मानना चाहिए। उन्होंने कर्नल जॉन्सनसे पूछा कि क्या ऐसे तरीकेको कभी-कभार कुछ विशेष परिस्थितियोंमें ही प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। कर्नल साहबका उत्तर था:

> मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। आप जानते हैं कि यहाँकी आबादी बहुत अधिक है। आप यह भी स्वीकार करेंगे कि इस तरहके आदेश जारी करनेका मतलब है बहुतसी ऐसी बातोंको भी अपराध करार दे देना जो अबतक अपराधमें शुमार नहीं होती रही हैं। अब इस हालतमें यदि सिर्फ जेलकी सजा ही दी जाये तो इस विशाल आबादीपर उसका कोई खास असर नहीं पड़ेगा। इस शहरके आम लोगोंके रहन-सहनका जो स्तर है उसे देखते हुए जेल उनके लिए एक बहुत अच्छी जगह है। सेंट्रल जेलमें कैदियोंको अच्छा खाना-पीना मिलता है और इसलिए कोई भी अपने-आपको आसानीसे वहाँकी परिस्थितियोंके अनुकूल ढाल लेगा। इस हालतमें तो सभी लोग जेल जाना ही पसन्द करते। अतः मुझे डर था कि जेलें ठसाठस भर जायेंगी।

कर्नल जॉन्सनने एक अन्य स्थानपर कहा है कि कोड़े लगवाना १,००० सैनिकोंके इस्तेमालके बराबर है। जैसी दलीलें ऊपर दी गई हैं, उनको देखते हुए हमारी राय है कि कर्नल जॉन्सनने बर्बरतापूर्ण दण्डका औचित्य सिद्ध करनेके लिए बर्बरतापूर्ण तर्क दिये हैं, और यही एक तथ्य इतना सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त है कि वे किसी भी ऐसे जिम्मेदार पदके लिए उपयुक्त नहीं जैसा कि पंजाब सरकारने उनको सौंपा था। और फिर कोड़े लगवानेकी सजा इतने ही लोगोंको नहीं दी गई। उन्होंने तो सिर्फ उन्हीं मामलोंका जिक्र किया है जिनका विवरण हमें समरी अदालतोंकी कार्यवाहीमें बाकायदे मिलता है। इनसे कहीं ज्यादा संख्या ऐसे लोगोंकी है जिनको कोड़े लगाये गये थे, पर कहीं भी उनका विवरण दर्ज नहीं है। हमने लाहौरमें लगभग १७० लोगोंके जो बयान संग्रह किये हैं, उनसे सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि सम्राट्के उच्चतम अधिकारियोंने प्रतिहिंसाकी जिस भावनाका प्रदर्शन किया वह धीरे-धीरे निचलीसे-निचली श्रेणियोंके अधिकारियोंतक भी पहुँच गई थी और उन सभीमें इतनी गहराईसे घर कर गई थी कि वह थोड़ा-सा बहाना मिलते भड़क उठती थी और जिसे बिना किसी संयमके जनताके विरुद्ध खुलकर खेलने ही दिया गया।

उनका रेलवे यात्रा-सम्बन्धी आदेश आम जनतापर लागू होनेके साथ ही वकीलोंके मुंशियों और अरदलियोंपर विशेष तौरपर लागू होता था। सर चिमनलाल सीतलवाडने[1] पूछा था :

> आदेश संख्या ६ में आपने कहा है कि "मेरे पास यह विश्वास करनेके पर्याप्त कारण मौजूद हैं कि वकीलोंके मुंशी उनके अहलकार और चपरासी लोग राजद्रोहात्मक प्रचार करनेमें लगे हुए हैं?" और इसलिए आपने एक आदेश जारी करके उनपर अनुमति पत्र लिये बिना लाहौर सिविल कमाण्डसे बाहर जानेपर प्रतिबन्ध लगा दिया और आपने प्रत्येक वकीलको अपने उन सभी मुंशियों, अहलकारों या चपरासियोंकी पूरी-पूरी सूची पेश करनेका आदेश दिया जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे उनके लिए काम कर रहे थे।

कर्नल जॉन्सनने इसका स्वीकारात्मक उत्तर दिया। और जब उनसे पूछा गया कि इस आदेशका उनके पास क्या आधार था, तो उन्होंने स्वीकार किया कि प्रमाण तो केवल जबानी ही था।

सभी जानते हैं कि वकील तबकेके विरुद्ध यह पूर्वग्रहकी भावना किस सीमातक पहुँच गई थी और किस तरह पंजाबसे बाहरके वकीलोंको महज इस आधारपर पंजाबमें प्रवेश नहीं करने दिया गया कि वे भी राजद्रोहपूर्ण विचारोंका प्रचार कर सकते हैं। श्री मनोहरलाल-जैसे पुराने, सम्माननीय और राजभक्त समझे जानेवाले अध्ययनशील वकील भी, जो जीवन पथपर कुछ इतनी सावधानीसे कदम बढ़ाते हैं कि कभी-कभी वे भीरु भी प्रतीत होने लगते हैं, अपने-आपको मार्शल लॉ अधिकारियोंकी निगरानीसे सर्वथा मुक्त नहीं मान सकते थे। श्री मनोहरलालने पंजाबसे एम० ए० और कैम्ब्रिजसे बी० ए० किया है और वे पंजाब विश्वविद्यालयकी सिण्डीकेटके एक सदस्य हैं। वे सेंट जॉन्स कालेज, कैम्ब्रिजके एक मान्य अध्येता (फाउन्डेशन स्कॉलर) थे, और उन्होंने अन्य कई सम्मान भी प्राप्त किये हैं। वे उच्चतम न्यायालय, बार एसोसिएशनके उपाध्यक्ष और फॉरमन कालेजकी[2] ग्रेजुएट्स यूनियनके अध्यक्ष हैं। उनको 'ट्रिब्यून' समाचारपत्रका एक ट्रस्टी होनेके नाते १८ अप्रैलको सुबह साढ़े सात बजे गिरफ्तार कर लिया गया। उनके खिलाफ न तो कोई वारंट था और न उन्हें यही बतलाया गया कि उनको किस जुर्ममें गिरफ्तार किया गया। उनका कहना है :

> मुझे मेरे घरपर गिरफ्तार करते समय अपनी पत्नी और बच्चोंसे विदा लेनेके लिए मुश्किलसे दो मिनटका वक्त दिया गया और यह भी नहीं बतलाया गया कि मुझे कहाँ ले जाया जा रहा है।

१. चिमनलाल हरिलाल सीतलवाड (१८६५–१९४७); प्रमुख वकील और राजनीतिज्ञ; हंटर कमेटीके तीन भारतीय सदस्योंमें से एक।

२. फॉरमन क्रिश्चियन कॉलिज, लाहौर।

वे आगे कहते हैं:

दिनके करीब २ बजे पुलिस मुझे तारघरसे हटाकर सेन्ट्रल जेल, लाहौर ले गई, जहां फाटकपर घड़ी और चेन, पेन्सिल, रेजगारी इत्यादि जमा कराने और रजिस्टरपर हस्ताक्षरकी जगह सिर्फ अंगूठा-निशानी लगवानेकी सामान्य रस्में पूरी कर लेनेके वाद मुझे जेलके वार्ड नं० १४ की एक कोठरीमें ले जाया गया। यह वार्ड फांसीकी सजा पानेवाले कैदियोंके लिए है, या उनके लिए जो हत्या या ऐसे ही अन्य अभियोगोंके हवालाती होते हैं। मुझे इस कोठरीमें कुछ समय वाद दो गन्देसे कम्वल और खाने-पीनेके लिए लोहेके दो तसले जेलकी तरफसे दिये गये। कोई तीन घंटे वाद मुझे "चक्कीखाना" नामक जेलके एक दूसरे हिस्सेमें पहुँचा दिया गया, जहां कई कोठरियां वनी थीं और जिनमें अनाज पीसनेका इन्तजाम था। मैं उन कोठरियोंका वर्णन नहीं करना चाहता क्योंकि उनको आसानीसे देखा जा सकता है। टट्टी-पेशाव और नहाने वगैरहका सारा इन्तजाम उस छोटी-सी कोठरीमें ही था, जहां मिट्टीके वदवूदार वरतन रखे हुए थे, जिन्हें दिनमें सिर्फ दो वार साफ किया जाता था। इस कोठरीमें रहते समय मुझे सुवहके वक्त पचास गजके वंधे-वंधाये फासलेमें थोड़ी-सी देरके लिए घूमने और यदि चाहूँ तो हाथ-मुंह धोनेके लिए नलतक जानेकी इजाजत थी। मेरे पास अपने कपड़े नहीं थे, केवल वही सूट था जो मैं गिरफ्तारीके वक्त पहने हुए था। २१ तारीखको शामके समय जाकर मुझे कुछ-और कपड़े मिले, जो मेरा लड़का मुझसे मुलाकातके लिए आते समय ले आया था।

मेरी गिरफ्तारीके दिन करीव-करीव शामतक मेरी पत्नी और वच्चोंको विलकुल पता नहीं था कि मुझे कहां रखा गया है। मुझे उनके साथ पत्र-व्यवहार करनेकी अनुमति नहीं मिली। सिर्फ शनिवारकी शामको मैं जेल-सुपरिन्टेंडेंटके जरिये एक पोस्टकार्ड अपने घर भिजवा सका था।

सोमवार, २१ अप्रैलको मेरे मित्र कुँवर दलीपसिंह, वार-एट-लॉ मेरे लड़केके साथ मुझसे मुलाकात करने जेलमें आये, लेकिन मुझे दोनोंमें से सिर्फ एकसे मुलाकात करनेकी इजाजत दी गई और मैं जेल-दारोगाकी मौजूदगीमें अपने वैरिस्टर मित्रसे सिर्फ चन्द मिनटके लिए मिल सका। अपने लड़केसे एक मिनटके लिए भी मुलाकात, अगर उसे मुलाकात कहा जा सकता हो तो, करनेका मेरा अनुरोध सुपरिन्टेंडेंट श्री कॉवनने ठुकरा दिया।

वुधवार, २३ तारीखको मुझे यूरोपीयोंवाले वार्डमें भेज दिया गया, जहाँ पहलेकी अपेक्षा थोड़ा आराम था, क्योंकि वहां चलने-फिरनेकी कुछ ज्यादा आजादी थी, जगह भी ज्यादा थी और संडास तथा नहाने-धोनेकी जगहें ज्यादा साफ थीं और वहाँ एक छोटा-सा पुस्तकालय भी था।

> रिहाईके दिन, १६ मईकी सुबहतक मैं इसी वार्डमें रहा। मेरा खयाल है, इस दौरान मैंने अपने मित्रों और सम्बन्धियोंसे बाकायदे तीन बार मुलाकातें कीं जिनमें से एक बहुत ही थोड़ी देरके लिए थी, और दूसरी मैंने विशेष तौर-पर कुँवर दलीपसिंहसे की थी, क्योंकि सरकारने उनको ऐसे कैदियोंके मुकदमे लड़नेके लिए नियुक्त किया था जो अपने वकील खड़े नहीं कर सकते थे और इस सिलसिलेमें वे अक्सर जेल आते-जाते रहते थे; और एक तीसरी मुला-कातका मौका तब मिला जब सुपरिंटेंडेंटने खास मेहरबानी करके मेरे भाईको जो लाहौरसे होकर गुजर रहा था, मुझसे मिल लेने दिया।
>
> इस पूरे दौरान मुझे बिलकुल नहीं बतलाया गया कि मुझपर क्या आरोप लगाया गया है। मुझे सर्वथा अनिश्चयात्मक स्थितिमें रखा गया।

श्री मनोहरलालने हमें इसका भी थोड़ा आभास दिया है कि उनकी बीमार पत्नी और बच्चोंपर क्या गुजरी? वे कहते हैं:

> जेलकी एक मुलाकातके दौरान मुझे पता चला कि मेरी गिरफ्तारीके बाद मेरे घरकी तलाशी हुई। मेरी गिरफ्तारीके मुश्किलसे पौन घंटेके बाद ही उस-पर ताला ठोक दिया गया। मेरी बीमार पत्नी और मेरे बच्चोंको अहातेमें बनी नौकरोंकी कोठरियों और रसोईघरमें शरण लेनी पड़ी और उनको मित्रों द्वारा दिये गये बिस्तरोंको इस्तेमाल करना पड़ा। तलाशी १९ अप्रैलको हुई और उस दिन शामको करीब ६ बजे मेरे परिवारके लोगोंको मकानमें वापस जानेकी इजाजत मिल पाई।

पुलिस दो-तीन कीमती किताबें भी अपने साथ ले गई, जो श्री मोहनलाल द्वारा बयान दिये जानेके दिनतक उन्हें वापस नहीं की गई थीं। उन्होंने अपनी गिरफ्तारीकी कहानीका अन्त इन शब्दोंमें किया है:

> मुझे आजतक भी पता नहीं चल पाया है कि मुझपर क्या आरोप लगाया गया था, या वह कौन-सी चीज थी जिसके कारण मुझे गिरफ्तार करके जेलमें रखना जरूरी हो गया था।

अपनी गिरफ्तारीके सम्भावित कारणोंका अनुमान लगाते हुए वे कहते हैं:

> मुझे अपनी वकालतके कामके बाद जितना भी समय मिलता है वह सब मैं अध्ययनमें लगाता हूँ, इसलिए मैं शहरके सक्रिय जीवनमें भाग नहीं लेता। डिप्टी कमिश्नरने कई बार जनताके प्रतिनिधियोंकी जो बैठकें बुलाईं, उनमें मुझे कभी भी नहीं बुलाया गया था; न मैं उनमें कभी अन्य किसी प्रकारसे गया; और हड़ताल बन्द करानेके तरीके सोचनेके लिए गैर-सरकारी लोगों द्वारा बुलाई गई किसी बैठकमें भी मैं शामिल नहीं हुआ। (बयान १५०, पृष्ठ १९८)।

कोई भी अधिकारी, जो श्री मनोहरलालके समान किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिको बिना पूरी-पूरी जाँच-पड़ताल और छानबीन कराये ही गिरफ्तार करनेकी अनुमति

दे सकता है, वह एक इतने ऊँचे पदपर बैठनेका उपयुक्त पात्र नहीं हो सकता, जिसपर कर्नल जॉन्सन आसीन थे। उनके पूरे व्यवहारसे भारतीय प्रतिष्ठाके प्रति उनका अवमान-भाव टपकता है, जो सम्राट्के मुलाजिमोंमें बिलकुल नहीं होना चाहिए।

इन अधिकारी महोदयका दिमाग सचमुच खूब चलता था, सो इन्होंने लोगोंको यन्त्रणा देनेका एक और तरीका यह सोच निकाला था कि जिन्हें वह "बुरी प्रवृत्तिके लोग" मानते थे उनके घरोंपर अपने नोटिस चिपकवा दिया करते थे। उन नोटिसोंको कोई नुकसान न पहुँचने देने, यहाँतक कि गन्दातक न होने देनेकी जिम्मेदारी घरके मालिककी मानी गई थी। सर चिमनलालने उनसे पूछा कि "बुरी प्रवृत्तिके लोग" से उनका क्या मतलब है और क्या वे जिनपर सन्देह करेंगे वे सब लोग "बुरी प्रवृत्तिवाले" माने जायेंगे ? उन्होंने अपने इस जवाबसे सबको हैरतमें डाल दिया कि "यदि आप [इसे] इसी ढंगसे कहना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" सर चिमनलालने उनसे पूछा: "मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप इसका क्या अर्थ लगाते हैं?" उनका उत्तर था:

> मेरा खयाल था कि जो लोग बिलकुल जाने-माने तौरपर राजभक्त न हों, उनको इस कामपर लगाना चाहिए और राजभक्तिके गुणसे हीन व्यक्तियोंका चुनाव खुफिया पुलिस द्वारा किया जाता था।

सर चिमनलालने बतलाया कि इसका मतलब तो यह था कि जिनको भी इस कामपर लगाया गया, उन्हें एक अरसेतक लगातार चौबीसों घंटे इन नोटिसोंकी चौकसी करनी थी। कर्नल जॉन्सनने ऐसी चौकसीकी आवश्यकता स्वीकार की, और इसे सर्वथा उचित भी बतलाया। यह आदेश वैसे तो हर सूरतमें असह्य था ही, किन्तु जब एक पूरी संस्थाको ही इसके लिए जिम्मेदार बना दिया गया, तब तो यह हजार गुना ज्यादा असह्य हो गया था।

और अब इसी प्रसंगमें कालेजके विद्यार्थियों तथा प्रोफेसरोंके साथ की गई हिंसापूर्ण कार्रवाईकी कहानी हमारे सामने आती है। कर्नल जॉन्सनके सोचनेके तरीकोको भली प्रकार समझानेके लिए सर चिमनलाल सीतलवाड और उनके बीच हुए प्रश्नोत्तरको यहाँ उद्धृत करना जरूरी है:

> प्र० — क्या यह नोटिस चिपकानेके लिए चुनी गई इमारतोंमें सनातन धर्म कालेजकी इमारत भी एक थी?
>
> उ० — मैं समझता हूँ कि थी।
>
> प्र० — क्या ऐसा है कि पहली सूचीमें यह शामिल नहीं थी, और उसका नाम बादमें ही जोड़ा गया?
>
> उ० — जी हाँ, बादमें सूचीमें फेर-बदल किये गये।
>
> प्र० — और इस कालेजकी चारदीवारीपर चिपकाये गये नोटिसको किसीने फाड़ दिया?
>
> उ० — पुलिसने तो नहीं, पर किसी औरने मुझे ऐसी ही सूचना दी।

प्र० – क्या यह सच है कि कालेजके छात्रावासोंके सभी विद्यार्थियोंको गिरफ्तार कर लिया गया?

उ० – मेरा आदेश था कि इमारतमें जितने भी पुरुष हों, सभीको गिरफ्तार कर लिया जाये।

प्र० – कितने लोग गिरफ्तार किये गये थे?

उ० – ५००।

प्र० – इस नोटिसको फाड़नेके लिए ५०० विद्यार्थी गिरफ्तार किये गये?

उ० – और प्रोफेसर लोग भी।

प्र० – और सभी गिरफ्तारशुदा लोगोंको फोर्टतक तीन मील पैदल चलाकर ले जाया गया?

उ० – बिलकुल ठीक है।

प्र० – और उस पैदल-यात्राके दौरान उन लोगोंको अपने-अपने बिस्तर कंधे या सिरपर ले जानेका हुक्म दिया गया था?

उ० – हाँ, जो अपने बिस्तर ले जाना चाहते थे, वे ले जा सकते थे।

प्र० – क्या उनको ऐसा हुक्म नहीं दिया गया था?

उ० – मैंने इसके लिए कोई आदेश नहीं दिया था। यह तो उनकी इच्छापर था।

प्र० – लाहौरकी गर्मियोंके दिनोंमें?

उ० – वह मई महीनेका दिन था।

प्र० – लाहौरमें बहुत गर्मी पड़ रही थी न?

उ० – जी हाँ।

प्र० – इन पांच सौके-पांच सौ विद्यार्थियों और प्रोफेसरोंको तीन मील पैदल चलाया गया?

उ० – बिलकुल।

प्र० – और आपके हुक्मसे उन्हें फोर्टमें रखा गया?

उ० – जी हाँ, ऐसा ही है।

प्र० – उनको कितने अरसेतक वहाँ रखा गया था?

उ० – मेरा खयाल है दिन-भर — क्षमा कीजिएगा, दो दिनतक।

प्र० – और इसके बाद प्रिंसिपलसे उन नोटिसोंकी रखवालीके बारेमें कुछ वचन लेकर उनको रिहा कर दिया गया?

उ० – जी हाँ, जब मुझे आवश्यक आश्वासन मिल गया कि ऐसी घटना फिर नहीं होगी।

प्र० – कर्नल, मैं आपसे पूछता हूँ कि आपने जो कदम उठाया था उसे क्या आप उचित समझते हैं?

उ० – जी हाँ, मैं तो इसकी ताकमें था। मैं ठीक ऐसे ही अवसरकी ताकमें था।

प्र० – यानी आप इसे तब एक उचित आदेश मानते थे और आज भी मानते हैं?

उ० – बेशक।

प्र० – कर्नल साहब, जैसा आपने अपनी रिपोर्टमें आभास दिया है, उस समय आपकी मनःस्थिति ऐसी थी कि आप जनताको मार्शल लॉकी ताकत दिखानेके एक मौकेकी ताकमें थे?

उ० – बात ठीक है।

प्र० – आप बड़ी उत्सुकतासे ऐसे मौकेकी प्रतीक्षा कर रहे थे?

उ० – जनताके हकमें हाँ।

प्र० – मैं यह नहीं कहता कि यह उनके हकमें नहीं था। हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। लेकिन आप बिलकुल तुले बैठे थे कि मौका मिले और आप लोगोंको मार्शल लॉकी ताकत दिखला दें?

उ० – सही है।

प्र० – और आपको ऐसा मौका मिल भी गया?

उ० – और मैंने उसे हाथसे नहीं जाने दिया।

प्र० – आपने मौका हाथसे नहीं जाने दिया और इन ५०० विद्यार्थियोंको चिलचिलाती धूपमें फोर्टतक पैदल चलाया?

उ० – बात ऐसी ही है।

प्र० – और आप अब भी मानते हैं कि ऐसा करके आपने अपनी शक्तिका उचित उपयोग किया?

उ० – बेशक। यदि जरूरत पड़ी तो कलको मैं फिर ऐसा ही करूँगा।

याद रखनेकी चीज यह है कि कर्नल जॉन्सनने यह निर्ममतापूर्ण उत्तर २४ नवम्बर, १९१९ को दिया था, जब संघर्ष कभीका ठंडा पड़ चुका था, और लाहौरकी कमान छोड़े उनको लगभग छः महीने हो चुके थे। यदि किसीने जान-बूझकर उनके बेशकीमती नोटिसको सचमुच फाड़ भी दिया था, तो उनका कर्त्तव्य था कि उसकी बाकायदा जाँच कराते, न कि बिना किसी सोच-विचारके सीधे प्रोफेसरों और विद्यार्थियों-को सबक सिखानेके लिए दौड़ पड़ते। पर यदि वह अति न करते तो उनका नाम ही कर्नल जॉन्सन न रहता, और इसलिए उन्होंने डी० ए० वी० कालेज, दयालसिंह कालेज और मैडिकल कालेजके खिलाफ एक साथ कार्रवाई की, उनको सजा देनेके लिए नहीं बल्कि विद्यार्थियोंको "शरारतसे अलग" रखनेके लिए। और जो आदेश जारी किया गया वह यह था कि सभी विद्यार्थियोंकी हाजिरी दिनमें चार बार ली जायेगी, सुबह सातसे ग्यारह बजेके बीच और शामको तीनसे साढ़े सात बजेके बीच। "और मैडिकल कालेजके विद्यार्थियोंको इस तरह दिनमें चार बार हाजिरी देनेके लिए कुल मिलाकर करीब १७ मील चलना पड़ता था, है न? —सर चिमनलालका प्रश्न था। और कर्नल जॉन्सनने इसका जो अशिष्टतापूर्ण उत्तर दिया वह था: "जी नहीं, मेरा

खयाल है, केवल १६ मील। मैंने वह फासला नापा लिया है।" सर चिमनलालने इसपर पूछा :

और लाहौरकी उस चिलचिलाती धूपमें उनको लगातार तीन हफ्तेतक रोजाना इसी तरह चलना पड़ा।"

उ० – बिलकुल यही करना पड़ा, हां यदि किसीको डाक्टरी प्रमाणपत्रके आधारपर इससे बरी कर दिया गया हो तो बात दूसरी है।

प्र० – तो कर्नल साहब, इसका मतलब यह है कि आपका खयाल था और अब भी है कि विद्यार्थियोंको शरारतसे अलग रखनेके लिए ऐसा आदेश देना उचित था?

उ० – तब मेरी यही राय थी।

प्र० – और क्या अब भी यही राय है?

उ० – बिलकुल।

प्र० – क्या आपके दिमागमें कभी यह बात नहीं आई या अब भी नहीं आती कि विद्यार्थियोंको तीन सप्ताहतक लाहौरकी तपती धूपमें रोजाना १६ मील पैदल चलाना उनको जरूरतसे ज्यादा क्लेश देना था?

उ० – बिलकुल कोई क्लेश देना नहीं था।

कर्नल जॉन्सनने अपनी असाधारण कार्रवाईका औचित्य किस असाधारण ढंगसे सिद्ध किया है, यह हम उन्हींके शब्दोंमें देते हैं :

प्र० – कर्नल साहब, मैं आपसे फिर पूछता हूं कि क्या यह बात कभी आपके दिमागमें आई कि इतने अधिक — मुझे ठीक पता नहीं कितने सौ, शायद हजारों — विद्यार्थियोंके साथ हाजिरीके मामलेमें आपने जिस तरहका बरताव किया उससे आपने उन युवकोंको शेष जीवनके लिए ब्रिटिश सरकारके प्रति तीव्र घृणाके भावसे भर दिया है?

उ० – आई थी, लेकिन मैं इसी नतीजेपर पहुँचा कि इन कालेजोंमें राजद्रोहकी भावना इतनी अधिक फैली हुई है कि मैं जो-कुछ भी करूँगा, उससे वे इस दृष्टिसे आज जितने बुरे हैं उससे अधिक बुरे नहीं बन सकते।

प्र० – क्या आपके उत्तरसे मैं यह समझूं कि यद्यपि यह बात आपके दिमागमें आई थी कि आपका बरताव उनको ब्रिटिश सरकारके प्रति कटु बना सकता है, लेकिन आपका खयाल था कि वे पहले ही इतने पक्के राजद्रोही बन चुके हैं कि और अधिक कटुता बढ़नेकी कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है?

उ० – आपने जैसा वर्णन किया है, मैं उसे स्वीकार नहीं करता, परन्तु कालेजोंका वातावरण इतना बिगड़ गया था कि उससे अधिक बिगड़नेकी गुंजाइश ही नहीं रह गई थी।

प्र० — क्या आप ऐसा समझते हैं कि आपने जो कदम उठाये, उनसे वातावरणको सुधारनेमें थोड़ी भी सहायता मिली?

उ० — इतना तो अवश्य है कि मैं उसे और अधिक बिगाड़ नहीं रहा था।

प्र० — क्या आप उसमें सुधार कर रहे थे?

उ० — मेरी कोशिश उनको राजभक्त बनानेकी नहीं थी; मैं तो उनको शरारत करनेसे और आसपासके जिलोंमें जानेसे रोक रहा था।

प्र० — क्या आप कामयाब हुए?

उ० — जी हां।

प्र० — क्या आपके खयालसे यही सबसे अच्छा रास्ता है?

उ० — मैं यही सबसे अच्छा रास्ता सोच पाया। इसके दो तरीके होते हैं — एक तो कालेजोंको बन्द कर देना और दूसरा, उनको दण्ड देना।

प्र० — आपकी बातका तो मैं यह अर्थ लगाता हूं कि इस देशमें लोगोंको सरकारके प्रति निष्ठावान और सदाशयतापूर्ण बनानेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि उनसे सख्तीसे पेश आया जाये। ठीक है न?

उ० — मैं इसे दूसरे ढंगसे कहूंगा। तरीका यह है कि उनको जतला दिया जाये कि इस प्रकार राजद्रोहका सन्देह हो जानेपर सजा भी दी जा सकती है।

प्र० — क्या आपके दिमागमें कभी यह बात आई कि इन हजारों विद्यार्थियोंमें बहुतसे सर्वथा निर्दोष लोग भी होंगे?

उ० — जी हां, मैंने कुछको छोड़ दिया था।

कर्नलका खयाल था कि कुछ विद्यार्थियोंने अंग्रेज महिलाओंका अपमान किया था। इस आरोपको प्रमाणित करनेवाला कोई तथ्य हमें नहीं मिला। उन्होंने अपनी रायके समर्थनमें खुद कोई प्रमाण पेश नहीं किया है, परन्तु उन्होंने इस सिलसिलेमें कालेजोंके प्रिंसिपलोंकी एक बैठक अवश्य बुलाई। उनके साथ कर्नलने "स्पष्ट बातचीत" की। उन्होंने समुचित दंडके सम्बन्धमें उनसे अपने सुझाव देनेके लिए कहा। प्रिंसिपलोंने अपनी समझसे जो दण्ड उपयुक्त माने उनके सुझाव दिये। कर्नलने उनमें से कुछ सजाओंको अपर्याप्त माना और तत्काल ही प्रिंसिपलोंको सूचित कर दिया कि "यदि ज्यादा सख्त दण्ड नहीं दिये जायेंगे, तो कालेज बन्द कर दिये जायेंगे और विद्यार्थियोंको परीक्षाओंमें नहीं बैठने दिया जायेगा।" और इस ढंगसे एक हजार ग्यारह विद्यार्थियोंको दण्डित किया गया। विद्यार्थियों और उनके साथ किये गये व्यवहारके बारेमें दयालसिंह कालेजके अंग्रेजीके प्रोफेसर श्री सन्तराम ग्रोवर, एम० ए०, बी० एस-सी० का कहना है:

> हड़तालके दिनोंमें मैंने अपने कालेजके विद्यार्थियोंके रवैयेमें कोई तब्दीली नहीं पाई, और मुझे एक भी ऐसा उदाहरण याद नहीं पड़ता जिसमें किसी विद्यार्थीने कोई अशोभन आचरण किया हो।

कई अन्य इमारतोंकी तरह, हमारे कालेजकी इमारतको भी मार्शल लॉके नोटिस चिपकानेके लिए चुना गया था। मार्शल लॉके ऐलानके लगभग दस या इससे कुछ अधिक दिनोंके बाद हमारे कालेजके प्रिंसिपलपर एक शाम करीब ७ बजे एक नोटिस तामील किया गया जिसमें कहा गया था कि उस नोटिसके साथ भेजे गये राजद्रोहपूर्ण पोस्टरको लिखनेवाले का पता लगाया जाना चाहिए और दूसरे दिन दोपहरके १२ बजेसे पहले-पहले उसका नाम कमांडिंग अफसरको बतला दिया जाना चाहिए। दूसरे दिन सुबह कालेजके न्यासियों, अध्यापकों और विद्यार्थियोंकी एक सभा इस पोस्टरको लिखनेवाले का पता लगानेके लिए की गई पर उसका पता नहीं चल सका, क्योंकि वह कालेजसे सम्बन्धित किसी व्यक्तिका काम नहीं मालूम पड़ता था। हम नोटिसका जवाब तैयार कर रहे थे कि तभी खुफिया विभागके कुछ लोगोंके साथ कर्नल जॉन्सन हमारे कालेजमें आ धमके। एक न्यासी, राजा नरेन्द्रनाथ और कुछ अन्य लोगोंने कर्नलको मामला समझानेकी कोशिश की। खुफिया पुलिसके एक आदमीने कालेजमें एक जगहकी ओर इशारा करके बतलाया कि उसे वहीं दीवारपर वह पोस्टर लगा हुआ मिला था। मैंने कर्नलसे कहा कि जरूर यह सारी बात मनगढ़न्त होगी, क्योंकि पोस्टर कील ठोककर लगाया हुआ मालूम पड़ता है, पर दीवारपर कीलका कोई भी निशान दिखाई नहीं देता। इसके बाद हमने कर्नलको अपना वह जवाब भी दिखलाया जो हमने तैयार किया था। इसपर कर्नलने उसे कार्यालयमें भेजनेके लिए कहा। हमने वह कर दिया। उसी दिन शामको एक दूसरा नोटिस आया कि प्रिंसिपल दूसरे दिन सुबह ९ बजे कर्नलसे मिलें। नियत समयपर प्रिंसिपल उनसे मिलने गये; लेकिन जब लौटे तो उनके साथ संगीनें ताने हुए कुछ सैनिक भी थे। प्रिंसिपलसे बतौर जुर्माना ढाई सौ रुपया भरने या उसके बदले तीन महीनेकी जेल भुगतनेके लिए कहा गया था। जुर्माना उसी समय भर दिया गया।

कुछ दिनों बाद अन्य कालेजोंके प्रिंसिपलोंकी तरह हमारे कालेजके प्रिंसिपलको भी डिप्टी कमिश्नरकी ओरसे एक हुक्म मिला कि आन्दोलनके सरगना विद्यार्थियोंका पता चलायें और उनको दण्डित करें। उसमें यह खुलासा नहीं किया गया था कि उनका मतलब किस आन्दोलनके सरगना विद्यार्थियोंसे था। हमने उसका यही मतलब लगाया कि कुछ विद्यार्थियोंको दण्ड देना है। उनकी इस इच्छाकी पूर्तिके लिए कालेज कौंसिलकी एक बैठक बुलाई गई और कुछ विद्यार्थियोंको चुन लिया गया और उनको दिये जानेवाले दण्डोंकी एक सूची तैयार कर ली गई। वह सूची न्यासियोंको दिखाकर, उनसे अनुमोदित करा ली गई। मैं खुद उस सूचीको डिप्टी कमिश्नरके पास ले गया; साथमें राजा नरेन्द्रनाथका एक पत्र भी ले गया था, जिसमें दण्डोंका जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा था

कि और ज्यादा विद्यार्थियोंको इसलिए दण्डित नहीं किया गया कि उससे अनावश्यक उत्तेजना फैलेगी, जो समाजके लिए खतरनाक होगी।

इसके एक-दो दिन बाद हमारे पास उत्तर आया कि जो दण्ड दिये गये हैं वे अपर्याप्त हैं और जितने विद्यार्थियोंको दण्डित किया जाना चाहिए था उतनोंको दण्डित नहीं किया गया है। इसपर फिर कालेज कौंसिलकी बैठक बुलाई गई, और कुछ विद्यार्थियोंके नाम पहलेवाली सूचीमें जोड़ दिये गये और कुछके दण्ड बढ़ा दिये गये। दूसरे दिन डिप्टी कमिश्नरने हमको लिखा कि वे उन दण्डोंको ठीक समझते हैं। साथमें उन्होंने पहले वसूल किये गये, ढाई सौ रुपयेके जुर्मानेकी रकमका एक चेक भी भेज दिया था। (बयान १५१, पृष्ठ २०१)

जो दण्ड विद्यार्थियोंको दिये गये थे, वे थे कालेजसे कुछ अवधिके लिए निष्कासन, परीक्षामें न बैठने देना आदि; और यह सब उन्हें बिना किसी सफाई-सुनवाईका मौका दिये किया गया। कर्नल जॉन्सन ने डी० ए० वी० कालेजके प्रिन्सिपलके नाम १० मईको जो पत्र लिखा था, उससे इस अधिकारीके रुखका बिलकुल ठीक पता चलता है। इसलिए हम आगे और कुछ न कहकर उस पत्रको ही ज्योंका-त्यों उद्धृत कर रहे हैं:

स्टाफ आफिसर, लाहौर (सिविल) कमांड, पंजाब क्लब, लाहौरकी ओरसे प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज, लाहौरके नाम दिनांक १० मई, १९१९ को लिखे पत्र — सं० १११–१४ की प्रति।

लाहौर (सिविल) एरियाके कमान-अधिकारीने आपके दिनांक ७के पत्रपर सावधानीसे विचार कर लिया है। मुझे उसके उत्तरमें यह लिखनेका आदेश दिया गया है कि उसमें जिस अनुशासनात्मक कार्रवाईकी बात कही गई है उसको कर्नल जॉन्सन बिलकुल ही नाकाफी मानते हैं, क्योंकि उनके पास जो तथ्य मौजूद हैं, वे साबित करते हैं कि राजद्रोहात्मक कार्रवाइयोंमें आपके कालेजके विद्यार्थी तो लाहौरके सभी दूसरे कालेजोंके विद्यार्थियोंसे आगे बढ़ गये हैं। और मुझे कहना यह है कि यदि आप आज ही ऐसे दण्डोंकी सूची बनाकर नहीं भेज देते जो उनकी रायमें आपके कालेजकी बदनामीको ध्यानमें रखते हुए पर्याप्त हों तो, कमान-अधिकारीके सामने सिवा इसके कोई चारा नहीं रह जायेगा कि वे तुरन्त ही डी० ए० वी० कालेजको बन्द कर दें और उसके सभी विद्यार्थियोंको आगामी परीक्षाओंमें न बैठने दें।

मुझे आदेश दिया गया है कि दण्डोंका एक मान निर्धारित करनेमें आपकी सहायताके लिए मैं आपको बतला दूं कि गवर्नमेंट कालेजने ६ विद्यार्थियोंको कालेजसे निकाला और इस विश्वविद्यालयके किसी भी कालेजमें प्रवेश पानेके अधिकारसे वंचित किया जा रहा है, ६ विद्यार्थियोंको आगेकी किसी भी परीक्षामें बैठनेके अधिकारसे वंचित किया जा रहा है, ६को एक वर्षके लिए कालेजसे

निकाला जा रहा है, १५की छात्रवृत्तियाँ बन्द की जा रही हैं, और साथ ही ११२ विद्यार्थियोंको अन्य छोटे-मोटे दण्ड दिये जा रहे हैं।

दयालसिंह कालेजमें ७ विद्यार्थियोंको स्थायी तौरपर निकाला जा रहा है, ५को एक वर्षके लिए निकाला जा रहा है, १४को एक कक्षा पीछे उतारा जायेगा, १४को तीन महीनेके लिए कक्षामें आनेसे वर्जित किया जायेगा, २की छात्रवृत्तियाँ कुछ समयके लिए बन्द कर दी जायेंगी और २२४ विद्यार्थियोंको छोटे-मोटे दण्ड दिये जायेंगे, जबकि २४५ विद्यार्थियोंसे भविष्यमें नेकचलनीके लिए बड़ी-बड़ी जमानतें माँगी जायेंगी।

कमान-अधिकारीका खयाल है कि आपके लिए अच्छा यही होगा कि आप ऐसे दण्डोंका प्रस्ताव रखें जिससे उनको आपका कालेज बन्द करनेकी जरूरत न पड़े। साथमें मैं यह भी बतला दूँ कि कमान-अधिकारीका विचार है कि आप जो अनुशासनात्मक कार्रवाई करनेका प्रस्ताव रखें वह किसी कदर उन दण्डोंसे कम नहीं होनी चाहिए जिनकी ओर मैंने आपका ध्यान आकर्षित किया है।

अन्तमें, मैं यह भी बतला दूँ कि लाहौर सिविल एरियाके कमान-अधिकारी आपका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकते कि जुर्मानेके रूपमें वसूल की गई राशिका थोड़ा भी अंश ब्रिटिश सैनिकोंके लिए स्थापित 'कम्फर्ट्स फण्ड'में दे दिया जाये।

(हस्ताक्षर) डब्ल्यू० बार्न्ज़, मेजर,
स्टाफ ऑफिसर
लाहौर सिविल कमाण्ड

इसके बाद एक आदेश जारी किया गया कि दोसे अधिक भारतीयोंका साथ-साथ चलना अपराध माना जायेगा। प्रस्तावनामें कहा गया था: "चूँकि हिंसा या संत्रासको रोकना जरूरी था, और यदि दोसे अधिक 'देशी लोग' साथ चल रहे हों और किसी यूरोपीयके सामने पड़ जानेपर वे उसके लिए रास्ता न छोड़ें तो उससे शान्ति-भंग होनेकी आशंका है . . . " कर्नल जॉन्सनने जब सर चिमनलालके सामने यह उद्धरण रखा तो सर चिमनलालने उनसे यह तथ्य मनवा लिया कि शान्ति-भंग 'देशी लोग' नहीं बल्कि यूरोपीय ही करते, और भारतीयोंको यह कष्ट सिर्फ इसलिए उठाना था कि किन्हीं दो भारतीयोंको एक साथ बराबर-बराबर चलते देखकर यूरोपीय नाराज न हो जायें और इस तरहसे शान्ति-भंग न कर दें। मोटरकार रखनेवाले भारतीयोंको उनकी कारोंसे वंचित करना उचित ठहराते हुए उन्होंने सर चिमनलालको उसका एक कारण यह बतलाया था कि "वे जनताके दिमागमें बैठा देना चाहते थे कि उसको यह खेल नहीं खेलने दिया जा सकता और यह भी कि लाहौरमें बगावत नहीं होने दी जायेगी।"

नीचे दिये गये प्रश्नोत्तरसे कर्नल जॉन्सनके शासनके दुष्परिणाम पूरी तौरपर प्रकट हो जाते हैं।

प्र० – क्या यह कथन सच है कि लाहौरके किसी भागमें एक बरातके लोगोंको इसलिए गिरफ्तार कर लिया गया कि उनकी संख्या दससे अधिक थी और वे सभी बरातोंकी तरह, शहरमें घूम रहे थे, और दूल्हा सहित क्या सभी बरातियोंको गिरफ्तार कर लिया गया और पंडितों तथा अन्य लोगोंको कोड़े लगवाये गये?

उ० – बिलकुल सच है। और मेरी जानकारीमें यही एक घटना है, जो खेदजनक है। मैंने जैसे ही यह समाचार सुना वैसे ही उनके जुर्माने माफ कर दिये और दीवानी मजिस्ट्रेटको हटा दिया गया।

चलिए कर्नल जॉन्सनने कमसे-कम एक घटनापर खेद प्रकट करनेकी नेकी तो दिखाई, लेकिन यही एक ऐसी घटना है जिससे प्रकट होता है कि कोड़े लगवानेकी सजा कितनी खतरनाक हो सकती है और किस प्रकार कर्नल जॉन्सनके बिलकुल ही गैर-जरूरी आदेशोंके कारण एक सर्वथा निर्दोष जन-समुदायको घोर परेशानी और असुविधा झेलनी पड़ी।

हम कर्नल जॉन्सनके कृत्योंके बारेमें अभीतक कुछ ऐसे ढंगसे विचार कर रहे थे जैसे वे सभी खुद उनके ही किये हुए हों। वैसे इसमें शक नहीं कि इनमें से अधिकांश कृत्य ऐसे हैं जिनको वे स्वयं भी कर सकते थे, लेकिन यह भी इतना ही असन्दिग्ध है कि इन सबके पीछे एक ऐसा दिमाग काम कर रहा था, और इनके पीछे एक ऐसा उद्देश्य था जो कर्नल जॉन्सनका अपना नहीं था। यह अधिकारी अर्थात् कर्नल जॉन्सन तो सर माइकेल ओ'डायरकी नीतियों और इच्छाओंका ही पालन कर रहा था। श्री मनोहरलालको इसलिए गिरफ्तार किया गया कि वे 'ट्रिब्यून'के एक ट्रस्टी थे। स्वतंत्र विचारोंके उस पत्रका दम ही घोटना था। 'ट्रिब्यून'के सुयोग्य सम्पादक, श्री कालीनाथ रायने अपने स्वतन्त्र विचारोंसे उनको एकाधिक बार नाराज किया था। सर माइकेलके ७ अप्रैलके अभद्रतापूर्ण भाषणके बारेमें "घोर अविवेक" शीर्षकसे प्रकाशित उनके लेखने रही-सही कसर भी पूरी कर दी। वह भाषण कितना घोर अविवेकपूर्ण था। यह बादकी घटनाओंसे सिद्ध हो गया है। शिक्षित वर्गोंके प्रति उनके अनुचित आचरणको किसी भी आत्मसम्मानी व्यक्तिने उचित ठहरानेकी कोशिश नहीं की। जो भी हो, श्री कालीनाथ रायको बाकायदा गिरफ्तार करके उनपर मुकदमा चलाया गया और राजद्रोहात्मक लेख लिखनेके अपराधमें उनको सजा सुना दी गई।[1] हम बिलकुल बेझिझक होकर कहते हैं कि उनके लेखोंमें राजद्रोहका एक भी शब्द नहीं था। उनका मुकदमा क्या था, राजनीतिक जीवनके सामान्य शिष्टाचारका गला घोटनेसे किसी कदर कम नहीं था। 'प्रताप'के सम्पादकपर[2] मुकदमा चलाना भी इतना

१. पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरने १३ जून, १९१९ को उनका माफीका प्रार्थनापत्र ठुकरा दिया। फिर भी उनको २७ अगस्त, १९१९ को रिहा कर दिया गया, क्योंकि सपरिषद् गवर्नर जनरलने ६ जुलाईको उनकी कारावासकी सजा दो वर्षसे घटाकर तीन महीने कर दी थी।

२. राधाकिशनको अठारह महीनेके कारावासकी सजा हुई थी, लेकिन बादमें लेफ्टिनेंट-गवर्नरने २५ जुलाई, १९१९ को यह सजा घटाकर दो महीनेकी कर दी थी।

ही क्रूरतापूर्ण था। उस समाचारपत्रने अभी अपना जीवन शुरू ही किया था और उसके सम्पादक अपनी विनम्रता और अपने निर्दोष किस्मके धार्मिक लेखोंके लिए विख्यात थे। मार्शल लॉके दौरान स्वतंत्र विचारोंवाली पत्रकारिताका अस्तित्व ही असम्भव बना दिया गया; और 'ट्रिब्यून', 'पंजाबी' तथा 'प्रताप' ने अपना प्रकाशन बन्द कर दिया।

अब हम ऐसे दमनकी बात लेते हैं, जो अबतक उल्लिखित आदेशोंके सिलसिलेमें किये गये दमन कार्योंकी भाँति नग्न रूपमें सामने नहीं आया, बल्कि कानून और न्यायके नामपर प्रच्छन्न रूपसे किया गया। हमारा मतलब मार्शल लॉ आयोगों[1] (कमिशनों) से है। ऐसा माना गया था कि ये आयोग सम्राट्के विरुद्ध युद्ध छेड़ने-जैसे गम्भीर अपराधोंके अभियुक्तोंके मुकदमोंकी न्यायिक विधिसे, किन्तु सरसरी तौरपर सुनवाई करेंगे। हमने लाहौरके नेताओंके मुकदमोंसे सम्बन्धित कागजातकी बारीकीसे जाँच की है। कुल ११ नेताओंपर मुकदमे चलाये गये थे। उनमें से अधिकांशकी समाजमें बड़ी प्रतिष्ठा है और उनमें से कुछ तो सर माइकेल ओ'डायरके समकक्षी बनने योग्य हैं। उनमें से सात तो बैरिस्टर या वकील हैं। लाला हरकिशनलालने हमें एक बयान दिया है, जिसमें उन्होंने बिना किसी झिझकके स्पष्ट कहा है कि उनपर अभियोग लगाये जानेका कारण, यदि दो टूक बात कही जाये तो, केवल यही था कि एक महाजनके रूपमें उनकी प्रतिष्ठासे सर माइकेलको ईर्ष्या थी और अन्य प्रकारसे भी उनका सम्बन्ध कुछ ऐसी गति-विधियोंसे था जो लेफ्टिनेन्ट गवर्नरको अरुचिकर लगती थीं। लाला हरकिशनलालने अपने बयानमें बतलाया है कि उनके काम-धन्धेको चौपट करनेके लिए कैसे-कैसे जाल बिछाये गये। उनका कहना है कि उनके निष्कासनका तनिक भी औचित्य नहीं था और उनका मुकदमा तथा उसका फैसला बिलकुल झूठी बातोंपर आधारित था। सर माइकेल ओ'डायर उनको आमतौर पर नापसन्द तो करते ही थे, लेकिन उनकी नापसन्दगी तब और बढ़ गई जब उन्होंने देखा कि उन्हें कांग्रेस शिष्ट-मण्डलका[2] एक सदस्य चुन लिया गया है और वे अप्रैल १९१९ के अन्तमें इंग्लैंड जाने-वाले हैं तथा उन्हें १८ और १९ अप्रैल, १९१९ को जालन्धरमें होनेवाले पंजाब प्रान्तीय सम्मेलनका सभापति भी चुना जा चुका है।

उनपर तथा अन्य नेताओंपर सम्राट्के खिलाफ युद्ध छेड़नेके अभियोगपर मुक-दमा चलाया गया था। हमने अभियुक्तोंके विरुद्ध लगाये गये अभियोगका संक्षिप्त विवरण पढ़ लिया है। उसका सार यही है कि अभियुक्तोंने रौलट अधिनियमके विरुद्ध प्रचार आन्दोलन और हड़तालमें भाग लिया, भाषण दिये, लंगरखानोंको सहायता दी और ऊपर जिन सभाओंका हम उल्लेख कर आये हैं उनमें वे शामिल हुए। इन लोकप्रिय नेताओंके खिलाफ पेश किये गये सबूत और उनके मुकदमेका फैसला पढ़नेके बाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि साराका-सारा मुकदमा न्यायका मखौल-

१. इन आयोगोंने अपना काम २४ अप्रैल, १९१९ को शुरू किया था। प्रत्येक आयोगमें तीन सदस्य थे।

२. यह शिष्टमण्डल २८ अप्रैल, १९१९ को इंगलैंडके लिए रवाना हुआ था।

भर था और उनके कार्योंको "युद्ध छेड़ने" के बराबर बताना भाषाका दुरुपयोग मात्र था। यह भी एक बड़े मार्केकी बात है कि न्यायाधीशोंने महज इस आधारपर अदालती तौरपर पंजाबमें युद्धकी स्थिति स्वीकार कर ली कि सरकारने अपनी घोषणा द्वारा मार्शल लॉ लागू कर दिया था, जब कि अलग-अलग मुकदमोंकी सुनवाई करते समय उनका स्पष्ट कर्तव्य था कि वे पंजाबमें विद्रोह या युद्धकी स्थितिके दावेको गलत ठहरानेवाले सबूत भी अदालतमें पेश होने देते। लाला हरकिशनलालने बतलाया है कि मुकदमे और सजाके कारण उनको कितनी हानि उठानी पड़ी। उनका कहना है, "उनको अनेक बार जेलमें लगभग १,२०० रुपये, मुकदमा लड़नेमें १२,००० रुपये और अपील करनेमें भी काफी बड़ी रकम लगानी पड़ी। पर उसका पूरा हिसाब अभी बन नहीं पाया है। व्यवसायको जो हानि पहुँची वह किसी भी तरह तीन लाख रुपयेसे कम नहीं बैठती।" हो सकता है, लाला हरकिशनलालके लिए इतना धन गँवा देना कोई बड़ी बात न हो, लेकिन हम कुछ लोगोंको जानते हैं, जो इन तथाकथित न्यायिक विधिसे किये गये मुकदमोंके कारण कंगाल हो गये हैं।

दस वर्षोंकी वकालतका अनुभव रखनेवाले एक बैरिस्टर श्री सन्तानम्को[1] प्रतिवादी पक्षकी ओरसे खड़ा किया गया था। उन्होंने हमें न्यायाधिकरणोंका एक बड़ा विशद विवरण दिया है। उनका विवरण बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए हम उसमें से एक काफी बड़ा उद्धरण पेश कर रहे हैं। उन्होंने १० अप्रैलकी गोलीबारीकी अपनी आँखों देखी घटना और मार्शल लॉके अन्य दुष्परिणामोंका वर्णन करनेके बाद आगे कहा है:

> उन दिनों प्रत्येक भारतीयको, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठाका कोई भी खयाल न रखते हुए, जिस तरह अपमानित किया गया, उसके विक्षोभकी तीव्रता उस दुःसह पीड़ाकी तुलनामें तो कुछ भी नहीं ठहरती जो सैकड़ोंकी तादादमें गिरफ्तार किये गये उन बेचारे कैदियोंकी दशा देखकर प्रत्येकके मनमें उठती थी जिनको उन दिनों मार्शल लॉके तहत बैठाये गये न्यायाधिकरणोंके सामने पेश किया जा रहा था। यह कहनेमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि उनको कोई भी कानूनी सहायता नहीं मिल रही थी। सरकारने तो, निस्सन्देह मानवीयताकी भावनासे प्रेरित होकर (कमसे-कम हम तो यही मानना चाहेंगे), ऐसे अभियुक्तोंके मुकदमे लड़नेके लिए, जो खुद अपना वकील खड़ा करनेकी स्थितिमें नहीं थे, हर न्यायाधिकरण पीछे एक वकील नियुक्त कर दिया था। लेकिन यह एक इंतिहाई दरजेका ढोंग था, क्योंकि ऐसे वकीलोंको एक बारमें दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह व्यक्तियोंके मुकदमे लड़ने पड़ते थे, और सो भी अभियुक्तोंसे कोई सलाह-मशविरा या मुकदमोंकी कोई तैयारी किये बिना। इनमें से कुछ वकीलोंने मेरे सामने खुद कबूल किया है कि कई मुकदमोंमें तो उनको अलग-

१. पंजाबके उपद्रवोंके बारेमें रिपोर्ट तैयार करनेके लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त आयोगके मन्त्री श्री के० सन्तानम्।

अलग हर अभियुक्तसे सलाह-मशविरा करनेके लिए पांच मिनटका भी समय नहीं मिल पाता था, और उनसे सम्राट्के विरुद्ध युद्ध छेड़ने, षड्यन्त्र, आगजनी, हत्या इत्यादि जैसे गम्भीर अभियोगोंकी सफाई पेश करनेके लिए कह दिया जाता था। आम तरीका यह था कि अभियुक्तोंको जत्थेमें, अक्सर ३०–४० के जत्थेमें, पेश किया जाता था, और इससे पहले उन्हें कभी भी नहीं बताया जाता था कि उन्हें किस अपराधमें गिरफ्तार किया गया है। जब वे इस तरह न्याया-धिकरणके सामने हाजिर कर दिये जाते थे तब उनपर लगाया गया आरोप पढ़कर उन्हें सुनाया जाता था और फिर तत्काल वहींके-वहीं उनसे अपनी सफाईमें पेश किये जानेवाले गवाहोंके नाम बतलानेके लिए कह दिया जाता था। साथमें उनको यह भी उसी समय बतला दिया जाता था कि सरकार उन गवाहोंको बुलवानेकी पूरी-पूरी कोशिश करेगी, पर इस बातकी गारंटी नहीं कर सकती कि हर गवाह पेश हो ही जायेगा। वादी पक्षकी ओरसे पेश किये गये सबूतका संक्षिप्त ब्यौरा पढ़कर भी उन्हें शायद ही सुनाया जाता था, और न उन्हें उनकी नकलें हासिल करनेकी इजाजत दी जाती थी। हर अभि-युक्तसे पूछ लिया जाता था कि वह अपना वकील खड़ा कर सकता है या नहीं। यदि उसने नाहीं की तो उसे बतला दिया जाता था कि सम्राट्की ओरसे नियुक्त वकील उसकी पैरवी करेगा। इसके बाद उन्हें जेल वापस भेज दिया जाता था और अगली पेशीके दिन ९ बजे सुबहसे पहले उन्हें सम्राट्की ओरसे नियुक्त वकीलसे भी नहीं मिलने दिया जाता था। अगली पेशी अक्सर अभियोग-पत्र सुनानेके दिनसे ३–४ दिन बाद रखी जाती थी। मुझे बतलाया गया है कि कभी-कभी सम्राट्के वकीलोंको अगली पेशीके दिन सुबह सात बजेसे लेकर साढ़े आठ बजेतक उनके मुवक्किलोंसे जेलमें मुलाकात करनेकी इजाजत दे दी जाती थी। आम तौरपर साढ़े आठ बजे ही कैदियोंको अदालतके लिए रवाना कर दिया जाता था। अब अगर आप यह बात भी ध्यानमें रखें कि चूँकि इन वकीलोंको रोज ही दस बजे अदालतमें हाजिर हो जाना पड़ता था और हर रोज अभियुक्तोंके नये-नये जत्थोंके मुकदमोंकी पैरवी करनी पड़ती थी, और इसलिए वे सिर्फ उन अभियुक्तोंसे ही कुछ सलाह-मशविरा कर पाते थे, जिनकी पेशी उसी दिन पड़ रही हो, तो आप स्वयं समझ सकते हैं कि ऐसी रियायतका क्या मतलब हो सकता था। और यह भी नहीं भूलना चाहिये कि २०–२०, ३०–३० अभियुक्तोंके इतने गम्भीर अभियोगोंकी सुनवाई भी साधारणतया एक ही दिनमें पूरी हो जाती थी। आसानीसे कल्पना की जा सकती है कि इन बेचारोंकी सुनवाई किस तरहकी होती होगी।

जिन लोगोंमें वकील करनेकी सामर्थ्य नहीं थी, उनकी अगर यह स्थिति थी, तो जो लोग वकील कर सकते थे उनकी स्थिति भी किसी कदर बेहतर

नहीं थी। कारण, यद्यपि वे पैसा खर्च करनेको तैयार रहते थे, फिर भी कोई प्रतिष्ठित वकील उनके मुकदमे लेनेके लिए तैयार नहीं होता था। सबसे पहली कठिनाई तो ऐसे वकीलोंके सामने यह थी कि न्यायाधिकरणके सामने किस अभियुक्तकी किस दिन पेशी होगी और उसका अभियोग स्पष्ट किया जायेगा, इसका पता ही नहीं रहता था। इस अनिश्चितताके कारण, अच्छे किस्मके वकील ऐसे मुकदमे लेनेसे कतराते थे, क्योंकि वे नहीं जानते थे कि पेशीके दिन उनको समय मिल पायेगा या नहीं।

उनकी दूसरी कठिनाई यह थी कि अधिकांश वकील राजनीतिके क्षेत्रमें सक्रिय रह चुके थे और चूंकि राजनीतिमें भाग लेना तत्कालीन सरकारकी आंख-में किरकिरीके समान खटकता था, इसलिए ऐसे वकीलोंको हमेशा खुद भी अपनी गिरफ्तारीका अन्देशा बना रहता था और वे कथित क्रान्तिकारियोंके मुकदमे लेकर उस अशुभ घड़ीको और नजदीक नहीं लाना चाहते थे। उनके सामने तीसरी और सबसे ज्यादा अहमियत रखनेवाली कठिनाई यह थी कि उन दिनों आमतौरपर समझा जाता था कि सरकार ऐसे मुकदमे लेनेवाले वकीलोंको भी राजद्रोही और क्रान्तिकारी मानती है और यह बात अपने-आपमें किसीको भी मुसीबतमें डालनेके लिए काफी थी। माननीय मियाँ मुहम्मद शफीके कामसे लोगोंकी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई। वे अब वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य हैं।[1] सेठ रामप्रसादके एक सम्बन्धीने उनको अपने मुकदमेके लिए तय किया था पर उन्होंने कुछ दिन बाद ही मुकदमा लौटा दिया और मुझे बहुत विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुआ है कि मुकदमा लौटानेका कारण उन्होंने यह बतलाया कि सरकारके एक किसी ऊँचे अधिकारीने उनको इशारा कर दिया था कि सरकार उनके इस कामको पसन्द नहीं करती। इससे अच्छी तरह कल्पना की जा सकती है कि जो वकील लोग पहलेसे पस्त बैठे थे उनपर इस घटनाका क्या प्रभाव पड़ा होगा।

मेरा अपना अनुभव यह है कि सरकार चाहे इस चीजको नापसन्द करती हो या नहीं पर यह बिलकुल साफ था कि पुलिस — जो उन दिनों सर्वेसर्वा थी — निश्चय ही ऐसे कामको पसन्द नहीं करती थी। मई १९१९ तक तो मेरा सौभाग्य रहा कि मैं खुफिया विभागकी नजरमें नहीं आया। लेकिन १४ मईको लाला हरकिशनलाल वगैरहके मुकदमेके अभियुक्तोंने मुझे अपना वकील बनाया और मैं 'लाहौरके नेताओंके मुकदमे' के नामसे प्रसिद्ध उस मुकदमेको दूसरी इजलासमें ले जाने और बाहरका कोई वकील करनेकी अनुमति प्राप्त करनेके लिए प्रार्थनापत्र लेकर शिमला गया। प्रार्थनापत्र तो मंजूर नहीं ही किया गया, लेकिन मेरा यह सब करना भी शायद खुफिया पुलिसको नहीं भाया,

१. १६ जुलाई, १९२० से।

क्योंकि जब मैं शिमलासे लौटा तो मुझे बतलाया गया कि मेरी अनुपस्थितिमें खुफिया पुलिसका आदमी नियमित रूपसे मेरे घरके आसपास मँडराया करता था और उससे जब-तब मेरे परिवारके लोगोंको डर लगने लगता था। उसके बादसे मेरे सभी कामोंपर बराबर नजर रखी जाती रही और इधर कुछ ही दिनोंसे उसमें कुछ ढिलाई आई है।

मैंने ऊपर जो-कुछ कहा है, उससे स्पष्ट हो जायेगा कि अभियुक्तोंकी ओरसे मुकदमा लड़नेवाला कोई वकील लगभग था ही नहीं, और सरकार उनको बिना किसी विरोधके शीघ्रताके साथ सजाएँ दिलानेमें सफल हो गई। मार्शल लॉके क्षेत्रमें बाहरके वकीलोंके प्रवेशपर प्रतिबन्ध लगानेवाले आदेशका मंशा यही था कि पंजाबसे बाहरकी जनताको सरकार द्वारा वहाँ किये जा रहे अत्याचारोंका कोई पता न चल पाये; और न्यायिक कार्रवाईके नामपर यहाँ किये जानेवाले घोर अन्यायके विरुद्ध कहीं कोई भी आन्दोलन खड़ा न हो पाये।

अभियुक्तोंकी एक अच्छी पैरवीके मार्गमें इतनी कठिनाइयाँ पैदा करके भी न्यायाधिकरणोंको सन्तोष नहीं हुआ। न्यायाधिकरणोंने इससे भी आगे बढ़कर कुछ ऐसी हरकतें कीं जो बहुत ही मोटे ढंगका न्याय करनेका दावा रखनेवाली कोई भी अदालत, चाहे वह दीवानी अदालत हो या सैनिक, करनेका साहस नहीं करेगी। वाइसरायकी ओरसे जारी किये गये अध्यादेशने न्यायालयोंका गठन करनेवाले मण्डल (कनवीनिंग अथॉरिटी) को यह अधिकार प्रदान किया कि वह "जनसुरक्षाके हितकी दृष्टिसे जहाँ भी आवश्यक हो" वहाँ ऐसी अदालत बैठा सकती है, जिसे एक समरी सैनिक अदालत (समरी जनरल कोर्टमार्शल) के सभी अधिकार प्राप्त हों। लेकिन चारों मार्शल लॉ अदालतोंने सभी मुकदमोंकी सुनवाई समरी सैनिक अदालतों — या जिसे 'ड्रमहेड कोर्ट मार्शल' कहा जाता है — के अधिकारोंके अन्तर्गत ही की। मैं यहाँ खुलासा कर दूँ कि ये सैनिक अदालतें युद्ध-क्षेत्रमें लड़ती हुई सेनाओंके लिए बैठाई जाती हैं जहाँ सामरिक आवश्यकताओंको देखते हुए अदालती कार्यविधिकी बारीकियाँ निबाहना सम्भव नहीं होता।

इन मुकदमोंमें अभियुक्तोंके वकीलोंके साथ शिष्टताका बरताव नहीं किया जाता था, उन्हें महसूस कराया जाता था कि सरकार उनको बस किसी तरह निबाहे जा रही है। उनके उचितसे-उचित अनुरोधोंको भी अत्यन्त धृष्टतापूर्वक ठुकरा दिया जाता था और कभी-कभी तो वकीलोंको सचमुच बेइज्जत भी कर दिया जाता था।

अभियुक्तोंकी ओरसे कोई मुकदमेकी कार्रवाईको दर्ज करे, इस बातकी किसीको अनुमति नहीं थी, सिवाय इसके कि वकील लोग ही कार्रवाईका संक्षिप्त ब्यौरा नोट कर लेते थे। दरअसल न्यायालयोंका गठन करनेवाले मण्डलकी ओरसे

इस आशयका जो एक आदेश जारी किया गया था, उसे मैं संलग्न कर रहा हूँ। (परिशिष्ट-क)।

और न्यायालयकी ओरसे मुकदमेकी कार्रवाईका जो रेकर्ड रखा जाता था, वह बहुत ही एकतरफा होता था, जैसे कि सबूत पक्षकी ओरसे पेश किये गये मुख्य साक्ष्यको शब्दशः दर्ज किया जाता था, पर जिरहके दौरान दिये गये ज्यादातर जवाबोंको दर्ज ही नहीं किया जाता था, खास तौरसे उन जवाबोंको जो किसी कदर अभियुक्तोंके हकमें जाते थे। इस सिलसिलेमें अभियुक्तोंके वकीलोंने बार-बार इसके लिए अनुरोध भी किया, पर उसपर ध्यान नहीं दिया गया। कमिश्नरोंका जवाब अक्सर यही होता था कि वे एक समरी अदालतमें बैठे हुए हैं, इसलिए उनको कार्रवाईका कोई भी रेकर्ड रखनेकी जरूरत नहीं, सिवाय इसके कि वे जिन चीजोंको अपने इस्तेमालके लिए जरूरी समझें दर्ज कर लें। इसीका नतीजा है कि मौजूदा रेकर्डोमें देखा जा सकता है कि सबूत पक्षके गवाहोंके बयानोंसे जहाँ पन्नेके-पन्ने रंगे पड़े हैं, वहाँ उनसे की गई जिरहका बस चन्द सतरोंमें कुछ हवाला-भर दे दिया गया है और उन चन्द सतरोंमें भी ऐसे कुछ बहुत ही बेमतलब जवाबोंको शामिल किया गया है जो कोई अहमियत नहीं रखते। उदाहरणके तौरपर मैं लाहौरके नेताओंके मुकदमेमें एक पुलिस सब-इंस्पेक्टर मरातबअली शाहकी गवाहीको पेश करता हूँ। वह सबूत पक्षका गवाह नम्बर २९ था। उससे करीब आधे घण्टेतक बड़ी तगड़ी जिरह की गई थी, और अगर उस सबका रेकर्ड रखा गया होता तो साफ दिख जाता कि वही एक गवाह था जो पूरी तौरपर गड़बड़ा गया था। लेकिन रेकर्डमें इसके बारेमें सिर्फ दो सतरें दी गई हैं। इतना ही नहीं, कमिश्नरोंने अपना फैसला भी इसी आदमीकी गवाहीकी बिनापर दिया है।

जिरहके लिए उचित मौके भी नहीं दिये जाते थे। वकीलोंसे अक्सर कह दिया जाता था कि वे अपनी जिरह कुछ गिने-चुने सवालोंतक ही सीमित रखें, या उनकी जिरहका वक्त मुकर्रर कर दिया जाता था, फिर चाहे उनके सवाल मुकदमेसे ताल्लुक रखते हों या नहीं। सबूत पक्षके गवाहोंका काफी बचाव किया जाता था, और कमिश्नर लोग उनसे अक्सर कहते रहते थे कि वे जिन सवालोंको उलटे-सीधे समझें, उनके जवाब चाहें तो न भी दें; फिर उन प्रश्नोंका मुकदमेसे भले ही सीधा ताल्लुक क्यों न हो। कमिश्नर लोग उनको वकीलोंके साथ बेहूदगीसे पेश आनेके लिए भी उकसाते थे। बहुत बार तो जब किसी गवाहसे जवाब देते नहीं बनता था और वह बगलें झाँकने लगता था तो कमिश्नर लोग उससे कह देते थे: "अगर तुमको याद न आता हो तो वैसा कह दो।" गवाह लोग हमेशा इन इशारोंको समझ लेते और बड़े तपाकसे कह दिया करते थे: "मुझे याद नहीं आता।" यूरोपीय

गवाहोंको खास तौरपर जो संरक्षण दिया जाता था, वह तो सचमुच एक मखौल था। यदि उनके अपने बयानोंकी विसंगति प्रकट करवानेके इरादेसे सवाल पूछे जाते थे तो उनको राजद्रोहपूर्ण माना जाता था। बहुत बार तो गवाह लोग किसी घटनाके बारेमें बयान दे चुकनेके बाद उस सिलसिलेमें सवाल पूछे जाने-पर कह देते थे: "मुझे याद नहीं।" इसके बाद आपको सचाई निकलवानेकी गरजसे उसकी याददाश्तपर जोर डालनेके लिए आगे कोई भी सवाल पूछनेकी इजाजत नहीं दी जाती थी। और अगर कोई पूछ ही बैठता तो कमिश्नर लोग हस्तक्षेप करने लगते थे: "क्या आपने सुना नहीं, वह कह रहा है कि उसे याद नहीं।" मैंने जो उपर्युक्त तथ्य बताये हैं वे माननीय न्यायमूर्ति लेस्ली जोन्सकी अध्यक्षतामें काम करनेवाली उस अदालतके व्यक्तिगत अनुभवके आधार-पर बताये हैं जिसने लाहौरके नेताओंके मुकदमेकी सुनवाई की थी।

मुकदमेकी कार्रवाईके आखीरमें ज्यादा बहस नहीं करने दी जाती थी। बहुत बार तो उसके लिए वक्त मुकर्रर कर दिया जाता था। कानूनकी बिना-पर उठाये जानेवाले एतराज बड़ी उपेक्षाके साथ ठुकरा दिये जाते थे। मैं जब गुजराँवालाके नेताओंके मुकदमेमें माननीय न्यायमूर्ति श्री ब्रॉडवेकी अध्यक्षतामें बैठे न्यायाधिकरणके सामने गया, तो मैंने क्षेत्राधिकारके बारेमें अभी जो मुद्दे प्रीवी कौंसिलके सामने उठाये गये हैं, लगभग वे सारे मुद्दे एक अर्जी पेश करके उठाये। विद्वान् कमिश्नरने पहले तो मेरी बात सुननेसे ही इनकार कर दिया और कहा कि मेरी अर्जी न्यायालयोंका गठन करनेवाले मण्डलके पास जरूरी कार्र-वाईके लिए भेज दी जायेगी। और जब मैंने विरोध किया और सेना अधिनियमका यह खण्ड उद्धृत किया कि न्यायालयका गठन कर देनेके बाद न्यायालयोंका गठन करनेवाले मण्डलका कोई क्षेत्राधिकार नहीं रहता, और इसलिए अब न्याया-धिकरणको ही इन मुद्दोंपर अपना फैसला देना होगा, तो उन्होंने बहुत ही बुरा मानते हुए मुझे अपनी दलीलें पेश करनेकी इजाजत दी, लेकिन उन्होंने साथमें यह भी कह दिया कि मुझे क्षेत्राधिकार सम्बन्धी अपने ७–८ मुद्दोंके पक्षमें दलीलें पेश करनेके लिए सिर्फ आधा घण्टेका समय दिया जायेगा। मेरी आपत्तियोंपर कोई ध्यान नहीं दिया गया। मैंने अपनी दलीलें पेश करनी शुरू कीं। पर सर-कारी वकीलने मुझे बीच ही में टोक दिया और मेरे किसी फिकरेपर एतराज कर दिया। इसपर कमिश्नर तुरन्त बोल पड़े: "श्री हर्बर्ट, आप एतराज करना जरूरी क्यों मानते हैं? इस तरह तो उनको और ज्यादा समय लग जायेगा। उनको अपनी बात कह लेने दीजिए जिससे कि हमारा पीछा छूटे।" आधे घण्टेसे कुछ ही ज्यादा समय हुआ होगा कि मुझसे अपनी बहस रोकनेको कह दिया गया, क्योंकि मुझे केवल पाँच मिनटका ही समय और दिया गया था। मुझे उसका पालन करना पड़ा और अदालतने उसका जवाब देनेके लिए दूसरे पक्षको

मौका दिये विना अपना फैसला दे दिया। उस फैसलेमें मेरी कुछ ही आपत्तियोंको बड़ी सरसरी तौरपर लिया गया है, बाकीको बिलकुल ही छोड़ दिया गया है।

ऐसी परिस्थितियोंमें जो मुकदमे हुए वे एक मखौल-भर थे। वास्तवमें न्याय करनेका न उनका कोई मंशा था और न वह किया ही गया। मैं जिन दो न्यायाधिकरणोंके सामने गया, उनके सम्बन्धमें मेरा अनुभव बड़ा ही दर्दनाक और अपमानजनक था, इस कारण और भी कि मुझे इन दोनों न्यायाधिकरणोंके अध्यक्षोंके सामने उच्च न्यायालयके अपेक्षाकृत शान्त वातावरणमें भी जानेका मौका मिला था, और वहाँ मैंने देखा कि वे कमसे-कम न्यायालयके शिष्टाचार, उसकी शोभाका तो खयाल रखते ही थे। मार्शल लॉके अनुभवसे एक विचित्र-सी वात मेरे सामने आई। मैंने देखा कि जो न्यायाधीश उच्च न्यायालयोंके वातावरणमें न्यायिक प्रक्रियाओं और रूपोंका पूरा ध्यान रखते और अभियुक्तों तया उनके वकीलोंकी वात पूरे ध्यानसे सुनते, उनको अपनी वात कहनेका मौका देते, वे ही न्यायाधीश मार्शल लॉके वातावरणमें न्यायिक औचित्यको विलकुल ताकपर रख देते थे और जीवन-मरणके मामलोंपर विचार करते समय भी अपने-आपको न्यायाधीश-पदके लिए सर्वथा अयोग्य सिद्ध कर देते थे।

केवल नेताओंको ही गिरफ्तार करके उनपर मुकदमे नहीं चलाये गये थे। मार्शल लॉ कमीशनोंके सामने दूसरे कई लोगोंपर भी मुकदमे चलाये गये। और वहुतसे लोगोंको तथाकथित समरी अदालतोंके सामने भी पेश किया गया था। हमारे पास एक विवरण भेजा गया है, जिससे हमें पता चला है कि कमीशनोंके सामने ६४ व्यक्तियोंके मामले पेश हुए थे, जिनमें से आठको निर्दोष करार दिया गया था। समरी अदालतोंके सामने ३५० मामले पेश हुए थे, जिनमें से १०२ को निर्दोष पाया गया था; और ४० को कई दिनतक हिरासतमें रखकर मुकदमा चलाये विना रिहा कर दिया गया था। कुछ लोगोंको तो महीने-भरसे ज्यादा दिनतक हिरासतमें रखा गया था, जैसा कि श्री मनोहरलालके साथ हुआ।

इस प्रकार लाहौरपर मार्शल लॉ थोप दिया गया था — उसी लाहौरपर जिसने कोई गलत काम नहीं किया था, जिसने अधिकारियोंको खुश करनेकी कोशिश की थी, जिसके नेताओंने अधिकारियोंकी आज्ञाओंका पालन करनेकी हर मुमकिन कोशिश की थी — मार्शल लॉ तो थोपा ही गया और वह भी एक ऐसे अधिकारीकी मार्फत जो वहुत ही निर्मम और क्रूर सावित हुआ और जिन अभागोंको उसके इस शासनके अधीन रहना पड़ा, उनकी भावनाओंका और संवेदनशीलताका उसने कोई खयाल नहीं किया। लाहौरकी जनताके हरएक तवकेका हर तरहसे अपमान किया गया। जहाँतक हमें लाहौरकी स्थानीय परिस्थितिकी जानकारी है, उसके आधारपर हम समझते हैं कि वहाँ मार्शल लॉ जारी करना बिलकुल अनावश्यक था किन्तु, उसे अनुचित तौरपर काफी समयतक लागू रखा गया, और उसपर बड़ी वेरहमी और अमानवीयताके साथ अमल करके जनताके साथ अकथनीय अन्याय किया गया।

इसमें मार्शल लॉ कमीशनों या समरी अदालतों या एरिया ऑफिसर्स कोर्ट्सके नामसे प्रसिद्ध न्यायालयोंने भी पूरा हाथ बँटाया।

कसूर

कसूर लाहौर जिलेमें, लाहौर शहरसे लगभग ४० मील दूर एक महत्त्वपूर्ण कस्बा है। यह मुख्य लाइनपर एक महत्त्वपूर्ण रेलवे स्टेशन है। इसकी आबादी २४,००० है और यह एक काफी बड़ी मंडी है। ६ अप्रैलको कसूरमें हड़ताल नहीं हुई थी। १० तारीखको भी कोई घटना नहीं घटी। पर ११ की सुबह कसूरवालोंको श्री गांधीकी गिरफ्तारी और डा० सत्यपाल तथा डा० किचलूके देश-निकालेका समाचार मिला। इस-पर वहाँ दिनमें हड़ताल हो गई और शामके समय एक सार्वजनिक सभा हुई। भाषणोंमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं कही गई। भाषण इतने निर्दोष थे कि सरकार चाहनेपर भी नेताओं — कसूरके प्रमुख वकीलों — पर मुकदमा नहीं चला पाई। उनके भाषणोंमें ऐसी कोई बात मिली ही नहीं जिसके आधारपर उनके खिलाफ कोई अभियोग लगाया जाता। हमें मालूम है कि सब-डिवीजनल अफसर, श्री मार्सडनने इन भाषणोंके बारेमें कुछ खींच-तान करनेकी कोशिश की थी, और हंटर समितिके सामने प्रस्तुत किये गये अपने साक्ष्यमें उन्होंने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया कि वकीलोंने अपनी अनुत्तरदायित्वपूर्ण बातोंसे और रौलट अधिनियमकी गलत ढंगसे व्याख्या करके उत्तेजनाका वातावरण उत्पन्न कर दिया था। किसीने बातचीतके दौरान रौलट अधिनियमको गलत ढंगसे पेश किया था या नहीं, यह हमें नहीं मालूम। पर इतना जरूर है कि विधान मण्डल या कार्यपालिकाके अप्रिय कार्योंके बारेमें किसी भी समाजमें थोड़ी-बहुत अतिरंजना और थोड़ी-बहुत गलत व्याख्या होना तो अनिवार्य है, फिर वह समाज चाहे जितना सुसंगठित या सुसंस्कृत हो। लेकिन हमारा खयाल है कि इन वकीलोंने अधि-नियमके दुष्परिणामोंकी व्याख्या करनेमें जरा भी अतिरंजनासे काम नहीं लिया। अधिनियमकी चर्चाके दौरान हम पहले ही दिखला चुके हैं कि उसके दुष्परिणाम अपने-आपमें इतने घोर हैं कि उनकी अतिरंजना सम्भव ही नहीं है, क्योंकि यह अधिनियम जहाँ-जहाँ भी लागू किया जायेगा वहाँ अराजकताका साम्राज्य स्थापित हो जायेगा।

१२ अप्रैलको पूर्णतः हड़ताल रही। १२ तारीखको लोगोंकी भावना ११ तारीखसे बिलकुल ही भिन्न थी। हंटर समितिके सामने दिये गये एक गवाहके इस बयानको हम ठीक मानते हैं कि कुछ लोग अमृतसरसे आये थे, उन्होंने वहाँ की घटनाओंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया था और इसीसे कसूरके मूढ़ नागरिकों या बदनाम किस्मके लोगोंमें उत्तेजना फैल गई थी। परिणामतः मध्यवर्गके कुछ लोग और कुछ ऐसे लोग, जिनके पास कोई काम-धन्धा नहीं था, इकट्ठे होकर स्टेशनकी ओर चल पड़े और उसमें आग लगानेकी कोशिश की। आग बत्ती-घरसे शुरू हुई, लेकिन भीड़के इरादोंकी खबर पाकर वहाँ शीघ्रतासे जो नेता पहुँच गये, उन्होंने उसे आसानीसे बुझा दिया। इस प्रकार भीड़का प्रयास जब आंशिक तौरपर विफल हो गया तो वह सिगनल स्टेशनकी तरफ बढ़ी। वहाँ ट्रेन ठीक उसी समय आकर रुकी थी। भीड़के लोगोंने सोडा-लेमनवाले डिब्बेपर हमला करके सोडे इत्यादिकी बोतलें बाहर फेंक दीं और कुछ

यूरोपीयोंको वहाँ देखकर उनपर शर्मनाक ढंगसे हमला कर दिया। लेकिन इसमें भी वे अधिक कुछ नहीं कर सके, क्योंकि ऐन मौकेपर कसूरके एक प्रमुख वकील, श्री गुलाम मोहिउद्दीन अपने कुछ मित्रोंके साथ वहाँ पहुँच गये। श्री और श्रीमती शेरबोर्न और उनके बच्चोंको एक सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दिया गया। ट्रेन आगे बढ़ गई, लेकिन उसमें दो अंग्रेज सैनिक भी थे। उन सैनिकोंने ट्रेनके स्टेशन पहुँचनेपर वहाँसे निकल भागनेमें ही अपना कल्याण समझा। वे दोनों ट्रेनसे बाहर निकले, और बिलकुल अपनी आत्म-रक्षाके लिए ही उन्होंने शोरगुल मचाती भीड़पर गोलियाँ चलाईं। गोलियोंका भीड़पर अगर कोई असर पड़ा तो यही कि उसका क्रोध और भभक उठा और उन दोनों निर्दोष अंग्रेजोंको लाठियोंसे मार गिराया गया। जन-समूहने जितनी भी ज्यादतियाँ कीं उनमें शायद इन दो निर्दोष सैनिकोंकी अकारण हत्या सबसे अधिक क्रूरतापूर्ण, अमानुषिक और कायरतापूर्ण थी। अमृतसरमें जन-समूहके आचरणको यद्यपि किसी भी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता, पर डा० किचलू तथा डा० सत्यपालकी गिरफ्तारी और कैरेज-ब्रिजके निकट की गई गोलीबारीके रूपमें उसे कमसे-कम उत्तेजनाके दो कारण अवश्य मिले थे। हम इन ज्यादतियोंकी जितनी भी निन्दा करें, थोड़ी ही होगी। ये उपद्रवकारी निर्दोष हत्या करके उन्मत्त हो उठे थे। इसी उन्मादकी स्थितिमें वे माल दफ्तरकी तरफ गये और उसकी इमारतोंमें आग लगा दी। अन्तमें पुलिसने गोली चलानेका आदेश पाकर उनको तितर-बितर किया।

ध्यान देनेकी बात यह है कि जन-समूहका क्रोध हर स्थानपर चन्द ही घण्टोंमें शान्त हो गया। कसूरमें भी चन्द ही घण्टोंमें पूरी तौरपर शान्ति स्थापित हो गई। इन घटनाओंकी जाँचके बाद हम इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि जनताका क्रोध एकाएक भड़क उठा था, उसके पीछे कोई षड्यन्त्र या योजना नहीं थी। अफसरोंको गिरफ्तारियाँ करनेमें कहीं कोई कठिनाई नहीं हुई। एक भारतीय सब-डिवीजनल अफसरके स्थान-पर श्री मार्सडनको भेजा गया और १६ अप्रैलको मार्शल लॉ घोषित कर दिया गया।

मार्शल लॉके प्रशासनका कार्य कर्नल मैकरेको सौंप दिया गया और उनके बाद इसका भार कप्तान डोवटनने सँभाला। इन दोनों अफसरोंने अत्याचारके नित नये तरीके ढूँढ निकालनेकी अपनी सूझ-बूझ, अपनी गैर-जिम्मेदारी और अपने आदेशोंसे प्रभावित होनेवाले लोगोंकी भावनाकी उपेक्षा करनेमें, कई अर्थोंमें, अपने सहयोगी अफसरोंको भी मात कर दिया। हम नीचे उनकी कारंवाइयोंका सार संक्षेपमें दे रहे हैं, जो हंटर समितिके सामने प्रस्तुत किये गये साक्ष्यके आधारपर तैयार किया गया है। गिरफ्तारियाँ पहले-पहल १६ तारीखको शुरू हुईं। टाउन हालमें मार्शल लॉकी घोषणाके सिलसिलेमें एक परेडका आयोजन किया गया; और स्पष्टतः मार्शल लॉको लागू करनेके संकेतके रूपमें, उन्होंने एक वयोवृद्ध, पुराने और सम्मानित वकील बाबा धनपतरायको गिरफ्तार कर लिया। उनकी अवस्था ६५ वर्ष है। उनको ४६ दिनतक लाहौर सेन्ट्रल जेलमें नजरबन्द रखा गया, और फिर गिरफ्तारीका कोई भी कारण बतलाये बिना १ जूनको रिहा कर दिया गया। उसी दिन २१ और लोग गिरफ्तार किये गये। उससे अगले दिन ३ और १८ तारीखको ४ तथा १९ को ४० गिरफ्ता-

रियाँ की गईं। कुल मिलाकर १७२ व्यक्ति गिरफ्तार किये गये, जिनमें से ९७ को मुकदमा चलाये बिना रिहा कर दिया गया। जिन ७५ व्यक्तियोंपर मुकदमे चलाये गये, उनमें से ५१ को सजा हुई। गिरफ्तारशुदा लोगोंमें मौलवी गुलाम मोहिउद्दीन और मौलवी अब्दुल कादिर भी थे जिन्होंने श्री और श्रीमती शेरवोर्नकी जान बचाई थी और जिन्होंने अन्य प्रकारसे भी भीड़को ज्यादतियाँ करनेसे रोका था। इनमें से कई नेताओंके घरोंकी तलाशी ली गई थी, जिसके लिए जरा भी कोई कारण नहीं था। १ मईको औरतों और बच्चोंको छोड़कर कसूर कस्बेके सभी लोगोंको शिनाख्तके लिए रेलवे स्टेशनपर हाजिर होनेको कहा गया। उन सभीको पानी और भोजनके बिना कड़ी धूपमें दो बजे दोपहरतक नंगे सिर बैठाया गया। एक गवाहने लॉर्ड हंटरके सामने कहा भी था कि यह सारा तरीका बिलकुल ही बेमतलब था और सबूत इकट्ठा करनेमें इससे कोई स्पष्ट लाभ नहीं दिखा। हम लोगोंको कानूनका और सबूत इकट्ठे करने तथा उसकी जाँच करनेके तरीकेका थोड़ा-बहुत अनुभव है। उसके आधारपर हम बिना किसी झिझकके कह सकते हैं कि इस ढंगसे एक खुली कवायद कराकर सही-सही शिनाख्त करना नामुमकिन है, और इस प्रकार कराई गई शिनाख्तको वास्तवमें कोई महत्त्व भी नहीं दिया जा सकता। हमें शक है कि यह तथाकथित कवायद कस्बे-भरको अपमानित करने और आतंक फैलानेके लिए ही कराई गई। क्योंकि लोगोंके जमा हो चुकनेके बाद कुछ तहकीकाती दस्ते कस्बेमें यह देखनेके लिए भेजे गये थे कि कहीं कोई पीछे रह तो नहीं गया है। इन दस्तोंके सामने घरोंकी अरक्षित महिलाओंकी क्या दशा हुई होगी इसकी कल्पना आसानीसे की जा सकती है।

कसूरमें मुकदमोंके दौरान ४० व्यक्तियोंको कोड़े मारनेकी सजा दी गई। कुल मिलाकर ७१० कोड़े लगाये गये। स्टेशनके प्लेटफॉर्मपर ही कोड़े लगानेकी टिकटी खड़ी की गई। स्कूली बच्चोंको भी कोड़े लगाये गये। कहा जाता है कि एक स्कूलके हेडमास्टरने रिपोर्ट की थी कि उसके स्कूलके लड़कोंमें उद्दण्डता बढ़ रही है और उसके लिए सेनासे सहायता माँगी थी। इसपर कमांडिंग अफसरने सुझाया कि कुछ लड़कोंको कोड़े लगाये जायें। इसलिए इस स्कूल और एक अन्य स्कूलके लड़कोंको वहाँ इकट्ठे होनेका आदेश दिया गया। हेडमास्टरसे ६ लड़के चुननेके लिए कहा गया। हेडमास्टरने ऐसे लड़कोंको चुना जिनकी शुमार बहुत अच्छे लड़कोंमें नहीं की जाती थी। लेकिन ये लड़के शारीरिक रूपसे इतने स्वस्थ नहीं थे। इसलिए कमांडिंग अफसरने उस चुनावको रद्द कर दिया और श्री मार्सडनसे दूसरे लड़के चुननेके लिए कहा। और इस प्रकार उन्होंने शिकायत करनेवाले स्कूल और एक अन्य स्कूलके लड़कोंमें से कुछ लड़के चुने, सिर्फ इस आधारपर कि वे अन्य लड़कोंकी अपेक्षा कोड़े खानेके लिए शारीरिक रूपसे अधिक उपयुक्त थे। चुने गये लड़कोंको अन्य लड़कोंकी उपस्थितिमें स्टेशनके प्रवेश द्वारके बाहर खड़े करके कोड़े लगाये गये। लॉर्ड हंटरके यह पूछनेपर कि कोड़े लगानेका उद्देश्य क्या था, श्री मार्सडनने उत्तर दिया कि कोई खास उद्देश्य नहीं था। याद रखनेकी बात है कि इस मामलेमें यहाँ मार्शल लॉ सम्बन्धी किसी अपराधका कोई प्रश्न नहीं था, न कोई जाँच-पड़ताल कराई गई थी और न उनपर

कोई मुकदमा ही चलाया गया था। वह तो सत्ताका एक अवैधानिक और मनमाना दुरुपयोग था। और कसूरमें ही कोड़े लगानेके अवसरपर वेश्याओंको भी वह दृश्य देखनेके लिए बुलाया गया था। (देखिए उनका संयुक्त बयान, २७९ बी०)

सन्तरियोंने दो व्यक्तियोंको तो गोलीसे ही उड़ा दिया। बादमें पता चला कि उनमें से एक गूँगा था। शायद दोनों मामलोंमें बिना किसी कारणके मनमाने तौरपर ही गोलियाँ चलाई गई थीं। हमारा खयाल है कि यदि भारतीयोंके जीवनको पवित्र माना गया होता और उच्चाधिकारियोंके दिलमें न्यायकी भावना होती तो सन्तरी लोग इतने मनमाने ढंगसे अपनी बन्दूकोंका प्रयोग न करते। हमारा खयाल है कि उन्होंने मनमानी ही की थी।

कसूरमें ही दण्ड देनेके मामलेमें सबसे अधिक मनमानीसे काम लिया गया था। श्री मार्सडनने कहा: "बात यह थी कि कप्तान डोवटन मुकदमे चलाकर सजा दिलानेकी औपचारिकतामें पड़ना पसन्द नहीं करते थे।" वे तो "तुर्त-फुर्त" मामले निबटाना चाहते थे। इस सनकी अफसरने विभिन्न प्रकारके जो दण्ड दिये, उनका रेकर्ड रखनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वे दण्ड देनेके लिए "लोगोंको पदक्षेप (मार्क टाइम) करते रहने और नसैनीपर चढ़नेका हुक्म दे देते थे।" दण्डका कोई नया तरीका निकालनेकी गरजसे उन्होंने कुछ साधुओंके शरीरपर सफेदी पुतवाई। कप्तान डोवटनने इस बातसे इनकार किया कि ऐसा जान-बूझकर किया गया था। उसका कहना था कि साधुओंसे गाड़ीपर से चूना उतारनेके लिए कहा गया था और उसी काममें उनके शरीरपर सफेदी जम गई थी। हम इस कैफियतको माननेसे इनकार करते हैं। हमारा खयाल है कि चश्मदीद गवाहोंने इस पूरी कार्रवाईके बारेमें जो बयान दिये हैं, वे सही हैं। दण्ड देनेका एक तरीका यह था कि तथाकथित उपद्रवी लोगोंको स्टेशनके गोदाममें जाकर भारी-भारी गाँठे ढोनेका आदेश दिया जाता था। जो लोग हर गोरेको सलाम करनेमें चूक जाते थे उन्हें या तो कोड़े लगाये जाते थे, या फिर जमीनपर नाक रगड़नेपर मजबूर किया जाता था। कप्तान डोवटन और श्री मार्सडनका कहना था कि जनता मार्शल लॉको पसन्द करती थी और इस प्रकारके दण्डोंसे आतंकित होने या अपनेको अपमानित महसूस करनेके बजाय इनमें "मजा" ही ज्यादा लेती थी। कप्तान डोवटनने जनतासे एक मानपत्र भी लिया था और एक मुसलमानको अपनी प्रशंसामें कुछ शेर तैयार करनेका दण्ड दिया था। दण्डका एक तरीका रस्सी कूदना भी था। वह लोगोंको बिना रुके २० बार रस्सी कूदनेपर विवश करता था। उनका कहना है कि कमसे-कम २० व्यक्तियोंको यह दण्ड दिया गया।

श्री मार्सडनकी शिकायत है कि वकीलों द्वारा घटनाओंको बढ़ा-चढ़ाकर पेश करनेके उदाहरणोंमें से एक यह था कि किसी हिन्दू वकीलने कहा कि "सरकार जनताको निहत्थे मवेशियोंके समान" समझती है। हमने जिन दण्डोंका जिक्र किया है और जनताकी भावनाओंके साथ जिस प्रकारका खिलवाड़ किया गया, उनसे तो वकील द्वारा लगाया गया आरोप सिद्ध ही होता है? कप्तान डोवटनने अपनी रिपोर्टमें कहा है कि ये लोग अपनी इच्छासे गुलाम बन गये हैं। सर चिमनलाल सीतलवाडने जब उनसे

इस शब्दका अर्थ पूछा तो उन्होंने बताया कि : "इसका अर्थ है ऐसे लोग, जो आपकी मर्जीके मुताबिक काम करनेको तैयार हों।" उन्होंने दीवानीके मुकदमोंकी भी सुनवाई की और सजाएँ सुनाईं और इस प्रकार मन्दिरकी जायदादके लगानके एक मामलेमें फैसला किया। उन्होंने उन लोगोंको भी दण्डित किया जो उनकी रायमें उद्दण्ड या उद्धत स्वभावके थे। उन्होंने खुद कहा कि ऐसे लोगोंको उन्होंने मार्शल लॉके अन्तर्गत विहित दण्डोंसे भी कुछ कड़े दण्ड दिये, क्योंकि उनके विचारसे जो लोग "स्वभावसे ही उद्दण्ड हों या जाने-माने उद्धत लोग हों", उनके लिए मार्शल लॉ द्वारा विहित दण्ड पर्याप्त नहीं थे। साहबजादा सुलतान अहमदने[1] उनसे पूछा कि क्या यह सब करके उन्होंने जनरल बनियनके अनुदेशोंका अतिक्रमण नहीं किया। कप्तान डोवटनका ख़याल था कि उन्हें ऐसा करनेकी पूरी छूट थी। उनके बुलानेपर हाजिर न होनेवाले लोगोंसे बदला लेनेके लिए उन्होंने कई दस्ते भी भेजे जिनका काम ऐसे लोगोंकी जायदादमें आग लगा देनेका था। इसके बारेमें उनसे पूछा गया कि क्या उनके ख़यालसे मार्शल लॉमें इसकी इजाजत थी। उसका उत्तर था : "हाँ, मैं तो यही मानता हूँ।" इस प्रकार बेचारे कई लोगोंका मालमत्ता बिना किसी कारणके मटियामेट कर दिया गया।

कैदियोंके मुकदमोंकी सुनवाई शुरू होनेसे पहले ही सार्वजनिक स्थानोंमें फाँसीके झूले खड़े कर दिये, इस विश्वाससे कि न्यायाधीश फाँसीकी सजा देंगे। फाँसीके ये झूले उन स्थलोंके ज्यादासे-ज्यादा करीब खड़े कराये गये जहाँ-जहाँ भीड़ने ज्यादतियाँ की थीं। जिरहके दौरान यह जानकारी हासिल हुई कि सर ओ'डायरके आदेशपर ही यह किया गया था, लेकिन फाँसीके आदेशका पालन होनेसे पहले ही सार्वजनिक रूपसे फाँसी देना निषिद्ध कर दिया गया। हमारे ख़यालसे उसका कारण जान-बूझकर सार्वजनिक शिष्टाचार-भंगकी इस योजनाके विरुद्ध भारतीय समाचारपत्रों द्वारा छेड़ा गया प्रचार-आन्दोलन ही था। फाँसीकी ये सजाएँ बतलाती हैं कि वे अधिकारी कितने गम्भीर किस्मके निन्दनीय कृत्य करनेपर उतारू थे। प्रान्त-भरमें मार्शल लॉ मुकदमोंके परिणाम-स्वरूप १८ व्यक्तियोंको फाँसीपर लटका दिया गया; और यदि भारत-भरमें एक जोरदार प्रचार-आन्दोलन खड़ा न हो जाता और माननीय पंडित मोतीलाल नेहरूने जन-सेवाकी भावनासे प्रेरित होकर ऐन वक्तपर जमकर पहल न की होती तो बहुतसे अन्य लोगोंको भी फाँसीपर लटका दिया जाता। पंडित मोतीलाल नेहरूने भारत मन्त्रीको तार भेजकर मुकदमोंकी अपील की और सुनवाई पूरी होनेतक मृत्यु-दण्ड स्थगित करनेके लिए कहा। सौभाग्यवश भारत मन्त्रीने हस्तक्षेप किया और वाइसरायको आदेश दे दिया कि मृत्यु-दंड स्थगित कर दिये जायें। हम इस बातपर खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि वाइसरायने अपनी तरफसे ही इस कार्रवाईको नहीं रुकवा दिया। हमारा यह दुःख तब और भी तीव्र हो जाता है, जब हम देखते हैं कि मार्शल लॉके तहत चलाये गये मुकदमोंमें कानूनके आम उसूलोंको उठाकर कैसे ताकपर रख दिया गया और उनके साथ कितनी मनमानी की गई। हमें बहुत सन्देह है कि फाँसीपर लटकाये गये लोगोंमें और अब भी फाँसीका इन्तजार करनेवाले लोगोंमें से अनेक सर्वथा निर्दोष थे या हैं।

१. बैरिस्टर; ग्वालियर राज्यके मेम्बर फॉर अपील्स, हंटर समितिके तीन भारतीय सदस्योंमें से एक।

तथ्योंको बिलकुल ही धता बतला देने और धृष्टताके साथ अपने रवैयेपर अड़े रहनेके मामलेमें शायद कोई भी अफसर कर्नल मैकरेको मात नहीं दे सकता है, बल्कि इस मामलेमें तो मार्शल लॉके प्रशासनका भार सँभालनेवाले उनके अन्य सहयोगी अफसरोंमें से शायद ही कोई उनकी बराबरी कर पाया हो। हंटर समितिके समक्ष अपने बयानमें उन्होंने कहा कि "यह शहर पिछले कई वर्षोंसे राजद्रोहके लिए विख्यात रहा है।" साथ ही उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि कसूरके बारेमें इससे पहले उनको कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए सर चिमनलालने उनसे पूछा:

प्र० — तब फिर आपने यह बात किस आधारपर कही है?

उ० — सब सुनी-सुनाई बात है।

प्र० — आपको व्यक्तिगत रूपसे कोई जानकारी नहीं थी?

उ० — जी नहीं।

प्र० — आपसे किसने कहा कि यह स्थान पिछले कई वर्षोंसे राजद्रोहके लिए विख्यात रहा है?

उ० — मैं इस प्रश्नका उत्तर नहीं देना चाहता।

प्र० — आप जो बात कह रहे हैं वह अधिकारियोंके समक्ष पेश किये जानेवाले एक काफी जिम्मेदारीके दस्तावेजमें शामिल की जायेगी, इसलिए मैं जानना चाहता हूँ कि आपके इस बयानका क्या आधार है?

उ० — मैंने जो-कुछ लिखा है, उसे वहींतक रहने देना चाहता हूँ।

प्र० — ठीक है, आप उसे वहींतक रहने दे सकते हैं, लेकिन मैं आपके उस बयानका कारण जानना चाहता हूँ। मैं यह प्रश्न इसलिए पूछ रहा हूँ कि अधिकारियोंने इससे पहले कहा है कि कसूरमें १० अप्रैलसे पहले कोई भी राजनीतिक हलचल कभी देखनेमें नहीं आई; राजनीतिके नामपर वहाँ पहले कभी कुछ नहीं हुआ। और इसलिए आपके बयानमें यह सुनकर मुझे ताज्जुब होता है कि कसूर पिछले अनेक वर्षोंसे राजद्रोहके लिए विख्यात रहा है। क्या आप अब भी अपनी बातको सही मानते हैं?

उ० — मैं इसका उत्तर नहीं दूंगा।

× × ×

प्र० — बयानमें इसके बाद आपने कहा है: "इस शहरमें ऐसे वकील मौजूद हैं जो अपनी सरकार-विरोधी भावनाओंके लिए प्रसिद्ध हैं।" क्या यह भी सुनी-सुनाई बात है?

उ० — जी हाँ।

प्र० — और क्या इसपर वे सारी चीजें लागू होती हैं जो आपने अपनी पिछली बातके बारेमें कही हैं?

उ० — जी हाँ।

प्र० – क्या आपको मार्शल लॉका प्रशासक होनेके नाते मालूम है कि १२ तारीखको और बादमें भी कई वकीलोंने विधि और व्यवस्था कायम रखनेमें अधिकारियोंकी सहायता की थी, और उनमें से एक को तो श्री शेरवोर्नकी जान बचाते हुए भी देखा गया था?

उ० – जी हाँ।

प्र० – क्या यह जानते हुए भी कि कई वकीलोंने, जैसा मैंने बताया है, उस ढंगसे अधिकारियोंकी सहायता की थी, आप अपनी इस बातको सही मानते हैं कि ये वकील अपनी सरकार-विरोधी भावनाओंके लिए प्रसिद्ध हैं?

उ० – मैं अपने बयानपर कायम हूँ, और कहता हूँ कि यह सुनी-सुनाई बात है।

प्र० – क्या आप अब भी अपनी बातको सही मानते हैं?

उ० – मैं मानता हूँ कि आपके पेश किये हुए तथ्य सही हैं।

प्र० – यदि ये तथ्य सही हैं तो क्या आप अपने बयानमें रद्दोबदल करनेके लिए तैयार हैं, या अब भी आप अपने कथनपर कायम हैं जिसमें आपने सारे नगरपर राजद्रोहका लांछन लगाया है?

उ० – मैं आपसे ही पूछता हूँ कि क्या सभी वकीलोंने वह सब रोकनेकी कोशिश . . .?

प्र० – मैं यहाँ आपके प्रश्नोंके उत्तर देनेके लिए नहीं हूँ।

उ० – ठीक है, तब मैं भी आपके प्रश्नोंके उत्तर नहीं देना चाहता।

कर्नल मैकरेने यह भी कहा था कि अमृतसरके व्यापारियोंने हड़तालमें शामिल न होनेवाले कसूरके व्यापारियोंकी हुण्डियोंको सकारनेसे इनकार कर दिया था। कर्नल मैकरेने अपने उत्तरमें इसे भी एक सुनी-सुनाई बात बतलाया था और कहा था कि "उनके पास इसे साबित करनेके लिए कुछ नहीं था।" इस अफसरने यह हुक्म भी दिया था कि मार्शल लॉके नोटिस जाने-माने आन्दोलनकारियोंके घरोंपर लगाये जायें। सर चिमनलालने पूछा कि "एजीटेटर्स" (आन्दोलनकारियों) शब्दसे उनका क्या अभिप्राय था। कर्नल मैकरेका उत्तर था: "मेरा खयाल है अंग्रेजी भाषासे उसका अर्थ स्पष्ट है।"

प्र० – लेकिन 'एजीटेटर्स' शब्दसे आपका आशय क्या है?

उ० – मैं अपने बयानमें जितना कुछ कह चुका हूँ, वही मेरा उत्तर है।

प्रश्नों और उनके बेतुके उत्तरोंका यह क्रम थोड़ा और लम्बा चला था। हमने ये अंश यह दिखलानेके लिए उद्धृत किये हैं कि कमसे-कम इस अफसरने अपने इतने दायित्वपूर्ण कर्त्तव्योंका पालन किस ढंगसे किया, और जिसके लिए सरकारने उसे पहलेसे अभयका आश्वासन दे रखा है।

इस अफसरने ये आदेश भी जारी किये थे कि जिस व्यक्तिके घरकी दीवारपर लगाया हुआ सरकारी ऐलानका कोई भी नोटिस बिगाड़ा या फटा हुआ पाया जायेगा,

उसीकी जायदादसे उसका हर्जाना लिया जायेगा। आदेश मौखिक था या लिखित — इसका सीधा उत्तर न देते हुए इस अफसरने कहा: "लिखित हो या मौखिक — इससे क्या फर्क पड़ता है?" कहना मुश्किल है कि इस अफसर द्वारा दिये गये इस उत्तरमें निहित धृष्टता और उसके द्वारा जारी किये गये आदेशकी 'क्रूरता' — दोनोंमें से कौन अधिक आपत्तिजनक है। हमने 'क्रूरता' शब्दका प्रयोग जान-बूझकर किया है; इसलिए कि (गवाह द्वारा दिये गये उत्तरके अनुसार ही) "नोटिस चाहे किसी दूसरे ही व्यक्ति द्वारा बिगाड़ा या फाड़ा गया हो, प्रतिशोध उसी व्यक्तिसे लिया जाता जिसके घरपर वह लगा होता था। और जब उनसे पूछा गया कि क्या उनके खयालसे आदेश उचित था, तो उनका उत्तर था: "मैं अब भी यही समझता हूँ कि आदेश उचित था।"

प्र० — क्या आपने स्कूली बच्चोंको कोड़े लगानेके सिलसिलेमें हिदायत दी थी कि सबसे बड़े छः लड़कोंको चुनकर कोड़े लगाये जायें?

उ० — जी हां, मोटे तौरपर यही किया था।

प्र० — क्या शारीरिक दृष्टिसे बड़े होना ही उनका दुर्भाग्य था।

उ० — जाहिर है।

प्र० — चूंकि वे बड़े थे, क्या इसीलिए उनको कोड़े खाने थे?

उ० — जी हाँ।

प्र० — क्या आप समझते हैं कि वैसा करना उचित था?

उ० — उस परिस्थितिमें मेरा यही खयाल था, और आज भी है।

दोनों सम्बन्धित अधिकारियोंने जो उत्तर दिये थे, उनमें से चन्द नमूने ही हमने चुनकर पेश किये हैं। सचमुच उनके उत्तर धृष्टता और दायित्वहीनतामें बेजोड़ हैं। हमारी समझमें नहीं आता कि किसे ज्यादा बड़ा दोषी मानें — इन अफसरोंको ही या इनको नियुक्त करनेवाले उच्च अधिकारियोंको। इन अफसरोंको शायद यह पता नहीं था कि वे कितना जघन्य कृत्य कर रहे थे। लेकिन इनको चुननेवाले अधिकारियोंको तो इतना समझना चाहिए था कि ये अफसर ऐसे पदोंके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। और मामलेके सभी पहलुओंपर विचार करनेके बाद हमारी राय यही बनी है कि स्थानीय परिस्थितियोंको देखते हुए तो मार्शल लॉ लागू करना नितान्त अनावश्यक था और अधिनियमपर[1] सर्वथा अनुचित ढंगसे अमल किया गया।

पट्टी और खेमकरन

ये दो छोटे-छोटे रेलवे स्टेशन कसूरसे कुछ मीलकी दूरीपर स्थित हैं। खेमकरनमें स्टेशनको लूटा और तारोंको काटा गया। स्वयं श्री मार्सडनके कथनानुसार यह छोटी-सी घटना थी और इसके पीछे "लगता है कि निचले वर्गोंके लोगों, दूकानदारों, मूढ़-गँवार मजदूरों और इसी तरह दूसरे लोगोंका हाथ था। और जहाँतक पट्टीकी बात है, स्वयं श्री मार्सडनके कथनानुसार, उस गाँवके खास-खास लोगोंने अधिकारियों और

१. १९१९ का दण्डविमुक्ति अधिनियम।

पुलिसकी सहायताकी और सब शान्त हो गया।[1] फिर भी इन दोनों गाँवोंको मार्शल लॉके परिणाम भुगतने पड़े।

गुजराँवाला

गुजराँवाला जिला कई दृष्टियोंसे प्रान्तके सबसे महत्त्वपूर्ण जिलोंमें से है। गुजराँवाला स्वयं एक छोटा-सा कस्बा है जिसकी आबादी ३०,००० है, लेकिन वह महाराजा रणजीतसिंहजीका जन्म-स्थान होनेके कारण विशेष प्रसिद्ध है। यह बड़ी लाइनपर, लाहौरसे सिर्फ ४२ मील दूर, एक महत्त्वपूर्ण रेलवे स्टेशन भी है। इस जिलेमें गुजराँवालाके अतिरिक्त जिन स्थानोंकी ओर हमारा ध्यान गया है वे हैं — वजीराबाद, निजामाबाद, अकालगढ़, रामनगर, हाफिजाबाद, साँगला हिल, मोमन, धवन, मनियाँवाला नवाँ पिण्ड, चूहड़खाना और शेखूपुरा। गत नवम्बर माहकी १ तारीखको गुजराँवाला जिलेको दो हिस्सोंमें विभाजित कर दिया गया, और दूसरे हिस्सेका नाम शेखूपुरा जिला रखा गया। इसलिए हम अपनी इस रिपोर्टमें इन दोनों जिलोंको नवम्बरसे पहलेकी ही तरह एक जिला मानकर चले हैं, जो एक ही प्रशासकके क्षेत्राधिकारमें था।

पिछली १३ अप्रैलतक, बल्कि १४ अप्रैलतक कहना ज्यादा ठीक होगा — यहाँ कोई हलचल नहीं थी। स्थिति इतनी सामान्य थी कि १२ तारीखको कर्नल ओ'ब्रायन[2]-का तबादला सामान्य क्रममें अम्बालाको कर दिया गया था। गुजराँवालाके उनके मित्रों और प्रशंसकोंने उनको एक मानपत्र भी दिया था। हंटर समितिके एक प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा था कि यदि उनको या उनके अधिकारियोंको किसी गड़बड़ीका अन्देशा होता तो उनका तबादला अवश्य ही रोक दिया जाता और वे गुजराँवालामें ही रहते; और जैसा कि सचमुच हुआ, गड़बड़ी होते ही उन्हें १४ तारीखको तुरन्त वापस बुला लिया गया। ३० मार्चको गुजराँवालामें बिलकुल कोई हलचल नहीं हुई, और न हड़ताल ही हुई। ४ अप्रैलको श्री गांधीके सन्देशके सिलसिलेमें जिला कांग्रेस कमेटीके सदस्योंने हड़तालके प्रश्नपर अनौपचारिक रूपसे विचार किया। ५ तारीखको एक विशाल सार्वजनिक सभा की गई, जिसमें रौलट कानूनके बारेमें चार बड़े ही निर्दोष किस्मके प्रस्ताव पास किये गये। सभामें बड़े ही संयत किस्मके भाषण किये गये। लेकिन कर्नल ओ'ब्रायन इस सभाको लेकर पहलेसे चिन्तित हो रहे थे; इसी कारण उन्होंने गुजराँवालाके कुछ जाने-माने लोगोंको बुला भेजा; और उन्हें आगाह कर दिया कि अगर कोई गड़बड़ हुई तो उनको ही जिम्मेदार माना जायेगा। इसपर उन लोगोंने डिप्टी कमिश्नरसे और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टसे, जो इस मुलाकातके अवसरपर उपस्थित थे, कहा था कि वे चाहें तो स्वयं सभामें आ सकते हैं। ६ अप्रैलको सुबहसे ही मुकम्मल हड़ताल रही और बूढ़े-जवान, सभी लोगोंने उपवास और प्रार्थनामें हिस्सा लिया। हमारे सामने दिये गये कई लोगोंके बयानोंसे पता चलता है कि अधिकारियोंने हड़ताल, और यहाँतक

१. हंटर समितिके समक्ष श्री मार्सडन द्वारा दिये गये बयानके मुताबिक पट्टीमें भी ३१ व्यक्तियोंको सजाएँ सुनाई गई थीं, जिनमें से १४को कोड़े लगानेकी सजा दी गई थी।

२. गुजराँवालाके डिप्टी कमिश्नर।

कि उपवास न होने देनेके लिए भी भरसक प्रयत्न किया, और हड़ताल रोकनेके लिए अधिकारियोंकी ओरसे और स्वयं अधिकारियों द्वारा भी काफी दबाव डाला गया।

पहले ही कहा जा चुका है कि १२ तारीखतक वातावरण बिलकुल शान्त था। लेकिन गुजराँवालामें एकाएक खबर पहुँची कि श्री गांधीको गिरफ्तार और निष्कासित कर दिया गया है, और डा० सत्यपाल और डा० किचलूको भी गिरफ्तार करके देश-निकाला दे दिया गया है। और अमृतसर तथा लाहौरकी १० तारीखकी घटनाओंका समाचार भी उसी समय पहुँचा। इसे लेकर गुजराँवालाके साधारण जन और नेतागण भी विचार करने लगे कि दूसरी हड़ताल कहाँतक उचित रहेगी। इस बार हड़ताल गिरफ्तारियोंके विरोधमें और लाहौर तथा अमृतसरकी गोलीबारीमें जानसे हाथ धोने और जख्मी होनेवाले लोगोंके प्रति सहानुभूति व्यक्त करनेके लिए की जानी थी। नेताओंने इसके लिए आपसी तौरपर एक बैठक की और लगता है कि काफी बहस-मुबाहसेके बाद यही निष्कर्ष निकाला कि हालाँकि ऐसे तनावके वातावरणमें हड़ताल करना खतरेसे खाली नहीं होगा, लेकिन चूँकि जनताके जोशको काबूमें रखना सम्भव नहीं हो सकेगा इसलिए अगर हड़ताल हो तो वैसी स्थितिमें हड़तालियोंको किसी प्रकार व्यस्त रखनेके लिए खुले मैदानमें सभाका आयोजन करके उनका ध्यान बँटाना चाहिए। अधिकारियोंने इस बार फिर हड़ताल रोकनेकी नाकामयाब कोशिश की। १४ तारीखको फिर मुकम्मल हड़ताल रही।

उन दिनों बैसाखीकी छुट्टियाँ थीं, इसलिए १३ तारीखको और उसके आस-पास गुजराँवालामें छुट्टियाँ मनानेवालोंकी खासी भीड़ इकट्ठी हो गई थी और छुट्टियाँ मनाने-वाले लोग तो कहींके भी हों, उनको शराबके दौर चलानेसे अक्सर कोई परहेज नहीं होता और इस अवसरपर तो और भी नहीं था। इस प्रकार १४ तारीखको हमें गुजराँवाला-के वातावरणमें वे सभी चीजें मिलती हैं, जो जन-समूहको अनियन्त्रित बनाती हैं — जैसे कि छुट्टियोंकी 'जो तबीयत आये सो करो' वाली मनःस्थिति, शराब, सरकारकी हरकतपर गुस्सा, दूसरे स्थानोंपर जनता द्वारा की गई ज्यादतियोंकी जानकारी और निठल्लापन।

सुबह-सुबह एक अफवाह उड़ गई कि स्टेशनके पास रेलवे पुलपर मरा हुआ बछड़ा टाँग दिया गया है। इसमें शक नहीं कि किया जिसने भी हो, यह काम बहुत ही अवि-वेकपूर्ण था, जिसका मंशा हिन्दुओंकी निम्नतम भावनाओंको उभारना था। इसके बारेमें कई अटकलें लगाई जाती हैं। हमें जो-कुछ बतलाया गया उसमें एक बात यह है कि पुलिसने हिन्दुओं और मुसलमानोंको आपसमें एक न होने देनेके लिए ही वह काम कराया था। गुजराँवालाके लोगोंने जो बयान दिये हैं, उनमें यह बात काफी साफ हो गई है। अधिकारी लोग शरारत करनेवालोंका पता नहीं चला सके हैं। इसमें तो शककी गुंजाइश ही नहीं कि यह काम उन्हीं लोगोंका था जो हिन्दुओं और मुसलमानोंमें फूट पैदा कराना चाहते थे। लेकिन नतीजा बिलकुल दूसरा ही निकला। जनताने तो साफ-साफ यही माना कि अधिकरियोंके इशारेपर ही मरा हुआ बछड़ा टाँगा गया है, खास तौरसे इस आधारपर कि किसीने मस्जिदमें सूअरका मांस भी फेंका था। इस

विश्वासने दोनों मजहबोंके लोगोंको एक दूसरेके और भी निकट ला दिया। इससे उत्तेजित होकर एक जन-समूह स्टेशनके पासवाले रेलवे पुलकी ओर चल पड़ा। इसी बीच लाहौरकी तरफसे आनेवाली वजीराबादकी एक ट्रेन वहाँ पहुँच गई थी। ट्रेनके एक खानसामाने १३ तारीखके हत्याकांडका समाचार उनको सुनाया। ट्रेन छुट्टियोंपर जानेवाले मुसाफिरोंसे ठसाठस भरी थी। भीड़में से कुछ लोग जाहिरा तौरपर ट्रेनको आगे जानेसे रोक देनेपर तुले हुए थे। लगता है कि इन लोगोंने ट्रेनपर कुछ पत्थर भी फेंके। इसके बाद उन्होंने गुरुकुल पुलमें आग लगानी शुरू कर दी। लेकिन किसीने भी इसकी जमकर कोशिश नहीं की। जिस समय यह सब हो रहा था, उसी समय गुरुकुलके प्रबन्धक, लाला रलियाराम, बैरिस्टर श्री लाभसिंह, वकील श्री दीन मुहम्मद और कुछ अन्य लोग खतरेका अन्देशा देखकर घटनास्थलकी ओर बढ़े। उसी समय एक यूरोपीय अधिकारीको भी कुछ सिपाहियोंको लेकर पुलकी तरफ जाते देखा गया। गुरुकुलके कर्मचारियोंने उपर्युक्त भारतीय सज्जनोंकी सहायतासे आग बुझा दी। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टने इस सिलसिलेमें बड़ी विचित्र बात कही: "आग बुझाना पुलिसका काम नहीं था, उसका कर्त्तव्य तो सरकारी सम्पत्तिकी रक्षा करना था।" (बयान २८२)

इसके बाद भीड़ स्टेशनके दूसरी ओरके काची पुलकी तरफ बढ़ी। यहाँ पुलिस सुपरिन्टेंडेन्ट श्री हैरन भीड़को तितर-बितर करनेकी कोशिश कर रहे थे, और उन्होंने भीड़पर गोली चलवा देना ही ठीक समझा। गोलियाँ चलीं और कई लोग हताहत हुए। इस बीच नेतागण भीड़को काबूमें रखने और उसे कस्बेसे बाहर न जाने देनेके लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने इसी उद्देश्यसे एक सभाका आयोजन किया था और वह सभा काफी सफल होती दिख रही थी और शायद पूरी तौरपर सफल हो भी जाती, लेकिन एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना हो गई। ज़ख्मी लोगोंको, हमारा खयाल है उनके प्रति जनताकी सहानुभूति जगानेके लिए ही, सभामें ले आया गया। यह प्रयत्न पूरी तौरपर सफल रहा। सभा उठ गई और बदला लेनेपर आमादा एक भीड़ स्टेशनकी तरफ बढ़ चली। एकके बाद एक बेशकीमती सम्पत्तिको मटियामेट कर दिया गया। उनमें चर्च, डाकघर, तहसील, कचहरी और रेलवे स्टेशन भी शामिल थे। लगता है कि पुलिस सिर्फ दर्शकोंकी तरह खड़ी देखती ही रही, उसने इस आगजनी इत्यादिको रोकनेकी कोई कोशिश नहीं की। हमारे पास जो बयान हैं उनमें तो यहाँतक कहा गया है कि पुलिसने जन-समूहको आगजनीके लिए भड़काया भी था, और उन बयानोंमें जो सबूत मौजूद हैं उनसे इस कथनका समर्थन ही होता है।

कर्नल ओ'ब्रायन उलटे पाँव गुजराँवाला लौट आये। लगता है कि उन्होंने लाहौर टेलीफोन किया था कि उनको इतने व्यापक अधिकार दे दिये जायें कि वे जो भी ठीक समझें कर सकें। सर चिमनलाल सीतलवाडने जब उनसे जिरहके दौरान पूछा कि उनको कौन-कौन-सी सत्ता प्राप्त थी, तो उन्होंने कहा: "मैंने १५ तारीखको फोनपर मुख्य सचिवसे बात की थी। मैंने उनसे कहा कि मुझे कुछ कदम उठाने पड़ सकते हैं और मुझे उम्मीद है कि यदि ये कदम ठीक नीयतसे उठाये जायेंगे तो बादमें उनको कानूनी करार दे दिया जायेगा।" सर चिमनलाल सीतलवाडने पूछा: "लेकिन फोन तो

आपने शायद मार्शल लॉकी घोषणासे पहले किया था?" कर्नल ओ'ब्रायनका उत्तर था: "जी हाँ।" सर चिमनलालने आगे पूछा: "आपने फोनपर उनसे कहा कि आपको कुछ कदम उठाने पड़ेंगे, और यदि सदाशयतापूर्वक उठाये जायें, तो आप चाहते थे कि उनको कानूनी करार दे दिया जाये, और इसपर उन्होंने आपको हर तरहकी छूट दे दी; यही है?" इसका उत्तर था: "जी हाँ।" कर्नल ओ'ब्रायनके अनुसार मुख्य सचिवने उनसे कहा कि "समझ-बूझसे काम लेना। सब ठीक हो जायेगा।" यदि दण्डविमुक्ति अधिनियम (इन्डेम्निटी एक्ट) की उत्पत्ति इसीसे हुई हो तो हमें यह कहनेमें तनिक भी हिचक नहीं कि यह बड़ी शर्मनाक बात थी। और इस अधिकारीने "सदाशयतापूर्वक" क्या-क्या किया, यह अभी सामने आया जाता है।

हमारा निश्चित मत है कि भीड़ने जिस मूल्यवान सम्पत्ति और एक प्रार्थना-स्थलको जो क्षति पहुँचाई, वह बिलकुल मनमानी थी और जिसे किसी भी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट द्वारा चलवाई गई गोलियों और यहाँ-तक कि पुलपर मरा हुआ बछड़ा टाँगनेकी दुष्टताका हवाला देकर भी आगजनीकी हरकतको उचित नहीं ठहराया जा सकता। यह सच है कि गोलीबारी और मरा हुआ बछड़ा टाँगनेकी हरकतोंसे जनता काफी अधिक उत्तेजित हो गई थी, परन्तु उनके आधारपर भीड़की इन ज्यादतियोंका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

कर्नल ओ'ब्रायन जब वापस लौटे, तबतक भीड़का गुस्सा शान्त हो चुका था। उन्होंने सहायता मँगवाई थी और दिनके ३ बजे तक उनकी सहायताके लिए हवाई जहाज पहुँच गये जिनसे सर्वथा निर्दोष व्यक्तियोंपर बमबारी की गई। जिस स्थानपर बमबारी की गई थी वहाँ कोई भी सार्वजनिक सभा नहीं हो रही थी। खालसा बोर्डिंग हाउसपर बम गिराये गये। उस दृश्यका वर्णन करते हुए एक विद्यार्थी कहता है:

> हमने तीन बजे दोपहरके आसपास हवाई जहाजोंकी गड़गड़ाहट सुनी।... वे लगभग १० मिनटतक बोर्डिंग हाउसपर मँडराते रहे।... अचानक एक धमाका सुनाई पड़ा, एक गोला नीचे आया और हमारे मिठाईवाले गेंदासिंहके ऊपर पड़ा।... उसके एक छोटेसे टुकड़ेने मेरे दाहिने हाथकी एक अँगुलीको जख्मी कर दिया। उसके धक्केके कारण एक लड़का गिर पड़ा। (बयान २९६, पृष्ठ ४०८)

बोर्डिंग हाउसके अधीक्षकने भी एक बयान दिया है। उनका कहना है।

> हमारे स्कूलमें कभी कोई राजनीतिक सभा नहीं हुई थी, न उसकी इजाजत ही है। १४ अप्रैलको बोर्डिंग हाउसका कोई भी विद्यार्थी शहर नहीं गया था। हमारा स्कूल और बोर्डिंग हाउस शहरसे आधा मील और स्टेशनसे एक मीलसे कुछ ही अधिक दूर हैं। (बयान २९७, पृष्ठ ४०९)

लॉर्ड हंटरकी समितिके समक्ष कप्तान कार्बेरीने तो अपनी गवाहीमें कहा कि उन्होंने "आती या जाती हुई भीड़को तितर-बितर करने" के आदेश दिये। लेकिन, जहाँतक खालसा बोर्डिंग हाउसपर बमबारीकी बात है, वहाँ आती या जाती हुई कोई भीड़ नहीं थी

और न वहाँ कोई सभा ही हो रही थी। हमें लगता है कि खालसा बोर्डिंग हाउसपर बम गिरानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, और यह तो भाग्यकी बात थी कि उससे किसीकी जान नहीं गई।

सम्बन्धित अधिकारियोंके बयान इस विषयमें बड़े दिलचस्प हैं कि उन्होंने बम किस प्रकार गिराये और कैसे मशीनगनें चलाईं। पहले जहाजोंने मशीनगनोंसे गोली-वर्षा की, जब लोग डरकर अपने गाँवोंकी ओर भागने लगे, तब उनपर बम गिराये गये।[1] हंटर समिति और सम्बन्धित अधिकारीके बीच हुआ प्रश्नोत्तर देखिए :

प्र० – क्या पहले आपने बम गिराये, और लोग गांवकी ओर भागने लगे, यही न?

उ० – जी हाँ।

प्र० – अर्थात् गाँवके मकानोंपर?

उ० – जी हाँ। मेरा खयाल है कि कुछ गोलियाँ मकानोंमें भी लगी थीं।

प्र० – लोग भाग रहे थे और वे तितर-बितर होकर घरोंमें घुस गये थे?

उ० – जी हाँ।

प्र० – आपने गाँवोंपर मशीनगनें चलाईं; तब हो सकता है कि आपकी गोलियाँ उन लोगोंको न लगकर जिन्हें आप तितर-बितर कर रहे थे, मकानोंमें मौजूद दूसरे बेकसूर लोगोंको लगी हों?

उ० – मैं बेकसूर लोगों और दूसरे लोगोंके बीच भेद नहीं कर सकता था। मैंने उन लोगोंको गोलियाँ मारनेकी कोशिश की, जो भाग रहे थे और जिनके बारेमें मैंने समझा कि वे नुकसान करनेके लिए आ रहे थे।

प्र० – बमबारीका नतीजा यह हुआ कि वे तितर-बितर हो गये?

उ० – जी हाँ।

प्र० – क्या वे गाँवोंमें भाग गये?

उ० – जी हाँ।

प्र० – क्या आपका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ था? मशीनगनोंसे गाँवोंपर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलानेकी क्या आवश्यकता थी?

उ० – मशीनगनोंसे अन्धाधुंध गोलियाँ नहीं चलाई गईं। मैंने गोलियाँ उन लोगोंपर चलाईं, जो भाग रहे थे। मैं कह चुका हूँ कि भीड़ तितर-बितर हो गई थी और गाँवोंकी ओर भागने लगी थी। मैंने उन्हीं लोगोंपर गोलियाँ चलाईं।

इस अधिकारीका कहना है कि वह २०० फुट ऊँचे एक स्थानपर खड़ा था। वह सब-कुछ "बहुत अच्छी तरहसे" देख सकता था। "उनपर मशीनगनें चलाने और

१. धारलक, भगवानपुरा, धुल्ला और आसपासके अन्य गाँवोंपर मशीनगनोंसे गोलियाँ बरसाई गई थीं या बम गिराये गये थे।

उन्हें मारनेकी जरूरत ही क्या थी?"—इस प्रश्नका उसने तुरन्त उत्तर दिया: "और ज्यादा नुकसान पहुँचानेके लिए।"

प्र० – लगता है आपका मंशा उस भीड़के और ज्यादा लोगोंको गोली मारने या उनकी हत्या करनेका था, यद्यपि भीड़ तितर-बितर होने ही लगी थी और लोग बमबारीके बाद भागने लगे थे?

उ० – मैं उनके हितकी दृष्टिसे ही वैसा कर रहा था। मैंने यह भी समझ लिया था कि यदि मैं उनमें से कुछको जानसे खत्म कर दूंगा तो फिर वे दूसरी बार जमा होकर नुकसान नहीं पहुँचायेंगे।

सर चिमनलालका अगला प्रश्न था: "ऐसा करनेमें आपका मंशा एक तरहका नैतिक प्रभाव डालनेका था न?" बिलकुल शान्त भावसे इसका उत्तर दिया गया: "जी हां, बिलकुल यही था।" अधिकारीने इसके बाद एक दूसरे गांवपर मशीनगनोंसे गोलीबारी की। वहां उसने उन लोगोंकी भीड़पर गोली चलाई जो गुजरांवालासे लौटकर अपने गांव जा रहे थे। हमारे पास जो सबूत हैं, उनसे पता चलता है कि अधिकारीने जिस तरहकी भीड़का हवाला दिया है, वैसी भीड़ वहां नहीं थी। वहां तो लोगोंके छुट-पुट समूह थे और वे लोग सर्वथा निर्दोष थे। यह तो एक मानी हुई बात है कि वे सब बिलकुल निहत्थे थे। गुजरांवालाकी भारतीय बस्तियोंपर गोली चलानेका उद्देश्य यह था कि जनता सड़कोंपर न निकले। "वतनी लोगोंके नगर"में "डेढ़ सौ राउंड" गोलियां बरसाई गईं। और अधिकारीने सर चिमनलालको अपनी बात पूरी स्पष्टतासे समझानेके लिए कहा कि: "आपको यह भी साफ समझ लेना चाहिए कि मकानोंपर गोली चलानेका तो कोई लाभ था नहीं। मैं तो वतनी लोगोंके शहरमें वतनियोंपर गोली चला रहा था।"

हमारी रायमें हवाई जहाजोंसे की गई यह सारी गोलीबारी बिलकुल अनुचित थी। यह गोलीबारी शुरू तब की गई, जब जन-समूह बरबादी कर चुका था और भीड़ छँट चुकी थी। इसलिए सम्पत्तिकी और अधिक बरबादी रोकनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं था। हमारा यह भी विश्वास है कि गोलीबारी यदि बदलेकी भावनासे न भी की गई हो, पर वह अविवेकपूर्ण अवश्य थी, और अफसरोंके अपने ही वक्तव्योंके अनुसार गांववालोंकी जिन्दगीका उनकी निगाहमें कोई मोल नहीं था और उन्होंने लोगोंको आतंकित करनेके लिए उनपर गोलीबारी की। हमें जो सूची दी गई है और जो बयानोंमें भी शामिल कर ली गई है, उसके अनुसार इसमें १२ लोग मारे गये, और २४ जख्मी हुए थे। अगर और ज्यादा लोगोंको जानसे हाथ नहीं धोना पड़ा तो उसमें सम्बन्धित अधिकारियोंका कोई दोष नहीं, क्योंकि उन्होंने अपनी ओरसे कोई कसर बाकी नहीं रखी थी। वह तो कहिए कि बम फटे ही नहीं।

१४ तारीखकी बमबारी तो अकारण थी ही, लेकिन १५ तारीखको हवाई जहाजोंकी सहायता लेनेका तो उतना भी औचित्य नहीं था। कारण, कर्नल ओ'ब्रायनको

उस समयतक अपनी जरूरतसे कहीं ज्यादा सैनिक कुमक प्राप्त हो चुकी थी, उन्होंने जितनी कुमक माँगी थी उतनी तो अवश्य ही मिल चुकी थी।

लगता है कि हवाई जहाजोंसे बमबारी करनेका सुझाव मूलतः सर माइकेल ओ'डायरने दिया। और उन्होंने ऐसा सुझाव दिया हो या नहीं; लेकिन इसमें तो कतई सन्देह नहीं कि उन्होंने इसकी ताईद की। यह नहीं भूलना चाहिए कि पंजाबकी जनता हवाई जहाजों द्वारा या अन्य किसी प्रकारसे भी की जानेवाली बमबारीकी अभ्यस्त नहीं थी। स्वीकार किया जाना चाहिए कि हवाई जहाजों द्वारा बमबारीका औचित्य तो तभी हो सकता है जब कोई बड़ी जरूरत सामने आ पड़ी हो, कोई बड़ा या आसन्न खतरा उपस्थित हो; हवाई जहाज जब गुजराँवाला पहुँचे तबतक तो सारा खतरा टल ही चुका था। हवाई जहाजोंकी मौजूदगी मात्र ही पर्याप्त सुरक्षा थी। गुजराँवालाके यूरोपीय लोगोंको कोई खतरा नहीं था। एक भी यूरोपीयकी जान नहीं गई। बमबारीकी सैनिक आवश्यकता सिद्ध करनेके लिए कोई प्रमाण नहीं जुटाया गया है। सरकार द्वारा जुटाये गये साक्ष्यसे ही स्पष्ट है कि बिलकुल ही शान्त जनता-पर अन्धाधुन्ध गोलीबारी और बमबारी की गई थी और वह भी ऐसे समय जब जान-मालका बिलकुल खतरा नहीं था और अमृतसर तथा कसूरके अनुभवोंसे स्पष्ट हो गया था कि जन-समूहका क्रोध अचानक ही थोड़े समयके लिए भड़क उठा था, उसमें जमकर लड़नेकी कोई प्रवृत्ति नहीं थी। १५ तारीखको बैरिस्टरों, वकीलों और अन्य नेताओंकी अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं। उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे, जिनके बारेमें अधिकारी जानते थे कि उन्होंने अपनी जानपर खेलकर भीड़का क्रोध शान्त करनेमें सहायता दी थी। खुद कर्नल ओ'ब्रायनके कथनानुसार जब ये गिरफ्तारियाँ की गईं उस समय ऐसे कोई सबूत नहीं थे जिनसे उनका औचित्य सिद्ध होता। उनके कथनानुसार ये गिरफ्तारियाँ भारत प्रतिरक्षा अधिनियम (डिफेन्स ऑफ इंडिया ऐक्ट) के विनियमोंके विनियम १२ के अन्तर्गत की गई थीं। इस विनियममें व्यवस्था यह है कि पक्का सन्देह होनेपर ही किसी व्यक्तिको गिरफ्तार किया जा सकता है। कर्नल ओ'ब्रायनके दिमागमें जिस एक विनियमकी बात थी, वह तो निम्नलिखित विनियम ही हो सकता है:

> **लेफ्टिनेंट गवर्नर डिफेन्स ऑफ इंडिया कन्सॉलिडेशन रूल्स, १९१५ के नियम १२ ए० ए० द्वारा प्रदत्त सत्ताका प्रयोग करते हुए सभी कमिश्नरोंको प्राधिकृत करता है कि वे किसी भी व्यक्तिको बिना वारंट गिरफ्तार कर सकते हैं जिसपर सरकारकी सत्ताके खिलाफ विद्रोहकी भावना फैलाने या उसमें सहायता देनेका उचित सन्देह हो।**

यदि उनके दिमागमें इसी विनियमकी बात थी तो वे स्वयं एक डिप्टी-कमिश्नर होते हुए इसके अन्तर्गत गिरफ्तारियाँ नहीं करा सकते थे। और फिर ऐसे व्यक्तियोंको गिरफ्तार करना, जिनके किसी गलत कामकी जानकारी डिप्टी-कमिश्नरको नहीं थी, या कमसे-कम उस समयतक नहीं थी, इस नियमके अर्थके साथ खींचतान करना ही था।

हंटर समितिके सामने पेश किये गये साक्ष्यमें स्वीकार किया गया था और हमारे सामने भी यह तथ्य अच्छी तरह सिद्ध कर दिया गया है कि इन नेताओंको अचानक ही गिरफ्तार कर लिया गया और कुछको कपड़े पहनने या सिरपर पगड़ी-टोपी लगाने तक का समय नहीं दिया गया। दो-दोको एक-एक हथकड़ी पहनाकर, २२ नेताओंको शहरमें दो मील पैदल चलाया गया। सबसे आगे नगरपालिकाके दो सदस्य — एक हिन्दू और एक मुसलमान — चल रहे थे। और उनके भोजन और दैनिक आवश्यकताओं-की अन्य वस्तुओंका कोई प्रबन्ध किये बिना उनको एक खुले ट्रकमें लाहौर ले जाया गया। उन बन्दियोंमें गुरुकुलके प्रबन्धक श्री रलियाराम भी थे जिनकी अवस्था लगभग ६३ वर्षकी थी। उनका कहना है:

> मैं भी उन २२ बन्दियोंके जत्थेमें था। सबको एक साथ एक जंजीरसे बाँधा गया था और एक-एक हथकड़ीसे दो-दो आदमी बँधे हुए थे। हमको इसी दशामें आम सड़कोंपर चलने और दौड़नेके लिए मजबूर किया गया। हमें एक खुले ट्रकमें लाहौर ले जाया गया। हममें से एकको तो टट्टी-पेशाब करनेकी भी इजाजत नहीं दी गई थी। उनसे कह दिया गया कि अपनी सीटपर बैठे-बैठे ही कर लें। लाहौर पहुँचनेपर मैं अकेला ट्रकसे नहीं उतर सका। क्योंकि दूसरे लोग भी मेरे साथ बँधे हुए थे और जबतक सब नहीं उतरते मैं भी नहीं उतर सकता था। इसलिए मुझे जबरन नीचे खींचा गया और गठियाका रोगी होनेके कारण मुझे उससे बड़ी पीड़ा हुई। (बयान २८२, पृष्ठ ३८८)

कर्नल ओ'ब्रायनसे पूछा गया कि उन्होंने लोगोंको कपड़े पहननेतक का समय क्यों नहीं दिया। उनका उत्तर था कि वे गिरफ्तारीका काम पूरा करनेकी जल्दीमें थे। इसलिए उनसे यह तो पूछा ही जा सकता है कि उन्होंने नेताओंको ट्रकमें बैठाकर सीधे स्टेशन क्यों नहीं भेजा। न भेजनेसे सीधे-सीधे एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'वे' जनताको यह सब दिखलाना और इस तरह आतंकित करना चाहते थे। कर्नल ओ'ब्रायनके विचारसे "गिरफ्तार करना तो बड़ी ही रहमदिलीका काम था।"

१६ तारीखको मार्शल लॉकी घोषणा की गई, और उसके तहत गुजराँवालाकी जनताको बेइज्जत किया गया, कोड़े लगाये गये, तथा और भी कई तरहसे अपमानित किया गया। दुकानदारोंको दुकानें खोलनेपर मजबूर करनेके लिए यह विचित्र-सा फर्मान जारी किया गया:

मार्शल लॉके तहत नोटिस नं० २

> चूँकि हमें पता चला है कि गुजराँवालाकी नगरपालिकाकी हदोंमें रहनेवाले कुछ दुकानदार सेना और पुलिसके सिपाहियोंके खरीद-फरोख्तके लिए आनेपर अपनी दुकानें बन्द कर देते हैं, या वे सेना या पुलिसके सिपाहियोंको उचित भावपर चीजें बेचनेसे इनकार कर देते हैं; इसलिए निम्नलिखित आदेश जारी किये जाते हैं कि इस नोटिसके प्रकाशनके बाद जो भी दुकानदार इस तरह पेश

आता पाया जायेगा उसे गिरफ्तार कर लिया जायेगा और वह कोड़े खानेके दण्डका भागी होगा।

(हस्ताक्षर) एफ० डब्ल्यू० ब्रेरबेरी,
लेफ्टिनेंट-कर्नल,
ऑफिसर-कमांडिंग, जिला गुजराँवाला

१८–४–१९१९

और नीचे दिया गया मार्शल लॉका नोटिस बतलाता है कि लॉर्ड हंटरकी समितिके सदस्योंने जिसकी इतनी अधिक चर्चा की और हमारे सामने मौजूद साक्ष्यमें जिसे इतना ज्यादा तूल दिया गया है, उस सलामी आदेश (सैल्यूटिंग ऑर्डर) का मतलब क्या था :

मार्शल लॉ नोटिस नं० ७

हमें पता चला है कि गुजराँवाला जिलेके निवासी आम तौरपर सम्राट्के राजपत्रित कमिश्नरों तथा सैनिक और असैनिक यूरोपीय अधिकारियोंके प्रति सम्मान-प्रदर्शन नहीं करते, जिससे सरकारकी प्रतिष्ठा और उसके सम्मानकी रक्षा नहीं हो पाती। इसलिए हम आदेश देते हैं कि गुजराँवाला जिलेके निवासियोंको इन सम्माननीय अधिकारियोंसे मिलनेके अवसरपर उनको उतना ही सम्मान देना चाहिए जितना कि भारतके धनी और जाने-माने लोगोंको वे देते हैं।

यदि कोई व्यक्ति घोड़े या किसी गाड़ीपर सवार हो तो उसे ऐसे अवसरपर नीचे उतर जाना चाहिए। यदि किसीके हाथमें छाता हो, तो उसे वह नीचे कर लेना चाहिए या यदि उसने उसे खोल रखा हो तो बन्द कर लेना चाहिये और सभी व्यक्तियोंको अपने दाहिने हाथसे अदबके साथ सलाम करना चाहिए।

(हस्ताक्षर) एल० डब्ल्यू० वाई० कैम्बेल,
ब्रिगेडियर-जनरल,
ऑफिसर-कमांडिंग, जिला गुजराँवाला

कर्नल ओ'ब्रायनने भारतीय प्रथाके आधारपर इस आदेशका औचित्य सिद्ध करनेकी कोशिश की। जो आदेश स्पष्ट ही इतना अधिक अपमानजनक और आत्म-सम्मानको चोट पहुँचानेवाला हो, उसे न तो प्रथाके आधारपर उचित ठहराया जा सकता है, और न विवेकके आधारपर ही। हमारे सामने जो साक्ष्य आया है, उससे प्रकट है कि इसका अमल इस ढंगसे हुआ कि सैनिकोंतक को सलाम करना पड़ता था, और सलाम न करनेकी सजा थी — कोड़े खाना। यदि कोई व्यक्ति उनको सलाम नहीं करता, तो उसकी पीठपर दो-तीन वार छड़ीसे प्रहार किया जाता था। हवेलीरामकी दुकानके सामने हल्दीका एक व्यापारी हल्दी खरीद रहा था। वह उस जगहके लिए नया था,

और उसने खड़े होकर सैनिकोंको सलामी नहीं दी, इसीलिए उसको वेंत खाने पड़े। चूंकि उसकी पीठ सड़ककी तरफ थी, इसलिए उसने सैनिकोंको देखा नहीं था। (बयान ३०५ और २९०, २९३, २९८, ३०० और ३०१ भी)। विद्यार्थियोंको रोज ही यूनियन जैकको सलामी देनी पड़ती थी।

प्रतिष्ठित लोगोंको बाजारकी नालियाँ साफ करनी पड़ती थीं, हालांकि उनमें से कुछ नालियोंको नगरपालिकाका जमादार पहले साफ कर चुका होता था। (बयान ३०४)

लोगोंको लाठी लेकर चलनेकी मनाही थी। कुछ दिनोंके लिए रेल-यात्रा भी वन्द कर दी गई और कर्फ्यू आदेश निकाल दिया गया। इस प्रकार जनताको बिलकुल ही असहाय बना दिया गया था।

इसके बाद मार्शल लॉ न्यायाधिकरणों और सरसरी जाँच अदालतोंमें मुकदमे शुरू हुए और इन मुकदमोंपर भी वे सभी बातें लागू होती हैं जो अमृतसरमें चलनेवाले मुकदमोंके बारेमें कही गई हैं। सबूत गढ़ा गया था — इसके यथेष्ट प्रमाण मौजूद हैं। अधिकारीगण जो इस बातपर जोर दे रहे थे कि वहाँ बगावतकी स्थिति मौजूद थी, वह लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने लगभग बिलकुल निराधार साबित हुई। कर्नल ओ'ब्रायनको बगावतकी स्थिति साबित करनेके लिए सिर्फ इतना ही कहना था कि यह स्थिति "न्यायिक रूपमें सिद्ध" हो गई थी। लगभग प्रत्येक नेताको गिरफ्तार कर लिया गया। दीवान मंगलसेन और उसके परिवारके साथ किया गया सलूक, लाला अमरनाथके मकानको बदलेकी भावनासे खाली करवाना, लोगोंको गिरफ्तार और नजरबन्द करना और उनपर कोई मुकदमा न चलाना — यह सारी कहानी एक सोच-समझकर की गई क्रूरताकी कहानी है, जो ब्रिटिश प्रशासनके नामपर कलंक है।

वजीराबाद

वजीराबाद एक दूसरा महत्त्वपूर्ण स्टेशन है, जो बड़ी लाइनपर गुजराँवालासे २० मीलकी दूरीपर स्थित है। यह जंकशन भी है। यह एक छोटा-सा कस्बा है, जिसकी आबादी लगभग १०,००० है। हर साल वहाँ वैसाखी मेलेके अवसरपर आस-पासके गाँवों और इलाकोंसे बड़ी संख्यामें लोग इकट्ठे होते हैं। वहाँ पिछली ३० मार्च या ६ अप्रैलको कोई हड़ताल नहीं हुई, लेकिन वहाँ जो लोग इकट्ठे हुए थे वे साथमें लाहौर, अमृतसर और गुजराँवालाकी घटनाओंकी खबरें भी लाये थे। आसपासके गाँवोंसे आनेवाले लोगोंने वजीराबादियोंको हड़ताल न करनेपर ताने मारने शुरू किये। उन्होंने कहा कि "वजीराबादके लोगोंने हड़ताल नहीं की, इसलिए अब कोई भी उनकी लड़कियोंसे विवाह नहीं करेगा।" (बयान ३१२, पृष्ठ ४३४)। हड़ताल करने-न-करनेके प्रश्नपर विचार करनेके लिए १४ तारीखको वहाँकी मसजिदमें एक सभा हुई। १५ तारीखको हड़ताल हुई, लेकिन कुछ शरारती लोग भी थे जो सिर्फ काम बन्द होनेसे सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने तमाम घटनाओंकी जो अतिरंजित कहानियाँ सुनी थीं, वे उनके दिलोंमें काँटोंकी तरह गड़ रही थीं। फलतः वे भी तार काटने और रेलकी पटरियाँ उखाड़नेके लिए चल पड़े। उनमें से कुछ इसके बाद रेवरेंड श्री बेलीके मकानकी

ओर चल दिये। रास्तेमें कुछ और लोग भी उनके साथ हो लिये। भीड़ने रेवरेंड श्री बेलीका मकान और उनका बेशकीमती पुस्तकालय भी जला दिया। लगता है कि पुलिस घटना-स्थलपर मौजूद थी, लेकिन उसने इस सर्वथा अनुचित अग्निकांडको रोकनेका कोई प्रयास नहीं किया। सौभाग्यसे इसमें किसीकी जान नहीं गई। इस विनाश-लीलामें लगता है, किसी भी प्रमुख व्यक्तिने हिस्सा नहीं लिया था। ऐसा जान पड़ता है कि वजीराबादके कुछ प्रमुख नागरिकोंने भीड़के इस उपद्रवको रोकनेकी थोड़ी-बहुत कारगर कोशिश भी की। रेवरेंड श्री बेलीका मकान वजीराबादसे दो मील और निजामाबादसे एक मीलकी दूरीपर बस्तीसे बिलकुल अलग जमीनके एक टुकड़ेपर बना हुआ है। भीड़ द्वारा किये गये इस उत्पातका तनिक भी औचित्य नहीं है। इस कांडको और भी अधिक अशोभनीय और भर्त्सनीय बना दिया है इस बातने कि एक निर्दोष और लोकप्रिय मिशनरीके घरको इस काण्डका शिकार बनाया गया था। हमें यह पता नहीं चल सका है कि इस पूरे काण्डके पीछे खास मंशा क्या हो सकता है। सिर्फ इतना कहा जा सकता है कि जन-समूह यूरोपीयोंके प्रति अपने गुस्सेकी रौमें बह गया था।

कर्नल ओ'ब्रायन पुलिस और सेनाके साथ १६ तारीखको वजीराबाद पहुँचे। तुरन्त ही गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं, और गुजराँवालाकी तरह ही सारा प्रदर्शन वजीराबादमें भी हुआ।

१८ तारीखको एक दरबार किया गया था, जिसमें समाचारके अनुसार कर्नल ओ'ब्रायनने कहा :

> ओ बेवकूफ और पागल लोगो! सुनो, तुमने सोचा था कि ब्रिटिश सरकार खत्म हो गई है। अब तुम्हारा पागलपन ठीक कर दिया जायेगा। हमारे पास उसका इलाज मौजूद है। तुम सब अच्छी तरह समझ लो कि सरकारको पूरा अधिकार है कि वह किसी भी आदमीकी जायदाद जब्त कर सकती है, उसका मकान गिरा सकती है, और इतना ही नहीं, वह चाहे तो उसमें आग भी लगवा सकती है। इसीके मुताबिक, मैं इसके जरिये हुक्म देता हूँ कि जमीयतसिंह बग्गाकी[1] सारी जायदाद जब्त कर ली जाये। (बयान ३१३, पृष्ठ ४४२)

दूसरे ही दिन मार्शल लॉ जारी कर दिया गया। स्थानीय आर्यसमाजके भूतपूर्व मन्त्री डा० दौलतसिंहने फौजी शासनका इन शब्दोंमें वर्णन किया है :

> कई जगहों और कुछ इमारतोंपर मार्शल लॉके नोटिस लगा दिये गये। ये नोटिस उन जगहों और घरोंपर लगाये गये, जिनका गिरफ्तारशुदा लोगोंसे सम्बन्ध था। हालाँकि आर्यसमाजका उन घटनाओंसे कोई सम्बन्ध नहीं था, फिर भी आर्यसमाज मन्दिरपर मार्शल लॉके नोटिस लगा दिये गये। मैं हड़तालके खिलाफ था और मैंने आन्दोलनमें भाग नहीं लिया था, पर आर्यसमाजका मन्त्री

१. वयोवृद्ध सिख नेता और वजीराबादके प्रमुख नागरिक।

होनेके नाते मुझे उन मार्शल लॉ नोटिसोंकी हिफाजतके लिए जिम्मेदार बना दिया गया। दो आदमी खास तौरसे रखने पड़े जो इस बातकी चौकसी रखते थे कि कहीं कोई शरारती व्यक्ति इन नोटिसोंको फाड़कर ले न जाये या उन्हें कोई नुकसान न पहुँचा दे। इसके अलावा मुझे खुद भी इनकी निगरानीके लिए कई बार जाना पड़ता था। मार्शल लॉके अधिकारी लोग इसके बड़े पाबन्द थे कि न तो नोटिसोंको नुकसान पहुँचाया जाये और न कोई उन्हें छेड़े-छाड़े। (बयान ३०८, पृष्ठ ४२२)

ऐसे नोटिसोंको उखाड़ना या उनको बिगाड़ना मार्शल लॉके विनियमोंको तोड़ना था। और जहाँ-जहाँ ये नोटिस लगे थे उन मकानोंमें रहनेवालोंको इनकी सुरक्षाके लिए जिम्मेदार माना जाता था। डा० दौलतसिंहको गिरफ्तार कर लिया गया और आर्य-समाजके रजिस्टर जब्त करके पुलिस अपने साथ ले गई। डा० दौलतसिंहको १० दिन-तक नजरबन्द रखा गया, उनसे कुछ व्यक्तियोंके खिलाफ गवाही देनेके लिए कहा गया था और बादमें ३० मईके करीब उन्हें रिहा कर दिया गया। ७ जूनको उनको फिर गिरफ्तार कर लिया गया। वे बतलाते हैं कि किस तरह उनके खिलाफ सबूत गढ़े गये, कैसे उनको वकील करनेका भी समय नहीं दिया गया, कैसे बहुत ही कमजोर गवाहीके आधारपर उनको सजा दे दी गई और कैसे कर्नल ओ'ब्रायनने उनसे कहा : "चूँकि स्वामी श्रद्धानन्द आन्दोलनमें हिस्सा ले रहे हैं, इसलिए तुम भी हिस्सा ले रहे होगे।" (बयान ३०८, पृष्ठ ४२६)

आगे कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति गलतीसे या देख न पानेपर किसी यूरोपीयको सलाम नहीं बजा पाता था तो उसकी पगड़ी उतारकर उसके गलेमें बाँध दी जाती थी। फिर सैनिक लोग उसे घसीटकर कैम्पतक ले जाते थे। वहाँ उसपर या तो जुर्माना किया जाता था या फिर कोड़े लगाये जाते थे। (बयान ३०८ और ३१३) एक गवाह कहता है कि उसने सलाम तो किया था, पर चूँकि किसीने उसे सलाम करते देखा नहीं, इसलिए उसे सम्बन्धित अधिकारीके जूते चाटनेपर मजबूर किया गया। (बयान ३१९) इस बयानकी कई गवाहोंने काफी ताईद की है।

सैनिकोंके लिए नियमित रूपसे मक्खन इकट्ठा किया जाता था और उसके लिए एक कौड़ी भी नहीं दी जाती थी। मक्खन इकट्ठा करना बन्द हुआ तो "सेनाके खर्चके लिए" हर घर पीछे एक रुपया "वसूल किया जाने लगा।" (बयान ३१४) इससे सिर्फ विधवाओंको बरी किया गया। गवाह साथमें यह भी कहता है कि इस प्रकार जमा की हुई रकम चुक जानेपर और वसूली कर ली जाती थी। उसी गवाहका कहना है कि इसके अलावा वजीराबादसे हर्जानेके तौरपर ६७,००० रुपये अलगसे वसूल किये गये। गवाह खुद नगरपालिकाके एक सदस्य थे, और इसलिए उन्हें अपने वार्डसे अपना हिस्सा जमा करके देना पड़ा था।

खुद उन्हें ७ जूनको गिरफ्तार कर लिया गया और अपनी सफाईमें गवाह पेश करनेके लिए सिर्फ एक घण्टेका समय दिया गया। जिनके पास हथियार थे, उनको

बिना किसी हिचकके कानून तोड़नेवाले जन-समूहपर गोली चलानेकी छूट थी। (बयान ३०९)

हमारे सामने जो साक्ष्य है, उससे यह भी पता चलता है कि गिरफ्तारीसे बचने या झूठी शहादत देनेसे बचनेके इच्छुक व्यक्तियोंसे पुलिस खुलेआम रिश्वतें लेती थी और उसे खुलेआम रिश्वतें दी जाती थीं।

लोगोंसे बहुत-सी चारपाइयाँ छीनकर उपयोगके लिए सैनिकोंको दे दी गईं। उनके बदले उन्हें न तो पैसा दिया गया और न चारपाइयाँ ही लौटाई गईं। (बयान ३१०, पृष्ठ ४२३)

गुजराँवालाकी तरह, वजीराबादमें भी कर्फ्यू लगा दिया गया, और स्कूली बच्चोंको स्कूल जाकर प्रतिदिन तीन बार हाजिरी देने और यूनियन जैकको सलामी देनेपर मजबूर किया गया। "उनको बहुत ही परेशानी होती थी खास तौरसे यों कि दोपहरकी तपती धूपमें उनको काफी लम्बा फासला पैदल तय करना पड़ता था।" (बयान ३११, पृष्ठ ४३४)

सरदार जमीयतसिंहकी जायदादकी जब्तीकी बात पहले ही बतलाई जा चुकी है। अब जरा यह देखिए कि यह सब किया कैसे गया। उनके पुत्रने अपने बयानमें कहा है:

> डिप्टी कमिश्नर और अन्य अधिकारी लोग जब हमारी दुकानके पास पहुँचे तो मुझे पता चला कि मेरे पिताके खिलाफ भी वारंट जारी किये गये हैं। पुलिसने हमारे रहनेके मकान और बैठककी तलाशी ली और मेरी मौजूदगीमें घरकी औरतोंको बुरा-भला कहा। इसके बाद उन्होंने पूछा कि जमीयतसिंह कहाँ गये हैं, या उन्हें कहाँ छिपा रखा है। (बयान ३११, पृष्ठ ४३१)

हालाँकि उनके पुत्रने पुलिसको निश्चित तौरपर बतला दिया था कि उसके पिता जम्मू गये हुए हैं, लेकिन वह उसे बराबर तंग करती रही। २१ अप्रैलको जब्तीका हुक्म निकाल दिया गया। चार महिलाओं और छः नाबालिग बच्चोंको खड़े-खड़े घरसे बाहर निकाल दिया गया।

> औरतोंके बदनपर सिर्फ वही चन्द कपड़े थे जो सम्भ्रान्त कुलकी पर्दानशीन औरतें आमतौरपर घरोंके अन्दर पहने रहती हैं। बच्चोंके बदनपर तो और भी कम कपड़े थे, और कुछ बच्चे तो सचमुच नंगे ही अहातेमें बाहर खेल रहे थे। उन लोगोंने औरतोंको जूतियाँतक नहीं पहनने दीं, और नंगे खेलते बच्चोंको नंगा ही घरसे बाहर निकाल दिया। इस तरह एक ऐसे लखपति आदमीके परिवारको, जिसने स्कूलों, कालेजों, धर्मशालाओं और अन्य धर्मार्थ संस्थाओंको हजारों रुपये चन्देमें दिये थे, और जिसने गाढ़े वक्तमें नगरके सैकड़ों लोगोंकी मदद की थी, उस दिन बेघरबार और रोजमर्राकी जरूरियातके लिए मोहताज कर दिया गया। (बयान ३११, पृष्ठ ४३२)

इन महिलाओंको इस तरह घरसे निकालना कितना जघन्य कृत्य था, इसको वही समझ सकते हैं जो जानते हैं कि पर्दानशीन औरतें घरमें क्या पहनती हैं और

घरसे बाहर निकलनेके वक्त क्या पहनती हैं। और फिर सरदार जमीयतसिंह वजीराबादके एक प्रतिष्ठित नागरिक हैं। वे सिखोंके नेता हैं। उन्होंने युद्धके दौरान बड़ा शानदार काम किया था और उनको कमाण्डर-इन-चीफसे एक सनद भी मिली थी। सरदार जमीयतसिंहने २६ अप्रैलको वापस लौटते ही अधिकारियोंके सामने आत्म-समर्पण कर दिया, लेकिन जब्तीका हुक्म ४ मईतक वापस नहीं लिया गया। हमने उनके मुकदमेका रेकार्ड, वह जैसा उपलब्ध है, देख लिया है और हमारे सामने जो अन्य अनेक कागजात पेश किये गये हैं वे भी देखे हैं, और हमें इसमें जरा भी शक नहीं कि उनको सजा देना बहुत ही गलत था। पहले तो उनका अभियोग-पत्र ही उनको नहीं दिखाया गया। उनका वकील उसकी कोई प्रमाणित प्रति हासिल नहीं कर पाया और न सफाईके सभी गवाहोंको ही बुलाया गया। सरदार जमीयतसिंहकी अवस्था ६२ वर्ष है। उनकी एक आँखमें मोतियाबिन्द है। उनके साथ भी आम किस्मके बदमाशों-जैसा व्यवहार किया गया और कुछ दिनोंतक उन्हें तनहाईमें भी रखा गया।

अन्य स्थानोंकी अपेक्षा यहाँ गिरफ्तार किये गये लोगोंका मुकदमा और भी ज्यादा तमाशा था। सबूत किस तरह गढ़ा गया, इसका सजीव वर्णन नीचे देखिए:

> डुग्गी पिटवाकर सभी नागरिकोंको पुलिस थानेमें बुलवाया गया। नाबालिगों और बदमाशों (रजिस्टरमें दर्ज) को मुखबिर मान लिया गया। पुलिस जिसके भी खिलाफ मुकदमा खड़ा करना चाहती थी उसको ऐसे लड़कोंके सामने लाया जाता था जिन्हें झूठी शहादत देनेके लिए सिखा-पढ़ा दिया जाता था और इस तरह उस बेचारेको फँसा दिया जाता था। उन्हीं लड़कोंको गवाहोंकी तरह सैनिक अदालतोंके सामने पेश किया जाता था, और सिर्फ उनकी गवाहियोंपर ही लोगोंको सजा सुना दी जाती थी। (बयान ३१३, पृष्ठ ४४४)

निजामाबाद

वजीराबादसे करीब मील-भर दूर एक छोटा-सा गाँव है—निजामाबाद। पूरा गाँव एक सँकरी गलीके दोनों ओर मकानों और शिल्पशालाओंकी एक मिली-जुली बस्तीके रूपमें बसा है। यह स्थान अपने यहाँकी छुरी-चाकूके लिए प्रसिद्ध है, जिनको दस्तकारोंके परिवार बड़े ही पुराने किस्मके औजारोंसे पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे तैयार करते आ रहे हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इसमें शक नहीं कि निजामाबादके कुछ लोग श्री बेलीके मकानमें आग लगानेवाली भीड़में शामिल थे, पर बेचारे सभी गाँव-वालोंको चन्द लोगोंके अपराधके लिए जो सजा दी गई, वह उनके अपराधको देखते हुए हर तरहसे बहुत ज्यादा थी। १८ अप्रैलको ब्रिटिश सैनिकोंकी एक विशेष ट्रेन लाहौरकी तरफसे आकर गाँवके पास रुकी। गाँव रेलवे स्टेशनके पास ही है। सैनिकोंने गाँवको घेर लिया। उन्होंने दुकानें लूटीं, आटा, घी और गुड़ अपने कब्जेमें ले लिया और उस सब मालको ट्रेनतक ढोनेके लिए गाँववालोंको मजबूर किया। करीब एक पखवारेतक लोगोंको पुलिस चौकी जाकर वहाँ ७ बजे सुबहसे ८ बजे शामतक दिन-भर धूपमें बैठनेपर विवश किया गया। लोगोंको अपनी शिल्पशालाएँ बन्द कर देनी पड़ीं। (बयान ३२९)

मुहम्मद रमजान नामका एक लड़का अनजानेमें सैनिकोंके घेरेसे बाहर चला आया था। वह अपनी बकरियाँ चरा रहा था। उसे गोली मार दी गई और वह वहीं ठण्डा हो गया। "दो-तीन ब्रिटिश सैनिकोंने उसकी लाशको उसके साफेसे बाँध दिया और उसे घसीटते हुए गाँवके पासवाले तालाबपर ले जाकर डाल दिया।" (बयान ३३०)।

मीर वाजिदअली नामक एक मुगलने अपने एक लम्बे बयानमें बतलाया है कि सबूत जटानेके लिए कैसी-कैसी कोशिशें की गईं और कैसे गाँववालोंको रोज-ब-रोज तपती धूपमें पुलिस चौकीमें बैठनेके लिए मजबूर किया गया; उसने अन्तमें कहा है:

> **मेरी और मेरे लड़केकी खानातलाशी ली गई और हमें हवालातमें बन्द कर दिया गया। ९ जूनको मुझे और मेरे लड़के इस्लाम बेगको डिप्टी कमिश्नर ओ'ब्रायनके सामने करीब ६ बजे शामको पेश किया गया। साथमें वजीराबादके ५-६ लोग और भी थे। जमीनपर नाक घिसवानेके बाद हमें डिप्टी कमिश्नरने रिहा कर दिया (बयान ३२७, पृष्ठ ४५४)**

इस तरह सजाके लिए बिलकुल कोई सबूत न मिलनेपर भी बेकसूरोंको बेइज्जत करनेके इरादेसे उनको सजा देनेका कोई ऐसा तरीका निकाला जाता था जो आत्म-सम्मानको चोट पहुँचाता हो। इन गाँववालोंसे हर्जानेके तौरपर ६,५०० रुपये वसूल किये गये।

३२४, ३२५, ३२६ और ३३४ नम्बरके गवाहोंने अपनी गवाहियोंमें बतलाया है कि पुलिसने किस प्रकार धमकियों और शारीरिक यन्त्रणाओंका सहारा लेकर झूठी शहादत इकट्ठी करनेकी कोशिशें कीं।

अकालगढ़

अकालगढ़ वजीराबादसे आगे वजीराबाद-लायलपुर रेलवे लाइनपर एक रेलवे स्टेशन है। इसकी जन-संख्या लगभग ४,००० है। इसकी प्रसिद्धिका कारण यह है कि यहाँ सिख-शासनके आखिरी दिनोंमें मुलतानके दो प्रसिद्ध सूबेदारों — दीवान सावनमल और उनके पुत्र मूलराज — का निवास था।

खुद अकालगढ़में पिछले अप्रैलके महीनेमें किसी तरहका कोई भी उपद्रव नहीं हुआ। ६ तारीखको वहाँ हड़ताल हुई और एक सार्वजनिक सभा भी, जिसकी अध्यक्षता दीवान सावनमलके ही एक वंशज दीवान गोपाललालने की। अमृतसर और लाहौरकी घटनाओं और गिरफ्तारियोंको लेकर यहाँ १४ अप्रैलको एक दूसरी हड़ताल हुई। लेकिन वहाँ लोगोंने तार वगैरह १५ तारीखको काटे, जब वहाँ कोई हड़ताल नहीं हुई थी। रेलवे स्टेशनसे और अकालगढ़से भी करीब मील-भरकी दूरीपर तार काटे गये थे। वह हरकत किसी भीड़ने नहीं की थी और जहाँतक हम समझ पाये हैं, उसमें अकाल-गढ़के किसी आदमीका भी हाथ नहीं था। हमारे सामने जो कहानी पेश की गई थी उसके मुताबिक तार काटनेकी हरकत वजीराबादके बैसाखी मेलेसे लौटनेवाले लोगोंने की थी। अकालगढ़ वजीराबादसे २३ मील दूर है।

जो भी हो, २२ अप्रैलको डिप्टी कमिश्नरने आकर नहरके पुलपर डेरा डाल दिया और कस्बेके लोगोंको बुला भेजा। उन्होंने गाँववालोंसे डाक बँगलेतक सड़ककी मरम्मत करनेके लिए कहा और हुक्म दिया कि सड़ककी जल्द ही ऐसी मरम्मत हो जानी चाहिए कि उनकी मोटर आसानीसे गुजर सके। इस मरम्मतके लिए लोगोंसे करीब दो हजार रुपये इकट्ठे किये गये और एक मीलसे अधिक लम्बी सड़ककी खास तौरसे ऐसी मरम्मत करनी पड़ी जिससे डिप्टी कमिश्नरकी गाड़ी गुजर सके। उस छोटेसे कस्बेसे इतनी बड़ी रकम एक ही दिनमें वसूल की गई। इस तरह यह वसूली सिद्धान्तकी दृष्टिसे गैर-कानूनी और आपत्तिजनक ही नहीं थी, बल्कि अकालगढ़-जैसे एक गरीब और मामूली कस्बेके लिए भारी और अन्यायपूर्ण भी थी।

इसके बाद यहाँ, गुजरांवाला और वजीराबादकी तरह ही, प्रमुख नागरिकोंकी गिरफ्तारियाँ हुई। ३० अभियुक्तोंपर एक जत्थेपर मुकदमा चलाया गया, जिनमें से २० को बरी कर दिया गया, पन्द्रह-पन्द्रह वर्षके दो लड़कोंको एक-एक दिनकी सादी कैदकी सजा दी गई, ६ को सजाएँ सुनाई गईं और २ अभियुक्तोंपर से मुकदमे वापस ले लिये गये।

हमको जो बयान मिले हैं उनमें गवाहोंको संत्रस्त करने, लगभग दो महीने तक अकालगढ़में भ्रष्टाचार और आतंककी तूती बोलनेकी इतनी ब्योरेवार कहानियाँ भरी पड़ी हैं कि उनपर विश्वास न करना कठिन है। हम उन शर्मनाक घटनाओंके चन्द नमूने यहाँ पेश करते हैं।

नानकचन्दको पुलिस चौकीपर बुलाकर झूठी गवाही देनेके लिए कहा गया। उनके इनकार करनेपर "उन्हें आधा घंटेतक धूपमें खड़ा रखा गया।" उन्हें गालियाँ दी गईं। उनसे कहा गया कि अगर वे झूठी गवाही नहीं देंगे तो उन्हें गोलीसे उड़ा दिया जायेगा। इसपर उन्होंने पुलिस जैसा चाहती थी वैसा बयान दे दिया। लेकिन वे कहते हैं कि अदालतके सामने उन्होंने सच्ची गवाही दी। साथ ही, उन्होंने कहा है कि दूसरे लोगोंके साथ भी वैसा ही सलूक होते देखा। "लोगोंको डाक बँगलेपर जमा होनेके लिए मजबूर किया गया। उन्हें सैनिक अफसरोंके लिए बिना किसी कीमतके दूध पहुँचाना पड़ा।" (बयान ३४३ से ३४५ तक)

ऊपर जिन दीवान गोपाललालका जिक्र आया है, उनको २२ अप्रैलको गिरफ्तार किया गया। उनको दो महीनेतक जेलमें नजरबन्द रखा गया और अन्तमें सबूत न मिलनेपर छोड़ दिया गया। वे कहते हैं:

> मुझे इसलिए गिरफ्तार किया गया कि रेवेन्यू 'असिस्टेंट' और साहब खाँने जैलदार और चौधरी गुलाम कादिर तथा सरदार खाँके जरिये जो रिश्वत माँगी थी उसे देनेसे मैंने इनकार कर दिया था। मैं जब जेलमें था, तब उन्होंने मेरे रिश्तेदारोंसे बतौर रिश्वत मेरी खातिर ५,००० रुपये और मेरे साले [बहनोई ?] की खातिर १,००० रुपये लिये। (बयान ३४०, पृष्ठ ४६८)

एक पन्द्रह वर्षीय विद्यार्थी, रामलालको २३ अप्रैलको गिरफ्तार किया गया और १३ मईको छोड़ दिया गया। (बयान ३४२)

लाला गणेशदास पासी और उनके दो भाइयोंको गिरफ्तार किया गया। वे बतलाते हैं कि किस प्रकार उन्होंने २,००० रुपये रिश्वतमें दिये, फिर भी उनको किस तरह जेलमें ही रखा गया, कैसे आखिरमें उन्हें छोड़ दिया गया और फिर किस प्रकार २३ मईको उनकी जायदाद इस बहाने जब्त कर ली गई कि वे फरार हैं। वे यह भी बताते हैं कि बरी हो जानेपर भी कैसे १९ जुलाई, १९१९ तक उनकी जायदाद वापस नहीं की गई थी। (बयान ३४६)

चौधरी फज़लदाद एक लम्बरदार और अकालगढ़ नगरपालिकाके उपाध्यक्ष भी थे। उनका अपराध यह था कि वे सफाईके एक गवाहके रूपमें खड़े हुए थे। इसीलिए उनके कथनानुसार उन्हें गिरफ्तार किया गया और मुकदमा चलाकर उनपर ५०० रुपये जुर्माना किया गया। वे कहते हैं कि २६ मईको कर्नल ओ'ब्रायनने उन्हें बिना कोई कारण बतलाये लम्बरदारीसे बर्खास्त कर दिया। उनका कहना है कि ऊपर जिस सड़ककी मरम्मतका हवाला दिया गया है, उसकी मरम्मत उन्हींकी लम्बरदारीके दिनोंमें हुई थी। वे कहते हैं: "जो लोग श्रमिक वर्गके नहीं थे उन्हें भी माल-अफसर और जैलदारने बिना किसी मजदूरीके काम करनेपर मजबूर किया। जबरिया वसूलीके तौरपर जमा किये गये १,८०० रुपयेमें से सिर्फ ७०० या ८०० रुपये ही ठेकेदारको दिये गये।" साथ ही वे कहते हैं कि

> **कस्बेके सभी लोगोंको डाक बँगलेमें इकट्ठा किया गया और रेलवे लाइनकी तरफसे कुछ मशीनगनें और कुछ बड़ी-बड़ी बन्दूकें दागी गईं। लोगोंसे साफ-साफ कहा गया कि उनको सफाईके गवाह नहीं बनना चाहिए बल्कि पुलिस सब-इन्स्पेक्टरकी मर्जीके मुताबिक सरकारकी ओरसे गवाही देनी चाहिए। (बयान ३३६)**

ऊपर जो मशीनगनें चलानेकी चर्चा की गई है, उसके खर्चके लिए लोगोंसे १,००० रुपये वसूल किये गये, और एक छोटी-सी रकम काटे गये तारोंकी मरम्मतके लिए भी। (बयान ३४० ए)

रामनगर

रामनगर अकालगढ़ जितना ही बड़ा कस्बा है। यह चिनाव नदीके तटपर अकालगढ़से पाँच मीलके फासलेपर स्थित है। यहाँ रेलवे लाइन नहीं है। स्वर्गीय महाराजा रणजीतसिंहका बारादरीके नामसे प्रसिद्ध एक महल भी यहाँ था।

यहाँ ६ अप्रैलको पूरी और १५ अप्रैलको आंशिक हड़ताल हुई थी। रामनगरमें किसी चीजको कोई नुकसान पहुँचानेकी खबर नहीं है, पर कहा जाता है कि १५ अप्रैलको सम्राट्का एक पुतला जलाया गया और उसके अवशेष नदीमें बहा दिये गये। हमने बड़ी बारीकीसे इस आरोपकी जाँच की है। हमने इसके लिए कई सौ व्यक्तियोंसे पूछताछ की। और हालाँकि हमने जो सबूत इकट्ठे किये हैं वे इस आरोपको गलत साबित करनेके लिए पर्याप्त और विश्वासोत्पादक हैं, फिर भी हमने तय किया कि जनतासे सार्वजनिक अपील की जाये कि अगर किसीके पास इसका खण्डन

करनेवाली कोई सूचना हो तो वह हमें दे। इसलिए रामनगरके मैदानमें ३० नवम्बर, १९१९को एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई। सभामें उन लोगोंको, जो मानते हों कि सम्राट्का पुतला जलाया गया या जिनको इसके बारेमें कोई जानकारी हो, आमन्त्रित किया गया कि वे चाहे सार्वजनिक रूपसे या व्यक्तिगत तौरपर अपने बयान दें। लेकिन एक भी ऐसा व्यक्ति सामने नहीं आया जो कह सकता कि सम्राट्का वैसा अपमान किया गया था। हमें पूरा भरोसा है कि वह आरोप बिलकुल ही मनगढ़न्त था। हमारे इकट्ठे किये हुए बयानोंसे पता चलता है कि किसी भी पुलिस अधिकारीने २३ अप्रैलतक ऐसे किसी मामलेका कोई जिक्र नहीं किया। कर्नल ओ'ब्रायनका फैसला हमने पूरी तौरपर पढ़ लिया है। उसमें कहा गया है कि इस घटनाके उल्लेखमें विलम्ब होनेका कारण पुलिसका अत्यधिक व्यस्त रहना ही था। यह दलील तो बिलकुल ही समझमें नहीं आती। कमसे-कम पुलिसकी डायरीमें तो वह दर्ज होनी ही चाहिए थी। १७ अप्रैलको पुलिस इन्स्पेक्टर सारे रामनगरमें घूमता रहा, पर उसने भी इस घटनाका कहीं कोई जिक्र नहीं किया है। इस काण्डकी जिम्मेदारी जिस नेताके मत्थे मढ़ी गई है, वह गाँवमें मौजूद होनेपर भी ९ मईतक गिरफ्तार नहीं किया गया।

फिर भी रामनगरकी जनतापर एक झूठा आरोप लगाकर उसे हैरान ही नहीं किया गया, बल्कि अच्छेसे-अच्छे लोगोंपर मनमाने ढंगसे मुकदमे चलाये गये, उनको कड़े दण्ड दिलाये गये। वादी पक्षकी ओर से जो भी शहादतें पेश की गई सभी गढ़ी हुई थीं, और सुनवाईके दौरान न्याय-प्रक्रियाके सभी जानेमाने सामान्य उसूलोंको ताकमें रख दिया गया था।

साठ वर्षीय लाला करमचन्द स्वभावसे ही धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति हैं और एक तरहसे निवृत्त जीवन बिता रहे हैं। उनको भी इस सबका शिकार होना पड़ा। २७ अन्य लोगोंके साथ उनपर भी मुकदमा चलाया गया और उन्हें सजा दे दी गई। वे १८७७ से १९०० तक डाक और रेलवे विभागोंमें सरकारी कर्मचारी थे। १९१० के बाद उन्होंने "सांसारिक बातोंसे एक तरहसे संन्यास ले लिया था।" वर्षके ९ महीने वे हरद्वारमें बिताते हैं। वे इस बातसे इनकार करते हैं कि पुतलेका कोई जुलूस निकाला गया था, या पुतला जलाया गया था।" इतना वे स्वीकार करते हैं कि १५ अप्रैलको कुछ लड़के बाजारसे "हाय, हाय, रौलट बिल" चिल्लाते हुए निकले थे। उनका कहना है कि १७ अप्रैलको एक सब-इन्स्पेक्टर रामनगर गया और उसने दर्ज किया कि वहाँ हड़तालके अलावा कोई वारदात नहीं हुई। २३ अप्रैलको माल-अफसर रामनगर गया और जैलदारसे सलाह-मशविरा करनेके बाद कुछ और लोगोंके साथ लाला करमचन्दको जाँचके बहाने अकालगढ़ भेज दिया। २४ अप्रैलको उनको हथकड़ियाँ पहनाकर गुजराँवाला भेज दिया गया और १६ मईतक उनको जेलमें रखा गया। तबतक उनको बिलकुल पता नहीं था कि उन्हें गिरफ्तार क्यों किया गया। १७ मईको उन्हें रामनगर वापस लाया गया। १९ तारीखको उनसे अपनी सफाईके गवाहोंके नाम देनेके लिए कहा गया और २२ तारीखको उनकी पेशी हुई, जिसके फैसलेके बारेमें हम बतला ही चुके हैं। (बयान ४२२)

लाला सुन्दरदास कहते हैं कि गिरफ्तारियोंके सिलसिलेमें रामनगरके लोगोंका तार भेजना भी अधिकारियोंको बुरा लगता था। ११ जूनको उनको अन्य लोगोंके साथ गुजराँवालामें डिप्टी कमिश्नरके सामने पेश किया गया और कर्नल ओ'ब्रायनने रिहा करनेसे पहले उनको आदेश दिया कि वे "अपनी नाक रगड़कर जमीनपर लकीरें खींचें और अपने कियेपर पछतावा जाहिर करें।" (बयान ४१९)

लाला हंसराज कहते हैं कि रामनगरका लम्बरदार अब्दुल्ला ८ मईको उनके पास आया और कहने लगा कि तुम अगर २०० रुपये नहीं दोगे तो अगले दिन सुबह तुमको गिरफ्तार कर लिया जायेगा। उन्होंने इसपर एतराज किया। वे कहते हैं:

> **मैंने अगले दिन सुबह देखा कि लम्बरदार अब्दुल्लाका भाई जरायमपेशा कौमके एक दूसरे आदमीके साथ मेरे दरवाजेपर लाठियोंसे लैस होकर डटा है। दरवाजा खोलते ही उन्होंने मुझे पकड़ लिया और बाजारकी तरफ घसीट ले गये।**

लाला हंसराजने इतनेपर भी यह रकम देनेसे इनकार कर दिया। तब उनको जबरन पुलिस चौकी ले जाया गया। फिर वे बतलाते हैं कि किस तरह वहाँ उनसे सरकारी गवाह बननेको कहा गया और इनकार करनेपर किस तरह उनके और दूसरोंके खिलाफ सबूत गढ़े गये। लाला हंसराज १५ अप्रैलको वजीराबादमें थे और सवा पाँच बजे शामको ही अकालगढ़ पहुँचे थे। इसलिए उस दिन रामनगरके किसी जुलूस या प्रदर्शनमें पुतला जलानेका जो समय बतलाया जाता है, उस समय उनका वहाँ मौजूद रहना मुमकिन ही नहीं था। (बयान ४१७, पृष्ठ ३५७)

लाला गोविन्द सहाय और दूसरे लोगोंको इसलिए गिरफ्तार किया गया कि उन्होंने अपने मुकदमेके सिलसिलेमें डिप्टी कमिश्नरके पासतक जानेकी जुर्रत की। उनको भी लाला सुन्दरदासकी तरह ही परेशान करके छोड़ दिया गया। (बयान ४२३ और ४२४)।

लाला रामचन्द बतलाते हैं कि सरकारने पहले जो यह किस्सा गढ़ा था कि पुतलेको एक बड़े जुलूसमें निकाला गया और मनों लकड़ियोंसे उसे जलाया गया; पर उसे बादमें यों बदल दिया गया और यह कहना शुरू किया गया कि कपड़ेका एक गुड्डा बनाकर जलाया गया था। (बयान ४२५)

एक अवकाश-प्राप्त स्टेशन मास्टर सैयद हकीम शाह बतलाते हैं कि सरकारने अपना किस्सा कैसे बदला। वे खुद भी उस शामको नदी किनारे गये थे और उनको वहाँ कोई भी जलती चीज दिखाई नहीं पड़ी थी, पर २२ मईको उनसे कहा गया कि वे सरकारी गवाह बनें। उन्होंने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया और इसपर उनके साथ बुरा सलूक किया गया। उन्होंने ३७ सालतक रेलवे विभागमें सेवा की है। (बयान ४३२)

पुतला जलानेके मुकदमेमें भगवानदास मुखबिर था। अब उसने एक लम्बा बयान दिया है; सरकारकी तरफसे दी गई अपनी गवाहीकी सचाईसे इनकार किया है और वे हालात बतलाये हैं जिनकी वजहसे मजबूर होकर उसे वैसी गवाही देनी पड़ी थी। (बयान ४४३)

हमारा खयाल है कि अकालगढ़ और रामनगरको इतनी जिल्लत, इतना अपमान, बेहिसाब परेशानी और स्वतन्त्रता तथा धनकी हानि सिर्फ इसलिए सहनी पड़ी कि कर्नल ओ'ब्रायन जनताको पूरी सख्तीके साथ एक सबक सिखानेपर तुले हुए थे—उन लोगोंको जो जीवनमें पहली बार राष्ट्रीय चेतना महसूस करने और सार्वजनिक मामलोंमें रुचि लेने लगे थे। वहां एक सर्वथा बेईमान और सिद्धान्तहीन किस्मके अधिकारीकी मौजूदगीके कारण इस अत्याचारने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। वह अधिकारी था—मलिक साहब खां, जिसका नाम इन गांवोंके बारेमें हमारे इकट्ठे किये हुए बयानोंमें बार-बार आता है।

हाफिजाबाद

हाफिजाबाद अकालगढ़से १५ मील दूर, वजीराबाद–लायलपुर रेलवे लाइनपर स्थित है। यह एक काफी बड़ी मण्डी है। इसकी आबादी ५,००० से ऊपर है।

लाहौर और अमृतसरमें १० तारीखको अधिकारियों द्वारा की गई ज्यादतियोंके विरोधस्वरूप हड़तालकी भावना मानो रेलवेकी पटरी-पटरी आगे बढ़ रही थी, और हाफिजाबाद भी पहुँच चुकी थी। यहां १४ अप्रैलको मुकम्मल हड़ताल हुई। लोगोंकी भीड़ स्टेशनकी तरफ गई। उसमें शराब पिये हुए निठल्ले लोग ही ज्यादा थे। इस भीड़ने स्टेशनसे करीब ३०० गजकी दूरीपर एक रेलवे फाटकके पास ट्रेन रोक दी और पहले दर्जेमें अपने छोटे बच्चेके साथ सफर करते हुए लेफ्टिनेंट टैंटमपर वहशियाना हमला कर दिया। लोगोंने डिब्बेकी खिड़कियोंके कांच तोड़ डाले। इस बीच उसी भीड़के दूसरे लोगोंने इस बर्बरताका विरोध किया और अपनी जानकी जोखिम उठाकर भी लेफ्टिनेंट टैंटमको बचा लिया। लेफ्टिनेंट टैंटमके कहनेपर ट्रेनका ड्राइवर गाड़ीको वहांसे तेजीसे चलाकर ले गया और वह सही-सलामत वजीराबाद पहुँच गई। १५ तारीखको तोप नामक एक शराबी करीब सौ लोगोंका एक जत्था लेकर स्टेशन गया। उन लोगोंने तार तोड़ डाले और रेलवेके प्वाइंट्स मैनकी झोंपड़ीको नुकसान पहुँचाया। तोपको हिरासतमें ले लिया गया। भीड़ उसके पीछे-पीछे तहसीलतक गई और वहां पत्थर फेंककर उसने खिड़कियां तोड़ डालीं। इसपर बन्दूकसे हवामें एक गोली दागी गई, और भीड़ तितर-बितर हो गई।

कर्नल ओ'ब्रायन २२ अप्रैलको हाफिजाबाद गये। उसके बाद वही सब-कुछ हुआ जो हम अकालगढ़ और अन्य स्थानोंके बारेमें पहले बतला आये हैं। उसका परिणाम यह हुआ कि सारी जनताके दिलमें आतंक बैठ गया।[1]

बिहारीलाल कपूरको उनके नौकरके साथ, ट्रेनपर हुए हमलेके सिलसिलेमें, उनके अपने बयानमें बतलाये गये कारणोंसे गिरफ्तार किया गया। वे कहते हैं कि उनके खिलाफ गवाहोंके तौरपर दो लड़कों और एक सरकारी कर्मचारीको पेश किया गया

१. समाचार था कि गुजरांवालाकी पुलिस १२१ लोगोंकी गिरफ्तारीके वारंट लेकर हाफिजाबाद गई। वारंटमें न तो गिरफ्तार किये जानेवाले लोगोंके नाम थे और न उनका हुलिया या दूसरा कोई विवरण ही; पर पुलिसने उसी वारंटपर हाफिजाबादके १२१ निवासियोंको गिरफ्तार कर लिया।

था। लेकिन उनको एक महीने नौ दिनतक हिरासतमें रखनेके बाद रिहा कर दिया गया। (बयान ३९६)

हरनामसिंहको अपने लड़केको बचानेके लिए तंग आकर लगभग दो सौ रुपये देने पड़े। लेकिन उससे भी काम बना नहीं। लड़केको गिरफ्तार करके उसपर मुकदमा चलाया गया और जेल भेज दिया गया। (बयान ३९७)

हुकमदेवी कहती हैं कि वे पुलिसको रिश्वत देनेके लिए रुपये नहीं जुटा पाईं, इसीलिए उनके लड़केको जेल जाना पड़ा। (बयान ३९८)।

एक वकीलके मुंशी रुल्दूरामने बयान किया है कि कैसे आपसी झगड़ोंका लाभ उठाकर उन वकीलोंको भी नुकसान पहुँचाया गया जिन्होंने लड़ाईके दौरान काफी अच्छा काम किया था। वे यह भी बतलाते हैं कि पुलिसने सबूत कैसे गढ़े। (बयान ४०१)

एक उप-सम्पादक, सरदार दीवानसिंह कहते हैं:

> **सबसे पहले तो ६ आदमियोंको गिरफ्तार करके हथकड़ियाँ पहना दी गईं। ये सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनके खिलाफ लगाये गये आरोप उनको नहीं बतलाये गये और न कोई दूसरी सूचना ही उनको दी गई। डेढ़ महीना बीत जानेपर, उनके खिलाफ अभियोग-पत्र तैयार किया गया। झूठे गवाह बनानेके लिए लोगोंको यन्त्रणाएँ दी गईं और भरे बाजारमें उनको भद्दी-भद्दी गालियाँ दी गईं। उनके साथ बड़ी सख्तीका सलूक किया गया और पुलिसने इन सम्माननीय व्यक्तिओंके साथ हर तरहकी सख्ती और बेइज्जतीका सलूक किया। . . . झूठी गवाहियोंके बारेमें वाइसराय महोदय और पंजाबके लेफ्टिनेंट-गवर्नरको तार भी भेजे गये। लेकिन उनपर न तो कोई ध्यान दिया गया और न उनकी कोई जांच ही कराई गई। . . . कर्नलको जब मालूम हुआ कि ऐसे तार भेजे जा रहे हैं तो तारोंको सेंसर किया गया और डाकखानेमें तार लेनेसे इनकार कर दिया गया। सैनिक कानूनके अधीन स्थापित समरी अदालतोंने हाफिजाबादके सभी मुकदमोंको एक ही दिनमें निबटा दिया। . . . हाफिजाबादके मुकदमोंके अभियुक्तोंमें बड़े-बड़े जमींदार, रईस, महाजन, वकील और अन्य सम्माननीय व्यक्ति शामिल थे। उन सबको सड़कोंपर घुमाया गया और जान-बूझकर अपमानित किया गया। (बयान ३८८, पृष्ठ ५१७)**

लाला रूपचन्द चोपड़ाने कर्नल ओ'ब्रायन द्वारा [झूठे गवाहोंकी] भरती और मार्शल लॉके तहत चलनेवाले मुकदमोंके सिलसिलेमें अपनाये गये सख्त तरीकोंका एक बड़ा ब्योरेवार विवरण अपने बयानमें दिया है। ३० अप्रैलतक ज्यादा लोग गिरफ्तार नहीं किये गये थे। कहा जाता है कि इससे कर्नलको सन्तोष नहीं था, और इसलिए उन्होंने कई पुराने अफसरोंको निकालकर उनकी जगह अपनी पसन्दके अफसर बैठा दिये। ३० अप्रैलकी शामको डुग्गी पिटवा दी गई कि पगड़ी बाँधनेवाले हर आदमीको दूसरे दिन सुबह तहसीलके सामने हाजिरी देनी होगी और इस हुक्मकी उदूली करनेवाले को गोलीसे उड़ा दिया जायेगा। वे कहते हैं कि इन नये अफसरोंने लोगोंको अनेक बार दिन-दिनभर खुलेमें बैठाये रखा। (बयान ३९०)

स्कूली बच्चोंके लिए भी वैसे ही हुक्म जारी किये गये जैसे कि अन्य स्थानोंपर जारी किये गये थे। कुछ ब्रिटिश सैनिक दुकानोंसे तरह-तरहकी चीजें उठा लेते थे और उनके बदले एक कौड़ी भी अदा नहीं करते थे। यह गवाह २० अक्तूबरको श्री एन्ड्र्यूजके साथ पुलिस इन्स्पेक्टरके घर गया और दाण्डिक पुलिस द्वारा जबरदस्ती रकम ऐंठनेके एक मामलेकी ओर उसका ध्यान आकर्षित किया, जिसके फलस्वरूप दो सिपाहियोंको बरखास्त और एक हवलदारको तनज्जुल कर दिया गया। श्री चोपड़ा अपने बयानके अन्तमें कहते हैं कि वे ऑक्सफोर्डमें पढ़े हैं, १३ वर्षतक इंग्लैंडमें रह चुके हैं, वहाँ लन्दनमें बनाये गये भारतीय आहत सहायक दल (इण्डियन एम्बुलेंस कोर) में भी वे शामिल थे, और उन्होंने कभी भी राजनीतिमें भाग नहीं लिया, लेकिन वे जनताके साथ हुई ज्यादतियोंसे उसे राहत दिलानेके लिए ही अपना बयान दे रहे हैं। (बयान ३९०)

लाला बलीराम कपूरको गिरफ्तार करके २३ और लोगोंके साथ हवालातकी १२ फुट चौड़ी और १५ फुट लम्बी एक कोठरीमें बन्द कर दिया गया था। टट्टी-पेशाब भी सभीको उसी कोठरीमें करना पड़ता था। ६ जूनतक उनको हवालातियोंकी तरह रखा गया था। (बयान ४०५, पृष्ठ ५४०)

फॉरेस्ट डिपार्टमेंटके एक अवकाश-प्राप्त हेडक्लर्क सरदार मेवासिंहने झूठे गवाह भरती करनेके क्रूरतापूर्ण उपायोंका विवरण इन शब्दोंमें दिया है:

> मुझे २१ अप्रैलको बिना वारंट गिरफ्तार किया गया। २२ अप्रैलको वारंट कटवाकर उसपर जिला मजिस्ट्रेटके दस्तखत करा लिये गये। दो दिनतक मुझे हाफिजाबादकी हवालातमें रखा गया, जो बहुत ज्यादा गन्दी थी। उसमें चार आदमी भी मुश्किलसे अँट सकते थे, पर २३ आदमी ठूँस दिये गये थे। हमको तरह-तरहसे परेशान किया गया, टट्टी-पेशाबकी हाजत होनेपर उसकी भी इजाजत नहीं दी जाती थी। इस कामके लिए एक बारमें दोको हथकड़ी पहनाकर बाहर ले जाते थे। कभी-कभी तो हमें हवालातमें ही पाखाना करना पड़ता था। २३ अप्रैल, १९१९को हमें गुजरांवाला डिस्ट्रिक्ट जेल भेज दिया गया। तेईसके-तेईस व्यक्तियोंको एक ही जंजीरसे बाँध दिया गया था, और हरएकको हथकड़ी पहना दी गई थी। हमें बड़ी सख्त निगरानीके साथ सशस्त्र सैनिक पुलिसके पहरेमें ले जाया गया। रास्तेमें हमको टट्टी-पेशाब करने और पानी पीनेतक की इजाजत नहीं दी गई। हमारे साथ निचली श्रेणीके कर्मचारियोंका बरताव असह्य था। २३ मई, १९१९को हमें शिनाख्तके लिए फिर हाफिजाबाद लाया गया। हाफिजा-बादके रास्तेमें पुलिसने हमारे साथ जो बदसलूकी की, उसका बयान नहीं किया जा सकता। गुजरांवाला जेलके सुपरिटेंडेंटने सात या आठ व्यक्तियोंको अपना बना खाना खानेकी इजाजत दे दी। जब हमें हथकड़ियाँ पहनाकर गुजरांवाला जेलसे बाहर लाया जा रहा था, तब जेलरने पुलिस सब-इन्स्पेक्टरसे कहा कि हमारा खाना तैयार है और हम लोगोंको खानेकी इजाजत दे दी जाये, लेकिन

उस सब-इन्स्पेक्टरने इजाजत नहीं दी। इस तरह हमें पूरे दिन निराहार रहना पड़ा। हमें २९ मईको लाहौर लाया गया। हमारे कागजात सरकारी वकीलको दिखलाये गये। उसने हमारे अपराधको बड़ा नहीं माना और हमारा मामला वापस भेज दिया। ४ जूनकी शामको श्री वेस हमारे पास सफाईके गवाहोंकी सूची तैयार करने आये। हमने उनसे बार-बार पूछा पर हमें यह नहीं बतलाया गया कि हमारे ऊपर क्या-क्या आरोप लगाये गये थे और न हमें यही बतलाया गया कि सरकारी गवाह कौन-कौन हैं। ७ जूनको पेशी रखी गई। इससे हमें अपनी सफाईकी तैयारीके लिए बहुत ही थोड़ा समय मिल पाया। हम न तो अपने रिश्तेदारोंको सूचित कर पाये और न वकील ही खड़े कर पाये। मेरे सफाईके गवाहोंमें से एक सहायक-सर्जन, डा० उमरेकसिंह शिमलामें थे। उनको बुलाया ही नहीं गया। डा० दौलतरामने जिरहके दौरान स्वीकार किया कि मेरे साथ उनके सम्बन्ध बिगड़े हुए हैं। दूसरे सरकारी गवाह पुलिसके डरसे गवाही दे रहे थे। मेरे सफाईके सभी गवाह सम्माननीय सज्जन हैं। उन्होंने बयान दिया कि मैं आँखकी तकलीफकी वजहसे बिस्तरेपर पड़ा था, इसलिए मैं अपने घरसे बाहर निकल ही नहीं सकता था। मेरी अवस्था ६० से ऊपर है। मैंने कभी किसी राजनीतिक सभामें भाग नहीं लिया है। श्री वेसने डिप्टी कमिश्नर कर्नल ओ'ब्रायनसे मशविरा करनेके बाद मुझपर पांच सौ रुपये जुर्माना कर दिया। माफीकी मेरी दरखास्त अभी भी अनिर्णीत पड़ी है। यह सब पुलिसकी शरारतोंका नतीजा है। उसने चन्द बदमाशोंको अपनी तरफ कर लिया था। इस प्रकार सभी घटनाएँ एक ही दिन, एक ही स्थानपर हुईं। उपद्रव दो दिन — १४ और १५को — होते रहे। पहले दिन पुलिसने उपद्रवोंकी रोक-थामके लिए कोई कार्रवाई नहीं की, बल्कि उनको बढ़ावा दिया। दूसरे दिन कुछ-एक बार हवामें ही बन्दूकें दागी गईं और उपद्रव शान्त हो गया। बाहरसे पुलिस या सेनाकी किसी तरहकी मदद-की भी जरूरत नहीं पड़ी। अगर पुलिस पहले दिन ही अपना फर्ज पूरा कर देती तो ऐसी घटनाओंकी नौबत ही न आती। हाफिजाबादकी इमारतोंको जो नुकसान पहुँचा, वह बहुत थोड़ेसे पैसोंमें ठीक कराया जा सकता था। लेकिन उसके हर्जानेके तौरपर नागरिकोंसे ६,००० रुपये वसूले गये। जनताको ही दाण्डिक पुलिसका खर्च भी भरना पड़ा, और इससे सम्राट्की गरीब प्रजाको बड़ी परेशानी हुई। (बयान ३८९)

ऐंग्लो संस्कृत स्कूलके हेड मास्टर लाला रामसहायको भी गिरफ्तार किया गया था। उनकी अनुपस्थितिमें उनके मकानकी तलाशी ली गई। तलाशी रातके ११ बजे-तक होती रही। उनको गुजरांवाला जेल ले जाया गया और एक पखवारे बाद हाफिजा-बाद लाया गया। वे कहते हैं:

यहाँ मुझपर दबाव डाला गया कि मैं सरकारी गवाह बन जाऊँ। पुलिस इन्स्पेक्टरने कोई शारीरिक यन्त्रणा तो नहीं दी, पर हर प्रकारका नैतिक दबाव

मुझपर डाला। पहले उसने मेरी प्रशंसा की कि मैं एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति हूँ और फिर मुझे डराया कि मुझे फाँसी भी दी जा सकती है और मेरी सारी जायदाद जब्त की जा सकती है या हो सकता है, मुझे आजीवन कारावास दे दिया जाये। पहले तो मैंने उससे कहा कि मैं गद्दारी नहीं करना चाहता। तब उसने मुझे दलीलें देकर समझाया कि सच बोलना गद्दारी करना तो नहीं है। इसपर मैंने अपने पिता और स्कूलके धर्म-शिक्षकसे परामर्श किया और तय किया कि मैं सच ही बोलूंगा, सचके अलावा और कुछ नहीं। जब मैंने इन्स्पेक्टरसे यह बात कही तो वह बोला कि वह सचाई ही चाहता है और कुछ नहीं। लेकिन जब मैंने बयान दिया तो उसने सुझाया कि मुझे यह नहीं कहना चाहिए कि मैं ६ अप्रैलकी शान्तिपूर्ण सभामें बोलनेके लिए तैयार था। उसने यह भी सुझाया कि यदि मुझसे पूछा जाये कि नेताओंने हिंसात्मक कार्रवाईमें भाग लिया या नहीं, तो मुझे कहना चाहिए कि मैं उस मौकेपर मौजूद नहीं था, इसलिए मैं कैसे बतला सकता हूँ। मुझे उस समय पूरा विश्वास था और आज भी मैं यही समझता हूँ कि अभियुक्तोंमें गुरदयालसिंह और लाला रामसहाय-जैसे जो नेता थे उन्होंने कोई हिंसापूर्ण कार्य नहीं किया था। पर मेरे चारों ओर जो एक वातावरण बना दिया गया था, उसके प्रभावमें आकर मैंने अपने बयानमें यह बात नहीं कही। मेरा बयान खत्म होनेके बाद मुझसे कहा गया कि मेरे खिलाफ कोई सबूत नहीं है, इसलिए मुझे रिहा कर दिया जायेगा और सरकारी गवाहके रूपमें पेश किया जायेगा। मैं सच बात बतलानेके लिए तो तैयार ही था और मैंने सच बात ही बतलाई भी; हाँ मैंने यह बात नहीं कही कि अभियुक्तोंने कोई हिंसापूर्ण कार्य नहीं किया। अदालतमें मुझसे हिंसापूर्ण कार्रवाईके बारेमें कोई प्रश्न ही नहीं पूछा गया।

हमें २१ मई, १९१९ को फिर हाफिजाबाद लाया गया। कुछ वेश्याएँ और निचले दर्जेके कुछ लोग हमारी शिनाख्त करने आये। इस बार हम लोगोंकी संख्या बहुत ज्यादा थी और चूँकि जेलोंमें पर्याप्त स्थान नहीं था, इसलिए हमको दफ्तरके एक बड़े कमरेमें रखा गया। हमें रात-दिन हथकड़ियाँ पहनाये रखा गया, और एक-दूसरेके सामने बैठकर नंगे टट्टी-पेशाब करना पड़ा। दो-के बीच एक हथकड़ी थी, और उसी हालतमें हमें टट्टी-पेशाब करना पड़ा। हमें रातमें हथकड़ियाँ पहने-पहने ही खुलेमें सोना पड़ा।

२३ अप्रैल, १९१९ को मुझे कर्नल ओ'ब्रायनके सामने पेश किया गया। उन्होंने मुझसे १,००० रुपयेकी जमानत माँगी। जमानत देनेपर मुझे रिहा कर दिया गया। डिप्टी-कमिश्नरने मुझे ४ दिन बाद फिर बुला भेजा और उनके बँगलेके बाहर मुझे बतलाया गया कि अब मेरे ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा है। इसके बाद कर्नल ओ'ब्रायन बाहर निकले और बोले, "तौबा करो।" मैंने

अपने शब्दों और चेष्टाओंसे पश्चात्तापकी भावना प्रकट की, हालाँकि मैं जानता था कि मैं पूर्णतः निर्दोष हूँ। इसके बाद उन्होंने कहा कि मुझे अपना "कलंक धोना" चाहिए, जिसका मतलब था कि मुझे सरकारी गवाह बन जाना चाहिए। मैं ऊपर बतला चुका हूँ कि बादमें मैं अपने वचनानुसार सरकारी गवाह बन गया। डिप्टी पुलिस सुपरिंटेंडेंटने बादमें मुझे बतलाया कि अगर मैं सरकारी गवाह बननेसे इनकार कर देता तो मुझे फिरसे गिरफ्तार कर लिया जाता। मार्शल लॉं उस समयतक लागू था।

मैं इस तथ्यपर फिर जोर देना चाहता हूँ कि मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि नेताओंने न तो स्टेशनपर और न तहसीलमें ही किसी भी हिंसापूर्ण कार्यमें भाग लिया था। (बयान ४१३)

हमने यह दिखलानेके लिए ही इस बयानसे इतना लम्बा उद्धरण दिया है कि एक सुसंस्कृत व्यक्तिको झूठा गवाह बनानेके लिए उसपर किस तरह छल-छद्मपूर्ण दबाव डाले जाते थे और किस तरह खुद कर्नल ओ'ब्रायन भी इस प्रकार धमकी देकर फुसलाने-बरगलानेके इस काममें शरीक थे। नजरबन्दीके अधिकांश मामले यों भी अन्यायपूर्ण ही हुआ करते थे; किन्तु नजरबन्दीमें सुसंस्कृत और अच्छे परिवारोंमें पले हुए लोगोंके साथ भी इस गवाह द्वारा वर्णित ढंगके अपमानजनक और अशोभनीय व्यवहार किये जाते थे, उनसे पता चलता है कि आन्दोलनका दमन करनेकी अपनी कोशिशमें अधिकारी लोग नैतिक पतनमें कितने गहरे उतर चुके थे।

साँगला हिल

साँगला हिल एक अपेक्षाकृत आधुनिक स्थान है। यह लाहौर-लायलपुर रेलवे लाइनपर, लाहौरसे ६२ मीलकी दूरीपर स्थित एक रेलवे स्टेशन है। इसकी आबादी लगभग ४,००० है। यहाँ १२ अप्रैलको गांधीजीकी गिरफ्तारीके सिलसिलेमें एक हड़ताल हुई थी। श्री बॉसवर्थ स्मिथके[1] कथनानुसार

हड़तालके सिलसिलेमें हुई सभाका प्रभाव तत्काल स्पष्ट नहीं हुआ। १३ तारीखको पड़नेवाला बैसाखीका मेला काफी शान्तिपूर्वक समाप्त हो गया।... १५ तारीखको साँगला और सालनवालाके बीच तार काट दिये गये।... १६ तारीखको एक सिखने कुछ और सिखोंको लेकर, नगरके एक बड़े जन-समूहकी सहायतासे, साँगला स्टेशनपर सेनाके एक कैदीको जबरदस्ती छुड़ा लिया। कैदी भारतीय था। उसी दिन (१५ तारीखकी) शामको कुछ व्यक्तियोंने श्री वेल्स नामक एक टेलिग्राफ इन्स्पेक्टरपर कातिलाना हमला किया।

इस वर्णनमें बहुत अतिरंजना है। हमारे सामने जो सबूत आये हैं उनसे स्पष्ट पता चलता है कि सेनाके उस कैदीको जबरदस्ती छुड़ानेवाला सिख पागल हो गया

१. गुजराँवालाके ज्वाइंट डिप्टी कमिश्नर; मार्शल लॉ अधिकारियोंमें से एक।

था और उसके साथ कोई भीड़ नहीं थी। वह तो एक व्यक्तिगत मामला था। १५ तारीखको या किसी और दिन भी श्री वेल्सपर कोई भी कातिलाना हमला नहीं हुआ था, और न वे गम्भीर रूपसे जख्मी ही हुए थे। हमारे पास मौजूद साक्ष्यसे बिलकुल ही स्पष्ट है कि सांगलाके नागरिकोंने किसी भी व्यक्तिपर हमला करने या जायदादको नुकसान पहुँचानेमें कोई भाग नहीं लिया था। फिर भी १९ अप्रैलको मार्शल लॉकी घोषणा कर दी गई। डिप्टी-कमिश्नर साँगला गये, पर उन्होंने उस समय फिरसे हड़ताल न करनेकी चेतावनी देनेके अलावा और कुछ नहीं किया। लेकिन २२ तारीखको एक अफसरने ब्रिटिश सैनिकोंके साथ आकर ११ नेताओंको गिरफ्तार कर लिया, और चन्द घंटों बाद उनको छोड़ दिया। पर २६ अप्रैलको फिर गिरफ्तारियाँ शुरू कर दी गईं। गिरफ्तार किये हुए लोग २९ तारीखको रिहा कर दिये गये। लेकिन १२ मईको एक सैनिक प्रदर्शन हुआ और पहाड़ीकी तरफसे गोलियाँ चलाई गईं। साफ है कि लोगोंको भयभीत करनेके लिए ही ऐसा किया गया था। गश्ती टुकड़ीके कप्तान यूइंगने लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने कहा कि उन्होंने "विशाल जन-समूहके सामने एक मशीनगन और लुइस गन दागकर प्रदर्शन" किया। उसी दिन १३ नेताओंको फिर गिरफ्तार कर लिया गया और उनको हथकड़ियाँ पहनाकर बड़ी अपमानजनक दशामें पैदल चलाया गया। १३ मईको ६४ और गिरफ्तारियाँ की गईं। उनको बड़े ही अपमानजनक तरीकेसे उनकी ही पगड़ियोंसे बाँधकर पुलिस चौकीतक पैदल ले जाया गया। कुछ दिनोंतक रोज ही नागरिकोंकी हाजिरी ली जाती रही। १४ तारीखको ४७ व्यक्ति और गिरफ्तार किये गये। श्री बॉसवर्थ स्मिथने १८ तारीखको गिरफ्तार किये गये लोगोंसे कहा कि यदि वे ५०,००० रुपये जुर्मानेमें दें तो सभीको छोड़ दिया जायेगा। श्री बॉसवर्थ स्मिथ स्वीकार करते हैं कि वे साँगलाकी जनतापर ५०,००० रुपये जुर्माना करना चाहते थे, पर इस बातसे इनकार करते हैं कि जुर्मानेकी शर्तपर वे उनको छोड़ देनेके लिए तयार थे। जो भी हो, इतना तो सही है ही कि १९ मईको कुल १२४में से ११६ व्यक्ति छोड़ दिये गये, जिसके बारेमें आम लोगोंका कहना है कि गिरफ्तार लोगोंसे भिन्न कुछ लोग ५०,००० रुपयेका जुर्माना भरनेके लिए तैयार हो गये थे। जिन आठ व्यक्तियोंको मुक्त नहीं किया गया उनपर १ जूनको मुकदमा चलाया गया और प्रत्येकको छः-छः मास कारावास और सौ-सौ रुपये जुर्मानेकी सजा दे दी गई। फैसला जिस सबतपर आधारित था वह सजाके लिए सर्वथा अपर्याप्त था।

छोटी-छोटी बातोंपर लोगोंको कोड़े लगाये गये, और कहनेकी जरूरत नहीं कि कोड़े लगानेसे पहले आम तौरपर उनकी डाक्टरी जाँच भी नहीं कराई जाती थी। दूकानदारोंसे खाने-पीनेकी वस्तुएँ बिना दाम दिये ले ली जाती थीं। सम्माननीय व्यक्तियोंको भी अफसरोंके पंखे खींचने और जब-तब धूपमें खड़े रहनेको मजबूर किया गया। स्कूली लड़कोंको भी, जिनमें छोटे बच्चेतक शामिल थे, रोज-रोज हाजिरी देने और चिलचिलाती धूपमें खड़े होकर यह कहनेपर मजबूर किया कि: "जनाब हमने कोई गलत काम नहीं किया और न आगे करेंगे।" इसमें इतनी सख्ती बरती जाती थी कि श्री बालमुकुन्द अपने सात सालके भतीजेको भी इससे छुट्टी नहीं दिला पाये। उन्होंने

"लड़केको हाजिरी देनेसे छुटकारा दिलवानेका अपनी शक्ति-भर प्रयत्न किया, पर कोई नतीजा नहीं निकला।" इसलिए लड़केको तीन दिनतक लगातार हाजिरी देने जाना पड़ा। पाँचवे दिन हाजिरीसे लौटनेपर वह पसीनेसे तरवतर हो रहा था।" वह गिर पड़ा और उलटियाँ करने लगा। साँगलाके डाक्टर ज्ञानचन्दको बुलाया गया, पर कोई फायदा नहीं हुआ। तब वहाँ मौजूद सेनाके एक आई० एम० एस० डाक्टरको बुलाया गया, लेकिन वह भी कुछ कर नहीं पाया। ७ मईको लड़केकी मृत्यु हो गई।" हर रोज दिनमें चार बार हाजिरी देने जाना अनिवार्य था। (बयान ३५८)

बसंतराम अन्य २५ व्यक्तियोंके साथ १९ मईको गिरफ्तार किये गये। उन्हें और अन्य व्यक्तियोंको उनके कोई बयान लिये बिना ही २२ मईको छोड़ दिया गया। वे कहते हैं:

> **पुलिस गिरफ्तारीके दौरान हमें बिना कुछ पैसा दिये टट्टी-पेशाबतक की इजाजत नहीं देती थी। इसके लिए हम उनको रोज दो रुपये देते थे।**

उनको २३ मईको फिर बुलाया गया और थानेदारने उनसे कहा कि अगर वे अब भी गवाही देनेसे इनकार करेंगे तो उनको तत्काल वहीं सबक सिखा दिया जायेगा। वे आगे कहते हैं:

> **उसने मुझे सरे-बाजार बुरी तरह पीटना शुरू कर दिया, और बाजारसे पुलिस चौकीतक घसीटता हुआ ले गया। (बयान ३६६ और ३६८)**

सैनिकोंने सोहनमलकी दुकानसे बिना कोई दाम चुकाये कई मन बर्फ उठा ली। (बयान ३६९)

एक विद्यार्थी हरिश्चन्द्रको, उसके सलाम करनेके बावजूद, सैनिकोंने रोक लिया। उसकी कुछ सुने बिना वहीं उसके पैरों, हाथों और पीठपर ५-६ बेंत जड़ दिये गये। गवाह कहता है:

> **कमांडिंग ऑफिसरने गुस्सेमें आकर चमड़ेका हंटर मेरे ऊपर फेंका, जो मेरे पैरोंमें लिपट गया और उसे वापस खींचनेके बाद वह अफसर और सैनिक लोग अपने रास्ते चले गये। (बयान ५७०)**

सरदारसिंहपर झूठी गवाही देनेके लिए जोर डाला गया। उन्होंने इनकार कर दिया। इसलिए उन्हें गिरफ्तार करके ४ दिनतक हवालातमें रखा गया। वे कहते हैं:

> **नगरपालिकाके सदस्योंने भी हवालातमें आकर हमसे कहा कि अगर हम छूटना चाहें तो हमें गवाही दे देनी चाहिए।**

गवाह अन्य ९७ व्यक्तियोंके साथ हवालातमें था। (बयान ३७१)

लछमनदासके पास एक सरायका ठेका था। मार्शल लॉके दिनोंमें सेनाने अपना प्रधान कार्यालय उसीमें बना लिया था और उन लोगोंने किसी भी मुसाफिरको उसमें ठहरने नहीं दिया। लछमनदासने खुद उसका ७५ रुपये प्रतिमास किराया चुकाया और

नौकरोंको ३० रुपये दिये। उन्हें हर महीने डेढ़ सौ रुपयेका नुकसान हुआ। अफसर लोग वहाँ दो महीनेतक रहे। उन्हें दिन-रात अपनी दुकानपर मौजूद रहना पड़ता था, क्योंकि राशनका सामान उन्हींसे लिया जाता था। एक रात अफसरोंका एक नौकर एकस्ट्रा असिस्टेंट-कमिश्नर और पुलिस इन्स्पेक्टरके लिए दूध लेने आया। इसलिए उन्हें वत्ती जलानी पड़ी। कमांडिंग अफसरने इसे कर्फ्यूके आदेशको भंग करना माना और फलतः उन्हें और उनके साथियोंको गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने अपनी वात समझानेकी कोशिश की कि अफसरोंको दूध तो उन्हें देना ही था, अगर मना कर देते तो अपराधी माने जाते और वत्ती जलाये विना शायद दूध दिया नहीं जा सकता था। अफसरोंने उनकी वातपर कान नहीं दिया। इस वीच उनके सवसे बड़े भाई पासके मकानसे आ गये थे और उन्होंने पूछना शुरू किया कि मामला क्या है? उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। दोनोंको दो दिनतक हिरासतमें रखा गया और उसके वाद मुचलकोंपर छोड़ दिया गया। पाँच दिन वाद उनको चौकीपर वुलाया गया और हरएकको ५० रुपये जुर्माना तथा ५ कोड़ोंकी सजा सुना दी गई।

लछमनदासको डाक्टरने कोड़े खानेके लिए शारीरिक रूपसे अयोग्य घोषित कर दिया, इसलिए उनका जुर्माना दुगना कर दिया गया। (वयान ३७२)

शामदासको हिरासतके दौरान धूपमें खड़े रहना पड़ा, लेकिन उनको पानी पीने तक की इजाजत नहीं दी गई। इसलिए वे वीमार पड़ गये पर उनकी चिकित्सा नहीं कराई गई। उन्हें ९ दिन वाद छोड़ दिया गया। वे कहते हैं: "आजतक पता नहीं चल सका है कि आखिर मुझे गिरफ्तार क्यों किया गया था।" (वयान ३७३)

अधिकारी लोग निहालचन्दके भतीजेकी तलाशमें थे। वह उन दिनों साँगलामें नहीं था। इसपर उसके चाचाको गिरफ्तार कर लिया गया। उनको भी अन्य कई लोगोंकी तरह धूपमें खड़ा रखा गया। वे कहते हैं:

> वृद्धावस्था और कड़ी धूपके कारण मैं तीन वार वेहोश होकर गिर पड़ा। मुझे ४ दिन या ५ दिन वाद विना कोई कारण वताये छोड़ दिया गया। (वयान ३७४)

जान मुहम्मद पतोली कहते हैं कि उनको रोज-रोज वुलाकर वाहर वैठा दिया जाता था जहाँ न वे खाना खा सकते थे और न पानी पी सकते थे। गवाह नं० ३७४ की तरह वे भी धूपके कारण वीमार पड़ गये। उन्हें १० दिन वाद रिहा कर दिया गया। उनका यह भी कहना है कि जव उन्होंने अपनी दुकान खोली तो पुलिसवालोंने वहुत-सी चीजें ले लीं। उनका विल भी उन्होंने भेजा, पर उसकी अदायगी कभी नहीं की गई। (वयान ३७५)

साँगला हिलके दो अत्यन्त सम्माननीय और जाने-माने व्यक्तियोंके साथ सोहनलालने एक संयुक्त वयान दिया है। उनका कहना है कि सव-डिवीजनल अफसर राय श्रीराम १८ तारीखको साँगला हिल गये। वे लोगोंसे मिले और कोई भी गिरफ्तारी किये विना लौट गये। १९ तारीखको कर्नल ओ'ब्रायन साँगला हिल गये। उन्होंने भी लोगोंसे मुलाकात की और कहा कि उन्होंने हड़तालके लिए लोगोंको माफ कर

दिया। गिरफ्तारियाँ आखिर २२ अप्रैलको शुरू हुईं। (बयान ३६७, पृष्ठ ५०३)। यदि सॉंगला हिलके उपद्रवोंके बारेमें श्री बॉसवर्थ स्मिथका कथन सही होता तो ये दो जिम्मेदार अधिकारी कोई गिरफ्तारी किये बिना वहाँसे चले न जाते। इससे तो यही लगता है कि जहाँतक साँगला हिलका सम्बन्ध है, वहाँ परिस्थितिको बदलनेवाले श्री बॉसवर्थ स्मिथ ही थे, गिरफ्तारियाँ भी उन्हींके कहनेपर हुईं और फिर उन्होंने इने-गिने व्यक्तियोंके व्यक्तिगत अपराधोंको बढ़ा-चढ़ाकर सामूहिक उपद्रवोंका रूप दे दिया। इतना सही है कि साँगलाके निकट तार काटे गये थे। साँगलासे थोड़ी ही दूरीपर स्थित मोमन स्टेशनमें आग लगाई गई और उसे लूटा गया, लेकिन जबतक यह निश्चित न हो जाये कि तार काटने और आग लगानेमें साँगलाके लोगोंका भी हाथ था तबतक उनको जिम्मेदार तो नहीं ठहराया जा सकता।

उपर्युक्त तीन गवाहोंने गिरफ्तार किये गये लोगोंके नाम और उनके बारेमें अन्य विवरण भी दिये हैं। हम साँगलामें मार्शल लॉ प्रशासनका वर्णन करते हुए इन गिरफ्तारियोंका जिक्र पहले ही कर चुके हैं। लेकिन बयानका वह अंश यहाँ फिरसे दे दिये जाने लायक है जिसमें उन्होंने बतलाया है कि झूठा सबूत कैसे गढ़ा जाता था। गवाहोंका कहना है:

> **पुलिस हिंसापूर्ण धमकियों द्वारा, मार-पीटके बलपर और लोगोंको धूपमें खड़ा करके ११ मईको २९ व्यक्तियोंको सरकारी गवाह बननेपर मजबूर करनेमें कामयाब हो गई। इन गवाहोंमें दस वर्षकी उम्रके लड़के और १४ रेलवे कर्मचारी भी शामिल थे। इनमें एक प्रेमसिंह बजाज भी था, जो अपहरणके मामलेमें पहले साढ़े तीन वर्षकी सजा काट चुका था। (बयान ३७६, पृष्ठ ५०४)**

डा० करमसिंह नन्दा बतलाते हैं कि कैसे उनको अन्य कुछ लोगोंके साथ रोज ही शिनाख्तके सिलसिलेमें हाजिर होना पड़ता था और वहाँ भोजन-पानीके बिना कड़ी धूपमें खड़ा रखा जाता था। वे कहते हैं कि कई लोगोंको चक्कर आ जाता था, और रोज-रोज तपती धूपमें खड़े रहनेसे वे खुद इतने बीमार पड़ गये कि दो महीने-तक खाट पकड़े रहे। वे कहते हैं कि उनकी शिनाख्त की गई। वे १२ तारीखको साँगलामें मौजूद थे, जबकि वास्तवमें वे उस दिन एक मुकदमेमें गवाही देने गुजराँ-वाला गये हुए थे। वे अपने बयानमें यह भी बताते हैं कि १८० गिरफ्तारशुदा लोगोंको ९ दिनतक नजरबन्द रखा गया और उनसे कहा गया कि अगर वे रिहा होना चाहते हैं तो ५०,००० रुपये दें। (बयान ३८०)

दलाल कुन्दनलाल बतलाते हैं कि ब्रिटिश सैनिक कैसे एक कौड़ी भी अदा किये बिना दुकानोंसे माल उठा लिया करते थे। (बयान ३८१)

मोमन

मोमन एक रेलवे स्टेशन है, जो साँगलासे लाहौरकी तरफको छः मीलकी दूरी-पर स्थित है। निस्सन्देह आसपासके गाँवोंके लोगोंकी एक टोली इस स्टेशनकी तरफ

गई थी और स्टेशनको जलाया और लूटा था। ऐसी कोई उत्तेजनाकी वात नहीं थी, जिसके आधारपर इस निरी अनुत्तरदायित्वपूर्ण विनाश-लीलाका औचित्य ठहराया जा सके। निश्चित तौरपर नहीं कहा जा सकता कि स्टेशन जलानेवाले लोग आसपासके गांवोंके थे या वाहर कहींसे आये थे। जो भी हो लेकिन अधिकारियोंने इसका वदला लेनेके लिए जो अन्यायपूर्ण कदम उठाये वे सर्वथा अनावश्यक थे। हमने अपनी इस रिपोर्टमें मोमन गांवसे सम्वन्धित वयान इसलिए शामिल नहीं किये क्योंकि यह गांव सांगलाका ही एक हिस्सा है और आसपासके गांवोंके लोगोंको भी उसी दुर्व्यवहारका शिकार होना पड़ा था जिसके शिकार सांगलाके लोग हुए थे।

मनियांवाला और आसपासके स्थान

इस गांवकी आवादी मुश्किलसे ५०० है। यह धवर्नसिंह रेलवे स्टेशनके निकटवर्ती गांवोंमें से एक है। इस स्टेशनको आसपासके गांवोंके लोगोंने १६ अप्रैल, १९१९ को लूटा और जलाया था। गांववालोंने अमृतसरमें हुई घटनाओंके काफी नमक-मिर्च लगे हुए समाचार सुने थे और स्पष्ट ही इससे उत्तेजित होकर उन्होंने आगजनीकी हरकत की थी; और जैसा कि एक गवाहने कहा है, यह सारी कार्रवाई शुरू तो एक प्रतिहिंसाकी भावनासे हुई थी, लेकिन कुछ शरारती लोगोंने इसे लूटमारका रूप दे दिया।

गांववालोंकी हरकत तो वुरी थी ही, लेकिन अधिकारियोंने वदलेकी जो कार्रवाई की वह विलकुल हृदयहीन थी और उसने शिष्टताकी सभी सीमाओंका अतिक्रमण कर दिया। १९ अप्रैलको एक फौजी ट्रेन धवर्नसिंह स्टेशन पहुँची। ट्रेनसे कुछ सैनिक उतरे। उनकी बन्दूकोंका मुंह मनियांवालाकी तरफ था। वे गोलियां दागते हुए गांवकी तरफ वढ़े। कुछ लोग जख्मी हुए और कमसे-कम एकको तो अपनी जानसे ही हाथ धोना पड़ा और एक जीवन-भरके लिए अपंग वन गया। ऐसा नहीं लगता है कि इस गोलीवारीका कोई कारण था। गोलियां चलनेकी आवाज सुननेपर स्त्रियां घरोंसे निकलकर भागीं, गर्भवती स्त्रियां भी भागीं। सरदार अतरसिंहकी जान तो मुश्किलसे ही वच पाई। वे तीस सालसे लम्वरदार हैं और इस गांवकी स्थापना उन्होंने ही की थी। उनके मकानकी तलाशी ली गई। आलमारियोंके किवाड़ तोड़ डाले गये, और नकदी तथा अन्य माल निकाल लिया गया। कहते हैं, अतरसिंह ११५ वर्षके हैं। सौसे ऊपर तो हैं ही और अव चल-फिर भी नहीं पाते। वे खाटपर वैठे-वैठे अपने दिन गुजार रहे हैं। उन्हें और इन्दरसिंहको गिरफ्तार कर लिया गया। चूंकि वे चल-फिर नहीं सकते थे, इसलिए उन्हें घोड़ेपर वैठा दिया गया। दोनोंको स्टेशन ले जाकर लोहेके एक [माल] डिव्वेमें जिससे फिलहाल हवालातका काम लिया जा रहा था, वन्द कर दिया गया। वहां उनको कुछ दिन रखा गया। यह डिव्वा चूंकि लोहेका वना हुआ था और इसके अन्दर कहीं भी कोई और चीज नहीं लगाई गई थी, इसलिए अप्रैलकी गर्मीके दिनोंमें उसमें रहना असहनीय हो गया था। गांवके और भी कई लोगोंको इसी तरह विना भोजन-पानीके अपने दिन विताने पड़े। (वयान ५७७)

कुछ दिन वाद श्री वॉसवर्थ स्मिथ सैनिकोंकी एक टुकड़ी लेकर एकाधिक वार आये। मनियाँवालामें हमें जो साक्ष्य दिये गये थे उनमें से कुछ वहुत ही क्षोभजनक

ढंगके थे। अतः हमने उनकी और भी जाँच-पड़ताल करनेके लिए बैरिस्टर श्री लाभसिंह एम० ए० को, जो पहले प्रोफेसर भी रह चुके हैं, वहाँ भेजा। वे जो बयान अपने साथ लाये उनको हम अपने लिये हुए बयानोंके रूपमें ही यहाँ पेश कर रहे हैं। गवाह तेजासिहने उनके सामने यह बयान दिया था:

पुलिसने गाँववालोंको बँगलेपर बुलाया था। अभी मैं बँगलेकी तरफ रवाना नहीं हुआ था। इसी बीच श्री बॉसवर्थ स्मिथने मेरी मौजूदगीमें मुन्शी नवाबदीन और लहनासिंहको बुरी तरह पीटा। उन्होंने उनसे कहा कि भाई मूलसिंहके खिलाफ गवाही दो और उन्हें यह कहनेपर मजबूर किया कि उन्होंने सरकारके खिलाफ भाषण दिया था। उनको एक पुलिसवालेकी हिरासतमें छोड़कर और उसे बँगलेपर ले जानेका आदेश देकर श्री बॉसवर्थ स्मिथ औरतोंकी तरफ गये। उन्होंने उनके चेहरोंसे बुर्के हटा दिये और भद्दी गालियाँ देना शुरू किया। उन्होंने उनको "मक्खी, कुतिया, गधी" इत्यादि कहा और इनसे भी बुरी बातें कहीं। उन्होंने औरतोंसे कहा: "पुलिसके सिपाही तुम्हारे सुत्थनों – पजामियोंकी तलाशी लेंगे। तुम सब जब अपने खाविन्दोंके साथ लेटी हुई थीं तो तुमने उनको उठकर जाने क्यों दिया। उन्होंने औरतोंपर थूका भी। (बयान ५८०)

मंगल जाटकी बूढ़ी विधवा गुरदेवीने श्री लाभसिंहके सामने यह बयान दिया:

मार्शल लॉके दौरान एक दिन श्री बॉसवर्थने हमारे गाँवके ८ सालसे ऊपरकी अवस्थाके सभी आदमियोंको, जो जाँच चल रही थी उसके सिलसिलेमें बँगलेपर इकट्ठा किया। बँगला हमारे गाँवसे कुछ मील दूर है। लोग जिस वक्त बँगलेपर इकट्ठे थे, श्री बॉसवर्थ उसी बीच हमारे गाँव आये और अपने मर्दोंके लिए खाना लेकर बँगलेकी ओर जाती हुई औरतोंको रास्तेसे लौटा लाये। गाँव पहुँचकर वे गली-गलीमें जाकर सभी औरतोंको घरसे बाहर निकल आनेका आदेश देते घूमने लगे। वे खुद भी अपनी छड़ीसे कोंच-कोंचकर औरतोंको बाहर निकाल रहे थे। उन्होंने हम सबको गाँवके दायरेके[1] निकट लाकर खड़ा करवाया। औरतोंने उनके सामने हाथ जोड़ लिये। उन्होंने कुछ औरतोंको छड़ीसे पीटा, उनपर थूका और ऐसी गन्दी-गन्दी गालियाँ दीं जो जुबानपर नहीं लाई जा सकतीं। उन्होंने मुझे दो बार छड़ी मारी और मेरे मुँहपर थूका। उन्होंने जबरन सभी औरतोंके चेहरे अनावृत्त कर दिये, अपनी छड़ीसे उनके बुरके हटा दिये। उन्होंने उनको "कुतिया, गधी, मक्खी, सुअरनी" इत्यादि कहा और बोले "तुम अपने खाविन्दोंके साथ एक ही बिस्तरपर लेटी थीं, फिर तुमने उनको शरारत करनेके लिए जानेसे क्यों नहीं रोका? अब पुलिसके सिपाही तुम्हारे सुत्थनोंकी जाँच करेंगे।" उन्होंने मुझे एक लात भी मारी और हमसे मुर्गा बननेको कहा। (बयान ५८२)

१. सभाओंके लिए एक सार्वजनिक स्थान।

मनियांवालाकी कई स्त्रियोंने इस बयानकी ताईद की है।

गवर्नमेंट स्कूलके अध्यापक नवाबदीन कहते हैं कि श्री बॉसवर्थ स्मिथने उनपर जोर डाला था कि वे मूलसिंहके खिलाफ कहें कि उन्होंने सरकारके विरुद्ध भाषण दिया था। नवाबदीन कहते हैं:

> लेकिन जब मैंने दुबारा कहा कि यह सच नहीं है तो उन्होंने मुझको बेंतसे पीटना शुरू किया। उन्होंने मुझको इतनी देरतक और इतनी बेरहमीसे पीटा कि मेरी कलाई और घुटनोंपर काफी दिनोंतक चोटके निशान बने रहे। उन्होंने कहा कि मैं एक सरकारी कर्मचारी हूँ इसीलिए मुझे सरकारके पक्षमें गवाही देनी चाहिए। वे मुझे काफी देरतक पीटते रहे और उसके बाद एक सिपाहीको मुझे बँगलेपर पहुँचानेका आदेश दिया। (बयान ५७८)

लहनासिंहके साथ भी इसी तरहका सलूक किया गया।

> हम जैसे ही बँगलेकी तरफ रवाना हुए, साहबने औरतोंकी तरफ रुख किया। रास्तेमें हमें उन औरतोंकी चीखें सुनाई पड़ती रहीं। (बयान ५७९)

हमने इन घटनाओंको कुछ विस्तारके साथ इसलिए पेश किया है कि हमारा खयाल है कि कोई भी अफसर, जो श्री बॉसवर्थ स्मिथकी तरहका सलूक कर सकता है, किसी भी सभ्य सरकारमें कोई जिम्मेदारीका पद सँभालने या सम्राट्की सरकारकी वर्दी पहननेके सर्वथा अनुपयुक्त है।

मनियांवालाकी घटनाओंके सिलसिलेमें आये दूसरे बयानोंसे पता चलता है कि कैसे ८० गांववालोंको गिरफ्तार किया गया और ज्यादासे-ज्यादा परेशान किया गया, किस तरह इन गांववालोंको अपने भोजनके लिए दाम चुकाने पड़े, जबकि नजरबन्दीके दौरान उनको भोजन देना सरकारका कर्त्तव्य था, कैसे झूठी गवाहीं दिलवानेके लिए उनको धमकियाँ दी गईं और कोड़े लगाये गये, किस ढंगसे श्री बॉसवर्थ स्मिथने उनके मुकदमे निबटाये, और किस तरह उक्त बयानोंमें वर्णित गवाहियोंके आधारपर मार्शल लॉ कमिशनोंके सामने गाँववालोंपर मुकदमे चलाये गये और उनमें से कुछको काले पानीकी सजा दे दी गई। सौभाग्यकी बात है कि सजाएँ बादमें घटा दी गईं और शाही घोषणाके अधीन इन लोगोंको रिहा कर दिया गया है। लेकिन इस तरह बरी कर देनेसे गाँववालोंके प्रति किये गये अन्यायका प्रायश्चित्त नहीं हो जाता, उनमें से यदि सभी नहीं तो अधिकांश सर्वथा निर्दोष मालूम पड़ते हैं। गाँववालोंपर दाण्डिक पुलिस बैठा दी गई और श्री बॉसवर्थ स्मिथने उनपर हर्जानेकी एक भारी रकम भी थोप दी थी, जिसे बादमें घटा दिया गया।

मनियाँवालामें हुई क्रूरताओंका यह संक्षिप्त विवरण इस तथ्यका उल्लेख किये बिना समाप्त नहीं किया जा सकता कि श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज व्यक्तिगत रूपसे कांग्रेस उप-समितिकी ओरसे इस स्थानपर गये थे[1] और वे अपने साथ जो साक्ष्य लाये, उनसे अमानवीय कृत्योंके सम्बन्धमें दिये गये उपर्युक्त बयानोंकी परिपुष्टि होती है।

१. नवम्बर, १९१९ में आफ्रिका जानेसे पहले।

नवाँ पिण्ड (चक संख्या ७८)

यह भी एक बहुत छोटा गाँव है — मनियाँवालासे भी छोटा। यह गाँव तहसील खानगाह डोगरांमें है। यह भी धवनसिंह रेलवे स्टेशनके निकट है। और इसीलिए इसके साथ भी लगभग वही सलूक किया गया जो मनियाँवालाके साथ हुआ था; अन्तर केवल इतना रहा कि यहाँकी स्त्रियोंको मनियाँवालाकी अपनी अभागी बहनोंकी तरह अशोभनीय बरताव सहन नहीं करना पड़ा। बहुत सम्भव है कि यहांके कुछ लोगोंने भी धवनसिंह स्टेशनमें आग लगानेमें हाथ बँटाया हो, लेकिन इसके लिए एक पूरे गाँवको क्रूर और प्रतिहिंसापूर्ण ढंगसे दण्डित किया जाय, इस बातको किसी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता है। हमने लगभग ४० गवाहोंके बयानोंमें से जो बयान चुने हैं, और जिनमें से सभीमें लगभग एक-सी घटनाओंका उल्लेख है, उनसे पता तो यही चलता है कि नवाँ पिण्डवालोंके साथ भी वैसा ही बरताव किया गया जैसा मनियाँवालाके लोगोंके साथ किया गया था।

खुशालसिंह कहते हैं कि रेलवे स्टेशनमें आग लगाये जानेके अगले दिन नवाँ पिण्ड-सहित आसपासके कई गाँवोंके लोग रेलवे स्टेशनपर इकट्ठे हुए थे। डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी सदस्यताके लिए एक व्यक्तिका चुनाव करनेके लिए तहसीलदार भी वहाँ आया था। जब लोग वहाँ पहुँचे तो रेलवेके बुकिंग ऑफिसमें आग लगी हुई थी। लोग अपने-अपने वोट देकर चले गये। तहसीलदार अधिकांश मतदाताओंको जानता ही होगा, फिर भी उनमें से कईको स्टेशनमें आग लगानेके सिलसिलेमें गिरफ्तार कर लिया गया। खुशालसिंह बताते हैं कि रेलवे स्टेशनमें आग लगनेके तीसरे दिन उन्हें स्टेशन जाना पड़ा। वहाँ उन्हें पता चला कि सब-इन्स्पेक्टर कुलियोंसे आग लगानेवालोंकी शिनाख्त करनेके लिए कहता रहा है। कुलियोंने आपत्ति की और कहा कि उस भीड़में बहुत सारे लोग थे और समय रातका था इसलिए वे आग लगानेवालोंको पहचान नहीं सकते। लगता है कि सब-इन्स्पेक्टरने उनको किसी तरह राजी कर लिया। उसने कहा कि वह उन गाँवोंके लोगोंको बुलाकर खड़ा कर देगा। कुलियोंको उनमें से कुछकी तरफ इशारा-भर कर देना चाहिए और वह उनकी गिरफ्तारीका इन्तजाम कर लेगा। दूसरा कदम यह उठाया गया कि स्त्रियों और बच्चोंको छोड़कर बाकी सभी लोगोंको श्री बॉसवर्थ स्मिथके सामने हाजिर होनेका हुक्म दिया गया।

> साहबके वहाँ पहुँचते ही हम सबको कतारोंमें खड़ा कर दिया गया। कुली और रेलवे कर्मचारी लोग भी साहबके साथ-साथ आये थे। साहबने कुलियोंको हुक्म दिया कि वे कतारोंमें खड़े हुए लोगोंमें उन लोगोंकी शिनाख्त करें जिन्होंने रेलवे स्टेशनमें आग लगानेमें भाग लिया था। कुलियोंने जिन लोगोंपर अँगुलियाँ रखीं, उनको दूसरोंसे अलग करके उनके हाथ-पैर बाँध दिये गये।

शिनाख्तका ढंग यह था :

> एक कुली एक आदमीकी शिनाख्त करता था। लम्बरदार, जैलदार और पुलिस सब-इन्स्पेक्टर उसके बिलकुल पास खड़े रहते थे। इसके बाद फिर दूसरे

कुलीको ठीक इसी ढंगसे उसी आदमीको शिनाख्त करनेके लिए वुलाया जाता था। इस तरह करीव २८–२९ आदमियोंको गिरफ्तार किया गया। भगवानसिंह नामक एक व्यक्तिने गिड़गिड़ाकर कहा कि उस दिन तो वह अपने घरसे निकला तक नहीं था। साहवने उसे एक पेड़से बँधवाकर १२ कोड़े लगानेका हुक्म दे दिया; इसलिए कि उसने कुछ कहनेकी जुर्रत की थी। इसके वाद शिनाख्तीके लिए वुलाये गये सभी लोगोंको रेलवे स्टेशन ले जाया गया, जहाँ पटवारीने नाम ले-लेकर सवकी हाजिरी ली। ईश्वरसिंह मौजूद नहीं था। साहवने पूछा कि उसका कोई रिश्तेदार मौजूद है या नहीं। पटवारीने उत्तर दिया कि उसका वहनोई [साला?] मौजूद है। उसका मतलव मुझ (खुशालसिंह)से था। साहवने तुरन्त मेरी गिरफ्तारीका हुक्म दे दिया। हम सवको सराय (रेस्ट हाउस) ले जाकर एक कमरेमें वन्द कर दिया गया और वाहर एक पहरेदार वैठा दिया गया। हम वहाँ विना अन्न-पानीके दो दिनतक रहे। जो भी रिश्तेदार हमारे लिए खाना लेकर आते थे, उनको लौटा दिया जाता था। . . . ९ तारीखको हमको फिर कैनाल वँगले ले जाया गया। उस दिन ईश्वरसिंह भी आ गये। सव-इन्स्पेक्टरने उनसे कहा कि अगर वे सरकारी गवाह वन जायें तो उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जायेगा। नवां पिण्डके मायासिंह कम्वोका लड़का तेजासिंह भी उस समय वहीं था। उसे सरकारी गवाह वना लिया गया। साधुसिंह सुनार, ज्वालासिंह जैलदार और ज्वालासिंहके लड़के वंटासिंहको भी गिरफ्तार कर लिया गया था। सरकारी गवाह वननेका वायदा करनेपर पुलिस सव-इन्स्पेक्टरने उन सवको छोड़ दिया। सरकारी गवाह वनते ही मुझे भी रिहा कर दिया गया। हमारे गाँवके हर औरत-मर्दको तहसीलदारके सामने हाजिरी देनी पड़ी। हर गिरफ्तारशुदा आदमीको वुलाकर सजा सुना दी गई। सवूत नहीं लिये गये। यदि किसीने थोड़ा भी कुछ कहनेकी कोशिश की तो उसे पिटवाया गया। (वयान ६११)

श्री वॉसवर्थ स्मिथ द्वारा किये गये तथाकथित मुकदमोंकी पूरी वानगी हमारे सामने है, और हमने देखा कि किस तरह गवाहियाँ गढ़ी गईं। अमृतसरका खालसा कालेज पंजावकी सवसे वड़ी शिक्षा-संस्थाओंमें से एक है। उसके प्रिंसिपल श्री वाथनने नवां पिण्डमें न्यायकी इस विडम्वनाके वारेमें अपने विचार लिखित रूपमें व्यक्त किये हैं। उन्होंने जो-कुछ कहा, हम उसे नीचे ज्योंका-त्यों दे रहे हैं:

> जिला गुजराँवालाकी तहसील खानगाह डोगरांके ग्राम नवां पिण्ड, चक संख्या ७८ के निवासी जीवनसिंहके लड़कों — भगवानसिंह और माघरसिंहका मुकदमा।
>
> इन दोनों व्यक्तियोंको भारतीय दण्ड संहिताके खण्ड ६ (क), (ख), (ग)के अन्तर्गत ९ मई, १९१९ को सजा दी गई थी। उनपर अभियोग यह था कि चवन रेलवे स्टेशनको आग लगानेमें वे भी शामिल थे। उनमें से प्रत्येकको दो सालकी

सख्त कैद और दो सौ रुपये जुर्मानेकी सजा दी गई।

यह पक्ष अब अपनी सजाके फैसलेके खिलाफ अपील कर रहा है। अपीलके मुख्य आधार ये हैं:

(क) वे उस दिन रेलवे स्टेशनपर मौजूद नहीं थे, और अपनी गैर-मौजूदगी साबित करनेके लिए वे कई गवाह पेश करनेको तैयार थे। लेकिन अदालतने उनके गवाहोंको नहीं बुलाया।

(ख) उनकी शिनाख्त रेलवेके कुलियोंने की थी, जो उनके लिए बिलकुल अजनबी थे। कहा गया है कि उनके कुछ दुश्मनोंने इन कुलियोंको उकसाया था और शायद रिश्वत भी दी थी ताकि वे इन दोनों भाइयोंकी शिनाख्त कर दें।

(ग) अपीलमें कहा गया है कि उनके दुश्मन ज्वालासिंह जैलदार और जीवनसिंह लम्बरदार हैं, जिनके साथ जीवनसिंहके परिवारका काफी पुराना झगड़ा चला आता है। यह झगड़ा लम्बरदारीको लेकर लगभग ५ वर्ष पहले खड़ा हुआ था और तभीसे चलता आ रहा है। झगड़ेके बारेमें बड़ी आसानीसे सबूत जुटाये जा सकते हैं और उन्हें पेश करनेकी अनुमति भी माँगी गई थी, लेकिन उसका मौका नहीं दिया गया।

(घ) मेरे सामने यह बयान अभियुक्तके सबसे छोटे भाई जगतसिंहने दिया है। जगतसिंहकी उम्र १८ वर्ष है और मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ, क्योंकि वह इस कालेज और स्कूलमें ४ वर्षतक मेरा विद्यार्थी रह चुका है। मुझे जगतसिंहकी व्यक्तिगत वफादारीपर जरा भी सन्देह नहीं है। मैं जगतसिंहकी भावनाओंको समझ सकता हूँ, और फिर जगतसिंहको ब्रिटिश-विरोधी प्रवृत्तियोंवाला राजनीतिज्ञ बतलाना हास्यास्पद ही माना जायेगा। इस लड़केका खर्च चलानेवाले उन दोनों भाइयोंने इस लड़केको पढ़नेके लिए यहाँ भेजा — यह तथ्य भी बतलाता है कि वे वफादार हैं, क्योंकि आमतौरपर सरकारके प्रति वफादार सिख लोग ही दूर-दूरसे अपने बच्चोंको इस संस्थामें भेजते हैं, जिसे सरकारका विशेष कृपापात्र समझा जाता है। मैंने रेलवे कुलियोंसे इसके बारेमें पूछताछ कर ली है। उनमें से कई इन दोनों सजायाफ्ता भाइयोंको जानते हैं। उन सबकी यही राय है कि दोनों भाई बिलकुल ही निर्दोष हैं और उनके दुश्मनोंने ही उनको इस मामलेमें फँसा दिया है।

(ङ) एक मुद्दा, जो इस व्यक्तिके खिलाफ सारे सबूतको गलत सिद्ध करता है, यह है कि तीसरे भाई मंगलसिंहकी भी शिनाख्त करके इन्हीं कुलियोंने कहा कि वे रेलवे स्टेशनपर मौजूद थे। हुआ यह कि जिस दिन धवनमें उसकी मौजूदगी बतलाई जाती है, उस दिन वे खालसा कालेजमें जगतसिंहके साथ ठहरे हुए थे और कई भरोसेके लायक

आदमियोंने उन्हें वहाँ देखा था, जिनमें कालेजके वाइस प्रिंसिपल और कुछ अध्यापक भी शामिल हैं।

वे (मंगलसिंह) जगतसिंहको छुट्टी दिलानेके सिलसिलेमें मेरे पास भी आये थे। मैंने इस तथ्यके बारेमें डिप्टी कमिश्नरको लिखा और मौखिक रूपसे भी बतलाया। अदालतमें इसकी जानकारी मिलनेपर उन्होंने तुरन्त मंगलसिंहकी रिहाईका हुक्म दे दिया। मेरा कहना है कि यदि अदालतने यह समझ लिया होता कि मंगलसिंह, भगवानसिंह और माघरसिंहके ही भाई हैं और मंगलसिंहकी अनुपस्थिति सिद्ध हो चुकी है, तो वह इस मुकदमेमें शिनाख्ती के सम्बन्धमें पेश किये गये सबूतको सही नहीं मानती, क्योंकि भगवानसिंह और माघरसिंहकी शिनाख्त करनेवाले कुलियोंने ही मंगलसिंहकी भी शिनाख्त की थी।

(ह०) जी० ए० वाथन
प्रिन्सिपल,
खालसा कालेज, अमृतसर
(बयान ६१३)

श्री वाथनका पत्र पेश किये जानेपर इन लोगोंको बड़ी शीघ्रतासे रिहा कर दिया गया, लेकिन हर आदमी तो जगतसिंहकी तरह ऐसा सौभाग्यशाली नहीं होता कि वह श्री वाथन-जैसे ऊँची पद-प्रतिष्ठावाले किसी मध्यस्थसे परिचित हो।

बिशनसिंहने मुकदमेका काफी ब्यौरेवार विवरण दिया है। वे बतलाते हैं कि किस प्रकार एक रेलवे बाबूके यह कहनेपर कि वह शिनाख्त नहीं कर सकता, लम्बरदार और जैलदारने उसे उकसाया और किस प्रकार ऐसे आदमीकी शिनाख्त कराकर सजा दिलवा दी गई जो उस समय नवाँ पिण्डमें मौजूद नहीं था। (बयान ६१२)

श्री बॉसवर्थ स्मिथने कैदियोंके एक जत्थेके मुकदमेके दौरान सुरेनसिंहसे मंगलसिंहकी मौजूदगीके बारेमें सवाल किया। सुरेनसिंह कहते हैं :

मैंने कहा कि वे वहाँ मौजूद नहीं थे। लेकिन कुछ दूसरे लोगोंने — ज्वालासिंह जैलदार और जीवनसिंह-जैसे लोगोंने — बयान दिया कि वे उपद्रवमें शामिल थे। इसपर श्री बॉसवर्थ स्मिथने मुझे उसी वक्त तीन महीनेकी सजा सुना दी। बादमें खालसा कालेजके प्रिंसिपलके पत्रसे जब यह पता चला कि धवनसिंहकी उस घटनाके दिन मंगलसिंह अमृतसरमें था तो मुझे छोड़ दिया गया। (बयान ६१४)

हमारा अनुमान है कि सुरेनसिंहको झूठी गवाही देनेके लिए सजा दी गई थी। वे लम्बरदार थे। वे अगर सजासे बच पाये तो इसी कारण कि श्री वाथनके पत्रसे यह सिद्ध हो गया कि उन्होंने झूठी गवाही नहीं दी। लेकिन उनके निर्दोष सिद्ध हो जानेके बाद भी लम्बरदारीसे उनकी बर्खास्तगी अभी कायम है।

सोहनसिंहको भी इसी कारण सजा दी गई थी और बादमें इसका पता चलनेपर उन्हें भी छोड़ दिया गया। वे भी लम्बरदार थे और सुरेनसिंहकी तरह उन्हें भी लम्बरदारीसे बर्खास्त कर दिया गया। (बयान ६१५)

खुशालकी पत्नी नन्दीने अपने लड़केके बारेमें बयान देते हुए कहा है:

> कोई सफाईतक नहीं माँगी गई। सच यह है कि रेलवे कुलियोंने जिसके खिलाफ भी गवाही दी, उसे दण्ड दे दिया गया। किसीसे अपना बयानतक देनेके लिए नहीं कहा गया। गाँवके उनके एक आदमीने इस तरीकेपर आपत्ति की। इसपर उसे शीशमके पेड़से बँधवाकर बुरी तरह कोड़े लगाये गये। (बयान ६१६)

दूसरे गाँवकी तरह नवाँ पिण्डमें भी अफसरोंने जिसका जो माल मनमें आया, उठा लिया। इस तरह हीरासिहसे १०८ रुपयेसे कुछ अधिक कीमतका आटा, दाल, घी, चीनी और दूध ले लिया गया। गाँववालोंने चन्दा करके इस गरीबका घाटा पूरा किया। (बयान ६१८)

किशनचन्द कहते हैं कि उन्होंने श्री पैनी और श्री बॉसवर्थ स्मिथके कैम्पको तथा अन्य अधिकारियोंको भी ४०० रुपयेकी कीमतका राशन दिया। इसकी पूर्ति भी गाँववालोंने चन्देसे की। (बयान ६१९)

काहनसिंहकी पत्नी ज्वाली कहती है कि उसके ७० वर्षीय कमजोर पतिको भी गिरफ्तार कर लिया गया। वे कहती हैं:—

> वहाँ तैनात पुलिसने बिना उनकी मुट्ठी गरम किये हमें अपने रिश्तेदारोंको खानातक नहीं पहुँचाने दिया। दूसरोंकी तरह मुझे भी हर रोज हर आदमी पीछे एक रुपया देना पड़ा था। (बयान ६२०)

नन्दसिंह कहते हैं:

> दस वर्षसे ऊपरकी उम्रके सभी आदमियोंको बुला भेजा गया। उनको सुबहसे लेकर शामतक धूपमें कतारें बनाकर बैठाये रखा गया। श्री बॉसवर्थ स्मिथ वहाँ मौजूद थे। मेरे भाई भगवानसिंहने उठकर हाथ जोड़कर उनसे कहा कि वह निर्दोष है और उसने कोई अपराध नहीं किया है। इसपर श्री बॉसवर्थ स्मिथको गुस्सा आ गया और उन्होंने उसकी पिटाईका हुक्म दे दिया। एक रस्सी मँगाई गई। सन्तु चौकीदार रस्सी लेकर आया और भगवानसिंहको उसी समय बाँध दिया गया। सन्तुको बेंत लगानेका आदेश दिया गया और उसने १२ बेंत लगाये। श्री बॉसवर्थ स्मिथ वहीं पासमें खड़े थे और उन्होंने कहा कि अगर वह मर भी जाये तो कोई परवाह नहीं। भगवानसिंह बेहोश हो गया। उसके मुँहमें पानी डाला गया तब कहीं थोड़ी देर बाद उसको होश आया। फिर सब-इन्स्पेक्टर उसको अलग ले गया और उसे गिरफ्तार कर लिया गया। इसे देखकर सारे गाँववाले भयभीत हो गये और किसीने भी कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं की। चारों तरफ राइफलधारी सैनिक खड़े थे और श्री बॉसवर्थ स्मिथ कहते जाते थे कि अगर किसीने जबान हिलाई तो उसके साथ भी ऐसा ही सलूक किया जायेगा। (बयान ६२१)

इस गाँवपर १०,००० रुपये जुर्माना किया गया। उसका एक तिहाई रबीकी पिछली फसलके मौकेपर वसूल किया गया। (बयान ६२२)

चुहड़खाना

यह भी एक बड़ी मण्डी है जहाँ आसपासके गाँवसे सैकड़ों लोग अपना माल लेकर बेचने आते हैं। चूहड़खाना गाँव मण्डीसे करीब डेढ़ मीलकी दूरीपर है। चूहड़खानाका स्टेशन मण्डीके पास ही है।

यहाँ १२ अप्रैलको हड़ताल हुई थी। एक दिन पहले एक सार्वजनिक सभा भी हुई थी, जिसमें हड़ताल करनेकी घोषणा की गई। सभामें नगरपालिकाके सदस्यों-सहित तमाम लोगोंने हिस्सा लिया था। १४ तारीखतक कोई घटना नहीं घटी। लेकिन १५ तक अमृतसर और लाहौरसे आनेवाले समाचार सभी लोगोंको मालूम हो गये थे और वे काफी उत्तेजित हो उठ थे। मण्डीमें रहनेवाले कुछ लोग और आसपासके गाँवोंके कुछऐसे लोग, जो उस समय मण्डीमें मौजूद थे, सभी मिलकर रेलवे स्टेशनकी तरफ चल पड़े। उन्होंने दिन-दहाड़े रेलवे-खलासियोंसे औजार ले लिये और लाइनको नुकसान पहुँचानेके साथ-साथ स्टेशनमें आग भी लगा दी।

इसके बाद ही सेना, मशीनगनें और बख्तरबन्द गाड़ियाँ वहाँ पहुँच गईं। काफी अन्धाधुन्ध गोलीबारी की गई। राय साहब श्रीराम सूदने हंटर कमेटीके सामने दिये गये अपने साक्ष्यमें गोलीबारीको उचित ठहरानेकी कोशिश की है। लेकिन हमारे पास जितने भी साक्ष्य मौजूद हैं, वे सब उनके बयानके खिलाफ जाते हैं। सच तो यह है कि उनके अपने बयानसे ही उनकी बातका खण्डन होता है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि यह गोलीबारी मार्शल लॉकी घोषणा होनेसे पहले की गई। राय साहब श्रीराम सूद एक पुराने सब-डिवीजनल अफसर हैं। वे इस जिलेमें अगस्त १९१८से सरकारी सेवामें हैं। इसलिए वे गाँवके लोगोंको अच्छी तरह जानते थे। गोलीबारीकी सारी जिम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ली और जब पंडित जगतनारायणने जिरहके दौरान उनसे सीधे-सीधे सवाल पूछने शुरू किये तो उन्होंने कहा कि उन्होंने जो गोली चलवाई वह दण्ड प्रक्रिया संहिताकी रूसे प्राप्त अधिकारोंके अन्तर्गत थी। सर चिमनलालने उनसे पूछा कि वे इस निष्कर्षपर कैसे पहुँचे कि गोली चलवाना जरूरी हो गया। उत्तरमें उन्होंने कहा, "क्योंकि हमें पहलेसे मालूम हो गया था कि वहाँ भीड़ इकट्ठी हो गई है और इसकी सूचना विश्वसनीय थी।" उन्होंने आगे कहा: "मैंने पहले ही सुन रखा था कि चूहड़खानाके लोग लूटपाटके लिए बाजारकी तरफ झपटे जा रहे हैं।" इसपर सर चिमनलालने पूछा: "तो इसपर आपने कोई और जाँच-पड़ताल किये बिना गोली चलाना शुरू कर दिया?" उत्तर था: "जी हाँ, हमने गोली चलानेका निश्चय कर लिया था।" फिर उनसे पूछा गया: "आपका खयाल आतंक पैदा करनेका था?" उन्होंने उत्तर दिया: "हाँ, यदि ऐसा करना जरूरी लगता और सचमुच मुझे ऐसा करना जरूरी लगा।" सर चिमनलालने पूछा: "और गोली चलानेके बाद आप स्टेशनकी ओर ही बढ़े?" उत्तर था: "जी हाँ।" इसके बाद राय साहबने लोगोंकी हरकतोंका वर्णन किया।

प्र० – हरकतोंसे आपका क्या मतलब है ? वे कोई शरारत तो कर नहीं रहे थे।

उ० – जी नहीं, उस समय नहीं। लोग गाँवसे आ-जा रहे थे।

प्र० – आपको यह मालूम नहीं कि इस तरह गाँव आने और उधर जानेमें उनका उद्देश्य क्या था ?

उ० – जी हाँ, मालूम है; उनका उद्देश्य बख्तरबन्द गाड़ीपर हमला करना था।

प्र० – आपने दूरसे देखकर यह कैसे पता लगा लिया कि वे बख्तरबन्द गाड़ीपर हमला करनेके लिए ही इकट्ठे हो रहे हैं ?

उ० – मुश्किल यह है कि मेरे दिमागमें जो बातें हैं, उनको मैं बखूबी बयान नहीं कर सकता।

प्र० – क्षमा कीजिए लालाजी, यहाँ हम उन चीजोंकी चर्चा कर रहे हैं जो वहाँ मौजूद थीं और जिनको आपने देखा था। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप जब उनकी हरकतोंकी बात कहते हैं तो वास्तवमें वह हरकत थी क्या, क्या आप यह बतानेकी कृपा करेंगे ?

उ० – मैंने कहा कि वे आ-जा रहे थे और मेरा खयाल है, वे एक जगहपर जमा हो रहे थे।

प्र० – शायद आप नहीं बता सकते कि किस उद्देश्यसे ?

उ० – वे किसी बुरी नीयतसे ही जमा हो रहे थे।

प्र० – आपने कुछ लोगोंको गाँव जाते हुए और कुछको गाँवसे आते हुए देखकर यह निष्कर्ष निकाल लिया कि वे किसी बुरे उद्देश्यसे जमा हो रहे हैं ?

उ० – उन्होंने हमारी बख्तरबन्द गाड़ी देखी, फिर भी वे छिप नहीं गये, इससे और क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है ?

राय साहबने यह साक्ष्य १७ दिसम्बरको दिया और हमने अपनी कोशिशसे जो साक्ष्य इकट्ठा किया वह इससे काफी पहलेका है और हममें से एक सदस्यने ६ दिसम्बरको उसकी जाँच भी कर ली थी। उस साक्ष्यसे पता चलता है कि वहाँ कोई भीड़ जमा नहीं हुई थी और राय साहबने लोगोंको जो आते-जाते देखा था उसका वह मतलब बिलकुल नहीं था जो राय साहबने लगाया। लोग डरके मारे भागकर जा रहे थे और अपने-आपको छिपा रहे थे।

जाट दूलासिंह, जिन्हें वहाँके चप्पे-चप्पेकी और घटनाओंकी भी पूरी जानकारी है, कहते हैं :

> उन्होंने डरके मारे गांवसे भागते हुए लोगोंपर मशीनगनोंसे गोलियां चलाईं। उन गोलियोंसे तीन व्यक्तियोंको जख्मी होकर गिरते हुए मैंने देखा। कमेटीके सदस्य मौलाबख्श और करतारसिंह भी गाड़ीमें थे। (बयान ४६८)

गनपतमल कहते हैं:

> **मशीनगनोंसे काफी देरतक गोलियाँ चलती रहीं और लोग इधर-उधर भागते रहे। . . .१७ अप्रैलको फिर इसकी पुनरावृत्ति की गई। ब्रिटिश सैनिक मशीनगनें लिये हुए आये। वे गाड़ीसे उतरे और इधर-उधर भागते हुए लोगों-पर गोलियाँ चलाने लगे। (बयान ४५८)**

हम यह तो नहीं कहेंगे कि मार्शल लॉ जारी करनेसे पहले गोलियाँ चलानेका कोई औचित्य नहीं था, पर हमारा विश्वास है कि सब-डिवीजनल अफसरने जिस गोली-बारीका उल्लेख किया है, उसमें बहुत जल्दबाजी की गई; अभी ऐसा समय नहीं आया था कि गोलीबारी की जाती, गोलीबारी अन्धाधुन्ध तरीकेसे की गई और उसके पीछे या तो अधिकारियोंकी घबराहट काम कर रही थी या फिर अत्युत्साह। जनतामें आतंक जमाना उन अफसरोंका काम नहीं था। गोली चलाना उनके सामर्थ्यका नहीं, कमजोरीका लक्षण है; न्यायकी रक्षा करनेकी भावनाका परिचायक नहीं बल्कि अन्याय करनेकी उद्धतताका द्योतक है। अपराधी मन ही आतंकवादका सहारा लेता है। हम स्वीकार करते हैं कि आग लगाने, लूटमार करने और तार काटनेकी घटनाएँ बुरी, अकारण और अशोभनीय थीं और उनमें भाग लेनेवाले कड़ेसे-कड़े दण्डके भागी थे। लेकिन जनताने ऐसा कुछ भी नहीं किया था, जिससे इस प्रकारकी अन्धाधुन्ध गोली-बारीका औचित्य सिद्ध हो सके जिसमें निर्दोष व्यक्तियोंकी जानें गईं और अनेक हमेशाके लिए अपंग-से हो गये। समूची जनताको "आतंकित" करनेके लिए जो अन्य बर्बर कदम उठाये गये थे, उनका भी कोई औचित्य नहीं था।

दूसरे जो कदम उठाये गये, वे लगभग सभी जगह एक-से थे। सैनिकों द्वारा की गई लूट-पाटके जितने सबूत चूहड़खानामें मिलते हैं उतने अन्य स्थानोंपर नहीं मिलते। मवेशियोंको जबरन पकड़कर सैनिकोंके लिए उनका दूध निकाल लिया जाता था। वे मालिकोंकी गैरहाजिरीमें बकरियाँ, बर्तन और खाने-पीनेकी चीजें जबरन उठा ले जाते थे। मार्शल लॉके कालमें जनताको धन-सम्पत्तिके रूपमें कितनी हानि उठानी पड़ी होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

सुन्चासिंह कहते हैं:

> **पुलिसने मुझे डराकर मुझसे एक बिछावन ले लिया, जो मुझे अभीतक वापस नहीं किया गया है। (बयान ४४९)**

शामनके बयानके अनुसार: "सिपाही अपने घोड़ोंके लिए जबरदस्ती उनकी फसल काटकर ले गये।" (बयान ४६४)

मोहनलाल कहते हैं:

> **श्री बॉसवर्थ स्मिथ जब यहाँ आये थे तो हमारी दुकानसे ४५ रुपयेका सामान लिया गया था। लेकिन आजतक उसकी कीमत नहीं चुकाई गई है। (बयान ४७४)**

हवेलीराम कहते हैं:

> मेरी दुकान और घरपर १०–१५ दिनतक ताला डालकर रखा गया। . . . मंडीकी कई दुकानोंकी तलाशी ली गई। ब्रिटिश सैनिक मंडीमें मँडराते रहे और जनताको आतंकित करते रहे। वे दुकानोंमें घुसकर जो मनमें आया उठा ले गये। . . . सैनिकोंने मुझसे जो चीजें लीं, उनकी मुझे कोई कीमत नहीं दी गई। (बयान ४५३)

गनपतमल कहते हैं:

> उनको राशनके लिए जो भी मिला उसे ले लिया। लोगोंसे मुर्गियाँ, अण्डे, बकरियाँ और दूध जबरदस्ती ले लिया गया। पुलिसवालोंने लोगोंके पास जाकर बिछावन माँगे और लोगोंको डरके कारण देने पड़े जो अबतक उनको लौटाये नहीं गये हैं। पुलिसके सिपाहियोंने मुझसे भैंसका दूध जबरदस्ती ले लिया, और मेरे बच्चोंतक के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा। एक बिछावन मैंने भी दिया, जिसे अभीतक लौटाया नहीं गया है। . . . मार्शल लॉके दिनोंमें मुझे मंडीकी तरफसे २५ रुपये और गाँवकी तरफसे १० रुपये सेनाके राशनके खर्चके लिए देने पड़े। (बयान ४५८)

कुछ दुकानदारोंने सेनाको जो राशन दिया उस सामानकी सूची अधिकारियोंके पास भेजी। गुजराँवालाके पुलिस सुपरिंटेंडेंटने उसका जो उत्तर दिया वह यह था:

> इसे सब-इन्स्पेक्टरके पास इस हिदायतके साथ भेज दिया जाये कि यह रुपया अब किसी हालतमें वसूल नहीं किया जा सकता। अर्जी भेजनेवालोंको जतला दिया जाये कि उनको हमें इस तरह बार-बार परेशान नहीं करना चाहिए।

गाँववालोंको कुछ दिनोंतक अपनी फसल नहीं काटने दी गई। कुछ किसानोंकी फसलें बिना किसी उचित कारणके जब्त कर ली गईं। श्री बॉसवर्थ स्मिथने एक तरहसे इन कृत्योंको स्वीकार कर लिया है। इन इलाकों — साँगला हिल और शेखूपुराके बीचके इलाकों — में मार्शल लॉके अमलकी जिम्मेदारी मुख्यत: श्री बॉसवर्थ स्मिथकी ही थी।

शानसिंह कहते हैं:

> मुझे फसलको नुकसान पहुँचनेसे कुल मिलाकर लगभग २,००० रुपयेकी हानि उठानी पड़ी। (बयान ४५४)

जिवाया कहते हैं:

> शेरसिंहके खेतके पास ही करीब सवा तीन किलेमें[1] मेरी चनेकी फसल थी। फौजने अपने घोड़ोंके लिए उसका इस्तेमाल किया और उसके बदले कौड़ी

१. पंजाबमें जमीनकी मापका प्रतिमान।

भी अदा नहीं की। उनको ऐसा करनेसे रोका भी गया, लेकिन उन्होंने मुझे धमकाया कि अगर हम उनको घास लेनेसे मना करेंगे तो वे साहबके सामने हमारी पेशी करा देंगे और हमको सजा दी जायेगी। (बयान ४५६)

गनपतमल कहते हैं :

> यह हुक्म भी जारी किया गया कि गांवके सभी लोग गांवमें ही रहें, और कोई भी गेहूंकी फसल काटने गांवसे बाहर खेतोंमें न जाये। उन्होंने पटवारीको हुक्म दिया कि वह खेतोंके चक्कर लगाये जिससे कि लोग अपनी फसलें न काटने पायें और न अपने मवेशियोंको उसमें से कुछ खिला पायें और न खेतोंकी देखभाल ही कर पायें। इस तरह मवेशी लावारिस-से घूमते रहे और फसलें बरबाद हो गईं। कुछ फसलोंको सेनाने भी नुकसान पहुँचाया। हमें फसलका सिर्फ एक-चौथाई हिस्सा ही हासिल हो पाया। (बयान ४५८, पृष्ठ ५९७)

तथाकथित मुकदमों और उनसे पहले अपनाई गई प्रक्रियाके बारेमें हमें जो बयान मिले हैं, उनमें ऐसे तथ्य भरे पड़े हैं, जिनसे बहुत अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि यहां भी वही सब हुआ, जो हमने अन्य स्थानोंके बारेमें बताया है। श्री टोडरमल कहते हैं कि जब शिनाख्तोंका नाटक किया जा रहा था, श्री बॉसवर्थ स्मिथने कहा: "मैं सिर्फ बड़े-बड़े आदमी चाहता हूं; वे गन्दी मक्खियां हैं। मैं मामूली आदमियोंको नहीं चाहता।" सरदार करतारसिंहने इस गवाहकी एक अपराधीके रूपमें शिनाख्त की थी। वे कहते हैं :

> हमने फौरन आपत्ति की और उससे पूछा कि उसने मुझे ही क्यों छांट लिया है। उसने कहा कि खुफिया विभागने उसे रोक दिया है, इसलिए वह इसकी कोई वजह नहीं बतलायेगा। उसे तो वही करना पड़ेगा जो उससे कहा गया है।" (बयान ४५०, पृष्ठ ४८९)

उसपर मुकदमा चलाया गया, लेकिन मार्शल लॉ कमीशनने उसे दोषमुक्त कर दिया।

काशीराम कहते हैं :

> हम लोग डिप्टी-कमिश्नरके सामने सफाईका सबूत पेश करना चाहते थे, लेकिन उसकी इजाजत नहीं दी गई और न किसीके बयानको दर्ज ही किया गया। (बयान ४५१, पृष्ठ ५९०)

मायासिंह कहते हैं कि उनका लड़का उजागरसिंह दवा लेने बाहर गया था। उसे कुछ दूसरोंके साथ गिरफ्तार कर लिया गया। उसने विरोध किया।

> इसपर लँगड़े साहब (श्री बॉसवर्थ स्मिथ) ने उसे पेड़से बांधकर २५ कोड़े लगानेका हुक्म दे दिया था। . . . उसे दस दिनतक एक कोठरीमें रखा गया और जब कैनाल रेस्ट हाउसमें अभियुक्तोंकी शिनाख्त हुई तो किसीने भी उसकी शिनाख्त नहीं की और इसलिए उसे छोड़ दिया गया। (बयान ४४८)

हवेलीराम कहते हैं :

एक दिन लद्धासिंह चौकीदारने सभी मंडीवालोंको सूचना दी कि दूसरे दिन सुबह सभी लोगोंको कैनाल बँगलेमें हाजिर होना है और जो गैरहाजिर रहेगा उसकी जायदाद जब्त कर ली जायेगी। दूसरे दिन सुबह हम लोग बँगले-पर पहुँच गये और हमें बिना भोजन-पानीके वहाँ बैठे रहना पड़ा। हम सबको १२ बजे दोपहरको कड़ी धूपमें दो घंटेतक खड़ा रखा गया। लम्बरदारके कहने-पर कुलियोंने जिन-जिन लोगोंकी तरफ इशारा किया, उनको गिरफ्तार करके थाने भेज दिया गया। उनको खाने या पीनेके लिए कुछ भी नहीं दिया गया और यदि किसीने उनको खाने-पीनेकी कोई चीज देनी चाही तो उसे पिटवाया गया और गालियाँ दी गईं। उन लोगोंको अगले दिन लाहौर ले जाया गया और जत्थोंमें पेश करके उनको सजाएँ सुना दी गईं। (बयान ४५२, पृष्ठ ५९२)

सरदार शानसिंह कहते हैं :

मुझे अन्य गिरफ्तारशुदा लोगोंके साथ पीठके पीछे हाथ करके हथकड़ियाँ लगाकर सरायमें रखा गया। मुझे वहाँ १५ या १६ दिनतक रहना पड़ा। मैं हथकड़ियोंकी वजहसे न तो खाना खा सकता था और न अपनी पगड़ी ही बाँध सकता था। रातको भी हथकड़ी लगी रहती थी। मेरे साथके दूसरे लोग मेरे मुँहमें खानेकी चीजें रख देते थे। कुछ लोग मेरी पगड़ी भी बाँध देते थे। मेरे बड़े भाई काहनसिंह भी मेरे साथ वहीं बन्दी थे। उनके पास एक अरबी घोड़ा था, जिसे पुलिसके सब-इन्स्पेक्टर अली मुहम्मदने उनसे माँगा और कहा कि दे देनेपर वे रिहा कर दिये जायेंगे। मेरे भाईने कहा था कि वे बिलकुल निर्दोष हैं इसलिए बिना बात अपना घोड़ा नहीं देंगे। मेरे भाईके इनकार करने-पर पुलिस सब-इन्स्पेक्टर बहुत नाराज हो गया और उसने कहा कि वह उन-पर बहुत-से अभियोग लगायेगा। सबसे पहले तो उसने यह किया कि मेरे भाईके घरमें रेलके किसी बाबूकी कुछ चीजें चोरीसे रखवा दीं और फिर जाँच-पड़तालके बाद वे चीजें उनके घरसे बरामद करवा दीं। . . . पुलिस सब-इन्स्पेक्टरने मुझसे भी कहा था कि अगर मैं अपनी जान बचाना चाहूँ तो उसको ५०० रुपये दे दूं। मैंने रुपया अदा करनेसे इनकार कर दिया। इसपर मेरे भाईके साथ मेरा भी चालान कर दिया गया। लेकिन बादमें मेरी पत्नीने किसीसे ५००) रुपये उधार लेकर चक मनोरा, शेखूपुराके जमींदार सुन्दरसिंहकी मार्फत सब-इन्स्पेक्टरके पास पहुँचा दिये। पुलिस सब-इन्स्पेक्टरने इसपर मुझे रिहा करा देनेका वादा किया। . . . सब इन्स्पेक्टरने, जिन लोगोंको मेरे खिलाफ बयान देनेके लिए तैयार किया था, उनको वैसा करनेसे रोक दिया। मेरे खिलाफ उसने सिर्फ एक मामूली-सा गवाह रहने दिया। इस तरह काफी सबूत न मिल पानेके कारण मुझे रिहा कर दिया गया। (बयान ४५४, पृष्ठ ४४९)

अन्धे आदमियोंतक को नहीं बख्शा गया। लद्धामल नामक एक अन्धेसे अपने लड़केको पेश करनेके लिए कहा गया और चूँकि उनका लड़का मौजूद नहीं था, इसलिए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें तभी रिहा किया गया जब लड़केकी माँने लड़केको पेश कर दिया। (बयान ४६७)। गनपतमल कहते हैं कि श्री बॉसवर्थ स्मिथने सभी गाँववालोंको जमा होनेका हुक्म दिया और उसका पालन न करनेका दण्ड उनकी सम्पत्तिको आग लगाना या जब्त कर लेना था। वे कहते हैं:

> **इसलिए सभी लोग डरके मारे दरबार साहबमें इकट्ठे हुए। लँगड़े साहबने पटवारीको जन-गणनाकी रिपोर्ट लानेके लिए कहा। शेखूपुराके डिप्टी लाला श्रीरामने उस रिपोर्टमें से उन लोगोंके नाम पढ़कर सुनाये, जो वहाँ मौजूद नहीं थे। पुलिसके जरिये उनकी स्त्रियोंको बुलाया गया। साहबने हुक्म दिया कि वे अपने पतियोंको पेश करें, नहीं तो उनके मकानोंमें आग लगा दी जायेगी और जमीन जब्त कर ली जायेगी। इस हुक्मके बाद स्त्रियोंको लौट जानेके लिए कह दिया गया और जिन गैरहाजिर लोगोंके भाई या पिता वहाँ मौजूद थे, उनको गिरफ्तार करके ले जाया गया।**

वे आगे कहते हैं:

> **गिरफ्तारशुदा लोगोंको १०-१०, १२-१२ के जत्थोंमें पेश किया गया और उनमें से हरएकको २ सालकी जेल और २०० रुपये जुर्मानेकी सजा सुनाई गई। कोई गवाही नहीं ली गई। सिर्फ उनसे माफी माँगनेके लिए कहा गया जिसपर उन लोगोंने कहा: "हुजूर हम बेकसूर हैं, अगर हमने कुछ किया हो तो माफी दी जाये।" (बयान ४५८)**

सरदार हरनामसिंह कहते हैं कि वे ४०० रुपया मालगुजारी अदा करते हैं और उन्होंने ८०० रुपयेकी कीमतके लड़ाईके बॉण्ड (वार बॉण्ड) खरीदे हैं। वे ६० रुपये गृह-करके रूपमें अदा करते हैं। उनके भाई खुशालसिंहको गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने मुकदमा लड़नेके लिए श्री मार्टिनको १,००० रुपयेपर वकील किया। लेकिन वे कहते हैं:

> **किसीने उनको पैरवी करनेकी इजाजत नहीं दी। वहाँ मौजूद सफाईके गवाहोंकी कोई बात नहीं सुनी गई, और न उनको इजलासमें ही बुलाया गया। खुशालसिंहका मुकदमा ५ मिनटमें निपटा दिया गया।**

वे कहते हैं:

> **सभी समरी मुकदमोंमें बॉसवर्थ खुद या वहाँ मौजूद कोई भी पुलिस इन्स्पेक्टर अभियुक्तोंसे इस तरह बात करता था। "तुम माफी माँगते हो?" अभियुक्त हमेशा इसका यही उत्तर देते थे—"हजूर, हम बेकसूर हैं, हमें माफ किया जाये।" लेकिन फाइलोंमें इसे इस ढंगसे दर्ज किया जाता था जैसे अभियुक्तने अपना कसूर कबूल कर लिया हो। सफाईका कोई गवाह पेश नहीं होने**

दिया गया और न सफाईकी तैयारी करनेका कोई वक्त ही दिया गया। पहले दिन करीब १०० अभियुक्तोंको सजा दी गई और २–३ घंटेके अन्दर ही उनके फैसले भी लिख दिये गये। (बयान ४४७)

चूहड़खानापर १,५०० रुपये जुर्माना किया गया। मंगलसिंह और उनके भाईको इस मदमें २३० रुपये भरने पड़े। (बयान ४६०) लाला फकीरचन्द जंगलीमलकी फर्मने सेनाके खर्चेके लिए अप्रैल महीनेमें ५० रुपये, दाण्डिक पुलिसके खर्चेके लिए ११४ रुपये और लेफ्टिनेन्ट गवर्नरके स्मारकके लिए २० रुपये अदा किये। दलालका कहना है: "यह रकम हमसे जबरन वसूल की गई।" (बयान ४८०)

शेखूपुरा

शेखूपुरा एक ऐतिहासिक स्थान है। यह लाहौरसे २५ मील दूर है और गुजरांवाला जिलेमें इसपर सबसे बादमें नजर पड़ती है। इसका नामकरण शाहंशाह जहाँगीरके प्यारके नामपर हुआ है और महाराजा रणजीतसिंहकी रानी नकाइन यहीं रहती थीं। इसकी आबादी लगभग २,५०० है।

शेखूपुरामें ६ अप्रैलको हड़ताल रही। हड़ताल स्वयंस्फूर्त और पूर्ण थी। पुलिस सब-इन्स्पेक्टरने जनताको रोकनेकी कोशिश की पर उसका कोई असर नहीं हुआ। शामको एक सभा हुई। अधिकारी भी मानते हैं कि उसमें बड़े संयत ढंगके भाषण दिये गये। सब-डिवीजनल अफसर राय साहब श्रीराम सूदने वकीलोंको बुलाकर धमकियाँ देकर सभाको रोकनेकी कोशिश की, लेकिन कामयाब नहीं हुए। इसके बाद १३ तारीखतक पूर्णतया शान्ति बनी रही। लेकिन अमृतसर और लाहौरकी घटनाओंके समाचारोंका शेखूपुराकी जनतापर असर हुआ और १४ तारीखकी सुबह दूसरी स्वयंस्फूर्त और पूर्ण हड़ताल हो गई, पर उसमें भी कुछ अघटनीय नहीं घटा। कहा तो गया है कि उस दिन एक नानबाईकी दुकान जबरन बन्द कराई गई और दुकानदारपर हमला भी किया गया। समरी अदालतके कागजातमें इस सम्बन्धम एक व्यक्तिको सजा देनेके हवालेके बावजूद इस आरोपकी सचाईसे इनकार किया जाता है। हाँ, रातको कुछ अज्ञात व्यक्तियोंने डाक-तार विभाग और रेलवे सिगनलके कुछ तार जरूर काटे। वे लोग शायद शेखूपुराके ही थे।

जो भी हो, हड़तालके फलस्वरूप कोई गड़बड़ी नहीं हुई; फिर भी १९ तारीखको मार्शल लॉ लागू कर दिया गया, और फिर शेखूपुरामें भी वही सब-कुछ हुआ जो अन्य स्थानोंपर हुआ। वकीलोंपर खास नजर रखी गई। उनको खास तौरपर अपमानित किया गया। उनको गिरफ्तार करके ४० दिनतक नजरबन्द रखनेके बाद बिना कोई मुकदमा चलाये या बिना यह बतलाये छोड़ दिया गया कि उनको गिरफ्तार क्यों किया गया था। शेखूपुराकी अपनी एक विशेषता यह रही कि दस वर्षकी अवस्थासे ऊपरके सभी मर्दोंको एक बड़े जमीनके टुकड़ेमें झाड़ू लगानेका हुक्म दिया गया।[1] ऐसा सिर्फ उनको अपमानित करनेके खयालसे किया गया। उनको तथाकथित जाँच पड़तालके लिए

१. श्री बॉसवर्थ स्मिथके कहनेपर।

७ दिनतक रोजाना बड़े सुबहसे लेकर शामतक हाजिरी देनी पड़ी। अन्य स्थानोंकी भांति यहां भी स्कूली बच्चोंतक को हाजिरी देने जाना पड़ता था।

३८ सालतक लम्बरदारी कर चुकने और पुलिस-इंस्पेक्टरके रूपमें अवकाश ग्रहण करनेवाले एक साठ वर्षीय सम्माननीय व्यक्तिको भी केवल इसलिए गिरफ्तार कर लिया गया कि जब पुलिसको उनके लड़कोंकी तलाश थी, उस समय वे शेखूपुरामें नहीं थे। उनकी जायदाद जब्त कर ली गई और उनके बटाईदारोंको फसल काटनेसे मना कर दिया गया।

सैनिकों और पुलिसके सिपाहियोंने मनमाने ढंगसे लोगोंके सामानपर हाथ साफ किया। गवाह बनानेके लिए अन्य स्थानोंकी तरह यहां भी जोर-जबरदस्ती की गई और मुकदमोंमें भी न्यायकी वही विडम्बना की गई जो अन्य स्थानोंपर देखनेको मिलती है। पर श्री बॉसवर्थ स्मिथने यहां एक नया कदम यह उठाया कि वकीलोंको वकालत करनेके अधिकारसे वंचित करानेके लिए उच्च न्यायालयके पास उनकी शिकायत की। हमने करीब ७० बयानोंमें से ३० बयान यहां देना तय किया है और जो सभी हमारी ऊपर कही हुई बातोंकी पुष्टि करते हैं।

सरदार बूटासिंह बी० ए०, एल एल० बी०, जिला वकील संघ (बार-लीग) के सदस्य थे। उन्होंने रंगरूटोंकी भरतीमें मदद की थी और इनसे बाओंके लिए उनको सरकारने एक प्रमाणपत्र भी दिया था। उनका कहना है कि वे किसी काममें लगे हुए थे, इसलिए उन्होंने दोनोंमें से किसी भी दिन की हड़तालमें भाग नहीं लिया। १४ अप्रैलके बारेमें वे लिखते हैं:

> किसी भी जगह कोई भीड़ जमा नहीं हुई, और न जनताने कहीं कोई प्रदर्शन या कोई ऐसा काम किया जिसे असामान्य कहा जाये।

अन्य स्थानीय नेताओंके साथ उनको भी १९ तारीखको अचानक गिरफ्तार कर लिया गया।

> हम सभीको संगीन लगी भरी बन्दूकोंसे लैस २५ सैनिकोंकी देखरेखमें रखा गया। हमको इसी दशामें शहर-भरमें घुमाया गया और एकाधिक बार हमारे ही गांववालोंके सामने हमको गन्दी जगहोंपर बैठनेके लिए मजबूर किया गया। करीब एक घंटेतक हमारी अपमानजनक स्थितिका पूरा तमाशा दिखानेके बाद, हमको बख्तरबन्द गाड़ीकी तरफ दौड़ाते हुए ले जाया गया। . . . मैं बीमारीके कारण जब दूसरे लोगोंके साथ कदम मिलाकर नहीं चल पाया, तो मुझे गालियाँ दी गईं, मेरा मखौल उड़ाया गया और मुझे लाठीसे पीटा भी गया।

कैदियोंको लाहौर ले जाया गया। इसमें दो घंटे लगे। बार-बार कहनेपर भी पहरेदारोंने उनको टट्टी-पेशाबकी इजाजत नहीं दी और शाम ढले उनको भोजन भी नहीं दिया गया।

> हमें रेलवे स्टेशनसे लाहौर सेन्ट्रल जेल ले जाया गया। वहाँ हथकड़ियाँ पहनाकर सभीको तनहाईमें डाल दिया गया। इस तरह हमको ४० दिनतक नजरबन्द रखा गया और हमें अधिकसे-अधिक परेशानी और तंगी झेलनी पड़ी।

लेकिन मानो इतना काफी नहीं लगा, इसलिए उन लोगोंको और अधिक अपमानित किया गया — रिहाईके समयतक भी। उनको हथकड़ियाँ पहनाकर शेखूपुरा ले जाकर पहले पुलिस थाने और फिर नायव तहसीलदारके घरतक पैदल चलाया गया। जाहिर है कि यह सब उनका मजाक उड़ानेके लिए ही किया जा रहा था। आखिर नायव तहसीलदारके घरपर उन सबको रिहा कर दिया गया। वयान (४८६)

लाला उशनाकराय बी० ए०, एल एल० बी० ९ वर्षसे प्रथम कोटिके वकील हैं। दो गाँवोंकी लम्बरदारी उनके यहाँ पुश्तैनी चली आ रही है। उनकी खुदकी जमीन-जायदाद काफी है। वे युद्ध-कोषके लिए बराबर चन्दा देते रहे हैं। वे कहते हैं: "मैंने पहली अप्रैलतक कभी भी किसी राजनीतिक सभामें भाग नहीं लिया था।" १५ तारीखकी सुबह सब-डिवीजनल अफसरने उनको बुला भेजा। उन्होंने विधि और व्यवस्था बनाये रखनेमें अफसरोंकी मदद करनेका वादा किया। सब-डिवीजनल अफसर उसी दिन शामको चूहड़खाना चला गया था। लेकिन लॉर्ड हंटरकी कमेटीके सामने दी गई उनकी गवाहीसे यह ताल-मेल नहीं खाता। गवाहीमें उन्होंने कहा कि शेखूपुरा ऊपरसे देखनेमें ही शान्त लगता था, वह शान्ति वास्तविक नहीं थी। यहाँ याद रखनेकी बात यह है कि तार काटनेकी जिन घटनाओंका हम उल्लेख कर आये हैं, उनके बावजूद वे शेखूपुरासे चले गये। गवाहका कहना है कि उन्होंने १८ अप्रैलकी शामतक स्थानीय अतिरिक्त सहायक आयुक्त (एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर) के साथ सहयोग किया। १९ तारीखको उन्होंने सब-डिवीजनल अफसरके यहाँ हाजिरी भी दी और उनको बताया कि शेखूपुरामें सब-कुछ ठीक चल रहा है। लेकिन उसके चन्द मिनट बाद ही उनके ही मकानमें उनको गिरफ्तार कर लिया गया और उनको न तो जाकेट पहननेकी इजाजत दी गई और न घरके दरवाजे बन्द करनेकी ही। वे कहते हैं:

> **वे लोग गोसाईं मायारामके लिए रुके हुए थे, उनका दफ्तर मेरे दफ्तरसे थोड़ी ही दूर था। उस अर्सेमें मुझसे वहीं जमीनपर गन्दगीमें बैठनेके लिए कहा गया। मैं थका हुआ नहीं था इसलिए बैठना नहीं चाहता था। लेकिन अपमानित करनेके लिए मुझे बैठनेपर मजबूर किया गया।**

लाहौरकी रेलवे हवालातका वर्णन करते हुए वे कहते हैं:

> **पहले उसे पाखानेकी तरह इस्तेमाल किया जाता था, इसलिए उसमें तेज बदबू समाई हुई थी। वह जगह आदमियोंके रहने लायक बिलकुल नहीं थी।**

उनको हवालातके बाहर ही अपनी पगड़ियाँ और जूते उतार देनेके लिए विवश किया गया। गौहरसिंहने सिख होनेके नाते अपनी पगड़ी उतारनेपर आपत्ति की और अपना चश्मा भी लगाये रखना चाहा, क्योंकि वृद्धावस्थाके कारण वे उसके बिना देख नहीं पाते थे। उनकी आपत्तियाँ अनसुनी कर दी गई। उन्हें बिना-कुछ बतलाये लम्बरदारीसे बर्खास्त कर दिया गया और ऊपरकी अदालतमें की गई उनकी अपील भी बिना किसी सुनवाईके खारिज कर दी गई। (बयान ४८५)।

गोसाईं मायाराम भी बी० ए०, एल एल० बी० हैं। उनका कहना है कि गिरफ्तारियाँ बड़े तड़के हुई।

हम लोग ठीकसे कपड़े भी नहीं पहने हुए थे। कुछ तो रातकी भूषा —— कमीज-पायजामे —— में ही थे। और मौलवी अलीमदीन वकील सिर्फ एक कमीज और धोती पहने हुए थे। हमने कपड़े मँगवा देनेका अनुरोध किया तो उसे बड़ी रुखाई और झुंझलाहटके साथ ठुकरा दिया गया।

लोगोंको जान-बूझकर अपमानित करनेके तरीकेको और अधिक विस्तारसे बतलाते हुए वे आगे कहते हैं:

मुझे, सरदार बूटासिंह, मौलवी अलीमदीन और जमीयतसिंहको एक डिब्बेमें रखा गया, और बेंचें होते हुए भी हमको फर्शपर ही बैठनेका आदेश दिया गया। सरदार बूटासिंहने उसी दिन सुबह दस्तकी दवा ली थी। वे पेशाब करनेके लिए जाना चाहते थे और उन्होंने एक पहरेदारसे इसकी अनुमति माँगी। परन्तु उसका कोई फायदा नहीं हुआ। हम सभीने बार-बार अनुरोध किया। इसपर एक सैनिकने उत्तर दिया था, "क्या तुम उसे पी नहीं सकते?"

वे कुछ अन्य घटनाओंका वर्णन करनेके बाद कहते हैं:

जेलमें हमें जो मुसीबतें झेलनी पड़ीं, उनका बयान नहीं किया जा सकता। साधारणतया जेलमें जो भोजन दिया जाता है वह मवेशियोंके लायक ही है, आदमियोंके नहीं। हमें स्नानादिके लिए सुबहके समय आधा घंटा और शामके समय भी आधा घंटा दिया जाता था, तभी हम अपने कमरेसे बाहर निकल सकते थे। कभी-कभी वार्डर लोग हमें यह एक घंटेका समय भी नहीं देते थे। वे अपनी मर्जीसे दरवाजा खोलते और जब चाहते तब बन्द कर देते थे। (बयान ४८३)

इस गवाहने सब-डिवीजनल अफसरके साथ हुई एक बड़ी दिलचस्प बातचीत सुनाई। उस अफसरने पहले उनको और फिर सभी वकीलोंको ६ अप्रैलकी सभामें शामिल होनेसे खबरदार करनेकी कोशिश की, लेकिन जब गवाहने उसे समझा दिया कि सभा आपत्तिजनक किस्मकी नहीं है और उसमें शामिल होना वकालतके लाइसेन्सोंके खिलाफ भी नहीं पड़ता तो उसने वैयक्तिक रूपसे अनुरोध किया, जिसे गोसाईंको मान ही लेना पड़ा। इसके बाद सब-डिवीजनल अफसरने अन्य वकीलोंको बुला भेजा और उनसे कहा कि गोसाईंने सभामें शरीक न होनेका वचन दिया है। गोसाईंने जब यह सुना तो उन्हें कैसा लगा सो उन्हींकी जबानी सुनिए:

मुझे इससे बड़ा दुःख पहुँचा। मैंने सोचा कि सब-डिवीजनल अफसरने दूसरोंपर असर डालनेके लिए मेरे नामका गलत ढंगसे इस्तेमाल किया है; इसलिए मैंने उनको लिख दिया कि मैं सभामें जाऊँगा, और मेरे नामका इस ढंगसे इस्तेमाल करनेका उनको कोई अधिकार नहीं है। (बयान ४८४)

सरदार प्रीतमसिंह वकील गिरफ्तार नहीं किये गये थे। उन्होंने १९ अप्रैलकी शामको मार्शल लॉकी घोषणाके बाद उसे लागू होते हुए देखा था। वे उसका वर्णन इन शब्दोंमें करते हैं :

> सब-डिवीजनल अफसर, रायसाहब श्रीरामने स्वयं ही घोषणा पढ़कर सुनाई और उन्होंने पूरी घोषणा पढ़ चुकनेके बाद लोगोंको बताया कि यदि दूसरी बार हड़ताल हुई तो उन्हें अधिकार है कि वे लोगोंपर गोली चलायें। उन्होंने इस अवसरपर अपनी छड़ीकी नोकसे कई सम्माननीय वृद्ध लोगोंकी ठुड्डी भी कोंची।

इसके बाद मशीनगनोंके जिस प्रदर्शनकी चर्चा हंटर कमेटीके सामने की गई उसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं :

> अप्रैल माहके अन्तमें ब्रिटिश और भारतीय सैनिकोंकी एक टुकड़ीने सरकारकी शक्ति जतानेकी गरजसे बन्दूकोंसे लैस मोटरों और मशीनगनोंका एक प्रदर्शन किया था। मशीनगनोंके सामनेकी तरफके एक टीलेपर लोहेके कई टुकड़े रख दिये गये। मशीनगनोंसे उन टुकड़ोंको छेद देनेके बाद वे टुकड़े लोगोंको दिखलाये गये। अफसरोंके हुक्मसे उन्हें यह तमाशा देखनेके लिए मजबूर किया गया था। फिर लोगोंसे कहा गया कि यदि उन्होंने सरकारके खिलाफ फिर कोई बगावत की तो उनको इन्हीं मशीनगनोंका निशाना बनाया जायेगा। पर शक्तिके इस प्रदर्शनसे पहले लेफ्टिनेंट-गवर्नर द्वारा जारी की गई एक घोषणा पढ़कर सुनाई गई थी, जिसमें उन्होंने लोगोंसे अपील की थी कि वे स्थितिको सामान्य बनानेमें सरकारके साथ सहयोग करें।

शक्तिके इस प्रदर्शनके साथ-साथ सहयोगकी अपील करना कुछ विचित्र और बेमेल-सा लगता है।

७ मईको या उसके आसपास एक दूसरा प्रदर्शन किया गया। वह कुछ भिन्न प्रकारका था। उसका मंशा केवल आतंकित करना नहीं बल्कि अपमानित करना भी था। हम फिर इसी गवाहके शब्दोंमें इसका वर्णन देते हैं :

> उन्होंने वहाँके सभी लोगोंको धूपमें जमा किया। उनमें वे वकील भी शामिल थे जो गिरफ्तार नहीं हुए थे। वकीलोंको दूसरे लोगोंसे अलग करके दो कतारोंमें खड़ा कर दिया गया। आगेकी कतारमें वे लोग थे जो ६ अप्रैलकी सभामें शामिल नहीं हुए थे और पीछेकी कतारमें वे लोग थे जो सभामें गये तो थे पर उन्होंने सक्रिय रूपसे कोई भाग नहीं लिया था। इसके बाद श्री बॉसवर्थ स्मियने अपना भाषण शुरू किया और भारतीय वकीलोंको अपने भाषणका मुख्य विषय बनाया। उन्होंने अन्य बातोंके साथ-साथ यह भी कहा कि भारतके वकील कमीन लोग हैं, जिन्होंने सरकारके खिलाफ आन्दोलन किया और बेकसूर जमींदारोंको अपना साधन बनाया है। उन्होंने मुझसे व्यक्तिगत रूपसे

पूछा कि मेरे पिता क्या करते थे और मैंने कहाँ शिक्षा पाई है। यह बतलाये जानेपर कि मैं स्कूलके एक अध्यापकका पुत्र हूँ और मेरी शिक्षा-दीक्षा लाहौर फॉर्मन क्रिश्चियन कालेजमें हुई है, उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया कि तब मैं उस आन्दोलनमें कैसे शामिल हो सका। श्री बॉसवर्थ स्मिथने मुझे अन्य वकीलोंके सामने ही कीड़ा-मकोड़ा कह डाला।

श्री बॉसवर्थ स्मिथने वकीलोंकी गत बना चुकनेपर एक अवकाशप्राप्त पुलिस इन्स्पेक्टर सरदार गौहरसिंहको[1] लिया। उन्होंने सरदार गौहरसिंहको हथकड़ियाँ पहने-पहने, नंगे पैर कड़ी धूपमें सभी लोगोंके सामने चलाया। साहबने लोगोंको बतलाया कि गौहरसिंह सरकारकी नमकहराम रिआया है, उसके तीन बेटों[2] को उनकी हरकतोंके लिए जेल भेजा जा चुका है और सरकार उसकी भी पेन्शन बन्द करके उसे देश-निकाला देकर बर्मा भेज देगी।

इसके बाद उन्होंने लोगोंको आम तौरपर सम्बोधित करके सलाह देनी शुरू की। उन्होंने सभीको 'सूअर लोग' और 'गन्दी मक्खियाँ' कहा। उन्होंने 'काला लोग', 'गन्दा लोग', और दुकानें बन्द करके सरकारके खिलाफ बगावत करनेवाले 'सब एक रंगका' लोग —— कहते हुए सचमुच जमीनपर थूक दिया। उन्होंने लोगोंसे कहा कि वकील लोग हमेशा धोखा देते हैं इसलिए उनकी बातपर कान नहीं देना चाहिए, अगर सलाह लेनी हो तो लम्बरदारों, जैलदारों, तहसीलदारों और डिप्टियोंके पास जाना चाहिए। (बयान ५०३)।

यहाँ हम देखते हैं कि वकीलोंका विशेष तौरपर अपमान किया गया और जनता जिनको अपना मित्र समझती है उनके प्रभावसे उसे अलग हटानेकी कोशिश की गई और पुत्रोंके कुछ कल्पित गलत कामोंके कारण एक सम्माननीय पुलिस इन्स्पेक्टरकी जान-बूझकर बेइज्जती की गई और सभी श्रोताओंको भद्दी-भद्दी गालियाँ सुनाई गई। यह सब उस अफसरने किया जिसे एक पूरा जिला सौंपा गया था और जिसे व्यवस्था कायम करने तथा गलत किस्मके काम करनेवालोंको दण्डित करनेके लिए भेजा गया था।

गौहरसिंहका मामला बतलाता है कि निर्दोष जनताको सख्तीके साथ सजा देनेमें अधिकारी लोग किस सीमातक गये थे। सरदार गौहरसिंह और उनके परिवारको लगभग बिलकुल बरबाद कर दिया गया है, उनको बरबाद करनेमें खास दिलचस्पी लेनेवाले अधिकारीने उचित-अनुचित साधनोंकी भी कोई सीमा नहीं मानी। यदि उनके पुत्र सरदार अमरसिंहके बयानपर भरोसा किया जाये तो यह परिवार कुछ दिनोंसे राय साहब श्रीरामकी नजरमें गड़ रहा था। गवाहका कहना है:

इसीलिए १९ अप्रैल, १९१९ को मेरे पिताको बिलकुल बेकसूर होनेपर भी गिरफ्तार करके लाहौर सेन्ट्रल जेल भेज दिया गया, हालाँकि उनको उसी दिन

१. जिनका जिक्र शेखूपुरा प्रकरणमें पहले ही हो चुका है।

२. अमरसिंह, आत्मासिंह और सोलह वर्षीय सन्तोकसिंह।

> छोड़ दिया गया। शेखूपुरामें उस दिन हम लोगोंपर जो-जो बीती, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हमारे सभी घरोंपर ताले जड़ दिये गये और सभी महिलाओं तथा बच्चोंको बाहर निकाल दिया गया। खेतोंमें खड़ी फसल जब्त कर ली गई और उसपर पहरा बैठा दिया गया और हमें फसल काटनेसे रोक दिया गया। हमारे गाँवके सभी लोग जानते हैं कि इसके कारण हमें कितना भारी नुकसान उठाना पड़ा। हमें लगातार धमकियाँ मिलती रहीं कि हमारे घरोंमें आग लगा दी जायेगी।

२० अप्रैलको इस गवाहको उसके दो भाइयोंके साथ गिरफ्तार कर लिया गया। उसके बहनोई [साले ?] और उनके एक मित्रको भी गिरफ्तार किया गया, साथमें दो नौकरोंको भी। सरदार अमरसिंहका कहना है कि उनको मेरी खातिर ही सब-कुछ भुगतना पड़ा, सिर्फ इसीलिए कि वे मेरे नौकर थे। और इन पाँचों अर्थात् उनके बहनोई [साले ?], मित्र और दो नौकरों [और खुद अमरसिंह] को बिना कोई मुकदमा चलाये २८ मईको छोड़ दिया गया। सरदार अमरसिंहको २४ मईको शेखूपुरा लाया गया। उनको शिनाख्तके बहाने हथकड़ियाँ पहनाकर लोगोंके सामने पेश किया गया। वे कहते हैं कि यह सब उनको जनताकी नजरोंमें बेइज्जत करनेके लिए ही किया गया। २६ तारीखको उनको श्री पैनीके सामने पेश किया गया। लेकिन चूँकि उनके खिलाफ व्यक्तिगत तौरपर कोई सबूत नहीं था, इसलिए उनको रिहा कर दिया गया। (बयान ४९०)

४९२, ४९३, ४९७, ४९९, ५०० और ५०१ नम्बरके गवाहोंने जो बयान दिये हैं उनसे स्पष्ट है कि गौहरसिंहके खिलाफ गवाही देनेके लिए उनपर दबाव डाला गया, या झूठी गवाही देनेके लिए तैयार न होनेपर खुद उनको गिरफ्तार किया गया और निर्दोष होते हुए भी अभियोग लगवाकर सजा दिलवाई गई। सरदार गौहरसिंह अपने मामलेका विवरण खुद उपस्थित करते हुए कहते हैं :

> अधिकारी लोग मेरे बेटोंको गिरफ्तार करना चाहते थे। मेरे बेटोंने खुद अपने-आपको उनके हवाले कर भी दिया फिर भी मेरे मकान, अस्तबल और मकानसे लगे हुए दूसरे आवासोंपर आठ दिनतक ताला पड़ा रहा और हमारे मकान तथा खेतोंपर कड़ा पहरा बैठा दिया गया। इस तरह हमें बेघरबार होकर बाहर रहना पड़ा। हमें अपनी फसलकी देखभाल नहीं करने दी गई, इससे फसलको काफी नुकसान पहुँचा। कुल फसलका दो-तिहाई पानेवाले हमारे बटाईदारोंको भी इससे नुकसान पहुँचा। इन बेचारे बटाईदारोंको नहरी पानीके करकी पूरी-पूरी राशि फिर भी भरनी पड़ी; उसमें कहीं कोई कमी नहीं की गई थी। १७ मईको मुझे फिर गिरफ्तार कर लिया गया और ३० मई, १९१९ को रिहा किया गया।

उनसे कोई कैफियत तलब किये बिना उनको लम्बरदारीसे बर्खास्त कर दिया गया। (बयान ४८८)

शेखूपुरामें कोई नुकसान नहीं पहुँचाया गया था। भीड़ने कहीं भी तार वगैरह नहीं काटे थे; फिर भी क्षतिपूर्तिके लिए जनतापर जुर्माना थोप दिया गया। गोसाईं मायाराम वकील कहते हैं:

> कुल नुकसान ५ रुपयेसे ज्यादाका नहीं हो सकता। फिर भी पहले तो हर्जानेके रूपमें ९,००० देनेको कहा गया लेकिन बादमें उसे घटाकर १०० रुपये कर दिया गया। इसमें से ६० रुपये उन चार वकीलोंसे वसूल किये गये, जिनको बिलकुल निर्दोष होते हुए भी ४० दिनतक जेलकी हवा खानी पड़ी थी। (बयान ४८३)

लाला ठाकुरदासने एक बात बतलाई है और श्री बॉसवर्थ स्मिथने उसे अपने बयानमें स्वीकार भी किया है; वह यह कि श्री बॉसवर्थ स्मिथ एक 'तौबा-घर' बनवाना चाहते थे। लाला ठाकुरदासको उस मदमें १,००० रुपये देने थे। (बयान ५०७)

अप्रैल महीनेके दौरान शेखूपुराकी घटनाओंका यह लेखा-जोखा पूरा करनेसे पहले कर्नल ओ'ब्रायन, श्री बॉसवर्थ स्मिथ और राय साहब श्रीराम सूदकी गवाहियोंके एक अंशपर नजर डाल लेना जरूरी है। उनकी गवाहियोंसे स्पष्ट है कि वे अपने काममें विद्वेषकी भावनासे प्रेरित थे। यह तो याद होगा कि कर्नल ओ'ब्रायनने भारत-रक्षा कानूनके तहत कमिश्नरोंको दी गई सत्ताके आधारपर बिना किसी वारंटके लोगोंको आम तौर-पर गिरफ्तार करनेकी कार्रवाईको उचित ठहराया था। हम भारत-रक्षा कानूनके इस खण्डका उल्लेख पहले ही कर चुके हैं। सामान्य बुद्धिसे तो उसका यही अर्थ लगाया जा सकता है कि उसमें कमिश्नरोंका ही स्पष्ट उल्लेख किया गया है, इसलिए डिप्टी-कमिश्नरोंको उसमें शामिल नहीं किया जा सकता। लेकिन जहाँतक शेखूपुराके वकीलों-की बात है, कर्नल ओ'ब्रायनने यह कहकर बात ही बदल दी कि उनको हड़तालका संगठन करनेके अभियोगमें गिरफ्तार किया गया है। श्री बॉसवर्थ स्मिथ इससे पहले कभी भी शेखूपुरा नहीं गये थे और इसलिए उन्होंने वकीलोंको पहले कभी नहीं देखा था। लेकिन उन्होंने वकीलोंके पूरे तबकेकी अकारण निन्दा ही नहीं की बल्कि उनके खिलाफ उच्च न्यायालयको शिकायत लिखकर भेजनेकी धृष्टता भी की। राय साहब श्रीराम सूदने स्वीकार किया है कि वकीलोंके खिलाफ उनकी शिकायतका आधार यह था कि (क) "एक वकील 'ट्रिब्यून' का ग्राहक था", (ख) "हड़तालके दिन उसे एक दूसरे वकीलके साथ नंगे सिर घूमते पाया गया" और (ग) "सभाके अध्यक्षके नाते उसके पास कुछ वकीलोंके पत्र आये थे जिनमें खेद प्रकट किया गया था" जबकि एक दूसरे वकीलके खिलाफ उनकी शिकायतका आधार यह था कि वह (क) "मुस्लिम हैरॉल्ड" का ग्राहक था", (ख) "उसे एक दूसरे वकीलके घर देखा गया और (ग) "उसने सभाके अध्यक्षको सभामें शामिल न हो सकनेकी असमर्थता प्रकट करते हुए एक पत्र लिखा था।"

हमने न तो सरसरी तौरपर निपटाये मुकदमों और न ही जोर-जबरदस्तीके तरीकोंके बारेमें अधिक विस्तारसे चर्चा की है। इन दोनोंके बारेमें शेखूपुराके लोगोंके बयानोंमें पूरा-पूरा सबूत मौजूद है। सरसरी तौरपर निबटाये गये ये मुकदमे एक

स्वाँग-भर थे। जोर-जबरदस्तीके तरीकोंके बारेमें जो सबूत मिलते हैं, उनसे एक काफी भयंकर चित्र सामने आता है।

लायलपुर

लायलपुर ही लायलपुर जिलेका सदर मुकाम है। यह एक नया शहर है, जिसकी आबादी १५,००० से ऊपर है। यह प्रान्त-भरमें गेहूँ बाहर भेजनेकी बड़ी मंडियोंमें से एक है। यहाँ ६ अप्रैलको एक स्वतःस्फूर्त और पूर्ण हड़ताल हुई थी और एक सार्वजनिक सभा भी हुई थी, जिसमें प्रस्ताव पास किये गये; और बहुत सावधानीके साथ तैयार किये गये लिखित भाषण दिये गये, जिनका स्वर काफी संयत था। यह सभा अधिकारियोंसे मशविरा करके ही की गई थी। १२ तारीखतक कोई घटना नहीं घटी। लेकिन तबतक श्री गांधी, डा० किचलू और डा० सत्यपालकी गिरफ्तारियों और लाहौर तथा अमृतसरमें गोली चलनेकी खबरें यहाँ पहुँच चुकीं थीं। इसपर फिर एक स्वतःस्फूर्त हड़ताल हुई। नेताओंने हड़ताल टालनेकी कोशिश की, लेकिन वे जनताकी भावनाओंको काबू नहीं कर सके। फिर भी उन्होंने शान्ति बनाये रखनेमें अधिकारियोंकी बड़ी मदद की। स्वर्ण मन्दिर (अमृतसर) पर की गई तथाकथित गोलीबारीकी अफवाहोंसे विशेषरूपसे सिखोंके बीच काफी उत्तेजना फैल गई और हड़ताल लम्बी खिंच गई। लेकिन नेताओंकी चतुराई और सतर्कताके कारण १५ तारीखको हड़ताल समाप्त हो गई। शहरमें किसी भी किस्मका कोई उपद्रव नहीं हुआ। लायलपुरके निकट तार काटनेकी घटनाएँ हुईं, लेकिन तार काटनेकी घटनाओंका हड़तालसे कोई सम्बन्ध नहीं था और न ही लायलपुरके किसी व्यक्तिसे उसका कोई सम्बन्ध था। स्टेशनपर भूसेकी गाँठें जमा थीं, उनमें आग लगा दी गई थी। इसे उपद्रवकारियोंका काम समझा गया। इस सिलसिलेमें निर्दोष व्यक्तियोंको गिरफ्तार किया गया और उनको बहुत तंग किया गया। परन्तु सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा हर्जानेका दावा करनेपर जब इसकी पूरी तौरपर जाँच कराई गई तो मजिस्ट्रेटने पाया कि भूसेमें आग लगानेका काम उपद्रवियोंका नहीं था; और फलतः उसने दावा खारिज कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश जाँच इतनी देरीसे कराई गई कि उससे निर्दोष लोगोंका कोई भला नहीं हो सका। हमने अपने दर्ज किये हुए बयानोंके साथ उस फैसलेकी प्रति भी संलग्न कर दी है। मजिस्ट्रेट कहते हैं :

> लगता है कि भूसेमें रातको सवा आठ और पौने नौ बजेके बीच आग लगी, गारदवालोंका ध्यान करीब आठ बजकर चालीस मिनटपर इस ओर गया। रात अँधेरी थी और उस समय फैक्टरियोंकी ओरसे तेज हवाके झोंके आ रहे थे। इस तेज हवाने बादमें एक अत्यन्त प्रबल अंधड़का रूप धारण कर लिया।
>
> आग भूसेकी गाँठोंके उसी ढेरमें, या कहिये उसी गुम्बदाकार अम्बारमें लगी जो फैक्टरियोंके सबसे ज्यादा निकट था, और फिर आग शुरू भी हुई थी उस ढेरके उसी हिस्सेकी ओरसे जो फैक्टरियोंके सबसे करीब पड़ता था। आग सबसे पहले, गाँठोंके ऊपर सिरकीका जो छान या छप्पर था उसमें लगी और

वहाँसे तुरन्त भूसेकी गाँठोंमें लग गई। भूसेकी रखवालीके लिए तैनात चौकीदार उस समय वहाँ नहीं था। स्टोर (कीपर) बाबू या भूसेकी गाँठ आदि बँधवाने-रखवानेके लिए जिम्मेदार अधिकारी आग शुरू होनेके थोड़ी देर बाद ही वहाँ पहुँच गया। मैं भी आग शुरू होनेके कुछ ही देर बाद घुड़सवार सैनिकोंके साथ उस स्थानपर पहुँच गया। मैं जब पहुँचा तो वहाँ फैक्टरियोंके कुछ लोग, नगर-पालिकाके चन्द कर्मचारी और ऊपर जिसका उल्लेख किया गया है उस स्टोर बाबूके अतिरिक्त कोई नहीं था। उन गाँठोंके पासतक किसी भीड़के जाने या आसपास किसी व्यक्तिके दिखाई पड़नेकी कोई जानकारी नहीं मिलती। चौकीदार-की गैर-हाजिरीकी वजह उसका आलसीपन मालूम पड़ता है। उसके पीछे किसी पूर्व-प्रबन्ध या पूर्व-योजनाका आभास नहीं मिलता। रेलवे-मालगोदामके आसपास न तो गश्ती पुलिसने और न पहरेदार ही ने ऐसा कुछ देखा जिससे सन्देह उत्पन्न होता। बादके अंधड़ने और दूसरे ढेरोंको आगसे बचानेमें सहायता पहुँचानेवाले लोगोंके पैरोंके निशानोंने, सबूत मिलनेकी सारी सम्भावना ही खत्म कर दी।

पुलिसने बहुत बारीकीसे जाँच की। उसमें भी भूसेमें आग लगानेका कोई सुराग नहीं मिला। लायलपुरके मुकदमोंके कुछ मुखबिर थे, जो लायलपुरके उपद्रवोंके लिए सजा पानेवाले अभियुक्तोंके सहकर्मी और विश्वासपात्र रह चुके थे। लेकिन वे भी भूसेमें आग लगनेके सिलसिलेमें कोई सूचना नहीं दे सके। लगता है, उनके सहकर्मियोंकी ऐसी कोई योजना नहीं थी।

उस समय इसके पीछे उपद्रवकारियोंका हाथ होनेका सन्देह गहरा होनेके कारण ये थे:

(१) उपद्रवोंके सिलसिलेमें अन्य स्थानोंपर इसी प्रकारके काण्ड हो चुके थे।

(२) कहा जाता है कि टोबा टेकसिंहमें भूसा जलानेकी कोई साजिश की भी गई थी।

(३) यह तथ्य कि एक दिन पहले माल-गोदामसे सामान हटाया जा चुका था।

लेकिन पुलिसकी जाँचसे भूसेमें आग लगाये जानेकी इस घटनाके साथ उप-द्रवकारियों या किसी उपद्रव या दंगेका कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सका है। लायलपुरके उपद्रवोंके सिलसिलेमें सजा भुगतनेवाले कैदियोंसे मैंने पूछताछ की। अब, जबकि उन्हें सजा दी जा चुकी है, उनको इस सम्बन्धमें कोई बात छिपानेकी जरूरत नहीं रह गई है, और उन्होंने अन्य कई बातोंके सम्बन्धमें मुझे बहुत-कुछ बतलाया भी है, पर भूसा-कांडके बारेमें किसीने कोई जानकारी नहीं दी।

मैंने इस अटकलकी भी जाँच की है कि इसके पीछे कहीं गाँवके किसी एक आदमी या कई आदमियोंका हाथ तो नहीं था। पर मुझे ऐसा कोई सूत्र नहीं मिल सका।

जिस दिन यह घटना घटी उस दिन चार फैक्टरियाँ काम कर रही थीं। उनमें से एक भूसेके ढेरके बिलकुल ही करीब थी। जाड़ेके दिनोंमें फैक्टरियाँ चलनेसे भूसेमें आग नहीं लगी, लेकिन अप्रैल महीना शुरू होनेके बाद फैक्टरियोंकी चिमनीसे निकलनेवाली चिनगारियोंसे फैक्टरियोंके अहातेमें जमा रुईके ढेरोंमें कई बार आग लग चुकी है। हालाँकि दूरीके कारण सम्भावना कम है, लेकिन हो सकता है कि भूसेमें आग लगनेका कारण यही रहा हो।

मुझे ठीक-ठीक कुछ पता नहीं चल सका, केवल एक सन्देह ही मनमें बना रहा कि इस क्षेत्रमें होनेवाले उपद्रव और लोगोंके गैरकानूनी जमावके फलस्वरूप ही शायद यह नुकसान हुआ हो।

इसलिए मैं पुलिस अधिनियमके खण्ड १५ क (२) (ग) द्वारा अपेक्षित मूल्यांकनसे सहमत होनेमें असमर्थ हूँ।

मजिस्ट्रेटने प्रासंगिक तौरपर कहा है:

उस दिन लायलपुरमें कोई भी दंगा या उपद्रव नहीं हुआ; हालाँकि दुकानें बन्द रखी गईं लेकिन खुद शहरमें कहीं भी कोई अव्यवस्था या लोगोंका गैर-कानूनी जमाव देखनेमें नहीं आया। (बयान ५१७ ए)

लायलपुर हिंसात्मक कार्रवाइयोंसे इतना ज्यादा मुक्त रहा कि पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री बॉसवर्थ स्मिथने हंटर कमेटीके सामने साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कहा कि वहाँ मार्शल लॉ "अत्यावश्यक" नहीं था, हालाँकि वे उसे "वांछनीय" मानते थे। लेकिन फिर भी जितना सैनिक प्रदर्शन किया जा सकता था, किया गया; जितना आतंक फैलाया जा सकता था, फैलाया गया। लोगोंपर मुकदमे चलाये गये, सलाम करनेके हुक्म जारी किये गये, उनकी यात्रापर रोक लगाई गई और उनपर उनके अपने नेताओंका जो प्रभाव था, उसे कम करने और उनकी साख उखाड़नेकी सर्वथा अनावश्यक कोशिशोंका सहारा लिया गया था।

गिरफ्तारियाँ २२ तारीखको शुरू हुईं। लाला चिन्तराम थापर कहते हैं:

२२ तारीखको लोगोंने अभी बिस्तरे भी नहीं छोड़े थे कि ब्रिटिश सैनिकोंने शहरको घेर लिया और चारों तरफ मशीनगनें लगा दीं। करीब १२ लोग गिरफ्तार किये गये। मैं भी उनमें से एक था। . . . २ मईको हम लोगोंको, दो-दोको एक-एक हथकड़ी पहनाकर, अदालतके सामने पेश किया गया। हमने विरोध प्रकट किया। . . . इस प्रकार हमें जेलसे अदालत और अदालतसे जेल ले जाया गया और हम जबतक अदालतमें रहे, हथकड़ियाँ पहने रहे और हमें बैठनेतक की अनुमति नहीं दी गई। मुझे मुखबिर बनानेकी कोशिशें की गईं, और मेरे एक मित्रके जरिये मेरे पास डिप्टी कमिश्नरके हस्ताक्षरके साथ एक पत्र भी भिजवाया गया।

लेकिन यह गवाह झुका नहीं। सजा सुनानेके बाद, कैदियोंको लाहौर ले जाया गया। गवाह कहता है:

> करीब ११ बजे, कड़कड़ाती धूपमें हमें हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ पहनाये हुए जेलसे स्टेशनतक पैदल चलाया गया। बेड़ियोंके कारण हमारे घुटनें जख्मी हो गये थे। (बयान ५२१, पृष्ठ ६६४)

इन गिरफ्तारशुदा लोगोंमें लाला बोधराज भी थे। वे जिला कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष, लायलपुरमें पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेडके निदेशक और डी० एम० ए० एस० हाईस्कूल कमेटीके उपाध्यक्ष हैं और पिछले बाईस वर्षोंसे वकालत करते आ रहे हैं। गुजराँवालामें तो नहीं पर यहाँके कैदियोंको बतला दिया गया कि उनपर किन अभियोगोंके लिए मुकदमे चलाये जायेंगे। उनपर भारतीय दण्ड संहिताके खण्ड १४३ के अन्तर्गत अभियोग लगाये गये थे। यह खण्ड गैरकानूनी सभाओं इत्यादिसे सम्बन्धित है। इसलिए उन्होंने जमानतोंके लिए प्रार्थनापत्र दिये [क्योंकि इस खंडके अन्तर्गत जमानतकी व्यवस्था है।] लेकिन उनके प्रार्थनापत्र इस आधारपर ठुकरा दिये गये कि उनपर कुछ और अभियोग लगानेकी बात भी सोची जा रही है। नजरबन्दीके दौरान उनके साथ जैसा सलूक किया गया उसका वर्णन करते हुए गवाहने बतलाया है कि यद्यपि हवालाती कैदियोंको अपने घरसे खाना मँगानेकी छूट रहती है, लेकिन जब उन्होंने घरसे खाना मँगानेकी इजाजतके लिए प्रार्थनापत्र दिया तो उसे सिर्फ ठुकरा ही नहीं दिया गया बल्कि यह फबती भी कसी गई: "चूँकि वे उपवास भी कर सकते हैं, इसलिए उनको जेलके खानेसे सन्तुष्ट रहना चाहिए।" मुकदमेके दौरान उनको १० बजे सुबहसे ७ बजे शामतक खड़ा रखा जाता था। इसपर उन्होंने अनुरोध किया कि दिनभर में उनको एक बार तो अपने खर्चसे जलपान करनेकी अनुमति दी जाये। पहले दिन तो इसकी इजाजत मिल गई लेकिन बादमें उनसे कह दिया गया कि उनको इसका कोई अधिकार नहीं। मजिस्ट्रेटने मुकदमेकी कार्रवाई शुरू होनेसे पहले और उसके बाद भी उनको मुकदमेके कागजात देखनेकी अनुमति नहीं दी; फिर भी उनसे सफाईके गवाहोंके नाम देनेके लिए कहा गया। (बयान ५१७) लाला अमीरचन्द[1] १३ अप्रैलको अपने घरेलू कामसे लायलपुर आये थे। वे ५ अप्रैलको कलकत्तासे लाहौर पहुँचे थे। उनको भी गिरफ्तार कर लिया गया। अधिकारियोंके कहनेपर मुकदमेकी तारीख बढ़ती रही। अन्तमें १४ जूनकी तारीख मुकर्रर की गई, लेकिन बिना किसी सूचनाके अचानक ही तारीख घटा दी गई और ५ जूनको ही मुकदमेकी सुनवाई हो गई। गवाहका कहना है कि उनको अपने गवाह पेश करनेका मौका दिये बगैर ही सजा सुना दी गई। ६ तारीखको उनपर नये अभियोग लगाये गये और तीन महीनेके कारावासकी सजा दे दी गई, और १८ जूनको उन्हें दो वर्षके कारावासकी सजा सुना दी गई। लेफ्टिनेन्ट-गवर्नरने अन्य कई लोगोंके साथ उनकी सजापर भी पुनर्विचार किया। फलस्वरूप उन्हें १८ सितम्बरको रिहा कर दिया गया। उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया और मुचलका देनेके लिए कहा गया; पर

१. अनारकली, लाहौरके 'स्वदेशी स्टोर्स' के मालिक।

पुलिसवाले ही जानें कि बादमें उन्होंने मामला क्यों वापस ले लिया। लाला अमीरचन्द बतलाते हैं कि उन्हें बादमें पता चला कि उन्हें इस सन्देहमें गिरफ्तार किया गया था कि चूंकि वे बंगालसे आये हैं इसलिए उनके पास कुछ शस्त्रास्त्र हो सकते हैं। अन्तमें वे कहते हैं:

> इसीलिए मुझे गिरफ्तार करने जो अफसर मेरे घर आये थे वे पिस्तौलें लिये हुए थे। (बयान ५२४)

सरदार संतसिंहने वकीलों और अन्य लोगोंके मुकदमोंका बड़ा ब्यौरेवार वर्णन किया है। वे बतलाते हैं कि सफाई देनेके दौरान कैसे हर कदमपर उनके लिए अड़चनें पैदा की गईं, कैसे हर काममें देर की गई, और जब इस तरह हर काममें देर की जा रही थी उस दौरान किस तरह उनको नजरबन्द रखा गया, और यद्यपि मार्शल लॉकी अवधि समाप्त होनेपर भी उनके मुकदमोंकी सुनवाई पूरी नहीं हो सकी फिर भी उन्हें कैसे सजा दे दी गई। अच्छा यह रहा कि मार्शल लॉकी समाप्तिके बाद इन मुकदमोंका फैसला होनेके कारण वे उसकी अपील कर सकते थे। ऊपरकी अदालतने सजाओंको अवैधानिक करार दिया और मुकदमे फिर नये सिरेसे सुनवाईके लिए निचली अदालतमें भेज दिये गये। फिर उनको २३ जुलाईको रिहा कर दिया गया, लेकिन तुरन्त ही फिर गिरफ्तार कर लिया गया। पर इस बार उनको जमानतपर छोड़ दिया गया।

इसके बाद उन सभीने पूरी निश्चिन्ततासे अपनी वकालत फिर शुरू कर दी। लेकिन मजिस्ट्रेटने उनको फिर बुला भेजा और उनको बतलाया कि वे अभी भी हवालाती हैं और "दोषपूर्ण आचरणके अपराधी" हैं, इसलिए वे अपनी वकालत शुरू नहीं कर सकते। गवाहका कहना है कि हालाँकि मजिस्ट्रेटने उनको यह सब बतौर मशविरेके ही कहा था, पर उन्होंने वकालत शुरू न करनेमें ही बुद्धिमानी समझी। लेकिन अब भी नाटकका अन्त नहीं हुआ था। १ अक्तूबरको उनके खिलाफ बिना जमानती वारंट जारी कर दिये गये।

उनको गिरफ्तार कर लिया गया और गवाह कहता है:

> हमें गन्दे कमरेमें फर्शपर गन्दी किस्मकी चटाइयोंपर सोनेके लिए मजबूर कर अपमानित किया गया; जेलमें हवालातियोंके साथ रखनेका हमारा अनुरोध भी अनसुना कर दिया गया।

लेकिन अन्तमें इस अत्याचारके विरुद्ध शाही परिषद्‌में माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय द्वारा जोरदार आवाज उठानेपर मुकदमा वापस ले लिया गया[1] और वकीलोंको नजरबन्दीसे रिहा कर दिया गया। (बयान ५१६)

[1]. पंडित मदनमोहन मालवीयने (पंजाबमें मार्शल लॉकी स्थितिके सम्बन्धमें) ९२ प्रश्नोंकी पूर्व-सूचना दी थी। ये प्रश्न वे शाही विधान परिषद्‌में सितम्बर १९१९ में पूछना चाहते थे। लेकिन उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी गई।

बैरिस्टर श्री रामदास छोकरा कहते हैं कि उन्हें सत्याग्रहपर एक निबन्ध पढ़नेके अपराधमें "लायलपुर नगरपालिकाकी सीमामें" नजरबन्द कर दिया गया था और यह नजरबन्दी मार्शल लॉ खत्म होनेतक चलती रही। वे कहते हैं : -

> लेकिन एक और भी हुक्म दिया गया था, जिसका पालन नजरबन्दीसे कहीं ज्यादा मुश्किल था। हुक्म था कचहरी बाजारके मेरे दफ्तरपर मार्शल लॉ सम्बन्धी नोटिस लगानेके बारेमें। मेरा दफ्तर मेरे घरसे करीब आधा मील दूर है, और इतनी दूरसे मार्शल लॉ सम्बन्धी नोटिसोंकी देखभाल करनेके लिए पूरी तरह एक इसी कामसे बँधे रहना एक बहुत कठिन जिम्मेदारी थी। मैंने इसके बारेमें कमांडरसे बड़ी विनम्रताके साथ अनुरोध किया, पर उसे अनसुना कर दिया गया। मैंने कमांडरसे कहा कि मेरा दफ्तर मेरे घरसे काफी दूर है, इसलिए अच्छा हो अगर मार्शल लॉके नोटिस (इश्तिहार) मेरी अनुपस्थितिमें मेरे दफ्तर-पर न लगवाये जाकर मुझे व्यक्तिगत रूपसे दे दिये जायें क्योंकि मेरे दफ्तरपर लगवानेसे यह भी हो सकता है कि मुझे नोटिस लगनेकी बात पता चलनेसे पहले ही वे फाड़ डाले जायें। मैंने उनसे यह भी अनुरोध किया कि मुझे वे इश्तिहार एक पटलपर चिपकानेकी अनुमति दे दें, मैं उनको दिनके समय ऐसे स्थानपर रखवानेकी व्यवस्था कर दूँगा कि लोग उनको देख सकें, और रातको मैं उनको हटवा दूँगा जिससे रातको मुझे उनकी चौकसी नहीं करनी पड़े। कमांडरने कहा है कि मेरे अनुरोध सर्वथा उचित हैं, और वे उनके बारेमें डिप्टी कमिश्नरसे सलाह-मशविरा करके मुझे बतलायेंगे। दूसरे दिन मुझे बतलाया गया कि मुझे रोज शामको पुलिस सुपरिंटेंडेंटके दफ्तर जाकर पता लगाना चाहिए कि मार्शल लॉके कोई इश्तिहार हैं या नहीं। लेकिन मेरे दूसरे अनुरोधके बारेमें उन्होंने बिलकुल चुप्पी साध ली।
>
> अपने खिलाफ ये आदेश जारी किये जानेके बाद मैंने डिप्टी कमिश्नरसे मुलाकात की और उनसे सीधा सवाल किया कि मुझे इस तरह तंग क्यों किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि मेरे बारेमें उनको जो खबरें दी जाती रही हैं, वे अच्छी नहीं हैं। मैंने कहा : "मैंने भी यही सुना है। क्या आप यह बतलानेकी कृपा करेंगे कि मेरे खिलाफ शिकायतें क्या हैं?" उन्होंने इसके लिए पुलिसके कागजात देखनेका वादा किया। इसके बाद मैं दो बार उनके पास गया लेकिन हर बार मुझसे यही कहा गया कि उनको कागजात देखनेका समय नहीं मिल पाया। और मैं आजतक नहीं समझ पाया कि अधिकारियोंके इस विचित्र रवैयेका कारण क्या था। (बयान ५२०)

यहाँ भी लोगोंपर झूठी गवाही देनेके लिए वैसे ही दबाव डाले गये। जैसे कि हम अन्य स्थानोंके सम्बन्धमें बतला आये हैं। एक अधिकारीने एक गवाहपर एक खास किस्मकी गवाहीके लिए दबाव डालनेके दौरान एक बड़ा उल्लेखनीय वाक्य कहा : "या

तख्त लो, या तख्ता मिलेगा"। यदि गवाह अधिकारियोंकी इच्छाके मुताबिक गवाही दे देता तो उसको रिहा कर दिया जाता और यदि न देता तो उसको जेलमें वापस डाल दिया जाता। (बयान ५३०, बयान ५१८, ५२२, ५२५, ५३१, ५३३, ५३६, ५३७ और ५४८ भी देखिए।)

गुजरात

गुजरात एक ऐतिहासिक स्थान है। सिख युद्धके दौरान गुजरातकी प्रसिद्ध लड़ाई[1] यहीं हुई थी। इसकी आबादी लगभग २०,००० है। यह मुख्य लाइनपर वजीराबादसे ९ मील दूर एक रेलवे स्टेशन है।

यहाँ ६ अप्रैलको हड़ताल की कोशिश की गई थी लेकिन सनातन धर्म सभाके अध्यक्ष और स्थानीय व्यापारी लाला रामनन्द टंडनके प्रयत्नसे वह रुक गई। लेकिन १३ ता० को लाहौरमें पढ़नेवाले गुजरातके कुछ विद्यार्थी और वैसाखी मेलेके सिलसिलेमें वजीराबादसे लौटनेवाले कुछ अन्य लोग ११ बजे रातकी ट्रेनसे गुजरात पहुँचे। उन्होंने ट्रेनसे उतर एक जुलूस-सा बना लिया और रौलट अधिनियमके खिलाफ नारे लगाते हुए शहरमें प्रवेश किया। सुबह उन्होंने लाहौर तथा अन्य स्थानोंके काण्डोंके समाचार जनताको सुनाये और दुकानदारोंको दुकानें बन्द करनेके लिए तैयार कर लिया। हड़ताल हो गई। इसपर अधिकारियोंने म्युनिसिपल कमिश्नरों (सदस्यों) को बुलाया और उनसे अपने-अपने वार्डोंपर नजर रखनेके लिए कहा। तदनुसार उन्होंने अपने मित्रोंकी सहायतासे १४ की रातको अपने-अपने वार्डोंमें पूरी चौकसी रखी, अतः रास्तेमें कोई गड़बड़ी नहीं हो पाई। १५ तारीखको मिशन स्कूलके लड़के अपने स्कूलकी ओर चले और रास्तेमें कुछ और लोग भी साथ हो गये। सबने स्कूल पहुँचकर हेडमास्टरसे स्कूल बन्द करनेके लिए कहा। हेडमास्टरने स्कूल बन्द करनेसे इनकार कर दिया और इतना ही नहीं, कहते हैं उन्होंने कुछ लड़कोंको बेंतसे पीटा भी। इसपर लड़कोंने स्कूलपर पथराव किया और कुछ खिड़कियोंके काँच तोड़ डाले। उन्होंने स्टेशनको भी इसी तरहका नुकसान पहुँचाया। कुछ कागज-पत्र जला दिये, पर अभी वे इतना ही कर पाये थे, कि गोलियाँ चलने लगीं और वे तितर-बितर हो गये। कोई हताहत नहीं हुआ।

यहाँ इससे ज्यादा कुछ नहीं हुआ। हड़तालमें और उसके बादकी घटनाओंमें भी किसी जिम्मेदार आदमीने भाग नहीं लिया था। फिर भी १९ अप्रैलको गुजरातमें मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। यहाँके डिप्टी कमिश्नर श्री विलियमसनको मार्शल लॉके बारेमें कोई जानकारी नहीं थी। वे चाहते भी नहीं थे कि मार्शल लॉ लागू किया जाये। और जब उनको मार्शल लॉकी घोषणाका तार मिला तो उन्होंने पूछा भी था कि क्या अधिकारियोंका मतलब पंजाब प्रान्तके गुजरात जिलेसे है। उनका खयाल था कि अधिकारियोंने बम्बई प्रेसीडेन्सीके गुजरातपर मार्शल लॉ लगाया होगा। लेकिन वह उनका भ्रम था, और जिस गुजरातने ऐसी कोई हरकत नहीं की थी जिसके कारण उसे इस नियमका शिकार बनाया जाता, उसी गुजरातको सेनाके हाथों सौंप दिया गया और जूनमें मार्शल लॉ उठा लिये जानेतक वह सेनाके ही अधीन रहा।

१. १८४९ में।

गुजरातमें दो गुट हैं। इनमें से एक गुटसे स्थानीय अधिकारियोंका भी सम्बन्ध है। दूसरेके नेता हैं—सेठ चिरागदीन। वे एक प्रमुख नागरिक हैं और अभी हालतक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट तथा म्युनिसिपल कमिश्नर भी थे। इसलिए लगता है, अधिकारियोंवाले गुटने अपने विरोधियोंके दलको तोड़ देनेकी ठान ली थी। फलतः, गुजरातके एक बैरिस्टर श्री हरगोपाल और कुछ अन्य लोगोंको गिरफ्तार करके लम्बे अर्सेतक नजरबन्द रखा गया। मार्शल लॉ न्यायाधिकरणने उनके मामलेकी सुनवाई की और उनको बिलकुल निर्दोष करार दिया। न्यायाधीशने उनको बिलकुल बरी करते हुए टीका की कि अभियोक्ता-पक्षकी ओरसे गवाही देनेवाले अधिकारियोंने झूठी गवाहियाँ दी हैं। लाला रामचन्द टंडनने युद्धके दौरान अधिकारियोंकी बड़ी सहायता की थी। उनके पास कई ऐसे कामोंके लिए सरकारी सनदें भी मौजूद हैं। लेकिन उनको भी इस तरह तंग किया गया। संभ्रान्त वकीलों और अन्य कुछ लोगोंके घरोंकी बिलकुल अकारण ही तलाशियाँ ली गईं।

सेठ चिरागदीनको मजिस्ट्रेट और कमिश्नरके पदोंसे हटा दिया गया। उनके पास वाइसरायसे लेकर निचले अधिकारियोंतक की कई सनदें मौजूद हैं। उनको कैसरे-हिन्द पदक भी दिया गया था। उन्होंने खुद अपनी कोशिशसे सरकारको २०० रंगरूट दिये थे। गुजरातके सम्बन्धमें हमने जो बयान चुने हैं उनपर गौर फरमाया जाये। श्री हरगोपालने झूठी गवाहियोंके लिए अधिकारियोंपर मुकदमा चलानेकी अनुमति माँगी, लेकिन उसकी मंजूरी नहीं दी गई।

जो दूसरी तकलीफें अन्य जिलोंके लोगोंको झेलनी पड़ीं वही तकलीफें गुजरातके लोगोंको भी झेलनी पड़ीं। यहाँ यह भी बतला देना चाहिए कि गुजरातमें किसी तरहकी कोई राजनीतिक गतिविधि नहीं रही है। यहाँ तो जिला कांग्रेस कमेटीतक नहीं बनी है।

गुजरातपर बिना किसी औचित्यके दाण्डिक पुलिस बैठा दी गई है। इसपर ४२,००० रुपयेका कर लगाया गया है, जिसकी वसूली छः किस्तोंमें की जायेगी। पहली किस्त वसूली जा चुकी है। और उसकी एक विचित्रता यह रही कि किस्तकी कुल राशिका एक-चौथाई हिस्सा सिर्फ लाला राम चन्द टंडनसे और एक-चौथाई हिस्सा कुछ वकीलोंसे वसूल किया गया है। इस करकी वसूली भी हमारे खयालसे उतनी ही अन्यायपूर्ण है जितना कि यह कर खुद अपने-आपमें है।

जलालपुर जट्टाँ

यह गुजरात जिलेमें गुजरातसे करीब आठ मीलकी दूरीपर स्थित एक छोटा-सा गाँव है। यह बुनाईका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है।

यहाँ ६ अप्रैलको कोई हड़ताल नहीं हुई। लेकिन १५ अप्रैलको हड़ताल हुई, जिसे सहानुभूति-सूचक हड़ताल ही कहा जा सकता है। जन-समूहने जान-मालको कहीं कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। एक जुलूस निकाला गया, जिसमें सभी लोग शामिल थे। १५ या १६ तारीखको रातमें किसीने टेलीग्राफका एक तार काटा।

बस, इतनी-सी बातपर बाजाब्ते मार्शल लॉ घोषित कर दिया गया। इसके बाद ही प्रतिष्ठित नागरिकोंकी गिरफ्तारी शुरू हुई। कुल १७ गिरफ्तारियाँ हुईं। उनमें से एकको तो अदालतमें पेश किये बिना ही छोड़ दिया गया। अन्य लोगोंको मार्शल लॉ कमिशनके सामने पेश किया गया। उनमें से दस छोड़ दिये गये और शेष छः को अलग-अलग सजाएँ सुना दी गईं।

मार्शल लॉके दौरान स्कूली लड़कों, जिनमें छोटे बच्चे भी शामिल थे, को प्रति दिन तीन बार थाने जाकर हाजिरी देनी पड़ी।

बिलकुल अकारण ही इस गाँवपर १२,००० रुपयेका जुर्माना ठोक दिया गया है, और उसका छठा भाग वसूल भी जा चुका है।

मलकवाल

मलकवाल एक महत्त्वपूर्ण रेलवे जंकशन है। यहाँ लालामूसा होकर जाते हैं। लालामूसा बड़ी लाइनपर गुजरातसे दस मीलसे कुछ ही अधिक दूरीपर है। इसकी आबादी ३,००० है। मलकवालमें १७ अप्रैलको कुछ लोगों, शायद रेलवे मजदूरोंने, एक पटरी उखाड़ दी थी और इस प्रकार रेलवे यात्रियोंके लिए खतरा पैदा कर दिया था। और सचमुच एक गाड़ी पटरीसे उतर भी गई, लेकिन सौभाग्यसे उससे कोई नुकसान नहीं पहुँचा।

यथासमय मलकवालमें भी मार्शल लॉ लागू कर दिया गया और फिर यहाँ भी वही सब हुआ जो अन्यत्र हुआ था; जाँच करनेपर हमें पता चला कि चालीससे अधिक व्यक्ति गिरफ्तार किये गये थे। उनमें तरुण विद्यार्थी और बीसेक रेलवे क्लर्क भी थे। इनमें से आठ बरी कर दिये गये, और १५ से ज्यादा लोगोंको बिना मुकदमा चलाये छोड़ दिया गया, पर उनको काफी दिनोंतक हिरासतमें रहना पड़ा। प्रतिष्ठित नागरिकोंको अफसरोंके पंखे खींचनेपर मजबूर किया गया। उनसे सड़कोंकी सफाईके साथ अन्य काम भी कराये गये। स्कूली बच्चोंको हर रोज जाकर तीन बार ब्रिटिश झंडेको सलामी देनेपर विवश किया गया।

रेलवे क्लर्कोंको बरी होनेपर भी नौकरीसे बरखास्त कर दिया गया। उनमें से कुछ तो ऐसे भी थे जिनकी नौकरी तीस सालसे भी ज्यादाकी हो चुकी थी।

तो इस प्रकार अब हमने जिन पाँच जिलों — अमृतसर, लाहौर, गुजराँवाला, लायलपुर और गुजरात — में मार्शल लॉ लागू किया गया था उनसे सम्बन्धित गत अप्रैलकी सारी घटनाओंका यथासम्भव संक्षिप्त रूपमें सिंहावलोकन कर लिया है। हमारी तो इच्छा थी कि पंजाबकी इन दुःखद घटनाओंको हम उचित विस्तारके साथ पेश करें, लेकिन हम ऐसा कर नहीं पाये; इन्हें हमने दुःखद इसलिए कहा कि इनके साथ कोई और विशेषण जोड़ा ही नहीं जा सकता। हमने जनताके समक्ष जो बयान प्रस्तुत किये हैं उनमें अत्याचार, भ्रष्टाचार और मानवीय भावनाओंकी घोर उपेक्षाकी जो कहानी भरी पड़ी है इस छोटेसे विवेचनमें उस सबका समावेश कर पाना हमारी सामर्थ्यसे बाहर है। हमने प्रयास यही किया है कि दोनों पक्षोंको निष्पक्षताके साथ पेश करें। हमारी कोशिश रही है कि अधिकारियोंको अचानक ही जैसी असाधारण परिस्थितिका सामना करना

पड़ गया था, उसका पूरा-पूरा ध्यान रखें और काफी गुंजाइश रखकर उनके कृत्योंके बारेमें कोई राय बनायें। लेकिन तब भी हमारा निष्कर्ष यही है कि जिस चीजको उपद्रव कहा गया है, उसका दमन करनेके लिए अधिकारियोंने जरूरतसे ज्यादा सख्त तरीके अपनाये।

इन उपद्रवोंका स्वरूप क्या था और ये कैसे शुरू हुए? इनका स्वरूप तो बस यही था कि यत्र-तत्र कुछ आगजनीकी घटनाएँ हुई जिनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं था; कुछ निर्दोष यूरोपीय मारे गये; टेलीग्राफके कुछ तार काटे गये; बिना किसी खास प्रयत्न या योजनाके एक-दो पुल जलाये गये; और एक-दो जगह ट्रेनोंको पटरियोंसे उतारा गया। यह बात स्वीकार की गई है कि इन घटनाओंका रूप सार्वदेशिक नहीं था; जिन लोगोंके पास शस्त्रास्त्र थे, उन्होंने उपद्रवोंमें प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी भी रूपमें कोई भाग नहीं लिया; किसानोंके विशाल वर्गने भी इन हिंसात्मक कार्रवाइयोंमें कोई हाथ नहीं बँटाया; और सरकारी साक्ष्यके अनुसार भी पंजाबकी कुल दो करोड़की आबादीमें से सिर्फ साढ़े चार लाख लोगोंको ही इन उपद्रवोंसे सम्बद्ध बताया जाता है। हमारे साक्ष्यके मुताबिक केवल अमृतसर, कसूर, गुजरांवाला, वजीराबाद, निजामाबाद, हाफिजाबाद, मोमन, चूहड़खाना, खेमकरन, पट्टी और मलकवालमें हिंसात्मक कार्रवाइयाँ की गईं। इन स्थानोंकी कुल आबादी लगभग सवा दो लाख है। लेकिन ध्यान रहे कि हमारे और हंटर कमेटी, दोनोंके सामने प्रस्तुत साक्ष्यसे और कई मुकदमोंके विवरणसे प्राप्त जानकारीसे भी यह बिलकुल स्पष्ट है कि इस सवा दो लाखकी आबादीके भी एक बहुत छोटे अंशने इन तथाकथित उपद्रवोंमें सचमुच कोई भाग लिया था। कुल मिलाकर चार यूरोपीयोंकी जानें गई। जन-समूहके इस कारनामेकी जितनी भी निन्दा की जाये थोड़ी होगी।

लेकिन यह कैसे हुआ कि ये भारतीय लोग, जो सामान्यतया बड़े शान्ति-प्रिय होते हैं, एकाएक सरकारी सम्पत्तिमें आग लगाने और हत्याएँ करनेपर उतारू हो गये? हमने इसका उत्तर देनेका प्रयास किया है। सर माइकेल ओ'डायरने यहाँकी जनताकी लोक-विश्रुत धैर्यशीलताको एक अत्यन्त ही अनुचित, असहनीय स्थितिमें डाल दिया। उन्होंने शिक्षित भारतीय तबकेकी बुराई करके, रंगरूटोंकी भरती और युद्धके कर्ज तथा अन्य चन्दोंकी वसूलीके लिए मनमाने तरीके अपनाकर और सार्वजनिक समाचारपत्रों इत्यादिका गला घोटकर जनताके मनमें बेहद नाराजी पैदा कर दी थी। इस तरह उन्होंने विस्फोटका सारा सामान जुटा दिया था। श्री गांधी और डा० किचलू तथा डा० सत्यपालके निष्कासनकी उनकी सर्वथा अनुचित कार्रवाईने बारूदमें चिनगारीका काम किया। रौलट कानूनके खिलाफ ६ अप्रैलको होनेवाले शान्तिपूर्ण प्रदर्शनको रोकनेकी उनकी सारी कोशिशें जब विफल हो गईं तो उन्होंने अपने क्षोभको एक स्वतंत्र और अनुशासित ढंगसे व्यक्त करनेके लिए आकुल जनताकी भावनाओंको कुचलनेका एक जोरदार प्रयत्न करनेकी ठान ली। सर माइकेलने जन-भावनाके इस स्वस्थ पौधेको एक ऐसा विषैला झंखाड़ समझा, जिसे हर हालतमें उखाड़ फेंकना हो, और फलत: उन्होंने निष्कासनकी वह पागलपनभरी कार्रवाई की, जिसका उल्लेख

हमने अभी किया है। लेकिन इतनेपर भी यदि उन्होंने अपने सैनिक अधिकारियोंको बन्दूकोंका मनमाना इस्तेमाल न करनेके निश्चित आदेश दे दिये होते तो बात न बिगड़ती। लेकिन वे तो क्रोधोन्मत्त हो रहे थे, फिर उनसे किसी संयत कार्रवाईकी आशा कैसे की जा सकती थी। अमृतसरकी अविवेकपूर्ण गोलीबारीने जनताके धैर्यका बाँध तोड़ दिया। जन-समूह क्रोधसे उन्मत्त हो उठा और उसी आवेशमें उसने आगजनी, हत्याएँ और बर्बादी शुरू कर दी और तीन घंटोंमें अपना सारा गुस्सा उतार लिया। हम जिन अन्य स्थानोंका उल्लेख कर आये हैं, उन स्थानोंके लोगोंको भी छूत लगी और उन्होंने भी वही किया जो अमृतसरके लोगोंने किया था। लेकिन सौभाग्यकी बात है और हम यह कहनेकी स्थितिमें हैं कि कसूरको छोड़कर अन्य किसी भी स्थानपर जन-समूहने किसीकी जान नहीं ली।

यह स्थिति बगावतकी थी या युद्ध ठाननेकी? क्या स्थिति ऐसी थी जिसे असैनिक प्रशासन अपनी ही शक्तिके बलपर और आवश्यकता पड़नेपर कहीं-कहीं सेनाकी सहायता लेकर भी काबू नहीं कर सकता था? क्या स्थिति ऐसी थी कि कानूनका गला घोटना जरूरी हो गया था? अलग-अलग स्थानोंकी घटनाओंका वर्णन करते हुए हम इस प्रश्नका उत्तर दे चुके हैं, और इस पूरी विवेचनासे बार-बार यही निष्कर्ष निकलता है कि हंटर समितिके सामने प्रस्तुत और प्रकाशित साक्ष्यके अनुसार, और हमारे पास जो साक्ष्य मौजूद है उसके अनुसार भी, मार्शल लॉकी घोषणा करनेकी कतई आवश्यकता नहीं थी। लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने जो गोपनीय साक्ष्य प्रस्तुत किया गया था वह यदि असाधारण रूपसे स्पष्ट, सटीक और प्रचुर हो तभी मार्शल लॉकी घोषणाका कुछ औचित्य सिद्ध किया जा सकता है।

बगावत या युद्धकी स्थिति उत्पन्न होनेकी जो कहानी गढ़ी गई थी वह हंटर समितिके सामने बिलकुल भी नहीं टिक सकी। तथाकथित षड्यंत्रके पीछे पंजाबसे बाहर किसी संगठनके अस्तित्वका कोई सबूत नहीं मिला। इसके विपरीत, सर माइकेलके एक सबसे विश्वस्त सहायक कर्नल ओ'ब्रायनको हंटर समितिके सामने स्वीकार करना पड़ा कि बगावतकी कहानीके पक्षमें उनके पास कोई ठोस सबूत नहीं था, उसकी कल्पना केवल अटकलपर आधारित थी और यह भी कि उन्होंने गुजरांवालाके नेताओंकी गिरफ्तारी भी महज सुनी-सुनाई बातोंके आधारपर कराई थी। उन्होंने स्वीकार किया कि नेताओंका हिंसाके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड़नेका कोई आधार उनके पास नहीं था, पर यदि गुजरांवालामें कोई हिंसा हो तो उसके लिए वे इन नेताओंको ही जिम्मेदार ठहराना चाहते थे। [सरकारकी ओरसे प्रस्तुत किए गये] अन्य गवाह भी कोई ज्यादा अच्छे उत्तर नहीं दे सके। उनके उत्तरोंसे यही प्रकट हुआ कि वे कार्यों और घटनाओंका ठीक-ठीक मूल्यांकन करनेमें सर्वथा अक्षम थे।

सच तो यह है कि रौलट कानूनके खिलाफ होनेवाले आन्दोलनको एक शरारत सिद्ध करनेके लिए, जैसा कि सर माइकेलका दावा था, यह जरूरी हो गया था कि उसके पीछे एक व्यापक षड्यंत्रका अस्तित्व सिद्ध किया जाये। षड्यंत्रकी कल्पना करते ही उनको उसपर विश्वास भी हो गया, और उन्हें नेताओंके हर भाषणमें राजद्रोह,

हर हड़तालके पीछे एक षड्यंत्र और हिन्दू-मुस्लिम भाईचारेमें ब्रिटिश सत्ताके लिए खतरा नजर आने लगा और उन्होंने दूसरोंको भी ऐसा ही माननेके लिए विवश किया। अतः षड्यंत्रकी कहानी यदि टिक नहीं सकी तो आश्चर्य ही क्या।

और यदि मार्शल लॉ लागू करनेका कोई औचित्य नहीं था, तो फिर उसे करीब दो महीनेतक जारी रखना तो और भी अनुचित था। उसके तहत जो कदम उठाये गये वे अपनेको सभ्य कहनेवाली किसी भी सरकारके लिए कलंकस्वरूप हैं। मार्शल लॉ की शुरूआत जलियाँवाला बागमें निर्दोष नागरिकोंके कत्ले आमसे हुई थी। जनरल डायरने भय और आतंकका जो सिलसिला शुरू किया था, सर माइकेल ओ'डायरने, काले कारनामोंसे भरे अगले दो महीनोंमें, उसीकी ताईद की। यदि हमारे आँकड़े सही हैं, और हम मानते हैं कि वे सही हैं, तो इस दौरान लगभग १,२०० व्यक्तियोंको जानसे हाथ धोना पड़ा, कमसे-कम ३६,००० व्यक्ति जख्मी हुए और कुछ सदाके लिए अपंग बन गये। गम्भीर उत्तेजनावश जनता द्वारा किये गये गलत कामोंकी तुलनामें जनतासे यह जो बदला लिया गया वह इतना अधिक भयंकर था कि दोनोंकी कोई तुलना ही नहीं की जा सकती। और जो लोग बच गये थे, उनको मार्शल लॉ के दौरान तिल-तिलकर जो यंत्रणाएँ दी गईं उनका हम काफी विशद वर्णन कर आये हैं। हम यही आशा कर सकते हैं कि इस रिपोर्टमें जिन तथ्योंका उद्घाटन हमने किया है उसके फलस्वरूप भविष्यमें ऐसे अत्याचारोंकी पुनरावृत्ति असम्भव हो जायेगी।

छठा अध्याय

निष्कर्ष

हमने मार्शल लॉकी घोषणामें सम्मिलित किये गये पाँचों जिलोंका वर्णन कर दिया है। हमने सर माइकेल ओ'डायरके शासनका विवरण भी प्रस्तुत कर दिया है और साथ ही रौलट अधिनियम तथा सत्याग्रह आन्दोलनका लेखा-जोखा देनेका प्रयास किया है।

हम यह भी बतलाना चाहते हैं कि हमने अपने सामने प्रस्तुत तथ्योंतक ही अपने-आपको मर्यादित रखनेका प्रयास किया है। हमें जो साक्ष्य मिले और जिन्हें अलग प्रकाशित किया जा रहा है तथा लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने प्रस्तुत किये गये साक्ष्य और मार्शल लॉ न्यायाधिकरणोंकी कार्यवाहियाँ ही हमारे निष्कर्षोंका आधार हैं।

हमें अनेक स्थानोंपर कुछ कठोर भाषाका भी प्रयोग करना पड़ा है, लेकिन हमने प्रत्येक शब्दको, हर विशेषणको अच्छी तरह तोलकर देखनेके बाद ही उसका इस्तेमाल किया है। बल्कि हमारा कहना है कि हमने पंजाब सरकारके खिलाफ जितना कहना चाहिए था उससे कुछ कम ही कहा है। हम मानते हैं कि हमें सरकारसे यह आशा करनेका कोई अधिकार नहीं कि वह अपने आचरणमें कभी कोई गलती नहीं करेगी।

हम उसके लिए ऐसा असम्भव-सा कोई मानदण्ड निर्धारित नहीं कर सकते, यह हम मानते हैं। कोई भी अधिकारी अपने अच्छेसे-अच्छे इरादोंके बावजूद उत्तेजना और संकटके कालमें गलतियाँ कर सकता है। और हम यह भी मानते हैं कि जब देशके प्रशासनमें बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होनेवाले हैं, जब सम्राट्ने अधिकारियों और जनतासे सहयोगकी अपील की है, तब ऐसी परिस्थितिमें हमें ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिए जो प्रगतिके आड़े आती हो।

परन्तु हम महसूस करते हैं कि जिम्मेदार अधिकारियों द्वारा एक बड़े पैमानेपर किये गये अत्याचारपूर्ण अन्यायको अनदेखा नहीं किया जा सकता; ठीक उसी प्रकार जैसे कि भविष्य चाहे जितना सुन्दर हो पर जनताके अपराधपूर्ण कृत्योंको अनदेखा नहीं किया जा सकेगा। हमारी तो राय यह है कि अधिकारियों द्वारा की गई ज्यादतियों और साथ ही जनता द्वारा की गई ज्यादतियोंका भी निराकरण करना आज पहलेसे कहीं अधिक आवश्यक हो गया है। सुधारोंको कार्यरूप देना और भारत द्वारा अपना लक्ष्य यथाशीघ्र प्राप्त करना — ये दोनों ही बातें लगभग असम्भव हो जायेंगी; यदि जनता और अधिकारी लोग दोनों ही पूरी नेकनीयतीके साथ, स्वस्थ मस्तिष्कसे इनके लिए प्रयत्न नहीं करेंगे। इसीलिए जब हम कहते हैं कि ज्यादतियाँ करनेवाले अधिकारियोंपर कानूनी कार्रवाई की जाये, तो उसके पीछे कोई बदलेकी भावना नहीं है; बल्कि उसका उद्देश्य यह है कि देशके प्रशासनको शुद्ध बनानेके लिए उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार और अन्यायको दूर किया जाये। इसीलिए जहाँ हमारा विश्वास है कि अमृतसर और अन्य स्थानोंपर भीड़ द्वारा की गई ज्यादतियाँ गलत और निन्दनीय थीं, वहीं हमारा यह विश्वास भी है कि जनताको अधिकारियोंके अत्याचारोंके रूपमें जो सजा मिली वह उसके अनुचित कृत्योंके अनुपातमें कहीं अधिक थी।

हमारा विश्वास है कि यदि श्री गांधीको दिल्ली और पंजाबके रास्तेमें गिरफ्तार न किया गया होता और यदि डा० किचलू तथा डा० सत्यपालको गिरफ्तार और निर्वासित न किया गया होता तो निर्दोष अंग्रेजोंको अपनी जानसे हाथ न धोना पड़ता और बहुमूल्य सम्पत्ति तथा ईसाई गिरजोंका विनाश न होता। पंजाब सरकारके ये दोनों कदम सर्वथा अनावश्यक थे। इन दोनों कदमोंने जनताके दिलोंमें पहलेसे ही जमा गुबारकी बारूदमें आग दिखानेका काम किया।

हमने पंजाबके विभिन्न जिलोंकी घटनाओंकी ब्यौरेवार विवेचना प्रस्तुत करते हुए भारत सरकारके बारेमें कुछ भी कहनेसे अपनेको रोका है। लेकिन इस बातको न तो अनदेखा किया जा सकता है और न मामूली कहकर टाला ही जा सकता है कि केन्द्रीय सरकारने अधिकारियोंकी इन ज्यादतियोंको सक्रिय रूपसे सहयोग भले ही न दिया हो, लेकिन कमसे-कम सरकारी तौरपर उनको रोकनेके बारेमें निष्क्रियता तो दिखलाई ही है। वाइसराय महोदयने जनताकी बातको सुनने और परखनेका कभी कष्ट नहीं किया। उन्होंने व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा भेजे गये तारों और पत्रोंकी उपेक्षा की। उन्होंने कोई भी जाँच कराये बिना ही पंजाब सरकार द्वारा उठाये गये कदमोंका समर्थन कर दिया। उन्होंने अशोभनीय जल्दबाजीके साथ अधिकारियोंको दण्ड

विमुक्ति प्रदान कर दी। वे घटनाओंके बाद भी स्वयं उनकी जाँचके लिए कभी पंजाब नहीं गये। विभिन्न सरकारी गवाहोंने जितना भी कुछ स्वीकार किया है, वह सब उनको कमसे-कम मईमें तो मालूम ही हो गया होगा, फिर भी उन्होंने जलियाँवाला बागके हत्याकाण्डकी या मार्शल लॉके तहत किये गये कारनामोंकी पूरी-पूरी जानकारी न तो जनताको दी और न शाही सरकारको। श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज-जैसे भले और ख्यातनामा अंग्रेज ईसाईको, जिनकी सत्य-निष्ठापर कोई अँगुली नहीं उठाई जा सकती, पंजाब जानेसे रोकनेमें[1] भी वाइसराय महोदयका हाथ रहा, जबकि श्री एन्ड्रयूज वहाँ केवल सचाईका पता लगाने जा रहे थे, उत्तेजना फैलाने नहीं। और इन वाइसराय महोदयने ही पंजाब सरकारके मुख्य सचिव श्री टॉमसनको तथ्योंको तोड़-मरोड़कर पेश करने और माननीय पंडित मदनमोहन मालवीयका अपमान करनेकी अनुमति दे दी थी — उन्हीं पंडित मदनमोहन मालवीयका अपमान करनेकी, जिनके परिषद्‌में[2] दिये गये लगभग सभी वक्तव्य अब खुद सरकारी गवाहोंके बयानोंसे सही सिद्ध हो चुके हैं। वाइसराय महोदयने आम जनताकी भावनाओंके प्रति इतनी हृदयहीनता दिखलाई, उसकी उपेक्षा की और सूझबूझका इतना अपराधपूर्ण अभाव प्रदर्शित किया कि जबतक स्वयं भारत-मंत्रीने उनको विवश नहीं किया तबतक उन्होंने मार्शल लॉ न्यायाधिकरणों द्वारा दिये गये मृत्यु-दण्डोंको मुल्तवी नहीं किया था। उन्होंने माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय-जैसे परिषद्‌के जिम्मेदार सदस्यको सदनमें प्रश्न नहीं पूछने दिये — इससे मालूम पड़ता है कि उन्होंने सही बातें न जाननेका निश्चय ही कर लिया था। वे स्थानीय तौरपर जाँचके लिए पंजाब जानेको राजी नहीं हुए। रौलट कानूनके खिलाफ चलनेवाले आन्दोलनके प्रति उन्होंने जो रुख अपनाया था हम यहाँ उसकी आलोचना नहीं करेंगे। लेकिन जन-सुरक्षाकी दृष्टिसे हम वाइसराय महोदयकी उस अक्षमताका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते जो उन्होंने अप्रैल महीनेमें उत्पन्न परिस्थितिको समझने और उसके सम्बन्धमें कार्रवाई करनेमें दिखलाई थी। इसीलिए यद्यपि हम यह नहीं कहते कि वाइसराय महोदयने सम्राट् द्वारा उनकी अधीनतामें रखी गई प्रजाके हितोंकी जान-बूझकर उपेक्षा की है, लेकिन हमें खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि वाइसराय लॉर्ड चैम्सफोर्ड महोदयको जिस पदपर बैठाया गया था उन्होंने अपने-आपको उसके अयोग्य सिद्ध कर दिया है और हमारी राय है कि उन्हें वापस बुलाया जाना चाहिए।

हम अपने अन्य निष्कर्षोंका सार नीचे दे रहे हैं:

१. सर माइकेल ओ'डायरने शिक्षित वर्गोंके प्रति जान-बूझकर जिस घृणा और अविश्वासका प्रदर्शन किया था और युद्धके दौरान रंगरूटोंकी भरती और चन्दोंकी वसूलीके लिए जो क्रूरतापूर्ण और जबरिया तरीके अपनाये थे और उन्होंने लोकमतका दमन करनेके लिए जिस प्रकार स्थानीय समाचारपत्रोंका गला घोटा था और पंजाबसे

१. श्री एन्ड्रयूजको लाहौर जाते हुए अमृतसर रेलवे स्टेशनपर गाड़ीसे उतार लिया गया था और वहाँ कई घंटोंतक नजरबन्द रखनेके बाद अन्तमें पंजाबसे बाहर कर दिया गया था।

२. शाही विधान परिषद्।

बाहरके राष्ट्रवादी समाचारपत्रोंके प्रवेशपर रोक लगा दी थी, इस सबसे पंजाबकी जनता उनके प्रशासनके खिलाफ भड़क उठी थी।

२. रौलट कानूनके खिलाफ चलनेवाले प्रचार-आन्दोलनने जनताके दिमागमें बेचैनी पैदा कर दी थी और सरकारकी सदाशयतापर से जनताके विश्वासकी जड़ें हिला दी थीं। अन्य प्रान्तोंकी तुलनामें यह पंजाबमें ही अधिक बड़े पैमानेपर इसलिए देखनेमें आया कि सर माइकेल ओ'डायरने भारत रक्षा अधिनियमका प्रयोग जन-आन्दोलनोंका गला घोटनेके लिए किया था।

३. सत्याग्रह आन्दोलन और उसकी भूमिकाके रूपमें की गई हड़तालने जहाँ एक ओर सारे देशमें एक नई सक्रियताका संचार किया वहाँ दूसरी ओर उसने जनताकी हिंसक प्रवृत्तियों और उसके रोषको संयमित-सन्तुलित करके देशको अधिक भीषण तथा और अधिक बड़ी विपत्तियोंसे बचा लिया।

४. रौलट कानूनके खिलाफ यह प्रचार-आन्दोलन ब्रिटिश विरोधी भावनासे शुरू नहीं किया गया था; सत्याग्रह आन्दोलन जिस भावनासे शुरू किया गया था वह हिंसा और द्वेषसे सर्वथा मुक्त था और ऐसी ही भावनासे उसका संचालन किया गया था।

५. पंजाबमें सरकारका तख्ता उलटनेका कोई भी षड्यन्त्र नहीं था।

६. श्री गांधीकी गिरफ्तारी और नजरबन्दी और डा० किचलू तथा डा० सत्यपालकी गिरफ्तारी और निर्वासन सर्वथा अन्यायपूर्ण थे और जनताका क्रोध भड़कानेके एकमात्र प्रत्यक्ष कारण थे।

७. अमृतसरमें भीड़की ओरसे हिंसापूर्ण कार्रवाइयाँ शुरू होनेका सीधा कारण रेलवे ओवर ब्रिजपर होनेवाली गोलीबारी और उस अत्यधिक उत्तेजित अवस्थामें लोगों द्वारा अपने मृत और जख्मी साथियोंको देखना था।

८. उत्तेजनाका कारण जो भी रहा हो, पर जन-समूहने जो अति की वह अत्यन्त ही खेदजनक और निन्दनीय है।

९. सार्वजनिक रूपसे जितने भी तथ्य जनताके सामने रखे गये हैं उनमें ऐसा कोई कारण नहीं मिलता जिससे मार्शल लॉ लागू करनेका औचित्य सिद्ध हो सके।

१०. प्रत्येक जिलेमें शान्ति और व्यवस्था कायम हो चुकनेके बाद ही मार्शल लॉ की घोषणा की गई थी।

११. यदि कहा जाये कि मार्शल लॉकी घोषणा तो समूचे राज्यकी परिस्थितिको देखते हुए आवश्यक हो गई थी, तो भी मार्शल लॉकी अवधि अनुचित रूपसे बढ़ा दी गई थी।

१२. मार्शल लॉके अन्तर्गत पाँचों जिलोंमें जो कदम उठाये गये थे वे सर्वथा अनावश्यक, क्रूरतापूर्ण और दमनकारी थे और उनको उठाते समय उनसे प्रभावित होनेवाली जनताकी भावनाओंकी घोर उपेक्षा की गई थी।

१३. लाहौर, अकालगढ़, रामनगर, गुजरात, जलालपुर जट्टाँ, लायलपुर और शेखूपुरामें जनताने ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की जिसे ज्यादती कहा जा सके।

१४. जलियाँवाला बागमें जो नरमेध हुआ वह सर्वथा निर्दोष और निहत्थी जनता और बच्चोंपर पूरी तौरपर जान-बूझकर किया गया एक ऐसा अमानवीय कृत्य था, जिसकी निर्दयताकी कोई मिसाल आधुनिक ब्रिटिश शासनके इतिहासमें ढूंढ़े नहीं मिलती।

१५. मार्शल लॉ न्यायाधिकरणों और समरी अदालतोंको निर्दोष जनताको परेशान करनेके साधनोंके रूपमें प्रयुक्त किया गया और उसका परिणाम हुआ — एक बड़े पैमानेपर न्यायकी विडम्बना; और न्यायके नामपर हजारों स्त्री-पुरुषोंको नैतिक और शारीरिक यन्त्रणाओंका शिकार बनाना।

१६. पेटके बल रेंगनेका हुक्म और ऐसे ही अन्य विचित्र-विचित्र दण्ड किसी भी सभ्य प्रशासनके लिए शर्मनाक थे और जिन लोगोंको ये तरीके सूझे थे उनका नैतिक पतन इनसे प्रकट होता है।

१७. जगह-जगह क्षति-पूर्तिके लिए हर्जानेकी रकमें थोपना और दाण्डिक पुलिस तैनात करना और अधिकांशतः निर्दोष व्यक्तियोंको लगभग महीनोंतक सबक सिखानेके लिए तथा बदलेकी भावनासे दण्ड देना और उनपर जुर्माने करना तथा उनसे गैर-कानूनी वसूलियाँ करना सर्वथा अनावश्यक और अन्यायपूर्ण था और जलेपर नमक छिड़कनेकी तरह था।

१८. मार्शल लॉके दौरान जो भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी चली, उसकी शिकायतें तो अपने-आपमें अलग हैं ही और यदि प्रशासनने सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाया होता तो इनसे बिलकुल बचा जा सकता था।

१९. जनतापर हुए अन्यायके प्रतिकारके लिए, प्रशासनकी शुद्धिके लिए और भविष्यमें अधिकारियोंकी ऐसी मनमानी रोकनेके लिए ये उपाय आवश्यक हो गये हैं:

(क) रौलट अधिनियमको रद्द किया जाये।

(ख) सर माइकेल ओ'डायरको सम्राट्की सरकारमें किसी भी दायित्वपूर्ण पदपर न रहने दिया जाये।

(ग) जनरल डायर, कर्नल जॉन्सन, कर्नल ओ'ब्रायन, श्री बॉसवर्थ स्मिथ, राय-साहब श्रीराम सूद और मलिक साहब खाँको सम्राट्की सरकारमें किसी भी जिम्मेदारीके ओहदेपर न रहने दिया जाये।

(घ) हमने जो बयान प्रकाशित किये हैं उनमें नामसे उल्लिखित छोटे अधिकारियोंके भ्रष्ट आचरणकी स्थानीय जाँच कराई जाये और अपराध सिद्ध होनेपर उनको बरखास्त किया जाये।

(ङ) वाइसराय महोदयको वापस बुलाया जाये।

(च) विशेष न्यायाधिकरणों और समरी अदालतों द्वारा दण्डित व्यक्तियोंसे वसूल किये गये जुर्माने वापस किये जायें; जिन-जिन नगरोंपर क्षति-पूर्तिका हर्जाना थोपा गया है, उसे माफ किया जाये और जहाँ-जहाँ उसकी जितनी वसूली हो चुकी हो, वह वापस की जाये और दाण्डिक पुलिसको हटाया जाये।

हमारा यह निश्चित मत है कि सर माइकेल ओ'डायर, जनरल डायर, कर्नल जॉन्सन, कर्नल ओ'ब्रायन, श्री बॉसवर्थ स्मिथ, राय साहब श्रीराम सूद और मलिक साहब खाँने ऐसे घोर अवैधानिक कृत्य किये हैं कि उनको विशेष अदालतमें खड़ा किया जाये, लेकिन हम जान बूझकर ऐसी कार्रवाईकी सलाह इसलिए नहीं दे रहे हैं क्योंकि हमारा विश्वास है कि अपने इस अधिकारको त्यागना ही भारतके लिए लाभदायक रहेगा। सम्बन्धित अधिकारियोंको बरखास्त कर देनेसे ही [प्रशासनकी] शुद्धिकी पर्याप्त गारंटी हो जायेगी।

हम समझते हैं कि कर्नल मैकरे और कैप्टन डोवटनने भी अपना दायित्व निभानेमें उतनी ही चूक की है जितनी कि कर्नल ओ'ब्रायन और अन्य अधिकारियोंने। लेकिन हमने उनके खिलाफ भी सरकारी तौरपर कोई कार्रवाई करनेकी सलाह जान-बूझकर नहीं दी है। ऐसा इसलिए कि ये दोनों अधिकारी अन्य अधिकारियोंकी भाँति अनुभवी नहीं थे और इन दोनोंने जो क्रूरता दिखाई वह अन्य अनुभवी अधिकारियों द्वारा बरती गई क्रूरताकी भाँति जान-बूझकर बदलेके रूपमें नहीं की गई थी।

मो० क० गांधी
सी० आर० दास
अब्बास एम० तैयबजी
एम० आर० जयकर

[अंग्रेजीसे]

रिपोर्ट ऑफ द कमिश्नर्स एपाइंटेड वाई द पंजाब सब-कमिटि ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस।

९२. पत्र: एस्थर फैरिंगको

[दिल्ली]
गुरुवार, [२५ मार्च,][1] १९२०

रानी बिटिया,

मेरा दिल, मेरी दुआएँ तुम्हारे साथ हैं। तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे कितना दुःख हुआ, कह नहीं सकता। तुम्हें इतना कष्ट सहना पड़े! लेकिन जो धर्मपरायण है उसे ही सच्चे आनन्दकी प्राप्ति होगी। और चूँकि तुम्हारी धर्मपरायणतामें मेरा विश्वास

१. इस पत्रकी तिथि निश्चित करनेके लिए कोई स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। लेकिन ऐसी सम्भावना है कि यह २५ मार्चकी सुबह दिल्लीसे लिखा गया होगा। गांधीजी २६ तारीखको सिंहगढ़ पहुचे थे और उससे पहले तीन दिन दिल्लीमें थे। इसके अतिरिक्त साधन-सूत्रमें इसे ३० मार्चके पत्रसे पहले रखा गया है।

अडिग है, इसलिए मेरी यह निश्चित मान्यता है कि तुम्हें एक दिन आनन्दमय शान्तिकी प्राप्ति अवश्य होगी।

मैं बहुत उत्सुक हूँ कि तुम्हें जल्दीसे-जल्दी जहाज[1] मिल जाये। तुम्हें जिस एकान्तकी जरूरत है, वह समुद्र-यात्रामें मिलेगा और तुम्हारे घर तथा तुम्हारे पितासे वह आराम और साहचर्य प्राप्त होगा जो तुम भी चाहोगी।

अगर तुमने श्री बैंकरका ट्रंक अबतक नहीं लौटाया है तो उसे पार्सलसे मत भेजना। वह तुम्हारे वापस बम्बई आनेपर लौटाया जा सकता है। उसकी कोई जल्दी नहीं है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

९३. पत्र : राजमियाँको

[सिंहगढ़][2]
२७ मार्च, १९२०

प्रिय राजमियाँ,

मैं खिलाफतके सवालपर डा० अंसारीको[3] लिख चुका हूँ। लेकिन मुझे लगता है कि आपको भी लिखूँ। हसरत मोहानीसे[4] बातचीत होनेके बादसे मैं बहुत ज्यादा उद्विग्न हूँ। उनका खयाल है कि कोई भी व्यक्ति असहयोगमें विश्वास नहीं रखता; वह तो महज मुझे तुष्ट करनेके खयालसे अपना लिया गया है। अब किसी इतने महत्त्वपूर्ण मामलेमें तुष्ट-रुष्ट करनेकी तो कोई बात ही नहीं होनी चाहिए, और मैं केवल अपनी तुष्टिके लिए कुछ भी नहीं चाहूँगा। इसके अलावा असहयोगकी सफलताके लिए जरूरी है कि उसे सब लोग पूरे उत्साहके साथ अपनायें। कोई भी महान् उद्देश्य,

१. डेनमार्कके लिए।

२. यद्यपि यह पत्र गांधीजीके निजी पत्र लिखनेके कागजपर, जिसपर उनका साबरमतीका पता छपा हुआ है, लिखा है; तथापि यह निश्चय ही सिंहगढ़से लिखा गया होगा, जहाँ गांधीजी २६ मार्चको पहुँच गये थे।

३. डा० मुख्तार अहमद अंसारी (१८८०–१९३६); एक राष्ट्रीय मुस्लिम नेता; १९२० में भारतीय मुस्लिम लीगके अध्यक्ष; १९२७-२८ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

४. मौलाना हसरत मोहानी, खिलाफत आन्दोलनके एक नेता, जो ब्रिटिश मालके बहिष्कारपर जोर दे रहे थे, और २४ नवम्बर, १९१९ को आयोजित खिलाफत सम्मेलनमें गांधीजीके मुख्य विरोधी थे।

जबतक उसमें विश्वास रखकर उसके लिए काम नहीं किया गया, सफल नहीं हुआ है। इसलिए मैं तो चाहूँगा कि आप हकीमजीसे[1] इसपर बातचीत करके उनकी ओर अपनी ओरसे भी, मुझे सूचित करें कि वास्तवमें स्थिति क्या है। मेरा निश्चित विश्वास है कि यदि खिलाफतके सवालको सन्तोषजनक रूपसे हल करना है तो भारतके मुसलमानोंको न केवल यह समझ लेना है कि वे चाहते क्या हैं बल्कि उन्हें असीम त्यागके लिए भी तत्पर रहना है। यदि उनमें त्यागकी कोई भावना नहीं है तो उन्हें कमसे-कम मुझ-जैसे आदमीसे कोई सरोकार नहीं रखना चाहिए। मैं कोई कूटनीतिक विजय हासिल नहीं करा सकता। मैं तो उन्हें केवल आत्मत्याग और अखंड सत्यके कठिन, कँटीले और सँकरे मार्गसे ही आगे ले जा सकता हूँ। जहाँ ये चीजें नहीं हैं वहाँके लिए तो मैं सर्वथा अनुपयुक्त हूँ — वैसे ही जैसे किसी गोल छेदमें कोई वर्गाकार चीज। मैंने हसरत मोहानीसे कहा था कि जो प्रमुख नेता सक्रिय रूपसे सेवा करना चाहते हैं, वे मुझसे ६ और १३ अप्रैलके बीच बम्बईमें मिलें; वहाँ उनके साथ हम लोग सत्याग्रह सप्ताहमें एक बार नहीं कई बार शान्तिके साथ वार्तालाप कर सकेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० ४५९०) की फोटो-नकलसे।

९४. टिप्पणियाँ

कविवर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका आगमन

खबर मिल चुकी है कि कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर गुजरातमें एक सप्ताहतक रहेंगे। उनकी उपस्थितिका पूरा-पूरा लाभ तो हम तभी उठा सकते हैं जब हम उन्हें शान्तिसे रहने दें और हमें जो-कुछ सीखना है वह उनसे सीख लें। उन्हें आवश्यकतासे अधिक आयोजन पसन्द नहीं है। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। उनके सम्माननमें जो सभाएँ की जायें उनमें पूरी तरह शान्ति रखना आवश्यक है। उन्हें लोगोंका शोर मचाना भी पसन्द नहीं है। हमारा खयाल है कि यदि हमने इन बातोंका ध्यान रखा तो वे भड़ौंच और सूरत भी जा सकेंगे। उनका सम्मान करनेका उत्तम उपाय तो उनके उपक्रमको आर्थिक सहायता देना है। उनके मनमें शान्तिनिकेतन आश्रम तथा वहाँकी शालाके प्रति बहुत ही गहरा लगाव है। आश्रमकी स्थापना उनके पिताश्रीने[2]

१. हकीम अजमल खाँ (१८६५–१९२७); प्रख्यात मुस्लिम चिकित्सक और राजनीतिज्ञ, जिन्होंने खिलाफत आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया; १९२१-२२ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

२. देवेन्द्रनाथ ठाकुर।

की है, शाला[1] उन्होंने स्वयं खोली है और उसका खर्च बाहरसे मिलनेवाली मददसे चलता है। अपनी व्यक्तिगत पूँजी भी उन्होंने इस पाठशालामें लगा दी है। गत वर्ष जब उन्होंने मद्रासकी यात्रा की थी तब उन्हें प्रत्येक स्थानसे शान्तिनिकेतनके लिये दान दिया गया था। हमारी मान्यता है कि यदि कुछ ऐसी ही बात गुजरातमें भी हो तो बहुत अच्छा होगा। हमें उम्मीद है कि जहाँ-जहाँ वे पधारेंगे वहाँ-वहाँ उपर्युक्त बात भी ध्यानमें रखी जायेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-३-१९२०

९५. पत्र : एम० आर० जयकरको

रविवार [२८ मार्च, १९२०][2]

प्रिय श्री जयकर,

इस पत्रके साथ हमारी रिपोर्टके सम्बन्धमें मैं एक तारका मसविदा भेज रहा हूँ। इस सम्बन्धमें और कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि मंगलवारको मैं आपसे मिलनेकी आशा कर रहा हूँ।[3] मैं चाहूँगा आप जरा इस बातपर गौर करके देखिए कि हमारी रिपोर्टका समर्थन करनेके लिए आपका अकेले इंग्लैंड जाना कैसा रहेगा। मैं तो वहाँ कोई बड़ा शिष्टमण्डल भेजकर विशेष प्रदर्शन करनेके सर्वथा विरुद्ध हूँ। इससे मिलने-जुलनेके लिए कहीं आने-जानेमें शीघ्रता करना मुश्किल हो जायेगा और एकाग्रचित्त होकर काम करनेकी सुविधा भी नहीं रह जायेगी। इसके अलावा अधिकारियोंको भी इससे झुंझलाहट ही होगी। मैं यहाँ बिलकुल स्पष्ट बात कहना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि वहाँ जानेके लिए सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति मैं ही हूँ, परन्तु मेरा जाना असम्भव-सा है। मेरी नजरमें दूसरे नम्बरपर आप हैं क्योंकि मेरी ही तरह आपमें भी विद्यार्थीके गुण हैं और हमें एक लगनशील, अध्यवसायी और सन्तुलित मस्तिष्कवाले व्यक्तिकी जरूरत है। आप इसके लिए समय निकाल सकते हैं या नहीं, यह और बात है। हम दोनोंके अलावा जो व्यक्ति प्रभावकारी ढंगसे यह काम कर सकते हैं वे बस ये तीन हैं — मालवीयजी, मोतीलालजी और श्री दास। इनमें कौन किससे अधिक अच्छा रहेगा, इसपर मैंने विचार नहीं किया है क्योंकि मैं स्वयं अनुभव करता हूँ कि मालवीयजीका भारतसे बाहर भेजा जाना असम्भव है। और मैं जानता

१. विश्वभारती; जिसकी नींव २३ दिसम्बर, १९१८ को रखी गई थी और जुलाई १९१९ से वहाँ काम शुरू हो गया था।

२. यह पत्र पंजाबके उपद्रवोंपर कांग्रेस रिपोर्टके २५ मार्च, १९२० को प्रकाशित होनेके बाद लिखा गया था, परन्तु जयकरजीकी बीमारीके कारण उन्हें इंग्लैंड जानेका विचार छोड़ देना पड़ा।

३. अनुमानतः ३० मार्चको; क्योंकि गांधीजी इस तारीखको बम्बईमें थे।

हूँ कि जबतक कुछ और बातें न हो जायें तबतक मोतीलालजीको भी नहीं भेजना चाहिए और श्री दासके पास एक बड़ा मुकदमा है जिसके कारण मुझे मालूम हुआ है, वे तीन महीने कहीं जा ही नहीं सकते। मैंने इस सिलसिलेमें किसी हदतक पूरी चर्चा यहाँ कर दी है, क्योंकि हो सकता है, बम्बईमें मैं जितने थोड़े समयतक रहूँगा उसके दौरान हम लोगोंको विस्तारसे बातचीत करनेका समय न मिले।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
द स्टोरी ऑफ माई लाइफ

९६. 'बन्धु' का अर्थ

[३० मार्च, १९२० के पूर्व]

२९ फरवरीको प्रकाशित श्रीमती सरलादेवी चौधरानीके 'बन्धु' नामक लेखकी मैंने बहुत प्रशंसा की थी और पाठकोंको उसे बार-बार पढ़ जानेका सुझाव दिया था। उसपर कुछ पाठकोंने मुझे लिखा कि हमने उक्त लेखको पढ़ा और उसपर विचार किया, तथापि हम उसमें से कुछ अर्थ नहीं निकाल सके। उन्होंने मुझे उसका अर्थ स्पष्ट करनेके लिए लिखा है। मैं अनेक कार्योमें व्यस्त होनेके कारण तुरन्त तो वैसा नहीं कर पाया। अब मुझे सिंहगढ़में[1] तनिक शान्ति मिली है। इस बीच भी मैं इस लेखको तीन-चार बार पढ़ गया, और मुझे जो अर्थ सूझ पड़ा उसे मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस लेखका पूर्वार्द्ध उन्होंने, जब वे बोलपुरमें[2] रहती थीं, तब लिखा था। उनके पति जिस समय जेलमें[3] थे उस समय उनकी जो विह्वल दशा थी, उसे मैंने देखा। मैंने देखा कि उन्हें किसी तरह भी शान्ति न थी। ऐसे समय मित्र जितनी सान्त्वना दे सकता है उतनी मैं देनेका प्रयत्न कर रहा था। लेकिन मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि उनका मन अशान्त था। वियोगिनीकी जो दशा होती है, मैं उनकी वैसी दशाका अनुभव कर रहा था। यदि मैं कैदियोंके छूटनेकी बात करता, उन्हें कब छूटना चाहिए इसका हिसाब लगाता तो देखता कि उनका मन बहलता है। ऐसी ही किसी स्थितिमें मैंने एक बार उनसे 'नवजीवन' अथवा 'यंग इंडिया'के लिए कुछ लिखनेको कहा। उन्होंने आनाकानी की। "सोच ही नहीं पाती" यह कहकर मुझे टरका दिया। एक दिन उन्होंने कहा "मैंने बहुत समय पहले कुछ लिखा था वह बँगलामें है और

१. यह लेख स्पष्टतः सिंहगढ़में लिखा गया था। गांधीजी वहाँ २८ से ३० मार्चतक रहे थे।
२. शान्तिनिकेतन।
३. १९१९ में।

अच्छा भी कहा जा सकता है। कहें तो उसे पूरा करके दे दूँ और आप उसका अनुवाद कराना चाहें तो करवा लें। इसके बँगला रूपको मुझे किसी अन्य पत्रमें भेजनेका अधिकार मिलना चाहिए।" मैंने यह स्वीकार किया, अंग्रेजीमें इस आशयकी एक कहावत है कि 'दानकी बछियाके दाँत नहीं देखे जाते।' और फिर मुझे तो उनका ध्यान दूसरी ओर फेरना था।

अब अर्थ समझाना सहल है। हम कालको अजेय कहते हैं। कालको बैरी भी कहा गया है। यही काल जिस समय हमें वियोगादि दुःख नहीं होते अथवा जब हम अनेक सुख-सुविधाओंसे घिरे हुए नहीं होते तब बन्धुका रूप धारण कर लेता है, हमें शान्ति देता है। सरलादेवीको, जब वे वन-प्रदेशमें रहती थीं, इस शान्तिका अनुभव होता था। इस तरह समय रूपी बन्धु उषाकालमें हमसे कहता है, "आओ पलभर शान्त होकर बैठ जाओ और अपने हृदयमें गहरे उतरो।" और समयानुसार अपने कर्त्तव्यका इस तरह पालन करनेसे यदि समय-विहंग प्रसन्नतासे भरकर चहक उठे तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।"

दोपहरको नींद तो आती है लेकिन समय-बन्धु हमें चेतावनी देता है कि "बाहर जाओ, ध्यानपूर्वक खेतोंको देखो, वे शान्त हैं", लेकिन सोये हुए नहीं हैं। "कितनी सम्भावनाएँ, कितनी आशाएँ, कितने गीत और कितनी शोभा वहाँ झिलमिला रही है!" इस तरह आलस्य न करनेपर हमें मध्याह्नकी शान्ति भी प्राप्त हो गई। अब संध्याकाल हुआ और हमने थकावटका अनुभव किया तो काल-विहंगमने कहा, "बस, एक स्थानपर चुपचाप बैठकर देखो, और कुछ न करो।" और करना भी क्या है? जो शान्तचित्त होकर संध्याके समय दिन-भरके कार्योंका लेखा-जोखा करता है और दिनके सुख-चैनसे बीत जानेपर ईश्वरका आभार मानता है उसे सन्ध्याके समय और कुछ करनेको बच ही क्या रहता है? दिनके इस तरह व्यतीत करनेके कारण सरलादेवीको काल बन्धुके रूपमें जान पड़ा।

अब उत्तरार्द्ध शुरू हुआ। घरमें फर्नीचर आदि वस्तुएँ रहें कि स्वयं हम? "जंगलको छोड़कर हम शहरमें आ गये हैं। चारों ओर अलमारियाँ, मेजें और कुर्सियाँ" एक छोटी-सी खिड़कीमें "जड़ित आकाशका टुकड़ा" ही निराकार स्वरूपका भान करवानेको रह गया है। "इससे मिलना है। इसे आमन्त्रित करना है। आज एक तो कल दूसरा बैरा भाग गया है।" समय बीतता जाता है, ठहरता नहीं और हर रोज कुछ-न-कुछ बिना किये पड़ा रह जाता है। हमेशा नई मुश्किलें। ऐसी स्थितिमें काल बैरी है, शान्ति [दाता] नहीं। इसलिए सरलादेवी शंकित होकर पूछ उठती हैं, क्या कालको सदा बन्धु माना जा सकता है, अथवा केवल उसी समय बन्धु है जब हृदयको इस रूपमें उसका स्वागत करनेका अवकाश हो? "जिस तरह मनको निवृत्त किये बिना बन्धुसे समागम नहीं हो सकता, सम्भवतः उसी तरह बन्धुको, भौतिक वस्तुओंकी निरंकुश धमा-चौकड़ीके बीच भी आना न भाता हो?" अवश्य ही ऐसा है, मन जहाँ शान्त और संयमित होता है वहीं सुख होता है। स्वच्छन्दता तो अशान्तिकी निशानी है।

तब लेखिका पूछती है, "कौन है यह अभिजात बन्धु, जिसे आभिजात्यसे मुक्त होने पर ही पाया जा सकता है? क्या वह मेरी आन्तरिक सम्पूर्णता है?" [जो] सम्पूर्ण है

उसे किसी बाह्य बन्धुकी आवश्यकता नहीं होती।" फिर वे बताती हैं कि अगर होती है तो वह बाह्य बन्धु किस तरहका होता है।

जब समय ही अपना नहीं रहा तब किसको कहूँ? इसका विचार करते हुए उन्हें 'भगवद्गीता' याद आई। उसमें उन्हें पुरातन पुरुषोत्तम पुरुषकी उपलब्धि हुई। निर्बलके बल राम ही होते हैं। वियोगके दुःखको काटनेके लिए जब कोई ऐसा सरीरी नहीं मिलता जो आश्वासन दे सके तब दुःखी हृदय "राम"को पुकारता है। जबतक गज ग्राहके साथ लड़ सका तबतक उसे ईश्वरका ध्यान नहीं आया, लेकिन जब भाई साहब थक गये तब वे दासोंके-दासको पुकारने लगे। इसीसे सरलादेवी कहती हैं, "मैं गर्जना करनेवाली, अर्जुनका सखा होनेपर भी जो सर्वशक्तिमान् ईश्वर है उस सारथी-बन्धुका अनन्य भावसे भजन करूँगी। दुर्योधनके समान मैं उसके पास अपना बल लेकर नहीं जाऊँगी, अपने बलको ताकपर रखकर उसकी शरण जाऊँगी और उसके प्रसादको ग्रहण करके परम शान्ति प्राप्त करूँगी। जैसे पिण्डमें वैसे ब्रह्माण्डमें, जैसे मेरे लिए, वैसे आप सबके लिए। जैसे मेरे दुःखके समय मेरा भगवान् ही मेरा सहारा था उसी तरह वह आपके लिए भी हो — होगा ही। इस ईश्वरकी खोज करते-करते मुझे अपने अन्तरात्मामें झाँकना पड़ता है और वहाँ देखती हूँ तो मुझे मालूम होता है कि मैं स्वयं ही अपनी सखी हूँ और स्वयं ही अपनी शत्रु। यदि मैं विश्वात्माकी अनुभूति करना चाहती हूँ तो मुझे अन्तरात्माकी प्रतीति करनी होगी। इसीसे कहा गया है कि "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः"।[1]

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ४–४–१९२०

९७. पत्र : एस्थर फैरिंगको

रेलगाड़ीमें
३० मार्च, १९२०

रानी बिटिया,

मुझे तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला है। उसके लिए मैंने ईश्वरको धन्यवाद दिया। मैं एक विश्रामस्थलसे आश्रम जा रहा हूँ। दिल्ली छोड़नेके बाद[2] मैं तुम्हें कोई पत्र नहीं लिख सका हूँ। मैंने चार दिनोंतक अच्छा-खासा विश्राम किया। १३ अप्रैलके बाद लौटनेकी आशा करता हूँ।[3] तुम डेनमार्क कब जा रही हो?

सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१. भगवद्गीता, ६–५।
२. २५ मार्च, १९२०को।
३. गांधीजी २९ अप्रैलको सिंहगढ़ वापस जा सके थे।

९८. सत्याग्रह सप्ताह

इस पवित्र राष्ट्रीय सप्ताहके लिए निर्धारित कार्यक्रममें सबसे प्रमुख स्थान मैंने उपवास और प्रार्थनाको दिया है। हमारे राष्ट्रीय जीवनके उत्थानके लिए ये दोनों कितने जरूरी हैं, यह समझानेके लिए मैं काफी कुछ कह चुका हूँ। लेकिन प्रार्थनाकी बातपर एक मित्रको पत्र लिखते समय मुझे टेनिसनकी एक बहुत सुन्दर चीज हाथ लग गई। उसे मैं 'यंग इंडिया'के पाठकोंके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। हो सकता है, इस तरह संयोगवश मैं उनके भीतर प्रार्थनाकी कार्य-साधकतामें निश्चित विश्वास उत्पन्न कर सकूँ। ये हैं वे अमूल्य पंक्तियाँ :

> . . .प्रार्थनासे कितना-क्या हो जाता है
> इसको संसार कल्पना नहीं कर सकता।
> इसलिए रात और दिन मेरे लिए
> किसी झरनेकी तरह मुक्त वाणीमें प्रार्थना करो।
> क्योंकि मनुष्य यदि भगवान्को जानकर भी
> अपने लिए और अपनेको मित्र माननेवालोंके लिए
> हाथ उठाकर प्रभुसे दुआ न माँगे
> तो वह उन भेड़ और बकरियोंसे
> किस तरह बेहतर है
> जो बिना सोचे अपनी देहको ही पुष्ट करते रहते हैं?
> यह (प्रार्थना) ही है वह स्वर्ण मेखला
> जिससे यह मण्डलाकार धरित्री
> प्रभुके चरणोंमें बँधी हुई है।

अपने भारत-भ्रमणके दौरान मुझे सभी धर्मों और मतोंके लोगोंसे, हजारों स्त्री-पुरुषों और सैकड़ों विद्यार्थियोंसे मिलनेका सुयोग प्राप्त हुआ है। उनके साथ मैंने इतने उत्साहके साथ राष्ट्रीय समस्याओंकी चर्चा की है जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। और इस तमाम चर्चाके बाद मैंने यही देखा है कि अभी हममें अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व-की सजग पहचान नहीं आ पाई है। उस अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए जिस अनु-शासनकी आवश्यकता है, वह अनुशासन हममें नहीं है, और मैं कहूँगा कि उपवास और प्रार्थनासे बढ़कर और कोई साधन नहीं हैं जिनके जरिये हममें आवश्यक अनुशासन, आत्म-बलिदानकी भावना, विनयशीलता और दृढ़ इच्छा-शक्तिका आविर्भाव हो सके — और इन गुणोंके बिना हम कोई वास्तविक प्रगति कर ही नहीं सकते। अतः मैं आशा करता हूँ कि लाखों-करोड़ों लोग सत्याग्रह सप्ताहका शुभारम्भ उपवास और प्रार्थनासे करेंगे।

इस सप्ताहके दौरान मैं सत्याग्रहके सविनय प्रतिरोधवाले हिस्सेपर जोर देना नहीं चाहता। मैं चाहूँगा कि इस सप्ताहमें हम सत्य और अहिंसाका ही चिन्तन करें

और इनकी अजेयताको समझें। सच तो यह है कि अगर हममें से सभी लोग अपने जीवनको सत्य और अहिंसाके निरंतर नियमसे बाँधकर चलायें तो सविनय प्रतिरोध या किसी अन्य प्रकारके प्रतिरोधके लिए अवसर ही न आये। सविनय प्रतिरोधकी जरूरत तभी पड़ती है जब सत्यका पालन केवल थोड़ेसे लोग ही करते हों, और वे विरोधके बावजूद सत्यका पालन करनेका प्रयत्न करें। यह जानना कठिन है कि सत्य क्या है, कब इसका बचाव करनेमें सविनय प्रतिरोधकी सीमातक जाना चाहिए और सत्यका पालन करनेके प्रयत्नमें किस तरह हिंसा करनेसे बचा जाये। ऐसेमें लोगोंमें एक सामान्य धर्मके रूपमें सविनय अवज्ञाके प्रचारकी वांछनीयता विवादास्पद हो सकती है;-पर जब कि हमने इस सप्ताहको अपने राष्ट्रीय जीवनके उत्थानके प्रयत्नोंमें लगानेका निश्चय किया है तो इस प्रयत्नमें दल, वर्ग या धर्मका भेद-भाव किये बिना सभीके सहयोगकी अपेक्षा है।

६ और १३ तारीखको प्रार्थना और उपवासके अलावा हमें जलियाँवाला बाग-स्मारकके लिए चन्दा करना है।[1] मुझे आशा है कि इस कामके लिए हर प्रान्त, जिला और शहर या गाँवमें समुचित संगठन कर लिया जायेगा।

कार्यक्रमका तीसरा हिस्सा है इस सप्ताहके दौरान निर्धारित तारीखोंपर सारे भारतमें तीन सभाएँ करना। इनमें मैंने कुछ प्रस्ताव पास करनेका सुझाव दिया है। एक प्रस्ताव होगा रौलट अधिनियमके सम्बन्धमें, जिसके कारण सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ा गया; और दूसरा होगा खिलाफतके सवालपर, जिसमें मुसलमानोंके साथ हिन्दुओंके सहयोग करनेके परिणामस्वरूप दोनों जातियोंकी एकताकी इमारत काफी मजबूत हो चली है, तीसरे प्रस्तावको जलियाँवाला बाग प्रस्ताव कहा जा सकता है। यह १३ तारीखको पास किया जाये और इसमें सरकारसे अनुरोध किया जाये कि वह ऐसे कदम उठाए जिससे सैनिक शासनके दौरान जो दुःखद घटनाएँ लोगोंने देखीं और जिनकी शुरुआत १३ तारीखके कत्लेआमके रूपमें सैनिक शासन लागू होनेसे पूर्व ही हो गई थी उनकी पुनरावृत्ति न हो पाये। मैं निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार करनेका सुझाव देता हूँ:

६ अप्रैलके लिए

१ . . . के नागरिकोंकी यह सभा अपनी इस दृढ़ मान्यताको लिखित रूपमें प्रकट करती है कि जबतक रौलट अधिनियम रद नहीं कर दिया जाता तबतक इस देशमें शान्ति नहीं हो सकती और इसलिए यह सभा भारत सरकारसे अनुरोध करती है कि वह शीघ्रसे-शीघ्र एक विधेयक पेश करके इस अधिनियमको रद कर दे।

९ अप्रैलके लिए

२ . . . के निवासी हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अन्य लोगोंकी इस सभाको विश्वास है कि खिलाफतके प्रश्नका ऐसा निबटारा हो जायेगा जो भारतीय मुसलमानोंकी न्यायसंगत माँगों और महामहिम सम्राट्के मन्त्रियों द्वारा दिये गये गम्भीर वचनोंके

१. देखिए "६ अप्रैल और १३ अप्रैल", १०-३-१९२०।

अनुभव होगा। यह सभा निश्चित रूपसे अपना यह विचार भी व्यक्त करती है कि अगर कोई प्रतिकूल निर्णय किया गया तो प्रत्येक भारतीयका यह कर्तव्य हो जायेगा कि जबतक सरकार तुर्की संधिके बारेमें किये गये अपने वादोंको पूरा नहीं कर देगी और मुसलमानोंकी भावनाको तुष्ट नहीं कर देगी तबतक वह सरकारसे सहयोग नहीं करे।

१३ अमृतसरके लिए

२. . . . के निवासियोंकी इस सभाका विचार है कि यद्यपि अमृतसरमें भीड़ द्वारा की गई ज्यादतियाँ, जो किन गम्भीर उत्तेजनाओंके बाद की गईं उनके बावजूद निन्दनीय[1] हैं, फिर भी जनरल डायरने जलियाँवाला बागमें मौजूद निर्दोष निहत्थे और असहाय सभी लोगोंका जिस तरह बिना कोई चेतावनी दिये, जान-बूझकर और योजनापूर्वक कत्लेआम किया, वह अंग्रेजोंके इतिहासमें अद्वितीय था। अतएव यह सभा आशा करती है कि भारत सरकार और साम्राज्य सरकार ऐसे कदम उठायेंगी जिनसे ऐसी बर्बरता और मार्शल लॉके दौरान पंजाबके जिम्मेदार अधिकारियों द्वारा किये गये ऐसे ही दूसरे बर्बरतापूर्ण कार्योंकी पुनरावृत्ति असम्भव हो जाये। सभा यह भी आशा करती है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा की गई सिफारिशोंपर[2] पूरी तरह अमल किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१-३-१९२०

९९. भाषण : गुजरात साहित्य परिषद्में[2]

२ अप्रैल, १९२०

आइए, अब हम इस विषयपर विचार करें कि जन-समाजको शिक्षित करनेके लिए कैसा साहित्य लिखा जाना चाहिए। कविश्रीने[3] आज हमारे सम्मुख इस विषयमें अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने कलकत्तेका उदाहरण देकर चतुराईसे काम लिया। उन्होंने देखा कि जैसा कलकत्ता है अहमदाबाद भी वैसा ही है। उन्होंने यदि शब्द-प्रहार भी किया है तो वह हमारे हितमें ही है। सिडनी स्मिथ व्यंगोक्तिकी कलामें बहुत निपुण था। वह "हमारे" शब्दका प्रयोग करके प्रहारकी तीव्रताको कम कर देता था; कविश्रीने "हम" शब्दका प्रयोग अपने नगरके लोगोंके लिए ही किया है,

१ तथा २. देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५-३-१९२० ।

२. यह साहित्य परिषद् अहमदाबादमें २-३ अप्रैलको हुई थी। इसकी अध्यक्षता हरगोविन्ददास काँटावालाने की थी।

३. सम्मेलनमें इससे पहले रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भाषण दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि ईश्वरकी खोजको धनकी अपेक्षा अधिक महत्त्व देना चाहिए ।

फिर भी हमें तो यही समझना चाहिए कि वह हमारे लिए किया गया है। कलकत्तेका चित्रण करते हुए कविश्री कहते हैं कि गंगा-तटके किनारे-किनारे बड़ी-बड़ी इमारतें बना दी गई हैं और इससे आँखोंको अच्छा लग सकनेवाला प्राकृतिक दृश्य आँखोंको खटकनेवाली चीज बन गई है। होना तो यह चाहिए कि ऐसे स्थानपर हमारा मन प्राकृतिक सौन्दर्यसे अभिभूत हो जाये किन्तु होता यह है कि जब वे कलकत्तेका विचार करते हैं तो उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगते हैं।

मेरे जैसे मजदूरके विचारमें तो हमारा काम प्रभुको पहचानना है। प्रभुकी अवज्ञा करके हम धनकी पूजा करने लगे हैं, स्वार्थसाधनमें निरत हो गए हैं।

मैं साहित्यरसिकोंसे पूछता हूँ कि आपकी कृतिके सहारे मैं शीघ्र ही प्रभुके पास पहुँच सकता हूँ या नहीं? यदि वे मुझे इसका उत्तर "हाँ"में दें तो मैं उनकी कृतिसे बँध जाऊँगा। यदि मैं किसी साहित्यकारकी रचनासे ऊबता जाता हूँ तो इसमें मेरी बुद्धिका दोष नहीं है, दोष उसकी कलाका है। शक्तिवान साहित्यकारको अपनी कलाको कमसे-कम इतना विकसित तो करना ही चाहिए कि पाठक उसे पढ़नेमें लीन हो जाये। मुझे खेद होता है कि हमारे साहित्यमें यह बात बहुत कम दिखाई देती है। हमारा साहित्य इस समय ऐसा है कि उसमें से जनता एकाध वस्तु भी ग्रहण नहीं कर सकती। उसमें एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जिससे वह एक युग, एक वर्ष अथवा एक सप्ताहतक भी टिक सके।

अब हम यह देखें कि अनादिकालसे हमारे पास जो ग्रन्थ चले आ रहे हैं उनमें कितना साहित्य है? हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंसे हमें जितना सन्तोष मिलता है आधुनिक साहित्यसे उतना नहीं मिलता। इस साहित्यके मामूली-से अनुवादमें भी जो रस आ सकता है वह आजके साहित्यमें नहीं आ पाता। यदि कोई कहे कि आधुनिक साहित्यमें बहुत-कुछ है तो हम इसे स्वीकार कर सकते हैं किन्तु इस बहुत-कुछको खोज निकालनेमें मनुष्य थक जाता है। तुलसीदास और कबीर-जैसा साहित्य हमें किसने दिया है?

जा विधि भावे ता विधि रहिए।
जैसे तैसे हरिको लहिए।।[1]

ऐसी बात तो आजकल हमें दिखाई ही नहीं देती। अखाके[2] युगमें हमें जो-कुछ प्राप्त हुआ, वह अब कहाँ हो सकता है?

बीस वर्ष दक्षिण आफ्रिकामें रहनेके बाद मैं भारत आया और मैंने देखा कि हम डरे-डरे जीवन बिता रहे हैं। भयभीत होकर जीनेवाले अपने मनके भावोंको निर्भयतासे प्रकट ही नहीं कर सकते। यदि किसी दबावमें पड़कर हम लिखते भी हैं तो उसमें से कवित्वकी धारा नहीं फूटती और उसकी लहरोंपर सत्य तिरता हुआ नहीं आ पाता। समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें भी यही बात लागू होती है। जहाँ सिरपर प्रेस-अधिनियम

१. "सुतर आवे त्यम तुं रहे,
जेम तेम करीने हरिने लहे।"
२. सत्रहवीं शताब्दीके एक गुजराती कवि।

झूल रहा हो वहाँ सम्पादक बिना पसोपेशके नहीं लिख सकता। साहित्यरसिकोंके सिर-पर भी प्रेस-अधिनियम झूल रहा है और इसलिए एक पंक्ति भी मुक्त भावसे नहीं लिखी जाती; और इसी कारण सत्यको जिस तरह प्रस्तुत करना चाहिए वह उस तरह प्रस्तुत नहीं किया जाता।

हिन्दुस्तानमें इस समय संक्रान्तिकाल है। करोड़ों व्यक्तियोंको अनुभूति हो रही है कि हमारे यहाँ बड़े-बड़े परिवर्तन होनेवाले हैं। हमारी दरिद्रावस्था मिट जायेगी और समृद्धि तथा वैभवका युग आयेगा, हमें अब सत्ययुगकी झाँकी मिलेगी। मैं स्थान-स्थानपर ऐसे उद्गार सुनता हूँ। कितने ही लोग यह समझ रहे हैं कि अब हिन्दुस्तानके इतिहासका एक नवीन पृष्ठ खुलने जा रहा है। यदि हिन्दुस्तानके इतिहासका नवीन पृष्ठ खुलनेवाला है तो हमें उसपर क्या लिखा हुआ मिलेगा? यदि उसमें हमें सुधार[1] लिखे मिलें तब तो यह गलेमें पट्टा डालनेके समान होगा और जैसे हम आज बैलकी तरह हाँके जाते हैं वैसे ही हाँके जायेंगे। इस समय साहित्यकी सेवा करनेवालोंसे मैं तो यही माँगूंगा कि वे हमें ईश्वरसे मिलाएँ, सत्यके दर्शन करायें। हमारे साहित्य-सेवकोंको यह बात सिद्ध कर देनी चाहिए कि हिन्दुस्तान पापी नहीं है, वह धोखा-धड़ी करनेवाला देश नहीं है।

पोप[2] — 'इलियड'के रचयिता नहीं — ने दक्षिण प्रान्तकी जो सेवा की है वैसी सेवा किसी मद्रासीने भी नहीं की है। मैं तो प्रेम-रंगमें डूबा हुआ हूँ और प्रत्येक मनुष्य-का हृदय चुरा लेना चाहता हूँ। दक्षिण प्रान्तके भाइयोंका हृदय चुरानेके लिए मुझे उनकी भाषा सीखनी पड़ी। रेवरेंड पोपने जो रचनाएँ दी हैं उनमें से इस समय तो मैं कुछ उद्धृत नहीं कर सकता, लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि तमिलमें लिखी गई वे रचनाएँ — जिन्हें खेतमें पानी देता हुआ किसान भी दुहरा सकता है — अलौकिक हैं। सूर्योदयके पहले ही खेतमें पानी देना प्रारम्भ कर दिया जाता है। बाजरा, गेहूँ आदि सबपर ओसके मोती बिखरे हुए होते हैं। पेड़ोंके पत्तोंपरसे झरता हुआ पानी मोतीके समान लगता है। ये व्यक्ति, खेतमें पानी देनेवाले ये किसान उस समय कुछ ऐसा ही गाते हैं। मैं जब कोचरबमें[3] रहता था तब खेतमें पानी देनेवाले किसानोंको देखता और उनकी बातें सुनता। लेकिन उनके मुँहसे तो अश्लील शब्द ही निकलते थे। इसका क्या कारण है? इसका उत्तर मैं यहीं बैठे हुए श्री नरसिंहराव[4] तथा अध्यक्ष महोदयसे[5] पाना चाहता हूँ।

१. भारत सरकार अधिनियम १९१९ में सन्निविष्ट मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार।

२. डाक्टर जी० यू० पोप। इन्होंने **तिरुक्कुरल** और **तिरुवाचकम**का अंग्रेजीमें अनुवाद भी किया था।

३. अहमदाबादकी बाहरी सीमापर बसा हुआ एक गाँव। मई १९१५ में संस्थापित आश्रम पहले इस गाँवमें एक निजी भवनमें था।

४. नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया, गुजराती कवि और साहित्यकार; एलफिन्स्टन कालेज, बम्बईके गुजरातीके प्रोफेसर।

५. आनन्दशंकर ध्रुव, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके उप-कुलपति।

साहित्य परिषद्से मैं कहूँगा कि खेतोंमें पानी देनेवाले इन किसानोंके मुँहसे अपशब्दोंका निकलना हटाएँ, नहीं तो हमारी अवनतिकी जिम्मेदारी साहित्य परिषद्के सिरपर होगी। साहित्यके सेवकोंसे मैं पूछना चाहूँगा कि जनताका अधिकांश भाग कैसा है और आप उसके लिए क्या लिखेंगे? साहित्य परिषद्से भी मैं यही कहूँगा कि परिषद्में जो कमियाँ हैं उन्हें वह हटाए, हटाए, हटाए।

लुईको[1] मनमें पुस्तक लिखनेका विचार आया तो उसने अपने बच्चोंके लिए पुस्तकें लिखीं। उसके बच्चोंने तो उनका लाभ उठाया ही, आजके हमारे स्त्री, पुरुष तथा बालक भी उनसे लाभ उठा रहे हैं। मैं अपने साहित्य-लेखकोंसे ऐसा ही साहित्य चाहता हूँ। मैं उनसे बाणभट्टकी 'कादम्बरी'[2] नहीं, तुलसीदासकी 'रामायण' माँगता हूँ। 'कादम्बरी' हमेशा रहेगी अथवा नहीं, इसके विषयमें मुझे शंका है, लेकिन तुलसीदासका दिया हुआ साहित्य तो स्थायी है। फिलहाल साहित्य हमें रोटी, घी और दूध ही दे; बादमें हम उसमें बादाम, पिस्ते आदि मिलाकर 'कादम्बरी' जैसा कुछ लिखेंगे।

गुजरातकी निरीह जनता, माधुर्यसे ओतप्रोत जनता, जिसकी सज्जनताका पार नहीं है, जो अत्यधिक भोली है और जिसे ईश्वरमें अखण्ड विश्वास है, उस जनताकी उन्नति तभी होगी जब साहित्यसेवक किसानों, मजदूरों तथा ऐसे ही अन्य लोगोंके लिए काव्यरचना करेंगे, उनके लिए लिखेंगे।

मेरी हार्दिक कामना है कि हमारी जनता सत्य लिखने लगे, सत्य बोलने लगे और सत्यका आचरण करने लगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४–४–१९२०

१००. पत्र: 'टाइम्स ऑफ इंडिया' को

लैबर्नम रोड
गामदेवी
बम्बई
३ अप्रैल, १९२०

महोदय,

मैं निम्नलिखित तीन प्रस्ताव[3] सत्याग्रह-सप्ताहके दौरान, अर्थात् ६, ९ और १३ अप्रैलको लोगों द्वारा अंगीकार किये जानेके खयालसे प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि पहले और तीसरे प्रस्तावोंके बारेमें कोई दो रायें नहीं होंगी। परन्तु

१. लुई कैरल, **एलिसेस एडवैंचर्स इन वंडरलैण्ड**के रचयिता।

२. सातवीं शताब्दीमें लिखित प्रसिद्ध संस्कृत गद्य-काव्य।

३. प्रस्तावोंके मूलपाठके लिए देखिए "सत्याग्रह सप्ताह", ३१–३–१९२०।

खिलाफतसे सम्बन्धित प्रस्तावकी आलोचना मेरे कानोंमें पड़ी है। मेरा निवेदन है कि असहयोग-सम्बन्धी अनुच्छेदके विना खिलाफत प्रस्ताव बेकार होगा। देशको कुछ ठोस कार्रवाईकी आवश्यकता है और उसके हकमें असहयोगसे बेहतर कोई ठोस कार्रवाई हो ही नहीं सकती। हिंसाकी शक्तियोंको किसी अन्य प्रकारसे नहीं रोका जा सकता।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
टाइम्स ऑफ इंडिया, ४-४-१९२०

१०१. अपील: जलियाँवाला बाग स्मारक-कोषके लिए[1]

वम्बई
६ अप्रैल, १९२०

मुझे पूरी उम्मीद है कि पंजाब स्मारकके निमित्त वम्बई अपनी विशिष्ट उदारताके साथ धन देगा। यह एक राष्ट्रीय कीर्ति-स्तम्भ है। मैंने बार-बार कहा है कि यह किसी भी अर्थमें ब्रिटिश विरोधी नहीं है। १३ अप्रैल, १९१९ के दुर्भाग्यपूर्ण दिवसको जो निर्दोष लोग मार डाले गये, यदि हम उनकी स्मृतिको सँजोकर नहीं रखते तो हम अपने-आपको एक राष्ट्र कह सकने योग्य नहीं हैं। आशा है, अंग्रेजोंके लिए भी इस स्मारकके निमित्त चन्दा देना सम्भव होगा। उनका सहयोग इस बातका परिचायक होगा कि यह स्मारक जाति-विशेषसे सम्वद्ध नहीं है। इसके अलावा इसका हंटर समितिके निष्कर्षोंसे भी, चाहे वे अनुकूल हों या प्रतिकूल, कोई सरोकार नहीं है। यह बात सरकार द्वारा स्वीकार की जा चुकी है की जो लोग मारे गये, वे निरपराध थे। भूमिके जिस टुकड़ेपर इतने निर्दोष लोगोंका खून बहा है, उसे राष्ट्रकी सम्पत्ति बना देना और उसपर एक ऐसा राष्ट्रीय स्मारक खड़ा करना भारतका कर्त्तव्य है जो उन मृतकोंकी स्मृतिको सुरक्षित रखते हुए भी हर प्रकारके घृणा-द्वेषसे मुक्त होगा। हंटर समितिके निष्कर्ष चाहे जो भी हों, वे भारतको सम्भवतः उसके इस दायित्वसे मुक्त नहीं कर सकते।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ७-४-१९२०

१. यह अपील समाचारपत्रोंको एक पत्रके रूपमें भेजी गई।

१०२. भाषण: राष्ट्रीय सप्ताह सभामें[1]

६ अप्रैल, १९२०

माननीय वी० जे० पटेल द्वारा प्रस्तुत रौलट अधिनियम रद करनेकी माँगके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए श्री गांधीने जो भाषण दिया उसका अधिकृत सारांश नीचे दिया जाता है:

श्री गांधीने कहा, मुझे आशा है कि यदि सदैव नहीं तो कमसे-कम सत्याग्रह सप्ताहके दौरान तो सभाएँ उन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार की जायेंगी जिनके अनुसार वे सत्याग्रह आन्दोलनके दौरान की गई थीं। वे सिद्धान्त थे: किसी प्रकारके संकेत द्वारा अथवा बोलकर वक्ताओंके भाषणोंके प्रति सहमति अथवा असहमति न प्रकट की जाये, बल्कि उनके कथनको पूरी शान्ति और सम्मानके साथ सुना जाये। मेरा खयाल है कि यदि इस नियमका पालन किया गया तो श्रोताजन विभिन्न वक्ताओं द्वारा प्रतिपादित विचारोंको भली-भाँति समझ सकेंगे। मैंने इसे सत्याग्रह सप्ताह कहा है, परन्तु आशा है कि कोई भी श्रोता इससे डरेगा नहीं। मैं अपनी जिम्मेदारी पूरी तरहसे समझता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं बम्बई प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन, जो एक गैर सत्याग्रही संस्था है, के तत्त्वावधानमें आयोजित सभामें बोल रहा हूँ। मैं सत्याग्रह सप्ताहके बारेमें निःसंकोच होकर बोल रहा हूँ क्योंकि मैं न तो सविनय प्रतिरोधपर जोर दे रहा हूँ और न उसे अपनानेको ही कह रहा हूँ। मैं वचन और कर्ममें सचाई बरतने और सत्य प्राप्तिके अथक प्रयासमें अहिंसाकी आवश्यकतापर जोर देना चाहता हूँ। श्री पटेलने जो उनसे पूर्व बोले थे, कहा कि प्रस्ताव किसी कामके नहीं हुआ करते। श्री गांधीने कहा कि मैं कुछ हदतक श्री पटेलसे सहमत हूँ। परन्तु प्रस्ताव कई प्रकारके होते हैं। हमारा प्रस्ताव निराशासे नहीं, विश्वाससे प्रेरित है। इसमें सरकारसे उतना निवेदन नहीं किया गया है जितना कि सर्वशक्तिमान् प्रभुसे। मैं उपवास और प्रार्थनामें विश्वास रखनेवाले व्यक्तिकी हैसियतसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि हमारे पक्षमें सत्य हो, हमारा हृदय प्रार्थनापूर्ण हो और उसके साथ-साथ हम बलिदानके लिए भी कृतसंकल्प हों तो हमारी सफलता निश्चित है। इसके अलावा हमारा प्रस्ताव सरकारसे अपना कर्त्तव्य निभानेके लिए कहता है। कांग्रेसने सुधारोंके मामलेमें, जहाँतक उनसे

१. राष्ट्रीय सप्ताहके सिलसिलेमें प्रेसीडेन्सी संघ, प्रान्तीय कांग्रेस-समिति, होमरूल लीगकी बम्बई शाखाओं तथा नेशनल यूनियनके संयुक्त तत्त्वावधानमें ६ अप्रैल, १९२० को बम्बईके फ्रैंच ब्रिजके समीपवाले मैदानमें वहाँके नागरिकोंकी एक सार्वजनिक सभा हुई थी। उपस्थित लोगोंमें अध्यक्षके अतिरिक्त श्री मो० क० गांधी, श्रीमती एनी बेसेंट तथा श्री मु० अ० जिन्ना भी थे। माननीय सर दिनशा एम० पेटिट इसके सभापति थे।

राष्ट्रोत्थान होनेकी सम्भावना है वहाँतक, सहयोग देनेकी तत्परता दिखाई।[1] आज, जबकि विधान-पुस्तकमें रौलट अधिनियम एक ऐसे अस्त्रके रूपमें मौजूद है जिसका उपयोग सरकार किसी भी क्षण जनता या उसकी कार्रवाइयोंका दमन करनेके लिए कर सकती है, कांग्रेसने सरकारसे सहयोग करनेकी तत्परता प्रकट करके अपनी उदारता दिखाई है। यह प्रस्ताव सरकारको आमन्त्रित करता है कि वह सुधार-योजनाके अधीन संगठित की जानेवाली नई विधान-सभाका[2] अधिवेशन प्रारम्भ होनेसे पूर्व ही रौलट अधिनियमको रद करके इस उदारताका सही प्रत्युत्तर दे। श्री पटेलने इस बातकी ओर भी ध्यान दिलाया है कि अगर सरकार द्वारा नई विधान-सभाकी बैठक प्रारम्भ होनेसे पूर्व रौलट अधिनियम रद नहीं किया जाता तो इसे रद करनेवाला विशेष कानून पास करानेमें कठिनाई होगी। उन्होंने ठीक ही कहा है कि अभी तो वाइसरायको सिर्फ इस बातकी तसदीक-भर कर देनी है कि अमुक कानून देशकी शान्तिके लिए खतरनाक और इस तरह उसकी प्रगतिमें बाधक है। लेकिन मेरा खयाल है कि अगर सरकार अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करती तो ऐसे किसी बुरे परिणामके निराकरणके और उपाय भी हैं। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह कानून नई विधान-सभाके पहले अधिवेशनमें ही रद कर दिया जायेगा। लेकिन अगर यह नई विधान-सभा भी अपना कर्त्तव्य नहीं निभा पाती और अपने निर्धारित समयसे पहले यह अधिनियम रद नहीं हुआ तो मैं आपको भरोसा दिलाता हूँ कि जबतक मुट्ठी-भर सत्याग्रही जीवित रहेंगे तबतक देशमें शान्ति नहीं होगी।

इसलिए इस प्रस्तावका अनुमोदन करते समय मेरे मनमें कोई भय और निराशा नहीं है, बल्कि मैं पूरे विश्वासके साथ इसका अनुमोदन करता हूँ, और इसे भारतकी जनताके इस निश्चित संकल्पके रूपमें आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ कि जिस घृणित कानूनके कारण इतने सारे लोगोंको ऐसी मुसीबतें उठानी पड़ी हैं उसे वह रद करवाकर रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ७-४-१९२० और ८-४-१९२०

१. दिसम्बर १९१९ में अमृतसरके कांग्रेस अधिवेशनमें।

२. सन् १९१९ के सुधार अधिनियमके अन्तर्गत संगठित की जानेवाली केन्द्रीय विधान-सभाके सदस्योंका निर्वाचन नवम्बर १९२० में होनेवाला था।

१०३. पंजाबके मृत्यु-दण्डके मामले

कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त आयुक्तोंने अपनी रिपोर्टमें परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयपर विचार-शक्तिकी घोर कमीका आरोप लगाया है। परमश्रेष्ठने मृत्यु-दण्डके पाँचमें से दो मामलोंमें फाँसीकी सजा कम करनेसे इनकार करके उक्त आरोपकी सत्यता सिद्ध कर दी है। जैसे सैनिक अदालतोंकी कार्यवाहीको अवैध मानकर रद कर देनेसे वे निर्दोष सिद्ध नहीं हो जाते, वैसे ही प्रीवी कौंसिल द्वारा उनकी अपील खारिज कर दिये जानेसे[1] वे अपराधी नहीं सिद्ध होते। इसके अतिरिक्त पंजाब-सरकारने शाही घोषणाकी[2] जो व्याख्या की है, उसके अनुसार ये मामले इस घोषणाके अन्तर्गत आ जाते हैं। अमृतसरमें जो हत्याएँ हुईं वे हत्यारों और मृतकोंके बीच हुए किसी निजी झगड़ेके कारण नहीं हुईं। यह अपराध गम्भीर तो था, किन्तु विशुद्ध रूपसे राजनीतिक था और उत्तेजनाके वशीभूत होकर किया गया था। हत्याओं और आगजनीका बदला लेनेके लिए जितना-कुछ करना जरूरी था, सरकार उससे ज्यादा कर चुकी है। इन परिस्थितियोंमें सामान्य समझदारीका तकाजा तो यही है कि मृत्यु-दण्डकी सजाएँ माफ कर दी जायें। आम जनताका ऐसा विश्वास है कि जिन लोगोंको मृत्यु-दण्ड दिया गया है वे निर्दोष हैं और उनके मामलोंकी सही सुनवाई नहीं की गई है। इन मृत्यु-दण्डोंको कार्यान्वित करनेमें इतनी देर हो गई है कि यदि अब उन्हें फाँसी दी गई तो भारतीय मानसको जबरदस्त आघात लगेगा। यदि कोई भी विचारशील वाइसराय होता तो मृत्यु-दण्डको कम करनेकी घोषणा तुरन्त कर देता। लेकिन लॉर्ड चेम्सफोर्ड भला ऐसा क्यों करने लगे? स्पष्ट है कि उनके विचारसे, अगर कुछ लोगोंको भी फाँसीपर नहीं लटकाया गया तो न्यायकी माँग पूरी नहीं हो सकेगी। हम अब भी यही आशा रखेंगे कि या तो वाइसराय महोदय या श्री मॉण्टेग्यु इन मृत्यु-दण्डोंको कम कर देंगे।

लेकिन अगर सरकार यह गम्भीर भूल कर ही जाती है, और वह इन सजाओंको कार्यरूप दे ही देती है तो जनता भी इन लोगोंके फाँसीपर लटकाये जानेपर क्रोध अथवा दुःख करके उतनी ही बड़ी भूल करेगी। अगर हम ऐसा राष्ट्र बनना चाहते हैं जिसकी आवाजकी दुनियाके राष्ट्रोंके बीच कद्र हो, अगर हम ऐसा ऊँचा दर्जा पाना चाहते हैं जिससे अधिक ऊँचा दर्जा दुनियाके और किसी राष्ट्रका न हो तो हमें एक हजार नहीं हजारों-हजार निर्दोष स्त्री-पुरुषोंकी हत्याको बरदाश्त करनेके लिए मनसे तैयार रहना चाहिए। अतएव हमें आशा है कि सभी सम्बन्धित लोगोंको, फाँसीकी सजाओंको जीवनकी एक सामान्य बात मानते हुए, अपना साहस खोनेके बजाय और अधिक साहस जुटाना चाहिए।

१. देखिए "अमृतसरकी अपीलें", ३-३-१९२०।

२. दिसम्बर १९१९ की।

१०५. पत्र : देवदास गांधीको

बम्बई
[८ अप्रैल, १९२०][1]

चि० देवदास,

तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। अभी और पत्रोंकी राह देख रहा हूँ। फिलहाल मुझे नियमपूर्वक ही लिखते रहना। वहाँ सब-कुछ कैसे चल रहा है, यह जाननेकी मैं हमेशा राह देखता रहता हूँ।[2]

सबसे पहले अपनी तबीयतको सँभालना। अध्ययन उसके पीछे आता है और इन दोनोंके बीच आत्माका विकास। यह आत्मा तो शरीर और अध्ययन दोनोंको अपने प्रकाशसे आलोकित करेगी ही। जिसने आत्माको पहचान लिया उसने सब-कुछ जान लिया है। शरीरको भी उसीके लिए सँजोये, अध्ययन भी उसीके लिए करे — लेकिन इस वाक्यका कुछ भी अर्थ नहीं है और बहुत गूढ़ अर्थ भी है। यदि हम सब वस्तुओंको [उस आत्माकी प्राप्तिका] साधन मानकर अपना कार्य करें तो हमें उसकी प्रतीति होती चली जायेगी। उसका ज्ञान होनेतक हमें श्रद्धाभाव रखना होगा अथवा 'गीता' की भाषामें कहें तो फलकी आकांक्षा किये बिना कार्य करते रहना होगा। एक हीरेको प्राप्त करनेके लिए लाखों व्यक्ति खान खोदते हैं। बहुत वर्षोतक तो इस श्रद्धाका सहारा लिये रहना पड़ता है नीचे हीरा अवश्य है; और अन्तमें जब वह मिल जाता है तब वह एकाएक वहाँ टपक पड़ा हो, सो बात नहीं; वह तो हमेशासे वहीं था। ठीक यही बात आत्मा तथा आत्मज्ञानपर लागू होती है। लेकिन यह सब मैं तुम्हें किस लिए लिख रहा हूँ? तुम जाने-अनजाने आत्माके दर्शन करते ही जा रहे हो। मैं तो स्वास्थ्य और अध्ययनके सम्बन्धमें लिखते-लिखते यह सब लिख गया हूँ। मैंने अध्ययनको स्वास्थ्य-रक्षासे नीचेका स्थान दिया है। क्या हम आत्मानुभूतिको भी शरीरसे गौण मानेंगे? यह विचार करते हुए मैंने देखा कि आत्माकी प्रतीति तो हमेशा होती ही रहती है। बीमारीके समय भी उसे पहचाननेका प्रयास कुछ कम नहीं हो जाता। इसमें कुछ समझमें न आया हो तो पूछना।

सरलादेवी मेरे साथ ही हैं। पंडित रामभजदत्तके कल आनेकी उम्मीद है।

भाई महादेव भाई शामको हजीरा गये हैं। दुर्गा[3] भी साथ है। वहाँसे २१ तारीखतक सिंहगढ़ पहुँचेंगे।

१. इस पत्रपर देवदास गांधीको कुछ शब्द सरलादेवी चौधरानीने भी लिखे थे; वहाँ यही तारीख दी गई है।

२. देवदास गांधी इन दिनों बनारसमें हिन्दीका उच्चतर अध्ययन कर रहे थे।

३. महादेव देसाईकी पत्नी।

मेरा कुछ निश्चित नहीं है।[1]

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७१६८) की फोटो-नकलसे।

१०६. भाषण: राष्ट्रीय सप्ताह सभा, बम्बईमें[2]

९ अप्रैल, १९२०

श्री मो० क० गांधीने निम्नलिखित प्रस्ताव[3] पेश किया।

श्री गांधीने कहा कि हम यहां आज केवल खिलाफतके प्रश्नको लेकर इकट्ठे नहीं हुए हैं, बल्कि यहां जमा होनेका हमारा उद्देश्य पिछले बारह महीनोंमें भारतमें जो-कुछ हुआ है उसपर नजर दौड़ाना है। अन्य बातोंके अतिरिक्त जो दो अत्यन्त प्रमुख बातें हुई हैं, वे हैं स्वदेशीका उद्घाटन तथा सच्ची हिन्दू-मुस्लिम एकताकी नींवका रखा जाना। इनमें से पहलीका सूत्रपात गत अप्रैल महीनेमें हुआ और दूसरी उस समय एक निर्विवाद तथ्य बन गई जब जलियांवाला बागमें हिन्दुओं और मुसलमानोंका रक्त एक होकर बहा। उस दिनसे वह एकता लगातार बढ़ती जा रही है। उन्होंने हिन्दुओंसे खिलाफतके सवालपर अपने मुसलमान भाइयोंके साथ हमदर्दी दिखाकर और उनकी मदद करके इस एकताको सदाके लिए पक्का कर देनेकी अपील की। उन्होंने कहा कि तुर्की साम्राज्यके छिन्न-भिन्न हो जानेके खतरे, और खिलाफतके सवालको लेकर मुसलमानोंके मनमें इतनी कटुता आ गई है जितनी पहले कभी किसी सवालपर नहीं आई थी। यदि इस समय हिन्दू लोग मुसलमानोंके प्रति सहानुभूति नहीं दिखाते हैं तो इस एकताकी इमारतको दृढ़ बनानेका यह बहुत अच्छा मौका हाथसे निकल जायेगा, और वह फिर शायद कभी भी प्राप्त न हो।

१. गांधीजी २९ अप्रैलको सिंहगढ़ पहुँचे थे।

२. ९ अप्रैल, १९२०की रातको फ्रेंच ब्रिजके निकटवर्ती मैदानमें राष्ट्रीय सप्ताहके सिलसिलेमें भारतकी केन्द्रीय खिलाफत समितिके तत्त्वावधानमें बम्बईके नागरिकोंकी एक आम सभा हुई थी। श्री मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानीने सभाकी अध्यक्षता की। **टाइम्स ऑफ इंडिया**, १०-४-१९२०की रिपोर्टमें इतना और दिया गया है कि कार्यवाही हिन्दी भाषामें हुई थी।

३. प्रस्ताव इस प्रकार है: "बम्बईमें रहनेवाले हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अन्य लोगोंकी यह सभा विश्वास करती है कि खिलाफतका मसला भारतके मुसलमानोंकी उचित माँगोंको ध्यानमें रखते हुए तथा सम्राट्के मन्त्रियों द्वारा गम्भीरतापूर्वक दिये गये वचनोंकी रक्षा करनेकी दृष्टिसे हल किया जायेगा। यह बैठक अपना यह मत अंकित करती है कि प्रतिकूल फैसला होनेपर प्रत्येक भारतीयका यह कर्तव्य होगा कि वह सरकारके साथ सहयोग करना तबतक बन्द रखे जबतक कि उन वचनोंका पालन नहीं होता और जबतक मुसलमानोंकी भावना सन्तुष्ट नहीं की जाती।"

आगे बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि मैंने बिना सोचे-विचारे किसी उद्देश्यका समर्थन कभी नहीं किया है और न कभी किसीका करूँगा ही। मैं आपसे मुसलमानोंकी मदद करनेको इसलिए कह रहा हूँ कि मुझे लगता है कि मुसलमानोंका पक्ष न्याय-संगत है। प्रधान मन्त्रीसे खिलाफत शिष्टमण्डलकी भेंटके[1] समय जो-कुछ हुआ, उसकी रिपोर्ट मैंने पढ़ ली है, और उसमें मैंने देखा कि शिष्टमण्डलने ऐसी कोई माँग नहीं की जो न्यायोचित नहीं थी। और अब हम ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान मन्त्रीसे स्वभावतः जो आशा करते हैं वह यही कि वे युद्धके दौरान टर्कीके प्रश्नके सम्बन्धमें दिये गये अपने गम्भीर वचनोंका पालन करेंगे। भारतके मुसलमान चाहते हैं कि टर्कीके सम्बन्धमें यथासम्भव युद्धसे पूर्वकी स्थिति कायम रखी जाये। अन्य बातोंके अलावा वे यह भी चाहते हैं कि कुस्तुन्तुनिया तथा टर्कीके यूरोपीय प्रदेश तुर्कोंके हाथोंमें रहें और जजीरत-उल-अरबपर[2] टर्कीकी अधिसत्ता हो। जहाँतक टर्की साम्राज्यके उन प्रदेशोंका प्रश्न है जिनमें गैर-मुस्लिम जातिके लोग बहुसंख्यक हैं, यूरोपीय शक्तियाँ उन गैर-मुस्लिम जातियोंके संरक्षणार्थ टर्कीसे जो-कुछ आश्वासन लेना चाहें ले सकती हैं बशर्ते कि ये अश्वासन ऐसे न हों जो सुलतानकी पद-मर्यादाके प्रतिकूल पड़ें। यदि अरब लोग, जो मुसलमान हैं, स्वायत्त शासन चाहते हों तो उन्हें दिया जा सकता है, परन्तु वे सुलतानकी अधिसत्तामें रहें। जब हम भारतमें स्वायत्त शासनकी माँग करते हैं तो उसका अर्थ यह नहीं है कि हम ब्रिटिश शासन नहीं चाहते। ऐसा एक भी हिन्दू या मुसलमान नहीं है जो भारतपर ब्रिटिश झंडा फहराते रहनेके विरुद्ध हो। इसी तरह अरबको स्वायत्त-शासन दिया जा सकता है, परन्तु उसपर सुलतानकी अधिसत्ता रहनी चाहिए। अन्तमें श्री गांधीने अपने मुसलमान भाइयोंसे हार्दिक निवेदन किया कि वे लोग हिंसासे दूर रहें। उन्होंने कहा कि आपका उद्देश्य न्यायोचित है और ईश्वरकी सहायतासे वह अवश्य सफल होगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १०–४–१९२०

१. १७ मार्च, १९२० को।

२. हेजाजके पवित्र स्थान। २९ मार्च, १९२० को भारत सरकारने भी स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि ये स्थान मुसलमानोंके नियन्त्रणमें ही रहेंगे।

१०७. दो पत्र

दो मित्रोंकी ओरसे मुझे दो विचारणीय पत्र प्राप्त हुए हैं। पत्रोंमें पहला एक विद्वान् और पवित्रहृदया बहनका है। दूसरा इंग्लैंडके एक प्रसिद्ध ईसाई सज्जनका है। बहन लिखती हैं।[1]

उक्त विचार, लिखनेवाली बहनकी पवित्र भावनाओंके परिचायक हैं। उनकी मान्यता सर्वथा उचित है कि सम्राट्के चित्रको बिगाड़ना अथवा फाड़ना एक भारी पाप है। बच्चे यदि बचपनसे ही इतनी अविनय और उद्धतता सीखेंगे तो भविष्यमें वे जनताकी सेवा करने लायक नहीं रहेंगे। तनिक भी विचार करनेपर स्पष्ट हो जायेगा कि सम्राट्का अपमान करके हम स्वयं अपना ही अपमान करते हैं तथा रजपर धूल फेंककर हम उसे अपनी ही आँखोंमें झोंकते हैं। हमें ब्रिटिश राज्य-पद्धति भले ही पसन्द न हो, उसके लिए सम्राट् उत्तरदायी नहीं हैं। उन्हें तो इसकी खबर भी नहीं कि उनके राज्यमें क्या होता है। यह खबर रखना उनका कर्त्तव्य नहीं है, न उनके पास ऐसी शक्ति है तो फिर उनको दोष देनेसे क्या लाभ? यदि दोष हो भी तो उनका चित्र फाड़नेसे यह दोष कैसे दूर होगा? मुख्य बात तो यह है कि बालकोंके मनमें द्वेषभाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए। बच्चोंका मन निर्दोष होना चाहिए। सारा विद्यार्थी जीवन निर्दोष होना चाहिए। विद्यार्थी जीवनमें राग-द्वेष आदिको अवकाश नहीं होना चाहिए। यदि हम ऐसी उच्च स्थितिको प्राप्त नहीं कर सकते तो भी हमें कठोरता, उद्धतता और अविनयसे बचना चाहिए। मैं ऐसी आशा नहीं कर सकता कि काफी बच्चे 'नवजीवन' पढ़ते होंगे; इसलिए मैं उनके माता-पिताको सलाह देता हूँ कि वे इस लेखको बच्चोंसे पढ़वाकर उनकी भूलको सुधारें। शिक्षक भी ऐसा कर सकते हैं।

उपर्युक्त बहनके पत्रका दूसरा विषय है जनतामें बीभत्स भाषाका प्रयोग करनेकी बुरी आदत। यह बात इतनी व्यापक है कि इसका उपचार होना मुझे कठिन दीख पड़ता है। अपनी सामर्थ्य-भर मैंने इसे दूर करनेकी कोशिश की है, तथापि मुझे स्वीकार करना होगा कि अथक परिश्रमके बाद ही मैं अपने सम्पर्कमें आनेवाले मुवक्किलों आदि की इस आदतको दूर कर सका हूँ। यह लगभग एक असाध्य रोग है। मुवक्किलोंका यह कहना मुझे याद है कि अनेक बार उनके मुखसे अनजाने ही बुरे शब्द निकल जाते हैं। कार्य कितना ही कठिन क्यों न हो, उसे करनेमें ही हमारा निस्तार है। इसके बारेमें तर्ककी भी आवश्यकता नहीं है। यह राग-द्वेषका भी विषय नहीं है। यह बात बहुत समयसे पड़ी हुई कुटेवको, जिसमें अब जनता कोई दोष नहीं देखती, निकाल बाहर करनेकी है। 'नवजीवन' के पाठकोंमें से बहुतोंको लगेगा कि यह बात

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखिकाने पुस्तकोंमें सम्राट् जॉर्ज पंचमके चित्रोंको स्कूलके बच्चों द्वारा विरूप कर दिये जाने तथा कामगरोंमें अश्लील भाषाके व्यापक प्रचारके विरुद्ध शिकायत की थी।

उनपर लागू नहीं होती क्योंकि वे किसी अपशब्दका प्रयोग नहीं करते। लेकिन यदि वे अपनी भाषापर ध्यान दें तो वे देखेंगे कि उनके मुँहसे भी 'साला' शब्द तो निकल ही जाता होगा। हमें परस्पर एक दूसरेको चौकीदार मानकर भाषाके बुरे शब्दोंको ध्यान और प्रयत्नपूर्वक दूर करना-कराना होगा। जब कभी हम दूसरेको कुत्सित शब्दोंका प्रयोग करते हुए सुनें तभी उसे वैसा करनेसे मना करें तो कुछ सुधार हो सकता है। यह बुरी आदत विद्यार्थियोंमें भी है। बचपनसे ही हम ऐसी भाषा सीखते हैं। पाठशालाओंमें तो शिक्षकोंके माध्यमसे तुरन्त सुधार हो सकता है और यदि विद्यार्थी बहादुर बनें तो वे अपने-अपने घरोंकी इस अस्वच्छताको शीघ्र ही दूर कर सकते हैं।

अंग्रेज मित्रके पत्रपर हम आगामी अंकमें विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-४-१९२०

१०८. पत्र: 'बाम्बे क्रॉनिकल'को

बम्बई
११ अप्रैल, १९२०

महोदय,

पंजाबके प्रति कर्त्तव्यकी पुकारका बम्बईने उदारतासे उत्तर दिया है, किन्तु फिर भी पर्याप्त उदारतासे नहीं। यह पत्र लिखनेके समयतक जलियाँवाला बाग स्मारक-कोषके लिए उसने लगभग तीन लाख रुपया दिया है। क्या बम्बईसे पाँच लाखकी और पूरे बम्बई अहातेसे, जिसमें अहमदाबाद और कराची-जैसे व्यावसायिक केन्द्र हों, दस लाखकी न्यूनतम रकमकी आशा करना बहुत ज्यादा होगा?

आशा तो यही की जाती है कि एक ऐसे कोषमें दान देनेमें, जिसका उद्देश्य अत्याचारोंकी स्मृतिको नहीं, वरन् निर्दोष मृतकोंकी स्मृतिको अमर बनाना है, किसी भी व्यक्तिको किसी प्रकारकी झिझक नहीं होगी। मुझसे कहा जाता है कि यह कृत्य इतना भयानक था कि मृतकोंकी स्मृतिसे उस कृत्यकी याद भी ताजी हुए बिना नहीं रह सकती, और इसलिए यह पूरी घटना ही भुला दी जानी चाहिए। यह कहना कुछ ऐसा ही है जैसे कोई यह कहे कि हमें प्रार्थनाओंमें निर्दोष लोगोंकी बात नहीं सोचनी चाहिए, क्योंकि उससे हेरोदका खयाल आ जानेकी सम्भावना है। अब मैं यहाँ यह कहूँगा कि यद्यपि आपत्ति करनेवाले लोगोंकी यह इच्छा प्रशंसनीय है; कि घृणाको स्थायित्व प्रदान न किया जाये; फिर भी इसमें उन्होंने यह मान बैठनेकी भूल की है कि घृणाकी भावनाको उसके कारणोंको भुलाकर समाप्त किया जा सकता है। घृणाकी भावनाको तो केवल प्रबुद्ध प्रशिक्षणसे ही दूर किया जा सकता है और इस विधिसे घृणाके कारण-रूप कृत्यकी स्मृति बनाये रखकर भी उसे दूर किया जा सकता है।

अगर राष्ट्रको इन मृतकोंकी स्मृतिको स्थायित्व प्रदान करनेका कोई निर्दोष मार्ग नहीं मिलता तो वह उस कृत्यको कभी माफ नहीं करेगा। अतएव घृणाको रोकनेका सबसे अच्छा तरीका है राष्ट्रको यह सिखाना कि वह मृतकोंकी स्मृतिको, जो एक पवित्र थाती है, उस "नृशंसता" से पृथक करके देखे जिसे यदि भुलाया न जा सकता हो तो भी माफ तो कर ही देना चाहिये।

पूछा गया है कि स्मारकका स्वरूप क्या होगा। इसका निश्चय तो वह समिति करेगी जो इस कामके लिए विशेष रूपसे नियुक्त की गई है और जिसके सदस्य हैं माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय, माननीय पंडित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द और मैं। और मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि अन्ततः स्मारकका स्वरूप चाहे जो हो, किन्तु निश्चय ही उसमें किसीको कोई चोट पहुँचाने वाली बात नहीं होगी।

इसलिए मैं आशा करता हूँ कि अब जो दो दिन चन्दा करनेका काम जारी रहेगा उसके दौरान इस राष्ट्रीय स्मारकमें अभीतक अपना योगदान न दे पानेवाले सभी लोग योग देंगे। और इसका स्वरूप सचमुच तभी राष्ट्रीय होगा और यह बाग एक पवित्र तीर्थका रूप ले सकेगा जब इसमें बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष और गरीब-अमीर सभी अपना-अपना हिस्सा देंगे।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १२-४-१९२०

१०९. तार: वाइसरायके निजी सचिवको

[बम्बई]

१३ अप्रैल, १९२०

खिलाफतके सम्बन्धमें इंग्लैंड जानेके लिए मुझपर दवाव डाला जा रहा है। यद्यपि मैं नहीं समझता कि मैं महामहिमके मन्त्रियों द्वारा निर्धारित नीतिको इस अवस्थामें किसी भी तरहसे प्रभावित कर सकता हूँ तथापि साम्राज्यके एक शुभचिंतककी हैसियतसे मंत्रियों तथा ब्रिटिश जनताको इस बातसे अवगत करा देना उनके प्रति मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि मुसलमानोंकी उचित भावनाओंके विरुद्ध निर्णय किये जानेके कैसे घातक परिणाम हो सकते हैं। ऐसे विपरीत निर्णयका परिणाम निश्चय ही यह होगा कि लोग सरकारके साथ सहयोग करना बिलकुल बन्द कर देंगे। ऐसे किसी कदमको अगर मैं टाल सका तो खुशी-खुशी वैसा करूँगा, लेकिन जो लोग धर्म तथा स्वाभिमानको हर चीजसे ऊपर मानते हैं उनके

लिए तो यह कदम अनिवार्य होगा। फिर भी मैं वाइसरायकी अनुमति और स्वीकृतिके बिना इंग्लैंड नहीं जाना चाहता। क्या आप इसे परमश्रेष्ठके सामने प्रस्तुत करने तथा तारसे उत्तर देनेकी कृपा करेंगे? यदि परमश्रेष्ठकी स्वीकृति मिल गई हो तो मैं अपने तथा साथियोंके लिए, जो कुल मिलाकर सातसे अधिक नहीं होंगे सबसे पहले जहाजसे यात्राकी सुविधाएँ चाहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स

११०. भाषण: राष्ट्रीय सप्ताह सभा, बम्बईमें

१३ अप्रैल, १९२०

राष्ट्रीय सप्ताहके सिलसिलेमें होमरूल लीगकी बम्बई शाखा तथा नेशनल यूनियनके तत्त्वावधानमें फ्रेंच ब्रिज (बम्बई) के पासवाले मैदानमें एक सार्वजनिक सभा की गई। अध्यक्षता श्री मु० अ० जिन्नाने की।

श्री मो० क० गांधीने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया।[1]

श्री गांधीने कहा कि आप सबने डा० [रवीन्द्रनाथ] ठाकुरका सन्देश[2] सुना। उसके सम्बन्धमें मैं कह सकता हूँ कि पंजाबके कुछ अधिकारियों द्वारा किये गये बर्बर कृत्योंकी भर्त्सना जितने तीखे शब्दोंमें महाकविने की है उससे अधिक तीखे शब्दोंमें और कोई नहीं कर सकता। मैं अध्यक्ष महोदयके इस विचारसे पूरी तरह सहमत हूँ कि जनरल डायरने जो काम किया वह किसी भी सिपाहीके लिए अशोभनीय था और अगर उपयुक्त था तो कायरोंके ही उपयुक्त था। आगे श्री गांधीने कहा कि सरकारसे हमारा अनुरोध है कि वह ऐसे कदम उठाये जिससे पंजाबमें हुए अत्याचारोंकी पुनरावृत्ति असम्भव हो जाये और साथ ही वह कांग्रेस उप-समितिकी पूरीकी-पूरी सिफा-

१. प्रस्ताव इस प्रकार था:
बम्बईके नागरिकोंकी इस सभाका मत है कि अमृतसरमें भीड़ने जो उत्पात किये वे यद्यपि गम्भीर उत्तेजनाओंके वशीभूत होकर ही किये गये थे, फिर भी निन्दनीय हैं; लेकिन दूसरी ओर जलियाँवाला बागमें जनरल डायरने, बिना किसी चेतावनीके, जान-बूझकर और योजनापूर्वक सर्वथा निरीह, निहत्थे और अन्य प्रकारसे भी बिलकुल अरक्षित लोगोंका जो संहार करवाया वह बर्बरताका एक बेमिसाल कारनामा था। सभा यह आशा करती है कि भारत सरकार और साम्राज्यीय सरकार ऐसे कदम उठायेंगी जिससे मार्शल लॉके अमलके दौरान पंजाबके अधिकारियों द्वारा की गई ऐसी बर्बरता या इसी तरहकी अन्य बर्बरताओंको दुहराना असम्भव हो जाये। सभा यह भी आशा करती है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी पंजाब उप-समितिने जो सिफारिशें की हैं, वे पूरीकी-पूरी अमलमें लाई जायेंगी।

२. गांधीजीने जब प्रस्ताव प्रस्तुत किया, उससे पूर्व ही श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजने महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे प्राप्त एक सन्देश पढ़कर सुनाया, जिसमें जलियाँवाला बागके हत्याकाण्डकी भर्त्सना की गई थी।

रिशें अंगीकार कर ले। हमारा जिस मुख्य सिफारिशसे सम्बन्ध है वह यह है कि भविष्यमें किसी भी परिस्थितिमें सर माइकेल ओ'डायर और जनरल डायरको भारतमें या ब्रिटिश साम्राज्यके किसी अन्य हिस्सेमें कोई जिम्मेदारीका पद न दिया जाये। हमारी यह न्यूनतम मांग है कि इन अधिकारियोंको पदच्युत कर दिया जाये। हम यह स्वीकार करते हैं कि पंजाबमें कुछ लोगोंने ऐसे बुरे काम किये जो निन्दनीय हैं, लेकिन जो कृत्य सरकारी अफसरोंने किये वे तो उनसे भी बुरे थे। जलियाँवाला बागमें क्या-कुछ हुआ, यह हम कभी भी भुला नहीं सकते। हम वहां मारे गये निरीह लोगोंकी स्मृति कभी नहीं भूल सकते। मुझे इस बातसे बड़ी खुशी हुई है कि बम्बईके लोगोंने स्मारक-कोषके लिए ३,२५,००० रुपये दिये हैं, हालांकि मैं कहूँगा, मुझे इस बातसे कुछ निराशा भी हुई है कि यह रकम उतनी बड़ी नहीं है जितनीकी मैं अपेक्षा रखता था। आगे बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि हम जीते जी कभी भी जलियाँवाला बागके उन मृतकोंकी स्मृति नहीं भूल सकेंगे। मेरे मनमें प्रतिशोधकी कोई भावना नहीं है, क्योंकि प्रतिशोध लेना कायरोंका काम है। लेकिन हम मृतकोंकी याद कभी भी भुला नहीं सकते। यह स्मारक खड़ा करनेमें हमारा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि हम उन निर्दोष मृत व्यक्तियोंकी स्मृतिको श्रद्धासे सँजोकर रखें। हमारे मनमें कभी भी कोई दुर्भावना नहीं आई है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १४-४-१९२०

१११. पत्र : एस्थर फैरिंगको

सावरमती

१५ अप्रैल, १९२०

रानी बिटिया,

मैं बम्बईसे अभी-अभी लौटा हूँ। मैंने उपवास तथा प्रार्थनाका सप्ताह[1] वहीं बिताया। यह सच है कि मैंने तुम्हें पत्र नहीं लिखा है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मैंने इस बीच तुम्हारे बारेमें कुछ कम सोचा है अथवा तुम्हारे लिए कुछ कम प्यारसे दुआएँ की हैं। मेरे पास जरा भी समय न था और फिर मुझे यह लगा कि तुम्हें इतने काफी पत्र भेज चुका हूँ कि वे तुम्हारे लिए कुछ समयतक पर्याप्त होंगे। यदि मैं तुम्हारी मनःस्थितिसे अवगत होता तो कुछ और भेजता। इसीलिए मैंने कुछ दिन तुम्हें पत्र नहीं लिखा।

लेकिन अब मुझे तुम्हारा मूल्यवान पत्र मिल गया है। तुम्हारे विवाहके सम्बन्धमें अब मैंने वस्तुस्थितिको स्वीकार कर लिया है। मैं उसके विरुद्ध कुछ

१. राष्ट्रीय सप्ताह (६ अप्रैलसे १३ अप्रैलतक)।

नहीं कहूँगा। तुम वही करो जो करनेकी प्रेरणा तुम्हें ईश्वर दे। लेकिन यह हमेशा ध्यान रखो कि वह ईश-प्रेरणा ही है या नहीं।

हाँ, निश्चय ही मैं श्री मेननसे मिलना चाहूँगा। तुम जिनके प्रति स्वयंको समर्पित करना चाहती हो मेरे लिए तो यही इस बातका पर्याप्त प्रमाण है कि वे कोई सामान्य युवक नहीं हैं।

मेरे लन्दन जानेके बारेमें कुछ भी निश्चित नहीं है। अभी तो बात ही बात है। मैंने वाइसराय महोदयको पत्र लिखा है और बहुत-कुछ उनके उत्तर-पर निर्भर करेगा।

बम्बईमें मुझे उपवास-सप्ताहके दौरान बहुत अच्छे अनुभव हुए। लेकिन उनके बारेमें तो मिलनेपर बताऊँगा। तुम्हारे स्वदेशके लिए कब प्रस्थान करनेकी सम्भावना है?

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडियामें सुरक्षित हस्तलिखित मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल तथा **माई डियर चाइल्डसे**।

११२. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
चैत्र वदी ११ [१५ अप्रैल, १९२०][1]

चि० देवदास,

मैं आज बृहस्पतिवारको आश्रम पहुँचा हूँ। मैंने दो दिनका उपवास बम्बईमें[2] ही पूरा किया। तुम्हारा पटनासे वापस लौटकर लिखा हुआ पत्र मिला।

सरलादेवी तथा पण्डितजी[3] बम्बईमें हैं। वे यहाँ १९ तारीखको पहुँचेंगे। १६ को बम्बईसे रवाना होकर गोधरा जायेंगे।

बम्बईमें कविके[4] साथ भी काफी मिलना-बैठना हुआ। रेवाशंकर भाईके यहाँ एक दिन [उन्हें] भोजन कराने भी ले गया था।

बम्बईमें अच्छी-खासी रकम[5] इकट्ठी हुई है। लेकिन मैंने जितनी अपेक्षा की थी उससे कम ही है।

१. पत्रमें जिन घटनाओंका जिक्र किया गया है वे सब १९२० की हैं। उस वर्ष बृहस्पतिवार, १५ अप्रैल, चैत्र वदी १२ को पड़ा था। १२ के स्थानपर यहाँ भूलसे '११' लिखा हुआ है।

२. ६ अप्रैलसे १३ अप्रैल, १९२० तक गांधीजी बम्बईमें थे।

३. रामभजदत्त चौधरी।

४. रवीन्द्रनाथ ठाकुर राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान बम्बईमें थे।

५. जलियाँवाला बाग-स्मारक कोषके लिए।

बुआजी और निर्मला दोनों यहीं हैं। महादेव और दुर्गा अपने गाँव गये हैं। बालकृष्ण तथा प्रभुदास सिंहगढ़में हैं। स्वदेशीके कामके लिए गोविन्द बाबूको बम्बई रखा है।

तुम्हारे कामका सिलसिला अब जम गया है न? रामदास और मणिलालके सम्बन्धमें एन्ड्रयूज जो समाचार देते हैं वह सन्तोषजनक हैं। दोनोंकी तबीयत भी ठीक है और दोनों फिलहाल 'इंडियन ओपिनियन' के काममें व्यस्त हैं।

इस तरह आजके इस पत्रको मैं परिवारके सदस्योंके बारेमें जानकारी देकर ही समाप्त करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७१६९) की फोटो-नकलसे।

११३. तार: भारत-मंत्रीको

[१५ अप्रैल, १९२० के बाद][१]

मुझपर इस बातके लिए दबाव डाला जा रहा है कि मैं इंग्लैंड जाऊँ, खिलाफत प्रश्नके बारेमें मन्त्रियों व जनतासे भेंट करूँ और दूसरे शिष्टमण्डल-पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ने देते हुए वहाँके मंत्रियों और जनताको सच्ची हिन्दू-मुस्लिम भावनासे परिचित कराऊँ और मुसलमानोंके प्रबल बहुमत-की भावनाके प्रतिकूल निर्णय होनेसे जो घातक परिणाम होंगे उनकी ओर उनका ध्यान दिलाऊँ। कोई भी गम्भीर कदम उठानेसे पहले मैं मन्त्रियोंसे मिलकर उन्हें इस महत्त्वपूर्ण मामलेपर अपनी भावना बताना और उनका दृष्टिकोण समझना पसन्द करूँगा। इसलिए मैंने परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयसे अपने तथा साथियोंके लिए [इंग्लैंड जानेकी] अनुमति और अपने मिशनपर सहमति देनेका अनुरोध किया। वाइसराय महोदय अनुमति देनेको तो राजी हैं परन्तु यह कहनेको तैयार नहीं हैं कि हमारे मिशनकी कोई उपादेयता है या नहीं। इस सम्बन्धमें कोई राय देनेमें मैं वाइसरायकी अनिच्छा समझ सकता हूँ परन्तु साथ ही इस कठिन कार्यमें सरकारसे प्रोत्साहन प्राप्त किये बिना मैं इंग्लैंडके लिए प्रस्थान करना नहीं चाहता। क्या आप मुझे मंत्रियोंके दृष्टिकोणसे अवगत करानेकी कृपा कर सकते हैं?

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एबस्ट्रेक्ट्स

१. स्पष्ट है कि यह तार गांधीजीके १३ अप्रैल, १९२० के तारका वाइसरायसे उत्तर मिल जानेके पश्चात् भेजा गया होगा। उत्तर १५ अप्रैलतक नहीं आया था। देखिए पिछला शीर्षक।

११४. पत्र : अब्बास तैयबजीको[1]

आश्रम
१७ अप्रैल, [१९२०][2]

प्रिय भाई,

इतने लम्बे अर्सेतक मैंने आपको कोई चिट्ठी-पत्री नहीं लिखी। आशा है, इसके लिए क्षमा करेंगे। ऐसा कोई दिन नहीं बीता है जब मैं आपको एक स्नेह-पत्र लिखनेके लिए लालायित नहीं रहा हूँ। लेकिन कामका दबाव इतना रहा कि लिख नहीं सका। मैंने सरलादेवीसे अनुरोध किया कि आपको मेरी ओरसे लिख दें, लेकिन उन्होंने कहा कि खुद मेरी लिखावटमें लिखे पत्रके बिना काम नहीं चल सकता। इस तरह व्यस्ततामें दिनपर-दिन बीतते गये और मैं आपको कोई पत्र नहीं लिख पाया। लेकिन आशा है रेहानाकी मार्फत आपको मेरा सन्देश मिल गया होगा। क्या शानदार लड़की है वह! वास्तवमें ठाकुर घराने और तैयबजीके घराने जैसे परिवार भारतमें गिने-चुने ही हैं और ये परिवार देशके मित्र हैं। मेरा भी सौभाग्य ही है कि जहाँ-कहीं भी जाता हूँ, इन लोगोंसे भेंट हो जाती है। लेकिन मैं तबतक माननेवाला नहीं हूँ जबतक कि ये बच्चियाँ और श्रीमती अब्बास मेरे लिए कुछ कताईका काम नहीं करतीं। मैं जानता हूँ, इसकी जिम्मेदारी आप मुझपर डालेंगे। खैर, जो चाहिए कीजिए लेकिन आप किसी एक लड़कीको यहाँ कताई सीखनेके लिए भेजकर यह कठिनाई आसानीसे दूर कर सकते हैं। अगर यह असम्भव हो तो मुझे वहाँ एक प्रशिक्षक भेजना ही पड़ेगा। कृपया सूचित करें कि क्या करूँ।

और अब आपकी सेहतके बारेमें। रेहानाने बताया कि अभी भी आपकी सेहत गड़बड़ ही चल रही है। आप बहुत ज्यादा फिक्र करते हैं। मैं तो बस चुटकी बजाकर सारी फिक्र फुर्र कर दूँगा और अपनेको तथा दुनियाको भी भगवान्के भरोसे छोड़ दूँगा। इस अखिल संसृतिकी योजनामें हमारा महत्त्व तो चींटियोंसे भी कम है। इसलिए हमें जो काम सौंपा जाता है वह सिर्फ इसलिए कि हम परिणामोंके प्रति सर्वथा अनासक्त रहकर अपने-भर पूरी ताकत लगाकर देख लें। और यह नियम हमारी शारीरिक अस्वस्थताके साथ भी इतना ही लागू होता है जितना कि पंजाबके मामलेके साथ। पहले मामलेमें आप डाक्टरकी सलाह लीजिए और निश्चिन्त हो जाइए; और दूसरेमें आप पूरी सावधानीके साथ एक उत्तम रिपोर्ट तैयार कर दीजिए

१. १८५३-१९३६; गुजरातके एक राष्ट्रवादी मुसलमान नेता; बड़ौदा उच्च न्यायालयके भूतपूर्व न्यायाधीश; पंजाबके उपद्रवोंपर रिपोर्ट देनेके लिए कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त कमिश्नरोंमें से एक।

२. पत्रमें पंजाबके सम्बन्धमें रिपोर्ट तैयार करनेकी चर्चासे जान पड़ता है कि यह १९२० में ही लिखा गया।

और फिर आगे कोई आदेश प्राप्त होनेतक के लिए निश्चिन्त हो जाइए। अच्छा तो, अब आप सबको प्यार ! ढेर सारी चिट्ठियाँ मेरी राह देख रही हैं।

"प्रसन्न रहो, प्रसन्न रहो; व्यर्थकी चिन्ता मत करो"—यह भजन मैंने अपने बचपनमें स्कूलमें ही सीखा था। लेकिन वह आज भी मेरे मनपर उसी तरह अंकित है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० ९५९३) की फोटो-नकलसे।

११५. खिलाफत

पिछले सप्ताह मैंने एक विदुषी बहनके पत्रपर टिप्पणी लिखी थी। उसी लेखमें मैंने एक अंग्रेज मित्रके पत्रका उल्लेख भी किया था। पत्रमें कहा गया है, "आपको खिलाफतके प्रश्नमें भाग लेते देखकर मुझे आश्चर्य होता है। दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नपर मैंने आपकी सहायता की थी। मैं समझता था कि आप अंग्रेजोंके हितेच्छु हैं और समझदार तथा ईमानदार व्यक्ति हैं। लेकिन अब तो आप अंग्रेजोंके विरुद्ध मुसलमानोंको एक करना चाहते हैं और टर्कीका पक्ष लेते हैं। मैं आरमीनियामें रहा हूँ तथा मुसलमानों द्वारा किये गये अत्याचारोंसे अवगत हूँ। मुझे आपकी ईमानदारीके विषयमें शंका हो रही है; लेकिन समाचारपत्रोंमें जो देखता हूँ वह सत्य है, इस बातकी आप जबतक पुष्टि नहीं करेंगे तबतक मैं आपके विरुद्ध कोई धारणा नहीं बनाऊँगा।" विदुषी बहनका पत्र प्रेम भावनासे प्रेरित है, इसलिए उसमें मेरी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें कोई शंका नहीं उठाई गई। मित्र-भावके बावजूद अंग्रेज मित्रके पत्रमें मेरी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें शंका उठाई गई है; और मेरी प्रवृत्तिके शुभ परिणामके सम्बन्धमें तो दोनोंमें शंका व्यक्त की गई है। शंका इन्हीं मित्रोंके मनमें उठी हो, सो बात नहीं हैं, अन्य मित्रोंने भी इसी आशयके विचार व्यक्त किये हैं।

मैं मानता हूँ कि अन्यायके विरुद्ध क़दम उठाते समय अन्यायीके विरुद्ध द्वेषभाव उत्पन्न न होने देना सर्वथा असम्भव है। द्वेष करनेसे द्वेषी अपने आपको हानि पहुँचाता है, इसमें सन्देह नहीं। कोई भी मनुष्य सम्पूर्ण नहीं होता, इसलिए द्वेष करनेवाला दयाका पात्र बन जाता है; क्योंकि अपनी भूलोंके लिए तो वह जगत्के निकट क्षम्य नहीं रहना चाहता है तथापि वह स्वयं जगत्की भूलोंको क्षमा नहीं करता और इस तरह वह क्षमा प्राप्त करनेके अयोग्य ठहरता है। लेकिन चूँकि राग-द्वेष आदि करते-करते हमें उनकी कुटेव पड़ जाती है, हम अनेक बार तो चाहकर भी इन शत्रुओंको अपनेसे दूर नहीं रख पाते।

तब क्या करना चाहिए? कोई अन्यायीके प्रति राग-द्वेषका अनुभव न करे, क्या इस भयसे हम अन्यायका विरोध न करें? देखा जाता है कि सगे-सम्बन्धियों द्वारा की

गई भूलको हम दबा देना चाहते हैं। मेरी मान्यता है कि जैसे द्वेष हानिकारक है वैसे ही झूठा प्रेम भी हानिकारक है। प्रियजनोंकी भूलोंको उघाड़नेमें भी कोई नुकसान नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि उससे लाभ ही है। भूल सुधारनेकी पहली सीढ़ी उसे पहचान-कर उसपर लज्जित होना है। उसे ढककर रखनेसे उसकी पूरी पहचान नहीं होती तथा जिसने भूल की है वह व्यक्ति लज्जाको छोड़कर उद्धत बन जाता है तथा भूलके गड्ढेमें और भी गहरा उतर जाता है। शरीरमें हुए फोड़ेको काट देने अथवा फोड़ने-पर ही जैसे दर्दसे छुटकारा मिलता है, उसी तरह भूलको प्रकट करनेसे ही निवृत्ति मिल सकती है।

अन्यायका विरोध न करनेकी सलाह तो दोनोंमें से किसीने भी नहीं दी अर्थात् आपत्ति केवल विरोध करनेकी पद्धतिपर ही है। मेरी पद्धतिमें अन्यायका विरोध इस हदतक करनेकी बात है कि यदि अन्यायी नहीं सुधरता तो फिर वह सगा बाप ही क्यों न हो, त्याज्य है। उसका त्याग न करनेका अर्थ उसके पापमें भागीदार बनना है। अन्यायका विरोध अन्यायीका त्याग करनेकी सीमातक करनेपर भी प्रेमभावको धक्का नहीं पहुँचता, यह मेरा निजी अनुभव है। अन्याय तो एक भारी भूल है। मित्र भूल करे तो भी उसपर प्रेमभाव रखें, इसमें ही प्रेमकी कसौटी है। भलाईके बदले भलाई करें, इसमें कुछ नवीनता नहीं है। जो व्यक्ति बुराईका बदला भलाईसे दे वही ज्ञानी है, ऐसा शामलभट्टने[1] हमें सिखाया है। गीताकी शिक्षा है कि शत्रु-मित्रके प्रति समभाव रखना चाहिए।

इस तरह हमारे पास राजमार्ग तो एक ही है। यह तय करनेके पहले कि अमुक कार्य अन्यायपूर्ण अथवा दोषपूर्ण है, हमें उसपर भली-भाँति विचार कर लेना चाहिए। अन्यायी जान पड़नेवाले व्यक्तिके विरुद्ध उतावलीमें कोई राय कायम न करें। काफी सोच-विचारके बाद यदि लगे कि निश्चित ही अन्याय किया जा रहा है तो फिर उसका अन्ततक विरोध करें। इसके साथ ही यदि किसी व्यक्तिका दोष निश्चित करनेमें हमसे भूल हुई हो तो हम उसे तत्क्षण स्वीकार करने और क्षमा माँगनेके लिए तैयार रहें।

खिलाफतके सवालमें मुसलमान न्यायपर हैं, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है। यदि मुझे उनकी भूल दिखाई पड़े तो मैं तत्काल उनकी मदद करना बन्द कर दूँ। वे द्वेष-रहित हैं सो मैं नहीं कहता, लेकिन उनके द्वेषभावके साथ अपने प्रेमभावको मिलाकर उसके वेगको हल्का कर सकता हूँ, ऐसी मेरी मान्यता है। मेरी यह भी मान्यता है कि यदि मेरी पद्धतिको बहुत लोग स्वीकार कर लें तो द्वेषके वेगको सर्वथा रोका जा सकता है। जिनके मनमें द्वेष भरा हुआ है वे भी अन्यायका विरोध तो करेंगे ही और उसमें विवेकसे काम नहीं लेंगे। द्वेषहीन व्यक्तिका भी अन्यायका विरोध किये बिना छुटकारा नहीं है। अन्यायी तो द्वेषी है ही। अन्यायसे पीड़ित व्यक्ति जब प्रतिकार करता है तब वह भी द्वेषी बनता है। अब सवाल बच रहता है कि द्वेषहीनको क्या करना चाहिए। कभी-कभी इसका उत्तर आसानीसे नहीं मिलता। व्यक्तिके चरित्रका निर्माण धर्मसंकटके आनेपर ही होता है। गिर-गिरकर ही वह चढ़ता है। भूल तो हो सकती है;

१. १८वीं शताब्दीके एक गुजराती कवि।

हमारा फर्ज है कि हम सावधान रहें। भूल होनेके भयसे हाथपर-हाथ रखकर बैठे रहना कायरता है। इसलिए भूल होनेकी आशंका रहनेपर भी व्यक्तिको चाहिए कि वह जहाँ अन्याय मालूम पड़े वहाँ प्रेमभावसे उसका विरोध करके परिणामका अधिकारी बने। ऐसी मेरी नम्र मान्यता है कि यही 'गीता'का मार्ग है।

चम्पारनमें,[1] खेड़ामें[2] और रौलट अधिनियमकी प्रवृत्तिमें[3] मैं अन्यायका तीव्र विरोध करनेमें द्वेषभावको बिलकुल तो नहीं रोक सका लेकिन अन्यायको थोड़े अथवा ज्यादा अंशोंतक रोकनेमें अवश्य सहायक हो सका हूँ तथा लोगोंको सत्याग्रह रूपी सूर्यकी झाँकी भी दिला सका हूँ। उसके तेजको मैं पूर्णतया नहीं दिखा सका, क्योंकि मेरी समझमें अभी मेरी तपश्चर्या और ज्ञानमें बहुत खामियाँ हैं। मैं अंग्रेजोंका मित्र हूँ। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि मिल-मालिकोंके प्रति मेरे मनमें कोई द्वेषभाव नहीं है। इसलिए मैं शान्त-चित्त हो अपने मार्गपर चलता रहा हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-४-१९२०

११६. टिप्पणियाँ

सत्याग्रह सप्ताह

सत्याग्रह सप्ताह निर्विघ्न बीत गया है। मुझे उम्मीद है कि गुजरात और काठियावाड़के प्रत्येक गाँवके स्वयंसेवक इस प्रवृत्तिका संक्षिप्त विवरण, 'नवजीवन' में प्रकाशनार्थ लिख भेजेंगे। प्रत्येक स्थानपर कितना चन्दा[4] इकट्ठा हुआ और उसकी क्या व्यवस्था की गई, उसकी खबर भी देंगे। बम्बईमें पाँच लाख रुपये तो इकट्ठे नहीं किये जा सके, फिर भी अच्छी रकम इकट्ठी हुई। लेकिन रकम कितनी इकट्ठी हुई है इसके बजाय वह किस तरह इकट्ठी हुई है, यही जानना अधिक उचित होगा। और इसे जानकर सन्तोष भी मिल सकता है। धनिक लोगोंने बड़ी-बड़ी रकमें दी हैं, लेकिन गरीबसे-गरीब व्यक्तियोंने भी यथाशक्ति दिया है। स्त्रियोंने स्वयं चन्दा दिया, इतना ही नहीं अन्य स्त्रियोंको भी चन्दा देनेके लिए प्रेरित किया है। गुजराती स्त्री-मण्डलने इसमें अच्छा योगदान दिया। उसने श्रीमती सरलादेवीकी अध्यक्षतामें जोरदार लेकिन उचित भाषामें एक प्रस्ताव भी पास किया। ढेढों और भंगियोंने भी यथाशक्ति कोषमें चन्दा दिया और हरएकने प्रसन्नतापूर्वक दिया। यह कहा जा सकता है कि इसके लिए किसीसे आग्रह करने अथवा किसीको शरमिन्दा करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। इसके अतिरिक्त चन्दा देनेवाले सैकड़ों भाई-बहनोंसे बातचीत करनेपर मुझे मालूम हुआ कि रोष अथवा

१. १९१७ में।
२. १९१८ में।
३. १९१९ में।
४. जलियाँवाला स्मारक-कोषके लिए।

वैरभावको बनाये रखनेके उद्देश्यसे तो बहुत ही कम लोगोंने पैसा दिया होगा। असंख्य लोगोंके मनमें तो एक ही विचार था, और वह यह कि जो बिना किसी अपराधके निर्दोष ही मारे गये उनकी स्मृतिको चिरस्थायी बनाया जाना चाहिए। बहुतसे लोगोंकी भावना यह भी थी कि जलियाँवाला बागको सार्वजनिक सम्पत्तिमें परिवर्तित करके तथा उसमें स्मारक बनाकर १३ अप्रैल, १९१९ के दिन हिन्दू-मुसलमानोंमें जो एकता नजर आई थी उसमें और भी वृद्धि की जा सकेगी। सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने जो वाक्य कहे वे बिलकुल सही हैं। जनरल डायरकी क्रूरताको याद रखकर हम हरगिज प्रगति नहीं कर पायेंगे। लेकिन सत्य, दृढ़ता, वीरता, निर्दोषता आदि स्थायी गुणोंकी स्मृतिको अक्षुण्ण बनाना जनताका कर्त्तव्य है; इसीमें उसकी उन्नति निहित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८–४–१९२०

११७. तार: छोटानीको[1]

अहमदाबाद
१८ अप्रैल, १९२०

पूरी बातचीतके बिना जाना असम्भव। २० वीं के टिकट[2] रद करवा दें। मंगलवारको पहुँच रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स

११८. भाषण: अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें[3]

१८ अप्रैल, १९२०

आज हम लोग यहाँ न्यायकी[4] शान्तिमय विजयका दूसरा वार्षिकोत्सव मना रहे हैं। मजदूरोंकी इस जीतको मैं न्यायकी ही जीत कहता हूँ, क्योंकि मजदूरोंकी माँग न्यायपूर्ण थी और उन्हें स्वीकृत करानेके लिए उन्होंने जिन साधनोंको अपनाया था वे भी शुद्ध थे। मैं अन्यायके मार्गसे तो मजदूरोंकी जीतकी भी इच्छा नहीं कर सकता।

१. मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानी।

२. खिलाफत आन्दोलनके सम्बन्धमें इंग्लैंड जानेके लिए।

३. यह भाषण गुजरातीमें दिया गया था और **नवजीवन**में इस लेखका शीर्षक "मिल मजदूरोंकी वार्षिक सभा" है।

४. यहाँ मिल-मजदूरोंकी उस हड़तालसे तात्पर्य है जो १९१८ में हुई थी; देखिए खण्ड १४।

गतवर्ष संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्दजीने हमारे उत्सवमें भाग लेकर उसकी शोभा वढ़ाई थी; तबसे आजतक अनेक महत्त्वपूर्ण घटनायें घटित हुई हैं और परिणामतः हिन्दुस्तानका स्वरूप वदल गया है और देशमें नया उत्साह भर गया है; परन्तु मैं हिन्दुस्तानकी सार्वजनिक स्थितिपर अपने विचार प्रकट करके आपका समय न लूँगा।

गत वर्ष अप्रैल मासकी घटनाओंमें मजदूरोंने जो भाग लिया था यदि उसके विषयमें मैं कुछ न कहूँ तो मजदूर वर्गका मित्र होनेका मेरा दावा और अपनेको मजदूर माननेका अभिमान——दोनों मिथ्या कहलायेंगे।

अप्रैलके महीनेमें मुझे सरकारने गिरफ्तार कर लिया; मुझे गिरफ्तार करके सरकारने भूल की, इसके वारेमें तो सन्देह ही नहीं है। फिर भी क्या मजदूर आगजनी या खूँरेजी करके इस भूलको सुधार सकते थे? अनसूयावेनकी आप लोग पूजा करते हैं। वे अवश्य ही पूजनीय हैं। आप लोग उनकी गिरफ्तारीकी अफवाह सुनकर घवरा गये, रोषमें आ गये; आप लोगोंको ऐसा लगा मानो आपके पंख ही काट दिये गये हों। यह मनोदशा उनके प्रति आपके प्रेमको सूचित करती है। परन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या उनके प्रति अपना स्नेह प्रदर्शित करनेकी खातिर मकानोंको जला डालना ठीक हो सकता है? आप यह कहकर कि इस कृत्यमें और लोगोंका भी हाथ था, वच नहीं सकते। जव मुझे तथा आदरणीय अनसूयावेनको यह समाचार मिला कि अहमदावादमें रक्तपात किया गया है, घर जलाये गये हैं और इन हरकतोंमें मजदूर भी शामिल थे, तव हम दोनोंको कितना क्लेश पहुँचा होगा, यह मैं आपको वतलानेमें असमर्थ हूँ। इस प्रकारके कामोंसे मुझे तो हिन्दुस्तानका भविष्य भयंकर ही दीख रहा है। जब-जब मजदूरोंके मनमें झुंझलाहट आये तव-तव वे देशके कानूनको साधारण चोर-लुटेरोंकी तरह भंग करना प्रारम्भ कर दें और जान-मालको नुकसान पहुँचाने लगें तो यह स्थिति आत्मघात करने जैसी होगी और इससे भारतको अकथनीय संकटोंका सामना करना होगा। कभी-कभी हिंसात्मक कृत्य जाहिरा तौरपर फलीभूत होते दीख पड़ते हैं यह देखकर आप लोग भुलावेमें न आ जायें, मैं इतना ही चाहता हूँ। मैंने सत्याग्रह तथा कानूनके सविनय भंगका प्रचार तो किया था किन्तु उसका अर्थ यह तो कदापि न था कि उसमें कानूनका रक्तपात मिश्रित भंग भी शामिल किया जा सकता है। मेरा अनुभव तो यह है कि सत्यका शुद्ध प्रचार रक्तपातके द्वारा हो ही नहीं सकता। जिसे अपने सत्यके प्रति निष्ठा है उसके मनमें तो अथाह सागरका धैर्य होगा। कानूनकी सविनय अवज्ञा तो वही कर सकता है जिसने कानूनका दुर्विनीत, हिंसापूर्ण अथवा रक्तपातमय भंग कभी न किया हो और आगे भी ऐसा न करना चाहता हो। जिस प्रकार कोई व्यक्ति एक ही समयमें गरम और नरम नहीं हो सकता उसी प्रकार कानूनके सविनय और अविनय भंगका एक साथ घटित होना असम्भव है। जिस प्रकार दिन-प्रतिदिन क्रोधका शमन करनेकी शिक्षा लेते रहनेके फलस्वरूप ही शान्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार कानून भंगकी शक्ति भी कानूनका निरंतर पालन करते रहनेसे ही आ सकती है। जो व्यक्ति गहरे प्रलोभनके समय भी उससे वच सकता है, वही जीता हुआ कहा जाएगा। उसी प्रकार क्रोध करनेके प्रवल कारण उपस्थित हो जानेपर भी जो व्यक्ति क्रोधको दवा सकता है उसीने

क्रोधको जीत लिया है ऐसा माना जायेगा। हम इस कसौटीपर खरे नहीं उतरे हैं। मैं आप सब मजदूर भाइयोंसे प्रार्थना करता हूँ कि इस दूसरे वर्षके उत्सवके समय आप लोग यह ठान लें कि गत अप्रैलकी भूलोंकी पुनरावृत्ति अब कभी नहीं होने पायेगी।

अब मैं मजदूरोंकी स्थितिके बारेमें कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। इस विषयमें मजदूरोंको बहुत-कुछ जानकारी हासिल करनी है। अधिक मजदूरी मिल जानेसे मजदूर धनाढ्य तो नहीं हो जायेंगे; और फिर धनाढ्य होना ही सब कुछ नहीं है। पूज्य अनसूयाबेनने अपना जीवन केवल इसी हेतु अर्पित नहीं किया है कि आप लोगोंको अधिक मजदूरी मिल सके। उन्होंने अपना जीवन जो आप लोगोंकी खातिर दे रखा है उसका कारण तो यह है कि आप लोग इतना कमा सकें कि जीवनयापन थोड़ी सुविधासे करते हुए धार्मिक बनें, नीतिवान बनें, व्यसनोंका त्याग करें और कमाईका सदुपयोग किया करें। अपने घरोंको अच्छा रखें और आपके बच्चे उचित शिक्षा पायें। अर्थात् वे चाहती हैं कि आप लोग अपनी आर्थिक, मानसिक और नैतिक स्थितिको बेहतर बना सकें।

आप लोगोंकी आर्थिक दशा पहलेसे कुछ सुधरी है, परन्तु अभी और भी सुधरनी चाहिए। इसके लिए दो उपाय काममें लाये जा सकते हैं: एक तो मिल-मालिकोंके साथ सलाह-मशविरा करके और दूसरा उनपर बेजा दबाव डालकर। इनमें से पहला तरीका ही ठीक है। पश्चिमी देशोंमें मजदूर वर्ग तथा मालिकोंके बीच सदा झगड़ा चलता रहता है। एक दूसरेके प्रति वैरभाव बढ़ता है, दोनों एक दूसरेको अपना शत्रु मानते हैं। मालूम होता है कि वही हवा हिन्दुस्तानमें भी बहने लगी है। यदि वह हवा यहाँ घर कर गई तो हिन्दुस्तानके उद्योग-धन्धे बरबाद हो जायेंगे और अशान्तिका वातावरण फैल जायेगा। अगर दोनों पक्ष इस बातका खयाल रखें कि मजदूरोंके बिना मिल-मालिकोंका काम नहीं चल सकता और मिल-मालिकोंके बिना मजदूरोंको मजदूरी नहीं मिल सकती तो तकरार ही नहीं हो सकती।

एक न्याययुक्त माँग

परन्तु आज मिल-मालिकोंके कर्त्तव्य क्या हैं इसके बारेमें मैं कुछ नहीं कहना चाहता। अगर सिर्फ मजदूर ही अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वको समझ जायें और उसके लिए केवल शुद्ध साधनोंका ही उपयोग करें तो भी दोनों पक्षोंका हित हो सकता है। परन्तु इसमें दो बातोंकी जरूरत है। एक तो माँग उचित होनी चाहिए और फिर माँगोंको कबूल करवानेके लिए अच्छे साधन काममें लाये जायें। मालिक खराब स्थितिमें है यह जानकर पेश की गई माँग उचित नहीं कही जा सकती। आवश्यकतानुसार भोजनादि और बच्चोंकी शिक्षाके लिए पर्याप्त हो, इतनी मजदूरीकी माँग करना मुनासिब है। साधनोंकी शुद्धिका अर्थ है, मालिकोंपर दबाव न डालकर, उनकी न्याय-वृत्तिको जागृत करना और पंचोंको नियुक्त कराकर न्याय प्राप्त करना।

मजूर मंडल

शुद्ध साधनों द्वारा इस प्रकार न्याय प्राप्त करनेके हेतु मजदूर मण्डलोंकी स्थापना की जानी चाहिए। उसका श्री गणेश हो गया है। आशा करता हूँ कि शीघ्र ही

प्रत्येक विभागके मजदूर अपने-अपने विभागका मण्डल बना लेंगे और फिर प्रत्येक मजदूर उसके द्वारा बनाये गये नियमोंका यथावत् पालन करेगा। मजदूर इन मण्डलोंके द्वारा ही मालिकोंके सामने अपनी मांगें पेश किया करें और अगर मांगें पूरी न हों तो पंच नियुक्त कराये जायें। सन्तोषकी बात है कि दोनों पक्षोंने पंचों द्वारा झगड़े निपटानेका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। आशा है कि दोनों पक्ष इस सिद्धान्तका पूरा-पूरा विकास करेंगे और हड़ताल वगैरा हमेशाके लिए समाप्त हो जायगी। इसमें शक नहीं कि न्याय प्राप्त होनेपर मजदूरोंको हड़ताल करनेका हक है, परन्तु पंचायतों द्वारा झगड़े निपटानेका मार्ग स्वीकार कर लिये जानेके पश्चात् हड़ताल करना पाप माना जाना चाहिए। मजदूरीमें वृद्धि उचित रीतिसे ही हुआ करती है और धैर्य धारण करनेसे आगे भी वृद्धि की सम्भावना है। परन्तु मजदूरीमें वृद्धिकी तरह ही मजदूरीके घंटोंमें कमी करना भी आवश्यक है। आज तो मजदूर रोजाना बारह घंटे या उससे भी अधिक समयतक काम करते हैं। इतने घंटे नित्य काम करनेके फलस्वरूप श्रमिकको अपनी मानसिक या नैतिक दशा सुधारनेका अवकाश नहीं मिल सकता और उसकी हालत पशु-जैसी हो जाया करती है। हमें ऐसी परिस्थितिमें से निकलना ही चाहिए। फिर भी हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि देशके उद्योगको नुकसान न पहुँचने पाये। मिल-मालिकोंकी ओरसे मुझे यह सुननेको मिलता है कि मजदूर लोग आलस्य करते हैं, वक्तकी चोरी करते हैं और सावधानीसे काम नहीं करते। दिनमें बारह घंटे काम करनेवाले मजदूरसे सावधानी या लगनके साथ काम करनेकी आशा नहीं की जा सकती, परन्तु जब मजदूर केवल दस घंटे रोज काम करनेकी उम्मीद कर रहे हैं तब मैं भी यह आशा अवश्य करता हूँ कि जितना काम वे बारह घंटेमें करते हैं उतना ही नहीं बल्कि उससे अधिक काम दस घंटेमें करके दिखा देंगे। इंग्लैंडमें कामके घंटोंमें कमी करनेका परिणाम शुभ ही निकला है। अगर मजदूर अपनेको केवल मजदूर न मानकर मालिकोंके कामको अपना काम समझने लगें और कार्यकुशलता बढ़ाते रहें तो उनकी उन्नति होगी और देशका उद्योग भी उन्नत होगा। इसलिए मैं मालिकोंसे निवेदन करूँगा कि वे कामके घंटे बारहकी जगह दस कर दें और मजदूरोंको यह परामर्श देता हूँ कि वे बारह घंटेका काम दस घंटेमें ही कर डाला करें।

मजदूरी बढ़ जानेपर

अब मैं उस बातपर आता हूँ कि जो मजदूरी प्राप्त होती है और जो समय कामके बाद बच रहता है उसका उपयोग किस प्रकार करना चाहिए। बढ़ी हुई दरोंसे प्राप्त अधिक मजदूरीको नशेबाजी इत्यादि व्यसनोंमें फूँक देना और बचे हुए समयको जुएके अड्डोंमें बिता देना तो ऐसा होगा जैसे कोई खाईसे बचकर खंदकमें गिरे। शराब, बीड़ी इत्यादिके व्यसनको छोड़कर और इस प्रकार पैसे बचाकर अपनी तथा अपने कुटुम्बकी शिक्षामें लगाने चाहिए। समयको जुए या गपशपमें खराब न करके विद्योपार्जनमें व्यतीत करना चाहिए। इन दोनों कार्योंमें मिल-मालिक बहुत सहायता कर सकते हैं। यदि वे मजदूरोंके लिए स्वच्छ दूध और जलपान आदिकी दुकानें खोलें,

वाचनालयोंकी स्थापना करें और उनके लिए निर्दोष मनोरंजन और खेलकूदकी व्यवस्था करें तो मजदूर अपने व्यसन सहज ही छोड़ देंगे।

ऐसे कार्य तो मण्डलों (यूनियनों) द्वारा भी किये जा सकते हैं और उन्हें ये काम करने भी चाहिए। मालिकोंके खिलाफ संघर्ष करनेके उपाय खोजनेकी अपेक्षा इसमें उनके समयका अधिक अच्छा उपयोग होगा कि वे मजदूरोंकी भीतरी हालत सुधारनेमें लग जायें।

कार्यका बँटवारा

मजदूर अपने बच्चोंकी पढ़ाई छुड़वाकर उनसे मजदूरी करवाते हैं, यह तो बहुत ही शोचनीय परिस्थिति है। अच्छे माने जानेवाले समाजके सदस्य अपने बच्चोंका ऐसा दुरुपयोग कभी नहीं करते। कमसे-कम १६ वर्षकी आयुतक बालकोंको पढ़ाना-लिखाना ही चाहिए। उसी प्रकार स्त्रियोंको भी क्रमशः मिलोंकी मजदूरी करना छोड़ते जाना चाहिए। यदि स्त्री और पुरुष एक दूसरेके सच्चे सहयोगी हैं तो वे अपने कामके क्षेत्रोंका बँटवारा करके ही अच्छे गृहस्थ बन सकते हैं। चतुर माताएँ अपने समयका अच्छेसे-अच्छा उपयोग घरके काम-काजमें व्यस्त रहकर तथा बालकोंकी उचित देखभाल करके ही कर सकती हैं। जिस देशमें पति और पत्नी दोनोंको केवल आजीविकाके निमित्त मजदूरी करनी पड़ती हो, उस देशकी जनता अन्ततोगत्वा कंगाल हो जाती है, क्योंकि ऐसा कृत्य करनेवाला समाज दिवालियोंकी भाँति अपनी पूंजीमें से ही अपना गुजारा करता है।

नैतिक शिक्षाकी आवश्यकता

मजदूरोंको अपने तथा अपनी संतानके लिए अक्षर-ज्ञानके द्वारा बुद्धिके विकासकी जितनी आवश्यकता है, नैतिक शिक्षा प्राप्त करनेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। नैतिक शिक्षा अर्थात् धर्म-बुद्धिका विकास। जिस व्यक्तिके हृदयमें धर्मके प्रति निष्ठा आ गई है और जो उसके स्वरूपको समझ गया है, एक तो उसके साथ संसार झगड़ता ही नहीं और यदि झगड़ेका अवसर आ जाय तो वह व्यक्ति विनयपूर्वक अपने विरोधियोंके रोषका शमन कर देता है। यहाँ धर्मका अर्थ नमाज पढ़ना या मन्दिरोंमें जाना नहीं है, बल्कि अपने आपको और ईश्वरको पहचानना है। जिस प्रकार किसी व्यक्तिको यदि बुनना नहीं आता तो वह बुनकर नहीं हो सकता, उसी प्रकार जो व्यक्ति कुछ निश्चित नियमोंके अनुसार आचरण नहीं करता वह अपनेको नहीं पहचान सकता। ऐसे नियमोंमें तीन मुख्य नियम हैं, जिन्हें सारे जगत्ने अंगीकार किया है। पहला है सत्य-पालन, जो सत्य नहीं बोलता वह किसी खोटे सिक्केके समान मूल्यरहित है। दूसरा नियम दूसरोंको पीड़ा न पहुँचाना है; जो व्यक्ति दूसरोंको पीड़ित करता है, दूसरोंसे द्वेष करता है, या उनको नुकसान पहुँचाता है ऐसा व्यक्ति संसारमें रहने योग्य नहीं है, क्योंकि सारा संसार उसके प्रति शत्रुभाव रखता है। और इस कारण वह हमेशा संसारसे और संसार उससे भयभीत रहता है। पृथ्वी प्रेम-सूत्रमें बँधी हुई है। प्रत्येक वस्तुमें आकर्षण शक्ति है। इसीलिए हमारा अस्तित्व टिका है। वैज्ञानिकोंका कथन है कि यदि

परमाणु-मात्रमें यह आकर्षण शक्ति न हो तो ब्रह्मांड चूर-चूर हो जायेगा और फलस्वरूप हम भी जीवित नहीं रहेंगे। जड़ पदार्थोंमें एक दूसरेसे चिपके रहनेकी शक्ति है। उसी प्रकारकी शक्ति चेतन पदार्थोंमें अर्थात् हम लोगोंमें भी होनी चाहिए। आकर्षण शक्तिका दूसरा नाम प्रेम है। प्रेमके अभावमें भी संसार टिक नहीं सकता। पिता-पुत्रके बीच, बहन-भाईके बीच और मित्र-मित्रके बीच हम ऐसा प्रेम पाते हैं। परन्तु समस्त संसारके प्रति प्रेम रखनेकी कला जानना ईश्वरको पहचानना है। जहाँ प्रेम है वहाँ क्षेम है और जहाँ वैर है वहाँ नाश है। मैं चाहता हूँ कि प्रेमके इस नियमको सीखनेमें अनसूयाबेन आपकी सहायक हों। अपने प्रति उनके प्रेमको देखकर उसका बदला आप समस्त संसारके प्रति प्रेम-भाव रखकर चुकावें — मैं आपसे यही भीख माँगता हूँ।

तीसरा नियम अपने विषयोंपर काबू पाना है। संस्कृतमें इस नियमको ब्रह्मचर्य कहते हैं। आजकल ब्रह्मचर्यका संकुचित अर्थ लगाया जाता है। उसका वह अर्थ तो है ही; परन्तु जो व्यक्ति भोग-विलासमें रत रहता है वह अविवाहित हो चाहे एक पत्नी-व्रतका पालनेवाला, ब्रह्मचारी नहीं माना जा सकता। जो व्यक्ति सभी प्रकारके विषयोंपर अंकुश रख सकता है वही अपनेको पहचान सकता है। जो व्यक्ति अपनी इच्छाओंपर निग्रह रखता है वही ब्रह्मचारी, वही ईमानदार, वही सच्चा हिन्दू और वही खरा मुसलमान है। कानोंसे गन्दी बातें या दूषित गाने सुनना ब्रह्मचर्य खण्डित करनेके समान है। परमेश्वरका नाम लेनेके बजाय रसनासे भद्दे शब्द निकालना, बिना गालीके बात न करना भी ब्रह्मचर्य खण्डित करना या विषयोंमें रत रहना माना जायेगा। इसी प्रकार अन्य कर्मेन्द्रियोंके बारेमें समझना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी समस्त इन्द्रियोंका संयम करते हुए उन्हें अपने वशमें रख सकता है वही व्यक्ति मर्द कहलाने योग्य है। हमें अपनेको एक घुड़सवार-जैसा मानना चाहिए। जो सवार अपने घोड़ेको काबूमें नहीं रख पाता, वह सवार गिरे बिना नहीं रहता और जो सवार घोड़ेकी लगाम थामकर उसे नियंत्रणमें रखनेमें समर्थ है वह सवार निर्दिष्ट स्थान-पर पहुँच जाता है। उसी प्रकार जो पुरुष अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ सीधे रास्ते चला जाता है वह ठिकानेपर पहुँचनेमें समर्थ होता है। वही पुरुष स्वर्ग अथवा जगत्का अधिकारी बनता है और वही पुरुष मोक्षार्थी अथवा ईश्वरको पह-चान सकता है।

मेरा आपसे एक निवेदन है — वह यह कि आप यह समझें कि मैंने आप लोगोंके सामने एक बहुत गम्भीर विषय छेड़ा है और आप इसे भुला न दें।

आप निश्चित मानिए कि सत्य आदि, इन नियमोंके पालनके बिना हमारी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। मैंने आप लोगोंके समक्ष किताबोंसे पढ़कर रटी हुई कोई बात नहीं रखी है बल्कि जो कुछ कहा अपने अनुभवसे कहा है। आप लोगोंके साथ सम्बन्ध बनानेका मेरा कारण केवल यही है कि आप सबके प्रति प्रेमभाव रख-कर और लोगोंके कष्टोंको अपना कष्ट मानकर शायद मैं परमात्माको पहचान सकूँ और उसका साक्षात्कार कर पाऊँ। अगर आप सत्यवादी नहीं बन सकते, अगर आप दूसरोंको पीड़ित करनेवाले राक्षस बनना चाहते हैं, दिन-रात विषयोंका ही चिन्तन

करते रहना चाहते हैं तो भले ही आपको चौगुनी मजदूरी मिलने लगे और काम चतुर्थांश ही करना पड़े, मगर इससे क्या होता है? मजदूरी बढ़ानी है, कामके घंटे भी कम कराने हैं, क्योंकि हमें अपने घर, अपने शरीर, अपने मन और अपनी आत्माको स्वच्छ रखना है। इसी शुद्धीकरणके निमित्त हम अधिक मजदूरी और कारखानेमें कम समय काम करनेकी आवश्यकताका अनुभव करते हुए इस दिशामें प्रयत्न कर रहे हैं; परन्तु उद्देश्य यह न हो तो हमारा अधिक मजदूरी कमाना और कामके घंटोंमें कमी करवाना अधिक पाप करनेके साधन एकत्रित करने जैसा होगा। पूजनीय अनसूया बहनने आप लोगोंकी इस प्रवृत्तिके लिए अपना जीवन अर्पित नहीं किया है — यह बात मुझे मालूम है और आप भी जानते हैं। मैं ईश्वरसे यही माँगता हूँ कि वह आप लोगोंको तथा इस बहनको इतनी शक्ति प्रदान करे कि यह बहन आपकी मनोकामना फलीभूत कर सके।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५–४–१९२०

११९. पत्र : महादेव देसाईको

सोमवार [१९ अप्रैल, १९२०][1]

भाईश्री महादेव,

छगनलालको लिखा तुम्हारा कार्ड मैंने पढ़ा। अब तुम्हारे पत्र न आनेका कारण समझमें आया। तुमने तो जाने नियमित रूपसे बीमार पड़ते रहनेका निश्चय कर लिया मालूम होता है? दुर्गा कैसी है? लगता है तुम्हें अभी वहीं रहना होगा। अपनी तबीयतकी देखभाल रखना।

मालवीयजी अभी यहीं हैं। हम अभी मजदूरोंके झगड़ेमें पड़े हुए हैं, इसलिए कल स्टेशन रवाना होते-होते रह गये। उनके साथ कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। तुम दिल्ली आनेके अपने कार्यक्रमको बदलना नहीं।

यहाँ बुनाई आदिका काम ठीक चल रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ९८२९) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें मालवीयजी और मिल-मजदूरोंके उल्लेखके आधारपर यह तारीख निश्चित की गई है।

१२०. पत्र : महादेव देसाईको

[२० अप्रैल, १९२० के पूर्व][1]

भाईश्री महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे फुर्सत हो या न हो लेकिन जैसे भोजन प्रिय है वैसे ही कुछ पत्र भी अच्छे लगते हैं, इसलिए जैसे भोजनके लिए वैसे उन पत्रोंको पढ़नेके लिए भी मैं समय निकाल लेता हूँ।

मैं २० तारीखको बम्बई पहुँचूँगा — तुम अगर बहुत जरूरी हो तो २१ तारीख-तक रुककर २२ को बम्बई आना — अगर जाना ही हुआ तो भी उम्मीद है कि पहली मईसे पहले न होगा।[2] कपड़ोंके बारेमें वहीं निश्चित करेंगे। २६ तारीखको फातिमाका विवाह है तब तो मुझे ...[3] वहाँ भी पहुँचना होगा। उस समय तुम्हें यहीं रहना हो तो यहीं रहना, बम्बई रहना चाहो तो वहाँ रह सकते हो और विलायत न जायें तो सिंहगढ़ — सिंहगढ़में बालकृष्ण और प्रभुदास अशान्त हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४०७) से।

१२१. विवाहका निमन्त्रण-पत्र

७८६[4]

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
२० अप्रैल, १९२०

प्रिय भाई,[5]

मेरे भाई समान प्रिय बन्धु इमाम साहब अब्दुल कादिर बावजीर, जो पिछले कई वर्षोंसे दक्षिण आफ्रिकामें ही मेरे साथ रहते आये हैं और जो वहाँ भी मेरे साथ

१. पत्रमें फातिमाके विवाहका जिक्र आया है जो २६ अप्रैल, १९२० को हुआ था; देखिए अगला शीर्षक। गांधीजी २० अप्रैल, १९२० को, जैसा कि उन्होंने पत्रमें लिखा भी है, बम्बई पहुँचे थे।

२. खिलाफत शिष्टमण्डलके सम्बन्धमें इंग्लैण्डको।

३. अस्पष्ट है।

४. अर्थात् बिस्मिल्लाहिर् रहमानिर् रहीम।

५. मूलमें यहाँ हाथसे "देवदास गांधी" लिखा हुआ है।

आश्रममें ही रहते हैं, की बड़ी लड़की बहन फातिमा बीबीका विवाह अहमदाबादके सैयद हुसैन मियाँ उरेजीके साथ २६ अप्रैल, सन् १९२० तदनुसार हिजरी सन् १३३८ की ६ शाबानको सोमवारके दिन, शामके सात बजे होगा। साढ़े छः बजे मौलूद शरीफ[1] आरम्भ होगा। यदि आप इस शुभ अवसरपर उपस्थित होकर वर-कन्याको आशीर्वाद देंगे तो मैं आपका अत्यन्त आभारी होऊँगा।

मोहनदास करमचन्द गांधी

मुद्रित गुजराती प्रति (एस० एन० ७१६२) से।

१२२. पत्र : देवदास गांधीको

बम्बई
मंगलवार [२० अप्रैल, १९२०][2]

चि० देवदास,

इस बार तो एक दिन भी ऐसा नहीं गया जब मैंने तुम्हें पत्र न लिखा हो, लेकिन उत्तरमें तुम्हारी ओरसे कोई पत्र नहीं आया। इसीसे मुझे चिन्ता हो गई है कि कदाचित् तुम्हें मेरे पत्र मिले ही न हों। मैं उनपर पता तो बिलकुल ठीक देता हूँ।

ह्यामी हमाशी नामक जापानी सज्जनके सम्बन्धमें बाबू अरविन्द घोषके[3] साथ तुम्हारी कोई बातचीत हुई थी? इस विषयमें कुछ जाँच हो रही है। मैंने तुम्हारे [वहाँ] जानेके बारेमें पूरी जानकारी दे दी है। हमारे पास छिपानेके लिए क्या चीज़ हो सकती है? जाँच बिलकुल निर्दोष है।

विलायत जाना[4] अभी निश्चित नहीं हुआ है। आज शामको मुसलमान भाइयोंसे मिलनेवाला हूँ, उनसे बातचीत करनेके बाद तय होगा। मैं स्वयं वहाँ जानेको विशेष उत्सुक नहीं हूँ लेकिन [इस सुझावका] एकदम विरोध भी नहीं करना चाहता। मैं यहाँ ज्यादासे-ज्यादा २३ तारीखतक रहूँगा। जल्दीसे-जल्दी २२ तारीखको यहाँसे प्रस्थान करूँगा।

१. मुहम्मदकी जन्मकथा।

२. पत्रमें मजदूरोंके सामने दिये गये गांधीजीके जिस भाषणका उल्लेख है वह १८ अप्रैल, १९२०को दिया गया था और उस तारीखको रविवार पड़ता था। अतः यहाँ जो "कल" लिखा गया है वह स्पष्टतः गलतीसे "परसों" के लिए लिखा गया होगा।

३. अरविन्द घोष (१८७२–१९५०); रहस्यवादी, कवि और दार्शनिक; १९१० से पांडिचेरीमें जाकर बस गये थे।

४. खिलाफतके प्रश्नके सम्बन्धमें।

सरलादेवीने मुझे बताया कि उन्होंने तुम्हें कल एक पत्र लिखा है। कल मजदूरोंके समक्ष मैंने जो भाषण दिया था उसे मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७१६७) की फोटो-नकलसे।

१२३. टिप्पणियाँ[1]

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

अब चूंकि मुसलमानोंके लिए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका सिद्धान्त स्वीकार[2] किया जा चुका है, इसलिए अन्य कुछ छोटे-छोटे समुदायोंकी ओरसे भी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी बड़ी बेसिर-पैरकी माँगें उठने लगी हैं। ये माँगें बिलकुल ही बेबुनियाद हैं, लेकिन जब बर्माके भारतीय भी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी माँग करने लगते हैं तो उसे सिर्फ एक बेबुनियाद माँग नहीं कहा जा सकता। वह एक अपराधपूर्ण माँग बन जाती है। हमें मालूम हुआ है कि रंगूनके कुछ भारतीयोंने सुधारोंके फलस्वरूप बननेवाली बर्मा-परिषद्में अपने लिए अलगसे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी माँग उठाई है। हमें तो आशा है कि कोई अनर्थ होनेसे पूर्व ही यह माँग वापस ले ली जायेगी। बर्मी लोगोंको वहाँ बसे भारतीयों द्वारा किये जानेवाले ऐसे पक्षपातपूर्ण व्यवहारपर रोष प्रकट करनेका पूरा अधिकार है। हम अपने और बर्मी लोगोंके पारस्परिक हित-साधनके लिए उनके अतिथिके रूपमें ही बर्मा गये हैं, न कि उनका शोषण करने। सबसे पहले हमें उनकी भलाईका विचार करना चाहिए। जैसा कि एक मित्रने निर्देश किया है, जो सही भी है, कि बर्मामें भारतीयोंकी यह माँग उठाना कुछ ऐसा ही होगा जैसे बंगाल परिषद्में गुजरातियों या मारवाड़ियोंका अपने लिए अलग साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी माँग करना। निश्चय ही बर्माके भारतीयोंको बर्मा-परिषद्में प्रवेश करनेका अधिकार होगा लेकिन तभी जब वे अपनी योग्यता और सेवासे बर्मी लोगोंके मत प्राप्त कर सकें। चूंकि हम लोग चाहते हैं कि भारतमें कोई भी व्यक्ति ऐसा कोई दावा न करे जो हमारे हितोंके विरुद्ध पड़ता हो, इसलिए हमें भी यह सावधानी तो रखनी पड़ेगी कि हम बर्मामें कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त करनेकी इच्छा न करें जो बर्मी लोगोंके हितोंके विरुद्ध पड़ते हों। लेकिन बर्मामें बसे भारतीयोंकी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी माँगके मूलमें ठीक यही बात — बर्मी जनताके हितोंका विरोध ही — है। इसलिए हम विश्वास करते हैं कि लोग समझदारीसे काम लेंगे और हमें बर्माके भारतीयोंके लिए अलग प्रतिनिधित्वकी माँग फिर सुनाई न देगी।

१. गांधी स्मारक निधिमें सुरक्षित मसविदेके आधारपर यह तथा अगले दो लेख गांधीजी द्वारा लिखित माने गये हैं। मसविदे गांधीजीके स्वाक्षरोंमें हैं।

२. १९०९ और १९१९ के भारत सरकारके अधिनियमोंमें।

श्री हॉर्निमैनका निर्वासन

२६ अप्रैलको श्री हॉर्निमैनके निर्वासनको एक वर्ष पूरा हो चुकेगा। जनताने इस बीच बम्बई सरकार द्वारा बिना किसी जाँचके जारी किये गये इस इकतरफा आदेशके प्रति अपना जोरदार विरोध कई तरीकोंसे व्यक्त कर दिया है। हम श्री हॉर्निमैनकी योग्यताका विचार न करें, तो भी बिना मुकदमा चलाये किसी भी ब्रिटिश नागरिकका निर्वासन सभी व्यवस्थाप्रिय नागरिकोंके लिए गम्भीर चिन्ताका विषय है। भारतमें हमें किसी भी प्रजाजनको मुकदमा चलाये बिना निर्वासित करना या अन्य प्रकारसे उसकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगाना असम्भव बना देना चाहिए। इसमें ऐसी परिस्थितियाँ ही अपवाद हो सकती हैं जिनमें प्रत्येक सरकारको सामान्य कानूनोंकी कार्रवाई स्थगित करनेका अधिकार मिलना ही चाहिए और हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि श्री हॉर्निमैनको निर्वासित करने योग्य परिस्थितियाँ मौजूद थीं। इसलिए हम आशा करते हैं कि समस्त प्रसीडेंसीके गाँव-गाँवमें सभाओंके जरिये माँग की जायेगी कि श्री हॉर्निमैनको निर्वासित करनेकी आज्ञा अविलम्ब रद कर दी जाये।

जलियाँवाला बाग-स्मारक

यदि बम्बईको ही शेष भारतकी स्थितिका सूचक माना जाये तो राष्ट्रीय सप्ताह-को सफलता मिली है। तीनों सभाएँ पूरी तरह सफल रही हैं। सरकार रौलट ऐक्ट, खिलाफतके प्रश्न और पंजाबकी दुःखद घटनाके सम्बन्धमें देशकी राय जानती है। उपवास और प्रार्थनाको किस हदतक अपनाया गया था यह जानना कठिन है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोगोंने एक खासी बड़ी तादादमें इस अनुशासनका उचित धार्मिक भावसे पालन किया था। किन्तु राष्ट्रीय सप्ताहकी सफलताका सबसे अधिक प्रभावशाली प्रदर्शन जलियाँवाला बाग-स्मारकके प्रस्तावके प्रति लोगोंके उत्साहमें हुआ है। नित्य प्रकाशित की जानेवाली सूचीसे दानी सज्जनोंकी उदारता और अपीलकी लोकप्रियता प्रकट होती है। किन्तु जनताको अभी इस बातकी पर्याप्त जानकारी नहीं है कि हमारी महिलाओंने और उन लोगोंने भी जिन्हें अभीतक राष्ट्रीय भावना छूतक नहीं पाई थी, इसके लिए कितनी तत्परतासे स्वयं आगे बढ़कर सहायता दी है। महिलाओंका एक दल लोगोंसे व्यक्तिशः सहायता लेनेके लिए गया था और उसका परिणाम अत्यन्त उत्साहवर्धक निकला। ढेढ़ों और भंगियोंतक ने स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा किया। सुदूर-स्थित और निकटवर्ती सभी स्थानोंसे सूचियाँ आ रही हैं। सुदूरस्थ चम्पारनतक से चन्दे मिले हैं। आशा है कि जिन लोगोंको रकमें मिली हैं, वे उन्हें अविलम्ब अमृतसरके लाला गिरधारीलालको भेज देंगे। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि खरीदकी कीमतका बाकी हिस्सा चुकानेका दिन निकट आ गया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-४-१९२०

१२४. स्वदेशी

राष्ट्रीय सप्ताह १३ अप्रैल मंगलवारको समाप्त हो गया। वह हर प्रकारसे हिन्दू-मुस्लिम एकताका, रौलट ऐक्टको रद करानेके संकल्पका और सत्याग्रहकी भावनाका एक उल्लेखनीय प्रदर्शन था। जो भाषण दिये गये वे पहलेकी अपेक्षा अधिक संयत और प्रसंगानुकूल थे। हमें जिन सभाओंके समाचार मिले हैं, उनमें किसीमें कोई गड़बड़ी नहीं हुई।

किन्तु स्वदेशी? क्या स्वदेशी, सत्याग्रहकी भावना और उसके व्यवहारकी देन नहीं है? निस्सन्देह वह सत्याग्रहकी देन है। किन्तु स्वदेशीका कार्य सब कार्योंसे अधिक रचनात्मक है। उसमें भाषणोंकी उतनी गुंजाइश नहीं जितनी कि ठोस कार्यकी। भाषणों या प्रदर्शनोंसे पचास करोड़ रुपये सालानाकी बचत करना सम्भव नहीं है। और प्रतिवर्ष इस रुपयेको बाहर जानेसे बचानेकी ही बात इसमें नहीं है, बल्कि उससे भी कुछ अधिक है। इसमें भारतीय नारीकी मर्यादाका प्रश्न भी निहित है। मिल-उद्योगसे थोड़ा भी सम्बन्ध रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कारखानोंमें काम करनेवाली स्त्रियाँ ऐसे प्रलोभनों और खतरोंके बीच रहती हैं जिनसे उनको बचाना चाहिए। बहुत-सी स्त्रियाँ गृह-उद्योगके अभावमें सड़कोंकी मरम्मतकी मजदूरी स्वीकार कर लेती हैं और केवल वे लोग ही जो जानते हैं कि यह काम कैसा होता है, उन खतरोंको जानते हैं जिन्हें ये स्त्रियाँ मोल लेती हैं। उन्हें चरखा दे दीजिए। तब किसी स्त्रीको चरखा चलानेके अतिरिक्त कोई दूसरा काम ढूँढ़नेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। स्वदेशीका अर्थ है सम्पदाका समान वितरण। वह भी एक ऐसे धन्धेके जरिये जो महत्त्व-क्रममें केवल कृषिके ही बाद आता है। यह कृषिका अनुपूरक है और इसलिए स्वतः ही हमारी वर्द्धमान दरिद्रताकी समस्याको हल करनेमें ठोस मदद देता है। इसलिए स्वदेशी हमारे लिए सचमुच कामधेनु ही है जो हमारी सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है और हमारी अनेक कठिन समस्याओंको हल करता है। यह एक ऐसा धन्धा है जो हमारी प्रतिष्ठाकी रक्षा करता है और हमें जीविका देता है, इसलिए यह हमारा धार्मिक कर्त्तव्य बन जाता है।

यह महान् संसिद्धि किस प्रकार प्राप्त की जाये? उत्तर सीधा है। इस समस्याका महत्त्व समझनेवाले लोगोंको निम्नलिखित सभी या इनमें से किसी एक दिशामें प्रयत्नशील हो जाना चाहिए।

(१) स्त्री हो या पुरुष स्वयं कातना सीखे। यदि आपको रुपयेकी आवश्यकता है तो अपने श्रमकी मजदूरी लीजिए या प्रतिदिन कमसे-कम एक घंटेका श्रम राष्ट्रके लिए दान कर दीजिए।

(२) मनोरंजन या निर्वाहके लिए स्वयं कपड़ा बुनना सीखिए।

(३) मौजूदा करघों और चरखोंमें सुधार[1] कीजिए, और यदि आप धनी हैं तो जो लोग उनको बना सकते हैं उन्हें उनकी बनवाई दीजिए।

(४) स्वदेशीकी प्रतिज्ञा कीजिए और हाथसे कते सूतके, हाथसे ही बुने कपड़ेको अपनाइये।

(५) अपने मित्रोंमें ऐसे कपड़ोंका प्रचलन कीजिए और यह विश्वास कीजिए कि उस खादीमें अधिक कला और मानवीयता है जिसका सूत आपकी गरीब बहिनोंने तैयार किया है।

(६) यदि आप माता हैं, आप अपने बच्चोंको एक निर्दोष और राष्ट्रीय संस्कृति देंगी और उन्हें सुन्दर खादीके बने कपड़े पहिनायेंगी — उस खादीके जो करोड़ों लोगोंको सुलभ है, जिसे अत्यन्त सुगमतासे तैयार किया जा सकता है।

तब स्वदेशीका अर्थ अपने-आपमें एक ऐसे पूर्ण संगठनकी रचना है जिसके सभी भाग परस्पर पूर्ण समस्वरताके साथ काम करते चलें। यदि हम ऐसा संगठन बनानेमें सफल हो जायें तो न केवल स्वदेशीकी सफलता सुनिश्चित हो जायेगी बल्कि हम सच्चे स्वराज्यकी यथासमय प्राप्तिके मार्गपर आरूढ़ हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१–४–१९२०

१२५. विदेशोंमें भारतीय

भारतके बाहर बसे भारतीय प्रवासियोंके प्रति विद्यमान पूर्वग्रह विविध प्रकारसे प्रकट हो रहा है। फीजी सरकारने राजद्रोहका धृष्टतापूर्ण आरोप लगाकर श्री मणिलाल डाक्टरको[2], जो अपनी वीरांगना और सुसंस्कृता पत्नीके[3] साथ फीजीके गिरमिटिया भारतीयोंकी अनेक तरहसे सहायता कर रहे थे, निर्वासित कर दिया है। अब यह सारा झगड़ा फीजीमें मजदूरोंकी हड़तालसे आरम्भ हुआ है। गिरमिट रद कर दिये गये हैं[4], किन्तु दासताकी भावना बिलकुल ही नहीं मरी है। हम नहीं जानते कि हड़ताल किस बातको लेकर हुई। हम यह भी नहीं जानते कि हड़तालियोंने कोई अनुचित काम नहीं किया है। किन्तु जब हड़तालियों और उनके मित्रोंपर राजद्रोहका आरोप लगाया जाता है तो हम यह अवश्य जानते हैं कि उसके पीछे क्या है। पाठकोंको अवश्य ही याद रखना चाहिए कि फीजीकी अभी हालकी उथल-पुथलमें जिस सरकारको राजद्रोहकी

१. ३१ मार्च, १९२० को अहमदाबादमें गांधीजीकी उपस्थितिमें चरखेके परिष्कृत नमूनेको पुरस्कृत करनेके लिए एक प्रतियोगिताका आयोजन किया गया था।

२. गांधीजीके एक पुराने साथी डा० प्राणजीवन मेहताके दामाद। वे १९१२ में सार्वजनिक कार्यके लिए फीजी गये थे।

३. जयकुँवर।

४. फीजीकी विधान परिषदने अगस्त १९१९ में गिरमिट-प्रथाको समाप्त करनेका संकल्प किया था। गिरमिट प्रथा १८७७ में चालू हुई थी।

गन्ध आई है, यह वही सरकार है जिसने श्री एन्ड्रयूज-जैसे व्यक्तिके चरित्रपर कीचड़ उछालनेकी अशिष्टता दिखाई थी। फीजीके हड़तालियों और श्री मणिलाल डाक्टरके सम्बन्धमें राजद्रोहके आरोपका अर्थ क्या हो सकता है? क्या वे और मणिलाल डाक्टर सरकारपर कब्जा करने गये थे? क्या वे उस देशमें कोई सत्ता प्राप्त करना चाहते थे? उन्होंने मूलभूत स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए हड़ताल की अतः इस सम्बन्धमें राजद्रोह शब्दका प्रयोग करना शब्दोंका दुरुपयोग करना है। सम्भव है, हड़तालियोंने अत्यधिक उतावलीसे काम लिया हो, सम्भव है श्री मणिलाल डाक्टरने उन्हें गुमराह किया हो। यदि उनकी सलाह अपराधकी सीमातक पहुँचती थी तो उनपर मुकदमा चलाना चाहिए था। प्राप्त सूचनाके अनुसार यही प्रकट होता है कि उन्होंने बिलकुल कानूनके अनुसार काम किया है। किन्तु हमारा मुद्दा तो यह है कि फीजी सरकार द्वारा मुकदमा चलाये बगैर श्री मणिलाल डाक्टरको फीजीसे निर्वासित करना सत्ताका दुरुपयोग है। किसी व्यक्तिको अपने चरित्रकी शुद्धता बतानेका अवसर दिये बिना सन्देहमात्रपर उसकी स्वतन्त्रतासे वंचित करना सिद्धान्ततः अनुचित है। याद रखना चाहिए कि श्री मणिलाल डाक्टर पिछले अनेक वर्षोंसे फीजीको ही अपना घर बना चुके हैं। हमारा खयाल है कि वहाँ उन्होंने जायदाद भी खरीद ली है। उनके बच्चे फीजीमें पैदा हुए हैं। क्या इन बच्चोंके कोई हक नहीं हैं? क्या उनकी पत्नीके भी कोई हक नहीं हैं? क्या मनमानी करनेवाली सरकारके हाथों एक होनहार व्यक्तिकी सारी प्रगति चौपट कर दी जायेगी? क्या श्री मणिलाल डाक्टरको इससे जो क्षति उठानी पड़ेगी उसकी पूर्तिकी व्यवस्था कर दी गई है? हमें विश्वास है कि भारत सरकार, जिसने विदेशोंमें बसे हुए भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया है, श्री डाक्टरके निर्वासनके प्रश्नको उठायेगी।

फीजी ही एकमात्र ऐसा स्थान नहीं जहाँ सत्तारूढ़ वर्गमें न्यायके साथ मनमानी करनेकी यह प्रवृत्ति बिलकुल ऊपर झलक आई है। (विगत जर्मन) पूर्वी आफ्रिकाके भारतीय अपनी दशा पहलेसे बदतर पाते हैं। उनका कहना है कि उनकी सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रह गई है। उन्हें पारपत्रोंपर तरह-तरहके शुल्क देने पड़ते हैं। उनके व्यापारमें भी रुकावटें डाली जाती हैं। वे मनीऑर्डरतक नहीं भेज पाते।

ब्रिटिश पूर्वी आफ्रिकामें संकटके ये बादल शायद सबसे अधिक घने हैं। वहाँके गोरे प्रवासी भारतीय प्रवासियोंको उनके अबतक प्राप्त लगभग सभी अधिकारोंसे वंचित करनेके लिए शक्ति-भर प्रयत्न कर रहे हैं। कानून बनाकर और प्रशासनिक कार्रवाईके जरिये भी उनको पूरी तरह नष्ट करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

दक्षिण आफ्रिकामें प्रत्येक भारतीय, जिसका ब्रिटिश डोमीनियनके उस भागसे कोई सम्बन्ध है, साँस रोककर उस आयोगकी[1] कार्रवाईकी प्रगतिको देख रहा है जिसकी बैठकें इस समय चल रही हैं।

१. इस जाँच-आयोगकी बैठकें मार्च १९२० से जुलाई १९२० तक हुई थीं। दक्षिण आफ्रिकी संघ सरकारने इसकी नियुक्ति दक्षिण आफ्रिकाके अनेक प्रान्तोंमें एशियाई व्यापार और भू-धारणके प्रश्नकी जाँच करनेके लिए की थी।

महामहिम सम्राट्के साम्राज्यके इन विभिन्न भागोंमें प्रवासी भारतीयोंके हितोंकी रक्षा करना भारत सरकारके लिए कोई आसान काम नहीं है। अत्यन्त दृढ़ और सुसंगत नीति अपनाकर ही वह ऐसा कर सकेगी। न्याय भारतीय प्रवासियोंके पक्षमें है। किन्तु वे दुर्बल पक्षके हैं। यदि भारतमें एक प्रबल प्रचार-आन्दोलन खड़ा किया जाये और उसके बाद भारत सरकार जोरदार कार्रवाई करे तभी यह संकट टल सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-४-१९२०

१२६. देशी भाषाओंका हित

हालमें हुए साहित्य-सम्मेलनोंकी कार्यवाहीकी खोज-खबर रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको यह स्पष्ट हो गया होगा कि हमारी राष्ट्रीय जाग्रति केवल राजनीतितक ही सीमित नहीं है। इन जलसोंमें जो उत्साह देखनेमें आया वह एक शुद्ध परिवर्तनका द्योतक है। वैचारिक रूपसे हम अपने राष्ट्रीय जीवनमें मातृभाषाओंको उनका उचित स्थान देने लगे हैं। राजा राममोहनरायकी[1] भविष्यवाणी थी कि एक दिन भारत अंग्रेजी भाषा-भाषी देश बन जायेगा। लेकिन आज उसका समर्थन करनेवाले प्रतिष्ठित लोग इने-गिने ही हैं। फिर भी उस महान् सुधारककी भावना अभी कुछ लोगोंपर हावी है। हमारे देशमें कई ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं जो जल्दबाजीमें अंग्रेजीको राष्ट्रभाषा बनानेके पक्षमें अपना मत व्यक्त कर देते हैं। अदालती भाषा के रूपमें अंग्रेजीका वर्तमान दर्जा उनके विचारमें जरूरतसे ज्यादा महत्त्व रखता है। वे नहीं समझ पाते कि अंग्रेजीका वर्तमान दर्जा हमारे लिए कोई गौरवकी बात नहीं है और न वह एक सच्ची जनतान्त्रिक भावनाके विकासमें सहायक ही है। करोड़ों आदमी कुछ-सौ अधिकारियोंकी सुविधाके लिए एक विदेशी भाषा सीखें, यह परले दर्जेकी हिमाकत है। देशकी केन्द्रीय सरकारको मजबूत करनेके लिए एक सर्वसामान्य माध्यमकी आवश्यकता प्रमाणित करनेके हेतु बहुधा हमारे विगत इतिहाससे उदाहरण पेश किया जाता है। एक सामान्य माध्यमकी आवश्यकतापर किसीको आपत्ति नहीं। परन्तु वह माध्यम अंग्रेजी नहीं हो सकती। अधिकारियोंको देशी भाषाओंको मान्यता देनी पड़ेगी। अंग्रेजीके पक्षपातियोंको जो दूसरी बात अपील करती है वह है साम्राज्यमें भारतकी स्थिति। सीधे शब्दोंमें कहा जाये तो उनके तर्कका अर्थ यही निकलता है कि साम्राज्यके अन्य हिस्सोंके लाभार्थ — जिनकी जनसंख्या १२ करोड़से अधिक नहीं — ३१ करोड़ भारतीयोंको अपनी सामान्य भाषाके रूपमें अंग्रेजीको ही स्वीकार करना चाहिए।

१. (१७७२-१८३३); बंगालके समाज-सुधारक, जो भारतमें अंग्रेजी शिक्षाके प्रचारकोंमें अग्रणी थे; उन्होंने भारतको प्रगति पथपर आरूढ़ करनेके उद्देश्यसे कई आन्दोलनोंका सूत्रपात किया था।

इस समस्यापर विचार करनेवाले प्रत्येक अध्येताके लिए प्रथम विचारणीय तथ्य तो यह है कि भारतमें १५० वर्षोंसे ब्रिटिश शासन रहनेपर भी अंग्रेजी एक सर्वसामान्य माध्यमका स्थान ग्रहण नहीं कर सकी। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि एक तरहकी टूटी-फूटी अंग्रेजी हमारे नगरोंमें माध्यम बननमें सफल हो गई प्रतीत होती है। परन्तु यह तथ्य केवल उन्हीं लोगोंको चकित कर सकता है जो बम्बई और कलकत्ता-जैसे बड़े शहरोंमें हमारी राष्ट्रीय समस्याओंका अध्ययन करनेकी बात करते हैं। और उनकी आबादी ही कितनी है? वह भारतकी कुल आबादीका केवल २·२ प्रतिशत है। दूसरा तथ्य जिसे अंग्रेजीके हिमायती अनदेखा करते हैं यह है कि हमारी देशी भाषाओंमें से बहुतेरी एक दूसरेसे मिलती-जुलती हैं और इसके कारण हिन्दी एक सामान्य माध्यमके रूपमें मद्रास प्रान्तके अलावा सभी प्रान्तोंको अनुकूल पड़ती है। हिन्दीके पक्षमें इस लाभको ध्यानमें रखते हुए तथा हमारी वर्तमान राष्ट्रीय चेतनाको देखते हुए हम अंग्रेजीको सर्वसामान्य माध्यमके रूपमें कैसे स्वीकार कर सकते हैं?

इस समस्याका हल ही देशी भाषाओंके भाग्यका निर्णय करेगा। हमारी शिक्षा-प्रणालीमें अंग्रेजीको देशी भाषाओंकी तुलनामें अस्वाभाविक प्रधानता दी जाती है। अंग्रेजी-के कट्टर हिमायतियोंका कहना है कि 'यथासम्भव छोटीसे-छोटी उम्रमें ही' अंग्रेजी-का प्रयोग शिक्षाके माध्यमकी तरह होना चाहिए। यह तर्क इस तथ्यपर आधारित है कि विदेशमें बच्चे छोटी उम्रमें ही उस देशकी भाषा बिना कठिनाईके सीख लेते हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय-आयोगने इस तर्कका खण्डन करते हुए कहा है:

> विदेशोंमें तो बच्चेके चारों ओर लोग उसी देशकी भाषा बोलते हैं, पर कक्षामें वह ऐसे लोगोंके बीच होता है जो शिक्षकके अलावा सभी, भाषाके नये माध्यमसे उतने ही अनभिज्ञ होते हैं जितने कि बच्चे। इस कक्षामें एक व्यक्ति अनेकको पढ़ाता है, न कि अनेक एकको; और यहाँ केवल प्रयोगों द्वारा ही कक्षामें शिक्षण देनेके तरीके निकालनेमें सफलता मिल सकती है।

आयोगने शिक्षा-प्रणालीमें देशी भाषाओंके प्रचलनसे होनेवाली "शैक्षणिक [समय इत्यादिकी] बचतके" लाभको मान्यता प्रदान की है। हमने अपने ११ फरवरीके अंकमें इस बातकी ओर ध्यान दिलाया है कि कलकत्ता विश्वविद्यालय-आयोगकी सिफारिशें इस सम्बन्धमें एक कदम आगे हैं। इसके बाद लाजिमी कदम यही होगा कि विश्वविद्यालयोंमें भी माध्यमके रूपमें देशी भाषाओंके व्यवहारकी सिफारिश की जाये। सैडलर आयोगने माध्यमिक स्कूलों और कालेजके विभागोंमें शिक्षाके माध्यमके रूपमें देशी भाषाओंके प्रयोगके लिए मैट्रिकको ही सीमा माना है। भविष्यके लिए एक द्विभाषिक शिक्षा-प्रणालीकी बात उसने अपनी रायके रूपमें रखी है। परन्तु उसने यह भी कहा है:

> भविष्यके बारेमें हम अभीसे कोई राय नहीं देना चाहते। यह भविष्यवाणी करना हमारा काम नहीं कि आगे चलकर कभी भविष्यमें बँगलाके ही अधिकतम प्रयोगकी स्वाभाविक अभिलाषा अन्ततः इतनी बलवती हो जाये कि जिसके पणिामस्वरूप हम एक ऐसी सर्व-सामान्य भाषाके माध्यमको छोड़नेके लिए तैयार

हो जायें — जो केवल भारतके शिक्षित-वर्गकी ही नहीं वल्कि अन्य किसी भाषाकी अपेक्षा जनसमूह द्वारा अधिक व्यवहृत हो और जिसके जरिये हम विश्वके साहित्य और वैज्ञानिक प्रगतिके क्षेत्रमें सहज ही प्रवेश पा सकें।

यद्यपि आयोगके सामने प्रस्तुत साक्ष्यको देखते हुए आयुक्तोंको विश्वविद्यालयोंमें भी देशी भाषाओंके प्रयोगके पक्षमें भावी नीति निर्धारित करनेके लिए तो राजी नहीं किया जा सका, लेकिन यह भी इतना ही सही है कि साक्ष्यमें उनको ऐसा कुछ नहीं मिला जो अंग्रेजीके हिमायतियों या द्विभाषा-समर्थकोंकी दलीलोंका समर्थन करता हो। इस प्रकार यद्यपि आयुक्तोंके प्रश्नोंके उत्तर भविष्यका निर्णय आप नहीं करते फिर भी वे यह तो

प्रकट करते हैं कि विश्वविद्यालयोंके कुछ कामोंमें तुरन्त और सभी कामोंमें अन्ततोगत्वा बँगलाका प्रयोग शुरू करनेके पक्षमें एक प्रवल आन्दोलन मौजूद है, एक ऐसा आन्दोलन जिसका कोई आभास १९१५ की शाही विधान परिषद्की वहसमें नहीं मिलता।

आयुक्तोंने उत्तरोंकी जो व्याख्या की यदि हम उसका अध्ययन करें तो उनके कथनको अधिक सही रूपमें पूरी तरह समझ सकेंगे। गवाहोंसे प्रश्न किया गया था 'क्या आपका विचार है कि मैट्रिकसे ऊपर विश्वविद्यालयोंके पाठचक्रममें हर स्तरपर प्रशिक्षण और परीक्षाका माध्यम अंग्रेजीको वनाना चाहिए?' प्राप्त उत्तरोंका वर्गीकरण इस प्रकार है:—

(१) १२९का जवाव निश्चय ही स्वीकारात्मक है।
(२) २९का जवाव स्वीकारात्मक तो है पर कुछ किन्तु-परन्तुके साथ।
(३) ६८ने एक ही शिक्षा-संस्थामें एक साथ या दो समान संस्थानोंमें अंग्रेजी और देशी भाषाके संयुक्त प्रयोगके पक्षमें मत दिया।
(४) ३३ उत्तरोंमें देशी भाषाओंको क्रमशः अंग्रेजीके स्थानमें रखनेका उद्देश्य रखनेकी वात सुझाई गई है।
(५) ३७ उत्तर विरोधमें हैं; और
(६) ९ उत्तर किसी वर्गमें नहीं रखे जा सकते।

इस प्रकार १५५ जवाव अंग्रेजी माध्यमके पक्षमें हैं और लगभग १३८ देर-सवेर देशी भाषाको शिक्षाका माध्यम वनानेके विरुद्ध नहीं हैं। निश्चय ही यह अनुपात देशी भाषाओंके हिमायतियोंका उत्साह वढ़ानेवाला है। इसके अलावा अंग्रेजी-माध्यम-की हिमायत करनेवाले लोगोंका काफी वड़ा भाग ऐसा है जो विदेशी माध्यमकी सलाह सिर्फ इसलिए देता है कि विभिन्न विषयोंपर सही किस्मकी यथेष्ट पाठ्यपुस्तकोंकी व्यवस्था नहीं है। ये शिक्षा-शास्त्री भी सिद्धान्ततः देशी भाषाओंके माध्यमके विरोधी नहीं हैं। वे नहीं चाहते कि हम तैरना सीखे विना ही पानीमें उतर पड़ें। वाकी गवाहोंका साक्ष्य इसी तरहका परन्तु अधिक निश्चयात्मक है, जो अंग्रेजी माध्यमका समर्थन करता है। शेष साक्ष्य देशी भाषाओंको शिक्षाके माध्यमके रूपमें अनुपयुक्त करार दिया

है। ये गवाह हमारी देशी भाषाओंके इतिहाससे अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। एक समय था जब समस्त हिन्दू-दर्शनका एकमात्र माध्यम संस्कृत थी। परन्तु कुछ उत्साही विद्वानोंने अपनी देशी भाषाओंका भण्डार दर्शन-साहित्यके सुन्दर ग्रंथोंसे समृद्ध किया और वे हिन्दू-दर्शनको आम जनताके निकट ले आये। क्या हम संगठन सम्बन्धी आधुनिक कल्पनाओंका सहारा लेकर या उनके बिना ही देशी भाषाओंमें विज्ञानके क्षेत्रमें भी वही काम नहीं कर सकते जो किसी समय दर्शनके क्षेत्रमें देशी भाषाओंके उन विद्वानोंने किया था? इन गवाहियोंकी शंकाओंके विरोधमें देशी भाषाओंके पक्षपाती जापानका उदाहरण पेश कर सकते हैं। सेंट पॉल्स कैथिड्रल कालेज, कलकत्ताके प्रिंसिपल रेवरेंड डब्ल्यू० ई० एस० हॉलैंड अपनी गवाहीमें लिखते हैं कि

> जापानने अपनी भाषाके प्रयोगसे एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली खड़ी कर दी है जिसका पाश्चात्य जगत् सम्मान करता है।

'मॉडर्न रिव्यू'के सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जीकी गवाही और भी अधिक विश्वासोत्पादक है। वे कहते हैं:

> विश्वविद्यालयकी शिक्षाके सभी स्तरोंपर देशी भाषाओंका प्रयोग अपरिहार्य है। इसके विरुद्ध जितनी भी आपत्तियाँ हैं उनका महत्त्व अस्थायी ही है, क्योंकि अत्यन्त विकसित आधुनिक भाषाएँ और साहित्य अपने प्रारम्भिक चरणमें बँगलासे किसी भी तरह बेहतर नहीं थे। सतत प्रयोगसे ही वे विकसित हुई हैं और हम भी उसी तरह प्रयोगसे ही अपनी भाषाका विकास कर सकेंगे।

इस प्रकार हम पाते हैं कि यद्यपि आज डा० सैडलरके आयोगके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य विश्वविद्यालयकी रक्षाके लिए देशी भाषाका माध्यम अपनानेके पक्षमें नहीं है, फिर भी वह भविष्यमें देशी भाषाको माध्यम बनानेके हितमें बड़ी आशा बँधाता है। एक समय था जब देशी भाषाके पक्षपातियोंके उद्देश्यको सन्देहकी दृष्टिसे देखा जाता था। अब उसे सन्देहकी दृष्टिसे नहीं देखा जाता। इतना ही नहीं सन्देहका स्थान विश्वासने ले लिया है। हालमें दो महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सक्रिय हो गई हैं। पूनाका महिला विश्वविद्यालय[1] और हैदराबादका उस्मानिया विश्वविद्यालय; दोनों ही माध्यमके रूपमें केवल देशी भाषाओंका व्यवहार कर रहे हैं। उनकी प्रगति-पर बहुत लोगोंकी आँखें जमी हुई हैं और जैसा कि जस्टिस सर अब्दुल् रहीम ठीक ही कहते हैं कि इन संस्थाओंकी सफलता देशी भाषाओंकी समस्याका हल आसान बना देगी। हिन्दू-विश्वविद्यालयके पिछले दीक्षान्त समारोहके दौरान माननीय पंडित मदनमोहन मालवीयने देशी भाषाओंके सभी प्रमुख विद्वानोंको एक सम्मेलनके लिए आमंत्रित किया था। आशा है कि ऐसे सुनियोजित प्रयत्नोंसे देशी भाषाएँ शीघ्र ही शिक्षाके माध्यमके रूपमें मान्यता पा लेंगी।

देशी-भाषाओंके हितको प्रान्तोंके वर्तमान विभाजनने भी किसी अन्य चीजसे कम नुकसान नहीं पहुँचाया है। भाषाके आधारपर प्रान्तोंका पुर्नविभाजन करनेके बाद विश्व-विद्यालयोंकी व्यवस्था एक नये सिरेसे करनी होगी।

१. श्रीमती नाथीबाई दामोदरदास ठाकरसी विश्वविद्यालय।

ऊपर हमने देशी भाषाओंके हितके लिए तीन परस्पर मिले-जुले कार्यक्षेत्र बतलाये हैं। जाहिर है कि जबतक हम इस हितको आगे नहीं बढ़ायेंगे तबतक हम अपने देशके विभिन्न स्त्री-पुरुषों और विभिन्न वर्गों और जनताके बीच निरन्तर चौड़ी होती हुई बौद्धिक और सांस्कृतिक खाईको पाट नहीं सकेंगे। यह भी निश्चित है कि केवल देशी भाषाके माध्यमसे ही अधिकांश लोगोंमें वैचारिक मौलिकता पैदा की जा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-४-१९२०

१२७. पत्र : देवदास गांधीको

बम्बई

बुधवार [२१ अप्रैल, १९२०][1]

आज मैं पंडितजीको[2] विदा करने तथा अन्य कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण तुम्हें जो पत्र लिखना चाहता था, सो नहीं लिख सका।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७१७०) की फोटो-नकलसे।

१२८. खादीके उपयोग

यद्यपि स्वदेशी आन्दोलन मुझे सन्तोष देने योग्य गतिसे नहीं चल रहा है तथापि यह आन्दोलन धीरे-धीरे आगे बढ़ता जा रहा है। सत्याग्रह सप्ताहके दौरान जनतामें बहुत जागृति आई है। स्वदेशी आन्दोलन भी उसी प्रमाणमें आगे बढ़ा है। मुसलमान भाइयोंने भी स्वदेशी आन्दोलनमें अधिक भाग लेना आरम्भ कर दिया है। उनमें एक नया उत्साह उत्पन्न हो गया है। वे स्वदेशीके आन्दोलनको विदेशीके बहिष्कारके रूपमें देखते हैं। मैं बता चुका हूँ कि बहिष्कार मिथ्या है। तथापि जिस हदतक बहिष्कारमें स्वदेशीका तत्त्व सन्निविष्ट है उस हदतक तो लाभ होगा ही। कोई व्यक्ति गुस्सेमें आकर उपवास करता है तो उस उपवासका जो थोड़ा शारीरिक लाभ है वह तो उसे मिलता ही है। उसी तरह बहिष्कारके रूपमें गृहीत स्वदेशीका लाभ भी जनताको अवश्य मिलेगा। यदि हम यूरोपके मालको छोड़ जापानका माल लेने लगें तो यह बात अलबत्ता कड़ाहीमें से निकलकर चूल्हेमें गिरनेके समान होगी।

१. यह पत्र गांधीजीने श्रीमती सरलादेवी चौधरानी द्वारा देवदास गांधीको २१ अप्रैल, १९२० को लिखे पोस्ट कार्डकी पीठपर लिखा था।

२. पंडित रामभजदत्त चौधरी।

तब स्वदेशीका सच्चा प्रचार कैसे हो? स्वदेशीके प्रेमियोंको इसपर अवश्य विचार करना चाहिए। देशी मिलोंमें बने कपड़ेका अधिक उपयोग करके इसे सम्भव मानना भूल है। हिन्दुस्तानमें हमारी आवश्यकताके योग्य स्वदेशी माल तैयार होता ही नहीं है। इसलिए यदि हम मिलके मालको इस्तेमाल कर सन्तोष कर लें तो उसका मतलब यह हुआ कि आज गरीबके भागमें जो माल आता है उसे हम ले लेते हैं और उसका मूल्य बढ़ा देते हैं। यह तो ठीक नहीं है। इस बातमें भी कोई सन्देह नहीं कि फिर हमें गाँव-गाँवमें स्वदेशी भंडार खोलनेकी जरूरत पड़ेगी। आज तो स्वदेशी वस्त्र पहननेवालोंको सामान्य दूकानोंमें आवश्यक स्वदेशी माल नहीं मिल सकता। इसलिए सही अर्थोंमें स्वदेशीको प्रोत्साहन वही व्यक्ति देता है जो एक गज ही क्यों न हो, अपने हाथके कते सूतका कपड़ा तैयार करता है। यदि फूंक मारते ही नई मिलें खड़ी की जा सकतीं तो एक तरहकी स्वदेशी आज ही व्यापक बनाई जा सकती। लेकिन मिलोंकी स्थापना करनेमें तो समय चाहिए। फूंक मारते ही हाथसे काता सूत प्राप्त किया जा सकता है, इस बातमें कोई सन्देह नहीं है। कोशिश करनेसे कोई भी व्यक्ति एक ही दिनमें सूत कातना सीख सकता है।

इस तरह सैकड़ों बहनें सूत कातने लगी हैं, लेकिन उसका बना हुआ कपड़ा पहननेवाले लोग नहीं मिलते। एक वर्ष पहले खादी पर्याप्त मात्रामें नहीं मिलती थी। हाथके कते सूतको प्राप्त करनेमें पहले बहुत कठिनाई होती थी, लेकिन अब एक वर्षके अन्तमें मेरे ही पास हाथका कता सूत इतना अधिक आने लगा कि मैं भी उसे तत्काल नहीं ले सकता। खादीका माल मेरे पास बहुत अधिक इकट्ठा हो गया है और उसकी पूरी-पूरी खपत नहीं हो पाती।

खादीके प्रति लोगोंकी अरुचिको कैसे दूर किया जाये, यह प्रश्न उतना ही महत्त्व-पूर्ण है जितना कि नये कपड़ेका उत्पादन। हम एकाएक मोटी खादीके बजाय हाथसे कते सूतका कपड़ा नहीं बना सकते। लाखों बहनें मोटी खादीके योग्य सूत ही कातेंगी।

स्वदेशी आन्दोलनको सबसे ज्यादा लाभ तो श्रीमती सरलादेवीने ही पहुँचाया। उन्होंने राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान खादीकी साड़ी और चोली पहननेकी इच्छा प्रकट की। खादीकी साड़ी पहननेके लिए तो मैं अबतक भी किसी बहनको राजी नहीं कर पाया हूँ। इसलिए सरलादेवीकी बात सुनकर पहले तो मुझे लगा कि वे शायद हँसी कर रही हैं। लेकिन उन्होंने तो सच्चे हृदयसे यह बात कही थी; और वह भी वैसी मोटी खादी-की जैसी मैं पहनता हूँ। मैंने उनके लिए खादीके कपड़े बनवाये, और उन्होंने उन्हींको पहनकर सप्ताहको दीप्त किया। उनके मामाश्रीने[1] जब अपनी भांजीको वे मोटे वस्त्र पहने हुए देखा तब उन्होंने भी कहा: "अगर तुम्हें अटपटा न लगे तो इस पोशाकमें कोई खराबी नहीं है। सभी जगह तुम इसे पहनकर जा सकती हो।" कवि-श्रीके सम्मानमें ११ तारीखको श्रीमती पेटिटके यहाँ एक विशाल आयोजन था। उसमें वे खादीकी पोशाक पहनकर जायें अथवा नहीं, यह प्रश्न उनके सामने था। इसपर उन्हें कविश्रीके उपर्युक्त उद्गारोंका ध्यान आया और सरलादेवीने खादीकी पोशाक

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जो राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान बम्बईमें थे।

पहनकर आयोजनका गौरव बढ़ाया। उन्हें जितना मान उनकी कीमती रेशमी साड़ियोंमें मिलता था उतना ही इस खादीकी साड़ीमें भी मिला। इसके बाद तो वे सभाओं आदिमें उन्हीं खादीके वस्त्रोंको पहनकर गईं और जहाँ-जहाँ मैं उपस्थित था वहाँ-वहाँ मैंने देखा कि उन वस्त्रोंके कारण स्त्री-पुरुषोंके मनमें उनके प्रति आदर-भाव बढ़ा है। इस तरह मामा-भांजीने, जो कलात्मक अभिरुचिके लिए समस्त हिन्दुस्तानमें प्रसिद्ध हैं, कलाकी दृष्टिसे खादीको नापसन्द नहीं किया। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने धनिक समाजमें स्त्रियोंके लिए खादीके पहरावेका प्रवेश कराया। जो महिला अबतक महीनसे-महीन पोशाकें पहनती आई थी, उसने खादीके कपड़े पहने और गर्वका अनुभव किया, उनके मोटे खुरदरेपनकी उसने शर्म नहीं मानी। यह भावना जबतक हमेशाके लिए, कमसे-कम इस संक्रान्ति कालके लिए, एक बड़ी संख्यामें हिन्दुस्तानके स्त्री-पुरुषोंके मनमें घर नहीं कर लेती तबतक मैं स्वदेशी आन्दोलनको विराट् स्वरूप दिए जानेकी बात असम्भव मानता हूँ। क्योंकि इस समय यदि लाखों गज कपड़ा तैयार किया जा सकता है तो वह खादीका ही हो सकता है।

खादीका मोटा कपड़ा पहननेवालों पर दया दिखानेका मुझे तो कोई कारण दिखाई नहीं देता। मैं स्वयं अपनेको कला-रुचिविहीन नहीं मानता और खादीमें मुझे बहुत कला दिखाई देती है। अपने और दूसरोंके निजी अनुभवके आधारपर मैं कह सकता हूँ कि मिलके सूती कपड़ेकी अपेक्षा, जो गर्मीमें पसीना आनेसे हमारे बदनसे चिपक जाता है, खादीमें पसीना सोखनेकी अधिक शक्ति है। यह टिकाऊ होनेके कारण भी अधिक उपयोगी और अधिक अच्छी है। कपड़ेका यदि कोई व्यक्तित्व कहा जा सकता हो तो कह सकते हैं कि खादीका अपना व्यक्तित्व होता है। खादीके उत्पादनकी विभिन्न क्रियाओंमें से किस क्रियाका कर्त्ता कौन है, यदि हम यह जानना चाहें तो जान सकते हैं। खादीमें थोड़ी-बहुत कारीगरी है। यह बात मिलके कपड़ेपर लागू नहीं होती। जैसे वृक्षके दो पत्ते बिलकुल एक-जैसे नहीं होते, वैसे ही हाथके कते, हाथके बुने सूतकी खादीके दो तागे एक समान नहीं होते। जिस तरह कोई चित्रकार बिलकुल एक समान दो चित्र नहीं बनाता, उसी तरह खादी बनानेवाला भी एक जैसे दो थान नहीं बनाता। कुछ लोगोंको यह जानकर दुःख होगा। वे सम्भवतः यह मानते होंगे कि यदि एक ही तरहका, और जो न पहचाना जा सके ऐसा लाखों गज कपड़ा होना अथवा उसका तैयार किया जा सकना ज्यादा अच्छा है। ऐसे मशीनी उत्पादनोंको अधिकांशतः उपयोगी माना जाता है; लेकिन इसे किसी भी दिन कलाका नाम नहीं दिया गया। यदि हम एक ही तरहके पिन न बना सकें अथवा हमें एक ही तरहका कागज न मिले तो हमें कुछ असुविधा हो सकती है। फिर भी इस यंत्र-युगमें आज भी कलाके पारखी स्त्री-पुरुष हाथसे बने कागजको ही अधिक पसन्द करते हैं। मशीनके और हाथके कागजका अन्तर तो सभी देख सकते हैं। हाथके कागजमें अमुक प्रकारका व्यक्तित्व-बनानेवालेकी कला होती है। किन्तु सम्भव है सबकी जरूरतके योग्य हाथका कागज न बनाया जा सके। यहाँ तो मैं इतना ही सिद्ध करना चाहता हूँ कि जिस तरह कागजमें, उसी तरह हाथकी बनी खादीमें जो कला है वह मशीनसे उत्पादित कपड़में नहीं

है। यदि हमने स्वदेशी वस्तुओंके प्रति एक अरुचिका भाव विकसित न कर लिया होता तो हम खादीमें निहित कला भी देख पाते। स्काटलैंडमें आज भी मशीनसे तैयार की गई [ऊनकी] ट्वीड, वहाँकी स्त्रियों द्वारा तैयार की गई ट्वीडका मुकावला नहीं कर सकती। वहाँके उमरावोंने हाथसे वनी ट्वीडको पहनकर यह सिद्ध कर दिखाया है कि उसके खुरदरेपनमें जो गर्मी और जो शोभा है, मशीनसे वनी महीन ट्वीडमें वैसी शोभा और गर्मी नहीं है। हाथकी वनी ट्वीड "फैशनेवल"— कलात्मक — मानी जाती है, इसलिए उसके दाम भी अधिक मिलते हैं।

यह हिन्दुस्तानका दुर्भाग्य है कि यहाँ हाथकी वनी खादीके वस्त्रोंको अपेक्षाकृत निम्न लोगोंके पहननेका कपड़ा माना जाता है, उसे कलाविहीन समझा जाता है। उसका कोई मूल्य नहीं आँका जाता तथा खादीके वुनकरको दिनभरमें मुश्किलसे आठ आने मिल पाते हैं। जिस देशमें ऐसा उत्तम न्याय होता हो वहाँ कलाके सही मूल्यांकनकी क्या आशा की जा सकती है? ऐसे देशमें भुखमरी क्यों न हो? हाथके कला-कौशलके प्रति इस देशमें सम्मानका कोई भाव नहीं है। धनाढ्य लोग यूरोपके मशीनी चमकदार मालकी चकाचौंधसे मुग्ध होकर उसे कला मान वैठे हैं। इसीसे उनके घरोंमें, उनके पहनावेमें हिन्दुस्तानके हस्तकौशलको स्थान नहीं दिया जाता। सूरतके कलक्टर महोदयने एक वार स्वदेशी आन्दोलनकी टीका करते हुए मुझसे कहा: "देखिए मैंने अपने दीवानखानेमें स्वदेशी कारीगरीको कितना स्थान दिया है, तथा वहाँ निगाह डालिए, कितनी कलात्मक हैं ये वस्तुएँ; जरा अपने धनवान मित्रोंसे मेरे इस कामकी तुलना कीजिए और तव वताइए कि स्वदेशीको कौन प्रोत्साहन देता है।" उनका कहना सही था। उसे सुनकर मैं लज्जित हुआ। मेरी दृढ़ मान्यता है कि जव हिन्दुस्तानके लोग हाथके वने कपड़ेको पहननेमें गर्वका अनुभव करेंगे, जव खादीमें निहित कलाकी खातिर उसके उचित दाम देंगे तव हिन्दुस्तानसे भुखमरी जायेगी और गरीव लोग जिन्हें अनाजके भी लाले पड़े हुए हैं, भरपूर अनाज पायेंगे।

आज तो मेरे पास वहुतसी खादी यों ही पड़ी हुई है। ऐसी स्थिति आ पड़ी है कि हमें गरीव वहनों और भाइयोंको अपना काम रोकनेको कहना पड़ेगा। इसलिए मेरे सामने कुछ-एक स्वयंसिद्ध वातोंको सिद्ध करनेकी जरूरत आ पड़ी है। कोट, अँगरखा आदि मुझे तो खादीके ही सुन्दर लगते हैं। लेकिन यदि मैं पाठकोंको इतनी दूरतक नहीं ले जा सकता तो इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि खादीके अन्य और वहुतसे उपयोग हैं। खादीके वस्ते वनते हैं, खादीके झोलीनुमा झूले वनते हैं। कुर्सी, कोच आदिपर खादीके गिलाफ चढ़ाये जा सकते हैं। रंगीन खादीकी वड़ी-वड़ी जाजमें और चँदोवे वनते हैं। संक्षेपमें उसके हर आकारके रुमाल, छत्रे, थैलियाँ, खोल, गिलाफ, आदि अनेक प्रकारकी उपयोगी वस्तुएँ वन सकती हैं। खादीका प्रचार करनेमें मैं प्रत्येक पाठककी सहायता माँगता हूँ। खादीको लाल स्वदेशी रंगमें रँगनेके लिए एक रँगरेज भी मिल गया है। इसकी सहायतासे मैं कुछ खादीको लाल रंगमें रँगवा रहा हूँ। खोल आदिके लिए रँगी हुई खादी अधिक उपयोगी होगी। प्रत्येक पाठकसे मैं इतना याद रखनेका अनुरोध करता हूँ कि हाथ-कताईके उद्योगमें इस

समय अनेक बहनें जुटी हुई हैं। उनमें से कोई-कोई हीन जीवन व्यतीत करती थी; कोई अपने बच्चोंके लिए दूध-जैसी वस्तुतक लेनेमें असमर्थ थी। वे बहनें इस समय सम्मानके साथ थोड़ा-बहुत कमा रही हैं। हिन्दुस्तानकी भुखमरीको सहज ही दूर करने तथा हिन्दुस्तानमें जीवनको अधिक सम्मानके साथ वितानेकी दिशामें प्रत्येक पाठक अपना योगदान दे ऐसी मेरी इच्छा है।

जिन्हें खादी चाहिए, वे मुझे पत्र लिखनेके बजाय सत्याग्रह आश्रममें खादी विभागके व्यवस्थापकको पत्र लिखें। मुझे लिखनेसे सम्भव है, ऐसे पत्रोंका उत्तर देनेमें देर हो जाये। आश्रममें जिन विभिन्न किस्मोंकी खादी इकट्ठी है उसके भाव भी, व्यवस्थापक सत्याग्रह आश्रमको लिखनेपर मिल सकेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-४-१९२०

१२९. काठियावाड़ी शिष्टता

साहित्य परिषद्के समय लाल दरवाजेके बाहरवाले मैदानमें अपने भाषणके[1] दौरान मैंने काठियावाड़ी शिष्टताके सम्बन्धमें कुछ उद्‌गार प्रकट किये थे, उस विषयमें मुझे कुछ पत्र प्राप्त हुए हैं। एक पत्रमें मुझपर आरोप लगाया गया है कि मैंने काठियावाड़के साथ अन्याय किया है। अपनी समझमें तो मैंने अपने भाषणोंमें काठियावाड़की शिष्टताका बखान किया था। शिष्टाचारकी अतिशयताकी निन्दा की थी। काठियावाड़के लोगोंमें जिस उदारता, विनयशीलता, आतिथ्य, सरलता और प्रेमके दर्शन होते हैं, उनको मैं किसी दृष्टिसे ओझल नहीं कर सकता; मैं उनकी निन्दा नहीं कर सकता। लेकिन काठियावाड़में इन्हीं गुणों तथा अन्य उलटी रूढ़ियोंके कारण दम्भ, कृत्रिमता आदिके रूपमें परेशानियाँ पैदा हो गई हैं; यदि मैं इनकी आलोचना न करूँ तो जिन दोषोंसे मैं अपने आपको मुक्त मानता हूँ उन दोषोंसे दूसरोंको बचानेके अवसरकी उपेक्षा करना ही होगा। मैं जब कभी काठियावाड़के लोगोंके सम्पर्कमें आता हूँ, मुझे इन गुण और दोष, दोनोंका अनुभव होता है। मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि नई पीढ़ी, काठियावाड़का युवक-वर्ग इन गुणोंको विकसित करने तथा इनसे उत्पन्न दोषोंको त्यागकर बहुत आगे बढ़ सकता है। लेकिन दोषोंको देखे-समझे बिना उनका त्याग असम्भव है। इसलिए मुझे जिन्होंने उक्त पत्र लिखे हैं उनसे मैं निम्नलिखित प्रश्न पूछूँगा :

(१) क्या आपने यह नहीं देखा कि अन्य लोगोंकी अपेक्षा काठियावाड़ी लोग झूठा शिष्टाचार निभानेमें न देने योग्य वचन देते हैं? (२) क्या आपने काठियावाड़के लोगोंको अन्य लोगोंकी बनिस्बत शिष्टाचारकी ही खातिर अपने बूतेसे बाहर खर्च करते नहीं देखा है? (३) क्या आपने यह नहीं देखा कि शिष्टाचारके बावजूद काठियावाड़के व्यवहारमें, सार्वजनिक और निजी जीवनमें, अशिष्टताके दर्शन होते हैं?

१. २ अप्रैल, १९२० का।

मैंने तो स्पष्ट रूपसे उनमें इन तीनों दोषोंको देखा है। आज भी काठिया-वाड़ियोंके बारेमें मेरे पास इन दोषोंकी शिकायतें आती रहती हैं। यह भी हो सकता है कि मैं निरन्तर इनके सम्पर्कमें आता रहता हूँ, इसीसे मुझे ये दोष कुछ अधिक बड़े दिखाई देते हों अथवा मेरे खुदके काठियावाड़ी होनेके कारण मेरे पास इन दोषोंके विषयमें शिकायतें आती रहती हों। यदि ऐसा हो तो इसका अर्थ इतना ही हुआ कि ये दोष दूसरोंकी अपेक्षा काठियावाड़ियोंमें अधिक नहीं है। लेकिन मैं तो काठियावाड़के लोगोंसे निवेदन करूँगा कि उक्त दोष आपके बीच चाहे जितनी कम मात्रामें क्यों न हों उन्हें आप निकाल फेंकें, इससे आपका जीवन अधिक पवित्र होगा तथा आप अपनी और अपने देशकी अधिक सेवा कर सकेंगे।

हम दूसरोंसे बहुत खराब नहीं हैं, इस प्रकारके झूठे सन्तोषसे क्या लाभ? बल्कि प्रत्येक स्त्री-पुरुषका यह कर्त्तव्य है कि वह स्वतन्त्र रूपसे अपने दोषोंको निरख-परखकर उन्हें दूर करे। अतएव मुझे उम्मीद है कि जो अपनी बहादुरी और साहसके लिए प्रसिद्ध है वह काठियावाड़ी अपने सूक्ष्मसे-सूक्ष्म दोषको विवेकपूर्वक निकाल बाहर करेगा तथा साहस और बहादुरीका अपना गुण देशकी सेवामें अर्पित करेगा, एवं स्वर्गीय नवलरामने[1] शुद्ध हृदयसे हमारे जिन दोषोंको देखा और वर्णित किया है उन्हें अपने भीतरसे दूर कर देगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-४-१९२०

१३०. एक वर्ष पूरा हुआ

श्री हॉर्निमैनको निर्वासित हुए २६ तारीखको एक वर्ष पूरा हो जायेगा पर हम उन्हें अबतक हिन्दुस्तान वापस नहीं ला सके। जब सम्राट्का घोषणा-पत्र प्रकाशित[2] हुआ था तब लोगोंने सोचा था कि उसके अन्तर्गत श्री हॉर्निमैनके मामलेपर भी विचार किया जायेगा। लेकिन बम्बईके गवर्नर महोदयने इस मामलेमें इस विचारसे ठीक उलटा निर्णय लिया और अबतक तो बात उन्हींकी रही है। श्री हॉर्निमैनको वापस लानेकी बातके साथ नागरिक स्वातन्त्र्यके महान् सिद्धान्तका सवाल जुड़ा हुआ है। श्री हॉर्निमैनके व्यक्तिगत गुण-दोषोंको फिलहाल हम एक ओर रखें। मान लीजिए वे अपराधी हैं; लेकिन खूनीको भी आधुनिक प्रशासन-व्यवस्थाके अनुसार विधिपूर्वक जाँच-पड़ताल किये बिना फाँसीपर नहीं चढ़ाया जा सकता और न कैद ही रखा जा सकता है। अभी बारह महीनोंके भीतरकी बात है, अहमदाबादमें एक व्यक्तिपर खूनका आरोप लगाया गया और उसे फाँसीकी सजा दी गई। यह सजा उसे विधिपूर्वक नियुक्त अदालतमें मुकदमा

१. उन्नीसवीं शताब्दीके एक गुजराती लेखक।

२. यह घोषणापत्र २३ दिसम्बर, १९१९ को जारी किया गया था, इसमें राजनैतिक कैदियोंको राज्यकी ओरसे क्षमा प्रदान की गई थी।

चलनेके बाद दी गई थी। किन्तु कोई कानूनी भूल रह जानेके कारण उसे छोड़ दिया गया; और उसे यह मुक्ति हमारे गवर्नर महोदयके आदेशसे ही मिली थी। इसमें सरकारने बड़ी न्याय-बुद्धिसे काम लिया था। सरकार श्री हॉर्निमैनके मामलेमें भी वैसी न्याय-बुद्धिका परिचय क्यों नहीं देती? कुछ लोग यदि यह कहकर सरकारका बचाव करना चाहें कि जो सरकार साधारणतया ऐसी न्याय-बुद्धिसे काम लेती है और जब उसने श्री हॉर्निमैनकी स्वतन्त्रताका इस तरह अपहरण किया है तो उसके पास इसका कोई सबल कारण होगा। हम इस तर्कको उचित नहीं मानते। जब कि उक्त खूनीका सरकारसे कोई विरोध नहीं था, श्री हॉर्निमैन तो एक तरहसे सरकारके विरोधी कहे जा सकते हैं। अपनी लेखनी और अपने भाषणोंसे वे सरकारको परेशान कर सकते थे। इसलिए उनकी स्वतन्त्रता छीन लेनेमें सरकारका स्वार्थ था। इसी कारण खूनीकी हद-तक सरकारने जिस न्याय-बुद्धिका परिचय दिया, श्री हॉर्निमैनके मामलेमें उसने उसका कोई उपयोग नहीं किया। हमारा कहना है कि यदि श्री हॉर्निमैनने कोई ऐसी चीज लिखी हो जो कानून-सम्मत नहीं है तो उनपर मुकदमा चलाकर सजा दी जाए। बिना मुकदमा चलाए जो सजा दी गई है जनता उसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। श्री हॉर्निमैनकी स्वतन्त्रताके पक्षमें लड़ना जनताका अपनी स्वतन्त्रताके पक्षमें लड़ना है, अतएव हमें उम्मीद है कि जनता श्री हॉर्निमैनके मामलेको नहीं भूलेगी तथा प्रभावशाली उपायोंसे श्री हॉर्निमैनके विरुद्ध जारी किए गये आदेशको रद करवानेमें कुछ उठा नहीं रखेगी।

अब हम विचार करें कि इस दिशामें क्या किया जा सकता है। अप्रैल और मई महीनोंमें नेताओंके बम्बईमें न रहनेसे उक्त महीनोंमें खास हलचल नहीं रहती। इसलिए हम बम्बईमें २६ तारीखको किसी जोरदार सभाका आयोजन नहीं कर सकते। लेकिन जल्दीसे-जल्दी अवसर मिलते ही जनताको सारे बम्बई प्रदेशमें भारी सभाएँ आयोजित करके सरकारको बता देना चाहिए कि जबतक श्री हॉर्निमनके विरुद्ध जारी किया गया आदेश रद नहीं हो जाता तबतक वह शान्तिसे नहीं बैठ सकती। बहुतसे प्रस्ताव पास कर दिये गये हैं ऐसा मानकर हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अब और प्रस्ताव पास करनेकी कोई जरूरत नहीं है। प्रस्तावोंके सम्बन्धमें हमारा दृष्टिकोण बदलना चाहिए। प्रायः प्रस्तावोंको प्रथम और अन्तिम उपाय माना जाता है। इसके बजाय उन्हें जनताके निश्चयको प्रकट करनेवाला पहला कदम ही समझा जाना चाहिए। यदि सरकार इन प्रस्तावोंपर अमल नहीं करती तो हममें उससे उनपर अमल करवानेकी शक्ति होनी चाहिए। यह शक्ति कैसी होनी चाहिए तथा इसका कब और किस तरह प्रयोग किया जाना चाहिए, इसपर फिलहाल यहाँ विचार करना आवश्यक नहीं है। हमें तो अभी इस बातपर विचार करना है कि प्रजा एकमत है या नहीं तथा वह श्री हॉर्निमैनको मुक्त करवानेके लिए प्रयत्न करना चाहती है अथवा नहीं। इस सम्बन्धमें जो उपाय किये जाने चाहिए उन्हें हम पहले ही लिख चुके हैं।

[गुजराती]

नवजीवन, २५–४–१९२०

१३१. मैं विलायत क्यों जाऊँ?

कुछ पाठक मेरे प्रत्येक काममें इतनी ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं कि मैं उनकी जिज्ञासाको सदा ही शान्त नहीं कर पाता। इसका कारण मेरी लापरवाही नहीं है; एक तो उनके सभी प्रश्नोंका विस्तृत उत्तर देनेका मेरे पास समय नहीं रहता और फिर प्रत्येक प्रश्नका विस्तृत उत्तर देने योग्य जगह भी 'नवजीवन' में नहीं रखी जा सकती। तथापि मैं उनके सार्वजनिक होनेके कारण कितने ही प्रश्नोंके उत्तर देना आवश्यक समझता हूँ। मेरी विलायत जानेकी बात भी एक ऐसा ही प्रश्न है।

मैं हमेशा नेताओंके विलायत जानेकी बातका विरोध करता हूँ; फिर मैं ही इस बार विलायत जानेके लिए किस तरह तैयार हो गया — कुछ-एक पाठकोंने ऐसी शंका की है। मेरी राय विलायत जानेके विरोधमें है, उनका ऐसा समझना ठीक ही है, और इसलिए उनकी यह शंका भी उचित है। लेकिन मैंने यह तो कभी नहीं माना कि कोई कभी विलायत न जाये। मैं ऐसे प्रसंगकी कल्पना कर सकता हूँ जब इंग्लैंड न जाना गुनाह हो सकता है। खिलाफतके प्रश्नको लेकर 'जाना ही चाहिए' मेरे मनमें ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन मेरे जानेसे कदाचित् लाभ हो सके इसलिए इसका निर्णय करनेकी बात मैंने मुसलमान भाइयोंपर ही छोड़ दी है। उन्होंने यह कहा कि अगर मुझे विलायत भेजना निश्चय हुआ तो मुझे उसके लिए तैयार रहना चाहिए; मैंने उनकी बात मान ली और दो शर्तें उनके सामने रखीं। एक तो यह कि प्रतिनिधि मण्डल भेजनेके लिए यहाँके लोगोंको पूरी तरह तैयार रहना चाहिए और दूसरी यह कि माननीय वाइसराय महोदयकी ओरसे अनुमोदन और अनुमति मिलनी चाहिए। वाइसराय महोदयकी अनुमति मिल गई है, वे हमारे जानेके औचित्यके सम्बन्धमें विचार प्रकट करनेमें संकोच अवश्य कर रहे हैं। इसपर मैंने फिर खिलाफत समितिके पास जाकर, ऐसी स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करनेकी बात उनकी जवाबदारीपर छोड़ दी।[1] खिलाफत समितिमें मतभेद है। सामान्य दृष्टिकोण तो यह है कि फिलहाल नहीं जाना चाहिए और अभी इसलिए विलायत जाना स्थगित हो गया है।

[शिष्टमण्डलके] जानेका उद्देश्य केवल [खिलाफतके प्रश्नपर] निर्णय प्राप्त करना ही नहीं है; अपितु यदि निर्णय हमारी माँगके अनुकूल न हुआ तो भारतपर उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी — इसकी चेतावनी देना भी है। असहयोग ऐसी-वैसी चीज नहीं है। यदि असहयोग आन्दोलनको उचित ढंगसे चलाया जा सके तो उसकी मार्फत सम्पूर्ण न्याय प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए इससे पहले कि हम इतने महत्त्वपूर्ण अस्त्रका प्रयोग करें, मैं सरकारको पूरी-पूरी चेतावनी देना आवश्यक समझता हूँ और यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हुई तो ऐसी चेतावनी देनेकी खातिर ही मैंने विलायत जाना

१. प्रथम भारतीय खिलाफत शिष्टमण्डल; जो २६ फरवरीको इंग्लैंड पहुँचा तथा अप्रैलतक वहीं रहा।

पसन्द किया है। लेकिन वाइसराय महोदयने इस सुझावके सम्बन्धमें अपनी सहमति प्रकट नहीं की है और अभी हम लोग भी पूरी तरहसे इसके लिए तैयार नहीं हैं, इससे मैंने तो यही माना है कि मैं न जाऊँ तो अधिक अच्छा है। इसके बाद यदि मुझे ऐसा लगा कि मुसलमान भाइयोंकी इच्छा है अथवा मेरा जाना सरकारको प्रिय है तो मैं अवश्यमेव जानेका विचार करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५–४–१९२०

१३२. पाठकोंसे

'नवजीवन' के आकार तथा अहमदाबाद और बम्बईमें बिकनेवाली उसकी प्रतिके निर्धारित मूल्योंमें हमने अभी हाल ही में परिवर्तन किया है। कागजकी तंगी है और उसका भाव भी बढ़ता जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'नवजीवन' में हमें जो घाटा हो रहा है यदि वह इसी प्रकार होता रहा तो एक वर्ष पूरा होनेतक अर्थात् अगले पाँच महीनेमें हमें दस हजार रुपयेका घाटा हो चुकेगा। उम्मीद है कि विज्ञापन न लेनेके हमारे निश्चयको पाठक अवश्य पसन्द करेंगे, और साथ ही हमें जो भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है उसे भी, मेरी समझमें, वे उचित नहीं मानेंगे। इसलिए व्यवस्थापकोंने आकार घटा देनेका जो सुझाव रखा था उसे हमने स्वीकार कर लिया है। फलस्वरूप इस बार पाठकोंको आठ पृष्ठोंका ही 'नवजीवन' मिलेगा। आशा है पाठक इससे रुष्ट नहीं होंगे। जैसा कि मैंने पहले लिखा है, मैं तो पाठकोंको 'नवजीवन'का भागीदार ही मानता हूँ। 'नवजीवन' के व्यवस्थापक लाभ अथवा व्यापारके उद्देश्यसे यह पत्र चलाना नहीं चाहते लेकिन इसके साथ ही वे उसे नुकसान उठाकर भी नहीं चलाना चाहते। यदि घाटा सहकर पत्र निकालना पड़े तो मैं यही मानूंगा कि जनताको 'नवजीवन' की जरूरत नहीं है। लेकिन मेरी मान्यता भिन्न ही है। जो इस पत्रको चला रहे हैं, उन व्यवस्थापकोंके लिए विज्ञापन लिए विना चलानेका यह प्रयोग नया है। और फिर कागजकी कीमत इतनी बढ़ जायेगी, ऐसा किसीने भी नहीं सोचा था। यह सोचा था कि लड़ाई बन्द होनेपर कीमतें कम होंगी। और फिर यह भी खयाल था कि पहले जिस कागजका उपयोग किया जा रहा था [भविष्यमें भी] उसीसे काम चल जायेगा। अनुभवसे मालूम हुआ कि ऐसे हलके कागजपर छपे 'नवजीवन' की फाइल रखना असम्भव है। इन कारणोंसे चन्दा बढ़ाना आवश्यक लगा। पुराने ग्राहकोंके लिए चन्दा तो चार रुपये रखना निश्चित है किन्तु पुराने ग्राहक भी घाटेको कम करनेमें हिस्सा बँटाये इस उद्देश्यसे पृष्ठ आठ कर दिये गये हैं। यदि कागजके दामोंमें बहुत वृद्धि न हो तो मुझे उम्मीद है कि इस वर्ष हमें इससे ज्यादा फेरफार नहीं करना पड़ेगा। जो परिवर्तन करना पड़ा है उसके लिए पाठक क्षमा करेंगे, ऐसी मेरी मान्यता है। तथापि मैं आश्वासन देना चाहूँगा कि

आकार कम होनेके बावजूद विषयोंमें कोई कमी नहीं होगी और उन विषयोंकी संक्षेपमें चर्चा करते हुए हमारा निरन्तर यह प्रयत्न रहेगा कि किसी भी महत्त्वपूर्ण विषयको छोड़ा न जाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-४-१९२०

१३३. 'ऑल इंडिया होमरूल लीग' के सदस्योंसे

वैसे किसी पूर्णतया विशुद्ध राजनैतिक संस्थाका सदस्य बनना मेरे लिए अपने जीवनके सहज पथसे स्पष्ट ही अलग हटकर चलना है। परन्तु सावधानीसे सोच-विचार करने तथा मित्रोंसे मशविरा करनेके बाद, मैं 'आल इंडिया होमरूल लीग' में शामिल हो गया हूँ और उसका अध्यक्ष-पद भी मैंने स्वीकार कर लिया है।[1] कुछ मित्रोंने, जिनसे मैंने सलाह ली, मुझे बतलाया कि किसी भी राजनैतिक संगठनमें मुझे शामिल नहीं होना चाहिए और यदि मैं ऐसा करूँगा तो अभी मुझे अपने-आपको हर चीजसे अलग रखने और अलग हटकर उसे देखनेका जो बड़ा सौभाग्य प्राप्त है, वह नहीं रह जायेगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस चेतावनीमें मुझे काफी सार दिखाई पड़ा। साथ ही मुझे लगा कि यदि लीगने मुझे जैसा मैं हूँ, उसी रूपमें स्वीकार कर लिया है, तो फिर ऐसे एक संगठनके साथ अपनेको एकरूप न करना भी गलत होगा, क्योंकि मैं इसका उपयोग उन उद्देश्योंको आगे बढ़ानेके लिए कर सकता हूँ जिनमें मैंने विशेष योग्यता प्राप्त की है और जिसके तरीकोंको मैंने आत्मानुभवके आधारपर सामान्यतया अपनाये जानेवाले अन्य तरीकोंकी तुलनामें कहीं अधिक शीघ्रतासे, कहीं अधिक अच्छे रूपमें फलप्रद होते देखा है। मैंने लीगमें शामिल होनेसे पहले बम्बई अहातेसे बाहरके लोगोंकी राय जाननेकी कोशिश की थी, जिनके निकट सम्पर्कमें आनेका मुझे इतना मौका नहीं मिला था जितना कि बम्बई अहातेके सहयोगियोंके साथ मिला था।

मैंने जिन उद्देश्योंका उल्लेख किया है वे हैं — स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम एकता जिसमें खिलाफत विशेष है, राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दुस्तानीकी स्वीकृति और भाषाके आधारपर प्रान्तोंका पुनर्विभाजन। यदि मैं सदस्योंको साथ रख सका तो लीगको इन कामोंमें लगाऊँगा ताकि राष्ट्रका अधिकांश समय और ध्यान उनमें लगे।

मैं स्पष्ट स्वीकार करता हूँ कि राष्ट्रीय पुनर्गठनकी मेरी योजनामें 'सुधारों' का स्थान गौण है। इसलिए कि मैं महसूस करता हूँ कि मैंने जिन कामोंको चुना है यदि राष्ट्रकी समूची शक्ति उनमें लगे तो उसके फलस्वरूप वे तमाम 'सुधार' हमें हासिल हो जायेंगे जिनकी कामना अत्यन्त उत्साही किस्मके उग्रवादी लोग कभी कर सकते हैं, और जहाँतक यथाशीघ्र पूर्ण स्वराज्यकी वांछनीयताका सम्बन्ध है, उस दिशामें प्रगति तेज करनेकी मेरी इच्छा किसीसे भी कम नहीं है। और चूंकि मैं महसूस करता

१. गांधीजी २८ अप्रैल, १९२० को 'ऑल इंडिया होमरूल लीग' में शामिल हुए।

हूँ कि स्वराज्यकी ओर हमारी प्रगतिकी रफ्तार उन्हीं कार्योंके विस्तारसे सबसे अच्छे ढंगसे तेज हो सकती है जिनका मैंने उल्लेख किया है, इसीलिए मैं उन्हें राष्ट्रीय कार्यक्रममें सबसे आगे रखता हूँ। मैं 'ऑल इंडिया होमरूल लीग' को किसी भी अर्थमें दलगत संस्था नहीं मानूंगा। मैं किसी भी दलमें नहीं हूँ और इसके बाद आगे भी किसी दलमें रहना नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि लीगको अपने संविधानके अनुसार कांग्रेसकी[1] सहायता करनी है, परन्तु ब्रिटिश संसदकी भाँति ही मैं कांग्रेसको भी दलगत संस्था नहीं मानता। यद्यपि ब्रिटिश संसदमें सभी दल शामिल हैं और उसमें समय-समयपर किसी एक दलकी प्रमुखता रहती है, फिर भी वह दलगत संस्था तो नहीं है। मैं आशा करूँगा कि सभी दल कांग्रेसको एक राष्ट्रीय संगठन समझेंगे, एक ऐसा राष्ट्रीय संगठन जिसका मंच सभी दलोंको सुलभ है, जिसपर आकर वे अपने-अपने विचारोंके अनुसार नीति अपनानेके लिए राष्ट्रसे अपील कर सकते हैं। मैं लीगकी नीति ऐसी बनानेकी कोशिश करूँगा कि कांग्रेस अपना निर्दलीय राष्ट्रीय स्वरूप[2] बनाये रख सके।

अब अपने तरीकोंकी बात कहता हूँ। मेरा विश्वास है कि देशके राजनैतिक जीवनमें अविचल सत्य और ईमानदारीका समावेश कराना बिलकुल सम्भव है। जहाँ मैं लीगसे यह उम्मीद नहीं करता कि सविनय अवज्ञाके मेरे तरीकोंमें वह मेरा अनुसरण करे, वहाँ मेरी पूरी-पूरी यह कोशिश भी रहेगी कि हमारे राष्ट्रकी सभी गतिविधियोंमें सत्य और अहिंसाको स्वीकार करवा सकूँ। तब हम सरकारों और उनके तरीकोंसे डरना या उनपर अविश्वास करना छोड़ देंगे। किन्तु मैं अभी इसके बारेमें अधिक विस्तारसे नहीं कहना चाहता। इसके बजाय मैं चाहूँगा कि मेरी इस सीधी-सी उक्तिको लेकर लोगोंके मनमें जो भी अनेक शंकाएँ उठेंगी उनका समाधान समय ही करे। अभी मेरा प्रयोजन यहाँ अपने द्वारा निरूपित नीतिकी सचाई या अपने कार्यका औचित्य सिद्ध करना नहीं है। यहाँ मेरा प्रयोजन तो लीगके सदस्योंके सामने सभी बातें खोलकर रख देना और प्रस्तुत कार्यक्रमकी आलोचना करना और लीगकी उन्नतिके लिए वे जो भी सुझाव देना चाहें, देनेके लिए उनको उत्साहित करना ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-४-१९२०

१. ऑल इंडिया होमरूल लीग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे सम्बद्ध थी।

२. सितम्बर १९२० में गांधीजीने कलकत्तामें सभी होमरूल लीगियोंको एकत्र किया और लीगके सिद्धान्तोंको ऐसा स्वरूप दे दिया जिसे बादमें कांग्रेसने नागपुर-अधिवेशनमें स्वीकार कर लिया था। उन्होंने 'लीग' का नाम भी बदलकर "स्वराज्य-सभा" रख दिया था।

१३४. मैं क्यों खिलाफत आन्दोलनमें शामिल हुआ हूँ ?

दक्षिण आफ्रिकाके मेरे एक आदरणीय मित्रने, जो आजकल इंग्लैंडमें रह रहे हैं, मुझे एक पत्र लिखा है जिससे मैं निम्न उद्धरण देता हूँ:

> आपको निःसन्देह याद होगा कि जब रेवरेंड जे० जे० डोक[1] आपको दक्षिण आफ्रिकामें आपके आन्दोलनमें सहायता दे रहे थे उस समय मैं आपसे मिला था। इसके बाद उस देशमें आपके रुखके औचित्यसे बहुत ही प्रभावित होकर मैं इंग्लैंड लौट आया था। युद्धपूर्वके कुछ महीनोंमें मैंने आपकी तरफसे लेखादि लिखे, व्याख्यान दिये और कई स्थानपर लोगोंसे बातचीत की थी। मुझे उसका खेद नहीं है। सैनिक सेवासे लौटनेके बाद मैंने समाचारपत्रोंमें देखा है कि आप अधिक संघर्षशील रुख अपनाते प्रतीत होते हैं। . . . 'टाइम्स'में मैंने एक रिपोर्ट देखी है कि आप हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता पैदा करनेके काममें सहायता इसलिए दे रहे हैं कि टर्की-साम्राज्यको टुकड़ोंमें विभाजित करने या कुस्तुन्तुनियासे टर्की सरकारको हटानेके मामलेमें[2] इंग्लैंड और मित्र-राष्ट्रोंको परेशानीमें डाला जाये। मैं चूँकि आपकी न्यायभावना और मानवीय प्रवृत्तियोंसे परिचित हूँ, इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि जो थोड़ा-बहुत आपके उद्देश्यके लिए मैंने यहाँ किया है, उसे देखते हुए आपसे यह पूछनेका मुझे अधिकार है कि क्या यह रिपोर्ट सही है। मुझे विश्वास नहीं होता कि आपने इस्तम्बूल [टर्की] सरकारकी क्रूर और अन्यायपूर्ण निरंकुशताको समूची मानवजातिके हितोंसे अधिक महत्त्व देनेके लिए ही गलत ढंगका यह आन्दोलन छेड़ा होगा। क्योंकि यदि पूर्वके किसी भी देशने इन मानव-हितोंको कुचला है तो निश्चय ही वह टर्की है। सीरिया और आर्मीनियाकी स्थितिकी मुझे निजी जानकारी है और मैं तो केवल यही अनुमान लगा सकता हूँ कि यदि 'टाइम्स'में प्रकाशित रिपोर्ट सही है तो आपने अपने नैतिक दायित्वोंको उठाकर ताकमें रख दिया है और अपना गठबन्धन मौजूदा अराजकतावादी तत्त्वोंसे कर लिया है। खैर, जबतक मैं आपसे यह न सुन लूँ कि आपका रुख यह नहीं है, तबतक मैं अपने मनमें कोई पूर्वधारणा नहीं बनाना चाहता। शायद आप मुझे उत्तर देनेकी कृपा तो करेंगे ही।

मैंने पत्रका उत्तर[3] दे दिया है। परन्तु चूँकि इस उद्धरणमें व्यक्त विचार शायद मेरे कई अंग्रेज मित्रोंके भी हों और यदि हो सके तो मैं उनकी मित्रता या उनके

१. जोजेफ जे० डोक (१८६१–१९१३); जोहानिसबर्ग बैप्टिस्ट चर्चके पादरी; उन्होंने १९११ में गांधीजी और पोलकके जेल जानेपर उनकी अनुपस्थितिमें **इंडियन ओपिनियन**का सम्पादन किया था।

२. मित्र-राष्ट्रों द्वारा टर्कीके सामने रखी गई शान्तिकी शर्तोंके लिए देखिए परिशिष्ट १।

३. उपलब्ध नहीं।

आदरभावसे वंचित नहीं होना चाहता, इसलिए में खिलाफतके सवालपर अपनी स्थिति यथासम्भव स्पष्ट शब्दोंमें रखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। पत्रसे साफ जाहिर होता है कि गैरजिम्मेदार किस्मकी पत्रकारितासे सार्वजनिक कार्यकर्ता कितना खतरा उठाते हैं। मैंने 'टाइम्स' की वह रिपोर्ट नहीं पढ़ी है जिसका उल्लेख मेरे मित्रने किया है। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उस रिपोर्टने इस पत्र-लेखकके दिमागमें एक ऐसी शंका पैदा कर दी है कि मौजूदा अराजकतावादी तत्त्वोंके साथ शायद मेरा कोई गठ-बन्धन है और शायद मैंने अपने नैतिक दायित्वोंको उठाकर ताकमें रख दिया है।

वस्तुतः नैतिक दायित्वकी अपनी भावनाके वश होकर ही मुझे खिलाफतका सवाल हाथमें लेना और अपने आपको मुसलमानोंके साथ एकरूप करना पड़ा है। यह बिलकुल सच है कि मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता करानेमें योग दे रहा हूँ, परन्तु निश्चय ही इस खयालसे नहीं कि "इंग्लैंड और मित्र-राष्ट्रोंको टर्की-साम्राज्यके टुकड़े करनेके मामलेमें परेशान करूँ।" सरकारोंको या किसी अन्य व्यक्तिको परेशान करना मेरे सिद्धान्तके विरुद्ध है। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे कुछ कामोंसे किसीको भी परेशानी होनेकी सम्भावना नहीं है। परन्तु जब मैं किसी अन्यायकारीको अन्याय करनेमें सहायता देनेसे इनकार करके न्यायका प्रतिरोध करूँ तो उसको होनेवाली परेशानीके लिए में अपने आपको जिम्मेदार नहीं मानूंगा। खिलाफतके सवालपर मैं वचन-भंगके किसी कृत्यका भागीदार नहीं बनना चाहता। श्री लॉयड जॉर्जकी अहम घोषणा लगभग पूरे तौरपर भारतीय मुसलमानोंके पक्षका ही समर्थन करती है और जब उनके धर्म-शास्त्र भी उस मामलेका समर्थन करते हैं तो वह अकाट्य हो जाता है। इसके अलावा यह कहना गलत है कि मैंने "अपना गठबन्धन मौजूदा अराजकतावादी तत्त्वोंमें से एकके साथ कर लिया है," या मैंने "इस्तम्बूलकी सरकारकी क्रूर और अन्यायपूर्ण निरंकुशताको मानव जातिके हितोंसे अधिक महत्त्व देनेके लिए ही इस गलत ढंगके आन्दोलनको शुरू किया है।" पूरी मुस्लिम माँगमें कहीं भी इस्तम्बूल सरकारकी तथाकथित निरंकुशता-को बनाये रखनेका कोई आग्रह नहीं है। वरन् इसके विपरीत मुसलमानोंने उस सरकार-से गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यकोंके संरक्षणकी पूरी जिम्मेदारीका आश्वासन लेनेका सिद्धान्त स्वीकार किया है। मैं नहीं जानता कि आर्मीनिया और सीरियाकी परिस्थितिको कहाँ-तक अराजकतापूर्ण माना जा सकता है और टर्कीकी सरकारको उसके लिए कहाँतक जिम्मेदार माना जा सकता है। मुझे बहुत सन्देह है कि इन क्षेत्रोंसे आनेवाले समा-चारोंमें बहुत अतिशयोक्ति है और यूरोपीय शक्तियाँ खुद एक तरहसे आर्मीनिया और सीरियामें जो भी कुशासन है उसके लिए जिम्मेदार हैं। परन्तु टर्कीमें हो या कहीं और, मैं अराजकताका समर्थन नहीं कर सकता। मित्र-राष्ट्र उस अराजकताको बड़ी आसानीसे अन्य तरीकों और साधनोंसे भी खत्म कर सकते हैं; उसके लिए टर्की साम्राज्यको समाप्त कर देना या उसके टुकड़े करना या उसे कमजोर बनाना-ही मात्र साधन नहीं है। मित्र-राष्ट्रोंके सामने कोई बिलकुल ही नई परिस्थिति नहीं है। यदि टर्कीका विभाजन करना था, तो युद्ध शुरू होनेसे पहले ही स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिए थी। तब वादा-खिलाफीका कोई सवाल न उठता। वैसे ही किसी भी

भारतीय मुसलमानको ब्रिटिश मन्त्रियोंके वादोंपर कोई विश्वास नहीं है। उसकी राय-में टर्कीके खिलाफ उठनेवाली आवाज इस्लामके खिलाफ ईसाइयतकी आवाज है, जिसका नेता इंग्लैंड है। श्री मुहम्मद अलीका हालमें मिला तार इस धारणाको बल देता है, क्योंकि उसमें वे लिखते हैं कि मेरे शिष्ट मण्डलको इंग्लैंडके विपरीत फ्रांसमें फ्रांसीसी सरकार व जनता दोनोंका समर्थन मिल रहा है।

इस प्रकार यदि यह बात सच है, और मैं मानता हूँ कि सच है, कि भारतीय मुसलमानोंका यह उद्देश्य न्यायसंगत और धर्म-शास्त्रोंसे समर्थित है, तब हिन्दुओंका उन्हें पूर्ण समर्थन न देना भाई-चारेके कर्त्तव्यसे कायरतापूर्वक पलायन करना होगा और वे अपने देशके मुसलमान भाइयोंसे कोई सौहार्द पानेके हकसे वंचित हो जायेंगे। इसलिए जनताके एक सेवकके नाते यदि मैं भारतीय मुसलमानोंको उनके धार्मिक विश्वासके अनुसार खिलाफत कायम रखनेके संघर्षमें साथ न दूँ तो मैं जनसेवक होनेका जो दावा करता हूँ उसके अयोग्य हो जाऊँगा। मैं विश्वास करता हूँ कि उनका समर्थन करके मैं साम्राज्यकी सेवा कर रहा हूँ क्योंकि अपने मुसलमान देशवासियोंको उनकी भावनाएँ अनुशासित रूपसे प्रकट करनेमें मदद देनेसे आन्दोलनको पूर्णतः व्यवस्थित और सफल बनाना भी सम्भव हो जाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-४-१९२०

१३५. असहयोग

'टाइम्स ऑफ इंडिया' के एक लेखक, उग्र अद्भुत पत्रके सम्पादक और श्रीमती बेसेंट, इन सभीने खिलाफत आन्दोलनके सिलसिलेमें जिस असहयोगकी बात सोची गई है, उसकी अपने-अपने तरीकेसे निन्दा की है। इन तीनोंके ही लेखोंमें स्वभावतः कई प्रासंगिक प्रश्नोंपर विचार किया गया है; उन्हें तो मैं फिलहाल छोड़े देता हूँ; लेकिन इन लेखकोंने जो दो गम्भीर आपत्तियाँ उठाई हैं, उनका उत्तर देना चाहता हूँ। यदि ये आपत्तियाँ उग्र शब्दोंमें व्यक्त की गई होतीं तो इनपर उतना अधिक विचार करनेकी जरूरत न होती; किन्तु ये जिस तरह संयत शब्दोंमें व्यक्त की गई हैं उसके कारण ये बहुत अधिक विचारणीय हो जाती हैं। लेखकोंका खयाल है कि असहयोग करनेपर हिंसासे बचना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के सम्पादकीयमें कहा गया है कि दरअसल तो बहिष्कार आरम्भ भी हो गया है, क्योंकि कलकत्ता और दिल्लीमें बहिष्कारका आश्रय लिया गया है। अब मुझे भय है कि एक हदतक तो बहिष्कारसे नहीं ही बचा जा सकता। मुझे याद है कि दक्षिण आफ्रिकामें अनाक्रामक प्रतिरोधकी प्रारम्भिक स्थितिमें जो लोग मैदान छोड़कर हट गये थे, उनका बहिष्कार किया गया था। बहिष्कार हिंसात्मक है या शान्तिपूर्ण, यह इस बातपर निर्भर करता है कि वह किस तरीकेसे

किया जाता है। मगर किसी धार्मिक गोष्ठीमें लोग किसी ऐसे पुजारीके साथ मिलकर प्रार्थना-गीत गानेसे इनकार कर दें जिसे अपनी चारित्रिक प्रतिष्ठासे अधिक अपने पदका ही खयाल हो तो इसमें कोई हर्ज नहीं। किन्तु ऐसा बहिष्कार हिंसात्मक माना जायेगा जिसमें अपमान, व्यंग्य-आक्षेप या गाली-गलौजके द्वारा किसी व्यक्तिका जीवन असह्य बना दिया जाये। असली खतरा तो इसमें है कि लोग अधीर होकर और प्रतिशोधकी भावनासे असहयोगका सहारा लेने लगें। उदाहरणके लिए अगर एकाएक कर देना बन्द कर दिया जाये या सैनिकोंपर हथियार डालनेके लिए दबाव डाला जाने लगे तो ऐसा हो सकता है। किन्तु मुझे किसी दुष्परिणामकी आशंका नहीं है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि प्रत्येक उत्तरदायी मुसलमान समझता है कि अगर असहयोग सफल बनाना है तो उसमें हिंसा बिलकुल न होनी चाहिए। दूसरी आपत्ति यह उठाई गई है कि जो लोग नौकरी छोड़ देंगे उनके सामने भूखों मरनेकी नौबत आ सकती है। यह एक सम्भावना-मात्र है और ऐसी सम्भावना जिसके सच होनेकी कम ही आशंका रखनी चाहिए। क्योंकि समिति निश्चय ही ऐसे लोगोंके लिए कोई समुचित व्यवस्था करेगी जो एकाएक रोजगारसे वंचित हो सकते हों। किन्तु मैं इस कठिन समस्याके सभी पहलुओंपर किसी आगामी अंकमें अधिक विस्तारसे विचार करना चाहता हूँ, और आशा करता हूँ कि उसमें दिखा सकूँगा कि यदि भारतीय मुसलमानोंकी भावनाओंका खयाल रखना है तो सरकार का निर्णय प्रतिकूल होनेपर उसका एकमात्र उपाय असहयोग ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८–४–१९२०

१३६. खद्दरका उपयोग

आज जब कि स्वदेशी आन्दोलनकी दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति हो रही है और इसमें मुसलमान भी हिन्दुओंके समान ही उत्साहपूर्वक भाग ले रहे हैं, यह विचार करना उपयुक्त ही है कि स्वदेशीको प्रोत्साहन देनेका सर्वोत्तम उपाय क्या है। स्वदेशीका "क ख ग" जाननेवाले व्यक्तिको भी यह मालूम है कि हम अपनी आवश्यकता पूरी करनेके लिए पर्याप्त कपड़ा तैयार नहीं करते। इसलिए यदि हम मिलके बने कपड़ेका उपयोग करके संतोष कर लेते हैं तो इसका सीधा-सादा मतलब यह हुआ कि हम गरीब लोगोंको उनकी जरूरतकी चीजोंसे वंचित करते हैं, या कमसे-कम मिलके बने कपड़ेकी कीमत ही बढ़ा देते हैं। इसलिए स्वदेशीको प्रोत्साहन देनेका एकमात्र उपाय है ज्यादा कपड़ा तैयार करना। ऐसा तो नहीं हो सकता कि हमारे देशमें सहसा मिलोंकी भरमार हो जाये। इसलिए हमें हाथ-कते सूतका और हाथ-बुने कपड़ेका सहारा लेना चाहिए। सूत जितना महँगा अब है उतना महँगा शायद पहले कभी नहीं रहा। मिलें सूतसे भारी मुनाफे कमा रही हैं। इसलिए जो व्यक्ति एक गज सूत भी कातता है, वह सूतके उत्पादनमें हाथ बँटाकर उसे सस्ता बनाता है।

तब सवाल यह उठता है कि सूत कैसे कातें और कपड़ा कैसे बुनें। मैं अपने निजी अनुभवसे जानता हूँ कि यदि सामान्य स्तरके कपड़ेको पहनने लायक मान लिया जाये तो हाथ-कते सूत और हाथ-बुने कपड़ेसे बाजारको पाटा जा सकता है। यह कपड़ा उत्तर भारतमें खद्दर कहलाता है और बम्बई अहातेमें खादी। हम सरलादेवीके[1] कृतज्ञ हैं चूँकि उन्होंने दिखा दिया है कि खादीकी साड़ी बनाना भी सम्भव है। उन्होंने सोचा कि वे राष्ट्रीय सप्ताहमें खद्दरकी साड़ी और खद्दरका ब्लाउज़ पहनकर अपनी भावनाको अधिकसे-अधिक अच्छी तरह प्रकट कर सकती हैं।[2] और उन्होंने वैसा ही किया भी। उन्होंने खद्दरकी साड़ी पहनकर भोजोंमें भाग लिया। लोगोंको यह बात असम्भव प्रतीत होती थी। वे सोचते थे कि जिस स्त्रीने बढ़ियासे-बढ़िया रेशमी वस्त्र या बारीकसे-बारीक ढाकेकी मलमलके सिवा दूसरा कोई कपड़ा कभी नहीं पहना वह सम्भवत: भारी खद्दरका बोझ नहीं सह सकती। लेकिन उन्होंने ये सारी आशंकाएँ असत्य सिद्ध कर दीं। इसके अतिरिक्त वे खद्दरकी साड़ीमें भी उतनी ही फुर्तीली और सुन्दर लग रही थीं, जितनी अपनी बढ़िया चमकीली रेशमी साड़ियोंमें लगती थीं। उनके महान् मातुल सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने जब उन्हें खद्दरकी साड़ी पहने देखा तो उन्होंने उन्हें कुछ ऐसे शब्दोंमें आशीर्वाद दिया: "अगर इस साड़ीमें तुम्हें कुछ अटपटापन नहीं लगता तो तुम इसे पहनकर कहीं भी और किसी भी भोजमें जा सकती हो; तुम्हें यह खूब जँचेगी।" इस पुनीत घटनाका वर्णन मैं यह दिखानेके लिए कर रहा हूँ कि भारतके दो अत्यन्त कलाप्रिय व्यक्तियोंको खद्दरमें कुछ भी कलाहीनता नहीं मिली। मैं इसी कपड़ेको भारतके सुसंस्कृत परिवारोंमें दाखिल कराना चाहता हूँ, क्योंकि प्रारम्भिक अवस्थामें स्वदेशी आन्दोलनकी तात्कालिक सफलता इसीके उपयोगपर निर्भर है।

मेरी दृष्टिमें तो खद्दरके साथ जैसे विचारों और बातोंका सम्बन्ध है उनके कारण यह हर अवस्थामें ढाकाकी बारीकसे-बारीक मलमलसे अधिक कलात्मक है। आज खद्दर उन लोगोंका पेट भर रहा है जो भूखों मर रहे थे। यह उन स्त्रियोंका पेट भर रहा है जिन्होंने लज्जाजनक जीवनका त्याग करके पुन: अच्छे जीवनको अपनाया है और उनका भी जो काम करनेके लिए बाहर नहीं जाना चाहती थीं तथा बेकार रहकर आपसमें लड़ती-झगड़ती रहती थीं। इसलिए खद्दरमें अपना एक चैतन्य है। इसकी अपनी एक विशेषता है। खद्दर पहननेवाला व्यक्ति बता सकता है कि इसके निर्माणमें इसे किन प्रक्रियाओंसे गुजरना पड़ा है और कौन-सी प्रक्रिया किस व्यक्तिके हाथों सम्पन्न हुई है। यदि हमारी रुचि बिगड़ न गई होती तो हम गर्मीमें शरीरसे चिपक जानेवाले बरेसी (कैलिको) की अपेक्षा खद्दरको अधिक पसन्द करते। जो लोग अब खादीका उपयोग कर रहे हैं वे ही यह कहें कि मैं सही कह रहा हूँ या गलत।

१. सरलादेवी चौधरानी।

२. गांधीजीने उनके कहनेपर उनके लिए विशेष रूपसे खद्दरकी एक साड़ी और एक ब्लाउज बनवा दिया था।

यह खद्दर इस समय सत्याग्रह आश्रममें इकट्ठा किया जा रहा है। और मैंने यह इतनी बड़ी मात्रामें इकट्ठा कर लिया है कि मुझे जितना स्थान उपलब्ध है उसमें वह समाता नहीं है। इसलिए मैं 'यंग इंडिया' के पाठकोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने घरोंमें खद्दरका उपयोग आरम्भ करके मेरी सहायता करें।

यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि आश्रम इस खादीसे कोई लाभ नहीं कमाता। यदि कुछ थोड़ी-बहुत बचत हो भी जाती है तो वह प्रारम्भिक अवस्थामें हुए घाटेको पूरा करनेमें लगाई जाती है — या उसका उपयोग उन बाहरी जिलोंसे प्राप्त खद्दरके भाव कम करनेमें किया जाता है, जहाँ और जगहोंकी अपेक्षा इसका उत्पादन-व्यय अधिक बैठता है, क्योंकि उत्पादन-व्यय सर्वत्र एक-सा ही नहीं होता। बुनकरोंको अपने मूल धंधेको फिर शुरू करनेके लिए राजी करनेके उद्देश्यसे मुझे उन्हें उनके गुजारेके लायक फिलहाल काफी पैसा देना होता है।

यदि कोई खद्दरका उपयोग अपने ऊपरी पहनावेके लिए न करना चाहे तो उसका उपयोग भीतरी पहनावेके लिए किया जा सकता है। किन्तु यदि कोई अपने निजी पहनावेके लिए इसका उपयोग न भी करना चाहे तो वह टोपियाँ, तौलिये, झाड़न, चायके लिए मेजपोश, बस्ते, चद्दरें, बिस्तरे, होल्डॉल, नमदे, मसनद और मेज-कुर्सी आदिके कवर बनानेके लिए इसका उपयोग कर सकता है। मैं इसे स्वदेशी ढंगसे लाल रंगमें रँगवा रहा हूँ। इससे यह अधिक टिकाऊ हो जाता है और यदि दरियाँ या गद्दियाँ या सोफे आदिके छादन (कवर) बनानेके लिए इसका उपयोग किया जाये तो यह कम मैला दिखता है। जो लोग गरीबों और उपेक्षितोंके इस उद्योगको सहारा देना चाहते हैं उन्हें मैं सलाह दूँगा कि वे मैनेजर, खद्दर विभाग, सत्याग्रह आश्रम, साबरमतीसे पत्र-व्यवहार करके खद्दर मँगा लें।

दरें

	दर प्रतिगज रु० आ० पा०
मिलके सूतके ताने और बानेकी	
खादी दो सूती ताना-बाना	
चौड़ाई २५ इंच	०– ९–०
चौड़ाई २७ इंच	०– ९–६
चौड़ाई ३० इंच	०–१०–०
मिलके सूतके ताने और हाथके सूतके बानेकी खादी	
चौड़ाई २७ इंच, २० नम्बर का ताना	०– ९–६
८ नम्बरका ताना	०– ८–०
चौड़ाई २४ इंच, २० नम्बरका ताना	०– ८–०
धारीदार खादी	०– ८–६
लाल खादी	०– ८–६

हाथ-कते ताने और बानेकी खादी

चौड़ाई २४ इंच	०– ८–०
चौड़ाई २७ इंच	०– ८–६

धुली खादीके लिए उपर्युक्त दरोंमें ०–०–६ और जोड़ लें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८–४–१९२०

१३७. पत्र : मगनलाल गांधीको

बम्बई

वैशाख सुदी १० [२८ अप्रैल, १९२०][1]

चि० मगनलाल,

तुम्हारे पाससे चले आनेके बाद मुझे बड़ी परेशानी हुई। तुमने उस दिन एकाएक ही वे निराशा-भरे शब्द कहे। इनको तुम अबतक किस तरह भीतर-ही-भीतर सँजोये रहे? तुम्हारा काम तो, जब तुम्हें निराशाका अनुभव हो तभी उसे मुझपर प्रकट करना है। अब तो मैं यही चाहता हूँ कि तुम हृदय खोलकर अपने मनकी सब बातें मुझसे कह दो। तुम्हारे लिखनेसे मैं उकताऊँगा नहीं। तुम नहीं लिखोगे तो मुझे दुःख होगा। इस बीच, जो श्लोक निराशाके समय मेरी मदद करता है, मैं तुम्हें लिखकर भेज रहा हूँ :

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।[2]

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८४) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

१. गांधीजी २७ अप्रैलको अहमदाबादसे बम्बईके लिए रवाना हुए थे। यह पत्र सम्भवतः उन्होंने २८ तारीखको लिखा था जिस दिन वैशाख सुदी ११ पड़ती थी। सुदी १० क्षय तिथि थी।

२. गीता २–१४।

१३८. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सैन रेमो सम्मेलनके[2] निर्णयके सम्बन्धमें जो तार आया है वह बहुत ही क्षोभ-जनक है। इस निर्णयसे मुसलमानोंके मनमें अशान्ति पैदा होना अवश्यम्भावी है। फिर भी मैं आशा करता हूँ कि मुस्लिम नेता इससे न तो हतोत्साह होंगे और न नाराज ही। इस निर्णयके साथ जिन बातोंका सम्बन्ध है वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि अधिकसे-अधिक आत्मसंयम बरता जाये। मेरा अब भी यही विश्वास है कि असहयोग ही वह एकमात्र मार्ग है, जिसके द्वारा भारत ठीक अपने हृदयपर किये गये इस गहरे आघातकी पीड़ाको संयत रूपमें व्यक्त कर सकता है। मैं जानता हूँ कि यह मार्ग बहुत ही कठिन और कंटकाकीर्ण है, परन्तु साथ ही मुझे यह विश्वास भी है कि इस रास्तेपर चलकर अपने पशु-बलके मदमें चूर मित्र-राष्ट्रोंसे न्याय प्राप्त किया जा सकता है। मैं जानता हूँ कि हिंसाका उत्तर हिंसासे देनेकी इच्छाको दबाना प्रायः असम्भव है, परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हमने तनिक भी हिंसा की तो वह न केवल और भी उग्ररूप धारण करके उलटे हमें ही अपना शिकार बनायेगी, वरन् इससे इस्लामकी वर्तमान सारी आशाएँ चूर-चूर हो जायेंगी। इसके विपरीत अगर पूरी शान्तिके साथ असहयोग किया जाये तो निस्सन्देह मित्र-शक्तियोंको, टर्कीके सम्बन्धमें वे ऐसा जो भी निर्णय करें जिसे अन्यायपूर्ण और महामहिमके मन्त्रियों द्वारा दिये गये गम्भीर वचनोंके विरुद्ध सिद्ध किया जा सके, उसमें रद्दोबदल करनेको मजबूर होना पड़ेगा। जो लोग असहयोगमें विश्वास नहीं करते उनसे मेरा यही नम्र निवेदन है कि 'यदि आप असहयोगके इस कार्यक्रमको विफल करनेमें सफल हो गये और इसके बदले कोई ऐसा ठोस और निश्चित उपाय नहीं खोज पाये, जो विरोध-प्रदर्शन मात्र न होकर इतना अधिक कारगर हो कि उसके बलपर इच्छित फल प्राप्त हो सके, तो आप केवल हिंसाके विस्फोटको ही बढ़ावा देंगे।'

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २९–४–१९२०

१. टर्कीके साथ सन्धिकी शर्तोंपर यह वक्तव्य **टाइम्स ऑफ इंडिया, २९–४–१९२०** और **यंग इंडिया, ५–५–१९२०** में भी प्रकाशित हुआ था।

२. टर्कीके साथ सन्धिकी शर्तोंको अन्तिम रूप देनेके लिए २६ अप्रैल, १९२० को बुलाया गया मित्र-राष्ट्रोंका सम्मेलन। इसमें तय पाया गया था कि स्मरना और थ्रेसके इलाके ग्रीसवालोंको दे दिये जायें और राष्ट्रसंघकी ओरसे मेसोपोटामिया और फिलस्तीनके शासनकी जिम्मेदारी इंग्लैंड सँभाले तथा सीरिया और साइलेशियाके शासनका दायित्व फ्रांस सँभाले। देखिए परिशिष्ट १।

१३९. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

२९ अप्रैल, १९२०

यह लिखते हुए मैं दीपकको बालकृष्णके मधुर सितारके साथ गाते सुन रहा हूँ। बालकृष्ण मुझे देवताओंसे मिली महान् भेंट है। वह फूलकी तरह सरल है। मेरी देख-भाल वह माताकी तरह करता है।

क्या तुमने खिलाफतके बारेमें ए० पी०[1] को दिया गया मेरा सन्देश पढ़ा? यह सोचकर कि शायद तुम्हें 'यंग इंडिया' की प्रति न मिली हो, मैं एक प्रति भेज रहा हूँ। उसमें खादीपर मेरा लेख है। उसे जरूर पढ़ो।

कलवाला भजन नीचे दे रहा हूँ:

मोरी लागी लगन गुरु-चरननकी।
चरन बिना मुझे कछु नहीं भावै।
झूठ माया सब सपननकी।। मोरी०
भवसागर सब सूख गया है।
फिकर नहीं मुझे तरननकी।। मोरी०
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर।
उलट भई मोरे नयननकी।। मोरी०

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१४०. पत्र : मगनलाल गांधीको

सिंहगढ़
वैशाख सुदी १२ [२९ अप्रैल, १९२०][2]

चि० मगनलाल,

प्यासा जिस तरह पानीकी बाट जोहता है उसी तरह मैं तुम्हारे पत्रकी राह देख रहा हूँ। तुम्हें निराश देखता हूँ तो मेरा हृदय रो उठता है; क्योंकि अपनी आशाओंका महल मैंने तुम्हारे बलपर ही खड़ा किया है। मेरी अभिलाषा है कि तुम अपना एक

१. एसोसिएटेड प्रेस। यहाँ गांधीजीका तात्पर्य शायद २९ अप्रैल, १९२० को छपे अखबारोंको दिये गये उनके वक्तव्यसे है; देखिए पिछला शीर्षक।

२. गांधीजी स्वास्थ्य लाभके लिए १९२० में सिंहगढ़ गये थे। उस वर्ष वैशाख सुदी १२, २९ अप्रैलको पड़ी थी।

भी मनोभाव मुझसे न छिपाओ, तभी तुम्हारी भक्ति-भावनाको मैं पूरी तरह प्राप्त कर सकता हूँ। इसलिए इस विषयमें तो मुझे अवश्य ही आश्वस्त करो। भाई नरहरिके किस्सेसे तो तुम परिचित ही होगे। उन्होंने कुछ बात अपने मनमें ही रखी और इस तरह उन्होंने अनजाने ही मेरे प्रति अन्याय किया। यह बात तुमपर तनिक भी लागू नहीं होती। घटना तो वह भी तुच्छ थी; लेकिन उससे हम सब बहुत-कुछ सीख सकते हैं।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८५) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी

१४१. पत्र: अब्दुल बारीको

सिंहगढ़
३० अप्रैल, १९२०

प्रिय मौलाना साहब,

मैं फैजाबाद नहीं आया, इसके लिए आपसे माफी चाहता हूँ। अगर आता तो यह मेरी सेहतके लिए बुरा साबित होता। और कुछ नहीं तो अगली लड़ाईके लिए ही मैं अपनी सेहत ठीक रखना चाहता हूँ। लगता है मेरा बायाँ पैर काम नहीं कर रहा है। अगर मुझे यहाँ कुछ दिनोंतक रहने दिया जाये तो मुझे आशा है कि यह यहीं ठीक हो जायेगा। हमारे साथियोंसे भी मेरी लाचारीका इजहार कर दीजिएगा।

इंग्लैंड जानेके बारेमें तो आपने सब-कुछ सुन ही लिया होगा। दोस्तोंकी खास ख्वाहिशके बिना मैं वहाँ जाना नहीं चाहता था और ऐसी किसी ख्वाहिशकी कोई साफ निशानी दिखाई नहीं दी, इसलिए मैंने श्री मॉण्टेग्युको तार[1] दे दिया है। अब उनके जवाबकी राह देख रहा हूँ। मैं यह बहुत जरूरी समझता हूँ कि मौलाना अबुल कलाम आजाद और शौकत अली बम्बईमें ही रहें ताकि उनसे बराबर सलाह-मशविरा किया जा सके।[2] संगठनका काम फौरन शुरू हो जाना चाहिए। बदकिस्मतीसे मौलाना अबुल कलाम आजाद अभीतक बीमार हैं। मैंने उन्हें जितनी जल्दी हो सके, बम्बई आ जानेको कह दिया है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. देखिए "तार: भारत-मन्त्रीको", १३-३-१९२० के बाद।

२. क्योंकि गांधीजीके साथ वे भी उस उप-समितिके सदस्य थे जिसे अखिल भारतीय खिलाफत समितिने यह तय करनेके लिए नियुक्त किया था कि खिलाफतके सवालपर आन्दोलन कब प्रारम्भ किया जाये।

१४२. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

सिंहगढ़
३० अप्रैल, १९२०

पूनासे सिंहगढ़ रवाना होनेसे ठीक पहले आपको पेन्सिलसे लिखा एक पत्र[1] भेजा है। डाक्टरने [मुझसे कहा कि मेरा] स्वास्थ्य इतना खराब हो गया है कि मुझे पैदल ऊपर चढ़नेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। लेकिन मुझपर कुछ ऐसा नशा छाया हुआ था कि मैंने सोचा, मैं यह कर सकूँगा। निदान महादेव, दीपक और मैंने चढ़ाई शुरू की। मगर तुम्हें यह जानकर दुःख होगा कि हम आधे फर्लांग भी नहीं चढ़ पाये होंगे कि मेरी बाईं जाँघमें असह्य पीड़ा होने लगी और फलतः मुझे कोशिश छोड़ देनी पड़ी। मैं बड़ा शर्मिन्दा हुआ और यह जानकर बेहद दुखी भी कि मेरी ताकत इतनी ज्यादा घट गई है। लेकिन इस बुरी हालतमें भी मुझे प्रसन्न ही रहना चाहिए। और मैं प्रयत्न करूँगा कि प्रसन्न रहूँ।

अभी-अभी मैं दो सपने देखकर उठा हूँ — एक तुम्हारे बारेमें था और दूसरा खिलाफतके बारेमें। तुम दो ही दिनमें लौट आईं, इससे मुझे बड़ी खुशी हुई। मैंने पूछा कि 'इतनी जल्दी कैसे आ गईं?'[2] तुमने कहा, 'यह तो पंडितजीकी युक्ति थी मुझे अपने पास बुला लेनेकी। जगदीशकी[3] शादी अब भी बहुत दूर ही है। इसलिए मैं वापस आ गई।' जगनेपर पता चला कि यह तो एक स्वप्न था। फिर मैं निराश होकर सो गया। लेकिन अब अपने-आपको मैंने मुसलमानोंकी एक बड़ी मजलिसके सामने पाया। एक वक्ता आम भाषाके रूपमें हिन्दुस्तानीके उपयोगके बारेमें बोल रहा था। उसने बताया कि बगदादी लोग जो बोली बोलते हैं, वह भी हिन्दुस्तानीकी ही एक शाखा है और इसलिए उसका अध्ययन करना चाहिए। श्रोतृ-समूहमें से किसी दूसरे व्यक्तिने ऐसी बातोंमें हिन्दुस्तानसे बाहर जानेका विरोध किया। उस समय अब्दुल बारी साहब भी मेरे साथ थे। उन्होंने उस वक्ताका पक्ष लिया। परन्तु श्रोतागण इतने गुस्सेमें आकर विरोध करने लगे कि वे कुछ बोल न सके। बारी साहबको उसके साथ लोगोंका ऐसा व्यवहार करना अच्छा नहीं लगा। अब मैं लोगोंको इस प्रश्नके पक्ष और विपक्षकी सारी बातें समझा रहा था। प्रसंगवश बात युक्तियों और उपायोंपर आ गई। मैंने किसी भी कीमतपर सत्यपर डटे रहनेकी आवश्यकतापर जोर दिया। इतनेमें सभामें कुछ गड़बड़ मच गई और मैं जग गया। जगनेके तुरन्त बाद मैं यह पत्र लिखने बैठ गया।

१. गांधीजी सम्भवतः अपने तारीख २९-४-१९२० के पत्रका उल्लेख कर रहे हैं। वे उसी दिन पूनासे सिंहगढ़के लिए रवाना हुए थे।

२. पंडित रामभजदत्त चौधरी।

३. सरलादेवीका ज्येष्ठ पुत्र।

दीपक महादेवके साथ कुरसीके बिना ही चढ़ गया। इसके कारण उसे कोई हानि नहीं हुई। चलते वक्त उसने दूध पी लिया था और ऊपर पहुँचकर केक खाया। अब वह गहरी नींद सो रहा है। प्रभुदास पहलेसे बहुत अच्छा और चुस्त दीख रहा है। बालकृष्ण हमारी अगवानी करने आधी राहतक आया था। रेवाशंकरभाई[1] कल आनेवाले हैं। आइस डाक्टर भी अभी-अभी मेरे लिए दो बकरियाँ लेकर यहाँ आ गये हैं। खबर है कि तिलक महाराज भी आज शामको आनेवाले हैं। उनके साथके अन्य लोग तो उनके बँगलेमें पहलेसे ही मौजूद हैं।

बकरियाँ अब इधर चली आ रही हैं, उनकी मीठी आवाज मेरे कानोंमें पड़ रही है। अगर शादी निपट गई हो या मुल्तवी हो गई हो, तो मैं आशा करता हूँ कि तुम भी मण्डलीमें शामिल होकर इसे अपने संगीत तथा हास्यसे मुखरित करोगी।

इस तरह तो मैं लिखता ही चला जाऊँगा। लेकिन अब बन्द करना चाहिए। यह भय तो नहीं है कि तुम उकता जाओगी, लेकिन मुझे और काम भी करने हैं।

हाँ, अभी मुझे एल० गिरधारीलालके पोस्ट-कार्डकी याद आ आई, जिसमें उन्होंने उस कंगनकी माँग की है जो तुमने बाग-फंडके[2] लिए देनेका वादा किया था। मेरा खयाल है वह तुमको कल ही भेज दिया गया है। जो भी हो, मैं तुम्हें उसकी याद दिला देता हूँ। मैंने समझा था कि तुमने अपना कंगन वहीं, उसी समय दे दिया था।

मेरे पैरके बारेमें तुम फिक्र न करना। यहाँकी सुन्दर आबोहवामें मैं बिलकुल ठीक हो जाऊँगा। दीपककी भी फिक्र मत करना। हम सब उसकी पूरी देख-भाल करेंगे। शंकरलाल[3] उसे मोटरमें कोलाबा सैर कराने ले गये थे। उन्होंने मुझसे उसे सिनेमा ले जानेके लिए भी पूछा था लेकिन मैंने कह दिया कि मैं इसकी जिम्मेदारी नहीं लूँगा। तुम कहो तो उसे फिर कभी सिनेमा भेज दूँगा। उस समय मैंने इसके बजाय कोलाबा या विक्टोरिया गार्डनकी सैर करानेको कहा। इसीलिए ले गये थे। महादेव और दीपक दोनोंने शंकरलालके साथ ही खाना खाया। दीपकके बारेमें जो-कुछ किया वह ठीक तो था न?

सस्नेह,

तुम्हारा,
विधि-प्रणेता

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. बम्बईके रेवाशंकर झवेरी, व्यवसायी और गांधीजीके बहुत बड़े प्रशंसक।
२. जलियाँवाला बागकी खरीदारीके सिलसिलेमें एकत्र किया जानेवाला चन्दा।
३. शंकरलाल बैंकर।

१४३. पत्र : गिलिस्पीको[1]

[सिंहगढ़]
३० अप्रैल, १९२०

ईसाई-धर्ममें प्रार्थनाको जो बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है, वह मुझे मालूम है। किन्तु मेरी निजी धारणा यह है कि सभी प्रार्थनाओंकी तरह ईसाइयोंकी प्रार्थना भी केवल एक ढर्रा-भर बनकर रह गई है और इसमें भी अक्सर स्वार्थ हुआ करता है। हिन्दू-प्रार्थना-विधिमें से इन्हीं दो बुराइयोंको दूर करनेकी मैं अपने-भर पूरी कोशिश कर रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१४४. पत्र : श्रीमती जिन्नाको[2]

३० अप्रैल, १९२०

जिन्ना साहबको मेरी याद दिला दीजिए एवं उन्हें हिन्दुस्तानी या गुजराती सीखनेके लिए राजी कीजिए। आपकी जगह मैं होऊँ तो उनके साथ हिन्दुस्तानी या गुजरातीमें ही बोलना शुरू कर दूँ। इसमें ऐसा कोई खतरा नहीं है कि आप अंग्रेजी भूल जायेंगी या दोनों एक दूसरेकी बात समझ न पायेंगे। है ऐसा कोई खतरा? क्या आप यह कर सकेंगी? और मैं तो आपका मेरे प्रति जो स्नेह है उसके कारण भी आपसे ऐसा करनेका अनुरोध करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. अहमदाबादवाले रेवरैंड गिलिस्पी।
२. मुहम्मद अली जिन्नाकी पत्नी।

१४५. पत्र : लाजरसको[1]

सिंहगढ़
३० अप्रैल, १९२०

मैंने अपने दो पुत्र[2] दक्षिण आफ्रिकाको दे दिये हैं। वे जबतक चाहें वहाँ रह सकते हैं। इससे अधिक देनेकी मेरी शक्ति नहीं है। वहाँ तो जितने आदमी मिल सकें, उतनेकी जरूरत है, और इसी प्रकार पैसेकी भी।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१४६. पत्र : निर्मलाको[3]

३० अप्रैल, १९२०

तुम्हारे साथ बातचीत करनेके बाद इन दिनों मेरे मनमें तुम्हारे बारेमें बहुत विचार चलते रहते हैं। मेरी समझमें यदि तुम चाहो तो बहुत-कुछ कर सकती हो। लेकिन तुम्हारा मन स्थिर होना चाहिए। जो कुछ तुम सुनो अथवा पढ़ो उसपर तुम्हें विचारपूर्वक अमल करना चाहिए। तुम्हारी विचारशक्ति मन्द है, यह बात मैं तुम्हारी नोटबुकसे समझ पाया हूँ। अब मेरी सलाह यह है कि तुम जितना पढ़ो उसका अर्थ समझकर उसपर विचार करो। और अच्छा लगे तो उसपर अमल करो। ध्यानपूर्वक 'नवजीवन' पढ़ो। गीताजीके प्रत्येक श्लोकके अर्थपर विचार करो, तभी तुम आगे बढ़ सकोगी। आश्रममें ही मरना है — ऐसा निश्चय करके आश्रमके प्रत्येक कार्यको समझ लो। आश्रमके जीवनमें तुम्हारी सेवाओंका अच्छेसे-अच्छा उपयोग कहाँ हो सकता है, यह देखकर तदनुरूप काम करो। चि० मगनलालसे मिलती रहना और उससे सब जानकारी प्राप्त कर लेना। उससे काम माँगना। मैं नादान हूँ, दूसरोंके साथ बातचीत कैसे करूँ — यह सोचकर तुम अपनी कोठरीमें ही बन्द मत रहो; बल्कि यह मानकर कि जबतक मेरा हृदय निर्मल है तबतक मैं सबके साथ मिल-जुल सकती

१. दक्षिण आफ्रिकाके लाजरस गैब्रियल।

२. मणिलाल और रामदास, दोनों गांधीजीके १९१४ में दक्षिण आफ्रिकासे भारत आ जानेके बादसे फीनिक्समें **इंडियन ओपिनियन**की व्यवस्था और देखरेख कर रहे थे।

३. गांधीजीकी बहन रलियातबेनके पुत्र गोकुलदासकी विधवा पत्नी। गांधीजीकी इच्छापर वे आश्रममें रहने लगी थीं। देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २८९-९०।

हूँ; सब भाई हैं; ऐसा समझकर सबसे शिक्षा लो। सबकी सेवा करना। उचित समयपर मैं तुम्हें बम्बई ले जाऊँगा। अपनी लिखावटको सुन्दर बनाना। अक्षरोंको इतना सुन्दर बनाना कि वे छपे हुए लगें। मुझे नियमपूर्वक स्याहीसे साफ अक्षरोंमें लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

१४७. पत्र : मंगलदास पारेखको[1]

सिंहगढ़
३० अप्रैल, [१९२०][2]

सुज्ञ भाईश्री मंगलदासजी,

आपका पत्र मिला। जिस समय यह मिला उस समय दोपहरके तीन बजे थे। इसका उत्तर तुरन्त ही लिख रहा हूँ। तथापि पहली तारीखको तो यह नहीं पहुँच पायेगा। मुझे लगता है कि आप अम्बालालभाईपर[3] अकारण ही सन्देह करते हैं। मैंने तो, जब आपसे मिला था, उसी समय आपसे कहा था कि हमने अम्बालालभाईके साथ कुछ दरें निश्चित की हैं। मैंने [उस समय] इस सम्बन्धमें ज्यादा बातचीत नहीं की क्योंकि मेरा खयाल था कि मेरे वहाँ जानेके कारणसे आप परिचित होंगे। उनके साथ हुई बातचीत आपसे कुछ छिपानी तो थी नहीं और उसी तरह आपको सूचित कर देनेके बाद उनसे सलाह-मशविरा करनेकी बातमें भी मुझे कुछ अनौचित्य न जान पड़ा। जो मिलें सलाह-मशविरा करनेको राजी थीं उनके साथ मैंने सलाह-मशविरा किया। हड़तालको जितना सीमित किया जा सके उतना किया जाये, इस बातको मैंने उचित माना और अभीतक मानता हूँ। मैं आपको इस बातका आश्वासन कैसे दिलाऊँ कि मुझे जगत्में दूसरोंसे अपनी बात मनवानेका तनिक भी लोभ नहीं है। हाँ, न्यायकी बातको मनवानेका महान् प्रयत्न करता रहता हूँ और बहुधा मैं जो करता हूँ उसमें शुद्ध न्याय ही होता है। और न्यायकी जीत तो होती ही है। इसीलिए लोग भ्रमवश यह मानने लगते हैं कि मैं उनसे अपनी बात मनवाना चाहता

१. अहमदाबादके मिल-मालिक। इन्होंने कोचरब-आश्रम स्थापित करनेमें गांधीजीको सहायता दी थी।

२. ३० अप्रैल, १९२० को गांधीजी सिंहगढ़में थे। पत्रमें मिल-मजदूरों और मिल-मालिकोंके बीच जिस झगड़ेकी चर्चा की गई है वह अप्रैल-मई, १९२० के दौरान हुआ था।

३. अम्बालाल साराभाई।

हूँ। लेकिन मुझे अधिक जाननेपर उन्हें मालूम हो जाता है कि मेरे पास 'मेरा आग्रह' जैसी कोई चीज नहीं है। मुझे न तो धनकी आकांक्षा है और न आदर-सम्मानकी ही। धनसे ऊबकर मैंने उसका त्याग किया। प्रभु मेरे मित्रोंकी मारफत मेरी आवश्यकताओंकी पूर्ति करता रहता है। सम्मान तो मुझे अपनी अन्तरात्मासे इतना भरपूर मिलता है कि मेरे पास बाहरी सम्मानके लिए कोई अवकाश ही नहीं रहता। तो फिर किस कारण मेरे मनमें अपनी बातके आग्रहका लोभ हो? हमारा दृष्टिकोण ही भिन्न है, इसलिए हममें मतभेद हो जाता है। आपकी मान्यता है कि फिलहाल ही मजदूरोंको बहुत ज्यादा मिलता है तथा उन्हें जो और दिया जायेगा उसका वे सदुपयोग नहीं करेंगे। मैं मानता हूँ इस समय उन्हें बहुत ही कम मिलता है। उनके वेतनमें जिस वृद्धिकी मैंने माँग की है[1], उससे उनकी समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जायेगी सो भी मैं नहीं मानता और उन्हें अधिक जो-कुछ मिलेगा उसका वे दुरुपयोग ही करेंगे, इसे मैं सिद्धान्त रूपमें स्वीकार नहीं करता। फलतः मैंने बम्बईमें निर्धारित अधिकसे-अधिक दरकी माँग की है और उसमें मुझे तनिक भी अन्याय दिखाई नहीं देता। मैं तो आपसे कह भी चुका हूँ कि बम्बईकी मशीनोंके पीछे जो खर्च होता है उसकी खबर अगर मुझे पहले मिली होती तो हमने जब पंच नियुक्त करनेका निश्चय किया था तब बम्बईकी दरके साथ मुकाबला करनेकी बातको मैं कभी भी स्वीकार नहीं करता। इस बातका ध्यान रखना मेरा कर्त्तव्य है कि अहमदाबादके उद्योगको तनिक भी नुकसान न हो। और मैं देख सकता हूँ कि मजदूरोंको पूरे तीस रुपये दिलवानेमें इस धर्मका पूरा-पूरा पालन होता है [उसका उल्लंघन नहीं होता]। लेकिन आप इस बातको नहीं देख पाते इसीसे मुझे दुराग्रही मानते हैं, पर मैं कैसे मानूं? मैं देखता हूँ कि हममें जो मतभेद है वह समझमें आ सकता है। आपके साथ सहमत होनेकी खातिर मैं अनेक कदम उठानेके लिए तैयार हूँ। लेकिन मजदूरोंके साथ अन्याय करके एक भी कदम भरनेको तैयार नहीं हूँ। मैंने आपको जो पत्र लिखा था उसमें अम्बालालभाईका बिलकुल भी हाथ नहीं है। मैं तो मानता हूँ कि उन्होंने आपको जो भी कहा है वह बिलकुल विशुद्ध मनसे कहा है, आपके सम्मानको हानि पहुँचानेके उद्देश्यसे नहीं किया है और यदि मुझे ऐसा जान पड़ा तो पल-भरके लिए भी उनके साथ नहीं रहूँगा। मुझे तो जैसे उनका सम्मान प्रिय है उसी तरह आपका भी। मैं तो उस कार्यमें भाग लेना चाहता हूँ जिसमें आपका कल्याण होता हो। अब भी मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि जो दरें तय हो गई हैं उन्हें आप स्वीकार करें; और आपको इस समय अनसूयाबेन और भाई शंकरलाल-जैसे निर्मल कार्यकर्त्ता मिले हैं, उनकी सहायतासे आप अहमदाबादके उद्योगको उन्नत बनायें तथा इस तरह औरोंके लिये एक उदाहरण प्रस्तुत करें।

मेरी अपनी तबीयत फिलहाल बहुत खराब है, अन्यथा सीधा आपके पास चला आता। आप ही यदि बन पड़े तो सिंहगढ़ आयें और तनिक विश्राम करें। परेशान होनेका कोई कारण नहीं है।

१. ३१ मार्चको गांधीजीने मिल-मालिकोंको लिखा था कि वे अपने मजदूरोंको कुछ रियायतें दें।

आपने जो पत्र भेजे थे, उन्हें वापस भेजता हूँ।

श्री मंगलदास पारेख
अहमदाबाद

गुजराती प्रति (एस० एन० ७०४४) की फोटो-नकलसे।

१४८. पत्र : एडा वेस्टको[1]

[सिंहगढ़]
३० अप्रैल, १९२०

प्रिय देवी,

मैं आज जहाँ पहुँचा हूँ, यह एक छोटा-सा एकान्त, ऐतिहासिक किला है।[2] आसपासका दृश्य बड़ा भव्य है और मौसम बहुत स्फूर्तिदायक तथा सुहावना। मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया है। उसीको सुधारनेके लिए यहाँ आया हूँ। साथमें डा० जीवराज मेहता, महादेव देसाई, स्वामी आनन्द, प्रभुदास,[3] बालकृष्ण और दीपक[4] हैं। तुम तो इनमें से केवल प्रभुदासको ही जानती हो। इस पत्रमें मैं दूसरोंका परिचय नहीं दूँगा क्योंकि मैं पत्र जल्दी पूरा करना चाहता हूँ। मारे दर्दके सिर फटा जा रहा है, परन्तु तुम्हारा पत्र हाथमें ले लिया है, तो उत्तर दे ही दूँ।

श्रीमती गांधीका स्वास्थ्य बहुत अच्छा चल रहा है। वे हरिलालके बच्चोंकी देख-रेख रखती हैं। फातिमाकी[5] शादी पिछली २० तारीखको एक बहुत ही अच्छे नौजवानसे हो गई है। शादी बहुत सादे ढंगसे, बिना किसी धूमधामके हो गई। इसका आयोजन आश्रमके[6] प्रांगणमें ही हुआ था। उसके पति अहमदाबादमें ही रहते हैं, इसलिए फातिमासे बराबर भेंट होती रहेगी। इंग्लैंडसे निकाल दिये जानेके बाद श्री कैलेनबैककी[7] तरफसे कोई समाचार नहीं मिला है। मैंने पूछताछ भी की पर कुछ पता नहीं चला।

श्रीमती वेस्टका समाचार सुनकर दुःख हुआ। आशा है अब वे अच्छी हो गई होंगी। मेरी तरफसे हिल्डाको प्यार। क्या वह मुझे कभी याद करती है या मेरा

१. दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके एक अन्तरंग सहयोगी ए० एच० वेस्टकी बहन जिनको गांधीजीने 'देवीबहन' नाम दिया था।

२. पूनाके पास सिंहगढ़का किला। वहाँ गांधीजी २९ अप्रैलसे ४ मईतक रहे थे।

३. छगनलाल गांधीके पुत्र।

४. सरलादेवी चौधरानीका लड़का।

५. हमीदिया इस्लामिया अंजुमन (जोहानिसबर्ग) के एक समयके अध्यक्ष इमाम अब्दुल कादिर बावजीरकी पुत्री। वास्तवमें शादी ता० २६ को हुई थी; देखिए "विवाहका निमन्त्रण", २०-४-१९२०।

६. साबरमती आश्रम।

७. दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी एवं अभिन्न मित्र।

खयाल उसे आता है? आश्रममें मकान बनानेका काम अभीतक चल ही रहा है। आशा है, किसी दिन तुम भी उसे देख सकोगी और उसके निर्माणमें तुम्हें जितना हाथ बँटाना चाहिए उतना बँटा सकोगी।

मेरा जीवन तो सदाकी भाँति खूब व्यस्त है। जिसे मैं अपना कह सकूँ, ऐसा एक क्षण भी नहीं होता।

देवदास बनारसमें है। वहाँ वह अपनी हिन्दीकी पढ़ाई पक्की कर रहा है। हरिलाल व्यापारमें आगे बढ़ रहा है। मैं नहीं जानता कि आखिरको वह करेगा क्या।

सस्नेह,

तुम्हारा,
भाई

[पुनश्च :]

भाई कोटवालको बहुत समयसे नहीं देखा है। उनका कोई समाचार भी नहीं मिला है। परागजी देसाई श्रीमती गांधीके भाईके साथ हो गये हैं। मेढ़[1] कुछ नहीं कर रहे हैं। छगनलाल हिसाब-किताब देखता है। मगनलाल मुख्य व्यवस्थापक है। उसके बच्चे अब बड़े हो गये हैं। कहते हैं, प्रभुदासको क्षय-रोग है। छगनलालकी पत्नी शरीरसे बहुत कमजोर तो है ही। कृष्णदासकी[2] तन्दुरुस्ती भी बहुत अच्छी नहीं रहती। इमाम साहब सारी खरीद-फरोख्तकी देख-भाल करते हैं। उनकी पत्नी आश्रमके लिए सिलाईका बहुत सारा काम करती हैं। तुम जिन लोगोंको जानती हो, उन सबकी गतिविधिका मैंने काफी वर्णन कर दिया।

भाई

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१४९. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

१ मई, १९२०

इस समय शामके लगभग पाँच बज रहे हैं। मैंने अभी-अभी बिस्तर छोड़ा है। कल रात सरमें बहुत सख्त दर्द था और ११ बजेतक अचेत-सा पड़ा रहा। उसके बाद अच्छी नींद आई। अब सरदर्द नहीं है, लेकिन मैं अभी एक फर्लांग भी नहीं चल सकता। फिर भी, तुमसे कहूँगा कि मेरे बारेमें चिन्ता न करो। मैंने सोचा कि तुमको अपनी दशासे अवगत करा दूँ — और किसी कारणसे नहीं तो इस कारणसे

१. अहमदाबादके सुरेन्द्रराय मेढ़, दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी।
२. छगनलाल गांधीके पुत्र।

कि अगर पखवाड़े-भरमें जगदीशका[1] विवाह सम्पन्न या स्थगित हो जाये तो तुम इस सीमाका निर्वाह करके आ जाओ। अगर पंडितजीको भी आनेपर राजी कर सको तब तो बात ही क्या है। उन्हें आश्रमके जीवनको देखना और रहकर अनुभव करना चाहिए।

सुबह तिलक महाराज हमें देखने आये थे। साथमें उनके लड़के और दामाद भी थे। बातचीत बिलकुल औपचारिक हुई।

दीपक ठीक है। उसे यह जगह पसन्द आ गई जान पड़ती है। उसकी रुचियाँ बड़ी सुघड़ हैं और उसे कोई बात समझा-सिखा पाना भी बहुत आसान है। अगर उससे कुछ लिखा सका तो इसके साथ ही भेज दूँगा।[2]

रेवाशंकरभाई आज सुबह आये। साथमें कुछ बड़े-अच्छे आम ले आये थे। उनमें हिस्सा बँटानेके लिए तुम तो यहाँ थीं नहीं, इसलिए मनको कष्ट हुआ। आज सुबह, हम जिस समय आमतौरपर उठते हैं, उसी समय उठा, लेकिन फिर सो गया। मैंने सूर्योदय नहीं देखा। तुम यहाँ होतीं तो मैं जानता हूँ कि सूर्यदेवके रथका आगमन देखनेको अवश्य ही मुझे बाहर खींच ले जातीं।

पादशाह 'ईस्ट ऐंड वेस्ट' में लिखते रहे हैं। कतरन तो शायद, जब हम लोग साथ थे, तभी आ गई थी। उसके आधारपर मैंने एक लेख बोलकर लिखा दिया है। वह किसी हदतक अच्छा ही बन पड़ा है। तुम भी इस बातसे सहमत होगी।

और अब तुमसे एक चीज माँगूँगा। मैं जानता हूँ, तुमने मुझे बहुत-कुछ दिया है। लेकिन जैसे-जैसे प्राप्त होता गया है, वैसे-वैसे भूख भी बढ़ती गई है। तुमने कहा कि आश्रममें काम करनेमें तुमको संकोच होता है। क्या तुम वहाँ घरेलू काम-काज करना शुरू करके इस संकोचके भावसे छुटकारा पानेकी कोशिश नहीं करोगी? अगर सिर्फ मेरी ही खातिर तुम ऐसा करो तब भी कोई हर्ज नहीं। यहाँ हमारे दृष्टिकोणमें परिवर्तन होनेका सवाल नहीं उठता। सवाल सिर्फ अपनी अनिच्छापर काबू पानेका है। तुम महान् हो, नेक हो, लेकिन जबतक तुममें घरेलू काम-काज करनेकी क्षमता नहीं आती, तबतक तुम स्त्रीके रूपमें पूर्ण नहीं हो सकतीं। तुमने औरोंको इसका उपदेश दिया है। अतः जब लोगोंको यह मालूम होगा कि तुम्हारी उम्र और हैसियतकी महिला भी घरेलू काम-काज करनेमें बुरा नहीं मानती तो तुम्हारे उपदेशका ज्यादा असर होगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
विधि-प्रणेता

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. सरलादेवीका ज्येष्ठ पुत्र जिसका विवाह १९-५-१९२० को सम्पन्न हुआ था।
२. यहाँ मूलको सुधारकर अनुवाद किया गया है।

478

१५०. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

१ मई, १९२०

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।
क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद् भज ॥२॥
यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्रम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि ॥४॥
मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत् ॥११॥[1]

कल मैंने बीस श्लोक पढ़े। उनमें से मुझे जो सबसे अधिक सशक्त लगे, उन्हें छाँटकर यहाँ दे दिया है। मुझे याद आया एक बार तुमने कहा था कि दूसरे कवियों-की दूसरी चीजें तुमपर जितना असर करती हैं, उतना 'भगवद्गीता' नहीं करती। इसलिए हो सकता है, इन श्लोकोंका भी तुमपर कोई असर न हो। परन्तु मेरे मन-पर उस समय उनका बड़ा पुनीत प्रभाव पड़ा और मैं तुमको भी उनका लाभ देनेका लोभ संवरण नहीं कर पाया। इसके अतिरिक्त मुझे इन दिनों मजबूरन बेकार पड़े रहना पड़ता है। क्योंकि अबतक मैं खाट नहीं छोड़ पाया हूँ।[2] ऐसी स्थितिमें इन श्लोकोंको पढ़कर मुझे बड़ी सांत्वना मिलती है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई।

१. अष्टावक्र गीताके प्रथम अध्यायमें मुनि जनकसे कहते हैं :

हे तात, यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयोंको विष समझकर उनका त्याग कर और क्षमा, ऋजुता, दया, सन्तोष और सत्यका अमृतकी भाँति सेवन कर।

यदि तू देहको अलग करके चिद् (रूप) में स्थिर होकर रहेगा तो तत्काल सुखी, शान्त और बन्धनमुक्त हो जायेगा।

जो अपनेको मुक्त मानता है वह मुक्त ही है और अपनेको बद्ध मानता है वह बँधा हुआ है। यह कहावत सच है कि जैसी मति वैसी गति।

२. गांधीजीके पैरमें कुछ तकलीफ हो गई थी इसी कारण २९ अप्रैलसे ४ मईतक उन्होंने सिंहगढ़में विश्राम किया था। यह पत्र भी वहींसे लिखा गया था।

१५१. पत्र : जमशेदजी नसरवानजी मेहताको[1]

सिंहगढ़
[१ मई, १९२०][2]

भाईश्री जमशेदजी,

आपने मुझे पत्र लिखा सो अच्छा किया। आपको अथवा आपके मनोगत भावोंको मैं समझ न सकूँ, सो बात नहीं है। उसी तरह यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो व्यक्ति असहयोगके विचारके विरुद्ध है वह मुसलमानोंका मित्र नहीं है। मैत्रीमें भी मतभेद हो सकता है।

अब आपके प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ :

१. असहकारका प्रभाव सरकार विरोधी अवश्य होगा; लेकिन इस असहकारकी कल्पना प्रतिकारकी भावनासे नहीं की गई है, इसलिये सरकारने क्या अपराध किया है, इसका प्रश्न उठ ही नहीं सकता। तथापि सरकारको जितना करना चाहिए उतना उसने नहीं किया है। यदि इंग्लैंडकी सरकार न्याय प्राप्त नहीं करा पाती तो भारतकी सरकार त्यागपत्र दे सकती है। हिन्दुस्तानकी सरकार ऐसे समय मात्र "विरोध" प्रकट करके सन्तुष्ट नहीं रह सकती; यह उसकी त्रुटि है। इसलिए जनता सरकारसे अपना सहकार बन्द करके अपना असन्तोष प्रगट कर सकती है।

२. हम किसीको जान-बूझकर दुःख नहीं दे सकते; लेकिन यदि हमारे किसी ऐसे कार्यसे जो अनिवार्य है, किसीको दुःख हो तो उसके लिए हम उत्तरदायी नहीं हैं। सरकारी नौकरीसे त्यागपत्र देनेका मुझे अधिकार है। त्यागपत्र देनेसे सरकारको दुःख हो तो उससे मैं हिंसक नहीं होता। कल्पना कीजिये मैं पिताके साथ घरमें रहता हूँ और उनकी यथाशक्ति सेवा भी करता हूँ, लेकिन यदि उन्हें कुछ अन्याय करता देखकर मैं गृहत्याग करके उनके साथ काम आदि करना बन्द कर दूँ तो उससे उन्हें दुःख तो अवश्य होगा, तथापि मेरा वह गृहत्याग करना ही कर्त्तव्य हो सकता है। यह दुःख वास्तवमें मेरे पिताने स्वयं ओढ़ा है। यदि हम इस तरहसे आचरण न करें तो संसारमें अत्याचारी-मात्रको अत्याचार करनेका परवाना मिल जाये।

३. इससे आप देखेंगे कि हमें हिंसा किये बिना असहकार करनेका अधिकार है, इतना ही नहीं बल्कि वह हमारा कर्त्तव्य है।

१. कराचीके पारसी व्यापारी और समाजसेवक ।

२. जमशेदजीके २४ अप्रैल, १९२० के पत्रके उत्तरमें यह पत्र लिखा गया था । साधन-सूत्रमें इस पत्रकी तारीख १९ मई दी गई है जो स्पष्टत: एक भूल है । सम्भवत: १ की जगह "१९" गलत छप गया, गांधीजी २९ अप्रैल से ४ मई, १९२० तक सिंहगढ़में थे ।

४. शौकत अलीके भाषणसे[1] मैं नहीं घबराया; क्योंकि मुझे लगता है कि उन्होंने जिस भावसे प्रेरित हो भाषण दिया है उसे मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ।

निस्सन्देह, यह बात मैं स्वीकार करता हूँ कि जिस भावसे मैं असहकार को देखता हूँ उस भावसे सब मुसलमान नहीं देखते। लेकिन यह बात उन्हें स्पष्ट रूपसे समझा दी गई है कि असहकारके साथ-साथ हिंसा हो ही नहीं सकती, और अगर मुसलमान भाई असहकारको द्वेष-भावसे प्रेरित होकर भी अपनायें तो भी उससे हमें शुभ परिणामकी उपलब्धि हो सकती है और हम हिंसासे छुटकारा पा सकते हैं। सब अच्छे कार्योंका, भले ही वे किसी भावसे प्रेरित होकर क्यों न किये जायें, थोड़ा-बहुत शुभ परिणाम अवश्य होता है। जो व्यक्ति भयसे अथवा लज्जासे प्रेरित होकर सत्य अथवा संयमका पालन करता है उसे भी उसका स्थूल लाभ तो हो ही सकता है--सत्य-कार्यकी महिमा ही ऐसी होती है।

आपके मनमें जैसी शंका उठी है वैसी ही दूसरोंके मनमें भी उठी होगी, इसलिए आपके पत्रको 'नवजीवन' में प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ९-५-१९२०

१५२. मैं होमरूल लीगमें क्यों शामिल हुआ हूँ?

होमरूल लीगके सदस्योंके[2] प्रति,

इसके पहले कई मित्रोंने कितनी ही बार मुझसे होमरूल लीगमें शामिल होने-का आग्रह किया था लेकिन तब मैं उसमें शामिल नहीं हुआ। उसका एक कारण यह भी था कि राजनैतिक विषयोंमें सिर्फ राजनैतिक दृष्टिसे मेरा भाग लेना सम्भव नहीं था, आज भी मैं ऐसा नहीं करता; तथापि इस बार मुझसे जो आग्रह किया गया वह पहलेके आग्रहोंसे भिन्न था। एक तो उस समयतक लोग मेरे विचारोंसे आज जितने परिचित हैं उतने परिचित नहीं थे। दूसरे गत कांग्रेस[3] अधिवेशनमें मैंने देखा कि मेरा कांग्रेसके पिछले अधिवेशन-जैसा चुप रहना सम्भव नहीं है। मुझे लगा कि कितने ही विषयोंपर मुझे अपने विचार जनताके सामने रखना आवश्यक है और तब मैंने कांग्रेस अधिवेशनमें ठीक-ठीक भाग लिया। उसका मुझे कोई पश्चात्ताप भी नहीं है।

१. मद्रासमें १७ अप्रैलको खिलाफत सम्मेलनके अध्यक्षके रूपमें। गांधीजीको लिखे अपने पत्रमें जमशेदजी मेहताने शिकायत की थी कि शौकत अलीने "असहकार" और "अहिंसा" की जो परिभाषा की है वह चौंकानेवाली है।

२. २८ अप्रैल, १९२० को गांधीजी अखिल भारतीय होमरूल लीगके सदस्य बने थे।

३. अमृतसर अधिवेशन, दिसम्बर १९१९।

[इसलिए] मुझे होमरूल लीगमें शामिल होनेका लोभ हुआ। परामर्शके विचारसे मैंने बम्बईसे बाहरके मित्रोंको पत्र लिखे। मैंने उन्हें बताया कि होमरूल लीगमें मेरा सम्मिलित होना अपने विचारों और पद्धतिको अमलमें लानेके विचारसे ही सम्भव हो सकता है। मित्रोंमें से अधिकांशको मेरे विचार पसन्द आये और उन्होंने होमरूल लीगमें सम्मिलित होनेके मेरे निश्चयपर सहमति प्रकट की। अन्य अनेक मित्रोंने मेरे विचारोंको पसन्द तो किया लेकिन यह आशंका प्रकट की कि होमरूल लीगमें सम्मिलित होनेपर भी मैं अपनी स्वतन्त्रता और तटस्थताको खो बैठूंगा। इसका मेरे ऊपर भी काफी असर हुआ, तथापि मैंने सोचा कि यदि मेरे विचारोंसे अवगत होनेके बावजूद मुझे लीगमें शामिल कर लिया गया तो मैं अपनी स्वतन्त्रताको बनाए रख सकूंगा। मैंने यह भी महसूस किया कि इसके द्वारा मुझे अपने विचारोंका विशेष प्रचार करनेका एक साधन मिल सकता है और इस लोभसे मैं लीगमें शामिल हो गया हूँ।

(मुझे लगता है कि जल्दीसे-जल्दी स्वराज्य प्राप्त करनेकी चाबी स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा हिन्दुस्तानीका राष्ट्रीय भाषाके रूपमें प्रचार करनेमें है। इसीलिए मैं लीगको इस प्रवृत्तिमें लगानेका प्रयत्न करूँगा।)

(स्वदेशीमें ही भारतकी आर्थिक स्वतन्त्रता और नैतिक उन्नति है। इसी कारण मैं तो विधान परिषदोंमें जानेवाले प्रत्येक सदस्यसे वचन लेना चाहूँगा कि वे हिन्दुस्तानके उद्योगके रक्षणार्थ विदेशी मालपर जितना आवश्यक जान पड़े उतना कर लगाते हुए न डरें।) जबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित नहीं होती तबतक मैं स्वराज्यको स्वप्नवत् मानता हूँ। इसलिए मुसलमानोंको खिलाफतके न्यायपूर्ण संघर्षमें पूरी-पूरी मदद देकर मैं उन्हें हमेशाके लिए अपना बना लेना चाहूँगा, और इसलिए मैं [होमरूल] लीगके प्रत्येक सदस्यको खिलाफतके कार्यमें लगानेका प्रयत्न करूँगा।

हमें करोड़ों व्यक्तियोंके साथ काम करना है, उनपर प्रभाव डालना है, इसलिए मैं इस लीग तथा उसके बाहर अपने क्रिया-कलापोंमें, विभिन्न प्रान्तोंमें उनकी प्रान्तीय भाषाओंका तथा राष्ट्रीय स्तरपर राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दीका उपयोग करने और करवाने-का प्रयत्न करूँगा। धारासभाके प्रत्येक सदस्यसे मैं वचन लूँगा कि वह [प्रान्तीय] विधान परिषद्में प्रान्तीय भाषा तथा केन्द्रीय विधान परिषद्में राष्ट्रभाषाका प्रयोग करने और करवानेका प्रयत्न करेगा।

इस विचारके साथ ही एक दूसरा विचार जुड़ा हुआ है। जनताका काम जल्दी करवानेके लिए, प्रजाके प्रत्येक अंगका विकास करनेके लिए मैं हिन्दुस्तानके भाषावार[1] विभाग करनेकी दिशामें भरसक चेष्टा करूँगा तथा लीगको भी इस प्रवृत्तिमें लगाने-का प्रयास करूँगा। तेलुगू, सिन्धी, मराठी, उड़िया, गुजराती आदि भाषा-भाषी अलग-अलग प्रान्तोंके निर्माणके प्रयत्नके साथ ही मैं उन [प्रान्तों]के सम्पूर्ण विकासकी योजना भी रचूंगा और लीगसे भी वैसा ही करनेको कहूँगा।

मेरे विचारसे यदि मैं लीगको ऐसी प्रवृत्तियोंमें लगा सका तो हम स्वराज्य अवश्य ही जल्दी प्राप्त करनेमें समर्थ हो जायेंगे। इसी दृष्टिसे मैं [मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड]

१. देखिए "ऑल इंडिया होमरूल लीगके सदस्योंसे", २८-४-१९२० की पाद-टिप्पणी २।

सुधारोंकी कीमत उपर्युक्त वस्तुओंकी अपेक्षा कम मानता हूँ। मेरे कहनेका आशय यह नहीं है कि उक्त सुधार एक ओर रख देने जैसी चीज़ हैं। लेकिन मैं उन्हें उससे बड़ा स्थान देनेके हकमें नहीं हूँ जिसके वे योग्य हैं। यदि आज हमारे हाथमें पूरी राजसत्ता आ जाये तो भी यदि हम स्वदेशीको नहीं समझते, हिन्दू-मुस्लिम एकताके महत्त्वको नहीं पहचानते और हमारा कारोबार अंग्रेजी भाषामें चल सकता है — ऐसे मोहमें पड़े रहते हैं तो उनका उपयोग हमारी स्वतन्त्रता छीन लेनेकी दिशामें हो सकता है। मुझे यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। शासनमें सुधार साधन है, साध्य नहीं। स्वदेशी इत्यादि साधन और साध्य दोनों हैं।

इसके अतिरिक्त मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि जिस पद्धतिसे मैं काम करता हूँ उससे फल भी जल्दी और अधिक प्राप्त होता है। अपने प्रत्येक कार्यमें सत्यका ही दृढ़तापूर्वक प्रयोग करना, सत्यपर पूरी आस्था रखना और सत्यको हम जिस रूपमें पहचानते हैं उस रूपमें उसका आचरण करते हुए किसीसे भी न डरना मेरी पद्धति है। इन विचारोंको स्वीकार करनेसे जीवनमें ऐसा परिवर्तन आता है कि हम तत्क्षण स्वाश्रयी बन जाते हैं। दूसरोंपर निर्भर न रहकर हम तुरन्त आत्मनिर्भर हो जाते हैं। इसलिए मुझे उम्मीद है कि मैं सत्याग्रहके इस तत्त्वको लीग द्वारा अपनाये जानेकी दिशामें अधिकसे-अधिक प्रयत्न करूँगा। कानूनकी सविनय अवज्ञा करनेके आन्दोलनमें लीगको शामिल करनेका मेरा इरादा नहीं है। यह तत्त्व अभी व्यापक नहीं हुआ है और कानूनकी सविनय अवज्ञाके सूक्ष्म महत्त्वको अभी देशने नहीं समझा है, ऐसा मुझे लगता है। इसलिए मैं चाहूँगा कि सविनय अवज्ञा सम्बन्धी मेरे विचारोंसे सदस्य न घबरायें।

मैं लीगके सदस्योंके सम्मुख अपने विचारोंको विस्तारसे प्रस्तुत करनेके अन्य अवसरकी तलाशमें रहूँगा। इस बीच मैं प्रत्येक सदस्यसे उपर्युक्त विषयोंके सम्बन्धमें उसके विचार जानना चाहूँगा। मैंने जो कदम उठाया है उसकी योग्यता-अयोग्यताके बारेमें सभी अपनी राय देंगे ऐसी मुझे उम्मीद है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २–५–१९२०

१५३. 'नॉन-कोऑपरेशन'

अब चूँकि 'नॉन-कोऑपरेशन' का विचार अपना असर दिखाने लगा है इसलिए जिस तरह मुझे "पैसिव रेजिस्टेन्स' के लिए एक शब्द खोजनेकी आवश्यकता महसूस हुई थी उसी तरह 'नॉन-कोऑपरेशन' के लिए भी मैं एक ऐसे शब्दकी[1] जरूरत महसूस करता हूँ जिसे सब लोग समझ सकें। तत्काल तो 'असहकार' शब्द सूझता है, लेकिन अन्य कोई अच्छा शब्द ढूँढ़ निकालनेमें मैं पाठकोंकी मदद चाहता हूँ।

१. बादमें गांधीजी द्वारा इस लेखमें प्रयुक्त 'असहकार' शब्द ही रूढ़ हो गया। हिन्दीमें 'नान-कोऑपरेशन' के लिये 'असहयोग' शब्द चला। हमने दोनोंका उपयोग किया है।

विदुषी महिला श्रीमती बेसेंटने असहकारकी कड़ी आलोचना की है। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में एक लेखक और स्वयं सम्पादकने टीका की है। श्रीमती बेसेंटने भारतकी जो सेवा की है वह इतनी मूल्यवान है, उन्होंने जो उद्यम किया है वह इतना महान् है और भारतके प्रति उनका प्रेम इतना सुन्दर है कि उनके लेखोंकी आलोचना करने अथवा उनसे अपना मतभेद प्रगट करनेमें मुझे संकोच ही होगा। लेकिन हम जिन्हें बुजुर्ग मानते हैं उनके प्रति आदरका भाव रखते हुए भी हम मतभेद रख सकते हैं, इस तत्त्वको मैंने हमेशासे स्वीकार किया है, इसीसे मैं इस समय भी अपना मतभेद प्रगट करनेकी हिम्मत कर रहा हूँ।

तीनों लेखकोंको यह बड़ा भारी भय है कि असहकारसे खून-खराबी हुए बिना नहीं रह सकती। यह तो हम नहीं कहते कि खून-खराबी कदापि नहीं हो सकती, लेकिन मेरे खयालसे खून-खराबी न हो इसके पूरे उपाय कर लेनेके बाद हमें अपने कार्योंमें लगे रहना चाहिए। खून-खराबी करनेवाले असहकारकी ही राह देखते हुए बैठे हैं, अगर ऐसी कोई बात हो तो हमें अवश्य ही असहकारको स्थगित रखना चाहिए। मेरी तो ऐसी मान्यता है कि मुसलमान इस बातको इतनी अच्छी तरह समझ गये हैं कि खून-खराबीको रोकनेमें ही उनकी विजय निहित है। वे जानते हैं कि असहकारका खून-खराबीके साथ एक क्षणके लिए भी निबाह नहीं हो सकता।

कोई कह सकता है कि सारे भारतमें खून-खराबीको भला कहीं रोका जा सकता है? उसका जवाब यही है कि जब सेनामें कोई अनहोनी बात हो जाती है तब सेना भंग कर दी जाती है। हमारे एक हो जानेपर तो हममें खून-खराबी आदि दुर्घटनाओंको रोकनेकी शक्ति आ ही जानी चाहिए। उस शक्तिके प्राप्त होनेतक हमसे भूलें होंगी, हमें भूलोंको सुधारना पड़ेगा, यह सब मैं मानता हूँ। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि जनताको अपने ऊपर नियन्त्रण रखना सीखना ही चाहिए और मेरे खयालसे उसके लिए यह एक महत्त्वपूर्ण अवसर है।

इन लेखकोंने यह मान लिया है कि असहकारका प्रचार करनेवाले अपने कार्यसे परिचित नहीं हैं। ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। वे असहकारकी सीढ़ीपर छलांग मारकर नहीं चढ़ना चाहते। यदि वे पग-पगपर अपने मार्गको देखते हुए चढ़ेंगे तो गिरनेका भय कम होगा।

असहकारमें जोखिम तो है ही। लेकिन अन्य कोई उपाय नहीं है। यदि खिलाफतका अन्यायपूर्ण निर्णय असह्य हुआ तो विरोधका कोई-न-कोई रास्ता चाहिए। यदि असहकार रूपी हथियार भी न हो तो जनताके पास सिर्फ खून-खराबी ही [करनेको] रह जाती है, और इसका उपचार तो रोगसे भी भयंकर है क्योंकि उद्देश्य क्रोधके लिए क्षोभकी तलाश करना नहीं वरन् खिलाफतके मामलेमें न्याय प्राप्त करना है। खून-खराबीसे न्याय मिलनेवाला नहीं है और इसलिए मुझे तो लगता है कि असहकारके सिवा दूसरा कोई अस्त्र है ही नहीं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-५-१९२०

१५४. टिप्पणियाँ

जलियाँवाला बाग-स्मारक और लोक-जागृति

पिछले एक वर्षके दरमियान लोक-जागृतिमें कितनी वृद्धि हुई है, यदि हम यह जानना चाहें तो इसका ज्ञान हमें जलियाँवाला बाग-स्मारक कोषमें विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त हुई रकमोंसे हो सकता है। नीचे दी गई सूचीसे[1] पता चलेगा कि जहाँ-कहीं प्रयत्न किया गया है वहाँ छोटासा गाँव भी अपना सहयोग देनेमें शहरसे पीछे नहीं रहा है। हमें कितने ही ऐसे पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें यह बताया गया है कि अमुक स्थानपर गरीबसे-गरीब व्यक्तियोंने भी अपनी अमुक आदतोंको छोड़कर उनपर खर्च होनेवाली रकम इस कोषमें दी है; अनेक स्थानोंपर स्वयंसेवक सारा दिन जगह-जगह और घर-घर पैसेकी भीख माँगते हुए भटके हैं। श्री महादेव देसाई जिन गाँवोंमें घूमे हैं वे गाँव उनकी जानकारीके अनुसार एक हजारसे अधिक की बस्तीवाले नहीं हैं और प्रत्येक गाँवमें, स्मारक-कोषमें अपना हिस्सा देनेवाले केवल उच्च वर्ग तथा शिक्षित वर्गके लोग ही नहीं हैं, बल्कि साधारण और अशिक्षित लोग भी हैं। अर्थात् चन्दा देनेवालोंमें ब्राह्मणों और वैश्योंके उपरान्त सुनार, बढ़ई, लुहार, तेली तथा कोली भाई भी हैं। एक गाँवमें तो चन्दा देनेवालोंमें बड़ा भाग मुसलमानोंका ही है। फिर बहनोंने भी चन्दा दिया है। श्री महादेव देसाईने बताया है कि पैसे इकट्ठे करनेमें उन्हें किसीपर तनिक भी दबाव नहीं डालना पड़ा। वे संक्षेपमें चन्दा एकत्रित करनेका कारण बताते, अनेक स्थानोंपर कांग्रेस समितिकी रिपोर्टमें[2] वर्णित जलियाँ-वाला बाग आदि स्थानोंपर हुई घटनाओंके बारेमें समझाते और लोग तुरन्त ही खुशीसे अपनी सामर्थ्यके अनुसार दे देते।

गाँवोंमें भ्रमण करते हुए श्री देसाईसे एक सज्जनने विनोदमें जो बात कही थी वह यहाँ उद्धृत करने योग्य है। उक्त सज्जनने कहा: "भाई, यह तो ऐसी बात है कि खुद तो दुबली[3] खरमट बीने तब भी हवलदारको घूघरी[4] देवे। यह देशकार्य है इसलिए दिये बिना कैसे चल सकता है?" यह कहावत बहुत मार्मिक है; इससे हमारे किसानोंकी वर्तमान दयनीय स्थितिका पता चल जाता है। "खरमट" अर्थात् वे दाने जो खलिहानसे अनाज उठा लेनेके बाद जहाँ-तहाँ पड़े रह जाते हैं। इतना अर्थ देनेपर कहावतका अभिप्राय स्पष्ट हो गया होगा। हमारे किसान वर्गकी वर्तमान

१. यहाँ नहीं दी गई है।

२. प्रकाशित रिपोर्टमें जलियाँवाला बागमें लोगोंको कोड़े मारे जाने तथा घायल व्यक्तियोंके चित्र दिये गये हैं।

३. दक्षिण गुजरातमें मजूरी करने वाली 'दुबला' जातिकी स्त्री।

४. उबला हुआ ज्वार या बाजरा।

स्थिति रहट बीननेवाली दुबली-जैसी है, तथापि वे प्रसन्न-मनसे हवलदार — भीख देनेके योग्य हवलदारों अर्थात् देशसेवकों — को घूघरी देते हैं।

इससे एक दूसरा अनुमान यह भी लगाया जा सकता है कि शहरकी अपेक्षा गांवोंमें राष्ट्रीय कार्य करना सहल है; इसलिए यही स्वाभाविक है कि गांवके स्वराज्यसे शुरू करके शहरके स्वराज्यतक पहुँचा जाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २–५–१९२०

१५५. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

२ मई, १९२०

कल 'अष्टावक्र गीता'[1] के पहले अध्यायसे कुछ चुने हुए श्लोक भेजे थे।[2] उसमें जनक यह सीखते हैं कि अपने मोक्षका उपाय अपने ही हाथोंमें है; यह उपाय है इन्द्रियोंके मोहजालसे छूटना। दूसरे अध्यायमें जनक इस ज्ञानकी प्राप्तिपर अपनी आनन्दानुभूति प्रकट करते हैं। इनमें से कुछ श्लोक नीचे दे रहा हूँ:

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडम्बितः।। १।।
तन्तुमात्रो भवेदेव पटो यद्वद्विचारितः।
आत्मतन्मात्रमेवेदं तद्वद्विश्वं विचारितम्।। ५।।
आत्माज्ञानात् जगद् भाति आत्मज्ञानान्न भासते।।
रज्ज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद् भासते न हि।। ७।।
मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति।
मृदि कुम्भो जले वीचिः कनके कटकं यथा।। १०।।
अहो जनसमूहेऽपि न द्वैतं पश्यतो मम।
अरण्यमिव संवृत्तं क्व रतिं करवाण्यहम्।। २१।।[3]

१. अष्टावक्र ऋषि रचित तत्त्वज्ञानका एक प्रमुख ग्रन्थ।

२. देखिए "पत्र : सरलादेवी चौधरानीको", १–५–१९२०।

३. मैं निरंजन, शान्त, ज्ञानरूप और प्रकृतिसे परे हूँ। अबतक मोहसे गुमराह था। जैसे विचार करनेसे मालूम होता है कि वस्त्र तन्तुरूप ही है, वैसे ही विचार करनेसे विदित होता है कि (यह) विश्व आत्मरूप ही है। आत्माके अज्ञानके कारण जगत्का आभास होता है, आत्माका ज्ञान होनेपर वह (जगत्) भासित नहीं होता। रस्सीके अज्ञानसे ही (उसमें) सर्पका आभास होता है। उसका ज्ञान होते ही वह (सर्प) भासित नहीं होता। जैसे घड़ा मिट्टीमें, तरंग पानीमें और कड़ा सोनेमें लय हो जाता है, वैसे मुझसे बाहर निकला हुआ विश्व मुझीमें लय होता है। अहो, जनसमूहमें भी द्वैत न देखनेवाले मुझको (सब) अरण्य-जैसा हो गया है (तो) मैं किसमें रति रखूँ?

पच्चीस श्लोकोंमें से मैंने पाँच ही चुने हैं। क्या मैं तुमपर फिर इनकी नकल करके देवदासको भेजनेका भार डाल सकता हूँ? बड़ी इच्छा है कि इस सुन्दर कला-कृतिकी एक संक्षिप्त आवृत्ति तुम्हारे लिए तैयार कर सकूँ।

आज भी मेरी तवीयत अच्छी नहीं है। अब भी मुझे बिस्तरमें ही पड़े रहना है। तुम्हारी याद अब भी बहुत आती है, नींदमें भी। फिर अजब नहीं कि पंडितजी तुम्हें भारतकी महाशक्ति कहते हैं। तुमने उनपर जादू कर रखा होगा। अब वही जादू तुम मुझपर आजमा रही हो। लेकिन दो कोयलोंके कूकनेसे ही ऐसा नहीं माना जा सकता कि वसन्त आ गया। यदि तुम सचमुच महाशक्ति हो तो मनसा, वाचा और कर्मणा भारतकी दासी बनकर भारतको अपना दास बना लोगी।

दीपकसे तो मैं तुम्हें और पंडितजी, दोनोंको पत्र नहीं लिखवा सकता। इसलिए पंडितजीके नाम लिखे उसके एक पत्रसे ही तुम्हें सन्तोष करना होगा। वह कहता है, "मैं माताजीको रोज क्यों पत्र लिखूँ, जब कि वे मुझे नहीं लिखतीं।" इसपर मैंने बुराई-के बदले भलाईकी सीख दी। यह भी कहा कि तुमने शायद पत्र लिखा हो, लेकिन अभीतक डाकमें आया न हो। कल मैं पूरा भरोसा करके बैठा था कि तुम्हारा कोई पत्र अवश्य आयेगा, लेकिन आया नहीं। आजका दिन भी खाली जा रहा है। क्या बात है, समझ नहीं पा रहा हूँ। लेकिन इतना जानता हूँ कि तुम्हारी ओरसे कोई चूक नहीं हुई होगी। यह तो कमबख्त डाककी ही कारस्तानी है।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' से भारतीय संगीत विषयक दो लेखोंकी कतरनें भेज रहा हूँ। शायद तुमको ये दिलचस्प लगें। तुम अपना आलस्य छोड़ दो तो सारे भारतको संगीत-लहरीसे गुंजा दो। इसके लिए तुम्हारा गाना ही काफी नहीं। तुम चाहो तो तुम्हारी ही तरह सारा देश गुनगुनाने लग सकता है। परन्तु इसके लिए लगन और मेहनत चाहिए — भारतको अपनी संगीत प्रतिभा अर्पित करनेका संकल्प चाहिए। अगर तुम देवदासके लिए इन श्लोकोंकी नकल करनेकी तकलीफ कर रही हो तो मेरा खयाल है उसके लिए भजनकी भी नकल कर दोगी।

कल भी तिलक महाराज हमें देखने आये थे। उन्होंने साफ कहा कि उनमें मेरी तरह सहिष्णुता नहीं है और वे ईंटका जवाब पत्थरसे देनेमें विश्वास करते हैं। उन्होंने श्रीमती बेसेंटकी बड़ी तीव्र आलोचना की थी। मैंने दबी जबान उसीपर कुछ आपत्ति की थी तो उत्तरमें उन्होंने यह बात कही। तुमने शायद यह आलोचना नहीं पढ़ी होगी। मैंने भी यहीं पढ़ी है। उसमें तो उन्होंने श्री खापर्डेका श्रीमती बेसेंटको पूतना मौसी कहनेका भी औचित्य ठहराया है। वे जो-कुछ कह रहे थे, बहुत ही रोचक ढंगसे साफ-साफ कह रहे थे, जिससे मनको बड़ी ताजगी मिल रही थी।

कुमारी फैरिंग अभीतक नहीं आई। जहाजका टिकट लेनेके लिए बम्बईमें रहनेकी जरूरत न हो, तो मैंने उसे सिंहगढ़ आनेको निमन्त्रित कर दिया है। आज तुम्हारा पत्र पानेकी अन्तिम आशा भी अब जाती रही, क्योंकि डाकिया सिर्फ थोड़ेसे अखबार ही लेकर आया है। देवदासने लिखा है कि पंडितजी — माफ करना, मेरा मतलब माल-वीयजीसे है — फिर सोच रहे हैं कि मुझे इंग्लैंड जाना चाहिए। लेकिन मेरा खयाल

है, अब तो उनके कहनेमें बहुत देर हो गई है, और शायद अच्छा ही हुआ। यहाँ पूरी तरह संगठन किये बिना हमारा वहाँ जाना बिलकुल बेकार होगा — बल्कि उससे भी बुरा[1]।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१५६. पत्र : एस्थर फैरिंगको

रविवार [२] मई, १९२०[2]

रानी बिटिया,

मुझे नहीं मालूम कि तुम [बम्बई] आ गई हो या नहीं।[3] अगर आ गई हो तो सिंहगढ़ अवश्य आओ। यह बहुत ही रमणीक स्थान है। पूनासे तांगेमें यहाँ आया जा सकता है। यदि मुझे [तुम्हारे आनेका] पता चल जाये तो मैं आसानीसे सारा प्रबन्ध कर दूंगा। परन्तु मैं जानता हूँ कि तुम स्वयं ही सब प्रबन्ध कर सकती हो। सिंहगढ़ पूनासे १३ मील है और तांगेवाले वहांसे कमसे-कम पांच रुपया भाड़ा लेते हैं। कभी-कभी इससे कुछ अधिक भी।

सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१५७. पत्र : वी० कृपलानीको[4]

२ मई, १९२०

मैं मानता हूँ, आपका पौत्र[5] आश्रममें रहकर जैसी अच्छी प्रगति कर रहा है वैसी अन्यत्र नहीं कर सकता था। जिस बालकके सम्बन्धमें ऐसा नहीं मानूंगा उसे कभी आश्रममें नहीं रखूंगा। मेरे विचारसे आश्रमकी शिक्षा एक ऐसी सर्वतोमुखी शिक्षा है जिसे पूरा करनेपर कोई भी बालक उतने ही वर्ष किसी अन्य स्थानपर शिक्षा प्राप्त करके

१. देखिए "मैं खिलाफत क्यों जाऊँ?", २५-४-१९२०।

२. यह पत्र स्पष्टतः सिंहगढ़से लिखा गया था, जहाँ गांधीजी २९ अप्रैलसे ४ मईतक ठहरे थे और इन तारीखोंमें पड़नेवाला एकमात्र रविवार २ मईको था।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

४. जे० बी० कृपलानीके पिता।

५. गिरधारी, जे० बी० कृपलानीका भतीजा।

जितना कमा सकता है, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक कमा सकता है। मतलब यह कि यहाँकी शिक्षाके परिणामस्वरूप उसमें अधिक आत्म-विश्वास आता है। हाँ, मैं यह मानता हूँ कि आश्रममें बालकोंको बार-बार यह सिखाया जाता है कि शिक्षा चरित्र-निर्माणका साधन है, धन कमानेका नहीं। आश्रममें हम बालकोंको धनकी लालसासे निरन्तर विमुख करते रहते हैं। मैं आपको यह सलाह दूँगा कि गिरधारीपर किसी विशेष संस्थामें जानेके लिए दबाव न डालें वरन् उसे जहाँ वह चाहे वहीं रखें। उसमें अपना रास्ता खुद चुननेकी पूरी योग्यता है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१५८. पत्र : लालचन्दको

२ मई, १९२०

प्रिय लालचन्द[1],

२८ अप्रैलके 'यंग इंडिया' में तुम्हारी सब टिप्पणियाँ पढ़ गया। पहली काफी अच्छी है, दूसरी बुरी नहीं है, यद्यपि कमजोर है और उसमें प्रवाह नहीं है। तीसरीकी सामग्री अच्छी है, परन्तु विवेचनका ढंग अच्छा नहीं। चौथीकी सामग्री और ढंग, दोनों खराब हैं। सामग्री खराब इस तरह है कि तुम्हें जानना चाहिए कि कांग्रेस शिष्टमण्डल विलायत नहीं जा रहा है और अगर तुम यह बात नहीं जानते थे, तो तुम्हें पता लगा लेना चाहिए था। इसका ढंग इस तरह खराब है कि यह 'यंग इंडिया' की शैलीमें नहीं लिखी गई है। पाँचवीं टिप्पणी सामग्रीकी दृष्टिसे बहुत अच्छी है, परन्तु एक महिलाके साथ किये गये दुर्व्यवहारके महत्त्वपूर्ण मामलेके साथ तुमने शायद ही न्याय किया है। मेरी आलोचनाका उद्देश्य तुम्हें डरा देना नहीं है। इसका मात्र उद्देश्य तुम्हें इस बातकी चेतावनी दे देना है कि भविष्यमें तुम विषयके चुनाव और उनके विवेचनके ढंगमें अधिक सावधानी बरतो। सिर्फ विषयोंकी विविधता न रहनेसे 'यंग इंडिया' दोषपूर्ण नहीं दिखाई देने लगेगा। लेकिन अगर चुने गये विषयमें मौलिकता न हो, जो जानकारी दी जाये वह यथातथ्य न हो और विवेचनका ढंग जोरदार न हो तो यह अवश्य घटिया दिखाई देगा। और अगर तुम अपनी टिप्पणियोंमें उपर्युक्त गुण लाना चाहते हो तो तुम्हें गहरा अध्ययन करना पड़ेगा और तभी तुम्हारे भीतर प्रबुद्ध आत्मविश्वास जगेगा। अतएव इसकी चिन्ता मत करो कि विषयोंकी संख्या कितनी है। सिर्फ गहराईमें उतरनेकी परवाह करो। अपने विषयको बाहरसे परखो, भीतरसे

१. यंग इंडियाके सम्पादकीय विभागके एक सदस्य।

परखो, उसपर सम्यक् रूपसे मनन करो और फिर तुम सहज ही 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें प्राण फूंक दोगे। ताजे अंकमें खुद अपने लेखोंको दोबारा पढ़नेपर देखता हूँ कि कई हिस्सोंमें वह जोर नहीं है जो आमतौरपर मेरे लेखोंमें हुआ करता है। खादी-सम्बन्धी लेख[1] सबसे अच्छा बन पड़ा है, परन्तु उसके आखिरी पैरेको देखनेसे मालूम होता है कि उसे लिखते वक्त या तो मैं आधी नींदमें रहा होऊँगा या लापरवाही बरत रहा होऊँगा। 'किसीके उसे इस्तेमाल करनेके लिए अनिच्छुक होनेपर भी' (Even if one is disinclined to use it) इसके तुरन्त बाद यह वाक्य आता है: 'कोई उसे इस्तेमाल करनेके लिए इच्छुक न हो, तो भी' (Even if one is inclined to use it)। "इस्तेमाल" शब्द चार पंक्तियोंमें चार बार आया है। ऐसे घटिया वाक्य मैं कभी भी किसी अच्छे लेखमें नहीं चलने दूंगा। परन्तु तुमने चलने दिया। तुमने ऐसा किया, इसका मुझे कोई दुःख नहीं, क्योंकि जबतक मुझे तुम्हारी शैलीके बारेमें भरोसा न हो जाये, तबतक अपनी बीमारी, सुस्ती या लापरवाहीकी सजा भुगतनी ही होगी।

अब असहयोगपर मेरा लेख लो।[2] इसमें सामग्री तो सब ठोस है, लेकिन वह ठीक ढंगसे रखी नहीं गई है। मैं जानता हूँ कि मैंने उसे कितनी कठिन परिस्थितिमें लिखा है, परन्तु इसी कारण मैं पाठकोंसे यह अपेक्षा नहीं कर सकता कि वे लापरवाहीसे लिखे हुए लेखोंको दरगुजर कर देंगे। मेरा पहला लेख बहुत हदतक पठनीय है, लेकिन वही लेख अगर मैं सिंहगढ़में लिखता, तो कुछ दूसरे ही ढंगसे लिखा जाता। घोषणा-पत्र[3] मेरी पसन्दकी चीज है। उसकी शैली सुन्दर है, अभिव्यक्ति स्पष्ट है और मेरी सारी बातें बहुत सुन्दर और सुगठित ढंगसे सामने आ पाई हैं। मैं इसे और भी अच्छे ढंगसे लिख सकता था, परन्तु जैसा है, वैसा भी वह लेख अच्छा है।

अब विचारके लिए मैंने तुम्हें काफी सामग्री दे दी है। मुझमें जो उत्तम हो, उसे लेनेके लिए तुम मेरे पास आये हो। तुममें जो उत्तम हो, वह देशको दो और हर नये हफ्तेमें अपने कामका स्तर पिछले हफ्तेसे ऊपर उठाओ। ऐसा करनेके लिए तुम्हें स्वदेशीका अध्ययन करना होगा। दत्त, राधाकमल मुखर्जी, वैरो और हिन्दुस्तानके उद्योगोंपर लिखनेवाले अन्य सभी लेखकोंकी चीजें पढ़ डालो। तुम्हें सरकारी रिपोर्टें (ब्लू बुक्स) और आंकड़ोंके सार पढ़ते रहना चाहिए और हर हफ्ते आंकड़ों और तथ्योंसे पाठकोंको सराबोर करते रहना चाहिए। मुझसे यह मत कहना कि तुम्हारे पास पुस्तकालय नहीं है। अहमदाबाद जाकर सारे पुस्तकालय छान डालो और जो जरूरी चीजें मिल सकें उन्हें ढूंढ़ निकालो। इसी प्रकार हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओंके प्रश्नको समझनेके लिए इंग्लैंडमें नॉर्मन-युगमें लोगोंको फ्रेंचसे जो मोह हो गया था उसका इतिहास, कुछ अंग्रेजी-प्रेमी लोगोंने किस प्रकार अंग्रेज राष्ट्रको बचाया उसकी कहानी, रूसमें सिर्फ एक प्रोफेसरकी मेहनत और लगनके कारण किस तरह रूसकी शिक्षा-पद्धति-

१. देखिए "खद्दरका उपयोग", २८-४-१९२०।
२. देखिए "असहयोग", २८-४-१९२०।
३. देखिए "ऑल इंडिया होमरूल लीगके सदस्योंसे", २८-४-१९२०।

में क्रांति हो गई उसका विवरण, और किस तरह लगभग उसी समयसे रूसका राष्ट्रीय जागरण प्रारम्भ हुआ उसका वृत्तान्त पढ़ना चाहिए। भाषावार क्षेत्रीय विभाजनका प्रश्न लो। मेरे कागजातमें इस विषयपर संग्रह की हुई कुछ सामग्री मिल जायेगी। परन्तु तुम स्वयं भी सामग्री एकत्र कर सकते हो। हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें तुम्हें खिलाफतके सवालपर अधिकार पाना है। तुम्हें श्री वैंकरसे अंग्रेजी साप्ताहिक 'न्यू एज', 'नेशन' वगैरह प्राप्त कर लेने चाहिए। टर्कीके इतिहासका अध्ययन करो। उस-पर जो झूठे आरोप लगाये जा रहे हैं, उन सभीका इस प्रश्नके एक अध्येताकी तरह उत्तर दो। इन सबमें जब तुम्हारा वित-व्यवस्था-सम्बन्धी ज्ञान मिल जायेगा, तब तुम्हें हर हफ्ते परोसनेके लिए काफी सामग्री मिल जायगी।

मेरा सुझाव यह है कि यह पत्र तुम फाड़ न डालना। बल्कि इसे बार-बार सावधानीसे पढ़ो और मैं तुमसे क्या अपेक्षा रखता हूँ, उसकी याद दिलानेवाली चीजके तौरपर इसे सुरक्षित रखो। बेशक पटवर्धनको[1] तो यह पढ़वा ही देना। लेकिन इसमें मैंने तुमपर जो जिम्मेदारियाँ डाली हैं, उनमें उनको हिस्सेदार न बनाना। कारण सिर्फ इतना है कि 'यंग इंडिया' का सम्पादन करनेका दायित्व अभीतक मैंने उनपर नहीं डाला है। उन्होंने जो दायित्व लिया है, स्वेच्छासे लिया है और बहादुरीके साथ लिया है; लेकिन अभीतक मैंने यह निश्चय नहीं किया है कि उन्हें कहाँ रखना है। अब-तक 'यंग इंडिया' के लिए उन्होंने जो-कुछ किया है उसे मैं भेंट-स्वरूप मानता हूँ और उसके लिए उनका आभारी हूँ। परन्तु जैसे मैं तुम्हारी कलमसे निकली हुई हर चीजकी आलोचना करूँगा, वैसे ही उनके कामकी आलोचना नहीं करूँगा।

दो अलग-अलग विचारोंको एक साथ मिलाकर उलझनमें न पड़ो। तुम वेतन लेते हो, इसलिए तुम्हारे और पटवर्धनके काममें फर्क नहीं पड़ता। तुम मेरे पास खास तौरपर 'यंग इंडिया' के लिए ही आये हो। पटवर्धन इसलिए आये हैं कि उन्हें कोई भी काम सौंप दूँ। मगनलाल वेतन नहीं लेता, लेकिन उसके अधीनस्थ विभागके कामको लेकर मैं बड़ी बेरहमीसे उसकी आलोचना करता हूँ। और जब पटवर्धनको भी किसी विभागका प्रधान बना दूंगा, तो उनके प्रति भी इसी प्रकार व्यवहार करूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१. अमरावतीके यादवड़कर पटवर्धन, जिन्होंने बिना किसी मानदेयके एक सालसे अधिक समय तक **यंग इंडिया**में उप-सम्पादकके रूपमें काम किया था।

१५९. पत्र : सैयद फजलुर्रहमानको

२ मई, १९२०

ब्रिटिश मालका बहिष्कार करना[1] अंग्रेजोंको सजा देना है। मैं ब्रिटिश माल खरीदूँ, इससे ब्रिटिश राज्य जो अन्याय करता हो, उसमें शरीक नहीं हो जाता। परन्तु जब सरकार अन्याय कर रही हो, तब उसके साथ सहयोग करूँ तो सरकारके अन्यायमें हिस्सेदार बनता हूँ। इसलिए अन्यायी सरकारके साथ असहयोग करना धर्म हो जाता है। यदि प्रभावशाली मुसलमानोंकी भीरुता और हिन्दुओंकी उदासीनताके कारण आम मुस्लिम जनता असहयोग न कर सकी[2], तो उसका अनिवार्य परिणाम एक खूनी क्रान्ति होगी; ——बशर्ते कि खिलाफतके प्रश्नका फैसला मुसलमानोंके पक्षमें न हुआ। परन्तु अगर उपर्युक्त दोनों वर्ग मुसलमान जनताकी भावनाकी गहराईको समझें, तो वे असहयोगको पूरी तरह सफल बना सकते हैं और अभीष्ट परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

मो० क० गां०

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१६०. पत्र : मगनलाल गांधीको

२ मई, १९२०

मैंने कल महादेवसे अनायास पूछा कि तुम्हें मगनलालके सन्तापका कुछ कारण मालूम है? इसपर मोटरके बारेमें हुई बातचीतके सिलसिलेमें तुम्हारे उद्‌गार उसने मुझे बताये। फिर भी मैं इस समय उनमें से एकका भी जवाब नहीं दूँगा। तुम्हारे पत्रकी राह देखूँगा। आज तो तुम्हारा पत्र आना ही चाहिए था। अन्यथा मुझे तो जवाब ही क्या देना है? परन्तु तुम्हें शान्ति मिले, ऐसे वचन तो लिखूँ ही किन्तु वह तुम्हारा पत्र आनेपर ही।

राधाकी बात तो लिख ही डालूँ। मुझे उसका विवाह नहीं करना है। परन्तु मैंने तुम्हारी चिन्ताको समझा, इसीलिए उसपर विचार किया और अपना निर्णय दिया। यदि अब उस लड़कीके बारेमें तुम्हारा विचार दृढ़ हो गया हो और तुम संतोकको

१. जिसकी हिमायत खिलाफतके कुछ कार्यकर्ता, विशेषकर मौलाना हसरत मोहानी कर रहे थे।

२. देखिए "भाषण : खिलाफतपर", १९–३–१९२० की पाद-टिप्पणी १।

भी राजी कर सको, तब तो मैं राधाके अखण्ड ब्रह्मचर्यको ही आश्रमकी सबसे बड़ी सफलता मानूंगा। राधाके बारेमें और विवाहके बारेमें मेरे उद्‌गार और विचार जो थे, वही हैं। देवदासका विश्लेषण यह है कि मेरे विचार तो ज्योंके-त्यों ही हैं, परन्तु औरोंके प्रति मेरी उदारता बढ़ी है; अथवा उसे तुम शिथिलता भी कह सकते हो। मुझे जो यह अधीरता रहती थी कि दूसरे लोग भी मेरे जैसे विचार रखें — वह अधीरता विचार और अनुभवसे जाती रही।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

१६१. पत्र : स्वामी श्रद्धानन्दको

२ मई, १९२०

भाई साहब,

आपका पत्र मिला। सरकारी नौकरोंसे, नौकरी छोड़नेको तभी कहा जायेगा, जब उनके लिए खाने-पीनेकी योजना ठीक बनाई जायेगी। इस बारेमें मुसलमान भाइयोंके साथ मैं मसलत कर रहा हूँ। देश-त्याग[1] करनेकी सलाह मैंने किसीको न तो दी है, न दे सकता हूँ। कितनेक मुसलमान भाइयोंका हिजरत करनेका अभिप्राय अवश्य है। उनको हम नहीं रोक सकते हैं। उससे भी हिजरतका नतीजा नहीं आ सकता है, ऐसा बता रहा हूँ। यदि सत्याग्रह [की] दृष्टिसे हम हिन्दुस्तानका त्याग करें तब उसमें सरकारपर कुछ भी दबाव पड़नेका खयाल नहीं आ सकता। मेरी रायमें हिन्दुओंको[2] हिन्दुस्तान छोड़नेका मौका तो तब आ सकता है, जब कोई हिन्दू राजा होगा और प्रजा उसके साथ मिलकर हिन्दू-धर्मका पालन ही अनिवार्य कर देगी। यदि सरकार-का असहकार करनेमें इस समय हम असमर्थ होंगे तो इसका अर्थ मैं ऐसा ही निका-लूँगा कि मुसलमानोंकी धर्म-वृत्ति क्षीण हो गई है। हर कोई देख सकता है कि इस खिलाफतके प्रश्नमें इस्लामको बड़ा धोखा पहुँचानेकी बात है। यदि ऐसे समयपर भी मुसलमान जान-मालकी कुरबानी करनेके लिए तैयार न हों तब तो उनमें धार्मिकताका लोप हो गया है, ऐसा ही कह सकते हैं। यदि ऐसा बुरा परिणाम आ जाये तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा क्योंकि मैं संसारमें भ्रमण करता हुआ कलिकालकी महिमाको देख रहा हूँ। धर्मकी भावना हरेक जगह बहुत ही मन्द हो गई है और अनेक कार्य

१. कुछ खिलाफत कार्यकर्ताओंने कहा था कि इस सवालका सन्तोषजनक निपटारा न होनेपर सभी धार्मिक मुसलमानों द्वारा भारतसे अफगानिस्तानको हिजरत करनेकी बात भी सोची जा सकती है। यहाँ गांधीजीका तात्पर्य शायद इसी सुझावसे है।

२. स्पष्ट ही यहाँ "हिन्दुओंको", के स्थानपर "मुसलमानोंको" होना चाहिए, हालाँकि इस पत्रके साधन-सूत्र **महादेवभाईनी डायरीमें** ऐसा ही दिया गया है।

जो धर्मके नामसे होते हैं उसमें भी अधर्म देख रहा हूँ। यदि मैंने जो लिखा है वह स्पष्ट नहीं होगा तो आप मुझे फिर भी पूछेंगे।

गुरुकुलका[1] कार्य अब अच्छी तरहसे चलता होगा। अब चार दिनसे इस एकान्त स्थानमें आया हूँ।[2]

आपका,
मोहनदास

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

१६२. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

३ मई, १९२०

प्रिय सरला,

जनकको इस अनुभूतिसे कि मैं 'पूर्ण ब्रह्म हूँ' आनन्दविभोर देखकर अष्टावक्र तीसरे अध्यायमें उनकी स्थितिपर शंका प्रकट करते हुए कहते हैं :

अविनाशिनमात्मानमेकं विज्ञाय तत्त्वतः।
तवात्मज्ञस्य धीरस्य कथमर्थार्जने रतिः ॥ १ ॥
आत्माज्ञानादहो प्रीतिः विषयभ्रमगोचरे।
शुक्तेरज्ञानतो लोभो यथा रजतविभ्रमे ॥ २ ॥
विश्वं स्फुरति यत्रेदं तरङ्गा इव सागरे।
सोऽहमस्मीति विज्ञाय किं दीन इव धावसि ॥ ३ ॥
श्रुत्वाऽपि शुद्धचैतन्यमात्मानमतिसुन्दरम्।
उपस्थेऽत्यन्तसंसक्तो मालिन्यमधिगच्छति ॥ ४ ॥[3]

१. स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल काँगड़ी, हरद्वार।

२. गांधीजी सिंहगढ़में एकान्तवास कर रहे थे।

३. अष्टावक्र बोले :

(१) आत्माको तत्त्वतः एक और अविनाशी जान लेनेके बाद तुझ-जैसे आत्मज्ञ और धीरकी अर्थोपार्जनमें प्रीति कैसे होती है?

(२) जैसे सीपके अज्ञानसे चाँदीका विभ्रम होनेपर उसमें लोभ उत्पन्न होता है, वैसे ही अरे, आत्माके अज्ञानसे विषय-रूपी भ्रमात्मक वस्तुओंमें प्रीति होती है।

(३) जहाँ यह विश्व सागरमें तरंगोंकी तरह स्फुरित होता है, वह मैं ही हूँ, यह जानकर (भी) तू दीनकी तरह क्यों भागता है?

(४) आत्मा शुद्ध चैतन्य-रूप और अति सुन्दर है, यह सुन लेनेपर भी जो विषयेन्द्रियके प्रति अत्यन्त आसक्त रहता है, वह मलिनताको प्राप्त होता है।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
मुनेर्जानत आश्चर्यं ममत्वमनुवर्त्तते ॥ ५ ॥
आस्थितः परमाद्वैतं मोक्षार्थेऽपि व्यवस्थितः।
आश्चर्यं कामवशगो विकलः केलिशिक्षया ॥ ६ ॥
उद्भूतं ज्ञानदुर्मित्रमवधार्यातिदुर्बलः।
आश्चर्यं काममाकाङ्क्षेत् कालमन्तमनुश्रितः ॥ ७ ॥
इहामुत्र विरक्तस्य नित्यानित्यविवेकिनः।
आश्चर्यं मोक्षकामस्य मोक्षादेव विभीषिका ॥ ८ ॥
धीरस्तु भोज्यमानोऽपि पीड्यमानोऽपि सर्वदा।
आत्मानं केवलं पश्यन् न तुष्यति न कुप्यति ॥ ९ ॥
चेष्टमानं शरीरं स्वं पश्यत्यन्यशरीरवत्।
संस्तवे चापि निन्दायां कथं क्षुभ्येन्महाशयः ॥ १० ॥
मायामात्रमिदं विश्वं पश्यन् विगतकौतुकः।
अपि सन्निहिते मृत्यौ कथं त्रस्यति धीरधीः ॥ ११ ॥
निःस्पृहं मानसं यस्य नैराश्येऽपि महात्मनः।
तस्यात्मज्ञानतृप्तस्य तुलना केन जायते ॥ १२ ॥
स्वभावादेव जानाति दृश्यमेतन्न किंचन।
इदं ग्राह्यमिदं त्याज्यं स किं पश्यति धीरधीः ॥ १३ ॥[1]

१. (५) आत्माको सर्वभूतोंमें और सर्वभूतोंको आत्मामें जाननेवाला मुनि भी ममत्वके पीछे पड़ता है, यह आश्चर्य है।

(६) आश्चर्य है कि परम अद्वैतमें स्थित हुआ और मोक्षके लिए प्रयत्न करनेवाला (मनुष्य) भी भोगके अभ्यासके कारण कामके वश होकर व्याकुल हो जाता है।

(७) आश्चर्य है कि काम ज्ञानका शत्रु है, यह जानकर भी अतिदुर्बल और अन्तकालके निकट पहुँचा हुआ (मनुष्य) विषय-भोगकी आकांक्षा रखता है।

(८) लोक-परलोक, दोनोंके प्रति विरक्त, नित्य-अनित्यका विवेक करनेवाला और मोक्षकी इच्छावाला मनुष्य मोक्षसे ही डरता है, यह आश्चर्य है।

(९) भोग भोगते और पीड़ित होते हुए भी धीर मनुष्य जो सदा केवल आत्माको ही देखता रहता है, न तो प्रसन्न होता है, न कोप करता है।

(१०) जो अपने प्रवृत्तिमय शरीरको दूसरेके शरीरकी तरह देखता है, वह महाशय स्तुति अथवा निन्दासे कैसे क्षुब्ध होगा?

(११) जो इस विश्वको केवल मायारूप ही देखता है, जिसमें उसके प्रति कुतूहल नहीं रहा, वह धीर बुद्धिवाला मनुष्य मृत्यु निकट होते हुए भी कैसे त्रस्त होगा?

(१२) आत्मज्ञानसे तृप्त जिस महात्माका मन निराशामें भी निःस्पृह रहता है, उसकी तुलना किसके साथ हो सकती है?

(१३) यह दृश्य (विश्व) मूलमें ही कुछ नहीं है, यह जाननेवाला धीर बुद्धिवाला (मनुष्य) क्या यह देखता है कि यह ग्राह्य है और यह त्याज्य है?

अन्तस्त्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः।
यदृच्छयाऽऽगतो भोगो न दुःखाय न तुष्टये ॥ १४ ॥[1]

जनक अपनी स्थितिमें शंका प्रकट की जानेपर भी अपनी आनन्दातिरेककी अवस्था कायम रखते हुए चौथे अध्यायमें जवाब देते हैं:

हन्तात्मज्ञस्य धीरस्य खेलतो भोगलीलया।
नहि संसारवाहीकैर्मूढैः सह समानता ॥ १ ॥
यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः।
अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति ॥ २ ॥
तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शो ह्यन्तर्न जायते।
नह्याकाशस्य धूमेन दृश्यमानापि संगतिः ॥ ३ ॥
आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातं येन महात्मना।
यदृच्छया वर्तमानं तं निषेद्धुं क्षमेत कः ॥ ४ ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ते भूतग्रामे चतुर्विधे।
विज्ञस्यैव हि सामर्थ्यमिच्छानिच्छाविसर्जने ॥ ५ ॥
आत्मानमद्वयं कश्चिज्जानाति जगदीश्वरम्।
यद्वेत्ति तत्स कुरुते न भयं तस्य कुत्रचित् ॥ ६ ॥[2]

तुम देखोगी कि चौथे अध्यायके श्लोक कुछ खतरनाक-से हैं। वह नाजुक मेदेको भारी पड़नेवाली खुराक है। सभी अध्यायोंका विस्तार समान नहीं है। उदाहरणके लिए तीसरे अध्यायमें चौदह श्लोक हैं, जब कि चौथेमें केवल छः ही हैं।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. (१४) कषायका जिसने अन्तरसे त्याग कर दिया है, जो निर्द्वन्द्व है और जो आशासे रहित है उसे सहज प्राप्त होनेवाला भोग न दुःखकर होता है और न सुखकर ही।

२. (१) अरे, भोगलीलासे क्रीड़ा करते हुए और आत्मज्ञानी धीर (मनुष्य) के साथ संसारका भार वहन करनेवाले मूढ़की तुलना ही नहीं हो सकती।

(२) इन्द्रादि सब देवता जिस पदकी इच्छा करते हैं और (जिसे न पाकर) लाचार हो जाते हैं, उस पदमें स्थिर हुआ योगी हर्षको प्राप्त नहीं होता।

(३) इसे (आत्मपदको) जाननेवालेको अन्तरमें पाप-पुण्यका वैसे ही स्पर्श नहीं होता, जैसे इस प्रकार दिखाई देनेपर भी आकाशको धुएंका संग नहीं होता।

(४) जिसने यह जान लिया है कि यह सारा जगत् आत्मरूप ही है, उस महात्माको सहज क्रियाएँ करनेसे कौन रोक सकता है?

(५) ब्रह्मासे लेकर तृणतक चार प्रकारकी भूतसृष्टिमें केवल ज्ञानीमें ही इच्छा-अनिच्छाको त्यागनेकी शक्ति है।

(६) (अपनी) आत्मा और जगदीश्वरको विरला ही अद्वैतरूप जानता है। वह जैसा जानता है, वैसा ही आचरण करता है। उसे किसीका भी डर नहीं।

१६३. पत्र : मगनलाल गांधीको

सिंहगढ़

वैशाख वदी १, [४ मई, १९२०][1]

आज तुम्हारी डाक मिली। तुम्हें मुझे लिखनेको समय नहीं मिला, इसलिए भाई महादेवसे जो-कुछ सुना है, उसीके आधारपर लिखकर जितनी शान्ति तुम्हें दी जा सके, उतनी देना चाहता हूँ।

१. मोटरके बारेमें मैंने पुछवाया ही क्यों? यही मेरी शिथिलता बताता है।

२. गुरुदेव[2] तथा फातिमाके[3] बारेमें जो किया, उसमें समय और रुपया बहुत व्यय हुआ। फल कुछ भी नहीं अथवा थोड़ा ही निकला।

३. प्रवृत्तियाँ मेरे पास आती हैं, मैं उन्हें ढूँढ़ने नहीं जाता, यह वाक्य ठीक नहीं।

४. सरला देवीने गादीपर बैठकर खाया। मैं भी वहीं बैठकर खाता हूँ। ऐसी क्या जल्दी? क्या मैं और वे ठीक जगहपर बैठकर खायें तो अधिक समय लगनेकी सम्भावना है? और लगे भी तो ऐसी क्या उतावली?

५. मुझमें जो कट्टरता पहले थी, वह अब जाती रही।

६. मेरी बाह्य प्रवृत्तियोंसे आश्रम और हिन्दुस्तानकी हानि हुई है।

७. सच पूछा जाये तो मुझे सब-कुछ छोड़कर आश्रममें ही बैठकर उसके काम — पाठशाला इत्यादिमें रम जाना चाहिए। अब कोई मुझपर थक जानेका आरोप नहीं लगायेगा।

८. राधाके विवाहके बारेमें।

९. मुझमें जो तेज पहले था, जिसके कारण मेरी सबको सुननी पड़ती थी, वह तेज अब जाता रहा।

ये अथवा ऐसे प्रश्न तुम्हारे मनमें आयें, इसे मैं स्वाभाविक मानता हूँ। इसपर भी जब मैं दूर होऊँ, आश्रममें रहते हुए भी दूर जैसा ही रहूँ, तब मेरी अनेक प्रवृत्तियोंके कारण बहुतसी समस्याएँ पैदा होंगी ही। मोटरके बारेमें मैंने पुछवाया, क्योंकि हमने अनेक उपाधियाँ लगा ली हैं। आर्थिक दृष्टिसे मुझे मोटरउपयोगी मालूम हुई। मोटरका उपयोग तो होता ही रहता है। इसलिए मोटरकी भेंट ली जा सकती है या नहीं, इसका जवाब [दूसरोंकी सलाह लिये बिना] स्वयं देना मुझे ठीक नहीं लगा। दो

१. यह पत्र **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड ५ में ३ मईके अन्तर्गत दिया गया है; चूँकि गांधीजी सिंहगढ़से ४ मईको चल दिये थे इसलिए यह तारीख ज्यादा ठीक मालूम होती है।

२. रवीन्द्रनाथ ठाकुर २ अप्रैल, १९२० को आश्रममें पधारे थे उस अवसरपर उनका स्वागत किया गया था।

३. इमाम अब्दुल कादिर बावजीरकी लड़की जिसका विवाह आश्रममें सम्पन्न हुआ था; देखिए "विवाहका निमंत्रण-पत्र", २०-४-१९२० तथा "तीन प्रसंग", ९-५-१९२०।

दिनतक तो मैंने इस विचारका खूब मुकाबला किया। किन्तु लायलकी[1] याद आने-पर मैं ढीला पड़ा, और ऐसा लगा कि तुम्हारी भी इच्छा हो जाये, तो मैं मोटरकी भेंट ले लूँ। परन्तु मुझे मोटरका मोह तो इतना कम है कि अक्सर मैंने यह चाहा है कि अनसूयाबेनकी मोटर टूट जाये। फिर भी इतना सही है कि जितना बड़ा विरोध पहले था, उतना अब नहीं है। इसलिए यह प्रश्न पूछनेमें तुम मेरी शिथिलता मानो, तो मैं ठीक ही समझूंगा।

गुरुदेवके बारेमें तो मैं केवल साक्षी ही रहा। तुम सबकी इच्छाके अनुसार चला हूँ। मैं खुद तो मेहराबों वगैरामें न पड़ता। उनकी पूजा करनेका कुछ-न-कुछ आसान रास्ता ढूंढ़ निकालता। जो-कुछ हुआ, उसके बारेमें मैं बिलकुल तटस्थ हूँ। मैं मानता हूँ कि उनका सुन्दर ढंगसे स्वागत करना हमारा कर्त्तव्य था। मुझे ऐसा नहीं लगा कि उसमें लगनेसे विद्यार्थियोंकी कोई हानि हुई है। यह बात ध्यानमें रखने लायक है कि इसमें उन्होंने अपने सेवा-धर्मका आचरण किया। और गुरुदेव तो बहुत असाधारण व्यक्ति हैं। उनमें कवित्व, साधुता और देश-प्रेम है। यह मेल अलौकिक है। वे पूजाके योग्य हैं, उनकी सरलता कैसी अद्भुत है!

फातिमाके लिए जो हुआ, वह तो मुझे लगता है बिलकुल ठीक हुआ। इमाम साहब मुसलमान हैं, इतना याद रखें, तो हमें महसूस होगा कि हमने कुछ भी अधिक नहीं किया। हर कदम विचारपूर्वक उठाया गया है। हम यह स्वीकार कर लें कि हम उसका विवाहोत्सव मनानेको बँधे हुए थे[2], तो सब-कुछ ठीक ही हुआ है। फिर भी इमाम साहब अधिक सादगी रख सकते थे। जेवर कुछ भी न बनवाते तो अधिक अच्छा कहलाता। परन्तु इतनी ज्यादा आशा कैसे की जाये? इस मामलेमें मैं तुम्हें अधिक सन्तोष देना चाहता हूँ।

यह निश्चित मानो कि प्रवृत्तियाँ मैं हरगिज नहीं ढूंढ़ता। तुम्हें ऐसी कौनसी प्रवृत्ति दिखाई दी, जिसे मैंने ढूंढ़ा हो। खिलाफतमें मैं न पड़ूं तो समझूंगा कि सर्वस्व खो दिया। उसमें तो मेरा सारा विशेष धर्म आ गया। उसके द्वारा मैं अहिंसाका स्वरूप दिखा रहा हूँ, हिन्दू-मुसलमानोंको एक कर रहा हूँ, सबके सम्पर्कमें आ रहा हूँ। और यदि असहयोग अच्छी तरह चले, तो महा-पशुबलको एक सादी-सी लगनेवाली चीजके सामने झुकना पड़ेगा। खिलाफत भारतीय समुद्रका मन्थन करनेवाली भारी मथनी है। उसमें से क्या निकलेगा, इसके साथ हमारा क्या सम्बन्ध? हमें केवल इतना ही देखना है कि यह प्रवृत्ति शुद्ध और उचित है या नहीं। जिन-जिन विषयोंमें मैंने शक्तिका विकास किया है उन्हें मैं हरगिज नहीं छोड़ सकता। मेरा मोक्ष भी उन्हींमें लगे रहनेसे सम्भव है। यदि मैं ऐसा न करूँ तो आश्रम द्वारा भी मैं कुछ नहीं दे सकता। ऐसे ही कारणोंसे डोकने मुझे मार्गदर्शक माना था। अपनी पुस्तकका नाम उन्होंने 'पाथ-फाइंडर' अथवा 'जंगल-ब्रेकर' रखना चाहा था, परन्तु पोलकका सुझाव मानकर उन्होंने वह नाम[3] रखा,

१. ईसाई मिशनरी, जो आश्रममें अंग्रेजी पढ़ाने आते थे।
२. क्योंकि उसके माता-पिता आश्रमके पूरे समयके कार्यकर्त्ता थे।
३. जोसेफ जे० डोक लिखित **एम० के० गांधी : एन इंडियन पैट्रिअट इन साउथ आफ्रिका।**

जो अब है। आश्रम स्थापित करके भी मैंने मार्ग दिखाया है। उस रास्ते जाना और मुकामपर पहुँचना तुम्हारा और जो शरीक हुए हैं, उनका काम है। ऐसा करते हुए यदि मैं ज्यादा जिया और शान्तिसे काम करनेका अवसर मिला तो अपने परिपक्व अनुभवके आधारपर आश्रमकी रेखाएँ मैं अधिक अच्छी खींच सकूँगा। लेकिन यह अलग प्रश्न है। परन्तु इस बारेमें तुम मुझसे खूब बहस कर सकते हो।

सरलादेवी तो उस दिन अकेली ही भोजन करनेवाली थीं। इसलिए उन्होंने वहीं भोजन किया। हमेशा तो रसोईघरमें ही खाती थीं। बीमार पड़नेके बाद जबसे मैं अनाज नहीं खाता, तबसे जहाँ बैठा होता हूँ, वहीं खा लेता हूँ। इसमें मैंने अपनी सुविधा देखी है। इसमें मेरी शिथिलता भी कही जा सकती है। तुम्हारी शिकायत तो ठीक ही है।

मुझमें जो कट्टरता पहले थी, वह लुप्त नहीं हुई है। मेरे विचार अधिक दृढ़ हुए हैं, उनमें अधिक सूक्ष्मता आई है। मेरा वैराग्य बढ़ा है। जो मुझे धुँधला दिखाई देता था, वह अब साफ दीखता है। मेरी सहनशीलता बढ़ी है। इससे दूसरोंके बारेमें मेरा आग्रह कम हुआ है।

मेरी बाह्य प्रवृत्तियोंसे हिन्दुस्तान और आश्रमने कमाई की है या खोया है, इसका उत्तर देना मैं अनावश्यक समझता हूँ।

यदि मुझे रास्ता सूझे तो मैं जरूर आश्रममें ही बैठ जाऊँ। परन्तु बात केवल मेरे ही हाथमें नहीं है। मैं चाहता हूँ कि मुझसे बात करके मुझे बाँध सको तो बाँध लो।

यह बात बिलकुल सच है कि मेरा असली तेज जाता रहा। बीमार पड़ जानेसे मैं अपंग बन गया। जबसे तुम सबके साथ खड़े होकर काम करनेकी मेरी शक्ति जाती रही तबसे मेरा तेज चला गया, यह मैंने स्वयं देख लिया। मेरे शरीरमें जो वज्रकी कठोरता थी, उसके बजाय कोमलता आ जानेसे मैं बहुत-सी चीजें सहन कर रहा हूँ। मुझे कभी किसीने हवा बदलनेके लिए जाते देखा भी था? [किन्तु] मैं आज ऐसा बन गया। मुझपर जो खर्च हुआ है, उसका विचार करता हूँ तब तो और भी ज्यादा घबराता हूँ। दूसरे दर्जेमें बैठते शरमाता हूँ। ऐसा होता है तब मेरी आत्मा क्लेश पाती है और अवश्य निस्तेज होती है। इसका उपाय ही नहीं है। मेरा सुन्दरतम काल चला गया। अब तो मेरे विचारोंसे जो-कुछ लिया जा सकता है, वही लेनेको रह गया। मैं जो आदर्श आचरणवाला था, सो खतम हो गया। मेरी ऐसी दयाजनक स्थिति है। इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। प्रसंगोपात्त उपर्युक्त उद्गार कई बार व्यक्त किये हैं।

परन्तु इन बातोंमें तुम्हें या मुझे निराश होनेका कोई कारण नहीं है। हम अपनी खामियाँ देख लें और जहाँतक सम्भव हो, उन्हें दूर करें। मेरे पचास वर्षोंमें तुम्हें बहुत सीखनेको मिला है, उसे संग्रह करो। उसपर इमारत बनाओ, स्वयं शोभायमान बनो और मुझे शोभान्वित करो। जहाँ तुम्हें दिक्कत हो, वहाँ मुझे बताओ। अपने-आप दूर कर सको, उन्हें दूर कर लो। घबराओ मत। इस पत्रमें कहीं भी अनर्थ हुआ हो तो उसे मनमें मत रखना, परन्तु उसकी सफाई करा लेना।

मैं तुम्हें परम शान्त और प्रफुल्लित देखना चाहता हूँ। शामलदासने मुझे रुपयेके लिए तार दिया है। उसे मैं इनकार लिख रहा हूँ। उसे रुपया हरगिज नहीं दिया जा सकता।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८६) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

१६४. दिल्लीकी विज्ञप्ति और अखबारोंको आदेश[1]

सरकारने दिल्लीमें खिलाफत आन्दोलनके दमनके लिए कदम उठाना शुरू कर दिया है, शुरुआत हुई है राजद्रोहात्मक सभाओंके अधिनियमके अन्तर्गत निकाली गयी विज्ञप्तिसे और धीरे-धीरे मुस्लिम अखबारोंका मुँह बन्द करनेकी कोशिशसे।

हमें इससे कोई आश्चर्य नहीं हुआ है। हमें समझ लेना चाहिए कि सरकार समितिके[2] प्रत्येक कदमकी पूर्व कल्पना कर लेगी और असहयोगकी योजनामें अड़ंगा लगायेगी। जबतक सरकार समझदारीसे और नरमीसे कार्रवाई करे तबतक उसे इसके लिए दोष भी नहीं दिया जा सकता। किन्तु जनताको इसके लिए भी तैयार रहना चाहिए कि शायद सरकार विवेक खो बैठे, बौखला जाये या पागलपन-भरी कार्रवाई करे। ओ'डायरशाहीका विस्फोट कहीं भी किसी भी दिन हो सकता है। लोगोंको इन सभी संभाव्य अवसरोंके लिए तैयार रहना चाहिए। तैयारी सीधी-सादी है। चाहे कुछ भी हो जाये, वे घबराये नहीं। उन्हें क्रोधमें न आना चाहिए। वे शरारती लोगोंके हाथोंका खिलौना न बनें और सरकारके पागलपनका उत्तर पागलपनसे न दें। कोई भी अपनी मनमानी न करे। यह याद रखना चाहिए कि खिलाफत आन्दोलनके सिलसिलेमें सविनय अवज्ञा, कमसे-कम इस समय तो, की नहीं जानी है। असहयोग भी अभी आरम्भ नहीं हुआ है। सरकारकी प्रत्येक आज्ञाका पूरा पालन किया जाये, सब कायदों और कानूनोंपर सचाईसे अमल किया जाये। केवल तभी असहयोग आन्दोलन सफल हो सकता है। इस महान् संघर्षपर युद्धके सारे नियम लागू होते हैं। सेना चुपचाप, शान्तिपूर्वक और सोच-समझकर आगे बढ़ती है। कोई भी दस्ता मनमानी नहीं करता। अनुशासन सफलताका मूलमन्त्र होता है। खिलाफतकी शान्ति-सेनापर भी ठीक यही बात लागू होती है। इस सेना द्वारा किये गये प्रहार तभी परिणामकारक होंगे जब

१. यह लेख गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गांधी स्मारक निधिमें सुरक्षित मसविदेके आधारपर उन्हींका लिखा हुआ माना गया है।

२. अखिल भारतीय खिलाफत समिति द्वारा नियुक्त उप-समिति जिसमें गांधीजी, शौकत अली और मौलाना अबुल कलाम आजाद थे।

अत्यन्त उत्तेजित किये जानेपर भी हिंसा न की जाये। सरकार अहिंसाके किसी नियमसे बँधी हुई नहीं है। असलमें किसी भी सरकारका अन्तिम सहारा हिंसा ही होती है। नेता मुकदमे चलाये जाने और नजरबन्द तथा कैद किये जाने आदिके लिए तैयार रहें। दूसरे लोग उनकी जगह लेनेके लिए तैयार हैं। जब हम शुद्धिकी इस प्रक्रियामें से निकलकर अपनी योग्यता सिद्ध कर चुकेंगे तभी हमारी जीत होगी, उससे पहले नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-५-१९२०

१६५. असहयोगको कार्यान्वित कैसे करें?

असहयोग-सम्बन्धी आशंकाओं और आलोचनाओंका उत्तर देनेका सबसे अच्छा तरीका शायद यह है कि असहयोगकी योजनाको अधिक विस्तारसे समझाया जाये। आलोचक यह अनुमान करते जान पड़ते हैं कि इस योजनाके संयोजक समस्त योजनाको एक साथ कार्यान्वित करना चाहते हैं।[1] किन्तु तथ्य यह है कि इसके संयोजकोंने इसकी निश्चित और क्रमानुगत चार अवस्थाएँ निर्धारित की हैं। पहली अवस्था है उपाधियोंका त्याग और अवैतनिक पदोंसे त्यागपत्र। यदि इसका कोई अनुकूल उत्तर नहीं मिला या जो मिला है वह अपर्याप्त हुआ तो दूसरी अवस्थाका आश्रय लिया जायेगा। दूसरी अवस्थामें पहलेसे ही बहुत-कुछ व्यवस्था करनी पड़े। निश्चय ही, तबतक एक भी नौकरको नौकरी छोड़नेके लिए नहीं कहा जायेगा जबतक या तो वह अपना और अपने आश्रितोंका पेट न भर सके या खिलाफत समिति इस बोझको न उठा सके। सब वर्गोंके नौकरोंको एक साथ नौकरी छोड़नेके लिए नहीं कहा जायेगा और एक भी सरकारी नौकरपर सरकारी नौकरी छोड़नेके लिए दबाव नहीं डाला जायेगा। और न एक भी निजी कर्मचारीको हाथ लगाया जायेगा। जिसका सीधा-सादा कारण यह है कि यह आन्दोलन अंग्रेजोंके विरुद्ध नहीं है। यह सरकार-विरोधी भी नहीं है। सहयोग इसलिए बन्द किया जायेगा कि लोगोंको एक अन्यायमें — एक वचन-भंगमें — एक गहरी धार्मिक भावनाको ठेस पहुँचानेमें साझेदार न होना चाहिए। यदि खिलाफत समितिके किसी भी सदस्य द्वारा किसी सरकारी नौकरपर कोई अनुचित दबाव डाला जायेगा या हिंसाका प्रयोग किया जायेगा या हिंसाके प्रयोगको उत्तेजना दी जायेगी तो स्वभावतः आन्दोलनकी प्रगतिमें रुकावट पैदा होगी। यदि पर्याप्त मात्रामें अनुकूल प्रतिक्रिया हुई तो आन्दोलनकी यह दूसरी अवस्था अवश्य ही पूरी तरह सफल होगी। क्योंकि यदि लोग सरकारकी नौकरी करना बन्द कर दें तो कोई भी सरकार टिक नहीं सकती — भारत सरकार तो और भी नहीं टिक सकती। इसलिए तीसरी अवस्था, जिसमें लोगोंसे पुलिस और सेनासे निकल आनेको कहा जायेगा, दूरस्थ उद्देश्य है, किन्तु संयोजक न्याय और औचित्यका पालन करना और सन्देहसे परे रहना चाहते

१. देखिए "भाषण: खिलाफतपर", १९-५-१९२० की पाद-टिप्पणी १।

हैं। वे सरकार या जनतासे ऐसा एक भी कार्य छुपाना नहीं चाहते जिसे वे किसी अवसरपर तनिक भी काममें लानेका खयाल करते हों। चौथी अवस्था अर्थात् करबन्दी इससे भी बादकी बात है। संयोजक मानते हैं कि सामान्य करोंको बन्द करनेमें सबसे अधिक जोखिम है। इसमें एक भावनाशील वर्गके पुलिससे भिड़ जानेकी सम्भावना है। इसलिए वे सम्भवत: उसे तबतक आरम्भ नहीं करेंगे जबतक उसके साथ उन्हें लोगोंका यह आश्वासन न मिल जाये कि वे हिंसा न करेंगे।

मैं पहले भी स्वीकार कर चुका हूँ, और फिर करता हूँ कि असहयोग खतरेसे खाली नहीं है। किन्तु असहयोगकी व्यवस्था करनेमें हिंसा होनेका जो खतरा है उसकी अपेक्षा एक गम्भीर प्रश्नके सामने रहते हुए हाथपर-हाथ धरे बैठे रहनेमें कहीं अधिक बड़ा खतरा होता है। कुछ न करना निश्चित रूपसे हिंसाको निमन्त्रित करना है।

असहयोगकी निन्दामें प्रस्ताव पास करना या लेख लिखना बहुत आसान है। किन्तु अन्यायकी गहरी अनुभूतिसे उत्तेजित किसी राष्ट्रके रोषको संयत रखना आसान काम नहीं है। जो लोग असहयोगके विरुद्ध बात करते या काम करते हैं मैं उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे कुर्सियाँ छोड़कर लोगोंके पास जायें, उनकी भावनाओंको समझें और तब यदि उनका दिल गवाही दे तो असहयोगके विरुद्ध लिखें। तब उन्हें भी मेरी तरह यह पता चल जायेगा कि हिंसासे बचनेका एकमात्र मार्ग लोगोंको अपनी भावनाको इस प्रकार प्रकट करनेका अवसर देना है जिससे उनकी शिकायतें दूर हो सकें। मुझे तो असहयोगके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं मिला है। यह तर्कसम्मत और निरापद है। जो सरकार अपनी प्रजाकी बात नहीं सुनती, उस प्रजाको स्वाभाविक अधिकार है कि वह उसकी सहायता करनेसे इनकार कर दे।

एक ऐच्छिक आन्दोलनके रूपमें असहयोग केवल तभी सफल हो सकता है जब लोगोंकी भावना इतनी सच्ची और प्रबल हो कि लोग उसके लिए अधिकसे-अधिक कष्ट उठा सकें। यदि मुसलमानोंकी धार्मिक भावनाको गहरी ठेस लगी है और यदि हिन्दू अपने मुसलमान भाइयोंके प्रति पड़ोसीका-सा भाव रखते हैं तो वे दोनों ही अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कोई भी कीमत चुकाना ज्यादा न समझेंगे। असहयोग केवल एक प्रभावकारी उपाय ही नहीं होगा, बल्कि वह मुसलमानोंकी माँगकी और हिन्दुओंके मैत्री-भावके दावेकी सचाईकी कसौटी भी होगा।

किन्तु मेरे मित्र मेरे खिलाफत आन्दोलनमें[1] सम्मिलित होनेके विरुद्ध एक बहुत बड़ा तर्क देते हैं। वे कहते हैं कि मैं अंग्रेजोंका मित्र और ब्रिटिश संविधानका प्रशंसक हूँ। मेरा उन लोगोंका साथ देना, जिनमें आज अंग्रेजोंके प्रति शुद्ध विद्वेषके सिवाय और कुछ नहीं है, शोभा नहीं देता। मुझे खेदपूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि आज सामान्य मुसलमानोंमें अंग्रेजोंके प्रति कोई प्रेमभाव नहीं है। उनका ख़याल है, और ऐसा माननेके लिए उनके पास कारण भी है, कि अंग्रेजोंने न्यायपूर्वक आचरण नहीं किया है। किन्तु यदि मैं अंग्रेजोंका मित्र हूँ तो मैं अपने देशवासी मुसलमानोंका भी

१. देखिए उदाहरणार्थ, "मैं क्यों खिलाफत आन्दोलनमें शामिल हुआ हूँ?", २८-४-१९२० और "पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको", २०-६-१९२०।

वैसा ही मित्र हूँ। और इसलिए वे मेरा ध्यान अंग्रेजोंकी अपेक्षा अधिक आकर्षित करनेके अधिकारी हैं। किन्तु मेरे निजी धर्ममें मेरे लिए अंग्रेजोंका या किसी अन्यका दिल दुखाये विना अपने देशवासियोंकी सेवा करनेकी छूट है। जो व्यवहार मैं अपने सगे भाईके प्रति करनेको तैयार नहीं हूँ वह मैं एक अंग्रेजके प्रति भी नहीं करूँगा। राज्य मिलता हो तो भी मैं उसे चोट न पहुँचाऊँगा। किन्तु यदि आवश्यक हुआ तो मैं उससे उसी तरह सहयोग करना वन्द कर दूँगा जैसे मैंने अपने सगे भाईसे[1] (जो अव नहीं रहे) बन्द कर दिया था। मैं साम्राज्यके अन्यायमें भाग लेनेसे इनकार करके उसकी सेवा करता हूँ। विलियम स्टेडने[2] बोअर-युद्धके समय खुले आम अंग्रेजोंकी हारके लिए प्रार्थनाएँ की थीं, क्योंकि उनका खयाल था कि उनकी जाति एक अन्यायपूर्ण युद्धमें रत है। वर्तमान प्रधानमन्त्रीने[3] अपनी जान जोखिममें डालकर उस युद्धका विरोध किया था और उसको चलानेमें अपनी सरकारके मार्गमें बाधा डालनेके लिए शक्ति-भर सव-कुछ किया था। और आज मैं मुसलमानोंके साथ सम्मिलित हो गया हूँ जिनमें से एक वहुत वड़ी संख्या अंग्रेजोंके प्रति कोई मैत्रीभाव नहीं रखती है। मैंने ऐसा स्पष्टत: अंग्रेजोंके मित्रके रूपमें और न्याय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे एवं उसके द्वारा यह दिखानेकी गरजसे किया है कि अगर संकल्प सच्चा हो और साथ ही उसके लिए कष्ट सहन किया जाये तो ब्रिटिश संविधानमें कुछ ऐसी खूबी है कि वह संकल्प विफल नहीं हो सकता। मैं मुसलमानोंका साथ देकर तीन उद्देश्य पूरे करना चाहता हूँ — एक, विविध कठिनाइयोंके होते हुए सत्याग्रहके द्वारा न्याय प्राप्त करना — और अन्य तरीकोंकी तुलनामें इसकी सक्षमता सिद्ध करना; दूसरा, हिन्दुओंके लिए मुसलमानोंकी मैत्री पाना और उसके द्वारा देशमें आन्तरिक शान्ति प्राप्त करना और तीसरा जो इनकी अपेक्षा तनिक भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, अंग्रेजों एवं उनके उस संविधानके प्रति उनके दुर्भावको सद्भावमें परिवर्तित करना जो अपनी अपूर्णताओंके वावजूद अनेक तूफानोंके सम्मुख टिका रह सका है। सम्भव है कि मैं इनमें से किसी उद्देश्यको प्राप्त न कर सकूँ। मैं तो केवल प्रयत्न ही कर सकता हूँ। सफलता देना तो ईश्वरके ही हाथमें है। इस वातसे कोई इनकार न करेगा कि ये सभी उद्देश्य उदात्त हैं। मैं हिन्दुओं और अंग्रेजोंको निमन्त्रित करता हूँ कि वे उस बोझको, जिसे भारतके मुसलमान ढो रहे हैं, उठानेमें हृदयसे मेरा साथ दें। सभी स्वीकार करेंगे कि उनकी लड़ाई न्यायकी लड़ाई है। वाइसराय, भारत-मन्त्री, महाराजा वीकानेर[4] और लॉर्ड सिन्हाने अपनी साक्षीसे इस तथ्यकी पुष्टि की है। इस साक्षीको कार्यरूप देनेका समय आ गया है। जो लोग

१. करसनदास गांधी।

२. विलियम टॉमस स्टेड (१८४९–१९१२); अंग्रेज पत्रकार और सुधारक; जिनके साहस और मौलिकताका समसामयिक पत्रकारिता और राजनीतिपर सफल प्रभाव पड़ा; ब्रिटेनके शान्ति आन्दोलनके उत्साही समर्थक।

३. लॉयड जॉर्ज।

४. सर गंगासिंहजी (१८८०–१९४३); प्रथम विश्व-युद्धकी समाप्तिके वाद लीग ऑफ नेशन्समें भारतका प्रतिनिधित्व किया। १९२०-२५ में नरेन्द्र-मण्डल (चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज) के अधिपति।

किसी न्यायसंगत उद्देश्यका साथ देते हैं वे केवल आपत्ति करके कभी सन्तुष्ट नहीं होते। यह देखा गया है कि वे उसके लिए प्राणतक दे देते हैं। क्या मुसलमान-जैसी जोशीली जातिसे इससे कम करनेकी अपेक्षा की जा सकती है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-५-१९२०

१६६. दिल्लीमें दमन

यह माननेका तो कोई कारण ही नहीं था कि सरकारकी ओरसे दमनकी कार्रवाई ही नहीं की जायेगी और खिलाफतका आन्दोलन चलता रहेगा। यदि किसीने ऐसा माना हो तो दिल्ली सरकारकी ओरसे प्रकाशित विज्ञप्तिसे[1] उसकी आँखें खुल जानी चाहिए। सरकारी विज्ञप्तिमें यह कहा गया है कि दिल्ली प्रान्तमें कोई भी व्यक्ति सरकारसे अनुमति लिये बिना तीन महीनेतक सभाएँ आदि नहीं कर सकता। और यह तो अभी प्रारम्भ ही है।

असहकार-जैसे आन्दोलनको सरकार दमनकी कोई कार्रवाई किये बिना कैसे चलने देगी। कोई भी सरकार ऐसे आन्दोलनको चलने नहीं देती। इस आन्दोलनका अर्थ यह है कि यदि यह सफल हो जाये तो सरकारका कारोबार ही रुक जाये। ऐसी संभावनाको रोकनेके लिए हर सरकार कदम उठाती ही है।

सरकारके कदम उठानेसे ही लोगोंकी परीक्षा होगी। सरकार अगर बिलकुल चुपचाप बैठी रहे तो असहकारका असर भी कम पड़ेगा। प्रत्येक राज्यसत्ताके हाथमें अन्तिम उपाय बन्दूक अर्थात् राजदण्ड है। लेकिन इस संघर्षमें जनताका हथियार उसकी सहनशीलता है। यदि सरकारके शरीर-बलके विरुद्ध जनता अपने शरीर-बलकी आजमाइश करना चाहेगी तो जनता हार जायेगी। असहकार करनेवालेको शरीर-बल आजमानेका विचार बिलकुल छोड़ना पड़ेगा। इसलिए मुझे उम्मीद है कि दिल्लीमें अथवा दूसरे किसी भी स्थानपर सरकारकी ओरसे चाहे जो कदम उठाये जायें, लोग बिलकुल शान्त रहेंगे। ऐसी शान्ति बनाये रखनेमें और अपना निर्धारित कार्य करनेमें ही प्रजाकी जीत है। इतना याद रखना चाहिए कि यह मित्र-राष्ट्रोंके पशु-बल तथा हिन्दुस्तानी जनताके आत्मिक बलके बीच होनेवाला संघर्ष है। इसमें यदि जनताकी ओरसे पशु-बलका तनिक भी प्रदर्शन किया गया तो [इसमें प्रयुक्त] आत्मिक बलको पशुबल अथवा दुर्बलता कह दिया जायेगा।

यदि जनता खिलाफतका मामला आत्मिक बलसे जीतनेकी उम्मीद करती है तो उसे जेल जाने, सम्पत्ति खोने तथा नौकरियाँ छोड़नेको तैयार रहना चाहिए। इस आन्दोलनमें आसानीसे जीत जानेकी आशा नहीं करनी चाहिए।

१. देखिए "दिल्लीकी विज्ञप्ति और अखबारोंको आदेश", ५-५-१९२०।

इसके अतिरिक्त यह भी याद रखना चाहिए कि इस संघर्षमें अभी हमने कानून-की सविनय-अवज्ञा किये जानेके तत्त्वको शामिल नहीं किया है। जहाँतक मैं समझ सका हूँ असहकारके साथ सविनय-अवज्ञा नहीं चल सकती। अतएव सरकार चाहे जो कानून बनाये, चाहे जो अध्यादेश जारी करे उसे पूरी-पूरी मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। इस आन्दोलनमें यदि एक भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य करेगा तो उससे संघर्षको बहुत धक्का पहुँचेगा।

इस संघर्षमें लड़नेवालों और सेना [में भरती होनेवाले व्यक्तियों] में कोई भेद नहीं है। सेनामें जैसे प्रत्येक सिपाही अपनी जिम्मेदारीपर काम नहीं कर सकता बल्कि उसे अपनेसे उच्च अधिकारीके आदेशकी राह देखनी पड़ती है, ठीक यही खिलाफत अथवा अन्य सब तरहके संघर्षोंके बारेमें समझना चाहिए। सेनामें भरती सिपाहीको जैसे मर्यादा बनाये रखना, आदेशका पालन करना, क्रोधित न होना आदि सब बातोंका पालन करना पड़ता है, वैसे ही खिलाफत-जैसे आन्दोलनमें काम करनेवाले लोगोंको करना चाहिए। जनतापर यदि पूरा अधिकार प्राप्त किया जा सके तो आज ही [हमारी] जीत है। यह अधिकार प्राप्त करनेके लिए उपर्युक्त तत्त्वोंकी बहुत आवश्यकता है। इसलिए मुझे उम्मीद है कि एक भी व्यक्ति अपनी जिम्मेदारीपर कोई जोखिमका काम न करेगा।

अभी तो हमने असहकार [आन्दोलन] भी प्रारम्भ नहीं किया है। अभी अन्तिम शर्तें[1] तय नहीं हुई हैं। भाई मुहम्मद अलीका[2] नवीनतम तार आशाजनक है। आशा हो या न हो, लेकिन जबतक शर्तें[3] स्पष्ट रूपसे प्रकाशित नहीं कर दी जातीं और खिलाफत समितिकी ओरसे निर्देश जारी नहीं हो जाते तबतक किसीको त्यागपत्र नहीं देना है। इस समय जनताको मुख्यरूपसे यही याद रखना है कि भूलसे भी जनताकी ओरसे कोई खून-खराबी न होने पाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-५-१९२०

१६७. सीमापर अपहरण

हिन्दुस्तानकी दक्षिण-पश्चिम सीमापर कुछ जंगली जातियाँ रहती हैं। वे मुसलमान हैं तथा लूटमार और व्यक्तियोंका अपहरण करके अपना भरण-पोषण करती हैं।[4] अभी हाल ही में उन्होंने एक अंग्रेज लड़कीको पकड़ लिया था और निष्कृति-धन प्राप्त

१. मित्र-राष्ट्रों द्वारा टर्कीके सम्बन्धमें।

२. (१८७८-१९३१); वक्ता, पत्रकार और राजनीतिज्ञ; १९२० में इंग्लैंडको जो खिलाफत-शिष्टमण्डल गया था उसका नेतृत्व किया; कांग्रेस-अध्यक्ष, १९२३।

३. ये शर्तें भारत सरकारके (असाधारण) गज़टमें १४ मई, १९२० को प्रकाशित हुई थीं।

४. १९१९-२० के दौरान पेशावर, कोहाट, बन्नू और डेरा इस्माइलखाँ जिलोंमें कमसे-कम ६११ छापे मारे गये थे। इनमें २९८ व्यक्ति मारे गये, ३९२ घायल हुए और ब्रिटिश रैयतके ४९३ व्यक्तियोंका अपहरण किया गया। इंडिया इन १९२०।

होनेपर ही उसे छोड़ा था। इसी तरह वे निकट रहनेवाले हिन्दुओंको लूटते हैं, उन्हें पकड़ ले जाते हैं और रकम मिलनेपर ही छोड़ते हैं। वे मुसलमानोंको भी इसी तरह दुःखी करते हैं। अर्थात् वे केवल हिन्दुओंको ही लूटते हों, सो बात नहीं है। तथापि फिलहाल हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताका मधुर समीर बह रहा है, इससे अनेक हिन्दू इस एकतापर जोर देते हुए कहते हैं कि यदि मुसलमान सच्चे हैं तो उन्हें किसी-न-किसी उपायके द्वारा यह लूटपाट रोकनी चाहिए। मेरी मान्यता है कि ऐसा कहना अज्ञानका सूचक है। भारतके मुसलमानोंका सरहदपर रहनेवाली जंगली कौमोंपर कोई प्रभाव नहीं है। और फिर मैं यह बता ही चुका हूँ कि स्वयं मुसलमान भी इसके शिकार बनते हैं। फिर भी हमें इस पीड़ाका उपचार खोजना ही चाहिए। जो इस प्रकार त्रस्त किये जाते हैं, उन्हें मदद मिलनी ही चाहिए। यह काम सरकारका है। यदि सरकार लोगोंको इतना संरक्षण भी नहीं दे सकती तो संरक्षण देनेकी जिस महान् शक्तिसे वह सुसज्जित मानी जाती है, उसका उपयोग क्या है? मुझे स्वयं इस शक्तिका बहुत मोह कभी नहीं रहा। अपराध होनेके बाद सरकारके पास अपराधीको दण्ड देनेकी जितनी शक्ति है उतनी अपराधको रोकनेकी नहीं है। अरार और करतारपुरके मामले तो ताजे हैं। उसमें मैं तो सरकारका विशेष दोष नहीं मानता। जबतक मनुष्य अपना स्वभाव नहीं बदलता तबतक अपराध तो होते ही रहेंगे। दण्डके भयसे जितना रोका जा सकता है, उतना कम-ज्यादा प्रमाणमें राज्य सत्ता रोकती है।

अच्छा और सही उपाय तो लोगोंके हाथमें ही है। सरहद अथवा अन्य स्थानोंपर रहनेवाले लोगोंमें अपना बचाव करनेकी शक्ति आनी ही चाहिए, न हो तो उसका विकास किया जाना चाहिए। एक तरीका तो पड़ोसीको प्रेमभावसे जीत लेना है और दूसरा भयसे रोकना है। सामान्यतया दोनों ही तरीकोंका प्रयोग किया जाता है। लोग अपनी रक्षाके योग्य शरीर-शक्ति प्राप्त कर लेते हैं और पड़ोसीके साथ प्रेमभाव बनाये रखनेका प्रयत्न भी करते रहते हैं। सीमावर्ती गाँवोंके लोग इन दोनों उपायोंका प्रयोग कर सकते हैं। वे स्वयं एकत्रित होकर लुटेरोंकी टोलीके विरुद्ध लड़नेकी तैयारी कर सकते हैं, उसी तरह शान्तिके समय सलाह-मशविरा भी कर सकते हैं। सीमापर रहनेवाली जातियाँ अगर भूखों मरती हों तो उन्हें पड़ोसी मानकर कुछ शर्तोंपर उनकी सहायता कर सकते हैं। सरकार खुद भी ऐसा ही करती है।

इसके साथ-साथ जो मुसलमान सीमापर रहनेवाली जातियोंसे तनिक भी सम्बन्ध रखते हैं, वे इन जातियोंको सन्देश भेजकर उन्हें लूटपाट करनेसे रोक सकते हैं। इस तरह सरकारकी ओरसे, लोगोंकी ओरसे और विशेषतया मुसलमानोंकी ओरसे उपचार किये जायें तो इन उपद्रवोंसे बचा जा सकता है। मुसलमान कुछ नहीं करते, यह मानकर बैठे रहनेसे कोई बात नहीं बनेगी और ऐसा विचार उन्हें अन्यायी भी ठहराता है।

इस विषयपर मुझे लिखना पड़ा है क्योंकि आजकल उत्तरके समाचारपत्र इस विषयसे भरे रहते हैं; इस सम्बन्धमें मुझे कुछ पत्र भी प्राप्त हुए हैं और सीमाके लोग भी मुझसे मिलनेके लिए आये हैं। जैसे-जैसे राष्ट्रीय भावना बढ़ती जाती है

वैसे-वैसे यह जाननेकी इच्छा भी बढ़नी चाहिए कि हिन्दुस्तानके भिन्न-भिन्न भागोंमें क्या होता रहता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-५-१९२०

१६८. एक विनम्र निवेदन

देखता हूँ, बहुतसे लोग नई कौंसिलोंमें जानेके इच्छुक हैं। कौंसिल-प्रवेशसे[1] देश-सेवा सम्भव है, इससे मैं इनकार नहीं करता, परन्तु मेरी धारणा यह है कि बहुतेरे व्यक्ति कौंसिलोंसे बाहर रहकर उससे भी अधिक सेवा कर सकते हैं। पार्लियामेंटमें बहुत-सा समय वितण्डावादमें ही चला जाया करता है और फिर जहाँ जानेके लिए अनेक लोग तैयार हों वहाँ सेवाव्रत धारण करनेवालोंका तो बाहर रहना ही उचित है। ऐसे व्यक्तियोंको अनुभवसे प्रतीत हो जायेगा कि उनके समयका अधिक सदुपयोग मतदाताओंको शिक्षित करने तथा कौंसिल-सदस्यों द्वारा [वोट माँगते समय दिये गये] वचनोंका पालन करानेमें होगा।

इंग्लैंडमें भी पार्लियामेंटके बाहर काम करनेवाले जितनी अच्छी सेवा कर दिखाते हैं उतनी पार्लियामेंटके सदस्य नहीं कर पाते। इंग्लैंडके सदनमें ७०० से ऊपर सदस्य हैं; परन्तु राष्ट्रका कामकाज तो सात सौ सदस्योंके द्वारा ही संचालित नहीं होता। जनताकी गाड़ी तो चलती है उनसे जो पार्लियामेंटके बाहर रहकर काम करते हैं। इसलिए जिनके मनमें और कोई लोभ नहीं है और जिन्होंने सेवाधर्म समझ लिया है उनसे मेरा निवेदन यही है कि वे कौंसिलोंमें जानेका बिलकुल मोह न करें।

कौंसिलोंमें जानेकी इच्छा रखनेवालोंसे मैं कहना चाहता हूँ कि अगर आप वहाँ जानेकी ख्वाहिश अपने स्वार्थकी खातिर रखते हों तो कौंसिल-प्रवेशका विचार त्याग दीजिए। स्वार्थ-साधनके अन्य अनेक मार्ग हैं। जनताके हितके लिए ही संघका निर्माण हो रहा है। हम अपने स्वार्थकी खातिर राष्ट्रके हितका हनन क्यों करें? मुझे यह मालूम नहीं है कि कौंसिलोंमें जानेके इच्छुक कौन-कौन हैं; परन्तु जिस प्रकार नगर-पालिकाओंमें हो रहा है वैसा ही कौंसिलोंमें होनेकी आशंका है। इसी कारण मैं यह उपर्युक्त निवेदन कर रहा हूँ। यदि हम कौंसिलोंमें सच्चे, विनयशील, जनताके हितोंके इच्छुक, साहसी, निडर और अपने विषयको ठीक-ठीक रूपसे समझनेवाले व्यक्ति भेजेंगे तो कौंसिलोंसे लाभ उठाया जा सकता है।

संशोधित विधानमें अनेक त्रुटियाँ हैं। इन त्रुटियोंको दूर करना ही चाहिए। परन्तु जिस प्रकार किसी अनाड़ी नाईके हाथमें अच्छेसे-अच्छा उस्तरा देना बेकार है उसी प्रकार स्वार्थ-परायण या ज्ञानहीन व्यक्तियोंका अच्छेसे-अच्छे विधानसे किसी तरह लाभ उठा सकना सम्भव नहीं है। सुधार-अधिनियममें जल्दसे-जल्द परिवर्तन

१. १९१९ के सुधार-अधिनियमके अन्तर्गत धारा सभाओंके लिए चुनाव नवम्बर १९२० में होनेको थे।

करवानेका सबसे सुगम मार्ग वहाँ राष्ट्रसेवकोंको ही भेजना है। जिस प्रकार अच्छा कारीगर खराब औजारोंसे भी काम निकाल ले जाता है और निकम्मे औजारोंको सुधार भी लिया करता है उसी प्रकार सच्चे राष्ट्रसेवक खराब अधिनियमसे भी जनताका हित-साधन कर सकते हैं।

मतदाताओंके कर्त्तव्योंपर फिर कभी विचार किया जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-५-१९२०

१६९. उड़ीसामें अकाल

हममें से अधिकांश लोगोंको उड़ीसा कहाँ है, इस बातकी भी खबर नहीं है। उड़ीसाको ही कविवर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने प्रसिद्ध गीतमें[1] "उत्कल" नामसे पुकारा है। उड़ीसामें ही जगन्नाथ पुरी है। पुरीके इस जिलेमें भयंकर अकाल पड़ा हुआ है। उड़ीसा बिहार प्रान्तका एक भाग है और बिहार तथा उड़ीसा एक ही लेफ्टिनेंट गवर्नरके अधीन हैं। उड़ीसा भारतका एक अत्यन्त गरीब अंचल है। वहाँके लोग हर तरहसे पिछड़े हुए हैं और इस कारण हमें उनके कष्टोंकी बात बहुधा सुनाई नहीं पड़ती।

इस अकालकी वजहसे अनेक बार मुझसे उड़ीसा जानेको कहा गया है, लेकिन मैं स्वयं वहाँ जा सकूँ, ऐसी स्थिति न होनेके कारण तथा भाई अमृतलाल ठक्कर जमशेदपुरका काम निबटा चुके थे इसलिए मैंने उन्हींसे वहाँ हो आनेका आग्रह किया और वे चौबीस घन्टेमें तैयार होकर रवाना हो गये हैं। वहाँ पहुँचकर उनका पत्र तथा तार भी आ गया है कि वे गाँवोंमें जाँच करने चले गये हैं। लेकिन उनके पत्र पढ़नेपर पता चलता है कि वहाँ तो दुःखोंकी कोई सीमा ही नहीं है। वे लिखते हैं:

> मैं एक बंगाली बाल-निवास तथा भिखारियोंके एक अस्पतालमें गया था। ये संस्थाएँ कलकत्तेसे प्राप्त चन्देकी रकमसे चलाई जाती हैं। बाल-निवासमें निराधार लड़के और लड़कियोंकी संख्या एक सौके लगभग है और अस्पतालमें ३०-३५ रोगी हैं। इन दोनों संस्थाओंकी इस बड़ी संख्यासे आसपासके प्रदेशकी मुसीबतका अन्दाज लगाया जा सकता है।

दूसरे पत्रमें वे लिखते हैं:

> अनेक व्यक्ति भूखसे मर गये हैं। एक गैर-सरकारी समितिने इस सम्बन्धमें जाँच करके जो रिपोर्ट प्रकाशित की है उसे मैंने पढ़ा है। यह रिपोर्ट अवश्य ही प्रकाशित की जानी चाहिए। मैं कल शामको बैलगाड़ीसे गाँवोंमें जानेवाला

१. भारतके वर्तमान राष्ट्रगानमें।

हूँ। वहाँ पाँच-छः दिन लगेंगे। ब्यौरेवार पत्र वहाँसे वापस आनेके बाद ही भेज सकूँगा। इस बीच एक-दो पत्र भेजूँगा, लेकिन चन्देके लिए तो अपील अवश्यमेव जारी कीजिएगा। मैं गाँवोंमें खाली हाथ फिरूँ, सो ठीक नहीं। यदि हो सका तो यहाँसे चावलोंसे भरी हुई एक-दो गाड़ियाँ भी ले जाऊँगा और जहाँ खास जरूरत होगी वहाँ उसका उपयोग करूँगा। तथापि आप आजसे ही पैसोंका बन्दोबस्त करनेकी दिशामें प्रयत्न कीजिएगा।

उड़ीसाके ही एक सज्जनका पत्र भी है, जिसमें वे लिखते हैं:

दावा नामक एक गाँव है। उसमें ५९ परिवार थे। इस स्थानपर अकाल और बाढ़ आनेसे बहुत नुकसान हुआ। उपर्युक्त गाँवमें ४११ व्यक्ति थे, जिनमें ११ बच्चे थे; वे सब दूध न मिलनेके कारण काल-कवलित हो गये। अब कुल ३०३ व्यक्ति गाँवमें बचे हैं और उनके शरीर भी हाड़-पिंजर मात्र रह गये हैं। कुल मिलाकर ५८ व्यक्तियोंकी मृत्यु हुई है। इन लोगोंको भोजन तो कदाचित् ही मिलता है, कपड़े भी नहीं। अनेक नग्नावस्थामें घूमते हैं। कुछ स्त्रियाँ कपड़ा न होनेके कारण घरके बाहर ही नहीं निकल सकतीं। कुछ लोग घास, पत्ते खाकर गुजारा करते हैं।

जैसे-जैसे विशेष समाचार मिलेंगे मैं पाठकोंको उनसे अवगत कराता रहूँगा। जो समाचार मैंने ऊपर दिये हैं उनसे मदद करनेकी न्यायोचितता तो सिद्ध हो ही जाती है। मुझे उम्मीद है कि सब लोग यथाशक्ति पैसा भेजेंगे। कितनी रकम चाहिए, मैं इस समय इसके निश्चित आँकड़े नहीं दे सकता। तथापि जब मैं लोगोंसे यथाशक्ति देनेका अनुरोध कर रहा हूँ तब आँकड़े देनेकी जरूरत भी नहीं रह जाती। जो खर्च हो उसका हिसाब रखनेके बारेमें मैं भाई अमृतलाल ठक्करको लिख चुका हूँ। हिसाब पूरा प्रकाशित होगा। जो अपने आपको भारतीय माननेमें गर्वका अनुभव करते हैं, उनका धर्म है कि हिन्दुस्तानका यदि कोई भी अंग क्षीण हो जाये तो हम कष्टका अनुभव करें। यदि यह विचार ठीक है तो उड़ीसाके दुःखसे हम दुःखी कैसे न हों?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–५–१९२०

१७०. विधवाका अभिशाप

श्री कंचनलाल खांडवालाका पत्र विधवाओंके आँकड़ोंसे ही भरा हुआ है। जो व्यक्ति उसे पढ़ेगा उसका हृदय अवश्य ही उद्वेलित हो उठेगा। अधीर सुधारक कह उठेंगे कि इस रोगका सीधा उपाय विधवा-विवाह है। मैं यह नहीं कह सकता। मेरे भी परिवार है और उसमें अनेक विधवाएँ हैं। लेकिन उन्हें पुनर्विवाह करनेको कहनेके लिए मेरी जबान तो कदापि नहीं खुल सकती, और न वे ही फिरसे विवाह करनेका विचार कर सकती हैं। इसका सच्चा उपाय तो यह है कि पुरुषोंको भी पुनर्विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा लेनी चाहिए।

लेकिन अन्य उपाय भी हैं जिनपर हम अमल नहीं करते, करना नहीं चाहते। वे उपाय निम्नलिखित हैं:

१. बाल-विवाह बन्द करना।

२. जबतक वर-कन्याके विवाह करनेकी ठीक उम्र नहीं हो जाती तबतक कदापि विवाह न करना।

३. जो स्त्री अपने पतिके साथ बिलकुल नहीं रह पाई है उसे विवाह करनेकी छूट देना; इतना ही नहीं, उसे विवाह करनेके लिए प्रोत्साहित करना। ऐसी स्त्रियोंको विधवा नहीं माना जाना चाहिए।

४. जो पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें विधवा हो गई और जो अभी युवा है, ऐसी विधवाको पुनर्विवाहकी छूट देना।

५. वैधव्यको अपशकुनका सूचक न मानकर उसे पवित्र मानकर सम्मान देना।

६. विधवाओंके लिए शिक्षण और धन्धेका सुन्दर प्रबन्ध करना।

यदि इतने सुधार हों तो सन्देह नहीं कि हिन्दू-समाज विधवाके अभिशापसे मुक्त हो जायेगा। ऊपर लिखित सुधार प्रत्येक परिवार और बिरादरीके लोगोंके लिए हैं। सब लोग एक दूसरेकी राह देखते हुए बैठे रहते हैं, इसीसे बहुत सारे सुधारोंपर अमल नहीं हो पाता। जिसे जिस समय [जो] पुण्य कर्म लगे उसे उसी समय उसपर आचरण करना चाहिए, यह विधिका विधान है। पापकर्म करते समय विचारें, ज्योतिषी-से परामर्श लें और हजारोंकी सलाह लेकर भी अन्ततः उसे न करें। पुण्यकर्म करते समय दूसरोंकी बाट जोहना, ईश्वरका गुनहगार बननेके समान है। फिर भी हमारा व्यवहार विपरीत ही होता है। पापकर्म करते समय डरते नहीं; पुण्यकार्य करते समय परिषदोंकी बाट जोहते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–५–१९२०

१७१. तीन प्रसंग

सत्याग्रह-आश्रममें एक विवाह-प्रसंग आया, इससे मेरे मनमें आश्रममें सम्पन्न इस विवाह तथा वाहर होनेवाले विवाहोंके बीच तुलना करनेकी सहज ही अभिलाषा हो आई। उससे उत्पन्न कुछ विचारोंको में पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत करनेकी आज्ञा चाहता हूँ।

इमाम साहव अब्दुल कादिर वावजीर एक कुलीन परिवारके तथा नियमके पावन्द कट्टर मुसलमान हैं। उनके पिताश्री कुछ वर्षोंतक वम्बईकी जुम्मा मस्जिदके मुअ-ज्जिन[1] थे। इमाम साहव अनेक वर्षोंसे मेरे साथ ही रहते आये हैं। जेलमें भी मेरे साथ थे। जेलके अनुभवसे उनका अपने व्यापारके प्रति मोह जाता रहा और वे सपरि-वार फीनिक्समें मेरे साथ रहने लगे। फीनिक्समें शरीर-श्रम करना जरूरी था। इमाम साहवने पहले कभी शरीर-श्रम नहीं किया था। तथापि फीनिक्समें वे मजदूरी करने लगे। फीनिक्ससे 'इंडियन ओपिनियन' निकलता था, इसलिए उन्होंने छापेखानेमें कम्पोजिग करनेका काम भी सीख लिया।

इमाम साहवके दो वच्चे हैं। वे मेरे साथ सगे भाईकी तरह रहते हैं और हम दोनोंने एक-दूसरेके धर्मको पूरा-पूरा सम्मान प्रदान किया है। इससे हमें इस वातका कभी दुःख नहीं हुआ कि हम विभिन्न धर्मके हैं। वे स्वयं नमाज पढ़ें और हिन्दू अपने धर्मका अनुसरण करे, इसमें परस्पर एक-दूसरेने कोई वुराई नहीं देखी, इतना ही नहीं वरन् उन्होंने इसे ही सही माना है।

जब उनकी वड़ी लड़कीके विवाहका अवसर आया तव हम दोनोंने सलाह-मशविरा किया। फातिमा वीस वर्षकी एक समझदार लड़की है। उससे और इमाम साहवसे परामर्श करके हमने, आश्रमके अपने निष्कांचन जीवनके उपयुक्त विवाह करनेका निश्चय किया। घुड़चढ़ी, वाजे आदिका कोई आडम्बर नहीं किया, और भोज भी नहीं दिया। विद्यार्थी अपने ब्रह्मचर्यकी महिमाको समझ सकें, इस हेतुसे उनसे भी वातचीत की और निश्चय किया गया कि वे विवाहमें भाग न लें। इमाम साहवके और वर-राजा सैयद हुसैन उरेजीके सगे-सम्वन्धियोंको आशीर्वाद देनेके हेतु आनेका निमन्त्रण दिया। घरका वना हुआ शर्वत, सूखे फल और मेवोंसे उनका स्वागत किया गया। रोशनीके नामपर एक झाड़-फानूसके अलावा और कुछ नहीं था।

विवाहकी क्रिया दो घंटेतक चली, जिसमें मंगलाचरणके रूपमें आधा घंटा, 'मौलूद शरीफ' अर्थात् अरवीमें लिखित पैगम्वर साहवके जीवन चरितका पाठ हुआ। तत्पश्चात् काजी साहवने गवाहोंके सम्मुख निकाहनामा लिखा और वम्बईके जुम्मा मस्जिदके खतीव साहव अब्दुल मुनीम वागजादाने वर-वधूसे इसे पढ़वाया। फिर उसपर हस्ताक्षर हुए। इसमें वीस-एक मिनट लगे, वादमें फातिहा अर्थात् ईश्वरको धन्यवाद,

१. नमाजके लिए अजान देनेवाला।

पढ़ा गया। फिर शर्बत और मेवे भेंट किये गये तथा बादमें वर-वधूने बुजुर्गोंके पाँव छुए। वरकी पोशाक सादी थी। शामको साढ़े छः बजे काम शुरू हुआ और साढ़े आठ बजे पूरा हो गया। इसके बाद फातिमा बहनने आश्रमके विद्यार्थियोंसे मुलाकात की। यह दृश्य करुणाजनक था। अपने साथ पढ़नेवाले विद्यार्थियों तथा अपने साथ रहनेवाले भाई-बहनोंसे बिछुड़नेका समय आया जान वह रोने लगी। उसे इस बातकी याद दिलाई गई, उसका कर्त्तव्य यह है कि वह आश्रमकी शिक्षाको अपने साथ ससुरालमें ले जाये। वह समझ गई कि उसका कार्य अपने नये घरमें सत्य, दया, स्वदेशी, देशसेवा और सादेपनका प्रचार करना है। इस तरह विवाहका कार्य दो-ढाई घंटेमें पूरा हो गया।

दूसरे दिन सबेरे में शहर गया। वहाँ असंख्य वर-यात्राएँ देखीं। चित्र-विचित्र पोशाक पहने बाजेवाले अपने बाजोंकी आवाजसे कानोंको बहरा किये डालते थे। वर फूलोंसे ढके हुए थे। बच्चे और बड़े असहनीय गर्मीमें गहने और मखमलके वस्त्रोंसे लदे हुए और पसीनेसे तर थे। इसमें मुझे न तो धर्म दिखाई दिया, न सच्चा आनन्द और न वास्तविक वैभव ही। यदि हम बाजे रखना ही चाहते हैं तो पश्चिमकी बेहूदी नकल किसलिए करें? पश्चिमकी ही नकल करनी हो तो फिर उसके वास्तविक रूपको लेना चाहिए। हम जो बैंड बजवाते हैं उसमें तनिक भी माधुर्य अथवा संगीत नहीं है, यह तो संगीतकी सामान्य जानकारी रखनेवाला व्यक्ति भी कह सकता है। घुड़चढ़ी हो तो देशकी आबोहवाके अनुकूल पोशाक क्यों न पहनें? हीरे-जवाहरात पहनने हों तो क्यों न उसमें कला अथवा विवेकका व्यवहार हो। यदि गीत गवाना ही है तो क्यों न स्त्रियोंको ढंगके गीत गाना सिखायें।

मेरी शिकायत धूमधामके प्रति नहीं है। जिनके पास पैसा है, जिनके सामने अन्य कोई आदर्श नहीं है, वे धूमधाम करें। उन्हें पैसा खर्च करनेका अवसर चाहिए। लेकिन मैं धूमधाममें विवेक, विचार, मर्यादा, कला और उन्नति देखना चाहता हूँ। अपने विवाहोंकी पद्धतिमें परिवर्तन तो देखता हूँ, लेकिन उनमें से अधिकांश परिवर्तन बिना विचार किये गये जान पड़ते हैं। आडम्बरमें कमी होनेके बजाय वृद्धि हुई है, खर्च घटनेके बजाय बढ़ा है। विवाह एक धार्मिक क्रिया भी है, यह तो भुला ही दिया गया है। अच्छे परिवार यदि विचारपूर्वक परिवर्तन करें तो अन्य उन्हें अवश्य स्वीकार कर लें, ऐसी मेरी मान्यता है। राष्ट्रीय जीवनमें यदि विकास करना है तो हमें उस जीवनके प्रत्येक अंगकी जाँच करनी होगी।

हमपर जो यह एक आरोप [लगाया जाता] है कि हम बहुत दिखावा करते हैं उसमें कुछ सत्य है। सच्चे आनन्दके बदले हम आनन्दका ढोंग रचते हैं; और इसी तरह असली शोकके बदले शोकका आडम्बर करते हैं।

अहमदाबाद छोड़कर जब मैं बम्बई गया और जिस बँगलेमें मैं रहा वहाँ अन्य किरायेदार भी रहते थे। उनमें से एककी मृत्यु हो गई। उस समय [दोपहरके] बारह बजे थे। एकाएक कोलाहल मच गया। रोना-पीटना शुरू हो गया। बच्चों, स्त्रियों और पुरुषोंकी आवाजें एक साथ उठीं। यह रोना रातके दस बजेतक चला। दूसरी स्त्रियाँ

आईं। उन्होंने भी छाती कूटना और रोना आरम्भ किया। इस रोने-कूटनेमें अधिकांश तो दिखावामात्र था। इसमें धर्म तो है ही नहीं। हमारे धर्ममें मरे हुओंके लिए रोनेकी मनाही है। दूसरे धर्मोंमें तो रोते ही नहीं है। उपर्युक्त रोनेमें पड़ोसीके प्रति कर्त्तव्यको तो बिलकुल भुला दिया जाता है। निकट कोई बीमार होगा, किसीके घरमें विवाह हो रहा होगा, इस [सब] का कोई विचार ही नहीं किया जाता। रोना और वह भी ऊँची आवाजमें। नहीं रोयेंगे तो कोई हमारी निन्दा करेगा। इसलिए रोना-कूटना आवश्यक है और गरीब और निरक्षर लोगोंमें ही नहीं बल्कि अच्छे घरानोंमें भी यह रिवाज है। यह कुप्रथा, यह पाप कैसे मिटे?

फातिमाके विवाहके तुरन्त बाद ही मुझे उक्त दो कड़ुवे अनुभव हुए और मुझसे (मेरे मतानुसार) उपयुक्त भव्य अनुभवके साथ उनकी तुलना किये बिना न रहा गया। मैं पाठकोंके सामने इन विचारोंको इस आशासे प्रस्तुत कर रहा हूँ कि हम सूक्ष्म रूपसे अपने जीवनकी जाँच करें और जो-कुछ बुरा हो उसे निकाल फेंकें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-५-१९२०

१७२. पत्र : एस्थर फैरिंगको

आश्रम

९ मई, १९२०

रानी बिटिया,

तुम्हें छोड़कर चला आना मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगा था। लेकिन मुझे प्रतीति थी कि तुम्हारे स्वास्थ्यके लिए वही अच्छा होगा। आशा करता हूँ कि तुमने जो सोच रखा था वही हुआ होगा; सिंहगढ़की आबहवा तुम्हें मुआफिक आई होगी।[1]

खेद है कि मैं तुम्हारे पास जितनी जल्दी पहुँचनेकी बात सोच रहा था वह [फिलहाल] सम्भव नहीं दिखती। जबरदस्त हड़ताल[2] आज शुरू हो गई है। यों मैं आशा तो यही करता हूँ कि यह बहुत दिन नहीं चलेगी; एक तो मिल-मालिकोंका पक्ष मजबूत नहीं है, दूसरे उनमें कोई लोहा लेनेवाला भी नहीं है। कल रातको मैं एक बड़ी सभामें गया हुआ था। लोगोंमें बड़ा साहस और बड़ी दृढ़ता नजर आई।

यहाँ ट्रेन्चकी लिखी हुई वे भव्य पंक्तियाँ फिर लिखे बिना जी नहीं मानता। वे पंक्तियाँ ये हैं:

तो घोरतम सूने अन्तर और कृष्णतम मार्ग
दिव्य-दिवसके द्वारपर पहुँचा देंगे।
और हम जो एक-दूसरेसे बहुत दूर-दूरके
किनारोंपर जाल फेंक रहे हैं
अपनी खतरनाक यात्रा समाप्त करके
आखिरकार सबके-सब पितृगृहमें आ इकट्ठे होंगे।'

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१७३. पत्र : सैयद फजलुर्रहमानको

आश्रम
११ मई, १९२०

प्रिय सैयद फजलुर्रहमान,

ठीकसे देखा जाये तो टर्कीके खिलाफ अन्याय करके भारतीयोंकी भावनाको चोट सरकारने पहुँचाई है। इसलिए ब्रिटिश मालका बहिष्कार करनेका मतलब यह तो नहीं होगा कि मैंने सरकारके अन्यायमें सहयोग देनेसे हाथ खींच लिया। सच तो यह है कि मैं अंग्रेजोंकी भी सहानुभूति प्राप्त करके ब्रिटिश सरकारको न्याय करनेपर मजबूर करना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि अगर सफलतापूर्वक बहिष्कार किया जाये तो उससे हमारा लक्ष्य सिद्ध नहीं होगा। लेकिन ऐसा हम कर्त्तव्य-भावसे प्रेरित होकर नहीं करेंगे, उसके पीछे तो दण्ड देनेकी ही भावना होगी। हमें खुद किसी तरहके अन्यायमें भागीदार नहीं बन जाना है। आज मेरी असहयोग योजनाके अनुसार लोकोपयोगी सरकारी संस्थाओंमें काम कर रहे लोगोंको अपनी नौकरियाँ छोड़नेकी जरूरत नहीं, लेकिन अगर कोई सरकार पूर्णतया भ्रष्ट ही हो जाये तो उसके साथ पूरा असहयोग करके उसका चलना असम्भव कर देनेमें भी मुझे कोई संकोच नहीं होगा। अगर किसी भ्रष्ट संस्थासे कोई लाभदायक सेवा भी प्राप्त होती है तो मैं वह सेवा स्वीकार नहीं करूँगा। और अगर कोई सरकार सर्वथा भ्रष्टाचारी हो और इसलिए प्रजाके असहयोगके कारण उसका चलना असम्भव हो जाये तो उसका स्थान तत्काल एक नई संस्था ले लेती है; और जिस ढंगकी लोकोपयोगी सेवाओंका उल्लेख आपने किया है, उस ढंगकी सेवाएँ प्रदान करती है। लेकिन अभीतक तो ब्रिटिश सरकारके सम्बन्धमें मेरी राय इतनी बुरी नहीं है। यह कभी-कभी कुछ समयके लिए अपने रास्तेसे भटक अवश्य जाती है,

लेकिन उतनी नहीं जितनी कि दूसरी सरकारें। और एक मामूली ढंगका असहयोग करके इसे सही रास्तेपर लाया जा सकता है। आशा है अब आप यह समझ गये होंगे कि जब कोई सर्वथा असह्य अन्याय किया जा रहा हो, जैसा कि खिलाफतके मामलेमें किया जा रहा है, तो असहयोग करना उचित भी है और आवश्यक भी। मेरा खयाल है, आप यह भी समझ जायेंगे कि इस सवालपर मेरी स्थिति अध्यात्मसे उतनी प्रभावित नहीं है जितनी कि तर्कबुद्धिसे।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१८७) की फोटो-नकलसे।

१७४. पत्र : ग० वा० मावलंकरको[2]

आश्रम
वैशाख वदी ८ [११ मई, १९२०][3]

भाईश्री मावलंकर,

इस पत्रके लिए मुझे क्षमा कीजिएगा। मुझसे रहा नहीं गया, इसीसे लिख रहा हूँ। कल सुना कि आप विवाह करनेकी तैयारीमें हैं। मुझसे यह सहन नहीं हो सका। क्या आप एक वर्षतक शोकका पालन नहीं करेंगे? जिस स्त्रीको आपने अपनी अर्धांगिनी कहा, जिसके शरीरके साथ आपका शरीर एक हो गया, उसकी यादको आप कैसे भुला सकते हैं। क्या हम कुछ भी संयमका पालन करनेके लिए बँधे हुए नहीं हैं? सुना है कि आपकी माँ बहुत आग्रह करती हैं। [लेकिन] इसमें माँके आग्रहका विचार क्यों किया जाये? हम अपनी मर्यादाका उल्लंघन क्यों करें? हमें अपनी शिक्षाका विचार भी तो करना चाहिए। अब मैं और अधिक नहीं लिखूंगा। भगवान् आपको सुमति दे। मेरा अधिकार और मेरा कर्त्तव्य एक मित्रके रूपमें आपको चेतावनी देना है। लेकिन कीजियेगा अपने मनकी ही। आप जो कदम उठानेवाले हैं उसमें यदि आपको त्रुटि दिखाई दे सके तो आप मुझ-जैसे लोगोंकी हिम्मत और मददसे उससे मुक्त हों।

१. यह पत्र लिखनेके अगले दिन ही, १२ मईको गांधीजी बम्बईमें अखिल भारतीय खिलाफत समितिकी बैठकमें शामिल हुए और उन्होंने सविनय अवज्ञापर प्रस्ताव पेश किया, जो स्वीकार कर लिया गया।

२. गणेश वासुदेव मावलंकर (१८८८–१९५६); अहमदाबादके वकील, संसदीय मामलोंके विशेषज्ञ और कांग्रेसी नेता। १९३७ में बम्बई विधान परिषद तथा १९४६ में केन्द्रीय विधान परिषद्के अध्यक्ष निर्वाचित; मृत्युपर्यंत लोक सभाके अध्यक्ष।

३. मावलंकरकी पुस्तक संस्मरणोंमें पत्रकी यही तारीख दी गई है।

यदि आपको वह उचित जान पड़े तो मेरी और समस्त विश्वकी सलाहको ताकपर रख देना। [इसके लिए] मुझे आप माफ तो करेंगे न?

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० १२२३) की फोटो-नकलसे।

१७५. उड़ीसामें संकट

उड़ीसाके इस गौरवके बावजूद कि वहाँ हमारा एक महान् तीर्थ जगन्नाथ पुरी है, वह एक बहुत ही दीन-हीन प्रदेश जान पड़ता है। क्योंकि जिस समय भारत राष्ट्रीय जीवनकी चेतनासे अनुप्राणित हो रहा है उस समय भी हमें उड़ीसाके सम्बन्धमें बहुत कम बातें मालूम हैं। हममें से अधिकांशने उसका नाम भूगोलमें ही पढ़ा है। चूँकि उड़ीसा आधुनिक शिक्षाका केन्द्र नहीं रहा इसलिए वहाँ आधुनिक ढंगके कार्यकर्त्ता तैयार नहीं हुए हैं और इसलिए कोई भी यह नहीं जानता कि उड़ीसाके लोग सुखी हैं या दुःखी। पिछले कई महीनोंसे मेरे एक उड़िया मित्र उड़ीसाकी समस्याओंमें मेरी रुचि जागृत करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। वे पिछले कुछ महीनोंसे मुझसे यह कहते रहे हैं कि उस प्रान्तमें लगभग अकालकी स्थिति है। उन्होंने बताया है कि एक छोटेसे गाँवमें, जिसमें ५९ परिवार या स्त्री और पुरुष कुल मिलाकर ४११ लोग रहते हैं, अभी हालमें ११ दुधमुँहे बच्चे पोषणकी कमीके कारण मर चुके हैं। वहाँ कुल मिलाकर भूखसे ५८ मौतें हुई हैं, ६१ गाँव छोड़कर चले गये हैं और जो रह गये हैं उनमें केवल चाम और हाड़ बाकी रह गये हैं। उनके पास न तो अन्न है और न कपड़ा। तन ढकने लायक काफी कपड़ा न होनेसे स्त्रियाँ घरोंसे नहीं निकल सकतीं, और कुछ तो घास और पत्तियाँ खा रही हैं। मैं इस भयंकर कहानीपर विश्वास करनेके लिए तैयार न था। मुझे लगा कि सार्वजनिक अपील करनेसे पहले मेरे पास लोगोंके सामने रखनेके लिए कुछ प्रामाणिक जानकारी होनी चाहिए। इसलिए मैंने भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी) से श्री अमृतलाल ठक्करकी सेवाएँ देनेकी प्रार्थना की। इस काममें उनकी योग्यतापर सन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि इस प्रकारकी जाँचके कामोंमें उन्होंने वर्षोंसे योग्यता प्राप्त कर रखी है। मेरी यह प्रार्थना तत्काल स्वीकार कर ली गई और उड़ीसाके पुरी जिलेमें एक सप्ताहतक रहनेके बाद उन्होंने जो-कुछ बताया है उसका सार यह है:

> मैं पिछले ८ दिनोंसे गाँवोंमें यात्रा कर रहा हूँ। उड़ीसामें निश्चय ही अकालकी स्थिति है। जब मैं जमशेदपुरमें था तब मेरा खयाल था कि उड़ीसा भारतका एक अन्न-भण्डार है, क्योंकि बालासोरसे बहुत चावल आता था। किन्तु शोक! आज मैं देखता हूँ कि अकाल-पीड़ित जिलेके लोगोंको कलकत्ता, सम्बलपुर आदि जगहोंसे चावल मँगाना पड़ता है। इस प्रदेशके लोग अकाल और बाढ़ दोनोंकी मारसे पीड़ित हैं। कहा जाता है कि पिछले ६ महीनोंमें १,५०० से अधिक लोग भूखसे मर गये होंगे। मैं लगभग १९ गाँवोंमें घूम चुका हूँ। इनमें से ६ गाँवोंके

लगभग चालीस निवासी केवल भूखसे मरे बताये जाते हैं। लोग अब भी मर रहे हैं। एक बुड्ढा मेरी आँखोंके सामने ही मरा था। वह उन लोगोंमें से था जो सहायता लेनेके लिए आये थे। मेरा एक साथी कार्यकर्त्ता अभी एक गाँवसे लौटा है। वह कहता है कि उसने स्वयं एक बुड्ढेको भूखसे मरते देखा था। ऐसे अनाथ बच्चे, जिनके माँ-बाप अभी हाल में ही मरे हैं, हर किसीको जहाँ-तहाँ मिल जाते हैं। आप जहाँ जायेंगे आपको ऐसे बहुतसे लोग मिलेंगे जो कंकाल-मात्र रह गये हैं। मैं आपको यह तार भेज चुका हूँ:

मैं १९ गाँवोंमें जा चुका हूँ। मेरा दौरा अभी चालू है। बीसियों आदमी भूखसे मर चुके हैं। अभी हालमें सरकारने सहायता बाँटनी शुरू की है; किन्तु यह नाकाफी है। कृपया पाँच हजार रुपये तुरन्त भेजिए। कुल मिलाकर ३० से ५० हजार रुपयेकी आवश्यकता होगी।

अकाल कानूनके अनुसार उन लोगोंको, जो काम करनेलायक नहीं हैं, ५० तोले अन्न प्रति व्यक्ति दिया जाना चाहिए; किन्तु केवल २६ तोले प्रति व्यक्ति ही दिया जाता है। १० अप्रैलको राहत देनेका काम शुरू किया गया था। अबतक लगभग ४,००० आदमी यह सहायता ले चुके हैं। मैंने सुना है कि यह मात्रा बढ़ाकर जल्दी ही ४० तोले कर दी जायेगी।

उड़िया लोग बहुत गरीब हैं। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर कुछ समय पूर्व प्रभावित क्षेत्रको देखने गये थे; किन्तु ५,००० से अधिक लोगोंको यह आंशिक सहायता नहीं मिल सकी है। अकाल सम्बन्धी निर्माण-कार्य अभी आरम्भ नहीं किये गये हैं।

श्री ठक्करके पत्रसे सब बातें स्पष्ट हो जाती हैं। मुझे आशा है कि उड़ीसासे संकटकी जो पुकार उठी है वह सुनी जायेगी और जो लोग दे सकते हैं वे अपना हिस्सा अवश्य देंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-५-१९२०

१७६. न संत, न राजनीतिज्ञ

एक दयालु मित्रने 'ईस्ट ऐंड वेस्ट' के अप्रैलके अंकसे मुझे निम्न कतरन भेजी है:

श्री गांधीको संतकी ख्याति प्राप्त है, किन्तु ऐसा लगता है कि बहुधा उनके निर्णयोंपर संत गांधीकी अपेक्षा राजनीतिज्ञ गांधीका प्रभाव ज्यादा होता है। वे हड़तालोंका बहुत उपयोग कर रहे हैं और इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि उनके निर्देशनमें हड़ताल आजके किसी भी प्रश्नके सम्बन्धमें शिक्षितों और अशिक्षितोंको संगठित करनेका एक शक्तिशाली राजनैतिक शस्त्र होती जा रही है। हड़तालके साथ उसकी हानियाँ भी हैं। उससे लोग सीधी कार्रवाई सीख रहे हैं और सीधी कार्रवाई चाहे जितनी शक्तिशाली हो तो भी उससे एकता

> उत्पन्न नहीं होती। क्या श्री गांधीको बिलकुल विश्वास है कि वे अहिंसाके उच्चतम निर्देशोंके अनुसार काम कर रहे हैं। उन्होंने जलियाँवाला बाग गोलीकाण्डकी स्मृति-रक्षाका जो प्रस्ताव रखा है उससे एकता बढ़नेकी सम्भावना नहीं है। यह एक दुःखजनक घटना है जो हमारी सरकारके हाथसे धोखेमें हो गई है। किन्तु क्या इसकी कटुता स्मरण रखने योग्य है? क्या हम इस घटनाकी स्मृति एक शान्ति-मन्दिरका निर्माण करके, विधवाओं और अनाथोंको सहायता देकर और इस तरह उन लोगोंकी, जो अपनी मृत्युका कारण जाने बिना मारे गये, आत्माओंकी शान्तिकी कामना करके नहीं मना सकते। संसारमें ऐसे राजनीतिज्ञों और छुटभय्योंकी बहुलता है जो देशभक्तिके नामपर मनुष्यकी आन्तरिक मृदुताको विषाक्त बनाते हैं और फलस्वरूप युद्ध, झगड़े और जलियाँवाला बाग-जैसे हत्याकाण्ड आदि होते हैं। क्या यह बेहतर नहीं होगा कि अब हम एक ऐसे व्यापक सहजीवनकी स्थापनाके लिए कोशिश करें जिसका उपदेश बुद्ध और ईसाने दिया था और इस तरह सारी दुनियाको — सब देशोंको साथ-साथ फलने-फूलनेका अवसर दें। जान पड़ता था कि श्री गांधी ऐसे आन्दोलनके नेता बनेंगे; किन्तु परिस्थितियाँ उन्हें प्रतिरोध खड़ा करने और दलोंको स्थापित करनेका मार्ग अपनानेको बाध्य कर रही हैं। वे अब भी संसारके एकीकरणका वृहत्तर पुनीत कार्य अपने हाथमें ले सकते हैं।

मैंने पूरा उद्धरण दे दिया है। सामान्यतः मैं अपनी या अपने तरीकोंकी आलोचनाके बारेमें यहाँ तभी लिखता हूँ जब उसके द्वारा मुझे कोई भूल स्वीकार करनी होती है या आलोचित सिद्धान्तोंपर और अधिक जोर देना होता है। मेरे पास इस उद्धरणका उल्लेख करनेके दो कारण हैं: मुझे आशा है कि जो सिद्धान्त मुझे प्रिय हैं, उनका इस तरह मैं और अधिक स्पष्टीकरण कर पाऊँगा, और दूसरे मैं इस आलोचनाके लेखकके प्रति अपना आदर-भाव भी दिखाना चाहता हूँ। बात यह है कि इस आलोचकको मैं न केवल जानता हूँ बल्कि उनके अनुपम चारित्रिक गुणोंका मैं वर्षोंसे प्रशंसक भी रहा हूँ। आलोचकको मेरी राजनीतिक प्रवृत्ति देखकर दुःख है, क्योंकि वह मुझसे संत होनेकी आशा करता था। मेरा खयाल है कि वर्तमान जीवनसे 'संत' शब्दको हटा देना चाहिए। यह शब्द इतना अधिक पवित्र है कि यह किसीके लिए यों ही प्रयुक्त नहीं किया जा सकता और मुझ-जैसे किसी व्यक्तिके लिए तो और भी नहीं जो केवल एक मामूली-सा सत्यान्वेषी होनेका ही दावा करता है, जो अपनी सीमाएँ जानता है, भूलें करता है, और जब भी भूलें करता है, उन्हें स्वीकार करनेमें कभी नहीं झिझकता और साफ-साफ स्वीकार करता है कि वह एक वैज्ञानिककी भाँति जीवनके कुछ नित्य सत्योंके सम्बन्धमें प्रयोग-मात्र कर रहा है; किन्तु जो एक वैज्ञानिक होनेका भी दावा नहीं कर सकता क्योंकि वह अपने तरीकोंकी वैज्ञानिक यथार्थताका कोई ठोस प्रमाण नहीं दे सकता या अपने प्रयोगोंके कोई वैसे ठोस परिणाम नहीं दिखा सकता जैसे आधुनिक विज्ञान चाहता है। किन्तु यद्यपि संतत्वको अस्वीकार करके मैं आलोचककी आशाओंकी पूर्ति नहीं

करता, मैं यह चाहता हूँ कि वे अपने मनमें से दुःखका भाव निकाल दें। इसके लिए उनको मेरा उत्तर यह है कि मेरे एक भी निर्णयपर मेरे व्यक्तित्वके राजनीतिक पक्षका प्रभाव कभी मुख्य नहीं रहा है। और यदि मैं राजनीतिमें भाग लेता हुआ जान पड़ता हूँ तो इसका कारण केवल यही है कि आज राजनीतिने साँपकी गुंजलककी तरह चारों ओरसे हमें इस प्रकार घेर रखा है कि कोई कितना भी प्रयत्न क्यों न करे, उससे निकल ही नहीं सकता। इसलिए मैं इस साँपसे लड़ना चाहता हूँ, जैसा मैं न्यूनाधिक सफलतापूर्वक जान-बूझकर १८९४ से और अनजाने, जिसका पता मुझे अभी चला है, जबसे मैंने होश सँभाला है, तबसे लड़ता रहा हूँ। चूँकि मैं नितान्त स्वार्थभावसे अपने चारों ओर गरजते हुए तूफानमें शान्तिपूर्वक रहना चाहता हूँ, इसलिए मैं राजनीतिमें धर्मका समावेश करके अपने और अपने मित्रोंके साथ प्रयोग कर रहा हूँ। मैं समझा दूँ कि धर्मसे मेरा क्या मतलब है। मेरा मतलब हिन्दू धर्मसे नहीं है जिसकी मैं बेशक और सब धर्मोंसे ज्यादा कीमत आँकता हूँ। मेरा मतलब उस मूल धर्मसे है जो हिन्दू धर्मसे कहीं उच्चतर है, जो मनुष्यके स्वभावतक का परिवर्तन कर देता है, जो हमें अन्तरके सत्यसे अटूट रूपसे बांध देता है और जो निरन्तर अधिक शुद्ध और पवित्र बनाता रहता है। वह मनुष्यकी प्रकृतिका ऐसा स्थायी तत्त्व है जो अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्तिके लिए कोई भी कीमत चुकानेको तैयार रहता है और उसे तबतक बिलकुल बेचैन बनाये रखता है जबतक उसे अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं हो जाता, अपने स्रष्टाका ज्ञान नहीं हो जाता तथा स्रष्टाके और अपने बीचका सच्चा सम्बन्ध समझमें नहीं आ जाता।

उसी धार्मिक भावनाका अनुसरण करते हुए हड़ताल सूझी। मैं यही दिखाना चाहता था कि भारतमें आत्म-चेतना या शिक्षितोंकी एकता कोरी शिक्षासे उत्पन्न नहीं होगी। ६ अप्रैल, १९१९ को हड़तालसे समस्त भारतमें प्रकाश फैल गया, मानों किसीने जादू कर दिया हो। किन्तु शैतानने उस सरकारके, जिसे अपने अन्यायकी अनुभूति हो रही थी, मनमें भयका संचार कर दिया और लोगोंको, जो सरकारके प्रति नितान्त अविश्वासके कारण भड़कनेके लिए तैयार बैठे थे, नाराज कर दिया; जिससे १० अप्रैलका विस्फोट हुआ। यदि वह विस्फोट न होता तो भारत इतना ऊँचा उठ गया होता कि उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। जन-साधारणने हड़ताल सच्ची धार्मिक भावनासे स्वीकार की थी। इतना ही नहीं बल्कि वह कई सीधी कार्रवाइयोंकी भूमिका बननेवाली थी।

किन्तु मेरे आलोचकने तो सीधी कार्रवाईपर खेद प्रकट किया है। क्योंकि वे कहते हैं "उसमें एकता नहीं होती।" मैं उनके कथनका विरोध करता हूँ। इस पृथ्वीपर सीधी कार्रवाईके बिना कभी कोई काम सिद्ध हो नहीं हुआ। मैंने 'अनाक्रामक प्रतिरोध' शब्दोंको इसलिए रद कर दिया कि वे अपर्याप्त थे और अनाक्रामक प्रतिरोध कमजोरका हथियार माना जाता है। दक्षिण आफ्रिकामें सीधी कार्रवाईका ही असर पड़ा था और ऐसा गहरा असर कि उससे जनरल स्मट्सकी अक्ल ठिकाने आ गई थी। वे सन् १९०६ में भारतीय आकांक्षाओंके घोर विरोधी थे। १९१४ में उन्होंने उस अपमानजनक कानूनको[1] दक्षिण आफ्रिकाकी कानूनकी पुस्तकसे निकालकर भारतीयोंके साथ, बिलम्ब-

१. ट्रान्सवालका एशियाई पंजीयन अधिनियम।

से ही सही, न्याय करनेमें गर्व अनुभव किया था जिसके बारेमें उन्होंने सन् १९०९ में लॉर्ड मॉर्लेसे कहा था कि वह कदापि न हटाया जायेगा, क्योंकि तब उन्होंने कहा था कि दक्षिण आफ्रिका उस कानूनका रद किया जाना कभी सहन न करेगा जो ट्रान्सवाल-के विधान-मण्डलमें दो बार पास किया जा चुका है।[1] किन्तु इतना ही नहीं, विशेषता यह है कि जो सीधी कार्रवाई आठ वर्षतक[2] चली, उसके बाद कोई कटुता शेष नहीं रही। इतना ही नहीं बल्कि जिन भारतीयोंने जनरल स्मट्ससे ऐसी डटकर लड़ाई की थी, वे ही १९१५ में जनरल स्मट्सके झंडेके नीचे इकट्ठे हो गये और पूर्व आफ्रिकामें उनकी अधीनतामें लड़े।[3] चम्पारनमें एक लम्बे अरसेसे चली आती हुई शिकायत सीधी कार्र-वाईसे[4] ही दूर हुई। जब कोई मनुष्य ऐसी एक निर्योग्यताकी व्यथासे पीड़ित हो, जिसे दूर करनेपर वह प्रसन्न हो, तब उसे स्वीकार करनेसे एकता नहीं बढ़ती, बल्कि उससे कमजोर पक्ष कटु और क्रुद्ध हो जाता है एवं अवसर मिलनेपर विस्फोटके लिए तैयार हो जाता है। कमजोर पक्षके साथ मिलकर उसे सीधी, मजबूत किन्तु हानिरहित कार्रवाई करना सिखाकर मैं उसे यह अनुभव कराता हूँ कि वह मजबूत है और शरीरबलको चुनौती दे सकता है। वह अपनेमें संघर्षकी शक्ति अनुभव करता है, उसमें आत्मविश्वास फिर आ जाता है, और यह जानते हुए कि इसका उपाय उसीके हाथमें है, वह अपने मनसे बदलेका भाव निकाल देता है एवं जिस अन्यायको दूर करानेके लिए वह लड़ रहा है, उसके दूर कर दिये जानेसे सन्तुष्ट होना सीखता है।

मैंने इसी रास्तेपर चलते हुए जलियाँवाला बागके सम्बन्धमें एक स्मारक बनानेका सुझाव दिया है। 'ईस्ट ऐंड वेस्ट' में जिस व्यक्तिने यह लेख लिखा है उसने मुझपर एक ऐसा प्रस्ताव रखनेका दोष लगाया है जो मेरे दिमागतक में कभी नहीं आया। उसका खयाल है कि "मैं जलियाँवाला बागके गोलीकाण्डका स्मारक" बनाना चाहता हूँ। मुझे एक कुकृत्यकी स्मृतिको स्थायी बनानेका कभी खयाल भी नहीं आ सकता। मेरा खयाल है कि अपने न्याय्य अधिकार पानेसे पहले हमें इस प्रकारकी घटनाओंका सामना पुनः करना होगा और मैं निर्दोष मृतकोंकी स्मृतिको कायम रखकर राष्ट्र-को उसके लिए तैयार करूँगा। विधवाओं और अनाथोंकी सहायता की गई है और की जा रही है; किन्तु हम यदि उस जमीनको, जो उनके रक्तसे पवित्र हुई है, प्राप्त नहीं करेंगे और वहाँ उनके लिए एक उचित स्मारक नहीं बनायेंगे तो हम उन आत्माओंकी शान्तिकी कामना नहीं कर सकते जो कारण जाने बिना मारे गये। जहाँतक मेरा बस चलेगा वह स्मारक उस दूषित कार्यकी याद न दिलायेगा बल्कि उससे राष्ट्रको यह प्रोत्साहन मिलेगा कि अत्याचारीकी अपेक्षा असहाय, निशस्त्र और पीड़ितके रूपमें

१. एक बार १९०६ में ट्रान्सवाल एशियाई कानून संशोधन अध्यादेशके रूपमें और दोबारा १९०७ में ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके रूपमें।

२. १९०६ से १९१४ तक।

३. प्रथम विश्व-युद्धमें जर्मनोंके विरुद्ध पूर्व आफ्रिकामें।

४. चम्पारन-सत्याग्रह, जिसका नेतृत्व १९१७ में गांधीजीने यूरोपीय जमीदारोंके विरोधमें नीलकी खेतीके मजदूरोंकी शिकायतें दूर करवानेके लिए किया था।

मर जाना अधिक अच्छा है। मैं चाहता हूँ कि हमारी भावी पीढ़ियाँ यह याद रखें कि हम लोगोंने, जिन्होंने इन निर्दोष लोगोंको मरते देखा था, अकृतज्ञतापूर्वक उनकी स्मृतिको कायम रखनेसे इनकार नहीं किया। श्रीमती जिन्नाने इस कोषमें अपना हिस्सा देते समय ठीक ही कहा था कि यह स्मारक हमें कमसे-कम जीवित रहनेका कोई बहाना देगा। हम जिस भावनासे स्मारक बनायेंगे उसीसे तो इसका स्वरूप निश्चित होगा।

यह "बृहत्तर सहजीवन" क्या था जिसका उपदेश बुद्ध और ईसाने दिया था? बुद्धने निर्भय होकर अपने विरोधियोंसे सीधी टक्कर ली थी और गर्वीले पुजारी वर्गको पराजित किया था। ईसाने महाजनोंको जेरूसलेमके मन्दिरसे निकाल दिया था और दम्भियों एवं पाखंडियोंको स्वर्गसे अभिशाप दिलाया था। दोनों ही तीव्र सीधी कार्रवाईके हिमायती थे। किन्तु जैसे बुद्ध और ईसाने ताड़ना दी वैसे ही उनके प्रत्येक कार्यके मूलमें असंदिग्ध रूपसे दयाभाव और प्रेमभाव भी था। वे अपने शत्रुओंके खिलाफ एक अँगुली भी न उठाते थे; लेकिन वे जिस सत्यके लिए जीते थे उसका त्याग कदापि [न]हीं करते थे, उसके बजाय वे शत्रुको अपना सिर समर्पित करनेको तैयार रहते थे। [य]दि बुद्धका प्रेम पुजारियोंको झुकानेके लिए पर्याप्त सिद्ध न होता तो वे उन पुजारियों-का विरोध करते हुए अपने प्राण दे देते। ईसा पूरे साम्राज्यको चुनौती देते हुए अपने सिरपर काँटोंका ताज पहने हुए सूलीपर मरे और यदि मैं अहिंसात्मक प्रतिरोध करता हूँ तो विनम्रतापूर्वक केवल उन महान् शिक्षकोंका ही अनुसरण करता हूँ जिनका उल्लेख मेरे आलोचकने किया है।

अन्ततः उक्त अवतरणका लेखक मेरे द्वारा "दलोंके संगठनका" विरोध करता है और यह चाहता है कि "मैं संसारको एक करनेका बृहत्तर कार्य" अपने हाथमें ले लूँ। मैंने एक बार, जब वे और मैं एक ही मकानमें थे, उनसे कहा था कि मैं शायद उनसे अधिक विश्वप्रेमी हूँ। मैं उस बातको अभीतक मानता हूँ। मैं जबतक दलोंको संगठित न करूँ तबतक मैं समस्त संसारका संगठन नहीं कर सकूँगा। टॉल्स्टॉयने एक बार कहा था कि यदि हम केवल अपने पड़ोसियोंपर से अपना बोझ दूर कर दें तो संसारको हमारी और अधिक सहायताकी आवश्यकता न होगी और वह उसके बिना बिलकुल ठीक चलेगा और यदि हम अपने निकटस्थ पड़ोसियोंकी इतनी ही सेवा करें कि उनका शोषण बन्द कर दें तो इस प्रकार ठीक ढंगसे संगठित किये गये दलोंका घेरा तबतक बढ़ता ही जायगा जबतक वह आखीरमें अपने भीतर समस्त संसारका ही समावेश नहीं कर लेगा। इससे अधिक करने या पानेका सामर्थ्य तो किसी भी मनुष्यमें है नहीं। 'यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे'[1] यह वचन आज भी उतना ही सत्य है जितना सत्य वह तब था जब कि यह किसी अज्ञात ऋषिके मुँहसे निकला था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-५-१९२०

१. जैसा पिंडमें है वैसा ही ब्रह्माण्डमें है।

१७७. खिलाफत

जैसा मैंने अपने पिछले पत्रमें लिखा था, मेरा खयाल है कि श्री गांधीने खिलाफतके मामलेमें गम्भीर भूल की है। भारतके मुसलमान इस कथनके आधारपर अपनी मांग करते हैं कि उनके धर्ममें अरब देशपर तुर्कोंके शासनका विधान है। किन्तु जब स्वयं अरब इस मामलेमें उनके विरोधी हैं, तब भारतीय मुसलमानोंके इस सिद्धान्तको इस्लामके लिए अनिवार्य मानना असम्भव है। यदि अरब इस्लामका प्रतिनिधित्व नहीं करते तो आखिर कौन करता है? यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे जर्मनीके रोमन कैथॉलिक लोग रोमसे रोमन कैथॉलिकोंके नामपर कोई मांग करें और इटलीके लोग उसकी विरोधी मांग करें। किन्तु यदि यह मान भी लें कि भारतीय मुसलमानोंके धर्ममें अरबोंपर उनकी इच्छाके विरुद्ध तुर्कोंका शासन लादनेका विधान है तो आजके जमानेमें कोई भी ऐसी मांगको, जिसमें एक देशके लोगोंका अत्याचार दूसरे देशके लोगोंपर जारी रखना जरूरी हो, वस्तुतः धार्मिक मांग नहीं मान सकता। भारतीय मुसलमानोंको जब लड़ाईके आरम्भमें यह आश्वासन दिया गया था कि उनके धर्मकी रक्षा की जायेगी तो उसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता था कि ऐसे सांसारिक प्रभुत्वको कायम रखा जायेगा जिससे आत्मनिर्णयके सिद्धान्तोंका भंग होता हो। अब हम अरबोंपर तुर्कोंकी पुर्नविजयको खड़े-खड़े देखते नहीं रह सकते (क्योंकि अरब निश्चय ही उनसे लड़ेंगे); हमारा ऐसा करना अरबोंको, जिन्हें हमने वचन दिये हैं, स्पष्ट धोखा देना होगा। यह बात सत्य नहीं है कि अरब केवल यूरोपीयोंके कहनेसे तुर्कोंके प्रति वैरभाव दिखा रहे हैं। निस्सन्देह युद्धमें हमने तुर्कोंके प्रति अरबोंके वैरभावका उपयोग एक और साथी प्राप्त करनेके लिए किया था, किन्तु यह वैरभाव तो लड़ाईके पहलेसे मौजूद था। सुलतानके गैर-तुर्क मुसलमान प्रजाजन प्रायः उनके शासनसे मुक्त होना चाहते थे। भारतीय मुसलमान ही उस शासनको, जिसका उन्हें कोई अनुभव नहीं है, दूसरोंपर लादना चाहते हैं। असलमें सीरिया या अरबमें तुर्कोंका राज्य फिर स्थापित करनेकी कल्पना सब सम्भावनाओंसे इतनी दूर जान पड़ती है कि उसपर विचार करना पवित्र रोमन साम्राज्यके पुनःसंस्थापन-जैसा प्रतीत होता है। मैं कल्पना नहीं कर सकता कि कौनसे घटनाक्रमसे यह परिणाम आ सकता है, निश्चय ही भारतीय मुसलमान स्वयं अरबपर चढ़ाई करके अरबोंको जीत नहीं सकते और उनपर सुलतानका शासन कायम नहीं कर सकते। और भारतमें चाहे जितना आन्दोलन और उपद्रव किया जाये उससे इंग्लैंड कभी भी अरबमें तुर्कोंका शासन फिर कायम नहीं करेगा। इस

> मामलेमें भारतीय मुसलमान इंग्लैंडके साम्राज्यवादका विरोध नहीं कर रहे हैं, बल्कि इंग्लैंडकी उदार और मानवतावादी विचारधाराका विरोध कर रहे हैं। वे इंग्लैंडके अच्छी राय रखनेवाले उस जनसमुदायका विरोध कर रहे हैं जो चाहता है कि भारतमें आत्म-निर्णयके सिद्धान्तपर अमल किया जाये। मान लीजिए कि भारतीय मुसलमान भारतमें ऐसा प्रबल आन्दोलन कर सकते हैं कि उससे भारत और ब्रिटिश सम्राट्के सम्बन्ध टूट जायें, किन्तु फिर भी इससे उनकी उद्देश्य-सिद्धि तनिक भी न होगी। क्योंकि आज ब्रिटेनकी विश्व सम्बन्धी नीतिपर उनका बहुत प्रभाव है। भले ही टर्कीके प्रश्नके इस मामलेमें उनका प्रभाव इतना नहीं है कि दूसरे पक्षकी तुलनामें, जिसका बहुत प्रभाव है, वे अपना पलड़ा भारी कर सकें, फिर भी उनका असर तो पड़ा है। किन्तु ब्रिटेनसे सम्बन्ध न होता तो भारतके बाहर भारतीय मुसलमानोंका प्रभाव बिलकुल न होता। विश्वकी राजनीतिमें तब उनका महत्त्व चीनके मुसलमानोंसे अधिक न होता। मेरे खयालसे यह सम्भव है (अमरीकाका दबाव दूसरी ओर होनेकी बात छोड़ दें तो मुझे कहना चाहिए कि निश्चित है) कि भारतीय मुसलमानोंके प्रभावसे सुलतान कमसे-कम कुस्तुन्तुनियामें रह सकता है। किन्तु मुझे सन्देह है कि इससे उन्हें कुछ भी लाभ होगा। टर्कीका जो भाग एशिया माइनरमें है यदि टर्की उतना ही रह जाये तो कुस्तुन्तुनियाको राजधानी रखनेमें बहुत असुविधा होगी। मेरा खयाल है कि पुराने तुर्क साम्राज्यके इस दिखावेको कायम रखनेसे जितनी भावनात्मक प्रसन्नता हो सकती है उसकी अपेक्षा यह असुविधा भारी पड़ेगी। किन्तु यदि भारतीय मुसलमान यह चाहते हैं कि सुलतानका सदर मुकाम कुस्तुन्तुनिया ही रहे तो मेरा खयाल है कि भारतके वाइसरायने[1] सरकारी तौरपर जो आश्वासन दे दिया है उससे हम सुलतानका सदर-मुकाम वहाँ कायम रखनेके मामलेमें मदद देनेके लिए बँध जाते हैं और मेरा खयाल है कि अमरीकी विरोधके बावजूद सुलतान वहाँ रहेगा भी।

यह उद्धरण एक ऐसे अंग्रेज द्वारा, जिसका ब्रिटेनमें अच्छा स्थान है, अपने भारतीय मित्रको लिखे गये पत्रका है। अपने प्रकारका यह एक विशिष्ट पत्र है — संयत, नरमाईसे लिखा गया और विषयसे सम्बद्ध। इसकी भाषा ऐसी शिष्ट है कि यद्यपि इसमें आपको चुनौती दी गई है, फिर भी उसकी शिष्टताके कारण उसके प्रति आपका समादर बना रहता है। किन्तु अपर्याप्त या असत्य जानकारीपर आधारित इस पत्रके कारण ही ब्रिटेनमें ऐसे अनेक कार्य, जिनका उद्देश्य बहुत अच्छा था, विफल हो चुके हैं। आधुनिक पत्रकारितामें जो छिछलापन, एकपक्षीयता, अयथार्थता और प्रायः असत्यता भी आ गई है उससे सच्चे आदमी, जो यह चाहते हैं कि विशुद्ध न्याय किया जाये, लगातार गुमराह होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ स्वार्थी दल ऐसे होते हैं जिनका

१. लॉर्ड रीडिंग।

काम उचित या अनुचित साधनोंसे जैसे भी हो अपना मतलब गाँठना होता है। और सच्चे अंग्रेज न्यायके पक्षमें अपनी राय देनेकी इच्छा होनेपर भी विरोधी मतोंसे बहक-कर और विकृत कथनोंके प्रभावमें आकर प्रायः अन्तमें अन्यायके साधन बन जाते हैं।

उपर्युक्त पत्रके लेखकने अपने कथनके पक्षमें जो तर्क पेश किये हैं वे प्रतीतिजनक हैं सही किन्तु वे काल्पनिक सामग्रीपर आधारित हैं। उन्होंने सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिया है कि मुसलमानोंका पक्ष, जैसा वह उनके सम्मुख प्रस्तुत किया गया है, बिलकुल निस्सार है। भारतमें, जहाँ खिलाफतसे सम्बन्धित तथ्योंकी तोड़-मरोड़ करना इतना आसान नहीं, अंग्रेज मित्र स्वीकार करते हैं कि भारतीय मुसलमानोंकी माँग नितान्त न्यायसंगत है। किन्तु वे कहते हैं कि कुछ करना उनके बसकी बात नहीं और भारत सरकार एवं श्री मॉण्टेग्यु, जहाँतक मनुष्यके बसकी बात है, सब-कुछ कर चुके हैं, और यदि अब निर्णय इस्लामके विरुद्ध होता है तो भारतीय मुसलमानोंको चुप बैठ रहना चाहिए। यह असाधारण स्थिति, आजके युगमें काम जिस तेजीसे किया जाता है, उसके और सब उत्तरदायी लोगोंकी व्यस्तताके कारण ही बनी है, अन्यथा वह सम्भव न होती।

इस मामलेकी जैसी कल्पना लेखकने की है, उसपर अब हम क्षण-भरके लिए विचार करें। वे कहते हैं कि भारतीय मुसलमान अरबोंके विरोधके बावजूद अरब देशमें टर्कीका शासन कायम कराना चाहते हैं। और यदि अरब लोग टर्कीका शासन नहीं चाहते तो लेखकका तर्क यह है कि जब भारत स्वयं आत्मनिर्णयके दर्जेपर जोर दे रहा है, तब किसी भी झूठी धार्मिक भावनाके कारण अरबोंके आत्मनिर्णयके अधिकारमें बाधा नहीं पड़ने दी जा सकती। अब तथ्य यह है कि जिन लोगोंने इस मामलेका तनिक भी अध्ययन किया है, वे सभी जानते हैं कि मुसलमानोंने अरबोंके विरोधके होते हुए अरब देशमें टर्कीका शासन कायम करनेकी माँग कभी नहीं की है। इसके विपरीत उन्होंने यह कहा है कि अरब लोगोंके स्वशासनके अधिकारका विरोध करनेका उनका कतई कोई इरादा नहीं है। वे केवल इतना ही चाहते हैं कि अरब देशपर टर्कीका ऐसा अधिराजत्व रहे जिसमें अरबोंको स्वशासनका पूरा अधिकार हो। वे इस्लामके तीर्थ-स्थानोंपर खलीफाका नियन्त्रण चाहते हैं। दूसरे शब्दोंमें कहें तो लॉयड जॉर्जने जो आश्वासन[1] दिया था उससे अधिक वे कुछ नहीं चाहते। और इसी आश्वासनके सबबसे मुसलमान सिपाहियोंने मित्र देशोंकी ओरसे लड़ते हुए अपना रक्त बहाया था। इसलिए उक्त उद्धरणमें पेशकी गई यह सारी लम्बी-चौड़ी दलील और यह सारा जोरदार विवे-चन छिन्न-भिन्न हो जाता है, क्योंकि मामला वैसा है ही नहीं जैसा इसमें मान लिया गया है। मैं पूरी शक्तिसे इस मामलेमें इसीलिए पड़ा हूँ, क्योंकि ब्रिटेनके वायदे, शुद्ध न्याय और धार्मिक भावना सभी बातोंका इसमें संयोग है। मैं ऐसी परिस्थितिकी कल्पना कर सकता हूँ जिसमें विशुद्ध न्याय एक बात कहे और अन्धी धार्मिक भावना उससे बिलकुल उलटी। उस हालतमें मुझे इस धार्मिक भावनाका ही विरोध करना चाहिए और विशुद्ध न्यायका पक्ष लेना चाहिए। मैं एक अन्यायपूर्ण उद्देश्यका समर्थन करने-

१. अपने ५ जनवरी, १९१८ के भाषणमें।

के लिए बेईमानीसे दिये गये वचनोंपर भी जोर न दूँगा, जैसा कि इंग्लैंडने गुप्त सन्धियोंके[1] मामलेमें किया है। ऐसी हालतमें एक ऐसे राष्ट्रके लिए जिसे अपनी न्यायशीलतापर गर्व हो, प्रतिरोध वैध ही नहीं बल्कि अनिवार्य हो जाता है।

मेरे लिए अंग्रेज मित्र द्वारा कल्पित इस स्थितिपर कि यदि भारत स्वतन्त्र देश होता तो क्या करता, विचार करना अनावश्यक है। यह अनावश्यक है क्योंकि भारतीय मुसलमान और भारत एक ऐसे उद्देश्यके लिए लड़ रहे हैं जो सचमुच उचित है और उसीके लिए हम अंग्रेजोंकी हार्दिक सहायता माँग रहे हैं। किन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह ऐसा उद्देश्य है जिसके लिए कोरी सहानुभूति पर्याप्त न होगी और जिसे ऐसी ठोस सहायता चाहिए जो पर्याप्त न्याय दिला सके।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२–५–१९२०

१७८. वचन पालनका श्रीगणेश

मैंने अपने खिलाफत सम्बन्धी लेखमें मन्त्रियों द्वारा दिये गये वचनोंके सम्बन्धमें कुछ कहा था। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के 'सामयिक विषय' स्तम्भके लेखकने मेरे कथनको चुनौती देनेका प्रयत्न किया है और ऐसा करते हुए अपनी बातके समर्थनमें श्री एस्क्विथके १० नवम्बर, १९१४ के, गिल्ड हॉलमें दिये गये भाषणका[2] उल्लेख किया है। उक्त लेखको लिखते समय मुझे श्री एस्क्विथके भाषणका खयाल था। उन्होंने ऐसा भाषण दिया इसका मुझे खेद है, क्योंकि मेरी विनम्र सम्मतिमें उस भाषणसे कमसे-कम यह तो प्रकट हो ही जाता है कि वक्ताके विचार स्पष्ट नहीं हैं। क्या वे यह सोच सकते हैं कि तुर्क लोग ऑटोमन[3] सरकारसे पृथक हैं? यदि यूरोप और एशियामें ऑटोमन राज्यके अन्तका अर्थ तुर्कोंके शासन और एक स्वतंत्र और शासक जातिके रूपमें तुर्क लोगोंका अन्त नहीं है तो और क्या है? फिर क्या ऐतिहासिक दृष्टिसे यह गलत है कि टर्कीका राज्य एक महारोग है जिससे "पृथ्वीके कुछ सुन्दरतम प्रदेश तबाह हो चुके हैं।" और उसके बाद उन्होंने जो यह कहा था कि "हमारे मनमें उनके धार्मिक विश्वासोंके खिलाफ युद्ध छेड़नेपर दूसरोंको वैसा करनेके लिए उकसानेका खयाल कभी नहीं आया।" इसका क्या अर्थ है? यदि शब्दोंका कोई अर्थ होता है तो श्री एस्क्विथने अपने भाषणमें जो शर्तें रखी हैं उनका अर्थ यही होगा कि भारतीय मुसलमानोंकी भावनाओंका सच्चे मनसे खयाल रखा जायेगा। और यदि उनके भाषणका यह अर्थ हो तो अपने कथनके समर्थनमें अन्य कोई बात कहे बिना मैं यह दावा करूँगा कि यदि सैन रेमो सम्मेलनके[4] प्रस्ताव कार्यान्वित किये

जाते हैं तो श्री एस्क्विथके आश्वासनके भी व्यर्थ होनेका खतरा है। किन्तु मैंने जो बात कही है वह श्री एस्क्विथके अनुगामी प्रधान मन्त्रीके[1] दो वर्ष बाद दिए गये सुविचारित भाषणके आधारपर कही है जब कि स्थिति सन् १९१४ की अपेक्षा अधिक खतरनाक हो गई थी और जब भारतीयोंकी सहायताकी आवश्यकता अधिक थी। उनका वचन जबतक पूरा नहीं किया जाता तबतक दुहराया जाता रहेगा। उन्होंने कहा था:

> हम इसलिए भी नहीं लड़ रहे हैं कि टर्कीसे उसकी राजधानी छीन ली जाये, या उससे एशिया माइनर और थ्रेसकी वे उपजाऊ और प्रसिद्ध जमीनें ले ली जायें जिनमें प्रधानतः तुर्क जाति रहती है। हम तुर्क प्रजातिके देशमें तुर्क साम्राज्य कायम रखने और कुस्तुन्तुनियाको उसकी राजधानी बनाये रखनेमें कोई आपत्ति नहीं करते।

यदि केवल इस वचनपर[2] सचाईसे, शब्दशः अमल किया जाये तो झगड़नेकी कोई बात ही नहीं रहेगी। और जहाँतक श्री एस्क्विथकी घोषणा भारतीय मुसलमानोंकी माँगके विरुद्ध समझी जा सकती है, वह श्री लॉयड जॉर्जकी इस पिछली घोषणा और अधिक सोच-समझकर की हुई घोषणासे रद हो जाती है और लॉयड जॉर्जकी घोषणा अब वापस नहीं ली जा सकती, क्योंकि वह जिस आशासे की गई थी वह पूरी की जा चुकी है; अर्थात् वीर मुसलमान सिपाही फौजमें भरती हुए एवं वे उसी जगह लड़े जिसका उक्त वचनके बावजूद अब बँटवारा किया जा रहा है। किन्तु 'सामयिक विषय' के लेखकने कहा है कि श्री लॉयड जॉर्ज अब अपने वचनका पालन आरम्भ करने-वाले हैं। मुझे आशा है कि उनका कथन ठीक होगा। किन्तु जो-कुछ हुआ है, उससे किसी ऐसी आशाकी भूमिका नहीं बँधती है। क्योंकि खलीफाको उसकी राजधानीमें[3] कैद या नजरबन्द रखना वचन पूरा करनेका उपहास ही नहीं है, बल्कि जलेपर नमक छिड़कनेके समान है। या तो अब तुर्क जाति जहाँ रहती है उन देशोंमें टर्कीका साम्राज्य और कुस्तुन्तुनियामें उनकी राजधानी कायम रखी जानी है या नहीं रखी जानी है। यदि रखी जानी है तो भारतीय मुसलमानोंको उसके पूरे गौरवकी अनुभूति होने दीजिए; अथवा यदि साम्राज्य भंग किया जाना है तो आडम्बरका पर्दा हटा दिया जाये और भारतको नग्न सत्यके दर्शन करने दिये जायें। इस तरह हम देख सकते हैं कि खिलाफत आन्दोलनमें सम्मिलित होनेका अर्थ है एक ब्रिटिश मन्त्रीके वचनके अक्षुण्ण रखनेके आन्दोलनमें भाग लेना। निःसन्देह ऐसा आन्दोलन, असहयोगमें जितना त्याग किया जा सकता है उससे अधिक त्याग करनेके योग्य है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-५-१९२०

१. लॉयड जॉर्ज।

२. ५ जनवरी, १९१२ को दिया गया।

३. देखिए "अब क्या करेंगे?", २३-५-१९२०।

१७९. भाषण : असहयोगपर

१२ मई, १९२०

१२ मईको असहयोग आन्दोलनपर अन्तिम रूपसे विचार करनेके लिए अखिल भारतीय खिलाफत समितिकी एक फौरी बैठक हुई।[1] . . . केन्द्रीय समितिने अन्तमें उप-समिति, जिसके सदस्य सर्वश्री छोटानी, गांधी, अबुल कलाम आजाद और शौकत-अली हैं, द्वारा सुझाये गये असहयोग आन्दोलनके कार्यक्रमको सर्वसम्मतिसे स्वीकार कर लिया और कार्यरूप देनेका निर्णय किया। . . .

महात्मा गांधीने अपने स्पष्ट और ओजस्वी भाषणमें पुनः असहयोग आन्दोलनकी व्याख्या की। उन्होंने कहा कि इसकी सफलता मुसलमानोंकी दृढ़ता और साहसपर निर्भर करती है। उनके हिन्दू भाई प्रसन्नतापूर्वक उनकी सहायता करेंगे, परन्तु नेतृत्व तो उन्हें ही करना होगा। लोगोंको हर तरहसे समझा देना चाहिए कि अगर किसी उत्तेजनाके वशीभूत होकर लोगोंने संयुक्त प्रयत्नके दौरान तनिक भी हिंसा की तो वह हमारे उद्देश्यके लिए घातक सिद्ध होगी। उन्होंने सबको यह आश्वासन दिया कि इस पवित्र कार्यके लिए उनकी पत्नी तथा बच्चे प्रसन्नतासे अपने जीवन और सर्वस्वकी बलि दे देंगे।

गम्भीर विचार-विमर्श और चक्रवर्ती राजगोपालाचारीके भाषणके उपरान्त लोगोंने बड़े उत्साहपूर्वक खड़े होकर प्रस्तुत प्रस्तावके प्रति ईश्वरको अपनी दृढ़ आस्थाका साक्षी मानते हुए, उसे[2] सर्वसम्मतिसे पास कर दिया।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १४–५–१९२०

१८०. पत्र : महादेव देसाईको

शान्तिको क्या कहींसे खरीदा जा सकता है? महलके ठाठ-बाटमें रहता हुआ राजा अशान्त हो सकता है और महाव्यथासे पीड़ित जॉब-जैसे व्यक्तिको शान्ति मिल सकती है। बनियनको जेलमें क्या कम शान्ति थी? और रोग शय्यापर पड़े-पड़े क्या तुम भी शान्तिका अनुभव नहीं कर रहे थे? अगर जीव [अनित्य वस्तुओंके पीछे] निरर्थक भाग-दौड़ न किया करे तो वह शान्ति प्राप्त कर सकता है। यह निरर्थक भाग-दौड़ तो मंगलदास-तक[1] करते हैं जब कि कितने ही मजदूर शान्तिका उपभोग करते हैं। तुम्हारा शरीर चलता रहे और तुम काम करते रहो तब भी क्या और अगर न चले तथा तुम काम न कर सको तब भी क्या? तुम्हारे लिए इतना ही काफी है कि तुम उसकी गति न रोको और उसे स्वयं स्वस्थ बनाये रखनेके लिए आवश्यक उपाय करते रहो। 'मन एव मनुष्याणां ...' इस सूक्तिमें कितना जोर है यह कौन जानता है? हमेशा सुननेसे क्या उसमें निहित सत्य कम हो जाता है? और अगर उसके सत्यको तुम स्वीकार करते हो तो मन-ही-मन बराबर इसे दुहराते हुए तुम अपने शोक, अपनी ग्लानि, अपनी निराशा और उद्वेलित भावनाओंका शमन कर डालो।

यह रहा वाइसरायका पत्र।[2] ऐसा लगता है कि अब मुझे जाना ही चाहिए। मुझे अर्थात् हमें। मैंने शौकत अलीको लिखा है। वे बम्बईमें हैं। मैंने उन्हें यहाँ बुलाया है। उसके बाद निश्चय होगा — तुम तनिक भी विह्वल न होना — परम शान्तिसे रहना। जो होना होगा सो होगा। तुम्हारी चिन्ता, तुम्हारी पोशाक आदिके बारेमें मुझे ही तो विचार करना है। इसलिए जब तुम्हें चलनेके लिए कहूँ तब चलना। मुझे उतावली नहीं है क्योंकि मैं तो हार बैठा हूँ।

एस्थरको प्रसन्न रखना[3] और स्वयं भी प्रसन्न रहना। खूब सेहत बनाना, तभी बाकी सब काम कर सकोगे।

कल खिलाफतकी सभा अच्छी हुई। मुझे सन्तोष हुआ। सब लोग उत्साहमें थे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४०८) की फोटो-नकलसे।

१. अहमदाबादके एक मिल-मालिक।

२. सम्भवतः खिलाफतके प्रश्नके सम्बन्धमें गांधीजीकी प्रस्तावित इंग्लैंड यात्राके सम्बन्धमें।

३. १९ मई, १९२० को डेनमार्कके लिए रवाना होनेसे पहले एस्थर फैरिंग इन दिनों सिंहगढ़में थी।

१८१. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

११ मई, १९२०

संलग्न पत्रको पढ़नेके बाद लिफाफेमें डालकर मुहर लगाकर भाई शौकत अली-को[1] देना।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१८२. पत्र : अब्बास तैयबजीको

आश्रम

मई १३, [१९२०][2]

प्रिय भाई,

आपका उत्साहपूर्ण पत्र मिला। पढ़कर बड़ी खुशी हुई। मैं सचमुच इस बातसे बहुत प्रसन्न हूँ कि अब आप और अधिक दिलचस्प लोगोंकी मनःस्थितिमें हैं। आप मुझे बधाई देते हैं, लेकिन गलत बातके लिए। अगर मैं बधाईका पात्र हूँ तो इसलिए कि आपको एकान्तवाससे निकालकर कर्म-क्षेत्रमें ले आया और इससे भी अधिक इसलिए कि आप उन दिनों जिस अवसादपूर्ण और खिन्न मनःस्थितिमें थे, उसके बावजूद आपको लाहौरमें बनाये रखा। आप नहीं जानते कि यदि मैं आपको वहाँ नहीं रोक पाता तो हमारा कितना बड़ा नुकसान होता। और इस बधाईमें श्रीमती अब्बास और आपकी सुयोग्य पुत्रियोंका भी हिस्सा है, जिन्होंने आपको उत्साहित करके लाहौर भेजा और वहाँ रहनेकी प्रेरणा दी। तो इस तरह मैं इस बधाईके चौथाई हिस्सेका ही हकदार हूँ और सो भी अगर उन सबको मंजूर हो तो। एक बात यह भी है कि अगर आपने खुशी-खुशी मेरी बात मान न ली होती तो भी मैं इस बधाईकी पात्रता प्राप्त नहीं कर सकता था। इसलिए मेरा खयाल है आप भी इस चौथाईमें हिस्सा बँटायेंगे या अब चूँकि आप फिर चुटकी बजाकर अपनी चिन्ता फुर्र कर देनेकी मनःस्थितिमें हैं इसलिए पूराका-पूरा चौथाई हिस्सा स्वयं हड़पनेके लिए झगड़ा करेंगे।

1. शौकतअलीको लिखा गया यह पत्र, जो उस समय बम्बईमें थे, उपलब्ध नहीं है। यह पत्र मथुरादास त्रिकमजीकी मार्फत बम्बई भेजा गया था, क्योंकि गांधीजीके पत्र शौकत अलीको समयपर नहीं मिला करते थे। सम्भवतः ये सरकार द्वारा सेंसर किये जाते थे।

2. गांधीजी और अब्बास तैयबजी कांग्रेस-जाँच समितिके कामके सिलसिलेमें १९२० के प्रारम्भमें पंजाबमें थे। इसलिए पत्रमें लाहौरके उल्लेखसे सिद्ध होता है कि यह १९२० में ही लिखा गया होगा।

लड़कियोंसे कह दीजिये कि उनकी सगाईसे मुझे प्रसन्नता तभी होगी जब वे अपने भावी पतियोंको भी इस महान् कार्यमें योग देनेके लिए ले आयेंगी। लेकिन यहाँ मैं भूल ही गया था कि आप सब तो उसी बदनाम — या नेकनाम — तैयब परिवारके वातावरणमें रहते हैं, इसलिए किसीको लानेका सवाल ही नहीं रह जाता — आप सब तो स्वयं उसमें शामिल हैं ही। ईश्वर करे ये लड़कियाँ अपने पतियोंके साथ अपने महान् परिवारको, और जिस देशको यह परिवार विभूषित कर रहा है, उस देशके गौरवको बढ़ायें। लेकिन हाँ, आपके लौटनेपर मैं अपने सूतकी माँग जरूर करूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५९४) की नकलसे।

१८३. पत्र : महादेव देसाईको

[वैशाख] वदी १२ [१५ मई, १९२०][1]

भाईश्री महादेव,

आज तुम्हारे दो पत्र मिले। तुमने जो उलाहना दिया है, वह मुझे अच्छा लगा क्योंकि इससे मेरे प्रति तुम्हारे प्रेम-भावका पता लगता है।

मैं तो हमेशा तुम्हारी कुशल-क्षेम पूछता रहा हूँ। हमेशा आनन्दानन्दसे पत्र लिखवाता रहा हूँ और हमेशा तुम्हारे पत्रके न आनेपर शिकायत की है। अभी पिछले तीन दिनोंसे ही मुझे तुम्हारे पत्र प्राप्त होने लगे हैं।

लेकिन अपना एक दोष मुझे स्वीकार करना ही होगा। मेरे उस दोषको कैलेनबैकने ठीक पकड़ा था और उसके लिए उन्होंने मुझे काफी डाँटा-फटकारा भी था। मैं अपने व्यवहारसे ऐसा आभास देता मालूम होता हूँ कि जिसकी कसौटी हो चुकी हो और जो खरा पाया गया हो उसे मैं भूल जाता हूँ[2]। उसे क्या पत्र लिखना और क्या 'गुड नाइट' कहना? जो प्रेम औपचारिकताकी अपेक्षा करे उसे क्या प्रेम कहा जा सकता है? उसे पत्र न लिखूँ तो क्या वह मुझे गलत समझेगा? आकके पौधेको भला कोई क्यों सींचेगा? लेकिन आमकी एक कलम लगानी हो और उसे दो दिन पानी न दिया जाये, उसके आसपास बाड़ न बाँधी जाये तो क्या हो? एस्थरकी मैंने आमके भव्य रूपमें कल्पना की है और तुम्हें 'कबीर वड़'[3] माना है। तुम्हें भी हापुस आमकी कलम

१. पत्रमें शौकतअलीके आनेकी जो चर्चा है उसके आधारपर इस पत्रकी तारीख निश्चित की गई है। गांधीजीने उन्हें बम्बईसे अहमदाबाद जानेके लिए कहा था; देखिए "पत्र : महादेव देसाईको", १३-५-१९२०।

२. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ शब्द अस्पष्ट हैं।

३. गुजरातमें प्रसिद्ध बरगदका एक पुराना और विशाल वृक्ष।

१८४. खिलाफत

खिलाफतके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न उठते रहते हैं। उसपर समाचारपत्रोंमें भी बहुत चर्चा होती रहती है। बहुतसे लोग कहते हैं कि असहकारसे खून-खराबी होगी; और यदि ऐसा हुआ तो असहकारसे क्या लाभ होगा? जोखिम तो सभी बड़े कामोंमें रहता है; असहकारमें भी कुछ-न-कुछ जोखिम तो रहेगा ही। जिन्दगी जोखिम और खतरोंसे भरी हुई है। साहसके बिना मोक्ष भी नहीं मिलता। भ्रान्तिसे भरा हुआ मनुष्य तो सिर्फ इतना ही सोच सकता है कि अमुक कार्य करनेमें अधिक जोखिम है या न करनेमें; और यदि करनेमें कम जोखिम हो तो भी क्या वह ऐसा है कि दूसरे अन्य कारणोंके आधारपर उक्त काम किये बिना नहीं रहा जा सकता?

मेरी दृढ़ मान्यता है कि यदि असहकार आन्दोलन आरम्भ न हुआ होता तो खून-खराबी कबकी शुरू हो गई होती। असहकारके कारण ही खून-खराबी नहीं हुई है। मुसलमान भाइयोंका खून खौल रहा है, लेकिन हिन्दू उनके साथी हैं, इस विचारसे वे धीरज रखे हुए हैं। लेकिन इसपर भी जब उन्हें न्याय न मिलनेकी आशंका हुई तब वे सोचमें पड़ गए। अब क्या करें? कुछ-एक लोग खून-खराबीकी बात सोचने लगे, बहिष्कारका अनुचित विचार किया। लेकिन उन्होंने देखा कि यदि बहिष्कार उचित हो तो भी वह नहीं किया जा सकता। इसी बीच दिल्लीमें हुए प्रथम सम्मेलनमें[1] ही मैंने असहकारका सुझाव दिया। उसे उन्होंने एक मतसे स्वीकार कर लिया। मैंने उनसे कहा कि आप जब हिंसाका विचार त्याग देंगे तभी असहकार आन्दोलन चल सकेगा। हिंसाका एक भी कृत्य यदि हमारे हाथों अथवा हमारी मार्फत हुआ तो कमसे-कम मैं तो आन्दोलनसे अलग हो जाऊँगा। उन्होंने मेरी इस शर्तको स्वीकार कर लिया और उन्होंने यह भी देखा कि असहकार कुछ हदतक हिंसाकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली अस्त्र है। तब असहकारकी हवा बहने लगी और आज असहकार व्यापक हो गया है; इसीसे हम हिन्दुस्तानमें परम शान्तिका अनुभव करते हैं। यदि असहकारको मुसलमानोंने स्वीकार न किया होता तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दुस्तानकी बड़ी दुर्दशा होती। यह मैं मानता हूँ कि सरकार हिंसाको दबा देती लेकिन हिंसा होती जरूर। असहकार-आन्दोलनके बावजूद हिंसा हुई तो भी सरकार हमें दबा सकेगी। सवाल सिर्फ इतना ही है कि असहकारके बिना हिंसा होती या नहीं? इसका उत्तर निस्सन्देह "हाँ" ही है।

अब हमें इस बातपर विचार करना है कि असहकार अन्य दृष्टियोंसे भी जरूरी है या नहीं। इसके कारण हिंसा रुक गई है, सिर्फ इसी कारणसे हम असहकार आन्दोलनमें जुट नहीं सकते। दुनियामें अनेक अनुचित कार्य होते रहते हैं। उन्हें रोकनेके उपाय सूझनेके बावजूद हम उन उपायोंको करनेके लिए अपने-आपको बँधा हुआ नहीं मानते।

१. यह २३-२४ नवम्बर, १९१९ को हुआ था।

हिन्दुस्तानमें ही अनेक स्थानोंपर लोग [illegible] करते हैं। यदि हम उनतक पहुँच जायें और प्रयत्न करें तो उन्हें ऐसा करनेसे रोक सकते हैं। लेकिन हम वहाँ नहीं जाते और न प्रयत्न ही करते हैं। यह हमारी आलसका सबूत है। किन्तु बार ऐसा होता है कि हम एक बुरे कार्यको अपेक्षाकृत कम बुरे कार्यसे रोक सकते हैं, लेकिन उसका मतलब यह नहीं कि अपेक्षाकृत कम बुरा कार्य करना हमारा धर्म हो जाता है। अतएव हमें असहकारकी ओर ही नजर रखनी होगी। असहकार आपत्तिजनक हथियार है या नहीं, इस बातका विचार तो मैंने अनेक बार किया है। असहकार आपत्तिजनक हथियार नहीं है; इतना ही नहीं बल्कि अमुक अवसरपर असहकार करना हमारा धर्म हो जाता है। वस्तुतः असहकारमें कोई दोष नहीं है।

इसलिए अब प्रस्तुत अवसरपर हमें इस शस्त्रका उपयोग करना चाहिए अथवा नहीं, इस बातपर हमें विचार करना है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो हिन्दुओंको इस हदतक मुसलमानोंकी मदद करनी चाहिए या नहीं? खिलाफतके मामलेमें मुसलमान न्यायपर हैं, इस बातको सब स्वीकार करते हैं। मुसलमानोंके दुःखमें भाग लेना हिन्दुओंका स्पष्ट कर्त्तव्य है। मुसलमानोंके पास असहकारके सिवा दूसरा अस्त्र नहीं है। तब क्या मुसलमानोंके इस दुःखके समय हिन्दू तटस्थ बैठे रह सकते हैं? मेरी नम्र रायके अनुसार हिन्दू असहकार [आन्दोलनमें भाग लेने] के लिए बँधे हुए हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६–५–१९२०

१८५. मतदाता क्या करें?

जो लोग आजतक धारासभामें सदस्योंको चुनकर भेजनेसे असम्बन्धित थे, जिन्हें उक्त चुनावोंमें मतदान करनेका हक प्राप्त नहीं था वे सब अब मतदाताओंकी श्रेणीमें आ जायेंगे, इतना ही नहीं, जिनको ये मत देकर भेजेंगे उन सदस्योंके अधिकार अपेक्षाकृत अधिक होंगे।[1] इस तरह मतदाताओंका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। पहले जिन बड़े नगरों या कस्बोंकी नगरपालिकाओंके सदस्योंको चुननेका अधिकार लोगोंको दिया गया था, वहाँ उस मतदानका उपयोग सावधानीसे किया गया हो, ऐसा देखनेमें नहीं आया। मतदाताओंने सदस्योंकी योग्यता देखनेके स्थानपर अपने निजी सम्बन्धका खयाल रखा। यदि हमने धारासभाओंके चुनावके प्रारम्भिक अवसरपर ही इस प्रवृत्तिका परित्याग कर दिया तो एक ठीक परम्परा पड़ जायेगी और मतदाता भविष्यमें उसी ढर्रेको पकड़े रहेंगे। यदि हम धारासभाओंका सदुपयोग करना चाहते हैं तो हमें इसी मार्गका अनुसरण करना होगा। मैं तो यहाँतक मानता हूँ कि किसी भी मतदाताको पक्षोंके झगड़ेमें न पड़ना चाहिए। अमुक प्रत्याशी किस पक्षका है यह बात जाननेके बजाय यह जानना चाहिए कि उसके विचार क्या हैं। और उससे भी अधिक

१. १९१९ के सुधार अधिनियमके अन्तर्गत।

महत्त्वपूर्ण बात यह जान लेनी है कि उस प्रत्याशीका चरित्र कैसा है; चारित्र्यवान् व्यक्ति जहाँ कहीं होगा, हमारा हितसाधन ही करेगा। उसकी भूलें भी सह्य होंगी। चारित्र्यहीन व्यक्तिके द्वारा उच्च कोटिकी सेवा की जा सकती है, इसे मैं असम्भव मानता हूँ। अर्थात् यदि मुझे मतदान करना हो तो मैं पहले यह देखूँगा कि उम्मीदवारोंमें से सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार कौन है, और उसके बाद यह जाननेकी कोशिश करूँगा कि जिन साधनोंके द्वारा देशकी उन्नति शीघ्रसे-शीघ्र की जा सकती है, वे साधन उसे प्रिय हैं या नहीं। इस हेतु मैं उनसे पूछना चाहूँगा :

१. क्या आप स्वदेशीसे सम्बन्धित वर्तमान हलचलको पसन्द करते हैं? यदि ऐसी बात है तो क्या आप विदेशी कपड़ेपर भारी कर लगवानेके लिए तैयार हैं? स्वदेशमें बना कपड़ा सस्ता करनेके लिए जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता होगी उनको सस्ते दामों उपलब्ध करानेकी दिशामें क्या आप कानून बनानेके लिए तत्पर रहेंगे?

२. क्या आप मानते हैं कि विभिन्न प्रान्तोंका कामकाज उनकी प्रान्तीय भाषाओंमें ही चलाया जाना चाहिए और राष्ट्रका काम राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी — अर्थात् हिन्दी उर्दूके मिले-जुले स्वरूपमें चलना चाहिए? यदि आप ऐसा मानते हैं तो क्या आप यथासम्भव प्रान्तका काम उसकी धारासभामें उसीकी भाषामें चलाने तथा राष्ट्रका कामकाज राष्ट्रभाषामें चलानेके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे?

३. जब अंग्रेजी राज्यकी नींव यहाँ पड़ी ही थी तब अंग्रेजी अमलदारोंने जनताकी सुविधाकी अपेक्षा शासन-कार्य चलानेकी सहूलियतका अधिक खयाल रखते हुए भाषाके आधारपर सूबे बनानेके बजाय अमलदारोंकी सुविधाको सामने रखकर प्रान्त बनाये थे। क्या आप मानते हैं कि उससे देशकी बहुत क्षति हुई है? यदि हाँ, तो क्या आप भारतके सूबोंका नये सिरेसे भाषाके आधारपर शीघ्रातिशीघ्र विभाजन करनेका प्रयत्न करेंगे?

४. क्या आप यह मानते हैं कि हिन्दुस्तानकी उन्नति हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच एकता स्थापित हुए बिना असम्भव है? यदि आप यह मानते हैं और अगर आप हिन्दू हैं तो क्या खिलाफतके प्रश्नके सम्बन्धमें आप यथासम्भव सहायता करनेको तैयार हैं?

इस प्रकार मैं ये चार प्रश्न तो उस प्रत्याशीसे जरूर पूछूँगा; और सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त होनेपर ही मैं उसे अपना वोट देनेको तैयार होऊँगा। ये चार प्रश्न मुझे महत्त्वपूर्ण और बहुत वजनदार लगते हैं, इसलिए मैं इन प्रश्नोंके उत्तर जानना चाहूँगा। कोई अन्य मतदाता इन चार प्रश्नोंमें से किसी प्रश्नको पूछना आवश्यक न समझे तो वह भले न पूछे। उसे यदि और कोई प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़े तो वही प्रश्न पूछे। कौन-कौनसे प्रश्न पूछे जायें — यह कोई जरूरी बात नहीं है कि अमुक प्रश्न ही पूछे जायें; जरूरी यह है कि भारतकी उन्नतिके लिए हमने जिन-जिन बातोंकी आवश्यकता मानी हो उन-उन बातोंको वह वहाँ पहुँचकर करेगा या नहीं सो जान लिया जाये। इन प्रश्नोंका जिक्र मैं यहाँ यह बतानेके लिए कर रहा हूँ कि आज हिन्दुस्तानके मतदातामें तटस्थता, स्वतन्त्रता, प्रमाणिकता और बुद्धिमत्ताका होना आवश्यक है। मैं

यह कह देना चाहता हूँ कि अगर मतदाता चाहकर किसी प्रवृत्तिमें भाग न ले, राष्ट्रमें क्या-क्या हो रहा है इसका उसे पता न हो, वह विचारशील हो और अपना वोट उसे दे जो उसके नातेदार हों या जिनसे उसका कोई निजी स्वार्थ हल होता हो या वह जिनकी मदद करना चाहता हो तो उससे हिन्दुस्तानका हित होनेके बजाय अहित ही होगा।

अब मानिये कि प्रत्याशीसे क्या प्रश्न पूछे जायें यह तय हो गया; ये प्रश्न उनसे पूछ भी लिये गये। पर यदि इसके बाद हमें ऐसा लगे कि उनके प्रश्न करनेका ढंग सन्तोषजनक नहीं है या ये उत्तर ही सन्तोषप्रद नहीं है, या यह कि उत्तर तो सन्तोषजनक मिले परन्तु प्रत्याशी चारित्र्यवान् व्यक्ति नहीं है तो हमें क्या करना चाहिए। जहाँ मत देनेकी प्रथा बहुत समयसे प्रचलित है वहाँ मतदाता उपयुक्त प्रत्याशीके नजर न आने-पर अपने अधिकारका उपयोग किसीको मत न देकर करता है। जहाँ कोई उपयुक्त प्रकारका प्रत्याशी नहीं दीख पड़ रहा है वहाँ "अन्धोंमें काने राजा"[1] की कहावतको स्वीकार करना ठीक नहीं है। हम ऐसी अवस्थामें किसीको भी अपना वोट न देकर चुनावको पूरी तरह प्रभावित कर सकते हैं। शायद कोई यह शंका उठाये कि ऐसेमें मत न देनेवाले व्यक्ति बैठे रह जायेंगे तो इधर-उधरके अयोग्य लोग अपना उल्लू सीधा कर लेंगे और धारासभाके सदस्य बन जायेंगे। यह बात कुछ अंशतक ठीक है। परन्तु कल्पना कीजिए कि किसी ग्राममें जितने उम्मीदवार खड़े हुए हैं वे सबके-सब शराबी हैं, इसलिए समझदार मतदाता उन्हें अपना मत नहीं देते और उनमें से कोई एक प्रत्याशी अपने ही जैसे लोगोंसे वोट लेकर कौंसिलोंमें पहुँच जाता है तो क्या उसका धारासभामें कोई वजन पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि गिनतीकी दृष्टिसे उस प्रतिनिधिके वोटका महत्व है, परन्तु धारासभामें उसके भाषणों तथा उसके विचारों-का कोई भी प्रभाव पड़नेवाला नहीं है। इतना ही नहीं, अगर एक बार मतदाता अपनी पसन्दका प्रत्याशी न पाकर वोट नहीं देते तो दूसरे अवसरपर उचित कदम उठा-कर योग्य प्रत्याशीको ढूँढ़कर खड़ा भी करेंगे और इस प्रकार अपने ग्राम या नगरका मस्तक ऊँचा करेंगे। जिस देशमें राष्ट्रीय जीवन प्रगतिशील है वहाँ लोग प्रत्येक प्रवृत्ति-को समझते-बूझते हैं और अपने आसपासके वातावरणको शुद्ध बनाने और उसे शुद्ध बनाये रखनेका भरसक प्रयत्न करते रहते हैं। तभी ज्ञानवान और विचारशील मतदाता देखेंगे कि उनके सामने कभी-न-कभी ऐसे अवसर अवश्य आयेंगे कि जब उन्हें अपना वोट देनेसे इनकार करना पड़ेगा। इसलिए आशा है कि जब उपयुक्त प्रकारका प्रत्याशी न दिखे तब मतदाता निर्भयतापूर्वक अपना मत देनेसे इनकार कर दें। और यदि वोट देना ही है तो अमुक प्रत्याशी किस पक्षका है इसका खयाल किये बिना, सबसे अच्छे व्यक्तिको वोट दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६–५–१९२०

१. गुजरातीमें 'मामा न होनेसे काना मामा ही अच्छा'।

१८६. खादी इस्तेमाल करनेवालोंसे

पाठक यह जानकर खुश होंगे कि खादीका वह सारा माल जो सत्याग्रह आश्रम-में इकट्ठा हो गया था, बिक चुका है।[1] शुद्ध स्वदेशी भण्डारके श्री नारणदास पुरुषोत्तम-दास और श्री विट्ठलदास जेराजाणीने दस हजार रुपयेकी खादी तथा अन्य वस्तुएँ खरीदी हैं और पंजाव, सिन्ध आदि प्रान्तोंसे खादीकी माँग होनी शुरू हो गई है। इससे जिन-जिन केन्द्रोंको खादी भेजनेकी मनाही कर दी थी उन-उन केन्द्रोंसे, फिरसे खादी आनी शुरू हो गई है। खादी मँगानेवाले खादीके नमूने तथा भावके विषयमें पूछते रहते हैं, लेकिन फिलहाल हम ये दोनों काम करते रहने जैसी स्थितिमें नहीं हैं। इतना याद रखना चाहिए कि हाथसे कातनेकी क्रिया तो पिछले एक वर्षसे ही फिरसे आरम्भ हुई है। इस कारण जो सैकड़ों स्त्रियाँ खाली बैठी रहती थीं अब काममें लग गई हैं और थोड़ा-बहुत पैसा कमाने लगी हैं। जिन सैकड़ों बुनकरोंने, अपना बुनाईका धन्धा छोड़ दिया था, फिर उसे शुरू किया है। हाथका कता सूत फिलहाल तो मोटा-पतला होता है और खादीमें गुण या प्रकारकी समानता नहीं होती। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्थानपर बुनकरोंको एक-सी मजदूरी नहीं दी जाती। जहाँ उन्हें कम मजदूरी नहीं पुसाती वहाँ अधिक मजदूरी भी दी जाती है। धीरे-धीरे खादीके पनहे, प्रकार तथा भावमें हम एक निश्चित स्तरपर पहुँच जायेंगे और यदि हम खादीकी उपयोगिता तथा पवित्रताकी कद्र करना सीख सकें तो थोड़े ही समयमें लाखों रुपयेकी खादी तैयार करवा सकेंगे और लाखों रुपयोंको गरीबोंके घर भेज सकेंगे। इस बीच खादीका उपयोग करनेवालोंको फिलहाल जैसी खादी मिले उसीसे सन्तोष करना चाहिए। सिर्फ इतना ही आश्वासन दिया जा सकता है कि इस खादीमें रुईके दाम तथा उसकी खादी बनवानेके मेहनतानेके सिवाय कुछ और नहीं जोड़ा जायेगा। यदि हम खादीके टिकाऊपनपर विचार करें तो ऐसा एक भी वस्त्र दिखाई नहीं देगा जो उसकी होड़ कर सके।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-५-१९२०

१. देखिए "खद्दरका उपयोग", २८-४-१९२०।

१८७. उड़ीसामें अकाल

गत सप्ताहके 'नवजीवन'में उड़ीसाके अकालके सम्बन्धमें मैंने कुछ बातें लिखी थीं। उसमें मैंने भाई अमृतलाल ठक्करके पत्र पानेकी आशा प्रकट की थी। वह पत्र आ गया है और नीचे दिया जा रहा है।[1]

प्रास्ताविक भागमें जो दृष्टिगोचर हुआ है, उसमें नहीं लिखता हूँ। पाठकोंको कष्टोंकी ठीक जानकारी तो पत्रसे होगी। इस समय हमारा क्या कर्तव्य है, यह साफ स्पष्ट है। अकालसे, बिना किसी अपवादके, जहाँ एक भी व्यक्ति भूखा मर रहा हो दूसरोंको शान्तिसे खानेका अधिकार नहीं हो सकता। अतएव मुझे उम्मीद है कि जिनसे जितनी बन सकेगी वे उतनी मदद करेंगे। उड़ीसाकी स्थिति ऐसी नहीं है कि वहाँके लोग आपत्तिके समय स्वयं अपनी मदद कर सकें। अबतक दूसरे स्थानसे इन लोगोंको मदद नहीं मिली। चूँकि हमें इनके कष्टका समाचार मिल गया है इसलिए उनकी मदद करना हमारा कर्तव्य है। अहमदाबादमें गुजरात सभाने इस कामको हाथमें ले लिया है और उसने लोगोंसे चन्दा लेना भी आरम्भ कर दिया है। जो रकम प्राप्त होगी उसकी रसीद दी जायेगी तथा भाई अमृतलाल ठक्करकी ओरसे जो हिसाब मिलेगा उसे भी प्रकाशित किया जायेगा।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६–५–१९२०

१८८. अहमदाबादके मिल-मालिक और मजदूर

उम्मीद तो यह थी कि मालिकों और मजदूरोंके [आपसी] झगड़ेके सम्बन्धमें मुझे कुछ भी नहीं लिखना पड़ेगा। लेकिन जब हजारों व्यक्ति काम करना बन्द कर दें तब मेरे विचारसे एक पत्रकारके रूपमें मैं उसे पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत करनेके लिए बँधा हुआ हूँ।[2] अनेक प्रसंग ऐसे होते हैं कि समाचारपत्रोंमें उनकी चर्चा करनेसे यथार्थ परिणामपर पहुँचनेमें विघ्न पड़ता है। लेकिन जब कोई विषय चर्चाका ही विषय बन जाये तब पत्रकारका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसके सही स्वरूपको जनताके

१. यह उद्धृत नहीं किया जा रहा है। पत्रके सारके लिए देखिए "उड़ीसामें संकट", १२–५–१९२०।

२. ३१ मार्चको गांधीजीने मिल-मालिकोंको पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने उनसे मजदूरोंको कुछ रियायतें दिये जानेका अनुरोध किया था।

सामने रख। यही बात आज मिल-मालिकों और मजदूरोंके झगड़ेके सम्बन्धमें भी लागू होती है।

अहमदाबादमें पचाससे भी ऊपर मिलें हैं। उनमें कुछ नहीं तो पचास हजार व्यक्ति काम करते होंगे। इनके कताई विभागोंमें कताईकी मशीनोंपर काम करनेवाले मजदूरोंने मालिकोंसे ३० रुपया प्रतिमाह वेतन तथा काम करनेके बारह घंटेके बदले दस घंटे किये जानेकी माँग की।

उक्त माँगें उन्होंने बहुत सोच-समझकर रखी हैं; अन्य माँगें भी हैं लेकिन उनको लेकर कोई भेद नहीं है; उदाहरणस्वरूप अगर कहीं स्वच्छ जलकी व्यवस्था न हो तो वह वहाँ की जाये, दोपहरमें भोजन करनेके लिए किसी मकानका प्रबन्ध हो और अभी शौचालय अत्यन्त मलिन रहते हैं उनके साफ किये जानेकी भी उचित व्यवस्था हो। ये सब बन्दोबस्त तो होने ही चाहिए। ऐसी माँगें करनी पड़ें, यह हमारे लिए शर्मकी बात है।

लेकिन जिनके सम्बन्धमें गम्भीर वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ है वे तो सिर्फ वेतन बढ़ाने और कामके घंटे घटानेकी माँगें हैं।

मालिकों और मजदूरोंके प्रतिनिधियोंके बीच सलाह-मशविरा हुआ। उसमें दोनोंका उद्देश्य हड़तालको रोकना था। हड़ताल दो प्रकारसे ही रुक सकती है। मजदूर मूढ़ बने रहकर अपने हकोंको न समझें अथवा ज्ञान होनेपर भी अपने-अपने हकोंको दर-गुजर कर दें अथवा जब दोनों पक्षोंमें मतभेद हो तब दोनों परस्पर किसी तीसरेके पास जाकर अपना न्याय करवाएँ। दूसरी बात भी हो सकती है। जब मजदूरोंमें एक होकर काम करनेकी शक्ति आ जाये। जिस तरह मालिकोंके लिए एक आवाजमें बोलने तथा एक होकर काम करनेके लिए संघ आदि साधनोंकी जरूरत है वैसे ही मजदूरोंके लिए भी संघ आदि होने चाहिए। इस उद्देश्यसे श्रमिक-संघकी स्थापना किये जानेकी दिशामें कार्य शुरू हुआ और कताई मशीनोंके (थ्रॉसल) विभागके मजदूरोंने भी संघ बनाने शुरू किये।[1] कुछ संघ स्थापित भी हो गये हैं। यदि ये संघ विधिपूर्वक काम कर सकें, एक होकर, एक रायसे काम कर सकें तो उनकी शक्ति काफी बढ़ जाये एवं वे संघ द्वारा लिये गये निर्णयोंके अनुसार, चाहे वे उनके अनुकूल जान पड़ते हों अथवा नहीं, कार्य करना सीख जायें। संघोंकी स्थापना करनेसे मजदूरोंकी शक्ति बढ़ेगी और इस शक्तिका दुरुपयोग होनेका खतरा भी है। संघोंसे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि उसके सदस्य संयमित होकर नियमोंका पालन करना सीख जायेंगे। संघोंके बन जानेपर ही पंच नियुक्त किये जा सकते हैं, उनके द्वारा निर्णय प्राप्त किये जा सकते हैं और इस तत्त्वके जड़ पकड़ लेनेपर ही हड़तालें बन्द हो सकेंगी।

अब जिस समय मजदूरोंने उपर्युक्त माँगें कीं तब कुछ-एक मालिकोंने तुरन्त पंचकी मार्फत न्याय प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। इसमें श्री अम्बालालने प्रमुख भाग लिया। उन्हें लगा कि यदि पंचके द्वारा निर्णय किया जाये तो हड़ताल रुक

१. देखिए "भाषण: अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें", २५-२-१९२०।

सकेगी तथा उद्योगको कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा। इससे उन्होंने तथा उनके समान मत रखनेवालोंने एक पंचनामा तैयार किया और उसपर हस्ताक्षर किये गये।

श्री मंगलदासको लगा कि मालिकों और मजदूरोंके झगड़ेके बीच बाहरका कोई न पड़े तो ज्यादा अच्छा होगा; इसीमें दोनोंकी शोभा है। मतभेद हो तो दोनों आपसमें मिल-जुलकर समझ लें; उन्होंने ऐसा करनेका प्रयत्न भी किया। उन्हें भारी आशंका इस बातकी है कि मजदूर दिन-प्रतिदिन मालिकोंके विरुद्ध होते जा रहे हैं तथा अनुशासन — अंकुश — में नहीं रहते हैं। यदि ऐसा होगा तो उद्योगको हानि पहुँचेगी। इसलिए मजदूरोंको मालिकोंके साथ ही सीधी बातचीत करके न्याय प्राप्त करनेकी तालीम मिलनी चाहिए। इस पद्धतिसे उन्होंने कुछ झगड़ोंको निपटाया भी है। लेकिन ब्लोइंग विभागके सम्बन्धमें उन्होंने अन्ततः पंच नियुक्त किये जानेके तरीकेको कुछ हदतक स्वीकार कर लिया है। यह निश्चय किया गया कि वे तथा मैं जो निर्णय देंगे उसे सब कोई स्वीकार करेंगे।

यह होनेपर भी श्री अम्बालालका पंचनामा कायम रहा और वह इस शर्तपर कि यदि मंगलदास द्वारा रखे गये प्रस्तावके अनुरूप निर्णय हो जाये तो श्री अम्बालालके पक्षके लोगोंको उसे स्वीकार करना होगा। २५ अप्रैलतक श्री मंगलदास तथा मैं परस्पर सहमत न हो सके।[1] श्री अम्बालालको चूँकि विलायतके लिए रवाना होना था इसलिए उन्होंने अपनी हदतक तो मजदूरी निश्चित कर देनेका निर्णय किया और मजदूरोंके प्रतिनिधियोंके साथ परामर्श करनेके बाद दर निश्चित कर दी गई। श्री मंगलदासको इन दरोंकी बात मालूम हुई; इसके बाद हमारे बीच बातचीत हुई लेकिन मैं तथा श्री मंगलदास एकमतसे कोई निर्णय न दे सके। परिणामस्वरूप श्री अम्बालालके पक्षकी बारह मिलोंको छोड़कर बाकी सब मिलोंमें १ तारीखसे हड़ताल शुरू हुई। यदि मजदूर श्री अम्बालालके पक्ष द्वारा निर्धारित दरोंसे कुछ कम लेनेके लिये तैयार हो जाते तो समाधान होना सम्भव था। लेकिन श्री अम्बालालके पक्ष द्वारा निर्धारित दरें भी पर्याप्त नहीं हैं — मजदूरोंकी ऐसी मान्यता होनेके कारण वे उससे कम दरोंको स्वीकार न कर सके। अन्ततः यह विवाद उन्होंने सरपंचको सौंपना मंजूर किया। लेकिन हम ऐसे सरपंचको ढूंढ़ निकालनेमें असमर्थ रहे जो मुझे तथा श्री मंगलदास दोनोंको ही मान्य होता, और इस कारण हड़ताल शुरू हो गई।

मेरी तो सिर्फ यह इच्छा है कि हड़ताल होनेपर मजदूरोंमें भी पूर्णतः शान्ति रहे, मालिक भी शान्तिपूर्वक तथा सोच-समझकर उचित कदम उठायें और अन्तमें दोनोंको न्याय ही मिले। मजदूरोंकी मांग उचित है या नहीं, उन्होंने अपने व्यवहारमें भूल की है अथवा नहीं, श्री अम्बालालने पंच नियुक्त करनेका जो निर्णय किया है वह सही है या नहीं, श्री मंगलदासके पक्षके लोगोंका थोड़ेसे पैसोंके पीछे लड़नेमें कुछ सिद्धान्त है या नहीं, दोनों पक्षोंसे सम्बन्ध बनाये रखनेकी मेरी बात उचित थी अथवा नहीं; इस समय ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देनेकी हम कोई आवश्यकता नहीं समझते। फिलहाल तो मैं

१. गांधीजीने २४ अप्रैलको मिल-मालिकोंसे बातचीतकी थी।

एसा वातावरण तैयार करनेकी खातिर, जिससे हड़ताल निर्विघ्न पूरी हो जाये तथा मजदूर फिरसे कामपर जाने लगें, विवादग्रस्त विषयोंमें नहीं पड़ना चाहता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६–५–१९२०

१८९. विधवाओंके सम्बन्धमें कुछ और विचार

वैधव्य हिन्दू-धर्मकी शोभा है। अखण्डित पातिव्रतका अर्थ तो यही हो सकता है कि एक बार जिसे ज्ञानपूर्वक पति माना और जाना उसका देहपात होनेपर भी उसीका स्मरण करते हुए सन्तोष करें, इतना ही नहीं बल्कि उस स्मरणमें आनन्दका अनुभव करें। तदनुसार आचरण करके भारतकी अनेक विधवाएँ प्रातःस्मरणीय बन गई हैं। अभी कुछ दिनों पहले ही मुझे गंगास्वरूप रमाबाई रानडेसे[1] मिलने जानेका अवसर प्राप्त हुआ था। उनके अपने कमरेमें ही मैंने उनके दर्शन किये थे। इस कमरेके बीचों-बीच एक कोच रखा हुआ था और उसपर स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडेकी तस्वीर रखी हुई थी। मैं समझ तो गया, लेकिन मेरा विचार सही था अथवा नहीं, यह जाननेके लिए मैंने उनसे पूछा: "यह तस्वीर कोचपर किसलिए रखी हुई है?" इन्होंने कहा: "यह कोच उन्हींका था, वे हमेशा इसीपर बैठते थे; इसीसे इस कोचको मैंने उनकी तस्वीरके लिए ही रख छोड़ा है और इसकी छायाके नीचे ही मैं सदा रहती तथा सोती हूँ।" इन पवित्र शब्दोंको सुनकर मैं आनन्दमें डूब गया और वैधव्यकी शोभाको और भी अधिक समझ सका। भारतमें स्थान-स्थानपर ऐसी पतिव्रता रमाबाइयाँ हैं, इस बातसे मैं भली-भाँति परिचित हूँ।

लेकिन पत्नीव्रती पुरुष कहाँ होंगे? यदि नहीं हैं तो क्या पतिव्रता स्त्रियोंकी पूजा करके ही पुरुषोंको सन्तोष मान लेना चाहिए अथवा स्वयं पत्नीव्रतका दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए ही पतिव्रता स्त्रियोंको सम्मान देना चाहिए? अनुसरण करनेसे अच्छी पूजा क्या हो सकती है? अथवा जहाँ अनुसरणका तनिक भी विचार न हो वहाँ शाब्दिक पूजाकी क्या कीमत मानी जा सकती है? पिछले पाँच वर्षोंसे मैं भारतमें हूँ और मुझे भारतीय जीवनके प्रत्येक क्षेत्रका अच्छा अनुभव मिल रहा है। सामान्यतया चरित्रवान माने जानेवाले, अपनी पत्नीपर बड़ा स्नेहभाव रखनेवाले युवकोंको मैंने विधुर होनेके तुरन्त बाद ही सगाई और विवाह करते हुए देखा है। इससे मुझे अत्यन्त खेद हुआ है। यदि हम अमुक रिवाजके गुलाम न बन गये हों तो विधुर पुरुषका श्मशानसे घर पहुँचते-पहुँचते विवाहका विचार करना हृदयको कँपा देनेवाली बात

१. महाराष्ट्रकी प्रसिद्ध समाज-सुधारक; न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडेकी धर्मपत्नी; श्री रानडेका स्वर्गवास १९०१ में हुआ था।

लगनी चाहिए। इसके बजाय हम देखते यह हैं, माँ अपने विधुर पुत्रका तुरन्त पुनर्विवाह करना चाहती है और सास भी अपने विधुर दामादको विवाहके लिए प्रोत्साहित करती है, तथा दामाद भी इन प्रस्तावोंको सुनकर तनिक भी लज्जित नहीं होता। ऐसा पुरुष चाहे जितना रोये-धोये, वह अपनी पहली पत्नीकी यादको स्थायी बनानेके चाहे जितने उपाय किया करे, उनका कोई अर्थ नहीं माना जा सकता, फिर उसके सिवा यह नवागता दूसरी पत्नी ही अपने प्रति दिखाये जानेवाले प्रेमका कितना मूल्य आँक सकती है? ऐसे जीवनको कोई किस तरह [illegible] मान सकता है? मुझे तो इसमें अधर्म ही दिखाई देता है और जबतक पुरुषवर्ग इस तरहका उद्धत व्यवहार करनेसे बाज नहीं आता तबतक उसके द्वारा वैधव्यका बखान किया जाना भी मुझे तो दंभ और पुरुषके स्वार्थकी परिसीमा जान पड़ती है।

जिस स्त्रीके साथ वर्षोंतक मैत्री रही, जिसके दुःखमें दुःखी हुए, सुखमें भाग लिया, जिसका रात-दिनका साथ रहा, उस स्त्रीकी मृत्यु होनेपर क्या सामान्य मित्रके वियोगमें जितना शोक होता है उतना शोक भी नहीं करना चाहिए? इंग्लैंडमें जहाँ विधवाको पुनर्विवाह करनेकी छूट है वहाँ लोक-लज्जाके कारण भी कुलीन परिवारकी स्त्रीको एक वर्षतक विवाह करनेकी हिम्मत नहीं पड़ती। लेकिन हिन्दुस्तानके पुरुषकी कुलीनता अधिकांशतः श्मशानतक ही आगे नहीं जा सकती। और किसी-किसी समय तो जहाँ एक ओर चितामें अपनी स्त्रीकी देह भस्म हो रही होती है वहाँ दूसरी ओर श्मशानमें ही [पुरुषके] सगे-सम्बन्धी उसके साथ नये विवाहकी बात करते हुए नहीं हिचकिचाते एवं विधुर पुरुष भी उसे सुननेमें लज्जाका अनुभव नहीं करता। भारतका इस दयाजनक स्थितिसे उबरना आवश्यक है। विधवा-विवाहके आन्दोलनमें भी मैं तो जाने-अनजाने पुरुषका ही स्वार्थ देखता हूँ। विधवाको पुनर्विवाहके लिए तैयार करके वह अपनी शर्मको भूलना चाहता है। यदि विधवाके वैधव्य-दुःखको पुरुष मानता हो तो स्वयं अखण्ड पत्नीव्रतका पालन करके इस दुःखको भुला सकता है। इन विषयोंके सम्बन्धमें लोकमत इतना ज्यादा क्षीण हो गया है कि मैंने हिन्दुस्तानमें सर्वत्र कुलीन परिवारके सुशिक्षित पुरुषोंको भी अनमेल-विवाह करने तथा विधुर होनेपर तुरन्त ही पुनर्विवाह करनेमें तनिक भी लज्जित होते नहीं देखा।

लेकिन पुरुष अपने कर्त्तव्यका पालन करें अथवा न करें, स्त्रियाँ अपने अधिकारोंको क्यों नहीं सिद्ध करती? स्त्रियोंको मताधिकार अवश्य मिलना चाहिए; लेकिन जो स्त्रियाँ अपने सामान्य अधिकारोंको नहीं समझतीं, अथवा समझते हुए भी उन अधिकारोंको प्राप्त करनेकी शक्ति नहीं रखतीं वे स्त्रियाँ मताधिकारको लेकर क्या करेंगी? स्त्रियाँ भले ही मताधिकार प्राप्त करें, भले ही हिन्दुस्तानकी धारासभामें जायें; लेकिन स्त्रियोंका पहला कर्त्तव्य पुरुषोंकी ओरसे जाने-अनजाने किये जानेवाले अत्याचारोंसे मुक्ति पा भारतको श्री-सम्पन्न और वीर्यवान बनाना है। जबतक अज्ञानी माँ अपनी उतनी ही अज्ञानी लड़कीको हालमें ही विधुर हुए पुरुषकी विषयाग्निमें होमनेको तैयार है तभी-तक ऐसे पुरुष — जिनके अभी वियोगके आँसू सूखे भी नहीं हैं — पुनर्विवाह करनेका विचार कर सकते हैं। मेरी तो मान्यता है कि इस तरहके सुधार करना स्त्रियोंका

अधिकार है; इतना ही नहीं वल्कि यह तो स्त्रियोंका कर्त्तव्य है — अपने प्रति, पुरुषोंके प्रति और हिन्दुस्तानके प्रति!

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-५-१९२०

१९०. पत्र: एस्थर फैरिंगको

आश्रम
१६ मई, १९२०

रानी विटिया,

मेरा सब काम बहुत नियमित ढंगसे चल रहा था, लेकिन शान्ति-सन्धिकी शर्तोंके[1] कारण उसमें व्यवधान उपस्थित हो गया। इसलिए कोई लम्बा स्नेह-भरा पत्र नहीं लिख पा रहा हूँ। इस वातसे वड़ी खुशी हुई कि तुम शीघ्र ही इसी १९को रवाना हो रही हो। आशा है तुम्हारे तारके उत्तरमें भेजा गया मेरा तार[2] तुम्हें मिल गया होगा। यहाँ हम लोगोंको क्या-कुछ झेलना पड़ रहा है, इसकी चिन्ता हरगिज न करना। हम सवका रखवाला ईश्वर है और अगर हम उसका और केवल उसीका आसरा रखे रहे तो जो-कुछ होगा ठीक ही होगा। हम जिन्हें विपदा कहते हैं, वे भी अन्ततः हमारे लिए वरदान ही सावित होते हैं। घरपर तुम पूरा आराम करो और शान्तिपूर्वक रहो, और चूँकि तुम भारतमें ही रही हो और आश्रमके सम्पर्कमें आई हो इसलिए तुम ऐसा आचरण करो जिससे जव तुम्हारे पिता तुमसे मिलें तो उन्हें लगे कि तुम अव पहलेकी अपेक्षा और अच्छी ईसाई वन गई हो। जव तुम पूरा आराम कर लो और शरीर तथा मनसे स्वस्थ महसूस करने लगो तो लौट आओ। प्रभुसे यही प्रार्थना है कि तुम्हारी यात्रा[3] निरापद हो, घरपर तुम सुख और आनन्दसे रहो और सही-सलामत लौट आओ। पत्र तो तुम नियमित रूपसे लिखती ही रहना। मुझे घरका पता भेजना न भूलना।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. मित्र राष्ट्रों द्वारा टर्कीके सम्बन्धमें, देखिए परिशिष्ट १।
२. यह उपलब्ध नहीं है।
३. डेनमार्ककी।

१९१. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम

वैशाख बदी १३ [१७ मई, १९२०][1]

चि० देवदास,

तुम्हारे ६ तारीखके पत्रसे मैं स्वस्थ हो गया। तुम्हारे बीमार होनेका भय मुझे सदैव बना रहता है। मैं तुमसे यहाँ आनेका आग्रह नहीं करता, इसका एक कारण मेरा यह भय भी है। मुझे ऐसा लगा कि तुम्हारा किसी ठंडे स्थानमें जाके रहना तुम्हारे लिये हितकर होगा। अब तुम्हारा दूसरा पत्र पानेके लिए अधीर हूँ। ६ तारीख-से पहलेका पत्र तो मेरे पास है ही नहीं; पता नहीं मिलेगा भी कि नहीं। आजकल डाककी गड़बड़ीका कुछ हिसाब ही नहीं है। मैंने पंडितजीको[2] तुम्हारे बारेमें तार किया था, उसका भी उत्तर नहीं आया है। स्मरण रहे कि मैं तीस तारीखको काशीजी आनेवाला हूँ। अब यदि तबतक तुम वहीं रहो, तो कोई हर्ज नहीं। हम मिलनेपर भविष्यके सम्बन्धमें विचार करेंगे।

लगता है कि विलायत जाना तो नहीं हो सकेगा। शर्तें मालूम हो गई हैं, इस-लिए अभी तो यही सलाह करनी है कि क्या किया जाये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

कुमारी फैरिंग परसों डेनमार्कके लिए रवाना होंगी।

गुजराती पत्र (एस० एन० ७१७३) की फोटो-नकलसे।

१९२. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[3]

टर्कीके साथ शान्ति-संधिकी शर्तें निःसन्देह भारतीय मुसलमानोंपर एक भीषण प्रहार है। यद्यपि सरकारी विज्ञप्तिमें यह दावा किया गया है कि शान्ति-संधिकी शर्तोंसे श्री लॉयड जॉर्ज द्वारा ५ जनवरी, १९१८को दिये गये वचनका निर्वाह हो जाता है, फिर भी मेरी रायमें इनसे न तो उस वचनके शब्दोंका निर्वाह होता है और न वचनकी भावनाका ही। लेकिन अब सवाल है कि आगे क्या करना है। मैं आशा

१. वैशाख कृष्ण १३को १६ मई थी; पर पत्रके अन्तमें कुमारी फैरिंगका उल्लेख है जो १९ मई, १९२०को डेनमार्कके लिए रवाना हुई थीं।

२. पं० मदनमोहन मालवीय।

३. टर्कीके साथ शान्ति-सन्धिकी शर्तोंपर। शर्तोंके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट १।

करता हूँ कि मुसलमान न तो आत्म-संयम छोड़ेंगे और न हताश होंगे। पूरी समझदारीके साथ पर्याप्त आत्मबलिदान किया जाये तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि न्याय प्राप्त किया जा सकता है। शान्ति-संधिकी शर्तें कोई ब्रह्म-वाक्य तो हैं नहीं; उनमें रद्दोबदल की जा सकती है। अब जो प्रश्न रह जाता है वह यह है कि क्या मुसलमान पूरा आत्म-संयम रख सकते हैं और साथ ही पर्याप्त संख्यामें आत्म-बलिदान कर सकते हैं? किसी भी प्रकारकी हिंसा इस पुण्य-कार्यको दूषित कर देगी। मेरी दृढ़ मान्यता है कि हिंसासे बचने और भारतीय मुसलमानोंके घावको भरनेका एकमात्र साधन असहयोग ही है। यदि अन्य भारतीय और अंग्रेज भी अपने मुसलमान सह-प्रजाजनोंके साथ सहयोग करें तो यह कार्य आसान हो जाये तथा देशमें अहिंसाकी स्थिति भी बनी रहे।

मुझे भरोसा है कि खिलाफत समिति अविलम्ब हिन्दुओं और मुसलमानोंका एक संयुक्त सम्मेलन बुलायेगी जिसमें संधिकी शर्तोंमें ब्रिटिश मन्त्रियोंके वादे और भारतीय मुसलमानोंकी जानी-मानी धार्मिक भावनाओंके अनुरूप रद्दोबदल करवानेके लिए क्या कदम उठाये जायें, इसपर विचार किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १८-५-१९२०

१९३. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम

अमावस्या [१८ मई, १९२०][1]

चि० देवदास,

तुम्हारा १२ तारीखका पत्र मुझे आज ही मिला। मेरे पत्रकी कमी तुम्हें लगभग एक सप्ताहतक महसूस हुई होगी, क्योंकि मैंने यह जानकर तुम्हें कोई पत्र न लिखा था कि तुम आनेवाले हो। जब तुम्हारा कोई भी पत्र न आया और मैं राह देखते-देखते थक गया तब मैंने खुद ही पत्र लिखना शुरू किया। फिर भी तुम्हारी ओरसे कोई पत्र न आनेपर मैंने तार दिया और अब तुम्हारे पत्र आने लगे हैं।

पंडितजीके प्रेमका जितना बखान करोगे वह सब सच है। अपने हृदयकी विशालताके कारण ही वे इतने सारे कार्य कर सकते हैं।

तुम्हारे बारेमें मुझे सामान्यतया चिन्ता हो ही जाती है। लेकिन यह सोचकर शान्त हो जाता हूँ कि तुम्हारा चरित्र तुम्हारी रक्षा करेगा ही।

१. पत्रमें अहमदाबादमें मजदूरोंकी जिस हड़तालकी चर्चा की गई है वह २१ मई, १९२० को समाप्त हुई थी। १९२० के मई महीनेमें अमावस्या १८ तारीखको थी।

मैं वहाँ[1] २९ तारीखको पहुँचूँगा। मध्याह्नमें यहाँसे निकलूँगा, इसलिए गाड़ी तो एक ही है। मैं मानता हूँ कि पंडितजी तो वहाँ होंगे ही। पंडित मालवीयजीने लिखा है कि सब लोग हिन्दू होस्टलमें ठहरें। लेकिन मैंने उनसे कहा है कि यदि पंडितजी वहाँ हुए तो वे मुझे और कहीं ठहरने ही नहीं देंगे।

श्री मॉण्टेग्युके उत्तरकी प्रति तो मैं तुम्हें भेज ही चुका हूँ। यहाँ पार्लियामेंटवाले श्री ऐगर आये थे; तीन दिनतक रहे।

मजदूरोंकी हड़ताल आज खत्म होगी, कल वे कामपर आयेंगे, ऐसा मानता हूँ। मेरा खयाल है कि तुम्हें [मैंने] सब पत्रिकाएँ भेजी हैं।

अभी-अभी कालिंदा बहन अपनी माताके साथ मुझसे मिलने आई हैं; इसलिए पत्र समाप्त करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७१३४) की फोटो-नकलसे।

१९४. स्वदेशीका उत्तरोत्तर विकास[2]

'यंग इंडिया'के पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा और साथ ही खुशी भी कि खद्दर-सम्बन्धी पिछले लेखके[3] परिणामस्वरूप न केवल आश्रममें जमा सारा माल बिक गया है, बल्कि बलूचिस्तान, नीलगिरीके इलाकों, यहाँतक कि अदनसे भी उसकी माँग आने लगी है। अपेक्षा भी यही की जाती थी। अगर भारतके इस प्राचीन कुटीर उद्योगको पुनः प्रतिष्ठित कर दिया जाये — अगर लाखों-करोड़ों औरतें अपने खाली समयमें फिर हाथसे कताई करने लग जायें और इसी तरह खाली समयमें पुरुष बुनाईका काम करने लग जायें — तो उसका परिणाम भारतमें एक शान्तिपूर्ण किन्तु प्रभावकारी क्रान्तिके रूपमें ही प्रकट होगा और भारतसे जो करोड़ों रुपया व्यर्थ ही बाहर चला जाता है, वह देशमें ही रह जायेगा; और साथ ही जो बचत होगी वह मुट्ठी-भर पूँजीपतियोंके हाथोंमें जमा नहीं होगी बल्कि लाखों-करोड़ों गरीबोंमें बँट जायेगी। इसका मतलब यह नहीं कि हम भारतमें पूँजीपतिवर्गको नहीं चाहते। वे तो हैं ही, लेकिन उनमें इतनी सामर्थ्य है कि वे अपने हितोंकी स्वयं रक्षा कर सकें। हमें प्रयत्न तो उन करोड़ों गरीबोंको ऊँचा उठानेका करना है, जो गरीबीकी चक्कीमें पिस रहे हैं और फलतः जिनका घोर पतन हो गया है। उन्हें शीघ्रातिशीघ्र और कारगर ढंगसे ऊँचा उठानेका एकमात्र उपाय हाथकी कताई और बुनाईके कामको बढ़ावा देना है। अतः

१. बनारसमें।

२. प्रस्तुत लेखको गांधीजीका लिखा माननेका आधार गांधी स्मारक निधिमें सुरक्षित इसका उन्हींकी लिखावटमें तैयार किया गया मसविदा है।

३. देखिए "खद्दरका उपयोग", २८–४–१९२०।

हमें आशा है कि अब चूँकि खद्दरकी माँग सिद्ध हो चुकी है, इसलिए भारतके हर कोने-अँतरेमें खद्दरके उत्पादनको उत्तेजन दिया जायेगा।

लेकिन, स्वदेशीकी लोकप्रियताका सबसे बड़ा उदाहरण तो यह है कि श्रीमती सरलादेवी चौधरानी और निश्छल तथा अविश्रान्त समाज-सेवी मौलाना हसरत मोहानीकी पत्नी श्रीमती मोहानीने भी इसे अपना लिया है। श्रीमती चौधरानीको खिलाफत कान्फ्रेंसके[1] सिलसिलेमें बरेली जाना था। उसकी तैयारी करते हुए उन्होंने लाहौरसे लिखा:

> अपना सामान बाँधते समय मेरे मनमें यह कशमकश रही कि साथमें क्या ले चलना चाहिए और क्या नहीं — वहाँ भाषण देते समय खद्दरके वस्त्र पहनने चाहिए या स्वदेशी रेशमी वस्त्र, हालाँकि इन दोनोंका भेद आसानीसे समझा नहीं जा सकता — कपड़े ट्रंकमें रखकर ले चलने चाहिए या वैसे ही बिस्तरबन्दमें रखकर? पहलेकी तरह भड़कीली और फैशनेबल पोशाक पहननी चाहिए या आम लोगोंकी सीधी-सादी पोशाक? अन्तमें मैंने निर्णय दूसरी बातके पक्षमें किया है। लेकिन इस नवीनताको अपनानेमें कुछ समय तो लगेगा ही और कठिनाई भी होगी।

अपने बरेलीके अनुभवोंके बाद लिखे पत्रमें वे कहती हैं:

> अभी कुछ मुसलमान परिवारोंसे मिलकर लौटी हूँ। एक घरमें दो स्त्रियाँ थीं — एक गृह-स्वामीकी पत्नी और दूसरी बहन। उन्होंने चरखा और स्वदेशीका व्रत लिया। एक दूसरे घरमें छः स्त्रियाँ थीं — सबकी-सबने यह व्रत लिया। यह कच्छी बोहरोंका परिवार था, जो गदरके जमानेमें आकर यहाँ बस गया था। ये लोग बड़े सम्पन्न और सुसंस्कृत थे। देखती हूँ, इन प्रदेशोंमें मैं स्वदेशी और चरखेका प्रचार बहुत अच्छी तरह कर सकती हूँ। मेरी स्वदेशी पोशाकका असर हो रहा है। श्रीमती मोहानीने बरेलीमें एक सभा बुलाई थी, उसमें पन्द्रह मुसलमान स्त्रियोंने स्वदेशीका व्रत लिया।

स्वदेशीपर प्रस्तुत किये गये एक प्रस्तावपर हिन्दुस्तानीमें बोलते हुए उन्होंने भारतकी गरीबी और उसकी दो आवश्यकताओं — भोजन और वस्त्र — पर विशेष जोर दिया और कहा कि अगर हम अपने घरकी व्यवस्था नहीं कर पाते, अपने लिए पेट-भर भोजन नहीं जुटा सकते तो फिर देशकी व्यवस्था कैसे कर पायेंगे? यह विचित्र बात है कि लोग ऐसी सभाओंमें जानेको तो तैयार रहते हैं जिनमें उनसे कोई काम करनेको, कुछ बलिदान करनेको नहीं कहा जाता, लेकिन जिन सभाओंमें उनके सामने कोई बड़ा सत्य रखा जाता है या उनसे हर कीमतपर स्वदेशीको अपनानेके अपने बुनियादी कर्त्तव्यका पालन करने जैसी बात कही जाती है, उन सभाओंमें जानेसे वे कतराते हैं। श्रीमती चौधरानीने उनसे स्वर्गीय विद्यासागरकी[2]-जैसी भावनासे

१. ३ मई, १९२० को।

२. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०–१८९१); संस्कृतके विद्वान्, शिक्षाशास्त्री एवं बंगालके समाज-सुधारक।

काम करनेको कहा, जिन्होंने आजीवन खद्दर ही पहना। इसमें किसी तरहकी कमीका अनुभव करनेकी बात तो दूर, वे गौरवका अनुभव करते थे। उन्होंने कहा कि मैं मानती हूँ, खद्दरको पुनः प्रतिष्ठित करना कठिन है, लेकिन सभी बड़े कार्य कठिन हुआ करते हैं। जबतक भारतीय लोग चीन, जापान, फ्रांस तथा अन्य देशोंसे मँगाये रेशमी वस्त्रोंका उपयोग न करनेका दृढ़ निश्चय नहीं कर लेंगे, और इस संक्रान्ति-कालमें, भारतीय बहनें आज जो मोटा सूत तैयार कर रही हैं, उसीसे बने कपड़े पहननेमें सन्तोष नहीं मानतीं तबतक भारत वैसा सुन्दर कपड़ा कभी भी तैयार नहीं कर सकता जैसा सुन्दर कपड़ा पहले तैयार करता था। इसके अतिरिक्त जो लोग देशकी आर्थिक स्थितिको महसूस करते हैं उनके सामने इसकी गरीबी और कठिनाइयोंको देखते हुए और कोई रास्ता भी नहीं रह जाता। उन्होंने संभ्रान्त शिक्षित स्त्रियोंसे आगे बढ़कर लोगोंको रास्ता दिखानेका अनुरोध किया और अपने इस दृष्टिकोणपर जोर देनेके लिए यह श्लोक उद्धृत किया:

> यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
> स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥[1]

और चौधरी-दम्पतीको[2] इस श्लोकमें कहे गये सत्यका प्रयोग बहुत जल्दी अपने घरमें ही करना था, क्योंकि गत १८ तारीखको ही उनके ज्येष्ठ पुत्रकी शादी होनेवाली थी और इस उद्देश्यसे उन्हें उसके लिए कपड़े बनवाने थे। पंडित रामभजदत्त चौधरी लिखते हैं:

> शादीकी सभी पोशाकें बनारसमें तैयार स्वदेशी रेशमी कपड़ेसे बनवाई गई हैं। यह कुछ कीमती तो जरूर है, लेकिन चीज बहुत उम्दा है। हमने बड़े आग्रहपूर्वक विदेशी कपड़ेका उपयोग वर्जित रखा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९–५–१९२०

१९५. कुछ प्रश्नोंका उत्तर

आपका सात तारीखका पत्र मिला। आपने लिखा है कि 'यंग इंडिया' में असहयोगपर आपके लेखोंको पढ़कर मैं अपना स्पष्ट मत प्रकट करूँ। आपके पत्रके और आपके इस अनुरोधके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपकी इच्छा मात्र सत्यका अनुसन्धान करना और उसीपर आचरण करना है, इसलिए मैं निर्भयताके साथ नीचे लिखे चन्द शब्द लिखता हूँ। ५ मईके अंकमें आपने लिखा है कि असहयोग तो "सरकार-विरोधी भी

१. जैसा श्रेष्ठ लोग करते हैं, सामान्य लोग भी वैसा ही करते हैं। जो मान श्रेष्ठ लोग स्थापित करते हैं, उसी मानका अनुकरण सामान्य लोग भी करते हैं। गीता, ३–२१।

२. सरलादेवी और उनके पति पंडित रामभजदत्त चौधरी।

नहीं है।[1]" पर सरकारसे हर तरहका सम्बन्ध तोड़ लेना, इस हदतक कि उसकी नौकरी न करना, मालगुजारी आदि न देना, यदि सिद्धान्ततः नहीं तो व्यवहारमें तो संस्कारके विरुद्ध अवश्य है और इस तरहके काम अन्ततः शासनका कार्य अवश्य ही असम्भव कर देंगे। आगे चलकर आप फिर लिखते हैं "जो सरकार अपनी प्रजाकी बात नहीं सुनती है, उसकी प्रजाका स्वाभाविक अधिकार है कि वह उसकी सहायता करनेसे इनकार कर दे।"[2] आपने जो मन्तव्य उपस्थित किये हैं वे नैतिक दृष्टिसे सही हैं या नहीं, इस प्रश्नको छोड़ भी दें, तो मैं पूछना चाहूँगा कि इस समय आपका अभिप्राय किस सरकारसे है? क्या भारत सरकारने इस मामलेमें अपनी शक्तिभर काम नहीं किया है? यदि भारतकी प्रार्थना पहुँचानेका उसका प्रयत्न विफल हो जाये तो क्या उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई करना उचित और न्यायपूर्ण होगा? क्या यह रास्ता उचित नहीं होगा कि मित्र-राष्ट्रोंकी सुप्रीम कौंसिल (सबसे बड़ी सभा)के साथ असहयोग किया जाये और यदि इस बातका पक्का प्रमाण मिल जाये कि ब्रिटेनने वहाँपर भी भारत सरकार तथा भारतीय प्रजाकी माँगोंका समर्थन नहीं किया है तो उसके साथ भी असहयोग किया जाये। मुझे प्रतीत होता है कि लिखते और भाषण करते समय आप इस बातको भूल जाते हैं कि इस [खिलाफतके] मामलेमें भारत सरकार प्रजाके साथ है और यदि उनकी उचित माँगें पूरी नहीं की जातीं तो भी सरकारके साथ असहयोगका प्रश्न कहाँ उठता है? "भारतके मुसलमानोंपर जो बोझ है उसको हलका करनेमें हिन्दू, अंग्रेज तथा भारत सरकार सभी हाथ बँटा रहे हैं, आदि।"[3] इतनेपर यदि हम लोगोंको सफलता नहीं मिलती तो क्या करें? क्या हमें असहयोग करना चाहिए? और यदि करना चाहिए तो किसके साथ?

निम्नलिखित तरीकेपर कार्य करनेका सुझाव मैं देना चाहता हूँ:—

(१) "प्रतीक्षा कीजिए और देखिए" कि तुर्कोंके साथ सन्धिकी शर्तें वास्तवमें क्या होती हैं।

(२) यदि ये शर्तें भारत सरकार तथा भारतकी प्रजाकी आकांक्षाओं और सिफारिशोंके अनुकूल न हों तो उनमें सुधार लानेके लिए हर वैध तरीकेसे प्रयत्न करना चाहिए।

(३) हमें उस सरकारके साथ अन्ततक सहयोग करना चाहिए जो हमारे साथ सहयोग करती है और जब वह सहयोग त्याग दे तभी हमें उससे असहयोग करना चाहिए।

मेरी समझमें असहयोग करनेके ऐसे कोई भी कारण अभीतक तो उपस्थित नहीं हुए हैं, और जबतक भारत सरकार भारतकी माँगों और जरूरतोंको

१, २ व ३. देखिए "असहयोगको कार्यान्वित कैसे करें?", ५-५-१९२०।

व्यक्त करनेमें न चूके तबतक उसके साथ असहयोग करनेका कोई कारण नहीं हो सकता। भारत सरकार कभी-कभी भूल अवश्य करती है, पर खिलाफतके मामलेमें तो उसकी नीति सही है और इसलिए प्रत्येक भारतवासीका धर्म है कि उसके साथ सहानुभूति प्रकट करे और पूर्ण सहयोग करे। मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरे कथनपर अच्छी तरह विचार करेंगे और 'यंग इंडिया' में इसका उत्तर देंगे।

उपर्युक्त पत्रको मैं सहर्ष स्थान दे रहा हूँ और मेरे अंग्रेज मित्रने जिन कठिनाइयों-का अनुभव किया है, उनका सार्वजनिक उत्तर देनेकी गुस्ताखी भी कर रहा हूँ क्योंकि उस तरहकी कठिनाइयाँ बहुत लोग अनुभव करते हैं। अक्सर महान ध्येयों-की विफलताका कारण यह नहीं होता कि कतिपय ऐसे लोग उसका प्रबल विरोध करते हैं जो किसी अन्यायको चिरस्थायी बनानेकी इच्छावश सचाईको देखना ही नहीं चाहते, बल्कि यह होता है कि वे कतिपय व्यक्ति अपने पक्षमें उन लोगोंका समर्थन प्राप्त करनेमें सफल हो जाते हैं जो किसी भी प्रश्नको ठीकसे समझनेके बाद ही पक्ष ग्रहण करते हैं। ऐसे ईमानदार व्यक्तियोंके साथ पूर्ण धैर्यके साथ बातचीत करके ही अपने विचारोंको परखा जा सकता है, अपने निर्णयोंकी भूल सुधारी जा सकती है और कभी-कभी उन लोगोंके भ्रमका निवारण करके उनको अपने पक्षमें लाया जा सकता है। खिलाफतका प्रश्न विशेष रूपसे जटिल प्रश्न है क्योंकि उसके साथ कई गौण प्रश्न जुड़े हुए हैं। इसलिए यदि बहुतसे लोगोंको अपना मत स्थिर करनेमें कम या अधिक कठिनाईका सामना करना पड़े तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यह प्रश्न और भी जटिल इसलिए हो गया है कि वर्तमान अवस्थामें इसके सम्बन्धमें कोई सीधी कार्रवाई करनेकी दुःखद आवश्यकता उत्पन्न हो गई है। चाहे हमारी कठिनाई कितनी भी बड़ी क्यों न हो, हमारा यह दृढ़ मत और विश्वास है कि यदि हम भारतमें शान्ति और मेलजोल चाहते हैं तो इस प्रश्नपर विचार करना हमारे लिए सबसे अधिक आवश्यक है।

मेरे मित्रको मेरे इस कथनपर आपत्ति है कि असहयोग सरकार-विरोधी नहीं है क्योंकि उनका विचार है कि सरकारी नौकरीसे इनकार करना तथा मालगुजारी न देना व्यवहारतः सरकार-विरोधी कार्य हैं। मैं सादर इस मतसे असहमति व्यक्त करता हूँ। यदि एक भाईका अपने दूसरे भाईसे सैद्धान्तिक मतभेद हो और यदि उस भाईके साथ रहनेका अर्थ उसकी समझमें अन्यायमें साथ देना है तो मेरा विचार है कि भाईके नाते उसका कर्त्तव्य यह है कि वह उस भाईकी सहायता न करे और अपनी कमाई उसके साथ मिलाकर न रखे। यह प्रतिदिनके जीवनमें होता है। प्रह्लादका पिता हिरण्यकशिपु अतिशय दुष्ट और क्रूर था। प्रह्लादने अपने पिताके पापाचारमें योग न देकर उनके विरुद्ध कोई काम नहीं किया। ईसाने मक्कारों और 'फैरीसियों' के विरुद्ध जब घोषणा की और उनसे किसी तरहका सम्बन्ध नहीं रखना चाहा, तो उनका यह कार्य यहूदी-विरोधी कार्य नहीं था। ऐसे मामलोंमें किसी कार्य विशेषके पीछे जो मंशा होता है, क्या वही असली चीज नहीं है? हमारे मित्रने लिखा है कि साधारण स्थितिमें

सरकारके साथ हर तरहके सहयोगसे हाथ खींच लेना शासन-कार्यको असम्भव बना देना है। यह बात सही नहीं है। परन्तु यह सच है कि इस तरहके असहयोगसे हर तरहका अन्याय असम्भव हो जायेगा।

पत्र लिखनेवालेका विचार है कि भारत सरकारने जब यथासाध्य सब-कुछ किया तब उस सरकारके साथ असहयोग करना अनुचित है। मेरी रायमें यद्यपि यह सच है कि भारत सरकारने काफी-कुछ किया, पर जितना उसको करना चाहिए था या जितना वह कर सकती है उसका आधा भी उसने नहीं किया है। कोई भी सरकार महज विरोध-प्रदर्शन करके आगे कोई कार्रवाई करनेकी जिम्मेदारीसे अपनेको मुक्त नहीं मान सकती, खास तौरसे तब जब वह जानती है कि जिन लोगोंका प्रतिनिधित्व वह करती है वे इतने विक्षुब्ध हैं जितने कि खिलाफतके सवालपर लाखों भारतीय मुसलमान क्षुब्ध हैं। भूखे आदमीके साथ कोरी सहानुभूति दिखानेसे उसका कुछ लाभ नहीं हो सकता। उसे या तो रोटी दी जाये या उसे मरने दिया जाये। और ऐसे नाजुक समयमें जहाँसे हो सके कोशिश करके भूखसे मर रहे उस व्यक्तिके पास भोजन-सामग्री पहुँचानी चाहिए। भारत सरकार आज खिलाफत आन्दोलनका नेतृत्व कर सकती है और आग्रहपूर्वक कह सकती है कि एक ब्रिटिश मन्त्रीने जो वचन दिया था उसे पूरा किया जाये। श्री लॉयड जॉर्जके निर्लज्जतापूर्ण आसन्न विश्वासघातके प्रति विरोधस्वरूप क्या भारत सरकारने इस्तीफा दिया है? भारत सरकार गुप्त खरीतोंकी आड़में क्यों छिपती है? लॉर्ड हार्डिंगने इससे कहीं अधिक एक कम नाजुक अवसरपर संवैधानिक "अविवेक" से काम लेकर खुले शब्दोंमें दक्षिण आफ्रिकाके निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलनसे सहानुभूति दिखलाई थी और इस प्रकार भारतमें क्षोभ और ग्लानिकी बढ़ती ज्वालाको शान्त कर दिया था, यद्यपि इसके लिए उन्हें दक्षिण आफ्रिकाके तत्कालीन मन्त्रिमण्डल और ग्रेट ब्रिटेनके कुछ राजनीतिज्ञोंका कोपभाजन बनना पड़ा। आखिरकार भारत सरकारने अधिकसे-अधिक जो-कुछ किया है वह यह है कि उसने मुसलमानोंकी उचित माँगोंको मित्रराष्ट्रोंके सामने रखा और उनपर जोर दिया। क्या वह इससे भी कुछ कम कर सकती थी? इससे कुछ कम करनेपर क्या वह कलंकित हुए बिना रह सकती थी? भारतके मुसलमान तथा हिन्दू इस संकटापन्न अवस्थामें भारत सरकारसे कमसे-कमकी आशा न रखकर अधिकसे-अधिक जो-कुछ वह कर सकती हो, उसकी आशा रखते हैं। एकाधिक वाइसरायोंने इससे भी छोटे सवालोंपर इस्तीफे दिये हैं। एक लेफ्टिनेन्ट गवर्नरने अभी कुछ समय पूर्व स्वाभिमानपर ठेस लगनेके कारण इस्तीफा दे दिया था। खिलाफतका सवाल एक परम पवित्र सवाल है, जो कई करोड़ मुसलमानोंको दिलसे प्यारा है। उसी खिलाफतपर चोट पहुँचनेका खतरा उपस्थित है। इसलिए मैं अपने उक्त अंग्रेज मित्रसे, और भारतमें रहनेवाले प्रत्येक हिन्दूसे, चाहे वह नरम दलका हो या उग्र दलका, अनुरोध करता हूँ कि वे मुसलमानोंका साथ दें और इस प्रकार भारत सरकारको अपना कर्त्तव्य-पालन करनेके लिए बाध्य करें, तथा सम्राट्के मन्त्रियोंको लाचार कर दें कि वे अपने कर्त्तव्यका पालन करें।

चारों ओर काफी चर्चा है कि सक्रिय असहयोगसे हिंसा शुरू होगी। पर मैं कह सकता हूँ कि यदि भारतमें मुसलमानोंके सामने असहयोग-जैसा कोई रास्ता न होता तो

वे निराशाके वशीभूत होकर हिंसाकी धारामें बह गये होंगे। मैं स्वीकार करता हूँ कि असहयोग खतरेसे खाली नहीं है। और असहयोगमें हिंसाका होना केवल एक सम्भावना है, जब कि असहयोग न होनेपर हिंसा निश्चित है। और यदि सभी सम्बद्ध व्यक्ति -- अंग्रेज, हिन्दू आदि -- इसका समर्थन त्याग देंगे तो हिंसाकी ओर भी अधिक सम्भावना हो जायेगी।

मेरा ख्याल है कि हमारे मित्रने जो हिदायतें दी हैं उनका मुसलमान लोग पूरी तरहसे पालन कर रहे हैं। यद्यपि भारतीय मुसलमानोंको मालूम है कि भाग्य क्या होगा, फिर भी वे लोग टर्कीसे सन्धिकी वास्तविक शर्तोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। असहयोग आन्दोलन शुरू करनेसे पूर्व निश्चय ही वे सन्धिकी शर्तोंमें परिवर्तन करानेके लिए हर सम्भव तरीका अपनायेंगे और निस्सन्देह तबतक असहयोग नहीं होगा जबतक यह आशा रहेगी कि भारत सरकार मुसलमानोंको सक्रिय सहयोग देगी — ऐसा सबल सहयोग जिसके बलपर सन्धिकी शर्तें यदि ब्रिटिश राजनयिकों द्वारा दिये गये वचनोंके अनुरूप न हों तो उन शर्तोंमें परिवर्तन करवाया जा सके। पर यदि सभी साधन असफल हुए तो आत्माभिमानी मुसलमान, जो अपने धर्मको अपनी जानसे भी प्रिय मानते हैं, इससे कम क्या कर सकते हैं कि ब्रिटिश मन्त्रियों और भारत सरकारके साथ सहयोग करनेसे इनकार कर दें और उनसे कोई सम्बन्ध न रखें। और यदि हिन्दू और अंग्रेज लोग मुसलमानोंकी मैत्रीको मूल्यवान मानते हैं, और इस बातको स्वीकार करते हैं कि मुसलमानोंकी मांगें पूर्णतया न्यायसंगत हैं तो वे मुसलमानोंके साथ वचन और कर्म द्वारा सहयोग करनेके अतिरिक्त क्या कुछ और करेंगे?

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १९-५-१९२०

१९६. प्रतिज्ञा-भंग

टर्कीसे सम्बन्धित शान्तिकी जिन शर्तोंकी बहुत समयसे प्रतीक्षा की जा रही थी वे हमें इससे पहलेवाला लेख[1] प्रकाशित होनेके बाद अब मिली हैं। मेरी नम्र रायमें ये शर्तें सुप्रीम कौंसिल और ब्रिटेनके मन्त्रियोंकी तौहीन है तथा ईसाई धर्ममें गहरी श्रद्धा रखनेवाले एक हिन्दूकी हैसियतसे मुझे ऐसी राय देनेका अधिकार हो तो ईसामसीहकी शिक्षाके विपरीत है। गृह-कलह तथा भीतरकी अशान्तिसे शक्ति-हीन टर्की अपने सम्बन्धमें इस उद्दण्डतापूर्ण निर्णयको शायद स्वीकार कर ले और भारतके मुसलमान भी शायद डरके मारे वैसा ही करें। हिन्दू लोगभी डरसे, उदासीनताके कारण अथवा स्थिति ठीकसे न समझनेके कारण इस महान् संकटके समय चाहे अपने मुसलमान भाइयोंका साथ न दें परन्तु तथ्य यह है कि इंग्लैंडके प्रधान मन्त्रीने जो वचन दिया था उसे बुरी तरह तोड़ा गया। राष्ट्रपति विलसनके

१. देखिए "कुछ प्रश्नोंका उत्तर", १९-५-१९२०।

१४ मुद्दोंके[1] बारेमें मैं कुछ नहीं कहूँगा क्योंकि लगता है उन्हें तो एक दिनका चमत्कार मानकर, अब बिलकुल भुला दिया गया है। बहुत दुःखकी बात है कि भारत सरकारने अपनी विज्ञप्तिमें सन्धिकी शर्तोंकी सफाई पेश की है, उन्हें ५ जनवरी, १९१८ को श्री लॉयड जॉर्जकी प्रतिज्ञाका पालन बतलाया है पर साथ ही उनके सदोष स्वरूपके लिए क्षमा-याचना की है और भारतीय मुसलमानोंसे अपील की है कि अब वे इन शर्तोंको चुपचाप स्वीकार लें। मुझे तो ऐसा ही लगता है कि इस किस्मकी अपील करके सरकारने उन्हें मानो चिढ़ाया है। धोखेकी टट्टी इतनी मोटी नहीं है कि वह लोगोंसे असलियतको छिपा सके। यदि भारत सरकारने अपनी विज्ञप्तिमें निर्भीकतासे यह स्वीकार कर लिया होता कि श्री लॉयड जॉर्जने उक्त वचन देकर भूल की थी, तो सरकारकी मर्यादाके ज्यादा अनुकूल होता। पर इस प्रकार स्पष्ट रूपसे वचन-भंग करनेके बाद वचन पूरा करनेके इस दावेसे तो उससे होनेवाली झुंझलाहट और भी बढ़ती है। वाइसरायकी इस उक्तिका कि — "खिलाफतका प्रश्न सिर्फ मुसलमानोंका प्रश्न है, इसमें उनको पूरी स्वतंत्रता है और सरकार इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहती", क्या मतलब बच रहता है जब कि खलीफाका राज्य निर्दयताके साथ छिन्न-भिन्न कर दिया गया है, मुसलमानोंके पवित्र तीर्थ-स्थान निर्लज्जतापूर्वक उनसे छीन लिये गये हैं और उन्हें उनके ही महलमें रख दिया गया है जहाँ उनकी हैसियत एक बिलकुल अशक्त और असहाय आदमीकी है और इसलिए जिसे अब किसी भी तरह महल नहीं कह सकते बल्कि जेलखाना कहना अधिक उपयुक्त होगा। इस परिस्थितिमें बड़े लाटका यह कहना है कि "शान्ति-सन्धिमें ऐसी बातें हैं जिनसे मुसलमानोंको बड़ा ही दुःख होगा", आश्चर्यजनक नहीं है। तब फिर भारतीय मुसलमानोंके पास प्रोत्साहन और सहानुभूति-सन्देश[2] भेजकर उनकी बुद्धिका अपमान वे क्यों कर रहे हैं? क्या उनसे सन्धिकी उन उद्धत शर्तोंके क्रूर विवरणसे, अथवा यह स्मरण करके कि हमने "साम्राज्यकी जरूरतके समयमें" सम्राट्की पुकारपर "बहुत अच्छी" सहायता की, प्रोत्साहन प्राप्त करनेकी आशा की जाती है? महामहिमको यह शोभा नहीं देता कि वे न्याय और मानवताके जिन आदर्शोंके लिए मित्र-राष्ट्रोंने युद्ध किया था उनकी विजयकी बात करें। यदि तुर्कोंके साथ तथाकथित शान्तिकी शर्तें बरकरार रहीं तो वे मनुष्यके अन्याय तथा दर्पका अभिलेख होंगी। किसी वीर और साहसी जातिके तेजको, उसके युद्धमें हार जानेके कारण कुचल डालनेका प्रयत्न करना मानवताकी विजय नहीं वरन् दानवताका प्रदर्शन है। और यदि युद्धके पहले तुर्क लोग ब्रिटेनकी घनिष्ठ मैत्रीका लाभ पा रहे थे तो उनकी भूलके लिए ब्रिटेनने उन्हें नीचा दिखानेमें सबसे ज्यादा हिस्सा लेकर निश्चय ही काफी बदला ले लिया है। ऐसी अवस्थामें बड़े लाटका यह कहना असह्य हो जाता है कि "इस नई सन्धिकी शर्तोंके बाद वह पुरानी मैत्री पुनः शीघ्र पनपेगी और नई आशा तथा नई शक्तिसे सम्पन्न नया टर्की

१. मित्र-राष्ट्रोंने इन मुद्दोंको शान्तिकी स्थापनाके आधारके रूपमें स्वीकार किया था।

२. १४ मई, १९२० को प्रकाशित; देखिए परिशिष्ट २।

भूतकालकी भाँति भविष्यमें भी इस्लाम धर्मका स्तम्भ बना रहेगा।" वाइसरायके सन्देशका समापन इस भ्रान्तिपूर्ण उक्तिसे होता है:—"मेरा विश्वास है कि इस सवालसे आप लोग बिना किसी प्रकारका असन्तोष दिखाये शान्तिके साथ सन्धिकी शर्तोंको स्वीकार कर लेंगे और सम्राट्‌के प्रति अपनी राजभक्ति पहलेकी अपेक्षा और उज्ज्वल बनाये रखेंगे जैसी कि वह कई पीढ़ियोंसे रही है।" यदि मुसलमानोंकी राजभक्ति उज्ज्वल बनी रहे तो निःसन्देह इसका कारण यह नहीं होगा कि भारत-सरकारने उसे तोड़ डालनेके लिए उसपर काफी बोझ लादनेमें कुछ कसर रखी हो; वह तो इसलिए उज्ज्वल रहेगी कि मुसलमान अपनी शक्ति पहचानते हैं, उन्हें पता है कि उनका पक्ष न्यायपर आधारित है। यद्यपि एक ऐसे प्रधान मंत्रीके प्रभावमें, जो लगातार काफी समयतक सत्तारूढ़ रहनेके कारण अत्यन्त दुःसाहसी हो गये हैं — जिन्हें न वचन देनेमें कुछ लगता है और न उसे तोड़नेमें — ग्रेट ब्रिटेन गुमराह हो गया है फिर भी मुसलमान अपनी शक्तिके बलपर न्याय प्राप्त कर सकेंगे।

अतएव यद्यपि मैं मानता हूँ कि सन्धिकी शर्तोंमें या वाइसरायके तत्सम्बन्धी संदेशमें ऐसी कोई बात नहीं है जो मुसलमानों या भारतीयोंके मनमें आशा या विश्वासका संचार करे फिर भी मैं समझता हूँ कि निराश होने या क्रोध करनेका कोई कारण नहीं है। यही समय है कि मुसलमान लोग पूर्ण आत्मसंयमसे काम लें, अपनी शक्तिका संगठन करें और यद्यपि वे कमजोर हैं तथापि ईश्वरमें दृढ़ आस्था रखकर इस संग्रामको दूने जोशसे तबतक चलायें जबतक कि न्याय प्राप्त न हो जाये। अगर भारतवर्ष — हिन्दू और मुसलमान दोनों — एक होकर काम करे और सन्धिकी इन शर्तों द्वारा मानवताके प्रति जो यह अपराध हुआ है उससे अपनी साझेदारी हटा ले, तो सन्धिकी शर्तोंमें भारत शीघ्र ही सुधार करवा सकेगा और यदि दुनियाको नहीं तो कमसे-कम अपनेको और ब्रिटिश साम्राज्यको स्थायी शान्ति प्रदान करेगा। निःसन्देह हमारा यह संघर्ष कटु, तीव्र और सम्भवतः दीर्घकालिक होगा पर इसमें जो-कुछ त्याग करना पड़े वह सर्वथा करणीय है। यह समय मुसलमान और हिन्दू दोनोंकी परीक्षाका है। क्या खिलाफतकी तौहीन मुसलमानोंके लिए चिन्ताका विषय है? यदि है तो क्या वे आत्मसंयमके लिए तैयार हैं? हिंसाका सम्पूर्ण परित्याग करनेके लिए और हर तरहकी क्षति बरदाश्त करते हुए असहयोग अपनानेको तैयार हैं? क्या हिन्दू लोग अपने मुसलमान भाइयोंके साथ इस हदतक सहानुभूति रखते हैं कि वे उनकी तकलीफोंमें पूरा हिस्सा बँटानेको तैयार हैं? खिलाफतके भाग्यका निर्णय इन प्रश्नोंके उत्तरसे होगा, सन्धिकी शर्तोंसे नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-५-१९२०

१९७. पत्र : देवदास गांधीको

[बम्बई]
जेठ सुदी २ [२० मई, १९२०][1]

चि० देवदास,

तुम्हारे पत्र अब नियमपूर्वक आते रहते हैं। मैं वहाँ आनेवाला हूँ[2] इसलिए तुम अलमोड़ा जाओ, यह कहनेमें हिचकिचाता हूँ, तथापि जाना हो तो जाना। रुकनेकी इच्छा हो तो मैं जब वहाँ आऊँगा तभी हम [दोनों बैठकर] कार्यक्रम बनायेंगे।

आज खिलाफतके सम्बन्धमें मैं एक दिनके लिए यहाँ[3] आया हूँ। इस बारेमें तुम्हें 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में सबकुछ पढ़नेको मिलेगा।

जहाँतक मेरे स्वास्थ्यका प्रश्न है, म दुर्बलताके सिवाय कुछ और महसूस नहीं करता। कमजोरी इतनी है कि मुझसे तनिक भी नहीं चला जाता। टाँगोंसे ताकत चली गई है। कारण समझमें नहीं आता। अपने पढ़ने-लिखने आदिका कार्य ठीक-ठीक कर पाता हूँ।

सिंहगढ़में मेरे साथ प्रभुदास, बालकृष्ण, डाक्टर, महादेव और रेवाशंकर भाई रहे। कुमारी फैरिंग कल रवाना हो गई।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७१७५) की फोटो-नकलसे।

१९८. पत्र : मगनलाल गांधीको

बम्बई
बृहस्पतिवार [२० मई, १९२०][4]

चि० मगनलाल,

आज एक दिनके लिए यहाँ आया हूँ। तुम्हारे जानेके बादसे ही मैंने सवेरे और साँझका प्रार्थनाका समय खूब बातचीतमें बिताया है। हम दोनोंके बीच हुई बातोंकी

१. कुमारी एस्थर फैरिंग १९ मई, १९२० को डेनमार्कके लिए रवाना हुई थीं और यह पत्र जैसा कि मजमूनसे पता चलता है, दूसरे दिन लिखा गया था।

२. गांधीजी मईके अन्तमें बनारस पहुँचने वाले थे।

३. बम्बई; देखिए अगला शीर्षक।

४. स्पष्टतः यह पत्र उसी दिन लिखा गया, जिस दिन कि देवदास गांधीको लिखा (पिछला शीर्षक) पत्र। जैसा कि पत्रकी अन्तिम पंक्तिमें लिखा है गांधीजी २६ मई, १९२० को बनारसके लिये रवाना होनेवाले थे।

चर्चा की है। आश्रमके साथ मेरा सम्बन्ध, खिलाफत, स्वदेशी, होमरूल लीगकी प्रवृत्ति, मुझे किस तरह शान्ति मिली, सब किस तरह उसे प्राप्त कर सकते हैं आदि विषयोंपर खूब बातचीत हुई है, अभी और भी करनी है। तुम्हें दूसरोंसे इसका पता चलेगा।

जमनालाल आ गया; कल ही उसका स्वास्थ्य खराब हो गया है। [illegible]को अभी ज्वर है, लेकिन चेहरा ठीक है। तुम बहुत अनुभव प्राप्त करके आना। २६ तारीखको मुझे काशी जानेके लिए अहमदाबादसे रवाना होना पड़ेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५६९५) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी

१९९. पत्र: शाह हफीज आलमको

[२१ मई, १९२०][1]

प्रिय शाह साहब,

मैं खिलाफतके कामके[2] सिलसिलेमें बम्बई गया था। आज वहाँसे लौटनेपर आपका गत १४ तारीखका पत्र मिला।

मैं चाहता हूँ कि हमारे साथी यह बात समझें कि इस सारे संघर्षका मतलब है जेल जाना तथा सरकार द्वारा दी जानेवाली अन्य सभी यातनाओंको सहना। ऐसी आशा हमें नहीं करनी चाहिए कि एक ओर तो हम दृढ़ताके साथ असहयोग आन्दोलन चलायें और दूसरी ओर सरकार हमें गिरफ्तार या नजरबन्द न करे, न हमें जेलमें डाले और न देश-निकाला दे। इन सभी कष्टोंको बिना किसी शारीरिक प्रतिरोधके सहन कर सकनेकी क्षमता ही इस संघर्षका मूल तत्त्व है। इसलिए जहाँतक एक मेरी बात है, मैं केवल सरकारकी शक्तिसे ही नहीं लड़ूँगा वरन् समाजको इससे भी बड़ी बातोंके लिए तैयार करूँगा। आशा है मैं ३० तारीखको बनारसमें होऊँगा।[3] वहाँ इलाहाबादके मित्रोंसे मिलकर मुझे प्रसन्नता होगी। अब हमें जरूरत बड़ी-बड़ी सभाओं-

१. साधन-सूत्रसे पता चलता है कि यह पत्र सरकारी अधिकारियोंके ध्यानमें ५ जून, १९२० को आया, और इससे पहलेकी अपनी बम्बई यात्रासे गांधीजी २१ मईको लौटे थे। अतः यह पत्र २१ मई, १९२० को ही लिखा गया होगा।

२. सम्भवतः मुसलमानोंके लिए वाइसरायके सन्देशके साथ भारतके १४ मई, १९२० के असाधारण गजटमें प्रकाशित मित्र-राष्ट्रों द्वारा टर्कीके सम्मुख रखी गई शान्ति-संधिकी शर्तोंसे उत्पन्न स्थितिके सम्बन्धमें।

३. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके सिलसिलेमें, जिसमें गांधीजीने यह प्रस्ताव रखा कि कांग्रेसको अविलम्ब देशके सामने असहयोग आन्दोलनका कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहिए।

की नहीं, बल्कि इस बातकी है कि जो लोग इस आन्दोलनका नेतृत्व करनेवाले हैं, वे वस्तुस्थितिको ठीक ढंगसे समझें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स

२००. पत्र : एस्थर फैरिंगको

आश्रम
२१ मई, १९२०

रानी बिटिया,

बुधवारको अचानक तुम्हारे पास पहुँचनेका मैंने प्रयत्न किया, परन्तु वैसा होना नहीं था। मुझे मजदूरोंके झगड़ेका निबटारा करना था। इस कारण मैंने जाना स्थगित कर दिया। सबने मुझे बताया कि तुम मुझसे मिलनेको बहुत आतुर थीं। वास्तवमें तुम थीं भी। ए० डाक ले जानेकी प्रतीक्षा कर रहा है, इसलिए मुझे थोड़ेमें ही पत्र समाप्त कर देना है। मुझे तुम्हारा अन्तिम मूल्यवान पत्र मिल गया है। मैं जानता हूँ कि तुम ठीक वैसा ही करोगी जैसा तुमने लिखा है। ईश्वरसे प्रार्थना है कि तुम सकुशल तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूपसे स्वस्थ होकर लौटो।

आशा है मेरा रुक्का[1] तुम्हें 'बर्लिन'पर[2] मिल गया होगा।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

२०१. तार : शौकत अलीको[3]

२२ मई, १९२०

हाँ। इलाहाबाद। पहली अथवा दूसरी जून ठीक है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स

१. यह उपलब्ध नहीं।

२. वह जहाज जिसपर एस्थर फैरिंग डेनमार्क जा रहीं थी।

३. इलाहाबादमें खिलाफतके मसलेपर होनेवाले सम्मेलनके सम्बन्धमें।

२०२. पत्र : ग० वा० मावलंकरको

आश्रम
जेठ सुदी ५ [२२ मई, १९२०][1]

भाईश्री मावलंकर,

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़नेके तुरन्त बाद ही मैंने उसे फाड़ डाला। तुम्हारे धर्मसंकटको[2] मैं समझ सका हूँ। तुम मेरे लिखनेका अन्यथा न मानो, इतना ही मेरे लिए काफी होना चाहिए। लोग हमेशा ही मेरी इच्छानुसार कार्य करें, ऐसी आशा मैं कर ही नहीं सकता। मैंने अपना धर्म निभाया। अब मैं निश्चिन्त हुआ। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम-भाव तनिक भी कम नहीं होगा, इतना निश्चित जानो।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० १२२२) की फोटो-नकलसे।

२०३. अब क्या करेंगे?

"समझौते" की शर्तें प्रकाशित हो चुकी हैं। अंग्रेजी शब्द "पीस" का अर्थ हम समझौता करते हैं, "पीस" का अर्थ शान्ति भी होता है। जो शर्तें प्रकाशित की गई हैं उन्हें यदि लड़ाईकी शर्तोंके नामसे पुकारा जाता तो वह वस्तुका वर्णन करनेवाला शब्द होता। लेकिन स्वर्गीय ग्लैडस्टनका उपहास करते हुए उनके समान ही महान् पुरुष स्वर्गीय डिजरैलीने एक बार कहा था कि भाषाका आविष्कार मनुष्योंके विचारोंको व्यक्त करनेके लिए नहीं बल्कि छिपानेके लिए हुआ है। यह वाक्य इस समझौतेकी शर्तोंपर पूर्णतः लागू होता है। जहाँ एक पक्ष दूसरे पक्षसे बलात् कुछ स्वीकार कराये, दूसरे पक्षको अपने पशुबलसे कुचल डाले, वहाँ ऐसा कहना कि समझौता हुआ है, यह तो सत्य-नारायणके विरोधमें महापराध करनेके समान है।

तथापि महासंघ अर्थात् सुप्रीम कौंसिलने[3] ऐसी शर्तें निश्चित की हैं और उन्हें टर्कीके पास भेज दिया है। ऐसा करके उसने अपने लिए धारण किये गये विशेषणको झुठलाया है। जो कौंसिल न्यायको ताकपर रख दे, जो कौंसिल शक्तिके मदमें अन्धी होकर अन्यायको न्यायका जामा पहनाना चाहती है, उस कौंसिलका अपने आपको महान् (सुप्रीम) कहना जलेपर नमक छिड़कने जैसा है। कह सकते हैं कि टर्कीका

१. यह तारीख श्री मावलंकरकी पुस्तक संस्मरणोंमें दी गई है।
२. देखिए "पत्र : ग० वा० मावलंकरको", ११-५-१९२०।
३. मित्र-राष्ट्रोंकी।

समझौता ब्रिटिश मन्त्रियोंका वचन-भंग है। वचन दिया गया था कि जहाँ-जहाँ तुर्क लोग हैं, एशिया तथा यूरोपमें उन सब जगहोंपर टर्की साम्राज्यको अक्षुण्ण रखा जायेगा तथापि वहाँ टर्की साम्राज्यको नाममात्रकी सत्ता दी गई है। वस्तुतः देखा जाये तो सुप्रीम कौंसिलने सुलतानको [उनके] महलमें कैद कर रखा है। यह तो तुर्कोंको उनकी प्राचीन शान व शौकतका निरन्तर स्मरण कराके उन्हें सताते रहने जैसा हुआ। मुसलमानोंके पवित्र स्थानोंपर खलीफाका ही अधिकार रखे जानेकी उम्मीद थी। उसके बदले इन पवित्र स्थानों तथा जिस द्वीपसमूहको मुसलमान जज़ीरत उल-अरबके नामसे पुकारते हैं, उनकी हुकूमत टर्कीके हाथसे छीन ली गई है। इस सबमें न्यायकी अथवा सत्यकी गन्ध भी नहीं है तथापि उसे न्यायके रूपमें उद्घोषित करना मनुष्यके अभिमान, उद्धतता तथा पशुबलकी परिसीमा है। यदि ऐसी एकपक्षीय शर्तोंको न्यायपूर्ण माना जा सकता है तो दुनियामें बहुत सारी चीजोंको, जिन्हें हम अन्यायके रूपमें जानते और मानते आये हैं, न्यायपूर्ण मानना पड़ेगा।

तथापि माननीय वाइसराय महोदय मुसलमानोंको लक्ष्य करके कहते हैं[1] कि उन्हें शान्ति बनाये रखनी चाहिए। जो बच गया है वह आशाजनक है और इससे उन्हें निरुत्साहित होनेके बदले उत्साहित होना चाहिए। उन्हें इंग्लैंड और टर्कीके बीचकी सच्ची मित्रताको याद रखना चाहिए तथा अब इस नये समझौतेसे फिरसे जो मिलाप हुआ है उस नई मित्रताकी नींवपर नवीन और तेजस्वी टर्कीके निर्माणमें भाग लेना चाहिए। वाइसराय महोदयके ये उद्‌गार जलेपर नमक छिड़कनेके ही समान हैं। ऐसे कठिन समयमें [हमें] क्या करना चाहिए? मुसलमान शान्त होकर बैठे रहें तो गत चार वर्षोंसे वे जो हलचल कर रहे हैं वह झूठी साबित हो जाती है। और मुसलमानोंकी व्याकुलता हिन्दुओंकी व्याकुलता तथा हिन्दुओंकी व्याकुलता मुसलमानोंकी व्याकुलता है; यह तो पारस्परिक मित्रताका नियम है। फिर भी मन अशान्त होनेपर यदि हम क्रोधमें आ जायें, आवेशमें खूनखराबी करें तो बाजी हाथसे निकल जायेगी। किन्तु यदि हम खून खराबी न करके यह सिद्ध करें कि हममें आत्मबलिदान करनेकी शक्ति है तो यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि बाजी हाथसे निकल गई है।

इस समझौतेकी शर्तें तो लिखी ही जा चुकी हैं, यह बात सोचकर मुसलमानों तथा भारतीय जनताको डर जानेकी तनिक भी जरूरत नहीं है। यदि भारतके लोग अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे तो ये शर्तें निःसन्देह परिवर्तित हो जायेंगी। इसमें तनिक भी शंकित होनेका कारण नहीं है। परिवर्तन करवानेके लिए हिन्दुस्तानके पास एक ही वस्तु है। और वह है असहकार। असहकार करना हमारा कर्त्तव्य है क्योंकि यदि हम वैसा नहीं करेंगे तो अधर्ममें सहायक माने जायेंगे। ब्रिटिश साम्राज्य अपनी समूची रैयतके सहयोगपर ही टिका हुआ है। साम्राज्यके सारे काम उसके अधीनस्थ प्रजाके सहयोगसे ही होते हैं फिर चाहे यह सहयोग प्रजा द्वारा इच्छासे दिया गया हो, चाहे बलात् ले लिया गया हो। बलात्कारके आगे समर्पण न करें, यह सत्याग्रहका मुख्य

१. भारतकी मुसलमान जनतके नाम सन्देश जो १४ मई, १९२० को प्रकाशित हुआ था। देखिए परिशिष्ट २।

चिह्न है। इसलिए जहाँ प्रजामें सत्याग्रहका लेश भी हो वहाँ वह बलात्कारके आगे घुटने नहीं टेकती और सत्याग्रही जनतासे राज्याधिकारी शक्तिपूर्वक अर्थात् उसे प्रसन्न करके ही काम ले सकते हैं। इस खिलाफतके मामलेमें जनता छल अथवा बलके वशमें नहीं आ सकती है। इससे यदि मुसलमानोंकी भावनाओंको सचमुच आघात पहुँचा हो तो वे निःसन्देह साम्राज्यकी सहायता नहीं कर सकते, और यदि वे सहायता न दें तो हिन्दू ही कैसे सहायता दे सकते हैं?

थोड़े ही समयमें इसपर विचार करनेके लिए कि असहयोग कब और किस तरह करें, प्रमुख हिन्दुओं और मुसलमानोंकी सभा[1] होनेवाली है। यह सभा जिन निश्चयोंको प्रकाशित करेगी उनका यदि जनता स्वागत करेगी तो इस समय जो अशुभ हुआ दिखाई देता है उसमें से हम शुभको निकाल कर सकेंगे। इस बीच जनता अत्यन्त धीरजके साथ इसकी प्रतीक्षा करती रहे। इसमें प्रजाकी तपश्चर्या है।

लेकिन इस बड़े प्रश्नके अन्तर्गत अनेक छोटे-छोटे प्रश्न भी आते हैं। उनमें से कुछ-एक विचारणीय हैं। जैसे अनेक स्थानोंसे असहयोगके अनौचित्य अथवा उसमें निहित जोखिमके बारेमें मुझे बहुत सलाह दी गई है। इसपर कुछ परामर्शदाताओंको मैंने जो उत्तर दिये हैं वे 'नवजीवन'के पाठकोंके पढ़ने योग्य हैं ऐसा मानकर मैंने अपने एक अंग्रेज मित्रके पत्रके उत्तरमें जो पत्र लिखा था उसका सार नीचे देता हूँ।[2]

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २३–५–१९२०

२०४. खादीकी महिमा

पाठक यह जानकर खुश होंगे कि भारतके प्रत्येक कोनेसे खादीकी माँग आ रही है। खादीका जितना माल था वह सब बिक गया है और फिर भी खादीके लिए माँग तो आ ही रही है। किन्तु इससे किसीको यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अब खादी-की माँग नहीं करनी है। लोगोंमें अविश्वासकी भावना आ जानेसे खादी बननी बन्द हो गई थी; नहीं तो हमारी स्थिति ऐसी अच्छी है कि हम बहुत अधिक खादी तैयार कर सकते हैं, और यद्यपि मैं चाहता हूँ कि खादीकी खपत हो तथापि खादी मुझे इतनी ज्यादा प्यारी है कि मैं यह नहीं चाहता कि जो लोग खादीका उपयोग न करते हों वे सिर्फ खादीके इस संग्रहको कम करनेकी खातिर ही खादी मँगवा लें। हाथसे कते सूत-की खादीको मैं पवित्र मानता हूँ। इसलिए यह कोई फेंक देनेकी चीज नहीं है। और जहाँ जरूरत नहीं है अगर वहाँ खादीका इस्तेमाल किया जाये तो इससे देशको नुकसान होगा। खादीका सदुपयोग तो तभी माना जा सकता है कि जब हम, जहाँ-जहाँ सीने

१. १ और २ जून, १९२०को इलाहाबादमें हिन्दू और मुसलमानोंका एक सम्मेलन हुआ। लगभग ३०० प्रमुख व्यक्तियोंने इसमें भाग लिया जिनमें बेसेंट, मदनमोहन मालवीय, तेजबहादुर सप्रू और मोतीलाल नेहरू भी थे।

२. देखिए "कुछ प्रश्नोंका उत्तर", १९–५–१९२०।

वस्त्रका, विदेशी मालका अथवा देशी मिलके बने वस्त्रका उपयोग करते हों वहाँ-वहाँ खादीका उपयोग करने लगें। तभी हम भारतमें कपड़ेकी कमीको पूरा कर सकेंगे। इसलिए होना तो यह चाहिए कि जो लोग अनेक प्रकारके और जरूरतसे ज्यादा वस्त्र पहनते हैं वे अपनी इस जरूरतको घटा दें जिससे कपड़ेपर जो दबाव है वह कम हो जाये; इसके सिवा आवश्यक कपड़ोंमें भी जहाँतक बने वे खादीका ही उपयोग करें। इससे गरीबोंको कपड़ा मिल सकेगा और कपड़ोंपर खर्च किये जानेवाले पैसोंका अन्य अच्छा उपयोग हो सकेगा, क्योंकि वे पैसे दो-चार व्यक्तियोंको मिलनेके बजाय हजारोंमें वितरित होंगे। खादी तैयार करना और उसका उपयोग करना ही पर्याप्त नहीं है; हमें इसमें विवेकबुद्धिसे काम लेना चाहिए। हम खादी इस ढंगसे तैयार करें कि उसका लाभ अधिकसे-अधिक लोगोंको मिले। यह अर्थशास्त्रका सरल नियम है। इस नियम-का जहाँ उल्लंघन किया जाता है वहाँ परिणाम भुखमरीके अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता। इसलिए खादीकी माँगसे ही मैं प्रसन्न हो जाऊँ सो बात नहीं। खादी मँगानेवालों [के नाम-पते आदि] से ही मुझे पता चल जाता है कि वे खादीका सदु-पयोग करना चाहते हैं। और फिर खादीकी खपत, स्वदेशी-भावनाके प्रति स्नेहभावकी परिचायक है। यह हमारे लिए हर्षकी बात है कि खादीकी माँग बलोचिस्तान, नीलगिरी-पहाड़ों तथा अदनतक से आई है।

लेकिन कदाचित् इससे भी अधिक सन्तोष हमें श्रीमती सरलादेवी चौधरानी तथा अत्यन्त मधुर स्वभाववाले मौलाना हसरत मोहानीकी धर्मपत्नीके अनुभवोंसे मिल सकता है। सरलादेवीको बरेली खिलाफत सम्मेलनमें जानेका निमन्त्रण मिला था, वहाँ वे तीन तारीखको गई थीं। सत्याग्रह-सप्ताहमें उन्हें खादीकी साड़ी पहननेका सुअवसर आया और वे उस समय अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें सोचमें पड़ गई। उन्होंने अपने-आपसे विचार-विमर्श किया। वे अपने एक पत्रमें लिखती हैं।[1]

बरेली पहुँचने तथा अनुभव प्राप्त करनेके बाद उन्होंने लिखा कि।[2]

बरेलीकी प्रान्तीय परिषदमें उन्होंने स्वदेशीका प्रस्ताव रखा। उस समय हिन्दीमें भाषण देते हुए उन्होंने जो उद्गार प्रकट किये उनमें से कुछ एक वाक्य मैं यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ।[3]

उपर्युक्त भाषण देनेके पश्चात् चौधरानी और चौधरीजीकी तो लगभग तुरन्त कसौटी होनेवाली थी; गत बुधवारको उनके बड़े पुत्रकी शादी थी। वर-वधूके लिए कैसे कपड़े बनाए जाने चाहिए, यह प्रश्न उनके सामने उठ खड़ा हुआ। पंडित रामभजदत्त इस सम्बन्धमें पत्रमें लिखते हैं कि: "दोनोंके लिए जो वस्त्र बनाये गये हैं वे स्वदेशी रेशमके ही हैं। यद्यपि रेशमका भाव तनिक ज्यादा है तथापि चीन, जापान अथवा अन्य विदेशी कपड़ेका हमने कोई वस्त्र नहीं बनवाया है।"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३–५–१९२०

१, २ और ३. यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है। सम्बन्धित उद्धरणोंके लिए देखिए "स्वदेशीका उत्तरोत्तर विकास", १९–५–१९२०।

२०५. अहमदाबादके मिल-मालिक और मजदूर

अंग्रेजीमें कहावत है कि जिसका अन्त भला, उसका सब भला। इस कहावतके अनुसार मालिकों और मजदूरोंके बीच क्षण-भरके लिए भेद उत्पन्न हुआ तथा मजदूरोंने हड़ताल की; इस बातको ये लोग तथा आम जनता थोड़े समयमें भूल जायेगी। मजदूरोंके बारेमें यह बात निःशंक होकर कही जा सकती है कि उन्होंने [इस संघर्ष में] धैर्य, दृढ़ता, विवेक आदि गुणोंका अच्छी तरहसे विकास किया। उन्होंने दारू छोड़नेका भी सारा प्रयत्न किया।[1]

इस आन्दोलनमें दो बातें ऐसी थीं जिनके कारण शान्ति-भंग हो सकती थी। एक तो यह कि बारह मिलें चालू थीं, और दूसरा यह कि केवल थ्रोसल विभागके मजदूरोंने ही हड़ताल की थी। ये मजदूर बिना किसी अपराधके बेरोजगार हो गये थे, तथापि उन्होंने कोई दबाव नहीं डाला और सारे समय शान्ति बनी रही। इसके लिए मजदूरोंको जितनी बधाई दी जाये कम है।

लेकिन हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि इस शान्तिको बनाये रखनेमें मिल-मालिकोंका भी हाथ था। वे चाहते तो शान्ति भंग कर अथवा करवा सकते थे। यह निश्चित है कि यदि मालिक चाहते तो मजदूरोंके अडिग रहनेपर भी शान्ति बनाये रखना मुश्किल कर देते। इसके विपरीत मालिक बराबर यही विचार करते रहे कि किस तरह जल्दीसे-जल्दी इस हड़तालको खत्म किया जाये और इसीसे यह हड़ताल दस दिनोंके भीतर खत्म हो सकी। मुझे उम्मीद है कि मजदूर निःसंकोच कामपर जाने लगेंगे[2] तथा अपने मालिकोंको पूरी तरह सन्तुष्ट करेंगे। पंचोंने उनके वेतनमें जो वृद्धि करवाई है उसका वे सदुपयोग करें जिससे अनेक मालिकोंका तत्सम्बन्धी भय दूर हो जाये। एक ओर वेतन बढ़ा है तो दूसरी ओर काम करनेके घंटे कम हो गये हैं। मजदूरोंको इस बचे हुए समयका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करना चाहिए और उन्हें पहलेकी अपेक्षा ज्यादा मन लगाकर जितना काम वे बारह घंटोंमें कर सकते थे उतना काम दस घंटोंमें करके अपनी योग्यता सिद्ध करनी चाहिए।

मालिकोंसे मैं निवेदन करता हूँ कि वे मजदूरोंके प्रति अधिक उदारताका व्यवहार करके उन्हें अपना बना लेंगे। यदि इस तरह दोनों पक्ष एक ही दिशामें प्रगति करेंगे तो मतभेद अथवा कड़वाहट होनेका तनिक भी कारण नहीं रहेगा। इस हड़तालमें से जो एक सुन्दर तत्त्व पैदा हुआ वह पंच फैसलेका है। अबसे मजदूर बिलकुल हड़ताल नहीं करेंगे; जब-जब उनके और मालिकोंके बीच मतभेद होगा तब-तब वे और मालिक पंचोंकी ही मार्फत फैसला करवायेंगे। यह तत्त्व यदि जड़ पकड़ ले तो हमें किसी भी समय अहमदाबादकी मिलोंमें हड़ताल अथवा अशान्तिकी आशंका नहीं होगी।

१. गांधीजीने मजदूरोंमें नशाबन्दी-अभियान शुरू किया था और ११ मईतक एक सौ मजदूर इसपर हस्ताक्षर कर चुके थे।

२. २० मईतक ३१ मिलोंमेंसे १८ मिलोंमें काम शुरू हो गया था।

दोनों पक्षोंने इस आशयके प्रस्ताव पास किये हैं, लेकिन इन प्रस्तावोंकी कीमत तो प्रस्तावकर्त्ताओंके व्यवहारसे ही आँकी जायेगी। कोई कानून उन्हें ऐसा करनेके लिए विवश नहीं कर सकता। यह तो दोनों पक्षोंकी ईमानदारी तथा भलमनसीपर ही निर्भर करता है। इसलिए पंचोंपर निर्भर रहनेकी अपेक्षा मजदूर-पक्षको विनय तथा आदरपूर्ण व्यवहारपर आधारित रहना चाहिए और मालिक-पक्षको मजदूरोंके प्रति पितृ-भाव रखना चाहिए, जिससे हड़तालका अथवा पंच नियुक्त करनेका अवसर ही न आये। मजदूरोंको समझ लेना चाहिए कि जबतक उनकी माँगोंमें कुछ औचित्य है तभीतक उन्हें पूज्य अनसूयाबेन अथवा भाई शंकरलाल बैंकरकी सेवाएँ प्राप्त हो सकती हैं। वैसे इन दोनोंका अन्तिम लक्ष्य तो यही है कि मजदूर-पक्षको उनकी सेवाएँ लेनेका अवसर ही न आये। ऐसा शुभ परिणाम प्राप्त किया जा सके तो सबका ध्यान मजदूरोंकी आन्तरिक स्थितिको सुधारनेकी ओर दौड़े तथा उस ओर अधिक ध्यान दिया जा सके। भारतमें सभी दिशाओंमें इस समय ऐसे कार्य किये जानेकी बड़ी आवश्यकता है। जागृति आई है, उत्साह बढ़ा है, बलमें वृद्धि हुई है, लेकिन यदि इस शक्तिका विवेकपूर्वक सदुपयोग न किया गया तो जिस तरह जलप्रपात उपयोगके अभावमें नाहक इधर-उधर बह जाता है उसी तरह यह शक्ति भी बिखर जायेगी। और कई बार जिस तरह जलप्रपात रास्ता बदलनेपर नुकसानका कारण बन जाता है उसी तरह यह शक्ति भी हानिकारक हो जा सकती है। मजदूरोंको अपनी आन्तरिक स्थिति सुधारनेका प्रयत्न करना चाहिए, यह बात कहनेकी कोई जरूरत नहीं है, बल्कि मुझे उम्मीद है कि इसमें मालिक-वर्ग पूरी दिलचस्पी लेगा और मजदूरोंकी मदद करेगा। उसमें उनका अपना स्वार्थ भी छिपा हुआ है। जगत्का यह अनुभव है कि जहाँ स्वार्थ और परमार्थ साथ-साथ चलते हैं वहाँ सुन्दरसे-सुन्दर परिणामोंकी उपलब्धि होती है, भगवान् करे कि मिल-मालिकों और मजदूरोंको भी ऐसा ही अनुभव हो।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २३-५-१९२०

२०६. बरातें

इस सम्बन्धमें एक विदुषी बहनने मुझे पत्र लिखा है। उसके निम्नलिखित भागको महत्त्वपूर्ण समझ मैं 'नवजीवन' के पाठकोंके सम्मुख पेश कर रहा हूँ।[1]

पत्रको यहाँ उद्धृत करनेका मेरा उद्देश्य यह है कि जिन विषयपर मैंने चर्चा करनेकी हिम्मत की उन विषयपर लोग विचार करने लगें और उनमें से कुछ उनपर अमल भी करें। ऐसे लोकोपयोगी सुधारोंके सम्बन्धमें हम सिर्फ अच्छे विचार रखकर ही सन्तुष्ट नहीं रह सकते। बल्कि जो विचार हानिकारक लगें उन्हें तुरन्त निकाल डालनेकी हमें आदत डालनी चाहिए। बड़ौदासे मेरे पास अनेक व्यक्ति आए।

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। गांधीजीने विवाहके रिवाजोंको लेकर जो आलोचना की थी पत्र भेजनेवाली महिलाने उसका समर्थन किया था; देखिए "तीन प्रसंग", ९-५-१९२०।

पाटीदारोंमें[1] यह वर्ष विवाहोंका वर्ष था। इनमें बाल-विवाहकी कुप्रथा है, और गायकवाड़ सरकारने इसपर प्रतिबन्ध लगा रखा है। ये लोग उस प्रतिबन्धको उठा लिए जानेकी माँग लेकर आए थे। जब मैंने उनसे यह कहा कि अगर मेरे हाथमें गायकवाड़ सरकारकी सत्ता हो तो इन सुकुमार बालक-बालिकाओंका विवाह करनेवालोंके विरुद्ध मैं ऐसा सत्याग्रह करूँ कि वे गायकवाड़ राज्यमें रह ही न पायें, तब वे मेरे विनोदके मर्मको समझ गये और उन्होंने उस दिशामें मेरी मदद लेनेका विचार तो छोड़ ही दिया; वे इस बातपर भी विचार-विमर्श करने लगे कि जिन परिवारोंमें बाल-विवाह प्रचलित हैं, उससे उन्हें कैसे विरत किया जाये? मैंने उनसे कहा कि दूसरी जातियोंमें प्रत्येक वर्ष विवाहके मुहूर्त आ सकते हैं और पाटीदारोंके लिए ही नहीं आ सकते, शास्त्र ऐसा उलटा नहीं हो सकता। ऐसे विषयके सम्बन्धमें सलाहकी भी आवश्यकता नहीं होती। जिसकी इच्छा हो वह अपनी लड़कीके विवाहको रोक सकता है और जिस तरह दूसरोंके लिए प्रत्येक वर्ष विवाह करनेकी छूट होती है, ठीक वही बात उन्हें भी समझ लेनी चाहिए। तब उन्होंने कहा कि यदि हम इस समय अपनी बच्चीको अविवाहित रखें तो हमें योग्य वर नहीं मिल सकता। इस तरह कुछ रिवाजोंके खराब होनेके बावजूद उनका विरोध करना कठिन हो जाता है। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि यदि एक भी व्यक्ति ऐसे दुष्ट रिवाजोंका विरोध करनेके लिए आगे आ जाये तो उसे और साथी मिले बिना नहीं रह सकते तथा मैंने कुछ पाटीदारोंका जिन्होंने अपनी बच्चीको बड़ी होने दिया है, दृष्टान्त पेश किया और अन्तमें कहा कि जिस व्यक्तिको अमुक वस्तुके प्रति विश्वास हो गया है वह व्यक्ति किसी भी जोखिमको उठा सकता है। लड़कीके सम्बन्धमें बड़ेसे-बड़ा खतरा तो यही है कि बड़ी उम्रकी होनेके बावजूद वह अविवाहित रहेगी। इसमें तो मुझे कोई मुश्किल दिखाई नहीं देती। जिस कन्याने विवेकपूर्ण शिक्षा प्राप्त की है उसे संयमका पालन करनेमें कोई मुश्किल नहीं होती, ऐसा मैंने देखा है। मैंने यह दृष्टान्त इन भाइयोंके सामने पेश किया। वे विदा हो गए। अन्तमें उन्होंने क्या किया, इसकी मुझे खबर नहीं है। लेकिन इस उदाहरणसे हमें पता चलता है कि [उपर्युक्त] रिवाजोंमें कितना बल है। फिर भी जबतक हम उस बलका प्रतिरोध नहीं करते तबतक हम जनताका हनन करनेवाले इन दुष्ट रिवाजोंको दूर नहीं कर पायेंगे।

लेकिन मैं तो बरातोंके सम्बन्धमें बात करते-करते अनमेल विवाहके सम्बन्धमें बातचीत करने लगा। बालिकाओंको बचानेके लिए पाटीदारोंके सामने जितनी मुश्किलें आती हैं उतनी सामान्य व्यक्तिको झूठे आडम्बरसे युक्त बरातोंसे मुक्ति पानेमें तो नहीं आ सकतीं। किसीकी भी राह देखे बिना जिन्हें बरातोंसे विरक्ति होती हो, वे लोग यदि स्वयं ही सुधार कर डालें तो हम इस तथा इस तरहके अनेक प्राणघातक प्रपंचोंसे अल्प प्रयास करनेपर छूट जायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३–५–१९२०

१. गुजरातकी एक हिन्दू किसान जाति। वे कुछ शुभ वर्षोंमें ही शादी-विवाह करते हैं।

२०७. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

मैं देखता हूँ कि कितने ही लोगोंने[1] शान्तिकी शर्तोंके परिणामस्वरूप अवैतनिक ओहदों और खितावोंको अपने उत्तरदायित्वपर वापस करना आरम्भ कर दिया है। मेरे मतानुसार यह कदम उतावलीसे भरा हुआ है। असहकारका गम्भीर कदम उठानेसे पहले इन शर्तोंके सम्बन्धमें पुनर्विचार करनेके लिए आवेदन-पत्र देने तथा भारतीय जनताकी भावनाओंको अभिव्यक्ति प्रदान करनेकी खास जरूरत है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जो ऐसा क़दम उठाना चाहते हैं वे केन्द्रीय संस्थासे[2] सूचना प्राप्त किए बिना अपनी ओरसे कोई कदम न उठाये।

[गुजरातीसे]

गुजराती, २३–५–१९२०

२०८. भाषण : अहमदाबादमें[3]

२३ मई, १९२०

श्री मंगलदास सेठ, बहनो और भाइयो,

आज हम सब यहाँ इकट्ठे हुए हैं, और इसका कारण यह है कि हम जिस हड़तालमें उलझे हुए थे उससे अब मुक्त हो गये हैं। इसके अतिरिक्त सेठों तथा मजदूरोंके बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। आजके कार्यक्रमका आरम्भ हमने दो भजनोंसे किया है। मुझे उम्मीद है कि इन भजनोंपर प्रत्येक भाई और बहनने विचार किया होगा, न किया हो तो मैं इनकी ओर सबका ध्यान खींचना चाहूँगा। इन भजनोंका सुर निस्सन्देह मधुर है, लेकिन इस ओर मैं आपका ध्यान नहीं खींचना चाहता। इनके [शब्दोंके] पीछे जो मिठास है, उनमें जो अर्थ समाया हुआ है, उसीकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यदि हम दोनों भजनोंपर विचार करेंगे, तो देखेंगे कि जीव तथा शिव, मानवमात्र—पामर स्त्री और पुरुष—तथा ईश्वर, इन दोनोंमें भारी अन्तर है। हम एक भी वस्तु ईश्वरेच्छाके बिना नहीं कर सकते। ईश्वर एक ऐसा परम महान् तत्त्व है कि हमें उसके अधीन होकर ही अपना व्यवहार करना पड़ता है; उसके सामने हमारा सत्याग्रह अथवा दुराग्रह कुछ नहीं चलता; वह

१. उदाहरणस्वरूप श्री याकूब हसनने २० मई, १९२० में मद्रास विधान परिषद्की सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया था।

२. केन्द्रीय खिलाफत समिति।

३. बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्सकी रिपोर्टके अनुसार यह भाषण २३ मई, १९२० को मिल-मालिकों और मजदूरोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभामें दिया गया था।

सर्वव्यापी है, सर्वज्ञ है, सब जानता है। इसीसे भजनमें कहा गया है कि : "हे ईश्वर! तू कितना महान् है और मैं कितना पामर तथा मूर्ख! मेरे जैसे पामरका अहंकार क्या, अभिमान क्या?" हमारा एक ही कर्त्तव्य हो सकता है, प्रभुका नाम लेना। सोते, बैठते, खाते, प्रत्येक क्रिया करते हुए निरन्तर ईश-भजन करना। हमारे शास्त्रों और भजनोंमें यही लिखा है। सब व्यक्तियोंका अनुभव भी यही कहता है। इसीसे हमने आजकी महान् सभाका कार्यक्रम ईश्वरकी प्रार्थनासे आरम्भ किया है।

यहाँ उपस्थित भाइयों और बहनोंसे मैं कहूँगा कि यदि आप संसारमें अपना आना सार्थक करके ही यहाँसे जाना चाहते हों तो आप अपना प्रत्येक कार्य ईश्वरको साक्षी मानकर करें। प्रत्येक काम करनेसे पहले आप अपनेसे पूछें कि यह कार्य ईश्वरको पसन्द आने योग्य है या नहीं। यदि उसका उत्तर आपको 'न' में मिले तो आप उस कार्यका त्याग करें।

मजदूरोंका क्या कर्त्तव्य है, इस विषयमें बात करते हुए मैंने उनके कर्त्तव्यका निरूपण इस तरहसे किया था। यदि मजदूर अपनी स्थितिमें सुधार करना चाहते हैं, अपने मालिकका स्नेह सम्पादन करना चाहते हैं, तो उन्हें ईमानदार बनना चाहिए, दुर्व्यसनोंको त्याग देना चाहिए, उद्यमी अर्थात् परिश्रमी बनना चाहिए, कार्य-कुशल बनना चाहिए तथा विवेक-बुद्धिसे काम लेना चाहिए, अर्थात् उन्हें [उचित] आदेशका सम्मान करना चाहिए, अदबसे बोलना चाहिए। अदब रखना अर्थात् केवल मालिकके साथ अदबका व्यवहार करना ही नहीं है; उन्हें हर एकके साथ अदबसे बोलना चाहिए। मालिकके आगे हम झुकें, उसे सलाम करें और उसीके द्वारा नियुक्त अपनेसे उच्च अधिकारीका हम अपमान करें, यह विनय नहीं कहलायेगी। एक मिल-मालिकने मुझसे कहा था कि हमारी मिलमें कताई खातेके मजदूर ऐसा हठ किये बैठे हैं कि वे अमुक हेड जॉबरको निकाल बाहर करनेपर ही काम करेंगे। ऐसी हठके कारण कामपर न जानेवाले मजदूरोंसे मैं पूछना चाहता हूँ कि जब आपने अपने मनमें ऐसे विचारको स्थान दिया था तब क्या आपने ईश्वरको साक्षी माना था?

अब तो हमने यह निश्चय कर लिया है कि आगे हम कभी, किसी भी कारणसे हड़ताल नहीं करेंगे। उसके बदले अब हमारे हाथ एक दूसरा हथियार, जो हड़तालसे भी बहुत सुन्दर है, लग गया है। यदि हम किसी कारणसे असन्तुष्ट हों और मालिकके साथ विवेकपूर्ण ढंगसे बातचीत करनेके बाद भी यदि हमें राहत न मिले, हमें सन्तोष न हो तब हमें संघके[1] पास जाना चाहिए, और वहाँ भी तसल्ली न हो तब हमें राहत प्राप्त करनेके लिए पंचोंके पास जाना चाहिए। यह पंच अभी आपके सामने बैठे हैं, मालिकोंकी ओरसे सेठ मंगलदासको और मजदूरोंकी ओरसे, पूज्य अनसूयाबेन तथा भाई शंकरलालकी इच्छा एवं मेरी स्वीकृतिसे, मुझे पंच नियुक्त किया गया है। एक वर्षकी अवधिमें यदि कोई विवाद उठ खड़ा हो तो इन पंचोंको उसके कारणोंकी जाँच करनी होगी तथा अपना निर्णय देना होगा। ये पंच जबतक हैं तबतक हड़ताल कदापि नहीं की जा सकती। कुछ स्थानोंसे अभीतक यह शिकायत की जा रही है

१. अनुमानतः मिल-मालिक संघ।

कि कितनी ही मिलोंके मजदूर अभीतक कामपर नहीं गये हैं।[1] जब मैंने यह बात सुनी तब मैंने लज्जाका अनुभव किया और सोचा कि इस सभाका क्या उद्देश्य रह जाता है? लेकिन अधिकांश मजदूरोंने कामपर जाना आरम्भ कर दिया है और इन्हीं मजदूरोंकी खातिर मैं आज यहाँ आया हूँ। जो कामपर जाने लगे हैं उन मजदूरोंसे मैं अनुरोध करता हूँ कि जो मजदूर कामपर नहीं गये हैं वे उन्हें कामपर जानेके लिए रजामन्द करें। लेकिन [इसके लिए] उन्हें किसीपर बलात्कार नहीं करना है, गाली-गलौज अथवा तू-तड़ाक नहीं करना है, लाठी नहीं चलानी है। सिर्फ आपको उनसे प्रार्थना करनी चाहिए, उनके पाँव पड़ना चाहिए, उनके सामने अपनी पगड़ी उतारनी चाहिए, उनसे दलील करनी चाहिए तथा कहना चाहिए कि यह आपका धर्म है। जो संघके सदस्य हों, ऐसे व्यक्ति यदि तोड़फोड़की कार्रवाई करें और मिलमें [कामपर] न जायें, तो उन्हें संघमें रहनेका कोई अधिकार नहीं है। इसलिए मेरा सब भाइयोंसे निवेदन है कि जो कामपर नहीं गये वे कलसे अवश्य कामपर जायें। उनके कामपर जानेसे ही यह भारी सभा सफल होगी।

मंगलदास सेठके समक्ष मैं मिल-मालिकोंसे कहता हूँ, प्रार्थना करता हूँ — मजदूरोंके प्रतिनिधिके रूपमें मैं उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना ही कर सकता हूँ — कि आप मजदूरोंके साथ उदारतासे व्यवहार करें, उनपर स्नेह दृष्टि रखें। मैंने तो मजदूरोंकी ओरसे स्वीकार कर लिया कि मजदूर यदि अनुचित व्यवहार करें, आपका कोई अपराध करें तो आप इन्हें निकाल दें। उसमें मैं बीचमें नहीं पड़ूँगा। लेकिन आपसे मेरी इतनी प्रार्थना है कि आप व्यक्तियोंपर ममताकी दृष्टि रखेंगे; उनमें कोई तनिक बड़ा हो, नेताके समान हो तो उसे आप निकाल नहीं देंगे। सेठ मंगलदासने मुझसे कहा है कि उन्हें मजदूरोंका एक भी पैसा नहीं चाहिए। मजदूरोंके पैसे लेकर हमें उनकी आह नहीं लेनी है। [हम तो] उन्हें धन देकर ही खुश होंगे, उनका धन लेकर नहीं। ऐसा उन्होंने मुझसे अनेक बार कहा है। मजदूरों और मालिकोंके बीच अब वेतनको लेकर कोई झगड़ा न होगा। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि अगर मजदूर सिरपर चढ़कर किसी चीजकी माँग करें, तो वह कैसे दी जा सकती है? वे यदि भाईचारेकी भावनासे हमारे पास आयें तो उन्हें रुपया दिया जा सकता है। मैंने उत्तर दिया कि कोई यदि जोर-जबरदस्ती आपसे कुछ माँगने आये तो उसे अवश्य ही कुछ न दें। विनयशील होनेपर भी मजदूर अपने अधिकारोंसे अधिककी माँग नहीं कर सकते एवं यदि मजदूरोंकी ओरसे विनय और न्यायसे काम लिया जाये तथा मालिकोंकी ओरसे उदारता और न्यायका बरताव किया जाये तो आपको पूज्य अनसूयाबेन, भाई शंकरलाल तथा मेरी भी कोई जरूरत नहीं पड़ेगी।

आज संघमें सब मिलोंके मालिक बैठकर अन्य विभागोंके दरोंकी जाँच कर रहे थे। सभी मिलोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे। उन्होंने दरें निर्धारित करनेमें उदारतासे काम लिया है। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा पंच नियुक्त किये जानेके फलस्वरूप हुआ है। उस हालतमें तो यही कहा जा सकता था कि सिर्फ न्याय ही मिला है। किन्तु

१. उनकी माँग थी कि सम्बन्धित मिल-मालिकको शर्तोंपर लिखित स्वीकृति देनी चाहिए।

जो हुआ है उसका मूल्य पंचके निर्णयकी अपेक्षा कहीं अधिक है। मालिकोंको लगा कि कताई-विभागके मजदूरोंके वेतनमें यदि वृद्धि करें तो अन्य विभागोंके मजदूरोंने क्या बिगाड़ा है? वे इसकी माँग करें और तब हम उन्हें दें, इसकी अपेक्षा पहलेसे ही देनेमें बड़प्पन है, उदारता है। ये दरें पंचोंने निर्धारित नहीं कीं; पंचोंने जिन दरोंकी सिफारिश की थी, उनसे ये दरें अधिक हैं और इन्हें मिल-मालिकोंने अपनी खुशीसे निश्चित किया है। इन दरोंको हमें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए, इतना ही नहीं बल्कि इनके लिए उन्हें धन्यवाद दिया जाना चाहिए।

ब्लोरूम, कार्डरूम, टोकरियाँ ढोनेवाले, ठेलेवाले, तेलवाला, साइजर्स तथा फोल्डर्स आदि विभागोंके मजदूरोंके वेतनोंमें यह स्थायी वृद्धि नहीं की गई है; उनको भाई अम्बालालके[1] हस्ताक्षरयुक्त योजनाके अन्तर्गत की गई वृद्धि यथावत् दी जाती रहेगी, अर्थात् उनके वेतनमें २५ प्रतिशत वृद्धि की गई है। प्रत्येकके कामके घंटे तो एकसे अर्थात् प्रतिदिन १० घंटे ही रहेंगे।

फ्रेमर्सके वेतनमें जो ३५ प्रतिशत वृद्धि की गई थी उसे बढ़ाकर ४० प्रतिशत कर दिया गया है और उन्हें कताई-विभागके मजदूरोंके समान ही बोनस भी दिया जायेगा। इस सम्बन्धमें फ्रेमर्स रत्ती-भर भी शिकायत नहीं कर सकते। मिल-मालिकोंने उनके मामलेमें उदारतासे काम लिया है।

बुनकरों और वार्पर्सके लिए २० के बदले २५ प्रतिशत लिखा था, उसे बढ़ाकर ३३⅓ प्रतिशत कर दिया गया है।

वाइन्डर्सको वर्तमान दरोंपर ४० प्रतिशत अधिक मिलेगा जिसका अर्थ हुआ कि उन्हें एक रुपयेसे भी अधिक मिलेगा।

सब दरें अच्छी हैं। यह तो सभी कोई स्वीकार करेंगे कि आज जो दरें हैं वे उनकी अपेक्षा अधिक हैं। प्रत्येकको २५ प्रतिशतसे ४० प्रतिशततक वृद्धि मिली है। मुझे उम्मीद है कि सभी इन दरोंका स्वागत करेंगे, ईश्वरका आभार मानेंगे और मालिकोंके प्रति कृतज्ञताका अनुभव करेंगे।

मैंने सुना है कि करघा-विभागके मजदूर भाइयोंके मनमें अभी असन्तोष रह गया है। इस विषयपर मैं गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं कर पाया हूँ, मुझे समय नहीं मिला। मिल-मालिकोंने इस विषयपर खूब विचार किया है और उनका यह खयाल है कि हड़तालके दिनोंका वेतन मजदूरोंको नहीं माँगना चाहिए।

करघा-विभागके मजदूरोंके असन्तोषकी बातको मैंने मिल-मालिकोंके सामने रखा है। मालिकोंका कहना है कि हमने मजदूरोंके वेतनमें स्वयमेव इतनी वृद्धि की है, और जब हम उसे हमेशाके लिए निर्धारित करना चाहते हैं उस समय करघा-विभागके मजदूरोंको जिद नहीं करनी चाहिए। मैं इन मजदूरोंसे अनुरोध करता हूँ, यद्यपि मुझे यह नहीं मालूम कि आप दोनोंमें से कौन सही है तथापि मिल-मालिकोंने जब इतना किया है तब आप क्या अब उनकी बात नहीं मान सकते? यदि मिल-मालिक आपकी परीक्षा लेनेके लिए ऐसा कर रहे हों तो भी आपके लिए यही उचित है कि..आप

१. अम्बालाल साराभाई।

उनकी बात मानें। जैसा कि आपने मुझे बताया था कि मिलके मैनेजरने हाजिरी लेते समय आपसे कहा था कि आपको [हड़तालके दिनोंका भी] वेतन मिलेगा पर तो भी मेरी रायमें हम इस बारेमें आग्रह नहीं रख सकते।

मेरा यह कहना भी है कि अगरचे इस सम्बन्धमें भी हम न्याय किये जानेकी माँग कर सकते हैं, लेकिन इसका रास्ता हड़ताल नहीं है। कुछ-एक मजदूर अभी कामपर नहीं गये हैं, यह बात उनको शोभा नहीं देती। हमारे बीच एक महत्त्वपूर्ण निर्णय हो चुका है कि हम कभी हड़ताल नहीं करेंगे। कोई विवाद हुआ तो पहले उसे संघके पास ले जायेंगे, वहाँ काम न बना तो फिर उसे पंचोंके सामने रखेंगे। मनमानी करके क्या अब हम कामपर न जानेकी बात कह सकते हैं?

जो अभी हड़तालपर हों उन्हें कलसे कामपर चले जाना चाहिए। आप अपने मामलेको मालिकोंके सम्मुख रखें, यदि आपको ऐसा लगे कि मालिकोंने आपके साथ अन्याय किया है तो आप पंच-फैसलेकी माँग करें लेकिन आप एक घंटेके लिए भी काम बन्द नहीं कर सकते। मुझे उम्मीद है कि आप इस सिद्धान्तका पालन करेंगे।

मालिक लोग तो हड़ताल नहीं कर सकते। अगर करनी ही पड़े तो हड़ताल मजदूरोंको ही करनी पड़ती है। इसलिए आपके साथ बेकार अन्याय न हो, आपसी सम्बन्ध मधुर बने रहें, इस बातको ध्यानमें रखकर ही मिल-मालिकोंने भविष्यमें भी पंच-फैसलेकी बातको स्वीकार किया है। लेकिन इस बातको यदि केवल वे लोग ही स्वीकार करें तो फिर मजदूरोंका इसमें क्या योगदान हुआ? मैं करघा-विभागके मजदूरोंसे अनुरोध करता हूँ कि आपकी जो माँगें हैं आप उन्हें विनयपूर्वक मिल-मालिकोंके सम्मुख रखें और कामपर जायें। यदि आप ऐसा करेंगे तो मालिकोंको लगेगा कि जब मजदूर लोग ऐसी भलमनसाहत दिखा रहे हैं तो हमें देना ही चाहिए। हम जोर-जबरदस्तीसे काम नहीं ले सकते। जो लोग यह सोचते हैं कि दबाव डालकर वेतन लिया जा सकता है, वे भारी भूल करते हैं। मैं मालिकोंके समक्ष यह कहना चाहता हूँ कि यदि मैं मजदूरोंकी ओरसे अन्याय होता हुआ देखूँगा तो मैं मजदूरोंकी बिलकुल मदद नहीं करूँगा, आप लोगोंकी ही मदद करूँगा। मेरा अपना धर्म तो यह है कि जहाँ-जहाँ मुझे अन्याय नजर आये वहाँ-वहाँ उसका विरोध करूँ। यदि मजदूर मालिकोंके साथ अन्याय करेंगे तो जिस तरह मैं सरकारका विरोध कर सकता हूँ, मिल-मालिकोंका विरोध कर सकता हूँ, उसी तरह मजदूरोंका भी विरोध कर सकता हूँ।

आज अगर मैं आपकी घूस स्वीकार करूँ — आप मेरी प्रशंसा करते हैं, फूलमालाएँ चढ़ाते हैं, यह भी एक तरहकी घूस ही है — और भ्रममें पड़कर गर्वसे फूल जाऊँ तो कल मैं सेठ मंगलदाससे भी घूस लेना सीख सकता हूँ। मेरा महत्त्व तभी तक है जबतक मैं न्याय दिलवा सकता हूँ। यदि आप अन्याय करेंगे तो मुझे आपका विरोध करके न्याय दिलवाना होगा। मैं इस संसारमें किसीका विरोधी नहीं हूँ। मैं न तो कभी मालिकोंका विरोध करूँगा और न मजदूरोंका। अलबत्ता इन दोनोंके बीच होनेवाले अन्यायका मैं अवश्य विरोध करूँगा। आपने परमात्माका नाम लेकर जो इस शुभ कार्यको आरम्भ किया है सो भी न्यायकी खातिर ही किया है।

मैं एकबार पुनः मिल-मालिकोंके नेता, संघके अध्यक्ष और वैष्णव धर्मके एक प्रतिष्ठित व्यक्तिके रूपमें सेठ मंगलदाससे यह कहना चाहता हूँ कि आप यदि यह चाहते हैं कि मजदूर आपकी आज्ञाका पूरा-पूरा पालन करें तो आप हमेशा ईश्वरको साक्षी मानकर न्याय कीजियेगा। उन्हें स्नेह-दृष्टिसे देखिए तथा अपने बच्चोंपर जैसा प्रेमभाव रखते हैं वैसा ही प्रेमभाव उनपर भी रखिएगा। आप ऐसा करेंगे तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वे कभी विश्वासघात नहीं करेंगे।

इस वृक्षके नीचे बैठकर हमने अनेक कार्य किये हैं।[1] इसी वृक्षके नीचे ईश्वरको साक्षी मानकर हमने कार्य शुरू किया है, उस कामको अब आप पूरा करना। इसी वृक्षके नीचे मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हमारा काम समाप्त नहीं हो गया है, अभी तो उसकी शुरुआत ही हुई है। जबतक आपने मालिकोंसे प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं कर लिया तबतक आपका काम पूरा नहीं हुआ, न मेरा और न पूज्य [अनसूया] बेन तथा भाई शंकरलालका काम ही पूरा हुआ है। आपने जो पुष्प-मालाएँ हमें पहनाई हैं उनकी कोई कीमत नहीं, आपके कामकी कीमत है।

आजके कार्यक्रमके प्रारम्भमें हमने जिस प्रभुका स्मरण किया है उसी प्रभुका स्मरण करके मैं अपना भाषण समाप्त करूँगा। कताई-विभागके मजदूरोंने कुछ पैसा इकट्ठा किया है और वह किसी भी अच्छे काममें लगानेके उद्देश्यसे मुझे सौंपा गया है। पैसा तो मैं सब जगहसे लेता रहा हूँ; अच्छे कार्योंके लिए प्रायः मैं सेठ मंगलदास-जैसे व्यक्तियोंके सम्मुख अपना हाथ फैलाता हूँ और आगे भी फैलाऊँगा, लेकिन आप इतनी भावुकतासे जो पैसा दे रहे हैं, उसे मैं कदापि अस्वीकार नहीं कर सकता। आपका पैसा मैं पूज्य बहनको देनेवाला हूँ, उसका वह मजदूरोंकी उन्नतिके निमित्त उपयोग करेंगी। मुख्यतया उसका उपयोग मजदूरोंको दारूके व्यसनसे छुड़ानेके लिए किया जायेगा, उसका दूसरा उपयोग मजदूरोंके बच्चोंको पढ़ाने और उन्हें दूध न मिलता हो तो दूध देनेमें किया जायेगा। आप कितना पैसा लाये हैं, इसकी मुझे खबर नहीं है, लेकिन आपके प्रेमभावके चिह्नस्वरूप मैं उसे स्वीकार करता हूँ और अपने प्रेमकी निशानीके रूपमें मैंने जैसा कहा है वैसा इसका उपयोग करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०–५–१९२०

१. साबरमती नदीके किनारे; फरवरी-मार्च १९१८को तालाबन्दीके दिनोंमें प्रतिदिन यहाँ मजदूरोंकी सभाएँ होती थी। देखिए खण्ड १४, पृष्ठ २०४।

२०९. पत्र : देवदास गांधीको

मंगलवार [२५ मई, १९२०][1]

चि० देवदास,

तुम्हारा कलकत्तासे लिखा एक पत्र मिला है। तुम्हें तो मैंने बहुत सारे पत्र लिखे हैं। वे तुम्हें मिले क्यों नहीं?

मैं भाई शंकरलाल और जुगतरामके[2] साथ वहाँ शनिवारको पहुँचूंगा, जबलपुर मेलसे आऊँगा। वह कब पहुँचती है, सो नहीं देखा। लेकिन ऐसा खयाल है कि वह सवेरे-सवेरे ही पहुँचती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७१७६)की फोटो-नकलसे।

२१०. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

आश्रम
२५ मई, १९२०

तुमने तो मुझसे बड़ा गहरा सवाल पूछा है। मैंने बराबर यह स्वीकार किया है कि विवाह और जाति-प्रथाके सवालपर मेरे और तुम्हारे बीच बुनियादी मतभेद हैं। मैं शादीको हर व्यक्तिके लिए आवश्यक नहीं मानता। मानव-जीवनकी सर्वोच्च कल्पना-की दृष्टिसे विवाहका दर्जा ब्रह्मचर्यसे नीचे है, लेकिन अधिकांश लोगोंके मामलोंमें मैं विवाहको सर्वथा आवश्यक मानता हूँ। साथ ही मैं विवाहमें स्त्री और पुरुष-के चुनावपर कुछ अनुशासनिक बन्धनोंको भी लागू करना चाहूँगा, और जैसे किसी भाईका अपनी बहनसे विवाह करना अनुचित माना जायेगा वैसे ही किसी पुरुष या स्त्रीका अपने समुदाय, जिसे हम जाति कह सकते हैं, से बाहर विवाह करना मैं अनु-चित ठहराऊँगा। इस तरह मैं ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दूंगा कि कोई व्यक्ति विवाहके सम्बन्धमें अपने समुदाय या जातिसे बाहरके लोगोंके विषयमें सोचे ही नहीं। और अगर किसी स्त्री या पुरुषको उसके लिए निर्धारित क्षेत्रके भीतर कोई योग्य पात्र नहीं मिलता तो उसे ब्रह्मचर्यके जीवनमें ही सन्तोष मानना होगा। दूसरे शब्दोंमें, मैं इस मामलेमें

१. गांधीजी २९ मई, १९२० को बनारस पहुँचे थे, उस समय देवदास बनारसमें थे।

२. जुगतराम दवे, लेखक और शिक्षाविद्; पिछड़ी हुई जातियोंकी सेवामें रत रचनात्मक कार्यकर्ता।

बेलगाम स्वेच्छाचारितामें विश्वास नहीं करता। अधिकांश विवाहोंके पीछे शारीरिक आकर्षणकी ही प्रेरणा रहती है। मैं इस आकर्षणके क्षेत्रको संकुचित कर देना चाहूँगा। तो इस प्रकार तुम देख सकते हो कि अगर कोई ब्राह्मण युवक-पत्नी प्राप्त करनेके लिए अपनी जातिसे बाहर जाये तो मैं इसे पसन्द नहीं करूँगा। यहाँ अस्पृश्यताका कोई सवाल नहीं उठता। मेरे विचारसे जाति-प्रथाका यदि ठीकसे नियमन किया जाये तो वह एक उपयोगी संस्था है। अस्पृश्यता ईश्वरके प्रति और मानवताके प्रति एक अपराध है। जाति-प्रथाको मैं शुद्ध बनाऊँगा, किन्तु अस्पृश्यताको मैं समाप्त ही कर दूँगा। अगर मणिलाल किसी अछूत लड़कीके प्रेममें पड़ जाये तो मैं उसके इस चुनावके सम्बन्धमें कोई आपत्ति नहीं करूँगा, लेकिन यह अवश्य मानूँगा कि वह मेरी शिक्षाको अपने जीवनमें उतार नहीं सका। इस मामलेमें मैं उसे अपनी जातिकी सीमाके भीतर ही रहनेको कहूँगा — सो कुछ इसलिए नहीं कि दूसरी जातियोंके प्रति अपने मनमें घृणा या अरुचिके भाववश वह ऐसा करे बल्कि इसलिए कि मैं चाहूँगा, वह संयम बरते। यही बात जाति-प्रथाके सम्बन्धमें भी लागू होती है। आश्रममें हम किसी प्रकारका जातीय बन्धन नहीं मानते, क्योंकि वहाँ हम एक नया प्रयोग कर रहे हैं, लेकिन मैं यह पसन्द नहीं करूँगा कि ब्राह्मण अपनी जातिकी सीमासे बाहर जाकर जहाँ-तहाँ, जिस-तिसके साथ खाता फिरे। इसी प्रकार दूसरी जातिके लोगोंके साथ न खानेकी बात मैं कोई . . .[1] की भावनासे नहीं, बल्कि अनुशासनकी भावनासे ही प्रेरित होकर कहता हूँ। आप जाति-प्रथाको, उसमें जो बुराइयाँ आ गई हैं, उनसे मुक्त कर दीजिए और फिर देखिए कि किस तरह वह हिन्दुत्वकी रक्षाका सुदृढ़ दुर्ग बन गई है, एक ऐसी संस्था बन गई है जिसकी जड़ें मानव-प्रकृतिकी गहराईमें जमी हुई हैं। अब खिलाफतके सवालको लें। मैं आर्मीनियाके बारेमें इसलिए चुप हूँ कि उसकी स्थितिकी मुझे कोई जानकारी नहीं है और मैं नहीं चाहता कि [टर्कीके] सुलतान या कोई अन्य ताकत उसके स्वतन्त्र अस्तित्वको समाप्त कर दे। वह जैसे अन्य किसी ताकतके[2] अधीन रहकर स्वशासनका उपभोग कर सकता है वैसे ही तुर्कोंके अधीन रहकर भी कर सकता है। मैंने बराबर कहा है कि सुलतानसे इस बातकी पूरी-पूरी गारंटी ले ली जाये कि आर्मीनियाके आन्तरिक प्रशासनमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा। इसी प्रकारकी गारंटी अरबके सम्बन्धमें भी ले ली जाये। शान्ति-संधिसे उत्पन्न स्थिति बिलकुल असह्य है।[3] सुलतानके लिए अरबवाले बहुत जबरदस्त पड़ते थे, इसलिए सुलतानके अधीन उन्हें कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त थी। लेकिन अब तो वे उसे भी खो बैठे हैं। और अब अगर हेजाजके राजा तथा अमीर फैजलका बस चला तो कुछ ही दिनोंमें अरब और मेसोपोटामियाको विदेशी लोग बिलकुल चूस लेंगे क्योंकि ये दोनों शासक ब्रिटिश अधिकारियोंके हाथोंके कठपुतले मात्र होंगे,

१. यहाँ कुछ शब्द पढ़े नहीं जा सके।

२. सन् १९२० में आर्मीनिया टर्की और रूसकी संयुक्त सेनाओंके कब्जेमें था।

३. टर्कीके साथ शान्ति-संधिका कागज पेरिसमें तुर्क प्रतिनिधियोंको ११ मई, १९२० को दिया गया; गांधीजीने १८ मई, १९२० को अखबारोंको दिये गये वक्तव्यमें इसके संशोधनकी माँग की।

और इन अधिकारियोंका एकमात्र उद्देश्य होगा ब्रिटिश पूंजीपतियोंके लिए इन देशोंसे अधिकसे-अधिक धन कमानेकी सुविधा जुटाना।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१९४) की फोटो-नकलसे।

२११. पागलपन

मेरे असहयोग-सम्बन्धी विचारोंका विवेचन करते हुए इलाहाबादके 'लीडर' ने मुझसे मेरे इस कथनका आशय बतानेको कहा है कि खिलाफत आन्दोलनसे निबटनेमें सरकारको "समझदारी और धीरजसे काम" लेना चाहिए। संयुक्त प्रान्तकी सरकारने मेरे सामने नासमझी और अधैर्यके कामका एक बड़ा अच्छा उदाहरण पेश किया है। उसका यह काम अगर पूरी तरह पागलपन नहीं है तो पागलपनके बराबर तो है ही। मेरा मतलब माननीय पंडित मोतीलाल नेहरूके सुपुत्र पंडित जवाहरलाल नेहरूके मसूरीसे निष्कासनसे है।

श्री जवाहरलाल नेहरूने पुलिस सुपरिन्टेंडेंटको जो शानदार पत्र लिखा है उससे उन्हें दिये गये आदेशके सम्बन्धमें सारे तथ्य जनताके सामने स्पष्ट हो जाते हैं। अगर किसी ऐसे सम्मानीय व्यक्तिके कामके लिए भी कोई साक्षी जरूरी हो तो इलाहाबादकी सारी जनता इस बातकी साक्षी भर सकती थी कि पंडित जवाहरलाल नेहरू अपनी माता, बहन और रुग्ण पत्नीके साथ मात्र स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारणोंसे मसूरी जा रहे थे। अधिकारियोंने उनसे पूछताछ की और उन्होंने उन्हें बिलकुल निश्छल भावसे स्पष्ट शब्दोंमें अपने मसूरी आनेका पूरा कारण बता दिया। उन्हें यह भी मालूम था कि उनका परिवार उनके साथ मसूरीमें मौजूद है। अब इतना सब हो जानेके बाद अधिकारियोंको चाहिए था कि वे श्री नेहरूकी बातोंका भरोसा करके आगे कोई कारंवाई न करते। स्मरणीय है कि श्री नेहरूने पुलिस सुपरिंटेंडेंटके नाम लिखे पत्रमें स्पष्ट लिख दिया था:

> अफगान शिष्टमण्डलसे[1] मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है और यह संयोग ही था कि हम सब एक ही होटलमें ठहरे। सच तो यह है कि उनके यहां रहनेसे मुझे कुछ असुविधा ही हुई है, क्योंकि जो कमरे उन्होंने इस समय ले रखे हैं में स्वयं उन्हें लेना चाहता था। हां, यह जरूर है कि हर पढ़े-लिखे और जागरूक आदमीकी तरह ही इस शिष्टमण्डलमें मेरी भी दिलचस्पी है। लेकिन उनसे प्रयासपूर्वक मिलनेका न पहले मेरा कोई इरादा था और न आज है। हम लोग पिछले सत्रह दिनोंसे यहां रह रहे हैं, लेकिन इस बीच मैंने कभी दूरसे भी इस शिष्टमण्डलके किसी सदस्यको नहीं देखा है। और जैसा कि आपने आज सुबह मुझे बताया, आप खुद यह बात जानते हैं।

१. जो मित्रतापूर्ण संधिके लिए मार्ग प्रशस्त करनेके उद्देश्यसे भारत आया था और अप्रैल १९२० में मसूरीमें था।

लेकिन अधिकारियोंके लिए इतना काफी नहीं था। वे अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठे थे। वे इस आशयका आश्वासन चाहते थे कि श्री नेहरू शिष्टमण्डलसे किसी प्रकारसे सम्पर्क नहीं स्थापित करेंगे; क्योंकि इसी पत्रमें आगे कहा गया है:

> लेकिन यद्यपि अफगान शिष्टमण्डलसे मिलने या उनसे किसी प्रकारसे सम्पर्क स्थापित करनेका मेरा कोई इरादा नहीं है, फिर भी मुझे यह चीज कतई पसन्द नहीं कि सरकारके कहनेसे मैं अपने-आपको किसी बातसे बाँध लूँ, भले ही यह कोई परेशान करनेवाली बात साबित न हो। दरअसल यहाँ सवाल सिद्धान्त या अन्तरात्माका है। मुझे भरोसा है कि आप मेरी स्थिति समझेंगे।

और सरकारने, जिसकी नुमाइन्दगी इस मामलेमें पुलिस सुपरिंटेंडेंट श्री ओक्स कर रहे थे, उनकी स्थितिको खूब समझा और यह पत्र पानेके दो दिन बाद उनके निष्कासनका आदेश जारी कर दिया। श्री नेहरू चाहते थे कि सरकारको सारे तथ्य मालूम हो जायें। अतः उसी पत्रमें उन्होंने लिखा:

> अगर सरकार मुझपर कोई आदेश जारी करना तय करती है तो फिल-हाल मैं उसका पालन करनेको तैयार हूँ। लेकिन अपने परिवारको बिना किसी सहारेके छोड़कर एकाएक यहाँसे चले जाना मेरे लिए बहुत असुविधाजनक होगा। मेरी पत्नीकी हालत ऐसी है कि उनकी देखभाल अत्यन्त सावधानीसे की जानी चाहिए और मेरी माँ चलने-फिरनेमें असमर्थ हैं तथा बिस्तरसे लगी हैं। अतः उन्हें इस तरह बेसहारा छोड़कर चले जानेमें बड़ी कठिनाई है। मेरे एकाएक चले जानेसे मेरे तथा मेरे पिताके सारे कार्यक्रम बिलकुल उलट-पलट जायेंगे और इसके कारण हम बड़ी असुविधा और चिन्तामें पड़ जायेंगे। लेकिन मैं समझता हूँ कि राज-काजके ऊँचे मामलोंमें किसीकी व्यक्तिगत सुविधाओंका खयाल शायद नहीं किया जा सकता।

किसी सुसंचालित राज्यमें व्यक्तिगत सुविधाओंको भी उसी तरह "राज-काजका ऊँचा मामला" माना जाता है जिस तरह किसी अन्य बातको। हाँ, जहाँ समूहके लिए व्यक्तिके हितोंको बलिदान कर देना स्पष्ट रूपसे जरूरी लगे, वहाँ बात और है। मगर इस मामलेमें, जहाँतक लोगोंको मालूम है, ऐसी कोई बात नहीं थी जिसके कारण बीमार पत्नीसे उसके पतिको और वृद्धा माँसे उसके एकमात्र पुत्र और संर-क्षकको एक ऐसे समयमें अलग कर देनेकी अमानवीयता दिखाई जाती जब उनकी देखभाल करनेवाला और कोई न हो और वे अपने घरसे भी दूर हों। मैं इसे बहुत गम्भीर किस्मका पागलपन मानता हूँ और ऐसा काम वही कर सकता है जिसके मनमें पाप हो। सरकार जानती है कि शान्तिकी शर्तें[1] अपमानजनक हैं और उनसे मंत्रियोंके दिये हुए वचन भंग होते हैं। वह यह भी जानती है कि इस बातसे मुसलमानोंकी भावनाको बहुत गहरी ठेस पहुँची है। वह जानती है कि हिन्दुओंकी

१. मित्र-राष्ट्रों द्वारा टर्कीके सम्बन्धमें घोषित शान्तिकी शर्तें।

सहानुभूति पूरी तरहसे उनके साथ है और अफगान शिष्टमण्डल भी मुसलमानोंकी भावनासे पूर्णतः सहमत है। इसलिए उसे किसी भी अग्रणी भारतीयको इस स्थितिमें देखकर भय लगता है कि वह अफगान शिष्टमण्डलके बारेमें कोई बात जान सके या कि उससे कोई जानकारी प्राप्त कर सके। अतः सरकारपर सन्देहका भूत सवार हो गया है।

लेकिन हमें इस पागलपनका जवाब पागलपनसे नहीं देना है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि सर हरकोर्ट[1] बटलरकी सरकार लोगोंको हिंसात्मक कार्रवाई करनेके लिए उत्तेजित करना चाहती है ताकि सर हरकोर्टकी सरकार यहाँ भी पंजाबकी भयंकरताकी पुनरावृत्ति कर सके और लोगोंको आतंकित करके उन्हें चुप हो जाने और झुक जानेके लिए मजबूर कर सके। खैर, यह सरकार ऐसा करना चाहती हो या न चाहती हो, खिलाफत आन्दोलनके नेताओंको जो-कुछ मसूरीमें हुआ उस ढंगकी और भी कार्रवाइयोंके लिए तैयार रहना चाहिए। सफलता प्राप्त करनेका रास्ता क्रुद्ध हो जाना नहीं बल्कि दमनकी ऐसी कार्रवाइयोंका स्वागत करना है, ताकि जिनके खिलाफ ऐसी कार्रवाइयाँ की जाती हैं उनपर कोई असर न हो सकनेके कारण सरकार यह सब उसी तरह बिलकुल बन्द कर दे जिस तरह किसी रोगीपर किसी खास दवाका असर न होते देखकर वह दवा देनेवाला चिकित्सक निश्चित रूपसे उसे बन्द कर देता है। अगर कड़ेसे-कड़े दण्डका भी वांछित प्रभाव नहीं होता तो उसे तुरन्त बन्द कर दिया जाता है।

लेकिन पागलपनका सबसे अधिक आघात पहुँचानेवाला उदाहरण तो सिंधसे प्राप्त हुआ है। कराचीसे सिंधीमें 'अलवहीद' नामक एक पत्र निकलता है जिसके मालिक एक बड़े ही जिम्मेदार किस्मके व्यापारी हैं। इस पत्रके इसी १३ तारीखके अंकमें जैकोबाबाद खिलाफत कमेटीके मन्त्रीकी एक चिट्ठी छपी है। इसमें यह बतानेके बाद कि खिलाफत आन्दोलनसे सम्बन्धित कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति जेल भेज दिये गये हैं, कहा गया है कि डिप्टी कमिश्नरने एक प्रतिष्ठित जमींदारको कमरेमें बन्द करके कोड़े लगाये और जब वह व्यक्ति चिल्लाया तो पुलिसने कमरेमें घुसकर उसे और कोड़े लगाये। मसूरीमें कमसे-कम कानूनकी मर्यादा, वह जैसी भी है, तो निभाई गई। श्री जवाहरलाल नेहरूकी देहपर किसीने हाथ नहीं लगाया। लेकिन अगर खिलाफत कमेटीके मन्त्रीका आरोप सही हो तो सिंधमें एक इज्जतदार आदमीको डिप्टी कमिश्नरने, जहाँतक जनताको मालूम है, बिना किसी उचित कारणके कोड़े लगाये। बम्बईके गवर्नर[2] भारतके गवर्नरोंमें सबसे अधिक विवेकशील माने जाते हैं, इसलिए भरोसा किया जा सकता है कि वे इस घटनाकी तथा अन्य आरोपोंकी भी पूरी जाँच करवा कर उसके परिणाम प्रकाशित करेंगे। श्री शौकत अलीसे प्राप्त इस घटनाका विवरण छापकर 'बॉम्बे क्रॉनिकल' ने भी 'अलवहीद' की बातकी पुष्टि की है। जो तथ्य बताये गये हैं वे यदि सत्य हैं तो डिप्टी कमिश्नरको अवश्य ही बरखास्त कर देना चाहिए। लेकिन

१. संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश)के लेफ्टिनेंट-गवर्नर।
२. सर जॉर्ज लॉयड।

वे बरखास्त किये जायें या न किये जायें, जो लोग खिलाफत आन्दोलनका मार्गदर्शन कर रहे हैं उनका कर्त्तव्य स्पष्ट है। क्या वे कठिनसे-कठिन अग्नि-परीक्षाके लिए तैयार हैं? शान्तिकी यह संधि अवमानकारी और उद्धततापूर्ण है। इसलिए, अगर इससे प्रभावित होनेवाले लोग किसी भी रूपमें इसका विरोध करेंगे तो इस संधिके पक्षधर इसका समर्थन भी उतनी ही उद्धतताके साथ शक्तिका प्रदर्शन करके करेंगे। और अगर भारतीय मुसलमानों तथा आम भारतीयोंको अपना रोष और क्रोध प्रकट करनेसे अधिक चिन्ता इस संधिकी शर्तोंमें संशोधन करवानेकी है तो वे, उनके साथ जो भी दुर्व्यवहार किया जाये, उसे स्वीकार करेंगे। लेकिन इस संधिको स्वीकार न करनेकी नीतिपर दृढ़ रहेंगे। सरकारकी हिंसात्मक कार्रवाइयोंके उत्तरमें जवाबी हिंसासे काम लेनेपर स्वयं खिलाफत आन्दोलन उस हिंसाका शिकार हो जायेगा, यह निश्चित है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६–५–१९२०

२१२. खिलाफत: श्री कैंडलरकी खुली चिट्ठी

श्री कैंडलरने खिलाफतके इस बड़े प्रश्नपर मुझे एक खुली चिट्ठी लिखी है। पत्र प्रकाशित हो चुका है। मैं श्री कैंडलरकी स्थिति समझ सकता हूँ और उसी तरह मैं चाहूँगा कि वे और अन्य अंग्रेज भी मेरी तथा इस प्रश्नपर मेरे ही जैसे विचार रखनेवाले अन्य सैकड़ों हिन्दुओंकी स्थितिको समझें। श्री कैंडलरने अपने पत्रमें यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है कि सन्धिकी शर्तोंसे श्री लॉयड जॉर्जका वचन[1] किसी प्रकार भंग नहीं हुआ है। मैं उनसे इस बातमें सहमत हूँ कि श्री लॉयड जॉर्जके शब्दोंको उनके प्रसंगसे वियुक्त करके मुसलमानोंके दावेके समर्थनमें पेश करना ठीक नहीं है। श्री लॉयड जॉर्जके शब्द, जैसे कि वे वाइसरायके हालके सन्देशमें[2] उद्धृत हुए हैं, इस प्रकार हैं:

> हम लोग इसलिए युद्ध नहीं कर रहे हैं कि आस्ट्रिया-हंगरीको ध्वस्त कर दें अथवा तुर्कोंसे उनकी राजधानी छीन लें या उन्हें एशिया माइनर तथा थ्रेसके उन प्रसिद्ध एवं समृद्ध प्रान्तोंसे वंचित कर दें जो[3] तुर्क जातिकी प्रधानता वाले हैं।

उक्त उद्धरणमें "जो" शब्दका अर्थ श्री कैंडलर "यदि वे" करते मालूम होते हैं। पर मैं उस शब्दका स्वाभाविक अर्थ करता हूँ, यानी उससे यह अर्थ निकालता हूँ कि १९१८में प्रधान मन्त्रीने स्वीकार किया था कि एशिया माइनर और थ्रेस प्रान्तमें

१. ५ जनवरी, १९१८ को दिया गया वचन।

२. १४ मई, १९२० का; देखिए परिशिष्ट २।

३. मूल अंग्रेजी उद्धरणमें 'जो' की जगह 'व्हिच' है।

प्रधानतः तुर्क लोग रहते हैं। और यदि यही अर्थ ठीक है तो मैं कहूँगा कि वचनका खुल्लमखुल्ला भंग किया गया है, क्योंकि अब तुर्कोंके हाथमें "एशिया माइनर तथा थ्रेसके समृद्ध एवं प्रसिद्ध प्रान्तों"का कोई हिस्सा शेष नहीं रह गया है।

कुस्तुन्तुनियामें सुलतानके रहनेके प्रश्नपर मैं पहले ही अपना मत प्रकट कर चुका हूँ। यदि कोई यह कहे कि संधिकी शर्तों द्वारा "तुर्क जातिकी अपनी निवास-भूमिमें तुर्क साम्राज्यको और कुस्तुन्तुनियामें उसकी राजधानीको बनाये रखनेकी बात" तोड़ी नहीं गई है, तो यह तो बुद्धिके दिवालियेपनका परिचय देना है। उसी भाषणका एक दूसरा अवतरण कि जिसे, मेरा खयाल है, श्री कैंडलर चाहते हैं कि मैं ऊपर उद्धृत अंशके साथ जोड़कर पढ़ूँ, यह है:

> **जिन प्रदेशोंमें तुर्क जातियाँ बसी हैं उनमें तुर्कोंका ही राज्य रहे और कुस्तुन्तुनिया उसकी राजधानी रहे, इसपर हमें आपत्ति नहीं है। पर भूमध्य सागर और कृष्ण सागरके बीचके मार्गको चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया गया है, इसलिए हमारी समझमें आर्मीनिया, मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलिस्तीनको यह हक है कि उनके पृथक राष्ट्रीय अस्तित्वको मान्य किया जाये।**

क्या उसका यही अर्थ था कि टर्कीका प्रभाव बिलकुल खतम कर दिया जाये, टर्कीके अधिराजत्वको नष्ट कर दिया जाये, और "मैन्डेट्स"की आड़में यूरोपीय-ईसाई प्रभाव दाखिल किया जाये? क्या अरब, आर्मीनिया, मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलिस्तीनके मुसलमानोंने इसकी स्वीकृति दी है, अथवा यह नयी व्यवस्था उनपर उन बलवान राष्ट्रों द्वारा जबरदस्ती लादी जा रही है, जिन्हें अपने कार्यकी न्याय सम्मतताका नहीं बल्कि अपने पशुबलका विश्वास है? वीर अरबोंके हृदयमें स्वतन्त्रताकी भावनाका पोषण मैं अवश्य करना चाहूँगा और उसके लिए सब वैध उपाय करूँगा, परन्तु मैं यह सोचकर काँप उठता हूँ कि संरक्षक शक्तियों द्वारा सुरक्षित लोलुप पूँजी-पतियोंके हाथोंमें उनके देशके शोषणकी योजनासे उनकी क्या दशा होगी। यदि वचन निबाहना है तो, जैसा कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया'ने सुझाव दिया है, इन प्रदेशोंको पूर्ण स्वराज्य दे दिया जाये और उनपर अधिराजत्व टर्कीका ही रहे। अरबोंकी आन्तरिक स्वतन्त्रताके लिए टर्कीसे आवश्यक आश्वासन ले लिये जायें। पर टर्कीके अधिराजत्वको उठा देना और मुसलमानोंके धर्मक्षेत्रोंपर से खलीफाका संरक्षकत्व हटा देना खिलाफतकी खिल्ली उड़ाना है, जिसे कोई भी मुसलमान चुपचाप बैठकर नहीं देख सकता। प्रधान मन्त्रीके वचनोंका जो अर्थ मैंने किया है वह मेरा ही नहीं है। परम माननीय अमीर-अली[1] सन्धिकी शर्तोंको विश्वासघात बताते हैं। श्री चार्ल्स रॉबर्ट्स ब्रिटिश जनताको याद दिलाते हैं कि तुर्कोंके साथ सन्धिके विषयमें भारतके मुसलमान जो महसूस करते हैं उसका आधार प्रधान मन्त्रीका "थ्रेस, कुस्तुन्तुनिया और एशिया माइनरके टर्की प्रदेशोंके सम्बन्धमें दिया गया वचन है, जिसे श्री लॉयड जॉर्जने विगत २६ फर-

१. सैयद अमीर अली (१८४९–१९२८); कलकत्ता उच्च-न्यायालयके न्यायाधीश, प्रीवी कौंसिलकी न्याय-समितिके सदस्य।

वरीको[1] पुनः दोहराया था।" श्री रॉबर्ट्स कहते हैं कि उस वचनका पालन समग्र रूपमें किया जाना चाहिए; वह न केवल कुस्तुन्तुनियाके सम्बन्धमें वरन एशिया माइनरके सम्बन्धमें भी पूरा होना चाहिए। वे उस वचनके पालनकी जिम्मेदारी सारे राष्ट्रकी मानते हैं और उसके किसी भी अंशके पालन न किये जानेको ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा किया गया घोर विश्वासघात मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि विश्वासघातके आरोपका कोई अकाट्य उत्तर है तो वह दिया जाना चाहिए और प्रधान मन्त्री अपने वचनोंका पालन करें या न करें पर जो वचन वे राष्ट्रकी ओरसे देते हैं उसे तोड़नेका उन्हें कोई अधिकार नहीं है। अंतमें वे कहते हैं कि यह बात अविश्वसनीय मालूम होती है कि ऐसे वचनोंका पालन अक्षरशः और अंशशः पूरी तरह नहीं किया गया। वे आगे कहते हैं: "मुझे सकारण विश्वास है कि मेरे इन विचारोंसे मन्त्रिमण्डलके सभी प्रमुख सदस्य भी सहमत हैं।"

मुझे सन्देह है कि शायद श्री कैंडलरको मालूम नहीं है कि इंग्लैंडमें आजकल क्या हो रहा है। श्री पिक्थॉलने[2] "न्यू एज" में लिखा है:

> टर्कीके साथ युद्ध-विश्रान्ति सन्धि हुए बहुत दिन बीत गये, पर अभीतक आर्मीनियावालोंके कत्लेआमकी जांच करनेके लिए निष्पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय जांच कमेटी नहीं बिठाई गई। यद्यपि टर्कीकी सरकारने ऐसी जांचकी मांग भी की है पर आर्मीनियाके संगठनों और पक्षधरोंने ऐसी मांगको सुननेसे यह कहकर इनकार कर दिया कि ब्राइस और लेपसन्सकी रिपोर्टें टर्कीको दोषी ठहरानेके लिए काफी हैं।[3] दूसरे शब्दोंमें उनके खयालसे केवल मुद्दईके बयानपर ही फैसला कर दिया जाये। गत वर्ष स्मरना में हुई[4] दुखद घटनाओंकी जांच करनेवाले मित्र-राष्ट्रोंके आयोगने यूनानियोंके दावेके[5] विरुद्ध रिपोर्ट दी। इसलिए वह रिपोर्ट यहां इंग्लैंडमें प्रकाशित नहीं की गई है, यद्यपि अन्य राष्ट्रोंमें वह काफी पहले जनताके हाथोंमें पहुँच गई है।

१. २६ फरवरी, १९२० को कॉमन्स-सभामें लॉयड जॉर्जने घोषणा की थी कि "जनवरी १९१८ को दिया गया वचन सभी दलोंसे परामर्श करनेके बाद दिया गया था. . . वह स्पष्ट, बगैर शर्तोंका और सुविचारित था. . . उस वक्तव्यका भारतमें यह प्रभाव पड़ा कि उसी क्षणसे वहाँ भरती बहुत अधिक संख्यामें बढ़ती गई।

२. मार्माड्यूक पिक्थॉल, पत्रकार एवं उपन्यासकार; बॉम्बे क्रॉनिकलके सम्पादक; निकटपूर्वकी उन्हें समीपसे और गहरी जानकारी थी।

३. अंतमें मित्र-राष्ट्रों द्वारा परित्यक्त आर्मीनिया २५ नवम्बर, १९२० को सोवियत गणतंत्रमें चला गया।

४. १५ मई, १९१९ को ग्रीक फौज स्मरना भेजी गई थी और सकड़ों तुर्की नागरिकोंका कत्लेआम किया गया था।

५. अक्तूबर १९१९ में मित्र-राष्ट्रोंके जल-सेनाध्यक्षोंकी रिपोर्टमें (जो सरकारने दबा दी) स्मरनामें फौजोंके जानेकी पूरी तरह निन्दा की गई और ग्रीक लोगोंको लूटमार, आगजनी व हत्याका अपराधी घोषित किया गया था।

इसके बाद उन्होंने यह दिखलाया है कि अपने उद्देश्यकी सिद्धि और अपने मतके समर्थनके लिए आर्मीनिया तथा यूनानके एजेंट कैसे पैसेको पानीकी तरह बहा रहे हैं। वे कहते हैं :

> घोर अज्ञान तथा कपटपूर्ण झूठका यह संयोग ब्रिटिश राज्यके लिए आसन्न विपत्तिका कारण सिद्ध हो सकता है।

अंतमें वे कहते हैं :

> जो राजा और प्रजा अपनी नीतिके आधार-रूपमें और विदेश नीतिके आधारके रूपमें तथ्यके मुकाबले प्रचारको अधिक पसन्द करते हैं वे मानो अपनेको खुद ही दोषी घोषित करते हैं।

इस अवतरणको मैंने यह दिखानेके लिए उद्धृत किया है कि वर्तमान ब्रिटिश नीति छलपूर्ण प्रचारसे दूषित हो गई है। 'लन्दन क्रॉनिकल' ने लिखा है कि १७वीं सदीमें टर्की साम्राज्यका विस्तार एशिया, आफ्रिका और यूरोपमें २० लाख वर्गमीलसे भी ज्यादा था, वही इस सन्धिकी शर्तोंके अनुसार अब घटकर प्रायः १,००० वर्गमील ही रह गया है। उसने लिखा है :

> यूरोपीय टर्की अब केवल लैन्ड्स ऐंड और तामारके बीच समा सकता है और कॉर्नवाल प्रदेशका क्षेत्रफल उससे बड़ा है। यदि तुर्कोंने जर्मनीका साथ न दिया होता तो आज पूर्वी बाल्कनकी कमसे-कम ६० हजार वर्गमील भूमि उसके अधीन अवश्य होती।

मुझे नहीं मालूम कि 'क्रॉनिकल' का मत आम तौरपर माना जाता है या नहीं। टर्की साम्राज्यको दण्ड देनेके लिए उसे इस तरह काटकर छोटा किया गया है अथवा इसलिए कि यह न्यायोचित है? यदि तुर्कोंने जर्मनीका साथ देनेकी भूल न की होती तो भी क्या मेसोपोटामिया, अरब, आर्मीनिया और फिलिस्तीनके लिए राष्ट्रीयताका सिद्धान्त लागू किया गया होता!

जो लोग श्री कैंडलरसे सहमत हैं उन्हें मैं याद दिलाना चाहूँगा कि श्री लॉयड जॉर्जने भारतकी जनताको जो वचन दिया था वह इस खयालसे नहीं दिया था कि रंगरूटोंकी भरती और उनका भेजा जाना जारी रहेगा। ऐसा बताया जाता है कि अपने कथनके औचित्यको सिद्ध करते हुए श्री लॉयड जॉर्जने कहा था :[1]

> मेरे इस कथनका प्रभाव यह पड़ा कि उसी समयसे भारतवर्षमें रंगरूटोंकी भरतीमें काफी वृद्धि हुई। वे सभी रंगरूट मुसलमान नहीं थे, पर उनमें मुसलमान बहुत थे। अब हमसे यह कहा जाता है कि मेरा यह प्रस्ताव तुर्कोंके लिए था। पर तुर्कोंने उसे अस्वीकार कर दिया और इसलिए अब हम उससे पूरी तरह मुक्त हैं। लेकिन बात ऐसी नहीं है। लोग प्रायः यह भूल जाते हैं कि हमारा दुनियामें सबसे बड़ी मुस्लिम आबादीवाला साम्राज्य है। इसकी एक

५७८

१. कॉमन्स सभामें २६ फरवरी, १९२० को।

चौथाई प्रजा मुसलमान है। संकटके समय इन लोगोंकी भाँति उत्कट राजभक्ति और तत्परतासे साम्राज्यकी सहायता किसी औरने नहीं की। 'हम लोगोंने उन्हें गम्भीर वचन दिया और उन्होंने उसे भरोसेके साथ स्वीकार कर लिया।' अब वे उस वचनका पालन न होनेकी आशंकाके कारण परेशान हैं।

उस प्रतिज्ञाका अर्थ कैसे और कौन लगाये? भारत सरकारने स्वयं उस प्रतिज्ञाका क्या अर्थ लगाया? उसने इस दावेका जोरदार समर्थन किया या नहीं कि मुसलमानोंके पवित्र क्षेत्रोंपर नियंत्रणका पूर्ण अधिकार खलीफाके हाथमें हो? क्या भारत सरकारने ऐसा कुछ कहा कि अपने वचनकी रक्षा करते हुए भी जजीरत-उल-अरबका पूरा हिस्सा खलीफाके प्रभाव-क्षेत्रसे लिया जा सकता है और संरक्षणके लिए मित्र-राष्ट्रोंको सौंपा जा सकता है? यदि सन्धिकी शर्तें बिलकुल वैसी हैं जैसी कि होनी चाहिए थीं तो फिर भारत सरकार मुसलमानोंके साथ सहानुभूति क्यों प्रगट कर रही है? वचनोंके विषयमें इतना ही कहना है। मैं यह भली-भाँति समझा देना चाहता हूँ कि मेरे बारेमें किसीको यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि इस मामलेकी मेरी वकालतका सारा दारोमदार श्री लॉयड जॉर्जकी इस घोषणापर ही है। मैंने इसीलिए उसके सम्बन्धमें समझबूझकर "प्रायः" शब्दका प्रयोग किया है। वह एक महत्त्वपूर्ण विशेषण है।

श्री कैंडलर ऐसा संकेत करते मालूम होते हैं कि मेरा अभिप्राय खिलाफतके मामलेमें न्याय करानेके सिवा और कुछ भी है। उनका खयाल सही है। न्याय प्राप्त करना, अवश्य ही मैं जो कुछ चाहता हूँ, उसकी आधारशिला है और यदि मुझे यह विदित हो जाये कि इस सम्बन्धमें न्यायकी मेरी धारणा गलत है तो मैं तुरन्त वापस सही रास्तेपर चलनेकी हिम्मत भी दिखाऊँगा। लेकिन मैं कुछ और भी चाहता हूँ; भारतके मुसलमानोंके इतिहासके इस संकटकालमें उनकी सहायता करके मैं उनकी मैत्री प्राप्त करना चाहता हूँ। इसके अतिरिक्त, यदि मैं मुसलमानोंको अपना साथी बना सका तो मुझे आशा है कि मैं ब्रिटेनको पतनके उस मार्गसे हटा लूँगा जिसकी ओर मेरी समझमें उसके प्रधान मन्त्री उसे लिये जा रहे हैं। मैं समस्त भारत और ब्रिटिश साम्राज्यको यह दिखला देना चाहता हूँ कि यदि जनतामें आत्मत्यागकी अमुक क्षमता हो तो अंग्रेजों और भारतीयोंके बीच कटुताके बीज बोये या कटुताकी भावनाको कोई बढ़ावा दिये बिना, पूर्ण शान्तिमय तथा पवित्र तरीकोंसे ही न्याय प्राप्त हो सकता है, क्योंकि मेरे तरीकोंका अस्थायी प्रभाव चाहे जो हो, परन्तु मैं उन्हें इतना समझता हूँ कि मुझे दृढ़ विश्वास है कि वे और केवल वे ही ऐसे तरीके हैं जिन्हें अपनाकर चलनेसे दोनों पक्षोंके बीच कटुताकी कोई स्थायी भावना नहीं आ सकती। वे घृणा और असत्यके दोषोंसे मुक्त हैं, उनमें तात्कालिक लोभके लिए अनुचित साधनोंका सहारा लेनेकी बात नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-५-१९२०

२१३. सावरकर-बन्धु

इस समय मेरी यह उत्कट अभिलाषा है कि मेरी प्रजा और जो लोग मेरी सरकारके लिए जिम्मेदार हैं उनके बीच, जहाँतक सम्भव हो, कटुताका एक-एक निशान मिट जाये। जिन लोगोंने राजनीतिक प्रगतिके लिए उतावले होकर अतीतमें कानून तोड़े थे, उन्हें अब भविष्यमें कानूनका पालन करना चाहिए। जिन लोगोंपर शान्ति-सुव्यवस्था कायम रखनेकी जिम्मेदारी है उनके लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न कीजिए जिससे वे उन ज्यादतियोंकी याद भूल सकें जिनकी रोक-थामके लिए उन्हें कार्रवाई करनी पड़ी है। एक नये युगका शुभारम्भ हो रहा है। इसका प्रारम्भ मेरी प्रजा और मेरे अधिकारियोंके बीच एक ही उद्देश्यके लिए मिल-जुलकर काम करनेके सम्मिलित संकल्पके साथ हो। इसलिए, मैं अपने वाइसरायको निर्देश देता हूँ कि वे मेरे नामपर और मेरी ओरसे राजनीतिक अपराधियोंके साथ, सार्वजनिक सुरक्षाका खयाल रखते हुए जहाँतक ठीक लगे वहाँतक, राजानुकम्पाका प्रयोग करें। मैं चाहता हूँ कि वे इसी शर्तको ध्यानमें रखते हुए उन लोगोंको इस राजानुकम्पाका लाभ दें, जो राज्यके विरुद्ध या किसी विशेष कानून या आपत्कालीन कानूनके अन्तर्गत अपराध करनेके कारण कारावास भोग रहे हों या उस कारणसे जिनकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगा हुआ हो। मुझे विश्वास है कि जिन लोगोंको इस उदारताका लाभ मिलेगा वे अपने भावी आचरण द्वारा इसका औचित्य सिद्ध करेंगे और मेरी सारी प्रजा ऐसा आचरण करेगी जिससे भविष्यमें ऐसे अपराधोंसे सम्बन्धित कानूनोंपर अमल करनेकी जरूरत ही न पड़े। ——शाही घोषणा

जिस घोषणापत्रसे उपर्युक्त उद्धरण लिया गया है वह पिछले दिसम्बर मासमें प्रकाशित हुआ था। भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारोंने इस सम्बन्धमें जो कार्रवाई की उसके परिणामस्वरूप उस समय कारावास भोग रहे बहुत-से लोगोंको राजानुकम्पाका लाभ प्राप्त हुआ है। लेकिन कुछ प्रमुख "राजनीतिक अपराधी" अब भी नहीं छोड़े गये हैं। इन्हीं लोगोंमें मैं सावरकर-बन्धुओंकी गणना करता हूँ। वे उसी मानेमें राजनीतिक अपराधी हैं जिस मानेमें, उदाहरणके लिए, वे लोग हैं जिन्हें पंजाब सरकारने मुक्त कर दिया है। किन्तु इस घोषणापत्रके प्रकाशनके आज पाँच महीने बाद भी इन दोनों भाइयोंको छोड़ा नहीं गया है।

इनमें से बड़ेका नाम है श्री गणेश दामोदर सावरकर। इनका जन्म सन् १८७९में हुआ था और इन्हें शिक्षा-दीक्षा मामूली ही मिली थी। सन् १९०८में नासिकमें स्वदेशी आन्दोलनमें इन्होंने बहुत प्रमुख हिस्सा लिया। जून १९०९ में इन्हें खण्ड १२१, १२१ (क), १२४ (क) और १५३ (क)के अन्तर्गत जायदादकी जब्तीके साथ आजीवन

देशनिकालेकी सजा दी गई। अभी वे अण्डमान द्वीप-समूहमें अपनी सजा काट रहे हैं। इस प्रकार वे ग्यारह सालतक सजा भोग चुके हैं।

खण्ड १२१ वही प्रसिद्ध खण्ड है जिसका उपयोग पंजाबके मुकदमोंके सिलसिलेमें किया गया था और जिसका सम्बन्ध 'राजाके विरुद्ध लड़ाई छेड़ने' से है। इसके अन्तर्गत जो कमसे-कम सजा दी जा सकती है वह है जायदादकी जब्तीके साथ आजीवन देश-निकाला। १२१ (क) भी इसी तरहका खण्ड है। १२४ (क)का सम्बन्ध राजद्रोहसे है। खण्ड १५३ (क) का सम्बन्ध 'बोलकर, लिखकर या अन्य किसी प्रकारसे शब्दों द्वारा' विभिन्न वर्गोंके बीच वैर-भाव उत्पन्न करनेसे है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि (बड़े) सावरकर महोदयपर लगाये गये सभी आरोप सार्वजनिक ढंगके थे। उन्होंने कोई हिंसात्मक कार्रवाई नहीं की थी। वे विवाहित थे, और उनके दो लड़कियाँ थीं, जिनका देहान्त हो चुका है। उनकी पत्नीकी मृत्यु भी अभी अठारह मास पूर्व हुई है।

दूसरे भाईका[1] जन्म सन् १८८४ में हुआ था। वे काफी समयतक लन्दनमें रहे, और वहाँ उनकी जो गतिविधियाँ[2] रहीं, उन्हींके कारण उन्हें अधिकांश लोग जानते हैं। पुलिसकी निगरानीसे भाग निकलनेकी उनकी सनसनी फैला देनेवाली कोशिश और जहाजके झरोखेसे उनका फ्रांसीसी समुद्रमें कूद पड़ना—[3] इन बातोंकी याद जनताके मनमें अब भी ताजा है। उनकी शिक्षा फर्ग्युसन कालेजमें हुई, लन्दनमें उन्होंने अपना अध्ययन समाप्त किया और बैरिस्टर बन गये। सन् १८५७ के सिपाही विद्रोहपर उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी, जो जब्त कर ली गई है। सन् १९१० में उनपर मुकदमा चलाया गया और २४ सितम्बर, १९१०को उन्हें वही सजा दी गई जो उनके भाईको दी गई थी। सन् १९११ में उनपर लोगोंको हत्याके लिए उकसानेका आरोप लगाया गया।[4] लेकिन इनके विरुद्ध भी किसी प्रकारकी हिंसाका आरोप सिद्ध नहीं हो पाया। ये भी विवाहित हैं और १९०९में इनके एक लड़का भी हुआ। इनकी पत्नी अभी जीवित हैं।

इन दोनों भाइयोंने अपने राजनीतिक विचार स्पष्ट कर दिये हैं और दोनोंने कहा है कि उनके मनमें किसी प्रकारके क्रान्तिकारी इरादे नहीं हैं और अगर उन्हें मुक्त कर दिया गया तो वे सुधार-कानूनके[5] अधीन काम करना पसन्द करेंगे, क्योंकि

१. विनायक दामोदर सावरकर (१८८४-१९६६); प्रमुख क्रान्तिकारी जो आगे चलकर अखिल भारतीय हिन्दू महासभाके प्रमुख नेता हुए।

२. यहाँ उन्होंने भारतकी स्वतन्त्रताके लिए एक आन्दोलन चलाया, जो एक समयमें ऐसी अवस्थामें पहुँच गया कि श्री सावरकर पेरिससे भारतको बन्दूकें आदि भेजने लग गये थे।

३. मार्सेल्ज बन्दरगाहके पास जुलाई १९१० में, जब उन्हें १८८१ के भगोड़े अपराधी अधिनियमके अन्तर्गत इंग्लैंडसे पकड़कर भारत लाया जा रहा था।

४. नासिकके कलक्टर श्री ए० एम० टी० जैक्सनकी हत्याके सिलसिलेमें उनपर यह आरोप लगाया गया था कि जिस पिस्तौलसे जैक्सनकी हत्या की गई वह सावरकर द्वारा लन्दनसे भेजी गई पिस्तौलोंमें से एक थी।

५. सन् १९१९ का भारत सरकार अधिनियम।

उनका खयाल है कि इन सुधारोंसे लोगोंके लिए इस तरह काम करना सम्भव हो गया है जिससे भारतको राजनीतिक दायित्व प्राप्त हो सके। दोनोंने स्पष्ट शब्दोंमें बता दिया है कि वे ब्रिटिश सम्बन्धोंसे मुक्त नहीं होना चाहते। इसके विपरीत, उन्हें लगता है कि भारतकी किस्मत ब्रिटेनके साथ रहकर ही सबसे अच्छी तरह गढ़ी जा सकती है। किसीने भी उनके खरेपन या ईमानदारीमें सन्देह नहीं किया है, और मेरा खयाल है कि उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें ज्योंका-त्यों सही मान लेना चाहिए। और मेरे विचारसे जो बात इससे भी बड़ी है वह यह कि आज बेखटके कहा जा सकता है कि इस समय भारतमें हिंसावादी विचार-धाराके अनुगामियोंकी संख्या नगण्य है। अब इन दोनों भाइयोंकी स्वतन्त्रतापर आगे रोक लगाये रखनेका एकमात्र कारण 'सार्वजनिक सुरक्षाको खतरा' ही हो सकता है, क्योंकि महामहिमने वाइसरायको राजनीतिक अपराधियोंके प्रति, सार्वजनिक सुरक्षाका खयाल रखते हुए जहाँतक ठीक लगे वहाँतक, राजानुकम्पाका प्रयोग करनेका दायित्व सौंपा है। इसलिए मेरे विचारसे अगर इस बातका पूरा प्रमाण सामने न हो कि इन दोनों भाइयोंको छोड़ देना राज्यके लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है तो वाइसराय इन्हें छोड़नेके लिए बँधे हुए हैं। इसके अलावा ये दोनों पहले ही काफी समयतक सजा भोग चुके हैं, इनके शरीर भी काफी छीज गये हैं और इन्होंने अपने राजनीतिक विचार भी स्पष्ट कर दिये हैं। सार्वजनिक सुरक्षा-सम्बन्धी शर्त पूरी हो जानेकी स्थितिमें इन दोनों भाइयोंको छोड़ देना वाइसरायके लिए, उनकी जो राजनीतिक हैसियत है उसे ध्यानमें रखते हुए, उतना ही जरूरी है जितना कि न्यायाधीशोंके लिए, उनकी न्यायिक हैसियतके खयालसे, इन दोनों भाइयोंपर कानूनमें विहित न्यूनतम दण्ड देना जरूरी था। अगर उन्हें आगे कुछ समयके लिए भी कैदमें रखना है तो उसका औचित्य ठहराते हुए एक पूरा वक्तव्य जारी करना जनताके प्रति उनका कर्त्तव्य है।

यह मामला भाई परमानन्दके मामलेसे न अच्छा है और न बुरा, और पंजाब सरकारकी कृपासे वे काफी समयतक कारावास भोग लेनेके बाद अब छोड़ दिये गये हैं। अगर हम इस आधारपर इस मामलेको सावरकर-बन्धुओंके मामलेसे अलग करके देखना चाहें कि भाई परमानन्दने अपनेको बिलकुल निर्दोष बताया तो यह भी ठीक नहीं होगा। जहाँतक सरकारका सम्बन्ध है, सभी समान रूपसे अपराधी थे, क्योंकि सभीको सजाएँ दी गई थीं। और राजानुकम्पाका लाभ केवल सन्दिग्ध मामलोंमें ही नहीं देना है, बल्कि उन मामलोंमें भी देना है जिनमें अपराध पूरी तरह सिद्ध हो गया है। शर्तें केवल ये हैं कि अपराध राजनीतिक हो और राजानुकम्पाके प्रयोगका परिणाम, वाइसरायके विचारमें, ऐसा न हो जिससे सार्वजनिक सुरक्षा खतरेमें पड़ जाये। ये दोनों भाई राजनीतिक अपराधी हैं, इसमें तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। और जहाँतक सर्वसाधारणको मालूम है, सार्वजनिक सुरक्षाको भी कोई खतरा नहीं है। वाइसरायकी कौंसिलमें ऐसे मामलोंके सम्बन्धम प्रश्न पूछनेपर बताया गया कि य विचाराधीन हैं। लेकिन उनके भाईको बम्बई सरकारने इस आशयका उत्तर भेजा है कि उनके सम्बन्धमें आगे कोई स्मृतिपत्र वगैरह स्वीकार

नहीं किया जायेगा और श्री मॉण्टेग्युने कामन्स सभामें बताया है कि भारत सरकार-के विचारसे उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। लेकिन इस मामलेको इतनी आसानीसे ताकपर नहीं रख दिया जा सकता। जनताको यह जाननेका अधिकार है कि ठीक-ठीक वे कौन-से कारण हैं जिनके आधारपर राज-घोषणाके बावजूद इन दोनों भाइयों-की स्वतन्त्रतापर रोक लगाई जा रही है, क्योंकि यह घोषणा तो जनताके लिए राजाकी ओरसे दिये गये ऐसे अधिकार-पत्रके समान है जो कानूनका जोर रखता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६–५–१९२०

२१४. एक दुःखद मामला

सर्वश्री रतनचन्द और बुग्गाके परिवारोंसे हमें निम्नलिखित तार मिला है:—

> बुग्गा और रतनको अंडमान निर्वासनका हुक्म। बुग्गाको दस वर्षसे आँत उतरने और बवासीरकी बीमारी है। उनकी शल्य-चिकित्सा भी हो चुकी है। रतनकी अवस्था ४० वर्षसे अधिक है, इसलिए जेल मैनुएलकी धारा ७२१ के अनुसार उसे अंडमान नहीं भेजा जाना चाहिए।

पाठकोंको स्मरण होगा कि अन्य अभियुक्तोंके साथ इनकी अपील प्रीवी कौंसिलमें की गई थी जो प्राविधिक आधारपर खारिज कर दी गई है।[1] पण्डित मोतीलाल नेहरूने इनके मामलोंकी छानबीन की है और दिखाया है कि वे उन लोगोंसे अधिक अपराधी नहीं हैं जो रिहा कर दिये गये हैं। परन्तु कुछ अभियुक्त जिन्हें पहले फाँसीका दण्ड मिला था और जिनका वह दण्ड बादमें कैदकी सजामें बदल दिया गया था वे अब रिहा कर दिये गये हैं। क्या कारण है कि इन दो अभियुक्तोंको उनसे अलग किया गया है? क्या वह अपीलके कारण हुआ है? यदि उन्होंने अपील न की होती या ऐसा कहें कि किसी उदार वकीलने दया करके अनेक कठिनाइयोंके बावजूद उनके मुकदमेकी पैरवी न की होती तो उन्हें फाँसीपर चढ़ा ही दिया गया होता। पंजाबके छोटे लाट उदार-विवेकका परिचय देते हुए उन लोगोंमें से अनेकोंको रिहा कर रहे हैं जिन्हें विगत अप्रैल तथा जूनके बीचमें यातनाएँ भोगनी पड़ी थीं। प्रीवी कौंसिलमें अपील खारिज होने के बाद यदि वे चाहते तो सर्वश्री बुग्गा व रतनचन्दको फाँसीपर चढ़ा सकते थे फिर भी यह सच है कि बड़े लाटने फाँसीका दण्ड घटाकर कालेपानीका दण्ड कर दिया है। परन्तु मेरा निवेदन है कि यदि सम्राट्-की घोषणाको पूर्णतः कार्यान्वित करना है तो सर्वश्री बुग्गा और रतनचन्द रिहाईके हकदार हैं। राज्यके लिए वे लोग लाला हरकिशनलाल, पं० रामभजदत्त चौधरी आदि लोगोंसे अधिक खतरनाक नहीं हैं। हालाँकि रिहाईकी दृष्टिसे उनका मामला काफी

१. देखिए "अमृतसरकी अपीलें", ३–३–१९२०।

मजबूत है परन्तु फिलहाल में उनकी रिहाईके लिए नहीं कह रहा हूँ। मैं तो सिर्फ उन्हें पंजाबमें ही रखनेकी बात कह रहा हूँ और यदि वे बाहर भेज दिये गये हैं, तो किसी और कारणसे न सही, इन बेचारोंकी दुखिया स्त्रियोंकी अवस्थापर ही दया करके उन्हें पंजाब लौटा लानेके लिए कह रहा हूँ। जनताको ऐसा सोचनेका अवसर न दिया जाये कि मौजूदा सरकारके कार्य विचार और न्यायके उच्च सिद्धान्तोंकी प्रेरणासे नहीं, भय या उनकी उपयोगिताके कारण किये जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६–५–१९२०

२१५. पत्र : मंगलदास पारेखको

२६ मई, १९२०

सुज्ञ भाईश्री मंगलदास,

कल हम किसी निर्णयपर[1] नहीं पहुँच सके, इसका मुझे दुःख है। मुझे तो पूरी-पूरी आशा थी। मैंने आपको बताया था कि अम्बालाल भाईके साथ तो मैंने परामर्श कर लिया है। उसका सार यह है कि जो मिलें उनका साथ देंगी उनके 'वार्प-पीसर्स' को हर पखवाड़े [सप्ताह?] तेरह रुपये दिये जायेंगे और प्रति सप्ताह आठ आने बोनस। यह भाव ३४० से ३८० तकुवोंतक के लिए है। ३४० के अन्दर-अन्दरके तकुओंका भाव रु० १२–१२–० है तथा ३८० से ऊपर होनेपर रु० १३–४–० भाव होगा। 'वेफ्ट-पीसर्स' का रु० १३–८–० निश्चित हुआ है। 'डॉफर्स' का रु० ९–४–० और बोनस चार आना है। आधे समयके लिए काम करनेवालेके लिए रु० ५–०–० निश्चित हुए हैं।

काम करनेका समय दस घंटे निश्चित हुआ है। उपर्युक्त दरें भी दस घंटेके हिसाबसे हैं और जबतक ७५ प्रतिशत मिलें नहीं आ मिलतीं तबतक दस घंटेकी बातपर अमल नहीं किया जायेगा। जमानतके तौरपर जो रकम जमा कराई जाती है वह दस दिनकी मजदूरीसे ज्यादा नहीं होनी चाहिए। ये मुख्य-मुख्य बातें हैं। अब भी मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप इन सिद्धान्तोंको स्वीकार करें और दूसरोंको स्वीकार करनेके लिए कहें। मैं मानता हूँ कि इतना बिलकुल उचित है।

श्री मंगलदास गि० पारेख
अहमदाबाद

गुजराती प्रति (एस० एन० ७०४४) की फोटो-नकलसे।

१. मिल-मालिकों और मिल-मजदूरोंके बीच जो झगड़ा चल रहा था उसके समझौतेकी शर्तोंके बारेमें।

२१६. प्रस्तावना : "स्वदेशी धर्म" की

बम्बई

भीमसेनी एकादशी [२८ मई, १९२०]

इस निबन्धकी प्रस्तावना लिखना मेरे वशकी बात नहीं है, क्योंकि लेखक[1] मेरे मित्र हैं। निबन्धके विषयमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इसमें उल्लिखित विचार स्वदेशी धर्मको शोभान्वित करनेवाले हैं और मेरी इच्छा है कि उनके इन विचारोंका हिन्दुस्तानके लोग पूरा-पूरा उपयोग करें।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

स्वदेशी धर्म

२१७. पागलपन

मैं कह चुका हूँ कि असहकार आदि उग्र शस्त्रका प्रयोग करते समय हमें धैर्यसे काम लेना सीखना चाहिए। यदि हम उसका उपयोग करते हुए क्रोधसे काम लें तो बड़ा नुकसान हो जाये। सरकार गुस्सेमें आ जाये तो हम उसे भी सहन करें, यही उचित है। जब-जब राज्य-सत्ताके हाथों अन्याय होता है तब-तब लगभग वह यही चाहती है कि जनता उत्तेजित हो जाये और खून-खराबी हो। यदि जनता उस फंदेमें फँस जाती है तो उसका ध्यान उपर्युक्त अन्यायसे हटकर अशान्ति मचानेकी ओर चला जाता है। फिर खून-खराबी करनेवालोंको दबानेके लिए राजा और प्रजा एक हो जाते हैं और मूल बात, अन्यायको भुला दिया जाता है। अथवा जिस समय जनता अन्यायके विरुद्ध आन्दोलन करती है उस समय राज्याधिकारी उस आन्दोलनको दबानेका भारी प्रयत्न करते हैं और किये गये अन्यायको छिपानेमें विवेक-बुद्धिका अतिक्रमण कर जाते हैं। परिणाम-स्वरूप अन्यायके विरुद्ध किये जानेवाले आन्दोलनको दबानेकी कोशिशमें वे पागल हो जाते हैं।

मुझे लगता है कि हमारी सरकार ऐसे पागलपनका शिकार हो गई है। पंडित मोतीलाल नेहरूको संयुक्त-प्रान्तमें[2] सब लोग जानते हैं। वहाँके गवर्नर उन्हें तीस सालसे पहचानते हैं। उनके एकमात्र पुत्र जवाहरलाल नेहरू बैरिस्टर हैं, और वे भी सुप्रसिद्ध हैं। वे अपने पिताकी, उनके धन्धे तथा सार्वजनिक जीवनमें पूरी-पूरी मदद करते हैं।

१. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर (१८८५-); काकासाहबके नामसे प्रसिद्ध; १९१५ से गांधीजीके सहयोगी; यह पुस्तिका सत्याग्रह आश्रमके स्वामी आनन्द द्वारा १९२० में प्रकाशित की गई थी।

२. अब उत्तर प्रदेश।

संयुक्त प्रान्तमें सभीको मालूम है कि श्री जवाहरलाल नेहरूकी माता हमेशा अस्वस्थ रहती हैं। उनकी धर्मपत्नीकी तबीयत भी इस समय बहुत खराब है। नेहरू-परिवार समय-समयपर गर्मियोंमें हवा-परिवर्तनके लिए मसूरी जाता है। इस बार, ऊपर बताई गई बीमारीके कारण मसूरी जानेकी विशेष आवश्यकता थी। जब यह निश्चय हुआ तब यह बात उनके ध्यानमें भी न थी कि अफगानी-शिष्टमण्डलके प्रतिनिधि भी मसूरी जानेवाले हैं, और जिस स्थानपर उन्हें ठहरना था उसी स्थानपर ये लोग भी ठहरनेवाले हैं। तथापि मसूरीमें ठहरनेकी अधिक व्यवस्था न होनेके कारण नेहरू परिवार तथा अफगानी-शिष्टमण्डलके प्रतिनिधियोंको एक ही स्थानपर जगह मिली। दोनों एक ही जगह रहें, यह सरकारी अधिकारियोंको बरदाश्त नहीं हुआ। इतना होनेपर भी स्थिति कुछ ऐसी थी कि श्री जवाहरलाल नेहरूपर एकदम दबाव नहीं डाला जा सकता था, इससे पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टने उन्हें बुलाकर कहा कि — यदि आप यह आश्वासन दें कि आप इन प्रतिनिधियोंके साथ बोलचाल भी नहीं रखेंगे तो आपको मसूरीमें रहने दिया जायेगा। जिस व्यक्तिको आत्मसम्मान प्रिय है वह व्यक्ति ऐसी जमानत क्यों दे? भले ही प्रतिनिधियोंके साथ कोई व्यवहार न हो, श्री जवाहरलाल पन्द्रह दिन-तक मसूरीमें रहकर भी इन प्रतिनिधियोंके साथ एक शब्द भी नहीं बोले, लेकिन स्वेच्छया बिना-किसी प्रसंगके किसीके साथ न बोलना एक बात है और किसीके दबावमें आकर अमुक व्यक्तिके साथ न बोलनेकी प्रतिज्ञा करना दूसरी बात है। इसीसे श्री जवाहरलालने ऐसा आश्वासन देनेसे इनकार कर दिया। इसपर उन्हें तुरन्त ही मसूरी छोड़ देनेका आदेश दिया गया। श्री जवाहरलालने अधिकारीको सही स्थितिसे अवगत करा दिया था, अपनी कठिनाइयोंकी चर्चा भी की थी लेकिन [उनकी] मुश्किलोंसे अधिकारियोंको क्या लेना-देना हो सकता है?

यदि राजा अपनी रैयतके कमजोरसे-कमजोर अंगकी मुश्किलोंका ध्यान रखे तो वह रामराज्य कहलाये, प्रजातन्त्र कहलाये। आधुनिक युगमें किसी भी प्रजातन्त्र राज्यसे — फिर चाहे वह अंग्रेजी हो चाहे भारतीय, ईसाई, मुसलमान अथवा हिन्दू — ऐसी आशा नहीं की जा सकती। जिस यूरोपका अनुकरण करनेके लिए हम अधीर हो गये दीख पड़ते हैं वह यूरोप भी पशुबलकी अथवा पशुबलके मुकाबले बहुमतकी पूजा करता है और बहुमतवाले भी हमेशा अल्पसंख्यकोंकी रक्षा करते हों सो बात नहीं। सामान्यतया आम विषयोंमें बहुमतके न्यायको लौकिक न्याय कहा जा सकता है, लेकिन शुद्ध न्याय तो सब लोगोंके कल्याणमें ही हो सकता है। इसलिए जहाँ दुर्बलसे-दुर्बल व्यक्तिकी भी पूरी-पूरी रक्षा की जाती हो और उसके अधिकारोंको भी पूरा-पूरा संरक्षण दिया जाता हो वह शुद्ध प्रजातन्त्र कहा जा सकता है। प्रजातन्त्रका अर्थ बहुमत द्वारा शासन नहीं बल्कि उसका अर्थ है कि उससे जनताके छोटेसे-छोटे अंगका भी पोषण हो। इस समय हम अपनी सरकारसे ऐसे न्याय और ऐसे पोषणकी अपेक्षा नहीं कर सकते। लेकिन सरकारने जो कदम[1] उठाया है वह तो निरा पागलपन है, ऐसा

१. जवाहरलाल नेहरूको मसूरीसे चले जानेका जो आदेश दिया गया था, वह जून १९२० को वापस ले लिया गया था।

कदम उठानेके लिए उसके पास किसी भी ठोस कारणके होनेकी कल्पना नहीं की जा सकती।

यह तो पागलपनकी एक निशानी हुई। सिन्धसे जो समाचार मिला है यदि वह सही है तो जान पड़ता है वहाँके एक डिप्टी कमिश्नर पागलपनकी अन्तिम सीढ़ीपर जा पहुँचे हैं। खिलाफतके आन्दोलनको बन्द करवानेके उद्देश्यसे वह प्रतिष्ठित सज्जनोंपर दबाव डाला करता है, इतना ही नहीं बल्कि कहा जाता है कि उसने एक प्रतिष्ठित सज्जनको पीटा भी है।[1] हम उम्मीद करते हैं कि बम्बईके गवर्नर महोदय इसकी पूरी जाँच करेंगे। लेकिन इस समय तो हमें इस बातपर विचार करना चाहिए कि हमारा कर्त्तव्य क्या है? अभी तो असहकार [आन्दोलन] शुरू नहीं हुआ है, लेकिन जब यह शुरू होगा तब उसे दबानेके लिए सरकार, निस्सन्देह जितना हो सकेगा उतना, जोर आजमायेगी। उस समय वह कितनी बौरा जायेगी इसके बारेमें कोई क्या कह सकता है? ऐसे समय यदि प्रजा निश्चल रह सके, शान्त रह सके और उसकी ओरसे जरा भी खून-खराबी न हो तो जनता बहुत उच्च आसनपर प्रतिष्ठित मानी जायेगी तथा खिलाफतके प्रश्नका अन्तिम निर्णय हमारे पक्षमें होगा, इस बारेमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

असहकार आदि विषयोंपर अन्तिम प्रस्ताव पास करनेके लिए बहुत जल्द ही खिलाफत समितिकी बैठक होनेवाली है। बहुत करके तीस मईको अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक[2] होनेवाली है। उसी समय सम्भवत: काशी अथवा प्रयागमें इस कमेटीकी भी बैठक होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०–५–१९२०

२१८. असहकारमें कैसे ढील होती है?

'नवजीवन' का एक पाठक लिखता है:[3]

उपर्युक्त पत्रमें जहाँ-तहाँ प्रयुक्त विशेषण मैंने छोड़ दिये हैं। दूसरे आरोप तो बहुत हैं लेकिन उन्हें [यहाँ] देनेकी मेरी हिम्मत नहीं पड़ी। पत्र लिखनेवाले ने अपना नाम भी दिया है; उसे भी मैं यहाँ नहीं देना चाहता। कदाचित् उसने भी यह पत्र मुझसे व्यक्तिगत सलाह लेनेके लिए लिखा हो। तथापि जो भाग मुझे उद्धृत करने योग्य लगा उसे मैं उद्धृत कर चुका हूँ।

जबतक इतने ज्यादा गुस्से तथा वहमसे भरे हुए इक्का-दुक्का व्यक्ति भी जनतामें हैं तबतक असहकार आदि अमूल्य अस्त्रोंका उपयोग करनेमें दिक्कतें आती रहेंगी।

१. देखिए "पागलपन", २६–५–१९२०।

२. कांग्रेस कमेटीकी बैठक ३० मईको बनारसमें हुई थी। इसमें गांधीजीके असहयोग कार्यक्रमके सम्बन्धमें विचार करनेके लिए कलकत्तामें विशेष अधिवेशन बुलाये जानेका प्रस्ताव पास किया गया था।

३. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है।

असहकार-जैसे शस्त्रके उपयोगमें जो तत्त्व निहित है, उसे तो इस पत्र लेखकने समझा ही नहीं है। और उसमें मुसलमान भाइयों-जितना धीरज भी नहीं है। मेरी कल्पनामें ऐसी कोई बात ही नहीं है कि असहकार सिर्फ निशस्त्र प्रजाका हथियार है। निर्बल और सबल सब उसका उपयोग कर सकते हैं। किन विशेष प्रसंगोंमें असहकार धर्म है, यह मैं समझा चुका हूँ।

इंग्लैंडके मन्त्रियोंपर जो आरोप लगाये गये हैं वे अनुचित हैं। प्रधान मन्त्रीने इस प्रश्नके सम्बन्धमें विश्वासघात किया है, यह मैं मानता हूँ लेकिन सम्पूर्ण ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल बेईमान अथवा विश्वासघाती है अथवा भारतके अधिकारी बिलकुल स्वेच्छाचारी हैं, ऐसा कमसे-कम मैं तो नहीं मानता। अंग्रेज प्रजा अथवा अंग्रेज मन्त्रिमण्डल हमारी तुलनामें बिलकुल अयोग्य हैं और हम गुणोंके भंडार हैं, ऐसी मेरी मान्यता नहीं। अंग्रेज जनतापर मैं स्वयं तो मुग्ध हूँ। यह जनता शूरवीर, भोले हृदयकी तथा कुछ हदतक ईश्वरसे डरनेवाली है, बिलकुल धर्मसे विमुख नहीं है। वे लोग जिस तरह पशुबलकी पूजा करते हैं उसी तरह आत्मिक बलको भी पहचानते हैं। इनसे अनेक भूलें हुई हैं किन्तु इन्होंने अनेक पुण्यकर्म भी किये हैं। इस जातिमें सही अर्थोंमें कुछ योगी हुए हैं और वे पूजनीय हैं। उसमें जो योजना-शक्ति है, जो धैर्य है, जो कला है, वह अनुकरणीय है। उसमें दोष देखनेके कारण तथा हिन्दुस्तानके प्रति उसने जो अन्याय किया है उसके कारण मैं अपनी न्यायवृत्तिको खोने अथवा दबा देनेके लिए तैयार नहीं हूँ। जिस हदतक मैं अंग्रेजोंके अन्यायके विरुद्ध जूझा हूँ उस हदतक दूसरा कोई शायद ही जूझा होगा। लेकिन इस जूझनेके पीछे मेरे अन्तरतममें उस जातिके प्रति मेरा स्नेहभाव अथवा, मोह कहें तो, मोह निहित है। मेरे विचारसे आत्मिक बलको जितनी जल्दी अंग्रेज पहचानते हैं उतनी जल्दी भारतकी जनताको छोड़कर और किसी राष्ट्रकी जनता नहीं परख सकती तथा मैंने अपने अनेक संघर्ष इसी आधारपर चलाये हैं। लेकिन यदि मेरा अनुमान गलत हो, तो भी मेरे लिए पश्चात्तापका कोई कारण नहीं होगा; क्योंकि मेरे किसी भी संघर्षका आधार बाह्य वस्तुपर न होकर उसके सम्बन्धमें अपनाये गये साधनोंकी निर्मलतापर निर्भर है। सत्यको कालकी बाधा कभी नहीं व्यापती। सत्यमें धीरजको पर्याप्त अवकाश है। सत्यका आचरण करनेवाले को [विजयके लिए] रुके रहनेमें भयका कोई कारण नहीं होता।

और फिर नरम दलवालों पर कैसे-कैसे आक्षेप [लगाए गये हैं।] ये लोग मात्र देशद्रोही तथा खुशामदी हैं, यदि जनताका एक बड़ा हिस्सा ऐसा मानता हो तो मुझे अवश्य ही निराशा और दुःख हो। मैं तो दोनों पक्षोंको[1] देशका हितेच्छु मानता हूँ। जिस समय हम सब सोये हुए थे उस समय सुरेन्द्रनाथकी[2] आवाजसे सारा हिन्दुस्तान गूंज रहा था। एक समय ऐसा था कि जब सर दिनशा वाछाके[3] शब्दोंने बम्बई

१. राष्ट्रवादी तथा नरमदलीय।

२. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (१८४८–१९२५); १८९५ तथा १९०२ में कांग्रेस अध्यक्ष; बादमें नरम दलके नेताओंमें से एक।

३. दिनशा ईदुलजी वाछा (१८४४–१९३६); १८९६–१९०० तक कांग्रेसके संयुक्त सचिव; १९०१ में कांग्रेस-अध्यक्ष और बादमें नरम दलके नेताओंमें से एक।

प्रदेशके लोगोंको हिला दिया था। ऐसे देशनायकोंको देशद्रोही अथवा खुशामदी कहना मैं पाप समझता हूँ। उनके बहुत सारे विचार मुझे अब पसन्द नहीं आते। मेरे नये अनुभवने मुझे निस्सन्देह नई बातें सिखाई हैं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके अंग्रेजोंके प्रति मोह-भावको मैं सहन नहीं कर सकता। सर दिनशा वाछाके अर्थशास्त्रके कुछ नियमोंको मैं ग्रहण नहीं कर सकता। लेकिन इससे उनके प्रति मेरे मनमें जो पूज्यभाव है उसमें तनिक भी कमी नहीं आ सकती। उनके द्वारा की गई देशसेवाको मैं भूल नहीं सकता। और जिस आयुपर वे पहुँच गये हैं उसतक मैं पहुँच सकूँ तथा तब भी मेरे मनमें देश-सेवा करनेका उनके जैसा उत्साह बना रहे तो मैं अपनेको भाग्यशाली समझूँगा। तुलसीदासने लिखा है कि जड़ और चेतन दोनों ही गुण और दोषोंसे भरे हैं। लेकिन जिस तरह हंस जलरूपी विकारको तजकर केवल दूधको ग्रहण करता है, उसी तरह गुण-दोषका पृथक्करण करके, दोषोंको त्याग करके सबके गुणोंको ही ग्रहण करना हमारा काम है। हमारे सगे-सम्बन्धी और संसार यदि हमारे दोषोंको ही देखा करें तो हमारी क्या गति होगी?

मैं गुजरातकी जनतासे अवश्य यह अनुरोध करना चाहता हूँ कि उसे इस समय जो विषैली हवा बह रही है उसका त्याग करना चाहिए। उपर्युक्त पत्र इस हवाका सूचक है और इसीसे मैंने उसे यहाँ उद्धृत किया है। मेरी अपनी मातृभाषा गुजराती होनेके कारण, और खास तौरसे गुजरात मेरी जन्म-भूमि होनेके कारण मैं यह मानता हूँ कि मैं अपने अच्छेसे-अच्छे विचारोंको जल्दी और आसानीसे गुजरातके सम्मुख पेश कर सकता हूँ तथा मैं जानता हूँ कि गुजरातकी मार्फत उनका प्रचार हिन्दुस्तानमें हो सकता है। इस समय जो जहरीली हवा बह रही है उससे गुजरात और हिन्दुस्तान मुक्त रहें—ऐसी मेरी उत्कट अभिलाषा है। वे मुक्त रह सकते हैं, यह बात मैं आजीवन मानता रहूँगा। सत्यरूपी सुगन्धमय पवनका तुरन्त प्रसार करनेमें जो देर हो रही है उसके कारणको मैंने सूचित कर ही दिया है। वह कारण यह जहरीली हवा ही है। अंग्रेजोंके प्रति क्रोध करके, मनुष्य-जातिके प्रति अविश्वास रखकर, एक-दूसरे पक्षपर दोषारोपण करके, परस्पर तिरस्कार-भाव रखकर देशका उद्धार नहीं किया जा सकता। तिरस्कार, दोषदर्शन ये सब रोगके, दुर्बलताके लक्षण हैं। दुर्बल व्यक्तियोंको हर ओर दुर्बलताके ही दर्शन होते हैं। दुष्ट सबको दुष्ट मानता है। साँप और बिच्छू सबसे डरते हैं। "आप भला तो जग भला", यह संसारका नियम है, उसे हम कैसे भूल सकते हैं?

रौलट अधिनियमके बारेमें भी दो शब्द कह दूँ। यह अधिनियम अपने समयसे पहले ही रद हो जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है और यह मेरे विचारानुसार कानूनकी सविनय-अवज्ञाके रूपमें सत्याग्रह आन्दोलनको फिरसे प्रारम्भ किये बिना ही होगा। लेकिन यदि वैसा न हो तो सत्याग्रह अवश्य ही फिरसे शुरू किया जायेगा, इस विषयमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०–५–१९२०

२१९. विविध चर्चा

मैं जब स्वदेशीके प्रचारके निमित्त काठियावाड़का दौरा कर रहा था उस समय कुछ पत्र मुझे प्राप्त हुए थे तथा कुछ 'नवजीवन' कार्यालयके नाम सीधे उसी पतेपर मिले थे। उन सबका उसी समय 'नवजीवन' में उत्तर देना सम्भव नहीं हो पाया था। किसी-किसीको मैंने व्यक्तिगत रूपसे लिख दिया था कि अवकाश मिलनेपर उत्तर दूंगा। सब पत्रोंको मैंने अच्छी तरहसे सहेजकर रखा है। इस सप्ताह मुझे उन सबपर एक नजर दौड़ानेका अवसर मिला। उसमें कुछ-एक पत्र ऐसे हैं जो हमेशा नवीन लगते हैं; उनका मैं प्रसंगोपात्त उपयोग करना चाहता हूँ। ऐसा एक पत्र काठियावाड़की एक प्रख्यात एवं धर्मपरायण बहनका है। उसका कुछ भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ:[1]

यह बहनके पत्रका सार है। यात्राके दौरान ऐसे ही प्रश्न अन्य लोगोंने भी पूछे थे, इस कारण मैं उन प्रश्नोंका उत्तर यहाँ देनेका प्रयत्न करूँगा।

पहले स्वदेशीको लें। स्वदेशी विषयक मेरी कल्पनामें मुख्य रूपसे कपड़ेका ही समावेश होता है। क्योंकि विदेशी कपड़ेके उपयोगसे हिन्दुस्तानका प्रतिवर्ष लगभग ५० करोड़ रुपया विदेशोंको चला जाता है जबकि यह सारी रकम हम अपने कारीगरोंको दे सकते हैं। पहले कपड़ेपर होनेवाले हमारे खर्चकी सारी रकम — फिर वह इतनी थी या इससे कुछ कम — देशके कारीगरोंको ही मिलती थी। फिर हमारे कारीगरोंने एवजमें कोई दूसरा धन्धा ग्रहण नहीं किया। पहले असंख्य स्त्रियाँ अपने घरोंमें निरन्तर थोड़ा-बहुत सूत कातकर हिन्दुस्तानके तनको ढकती थीं। उन स्त्रियोंकी बेटियाँ अपनी माँके पवित्र धन्धेको भूल गई हैं और उसके बदले दूसरा कोई काम भी नहीं करतीं। इस कारण देशमें भुखमरी बहुत बढ़ गई है और हम चाहे जितने प्रयत्न क्यों न करें, जबतक वे कारीगर और ये स्त्रियाँ अपने पुराने धन्धेको फिरसे ग्रहण नहीं करते तबतक हिन्दुस्तानमें आजसे चौगुनी मिलें होनेपर भी करोड़ोंकी गरीबी कम नहीं होगी। इन्हीं कारणोंसे मैंने स्वदेशीको उत्तम धर्म माना है और अभीतक मानता हूँ। सुई, होल्डर आदि देशमें तैयार हों यह स्पृहणीय है। हमें अन्ततः इस स्थितिपर पहुँचना है। लेकिन इसकी कपड़ेके साथ कदापि तुलना नहीं हो सकती। इन उद्योगोंकी हमें स्थापना करनी है; किन्तु इन उद्योगोंमें हम उन करोड़ों व्यक्तियोंको नहीं लगा सकते जो गरीब हो गये हैं। फिर जिस शक्तिके द्वारा हम असंख्य स्त्री और पुरुषोंकी मार्फत साठ करोड़ रुपयेका नया कपड़ा तैयार करवा सकेंगे वह शक्ति भविष्यमें भी काम आयेगी। साठ करोड़ रुपयेकी वार्षिक आयवाले उद्योगको भारतमें शुरू करनेके लिए आत्म-बलिदान, योजना-शक्ति, बुद्धि, प्रामाणिकता, दृढ़ता आदि गुणोंका बहुत विकास करना पड़ेगा।

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र लेखिकाने गांधीजीसे पूछा था कि क्या आप स्वदेशी आन्दोलनका, कपड़ेके अलावा अन्य क्षेत्रोंमें भी प्रसार करना चाहते हैं? आप अस्पृश्य जातियोंकी ओर विशेष ध्यान क्यों देते हैं?

इन गुणोंका पर्याप्त विकास होनेपर ही हम स्वदेशी सम्बन्धी मेरी कल्पनाको, जो इस समय धूमिल-सी जान पड़ती है, ठोस आधारपर साकार बना सकेंगे।

अब अन्त्यजोंके प्रश्नको लिया जाये। हिन्दुस्तानके मंदभाग्यका इस प्रश्नसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। अन्त्यजोंके सम्बन्धमें पूछते हुए इस बहनने यह शंका उठाई है कि क्या हम अन्त्यजोंको उनकी वर्तमान स्थितिसे निकालकर हिन्दुस्तानको उन्नत कर सकेंगे? मुझे लगता है कि अवश्य ही ऐसे परिणामकी उपलब्धि हो सकती है, क्योंकि जिस शक्तिके द्वारा हम इस महापापसे मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे उस शक्तिके द्वारा हम अन्य पापोंसे भी मुक्त हो सकेंगे। मेरी दृढ़ मान्यता है कि जबतक हम कतिपय पाप-कर्मोमें फँसे हुए हैं तबतक हिन्दुस्तानका भाग्योदय नहीं होगा। मैं एक अन्त्यजकी सेवा करके सारी कौमकी सेवा करता हूँ, ऐसी मेरी मान्यता है। जिस तरह अन्त्यज दुःखी हैं उसी प्रकार अन्य लोग भी दुःखी हैं; तथापि अन्त्यजोंपर हम धर्मके नामपर अत्याचार करते हैं इसलिए एक जागरूक हिन्दूके रूपमें, स्वयं इस अधर्मसे बचने तथा दूसरोंको इससे बचाना मैं अपना विशेष कर्तव्य समझता हूँ। अन्त्यजोंके दुःखोंकी तुलना हम जनताके किसी भी अंगके दुःखोंके साथ नहीं कर सकते। अन्त्यज अस्पृश्य हैं—हम यह कैसे मानते हैं। मेरी बुद्धि इस बातको ग्रहण नहीं कर सकती और जब मैं इसका विचार करता हूँ तब मेरा हृदय काँपता है। मेरी आत्मा इस बातकी गवाही देती है कि अस्पृश्यता कदापि हिन्दू-धर्मका अंग नहीं हो सकती। हिन्दू-संसारने अज्ञानवश इतने वर्षोतक उन्हें अस्पृश्य मानकर जो पाप कमाया है उसे दूर करनेके लिए अपने समस्त जीवनको अर्पण करनेकी बातको भी मैं अधिक नहीं मानता और मुझे इस बातका बड़ा दुःख है कि मैं अपना सारा समय इस कार्यमें नहीं लगा पाता।

इसमें अन्त्यजोंके साथ खाने-पीने अथवा विवाह आदि करनेका कोई प्रश्न नहीं उठता। प्रश्न केवल छूने या न छूनेका ही है। अन्त्यज मुसलमान हो तो मैं उसका स्पर्श करूँ, ईसाई बने तो उसे सलाम करूँ; जिस ईसाई अथवा मुसलमानका वह स्पर्श करता है उन्हें छूनेमें मैं पाप नहीं मानता लेकिन उस अन्त्यजको स्पर्श करते हुए मुझे संकोच होता है। यह विचार तो मुझे अन्याय-भरा, विवेकरहित तथा अधार्मिक लगता है। इसीसे मैं अन्त्यजको छूकर अपने आपको पवित्र हुआ मानता हूँ और अनेक रूपसे मर्यादामें रहकर हिन्दू-समाजसे इस दोषसे मुक्त हो जानेके लिए आग्रह करता रहता हूँ। इस बहनसे भी, जिसने सरल भावसे उपर्युक्त पत्र लिखा है, मैं प्रार्थना करता हूँ कि वह अपनी उत्तम शक्ति और प्रभावका उपयोग करके हिन्दू-समाजको अस्पृश्यताके पापसे मुक्त करनेमें भागीदार बने तथा नित्य स्वयं थोड़ी देर अपने घरमें चरखा कातकर अपना उतना समय हिन्दुस्तानकी सेवामें अर्पित करे एवं अपनी अज्ञानी बहनोंके सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-५-१९२०

२२०. टिप्पणियाँ

एक सुन्दर दृष्टान्त

उड़ीसा अकाल-कोषमें अनेक स्थानोंसे विना किसी प्रयत्नके चंदा आ रहा है। यह स्पष्ट ही करुणाभावना तथा लोकभावनाका चिह्न है; लेकिन बम्बईके एस्प्लेनेड हाईस्कूलके दान खातेसे जो रकम आई है, वह विशेष ध्यान देनेकी बात है। इस हाईस्कूलमें एक पेटी रखी हुई है, उसमें विद्यार्थियों तथा अध्यापकोंको पैसे डालनेके लिए प्रोत्साहित किया जाता है और उस पैसेका उपयोग, किसी भी स्थानपर बिना किसी जातिबन्धनके, दुःख-निवारणके निमित्त किया जाता है। इस पेटीमें सिर्फ हाई-स्कूलके शिक्षक, विद्यार्थी तथा कर्मचारी ही पैसे डाल सकते हैं। इसके सुनिश्चित नियम निर्धारित किए गये हैं जिससे व्यवस्थामें गड़बड़ी नहीं हो पाती। पेटीमें कमसे-कम दो आने डालनेकी बात तय की गई है; अधिक रकम देनेपर प्रोत्साहनके लिए भिन्न-भिन्न प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं। यहाँ इन सब नियमोंकी तफसील देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है; कहना यही है कि इस ढंगसे दान-पेटी रखनेका रिवाज अनुकरणीय है। प्रत्येक सुव्यवस्थित पाठशालामें बालकों और अध्यापकोंको यथाशक्ति दान देनेके लिए प्रोत्साहित किया जाये तथा उसका सदुपयोग हो तो देशमें दुःख-निवारणके लिए सहज प्रयत्नसे बड़ी रकम प्राप्त की जा सकती है तथा प्रत्येक पाठशाला अपने कष्टके समय भी उस रकमका सदुपयोग कर सकती है।

नौकरोंकी स्थितिमें कैसे सुधार हो?

'नवजीवन' के नियमित पाठकको याद होगा कि २१ सितम्बरके अंकमें 'सर्वोदय' उपनामसे एक संवाददाताने मजदूरोंके कामके घंटोंमें कमी करनेका सुझाव दिया था।[1] उसपर एक शिक्षित व्यापारीने 'विरागी' उपनामसे अपने विचार लिखकर भेजे हैं। उसमें वे लिखते हैं:[2]

ये विचार प्रशंसनीय हैं, इसमें तो कोई सन्देह नहीं। लेकिन एक बार चूहोंकी सभामें बिल्लीसे सावधान रहनेके लिए एक चूहेने सुझाव दिया कि बिल्लीके गलेमें एक घंटी बाँधनी चाहिए ताकि उसके आनेपर आवाज होते ही सब अपने-अपने बिलोंमें भाग जायें। उस समय प्रश्न यह उठा कि घंटी बाँधेगा कौन? उसी तरह ऐसे मह-त्कार्यको नौकरोंमें से कौन करेगा; यह सवाल उठता है। बम्बईके नौकर इतनी बड़ी संख्यामें एकमत हो जायें तो यह काम तनिक भी मुश्किल नहीं है। जिस व्यक्तिको

१. देखिए खण्ड १६, पृष्ठ १६२-६३।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें पत्र लेखकने 'सर्वोदय' के सामान्य विचारोंका समर्थन किया था लेकिन यह भी कहा था कि नौकरोंकी कठिनाइयोंको दूर करनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि सहयोगमूलक प्रवृत्तियोंके संगठनमें हम उनकी मदद करें।

अच्छा विचार सूझे यदि वह स्वयं उसपर अमल करना शुरू कर दे तो उसके समान दूसरी कोई अच्छी योजना नहीं हो सकती। 'विरागी' स्वयं ही अपने विचारोंको अमलमें क्यों नहीं लाते?

मातर ताल्लुकेमें डाके[1]

एक सम्वाददाताने अपना नाम बताये बिना लिखा है कि मातर ताल्लुकेमें डाकुओंका उपद्रव बहुत बढ़ रहा है। उसने लिखा है कि इस इलाकेमें वैशाख सुदी ५[2] से अबतक दो बार डाका पड़ चुका है। इस सम्बन्धमें जो लोग यह चाहते हैं कि कुछ उपाय किये जायें उन्हें चाहिए कि खबर अधिक विस्तारसे दें। नाम-धाम बतानेमें डरनेकी कोई जरूरत नहीं है। अब जनताको इस तरहके भय नहीं मानने चाहिए। अमुक जगहपर लूटमार हुई है, यह खबर देनेमें तो कोई खतरा नहीं है। खतरा हो तो भी सच्ची खबर देनेमें डरना नहीं चाहिए। उपर्युक्त घटनाके सम्बन्धमें किसी पाठकको अधिक जानकारी हो और यदि वे उक्त जानकारी दे सकें तो हमें उम्मीद है कि लोगोंको राहत दिलवानेके लिए उसका उपयोग किया जा सकेगा।

साथ ही यह कहना भी जरूरी है कि लोगोंको ऐसे उपद्रवोंके विरुद्ध स्वयं अपनी रक्षा करना सीख लेना चाहिए। गाँवके सब लोग इकट्ठे होकर उपाय करें तो हमारी मान्यता है कि डाकू लोगोंको सहज ही नहीं लूट सकेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-५-१९२०

२२१. खिलाफत: कुछ और प्रश्नोंके उत्तर

इधर सार्वजनिक रूपसे मेरी बड़ी आलोचना की गई है और निजी तौरपर मुझे बहुत सारे सुझाव दिये गये हैं — यहाँतक कि मेरे पास इस सम्बन्धमें गुमनाम चिट्ठियाँ भी आ रही हैं कि मुझे क्या करना चाहिए। कुछ लोग इस कारण असन्तुष्ट हैं कि मैं तत्काल व्यापक असहयोग आरम्भ करनेकी सलाह क्यों नहीं देता। दूसरी ओर अन्य लोग हैं जो कहते हैं कि मैं जान-बूझकर देशको हिंसाकी आगमें झोंककर देशका अहित कर रहा हूँ। इन तमाम आलोचनाओंका उत्तर देना मेरे लिए कठिन है, पर मैं कुछ आपत्तियोंको संक्षेपमें बताकर अपनी योग्यता-भर उनके उत्तर दूँगा। कुछ प्रश्नोंका उत्तर तो मैं पहले ही दे चुका हूँ। उनके अतिरिक्त निम्नलिखित आक्षेप किये जा रहे हैं:[3]

> (१) तुर्कोंकी माँगें अनैतिक या अनुचित हैं। सत्यके मार्गका अनुसरण करनेवाला मुझ-जैसा व्यक्ति उनका समर्थन कैसे कर सकता है?

१. गुजरातके खेड़ा जिलेमें।

२. २० अप्रैल, १९२०।

३. देखिए "कुछ प्रश्नोंका उत्तर", १९-५-१९२०।

(२) यदि उनकी माँगें सिद्धान्त रूपमें न्यायपूर्ण भी हों तो भी तुर्क लोग इतने अक्षम, कमजोर और नृशंस हैं कि उनकी सहायता नहीं करनी चाहिए।

(३) यदि तुर्कोंकी माँगें न्यायोचित हैं और उन्हें सब-कुछ मिलना चाहिए तो भी मैं व्यर्थ ही भारतको अन्तर्राष्ट्रीय झंझटमें क्यों डाल रहा हूँ?

(४) भारतके मुसलमानोंको इस झंझटमें पड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। यदि उनके हृदयमें किसी तरहकी राजनैतिक आकांक्षा हो तो वे उसके लिए प्रयत्न कर चुके, उसमें वे असफल हुए और अब उन्हें चुप होकर बैठ रहना चाहिए। पर यदि वे इसे धार्मिक प्रश्न मानते हैं तो जिस प्रकार यह प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है, उस रूपमें हिन्दू उससे सहमत नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त मुसलमानों और ईसाइयोंके धार्मिक कलहमें हिन्दुओं-को मुसलमानोंका साथ नहीं देना चाहिए।

(५) किसी भी अवस्थामें मुझे असहयोगका प्रचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह कितना भी शान्तिमय क्यों न हो किन्तु चरम अर्थमें वह विद्रोह-के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

(६) इसके अतिरिक्त, विगत वर्षके अनुभवोंसे[1] मुझे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि देशमें हिंसाकी जो आग दबी हुई है, उसे नियन्त्रित कर सकना किसी भी एक आदमीकी शक्तिसे बाहर है।

(७) असहयोग व्यर्थ है, क्योंकि लोग सच्चे हृदयसे इसमें शामिल नहीं होंगे और बादमें उसकी जो प्रतिक्रिया हो सकती है, उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली स्थिति मौजूदा आशापूर्ण स्थितिसे कहीं खराब होगी।

(८) असहयोगका परिणाम यह होगा कि अन्य सभी प्रकारकी गति-विधियाँ रुक जायेंगी, यहाँतक कि सुधारोंका काम भी बन्द हो जायेगा और इस प्रकार प्रगति धीमी पड़ जायेगी।

(९) मेरी नीयत कितनी ही साफ क्यों न हो, पर मुसलमानोंके हृदयमें बदलेके भाव भरे हैं।

जिस क्रममें ये आपत्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं, उसी क्रमसे अब मैं उनके उत्तर दूँगा :

(१) मेरी समझमें बात सिर्फ इतनी ही नहीं है कि तुर्कोंकी माँगें अनैतिक और अनुचित नहीं हैं, बल्कि इसके विपरीत वे बहुत ही न्यायसंगत हैं — और किसी कारणसे नहीं तो कमसे-कम इसी कारणसे कि तुर्क लोग केवल वही चाहते हैं जो उनका अपना है। फिर मुसलमानोंने अभी हालमें जो घोषणा-पत्र निकाला है, उसमें उन्होंने साफ-साफ शब्दोंमें लिख दिया है कि गैर-मुसलमान और गैर-तुर्क जातियोंकी रक्षाके लिए जिस तरहकी गारंटी उचित समझी जाये, तुर्कोंसे ले ली जाये ताकि टर्की साम्राज्यकी सर्वोच्च सत्ताके अन्तर्गत रहते हुए अरबों और ईसाइयोंको अलग-अलग स्वशासन प्रदान कर दिया जाये।

१. रौलट विधेयक विरोधी आन्दोलनके सिलसिलेमें।

(२) मैं नहीं मानता कि तुर्क लोग किसी भी तरह कमजोर, अक्षम अथवा नृशंस हैं। हाँ, वे असंगठित अवश्य हैं और शायद उनके पास अच्छे सेनापति भी नहीं हैं। उन्हें बहुत ही प्रतिकूल परिस्थितियोंमें लड़ना पड़ा। प्रायः देखनेमें आता है कि जिसके हाथसे अधिकार छीन लेनेकी इच्छा होती है उसपर यही — अक्षमता, कमजोरी और नृशंसताके — दोष लगाये जाते हैं। [आर्मीनियामें] कत्लेआमका जो दोषारोपण तुर्कोंपर किया जाता है, उसके सम्बन्धमें स्वतन्त्र जांच कमेटीके लिए प्रार्थना की गई थी, पर वह कभी स्वीकार नहीं हुई। किसी भी सूरतमें अत्याचार न होने पायें, इसकी गारंटी तो ली ही जा सकती है।

(३) मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यदि भारतीय मुसलमानोंमें मेरी दिलचस्पी न होती तो मैं तुर्कोंके मामलेमें उतना ही उदासीन रहता जितना उदासीन मैं आस्ट्रियावालों या पोलैंडवालोंके मामलेमें हूँ। पर भारतवासी होनेकी हैसियतसे मैं अपना यह कर्त्तव्य समझता हूँ कि भारतके मुसलमान भाइयोंकी यातनाओं और कष्टोंमें आगे बढ़कर हिस्सा बटाऊँ। यदि मैं मुसलमानोंको अपना भाई समझता हूँ और यदि उनका पक्ष मुझे न्यायोचित लगता है तो यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपनी शक्ति-भर संकटके समय उनकी सहायता करूँ।

(४) चौथे प्रश्नमें पूछा गया है कि हिन्दुओंको मुसलमानोंका साथ कहाँतक देना चाहिए। अतः यह बात भावना और अपनी-अपनी रायपर निर्भर करती है। मैं अपने मुसलमान भाइयोंके साथ उनकी न्यायपूर्ण माँगोंके लिए अन्ततक संकट भोगना ठीक समझता हूँ और इसलिए मैं तबतक उनका साथ देता रहूँगा जबतक मेरी रायमें जिन उपायोंका वे प्रयोग करते हैं वे उतने ही अच्छे हैं, जितना अच्छा उनका उद्देश्य है। मैं मुसलमानोंके आन्तरिक भावोंपर किसी तरहका नियन्त्रण नहीं रख सकता। मैं तो उनकी इस बातको स्वीकार करता हूँ कि खिलाफतका प्रश्न उनके लिए इस अर्थमें धर्मका प्रश्न है कि वे अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी इस प्रश्नके सम्बन्धमें अपने लक्ष्यकी सिद्धिके लिए बँधे हुए हैं।

(५) असहयोग हिंसासे सर्वथा मुक्त है, इसलिए मैं उसे विद्रोह नहीं मानता। यों तो सरकारके किसी कार्यका कोई भी विरोध व्यापक अर्थमें विद्रोह ही है। उस अर्थमें उचित बातके लिए किया गया ऐसा विद्रोह वस्तुतः कर्त्तव्य है, और विरोध किस हदतक किया जाये, यह इसपर निर्भर करेगा कि कितना अन्याय हुआ और उसे कहाँतक अनुभव किया गया है।

(६) विगत वर्षका मेरा अनुभव बतलाता है कि यद्यपि कहीं-कहीं गलतियाँ अवश्य हुईं, पर सारा देश पूरी तरह नियन्त्रणके भीतर था तथा सत्याग्रहका प्रभाव देशके लिए अतिशय लाभदायक हुआ। और जहाँ-कहीं हिंसा हुई, वहाँ ऐसे स्थानीय कारण थे जिनका हिंसाको भड़कानमें प्रत्यक्ष योग था। साथ-ही-साथ मैं यह भी कहता हूँ कि जनताकी ओरसे जितनी हिंसात्मक कार्रवाई हुई उतनी भी नहीं होनी चाहिए थी और कुछ स्थानोंपर अराजकताके जो लक्षण प्रजाने दिखाये उन्हें भी नियन्त्रणमें रहना चाहिए था। जो गलत अनुमान मैंने उस समय किया था, उसको मैंने बहुत बार स्वीकार किया

है। पर जो-कुछ दुःखदायी अनुभव मुझे उस समय हुआ, उससे न तो सत्याग्रहमें मेरा विश्वास तनिक भी हिला और न मेरी इस मान्यतामें ही कोई कमी आई कि भारतमें इस अद्वितीय शक्तिका उपयोग किया जा सकता है। पहले जो भूलें हो गई हैं, उनको न होने देनेके लिए इस बार पर्याप्त प्रबन्ध किया जा रहा है। लेकिन हिंसाको रोकनेके लिए पर्याप्त प्रबन्ध करनेपर भी यदि घटनावश कहीं हिंसा हो जाये तो केवल उसके भयसे मैं उस रास्तेको नहीं छोड़ सकता जो बिल्कुल स्पष्ट है। साथ ही मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। ऐसा नहीं हो सकता कि सच्चा सत्याग्रही सरकारकी टेढ़ी भौंसे डरकर अपना कर्त्तव्य छोड़ दे। जरूरत पड़नेपर मैं दस लाख आदमियोंका बलिदान कर दूँगा, बशर्ते कि इस तरह बलिदान होनेवाले व्यक्ति स्वेच्छासे कष्ट भोगनेवाले हों, और निर्दोष तथा निष्कलंक चरित्रके व्यक्ति हों। सत्याग्रह आन्दोलनमें जनताकी भूलोंपर ही सबसे अधिक ध्यान रखना होता है। जो शक्तिशाली है, सत्तासम्पन्न है, वह गलतियाँ ही नहीं पागलपन भी कर सकता है; और यदि जनताने उन गलतियों और पागलपनका जवाब उसी तरह पागलपनसे न दिया और उसको स्वेच्छासे शालीनता और शान्तिके साथ बरदाश्त कर लिया, लेकिन गलती करनेवाली सत्ताकी इच्छाके सामने सर नहीं झुकाया तो विजय निश्चित है। अतः सफलताकी कुंजी इसीमें है कि हम लोग प्रत्येक अंग्रेज तथा प्रत्येक सरकारी कर्मचारीकी जान उतनी ही प्यारी और बहुमूल्य समझें जितनी हम अपने बन्धुओंकी समझते हैं। होश सम्हालनेके बाद जीवनके विगत चालीस वर्षोंमें मुझे जो अनुभव मिला है, उससे मैंने यही सार निकाला है कि जीवनसे बड़ा और कोई वरदान नहीं हो सकता। मैं तो कहूँगा कि जिस समय अंग्रेज लोगोंको यह विश्वास हो जायेगा कि उनकी संख्या भारतमें अत्यन्त नगण्य होनेके बावजूद उनका जान-माल पूर्णतया सुरक्षित है और इसका कारण उनके विनाशकारी अस्त्र नहीं बल्कि यह है कि भारतीय उन लोगोंको भी मारना उचित नहीं समझते जिन्हें वे भीषण भूल करते पाते हैं, तो उसी दिन आप देखेंगे कि भारतके प्रति अंग्रेजोंका रवैया बदल जायेगा और उसी दिनसे उन सब विनाशकारी शस्त्रास्त्रोंकी उपयोगिता भी समाप्त हो जायेगी, जो आज भारतमें उपलब्ध हैं। मैं जानता हूँ कि यह एक बहुत दूरकी चीज है। पर मैं इसकी कोई चिन्ता नहीं करता। यदि मुझ प्रकाश दिखाई दे रहा है तो मेरा कर्त्तव्य उसीको लक्ष्य मानकर आगे बढ़नेका है और यदि इस पथपर मुझे साथी मिलते जायें तो मैं इसे पर्याप्त सफलता मानूँगा। मैंने अपने अंग्रेज मित्रोंसे निजी बातचीतमें इस बातका दावा किया है कि चूँकि मैं लगातार अहिंसाकी शिक्षा देता चला आ रहा हूँ और मैंने इसकी पूर्ण व्यावहारिक उपयोगिता सफलतापूर्वक सिद्ध कर दी है, इसीलिए खिलाफत आन्दोलनके सम्बन्धमें लोगोंके हृदयमें जो हिंसाकी प्रवृत्ति मौजूद है, वह पूरी तरह काबूमें रही है।

(७) धार्मिक दृष्टिसे सातवें प्रश्नपर विचार करना ही निरर्थक प्रतीत होता है। यदि जनता असहयोग आन्दोलनमें साथ न दे तो यह खेदकी बात होगी। किन्तु केवल इसी कारण कोई सुधारक इस अस्त्रके प्रयोगको स्थगित नहीं कर देगा। अगर

लोग इसमें साथ नहीं देते तो मुझे इस बातका पता लग जायेगा कि इस समय जो आशाजनक स्थिति मौजूद है, उसका आधार किसी तरहकी आन्तरिक शक्ति या ज्ञान नहीं है, बल्कि अज्ञान और अन्धविश्वास है।

(८) यदि सच्चे हृदयसे असहयोगको स्वीकार कर लिया जायेगा तो अन्य सभी काम बन्द हो जायेंगे, यहाँतक कि उक्त सुधार भी। पर मैं इससे यह निष्कर्ष निकालनेको तैयार नहीं हूँ कि प्रगतिकी रफ्तार पिछड़ जायेगी। इसके विपरीत मैं असहयोगको इतना जोरदार और शुद्ध अस्त्र समझता हूँ कि यदि उसे सचाईके साथ प्रयुक्त किया गया तो यह वैसा ही होगा जैसे ईश्वर-प्राप्ति, और इसके बाद अन्य बातें अपने-आप ही हो जायेंगी। उस समय लोगोंको अपनी सच्ची शक्तिका ज्ञान होगा। उस समय उन्हें अनुशासन, आत्मसंयम, असहयोग, अहिंसा और संगठन आदि उन गुणोंका मूल्य ज्ञात हो जायेगा जिनके द्वारा प्रत्येक राष्ट्र महान् और उत्तम राष्ट्र हो सकता है, केवल महान् नहीं।

(९) मेरी समझमें मुझे कोई अधिकार नहीं है कि मैं अपनी अपेक्षा अपने मुसलमान भाइयोंकी भावनाओंको कम शुद्ध मानूँ। पर मैं यह अवश्य स्वीकार करता हूँ कि मेरे अहिंसाके सिद्धान्तमें उनका पूरी हदतक विश्वास नहीं है। उनके विचारसे अहिंसा दुर्बलोंका अस्त्र है और सिर्फ सुविधाके लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। वे मानते हैं कि यदि हम इस समय कोई सीधी कार्रवाई करना चाहें तो हमारे लिए केवल अहिंसात्मक असहयोगका ही रास्ता खुला है। मैं जानता हूँ कि मुसलमानोंमें कुछ लोग ऐसे हैं, जो यदि सफलतापूर्वक हिंसाका प्रयोग कर सकें तो वे आज ऐसा अवश्य करेंगे। पर उन्हें इस बातका पक्का विश्वास है कि यह असम्भव है। इसलिए असहयोग उनके लिए केवल कर्त्तव्य ही नहीं है, बल्कि बदला लेनेका साधन भी है। पर ब्रिटिश सरकारके साथ मेरा असहयोग वैसा ही है जैसा मैं अपने घरके लोगोंके साथ कर चुका हूँ। ब्रिटिश संविधानके लिए मेरे मनमें बहुत आदर है। अंग्रेजोंके साथ मेरी कोई शत्रुता नहीं है, यही नहीं बल्कि अंग्रेजोंके चरित्रमें बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें मैं अपने लिए अनुकरणीय मानता हूँ। कितने ही अंग्रेज मेरे घनिष्ठ मित्रोंमें से हैं। किसीको भी शत्रु समझना मेरे धर्मके विरुद्ध है। मुसलमानोंके बारेमें भी मेरे यही भाव हैं। मुझे उनकी माँगें न्यायपूर्ण और शुद्ध लगती हैं। इसलिए यद्यपि उनका दृष्टिकोण मुझसे भिन्न है, फिर भी मैं उनके साथ सहयोग करनेमें जरा भी नहीं सकुचाता और उनसे कहता हूँ कि वे मेरे तरीकेको एक बार आजमाकर देखें; क्योंकि मेरी दृढ़ धारणा है कि यदि साधन शुद्ध है तो किसी भ्रान्त उद्देश्यसे किया हुआ प्रयोग भी कल्याण ही करता है — वैसे ही जैसे कोई आदमी इसलिए सच बोले कि उस समय ऐसा करना उसके लिए नीतिकी दृष्टिसे हितकर है तो भी उससे कल्याण ही होता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २–६–१९२०

२२२. भाषण: खिलाफत समितिकी बैठकमें[1]

[३ जून, १९२०][2]

महात्मा गांधीने बड़ा सारगर्भित भाषण दिया जिसे लोगोंने बहुत ही शान्तिसे सुना। उन्होंने कहा कि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मुसलमान महसूस करते हैं कि भारतके सामने अब चार चरणोंमें[3] असहयोग अपनानेके अलावा और कोई उपाय नहीं है। उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है और शान्ति-सन्धिमें परिवर्तन करानेके उनके प्रयत्नोंमें पूरा सहयोग देनेके लिए मैं तैयार हूँ। मेरे विचारसे यह संघर्ष झूठी ईसाइयत और सच्चे इस्लामके बीच होनेवाला संघर्ष है। एक ओर शस्त्रास्त्रोंका बल है और दूसरी ओर नैतिकताका। हम यह युद्ध नैतिक बलके जोरपर जीतना चाहते हैं। असहयोग आन्दोलन चार चरणोंमें किया जायेगा। लेकिन पहला चरण प्रारम्भ करनेसे पहले हम परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयसे अपनी बात अर्ज करें और उन्हें इस बातके लिए एक महीनेका समय दें कि वे शान्ति-संधिकी शर्तोंमें मुसलमानोंकी माँगोंके अनुरूप परिवर्तन करवा दें, और अगर वे ऐसा न करवा सकें तो अपना पद छोड़कर असहयोग आन्दोलनमें शामिल हो जायें। एक महीनेके बाद प्रथम चरणको कार्यान्वित किया जायेगा। श्री गांधीने कहा कि जो लोग मेरे साथ काम करनेको तैयार हों, उनकी एक समिति बना दी जाये, जिसे असहयोगकी योजनाको कार्यान्वित करानेकी पूरी सत्ता दी जाये और जिसके निर्णय सभी लोगोंके लिए बन्धनकारी हों। उन्होंने बहिष्कारको अव्यवहार्य बताते हुए उसके प्रति असहमति प्रकट की और उसके बदले स्वदेशी अपनानेको कहा। उन्होंने लोगोंसे किसी भी रूपमें हिंसा न करनेका अनुरोध किया।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ७–६–१९२०

१ व २. १ और २ जूनको इलाहाबादमें हिन्दुओं और मुसलमानोंका एक संयुक्त सम्मेलन हुआ था और उसके बाद ३ जून, १९२० को इलाहाबादमें ही अखिल भारतीय केन्द्रीय खिलाफत समितिकी बैठक हुई थी। यह भाषण गांधीजीने उसी बैठकमें दिया, जिससे स्पष्ट है कि यह ३ जूनको ही दिया गया था; देखिए "असहयोग समिति", २३–६–१९२०। इस बैठकमें पास किये गये प्रस्तावोंके लिए देखिए परिशिष्ट ३।

३. गांधीजीकी असहयोग योजनापर विचार करनेके लिए बम्बईमें अखिल भारतीय खिलाफत समितिकी बैठक हुई थी, जिसमें यह योजना २८ जूनको मुसलमानोंके लिए एक-मात्र सम्भव उपायके रूपमें अपना ली गई थी।

२२३. भाषण: स्वदेशीपर[1]

४ जून, १९२०

उद्घाटन समारोहमें श्री गांधीके साथ श्रीमती सरलादेवी चौधरानी भी थीं। उन्होंने खद्दरकी साड़ी और खद्दरका ब्लाउज पहन रखा था।

समारोहमें भाषण करते हुए श्री गांधीने डचेस ऑफ सदरलैंडका दृष्टान्त दिया। उन्होंने कहा कि डचेसने अथक परिश्रम करके घरमें काते और बुने गये स्कॉटलैंडी ट्वीडको[2] लोकप्रिय बनाया, क्योंकि उससे स्कॉटलैंडकी सैकड़ों स्त्रियोंको एक सम्मानपूर्ण और लाभदायक धन्धा मिलता था। उन्होंने लोगोंको दिखाया कि स्कॉटलैंडवालों द्वारा तैयार किये गये खुरदरा और मोटा दिखनेवाले स्कॉटलैंडी ट्वीडमें जितनी कलात्मकता है, उतनी फैक्टरियोंमें तैयार किये गये ऊनी कपड़ोंमें नहीं है। श्री गांधीने कहा कि जबतक भारत हाथसे बुने कपड़ोंकी कलात्मकताको भली भाँति पहचान नहीं लेता तबतक मुझे सन्तोष नहीं होगा। जब यह कपड़ा भी स्कॉटलैंडी ट्वीडकी तरह ही फैशनमें आ जायेगा तो लोग मिलोंमें तैयार किये गये कपड़ेसे इसकी अधिक कीमत देने लगेंगे। इस तरह आज मैं घरोंमें तैयार किये गये सूतकी जो कीमत दे रहा हूँ, उससे दूनी कीमत दे सकूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-६-१९२०

२२४. भाषण: नडियादमें स्वदेशीपर[3]

५ जून, १९२०

खेड़ा जिलेसे तो मैंने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी हैं। जिस भण्डारका मैं अभी-अभी उद्घाटन करनेवाला हूँ वह सिर्फ स्वदेशी कपड़ेका प्रचार करे, इतना ही काफी नहीं है। मुझे तो तभी सन्तोष होगा जब खेड़ा जिलेके सब गाँवोंमें तैयार होनेवाले कपड़ेको यह भण्डार अपने यहाँ रखे तथा स्वदेशी कपड़ेका केन्द्र बने। और यहाँके भण्डारके लिए कपड़ा खरीदनेकी खातिर बम्बई क्यों जाना पड़ता है? मुझे विश्वास है कि

१. यह भाषण गांधीजीने बम्बईमें नारणदास पुरुषोत्तमदास व विट्ठलदास जेराजाणी फर्मके खादी भण्डारका उद्घाटन करते समय दिया था।

२. एक प्रकारका मोटा ऊनी कपड़ा।

३. यह भाषण स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन करते हुए दिया था। इस समारोहमें सरलादेवी चौधरानी तथा सी० राजगोपालाचारी उपस्थित थे।

खेड़ा जिलेकी स्त्रियाँ खेड़ा जिलेकी आवश्यकताका कपड़ा बुन सकती हैं और वह भी केवल अपने फुरसतके समयमें। मुझे उम्मीद है कि उत्साही सज्जन चरखा तथा कातनेकी पूरी रुई इन स्त्रियोंको देंगे। कपड़ेके लिए प्रतिवर्ष हम प्रति व्यक्तिके हिसाबसे दो रुपये विदेशोंको भेज देते हैं। इस हिसाबसे यदि हम घरपर कपड़ा बुनें तो खेड़ा जिलेके सात लाख व्यक्तियोंके कपड़ेके लिए चौदह लाख रुपया बाहर जाना बन्द हो जायेगा तथा वह रुपया भी कुछ पैसेवालोंमें नहीं वरन् हमारे अनेक गरीब भाइयोंमें ही बँटेगा। इस तरह स्वदेशी-आन्दोलन एक तरहकी बीमा कम्पनीका काम देता है। मैं एक बार फिर जोर देकर कहता हूँ कि स्वदेशी-आन्दोलनको आगे बढ़ाना हो तो नये खुलनेवाले भण्डारोंको यह बात खास तौरसे ध्यानमें रखनी चाहिए कि उन्हें [अन्य बातोंमें] परस्पर स्पर्द्धा नहीं करनी है, स्वदेशी कपड़ा बनानेपर ही खास ध्यान देना है। इस दृष्टिसे घर-घर स्वयंसेवक भेजकर लोगोंको रुई दी जाये तथा उससे बने सूत और कपड़ेको नकद दामों खरीदा जाये। ईस्ट इंडिया कम्पनीने इसी ढंगसे हिन्दुस्तान [के बाजारों] में अपने कदम जमाये थे। हममें देशी उद्योगोंका प्रसार करनेके लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी-की अपेक्षा अधिक व्यवस्थापक-शक्ति, धैर्य और मितव्ययिता अर्थात् वणिक बुद्धिकी जरूरत है। मुझे आशा है कि इस नये उपक्रमसे देशोदयके आधार, स्वदेशीकी विजय होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३–६–१९२०

२२५. राजनैतिक बन्धुत्व[1]

फ्रीमैसनरी एक गुप्त ढंगकी संस्था है, जिसने मानवताके लिए की गई अपनी सेवाओंसे अधिक अपने गुप्त और कठोर नियमोंके चलते कुछ बहुत ही श्रेष्ठ बुद्धिवाले लोगोंको भी अपने वशमें कर रखा है। इसी प्रकार लगता है भारतके अफसर-वर्गको संचालित करनेवाली कोई गुप्त आचरण-संहिता है जिसके सामने महान् ब्रिटिश राष्ट्रके अच्छेसे-अच्छे व्यक्ति भी अपना माथा झुका देते हैं और अनजाने ही ऐसे भीषण अन्याय करनेके साधन बन जाते हैं जिसे अपने वैयक्तिक जीवनमें करना वे अपने लिए शर्मनाक मानेंगे। हंटर समितिकी बहुमत रिपोर्ट, भारत सरकारका खरीता[2] और भारत मन्त्री द्वारा दिया गया इसका उत्तर[3] पढ़कर यही धारणा बनती है। समितिके सदस्योंको लेकर कुछ समाचारपत्रोंमें जोरदार आपत्तियाँ की जानेके बावजूद, ऐसा कहा जा सकता था कि कुल मिलाकर जनता उसपर विश्वास करनेको तैयार थी, विशेषरूपसे इसलिए कि उसमें तीन भारतीय[4] भी थे, जिन्हें काफी हदतक स्वतन्त्र रायका माना जा सकता

१. देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५–३–१९२० ।

२. ३ मई, १९२० का खरीता, जिसमें हंटर समितिकी रिपोर्टका सार दिया हुआ है। देखिए परिशिष्ट ४ ।

३. २६ मई, १९२० को भेजा गया था । पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ५ ।

४. पंडित जगतनारायण, सर चिमनलाल सीतलवाड और सरदार सुल्तान अहमद खाँ ।

था। इस विश्वासको पहला धक्का उस समय लगा जब लॉर्ड हंटरकी समितिने कांग्रेस समितिकी इस अत्यन्त मामूली और उचित माँगको अस्वीकार कर दिया कि पंजाबके बन्दी नेताओंको अपने वकीलोंको मदद देनेके लिए हंटर समितिके सामने उपस्थित होनेकी अनुमति दी जाये। अगर तब भी किसीके मनमें कुछ विश्वास रह गया था तो इस समितिकी बहुमत रिपोर्टसे वह समाप्त हो गया है। जो परिणाम निकला उससे यही कहना पड़ता है कि इस सम्बन्धमें कांग्रेसका रवैया ठीक ही था। कांग्रेस समितिने जो साक्ष्य इकट्ठा किया है, उसे पढ़कर स्पष्ट विदित हो जाता है कि हंटर समितिने कितनी ही बातें जान-बूझकर अपने सामने नहीं आने दीं।

हंटर समितिकी अल्पमत रिपोर्ट[1] मरुस्थलमें जलाशयके समान है। इन हिन्दुस्तानी सदस्योंने जबरदस्त कठिनाइयोंके बावजूद जिस साहसके साथ अपने कर्त्तव्यका पालन किया उसके लिए वे अपने देशवासियोंके धन्यवादके पात्र हैं। सत्याग्रहके सविनय अवज्ञावाले रूपकी भर्त्सनामें उन्होंने जिस नरम स्वरमें योग दिया यदि वह भी न दिया होता तो कितना अच्छा होता। ३० मार्चको दिल्लीकी जनताने जिस उग्र भावनाका परिचय दिया[2] था केवल उसके आधारपर ही एक ऐसे महान् आध्यात्मिक आन्दोलनकी निन्दा करना अनुचित है, जिसका उद्देश्य सिद्धान्ततः और प्रकटतः जनसमूहकी हिंसात्मक प्रवृत्तियोंको शान्त करना, और अपराधमूलक अराजकताका सहारा लेनेके स्थानपर जब सरकार अपनी कारगुजारियोंसे सम्मानकी सारी पात्रता खो दे उस समय उसके विरोधमें सत्ताकी सविनय अवज्ञा करना है। ३० मार्चको तो सविनय अवज्ञा आरम्भतक नहीं की गई थी। संसारमें आजतक जहाँ-कहीं भी बड़े पैमानेपर जन-भावनाका प्रदर्शन हुआ है, वहाँ उस अवसरपर थोड़ा-बहुत उपद्रव अवश्य हुआ है। ३० मार्च और ६ अप्रैलके प्रदर्शन सत्याग्रहके नामपर न किये जाकर किसी और नामसे भी किये जा सकते थे। पर मेरा विचार है यदि लोगमें विनय और व्यवस्थाकी भावना न होती तो कानूनकी अवज्ञाने जैसा हिंसात्मक रूप दिल्लीमें ग्रहण किया, उससे कहीं अधिक भयंकर रूप धारण किया होता। अगर जनताने उतनी शीघ्रतासे सत्याग्रहके सिद्धान्तको स्वीकार न कर लिया होता तो हिंसाके उबालको सारे देशमें फैलनेसे इस तरहसे कारगर ढंगसे नहीं रोका जा सकता था। और आज भी जो लोगोंने अपने भीतरकी स्पष्ट बेचैनीको हिंसाके रूपमें फूट पड़नेसे रोक रखा है वह कुछ डायर साहबकी घोर बर्बरताको याद करके नहीं। सत्याग्रह लोगोंपर हावी हो गया है और जबरन् ही हावी हो गया है, उसीके कारण उनसे उपद्रव और हिंसाका और कदम नहीं उठाया जाता है। लेकिन मैं सत्याग्रहपर किये इन अनुचित आक्षेपोंके खिलाफ सफाई पेश करनेमें पाठकोंका अधिक समय नहीं लेना चाहता। यदि वास्तवमें सत्याग्रह भारतकी जनतापर अपना कुछ भी प्रभाव डालनेमें समर्थ हुआ है तो हंटर समितिके

१. हंटर समितिके अल्पसंख्यक भारतीय सदस्योंने अपनी अलग रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसका सार भारत सरकारके खरीतेमें दिया गया है। देखिए परिशिष्ट ४।

२. दिल्लीके सत्याग्रहियोंने रविवार, ३० मार्चका दिन, रौलट अधिनियमके विरुद्ध अपना रोष प्रकट करनेके लिए, राष्ट्रीय अपमान और प्रार्थना-दिवसके रूपमें मनाया था। भीड़ने कुछ उपद्रव किये थे।

अधिकांश सदस्योंने उसपर जो आक्षेप लगाये हैं और जिनका अंशतः समर्थन अल्पमत-वाले सदस्योंने भी किया है, उनसे भी कटु आक्षेपोंसे उसका कुछ नहीं विगड़ेगा। यदि रिपोर्टमें केवल इतना ही दोष होता, और यदि वह अन्य सव वातोंमें ठीक होती तो हम उसकी प्रशंसा ही करते; क्योंकि कुछ भी हो, राजनैतिक क्षेत्रमें सत्याग्रह एक नया ही प्रयोग है, और यदि कोई व्यक्ति जल्दवाजीमें किसी भी जन-अशान्तिकी जिम्मेदारी सत्याग्रहपर थोप दे तो उसे क्षम्य ही माना जायेगा।

जाँच समितिकी रिपोर्ट तथा भारत सरकारके खरीतोंमें जो इस प्रकार सर्वत्र विरुद्ध मत प्रकट किया गया है, उसका आधार कुछ ऐसी जानकारियाँ हैं, जो अत्यन्त दुःख पहुँचानेवाली हैं। उदाहरणके लिए इस रिपोर्टमें अधिकारियों द्वारा किये गये प्रत्येक अमानुषिक कार्यको प्रयत्नपूर्वक उचित सिद्ध करनेकी कोशिश की गई है; और यदि उनके कार्योंकी कहीं भर्त्सना की भी गई है तो वहीं जहाँ उसके विना काम ही नहीं चल सकता था। कारण यह था कि कहीं-कहीं स्वयं उन अधिकारियोंने अपने अन्यायपूर्ण कार्योंको कुछ इस भावसे स्वीकार कर लेनेकी धृष्टता दिखाई थी कि उन्होंने ऐसा करके कुछ बुरा नहीं किया। जनरल डायर द्वारा अपनी करनी कवूल करनेके वावजूद उनके वचावमें तर्क प्रस्तुत किये गये हैं। सर माइकेल ओ'डायरके ही संकेतपर उनके मातहतोंने अत्याचारपूर्ण कार्य किये थे, फिर भी रिपोर्टमें उनकी प्रशंसा की गई है। यह भी ध्यान देनेकी वात है कि समितिने अप्रैलकी दुर्घटनाओंके[1] पहले, सर माइकेलने जो कुछ किया था, उसकी परीक्षा तथा जाँच करनेसे इनकार कर दिया। उनका आचरण इतना दोषपूर्ण था कि समितिको उसपर न्यायिक तौरपर ध्यान देना चाहिए था। अधिकारीवर्गकी ओरसे जो वातें कही गईं उन्हींपर भरोसा न करके, समितिको उचित था कि वह खुद उपद्रवके असली कारणोंको ढूँढ़ निकालनेकी चेष्टा करती। इन उपद्रवोंकी असलियतका पता लगानेके लिए उसे हर तरहके उपायोंका प्रयोग करना चाहिए था। प्रयासपूर्वक अधिकारियों द्वारा खड़ी की गई झूठकी दीवारको वेध-कर सचाईका पता चलानेके वजाय समितिने केवल सरकारी वयानोंपर भरोसा करना ही ठीक माना। यदि यह उसका आलस्य था तो अपराधपूर्ण आलस्य था। समितिकी रिपोर्ट तथा भारत सरकारके खरीतोंको पढ़कर यही धारणा वनती है कि इसके द्वारा अधिकारीवर्गकी उच्छृंखलताको माफ करनेकी कोशिश की गई है। जनरल डायर द्वारा किये गये कत्लेआम तथा पेटके वल रेंगनेकी घृणित आज्ञाकी जिस तरह वच-वचकर और अनिच्छासे निन्दा की गई है, उसे पढ़कर पाठकके मनमें और भी निराशा छा जाती है, और वह साफ देखता है कि यह रिपोर्ट अधिकारियों द्वारा अपनी काली करतूतोंपर पर्दा डालनेकी कोशिश-मात्र है। इस रिपोर्ट तथा भारत सरकारके खरीतों-की निन्दा सभी देशी पत्रोंने की है, चाहे वे नरम दलके रहे हों या गरम दलके। इसलिए उनकी यहाँ सविस्तार समीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं। प्रश्न यह है कि अधि-कारियोंके अन्यायको उचित ठहरानेके इस गुप्त षड्यन्त्रका — चाहे गोपनीयता विलकुल अनजाने ही क्यों न वरती गई हो — भंडाफोड़ कैसे किया जाये। यदि भारतको

१. अप्रैल १९१९ की घटनाएँ।

साम्राज्यमें एक स्वतन्त्र साझीदार होना है, यदि उसे अपने आत्म-गौरवका जरा भी खयाल है तो यह राष्ट्र ऐसे किसी षड्यन्त्रको सहन नहीं कर सकता। इस रिपोर्टके प्रकाशित होनेसे जो स्थिति उत्पन्न हो गई है उसपर तथा अन्य अनेक विषयोंपर विचार करनेके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने कांग्रेसका विशेष अधिवेशन[1] बुलानेका निश्चय किया है। मेरे मतसे वह समय आ गया है कि जब हमें कारगर कार्रवाईके लिए केवल संसदमें प्रार्थनापत्र भेजकर ही सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए। प्रार्थनापत्रोंका मूल्य तभी समझा जायेगा, जब प्रार्थी राष्ट्रमें अपनी बात स्वीकार करवानेकी शक्ति भी हो। तब हम लोगोंमें ऐसी कौन-सी शक्ति है? जब हम लोगोंका पक्का विश्वास है कि हमारे साथ घोर अन्याय किया गया है और जब सबसे बड़े अधिकारीके पास प्रार्थनापत्र भेजनेपर भी हमारे साथ न्याय नहीं किया गया, तब उस अन्यायके प्रतिकारके लिए हमारे हाथमें किसी शक्तिका होना आवश्यक है। यह ठीक है कि अधिकांश मामलोंमें साधारण कार्रवाईके असफल हो जानेपर प्रजाका कर्त्तव्य है कि वह चुप्पी लगाकर उस अन्यायको तबतक बरदाश्त करती जाये जबतक कि उसके किसी मर्मपर आघात न पहुँचे। पर प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्रको यह अधिकार है और उसका कर्त्तव्य भी है कि यदि कोई असहनीय अन्याय किया जाये तो वह उसका विरोध करे। मैं सशस्त्र विद्रोहमें विश्वास नहीं करता। यह उपचार तो उस बीमारीसे बुरा है जिसे दूर करनेके लिए यह उपचार किया जाता है। प्रतिहिंसा अधीरता तथा क्रोधका चिह्न है। हिंसाका अन्तिम परिणाम कभी भी सुखदायी नहीं हो सकता। जर्मनीके मुकाबलेमें मित्र-राष्ट्रोंने शस्त्रका प्रयोग किया। उसका क्या परिणाम निकला? जर्मनीका जैसा चित्र उन देशोंने हमारे सामने खींचा था, क्या उनकी स्वयंकी अवस्था भी वैसी ही नहीं हो गई है?

हमारे पास इससे अच्छा तरीका है। हिंसाके तरीकेके विपरीत, इस तरीकेमें आत्म-नियंत्रण तथा धैर्यकी आवश्यकता तो निस्सन्देह है ही, पर साथ-ही-साथ दृढ़ निश्चयकी भी आवश्यकता है। इस तरीकेका मतलब है, हम किसी भी प्रकारके अन्याय-कर्ममें सहयोग नहीं देंगे। आजतक कोई भी जालिम अपने जुल्ममें तबतक सफलता नहीं प्राप्त कर सका है जबतक जुल्म सहनेवाले स्वयं उसका साथ न दें, भले ही वह जालिम बलप्रयोगसे ही उनका सहयोग क्यों न प्राप्त करे। अधिकतर लोग अत्याचारीकी इच्छाका प्रतिरोध करके उसके परिणामोंको भोगनेके बजाय उसके सामने झुक जाना ही ज्यादा ठीक समझते हैं, और यही कारण है कि अत्याचारीके तरीकोंमें आतंकवाद एक आवश्यक अस्त्र होता है। लेकिन इतिहासमें ऐसे भी अनेक उदाहरण मौजूद हैं, जब आततायी आतंकके बलपर, उत्पीड़ित लोगोंसे, अपनी बात मनवानेमें असमर्थ रहे हैं। भारतके लिए भी इस समय विचारका प्रश्न उपस्थित हो गया है। यदि हम लोग यह मानते हैं कि पंजाब सरकारके कार्य ऐसे अन्यायके कार्य हैं जिन्हें सहन नहीं किया जा सकता, यदि लॉर्ड हंटरकी समितिकी रिपोर्ट तथा भारत सरकारके दोनों खरीतोंको हम इसलिए और भी ज्यादा अन्यायपूर्ण मानते हैं कि इनमें अधिकारियोंकी अन्यायपूर्ण कार्रवाईयोंको ढाँकनेका प्रयत्न किया गया है तो यह स्पष्ट है कि हम

१. कलकत्तामें, सितम्बर १९२० में।

लोगोंको अधिकारियोंके अत्याचारको कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिए। आवश्यक समझें तो संसदके पास शौकसे प्रार्थनापत्र भेजें, पर यदि संसद हमारे साथ न्याय न करे, और यदि हम अपनेको एक राष्ट्र कह सकनेके योग्य हैं तो हमें चाहिए कि हम उसे अपना सहयोग देनेसे इनकार करके यह स्पष्ट कर दें कि उसके अस्तित्वको कायम रखनेमें हम कोई योग नहीं देना चाहते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९–६–१९२०

२२६. मुसलमानोंका निर्णय

इलाहाबादकी खिलाफत सभाने[1] सर्वसम्मतिसे असहयोगके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है, और एक विस्तृत कार्यक्रम निश्चित और कार्यान्वित करनेके लिए एक समिति नियुक्त की है। इस सभाके पहले हिन्दू-मुसलमानोंकी एक संयुक्त सभा भी की गई थी, जिसमें हिन्दू नेताओंसे अपना-अपना मत प्रकट करनेके लिए कहा गया।[2] उस सभामें श्रीमती बेसेंट, माननीय पण्डित मालवीयजी, माननीय डाक्टर सप्रू,[3] मोतीलाल नेहरू, चिन्तामणि[4] आदि प्रमुख नेता उपस्थित थे। भिन्न-भिन्न मतोंके हिन्दू नेताओंको उनकी राय जाननेके लिए निमन्त्रित करके खिलाफत समितिने बुद्धिमानीका काम किया। श्रीमती बेसेंट तथा डाक्टर तेजबहादुर सप्रूने मुसलमानोंको जोरदार शब्दोंमें असहयोगकी वर्तमान नीतिको माननेकी सलाह दी। अन्य हिन्दू नेताओंने पहलू बचाकर भाषण दिये। इन नेताओंने अपने भाषणोंमें सिद्धान्ततः तो असहयोग आन्दोलनको स्वीकार किया, पर उसके संचालनमें अनेक तरहकी व्यावहारिक कठिनाइयाँ बताईं। उन्हें इस बातका भी भय था कि यदि मुसलमानोंने अफगानोंको भारतपर आक्रमणके लिए निमन्त्रित किया तो बखेड़ा मच सकता है।[5] इसपर मुसलमान वक्ताओंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि यदि कोई भी विदेशी शक्ति भारतपर आक्रमण कर उसे अपने अधीन करनेकी चेष्टा करेगी तो उसके प्रतिरोधमें एक-एक मुसलमान बलिदान हो जायेगा, किन्तु उन्होंने यह बात भी स्पष्ट रूपसे कही कि यदि कोई बाहरी शक्ति

१. यह सभा खिलाफत समितिके तत्त्वावधानमें ९ जून, १९२० को हुई थी।

२. देखिए "भाषण: खिलाफत समितिकी बैठकमें", ३–६–१९२० की पाद-टिप्पणी १।

३. सर तेजबहादुर अम्बिकाप्रसाद सप्रू (१८७५–१९४९); प्रसिद्ध वकील; १९२०-२२ में वाइसरायकी कार्यकारिणीमें कानून-सदस्य; १९२३ और फिर १९२७ में लिबरल फेडरेशनके अध्यक्ष।

४. सर चि० य० चिन्तामणि (१८८०–१९४१); प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक और राजनीतिज्ञ; इलाहाबादके अंग्रेजी दैनिक *लीडर*के सम्पादक; १९२० तथा '३७ में लिबरल फेडरेशनके अध्यक्ष।

५. तृतीय अफगान-युद्धकी समाप्तिके बाद अगस्त १९१९ में शान्ति-सन्धि होनेके बाद भी भारत और अफगान सरकारोंके सम्बन्ध तनावपूर्ण ही थे। सीमान्त क्षेत्रोंमें लगातार संघर्षोंके कारण अप्रैल १९२० में दोनों सरकारोंके बीच मसूरीमें होनेवाली वार्ता एक माहतक स्थगित रही थी।

इस्लामकी प्रतिष्ठाकी रक्षा और न्याय दिलानेके लिए भारतपर आक्रमण करेगी तो वे उसे वास्तविक सहायता न भी दें, पर उसके साथ उनकी पूरी सहानुभूति होगी। हिन्दुओंकी आशंका समझमें आती है और वह उचित भी है। पर मुसलमानोंकी स्थितिका विरोध करना भी कठिन है। तब मेरे विचारसे अगर भारतको इस्लामकी शक्तियों और अंग्रेजी ताकतके बीच संघर्ष नहीं होने देना है तो उसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि हिन्दू लोग असहयोगको पूरी तरह सफल बनायें, और वह भी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी। और मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि मुसलमान लोग अपने घोषित इरादोंपर डटे रहे, आत्मसंयमसे काम ले सके और बलिदान कर सके, तो हिन्दू लोग भी अपने वादेके अनुसार अवश्य ही उनका साथ देंगे और असहयोग आन्दोलनमें शरीक होंगे। लेकिन साथ ही मुझे इस बातका भी उतना ही अधिक भरोसा है कि हिन्दू लोग ब्रिटिश सरकार तथा उनके मित्र-देश और अफगानिस्तानके बीच युद्धकी स्थिति पैदा करनेमें मुसलमानोंकी सहायता नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सेना इतनी संगठित है कि कोई भी विदेशी शक्ति सहज ही भारतपर सफल आक्रमण नहीं कर सकती। इसलिए मुसलमानोंके लिए इस्लामकी सम्मान-रक्षाके लिए प्रभावशाली ढंगसे संघर्ष चलानेका एक उपाय यही है कि वे पूरी लगनसे असहयोगका रास्ता अपनायें। यदि लोगोंने व्यापक पैमानेपर इसे अपनाया तो वह केवल प्रभावकारी ही नहीं होगा, बल्कि प्रत्येक व्यक्तिको इसमें अपनी सद्-असद् बुद्धिका प्रयोग करनेकी भी पूरी छूट रहेगी। यदि मैं किसी व्यक्ति-विशेष या संस्थाके अन्याययुक्त आचरणको नहीं सहन कर सकता और यदि मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे उस व्यक्ति या संस्थाका समर्थन करता हूँ तो इसके लिए मुझे ईश्वरके सामने जवाबदेह होना पड़ेगा। किन्तु अगर मैं ऊपर बताये गये तरीकेसे अन्यायाचरणका समर्थन नहीं करता तो इसका मतलब होगा कि अन्यायीतक के अहित करनेका वर्जन करनेवाले नैतिक नियमके अनुरूप मुझसे जो-कुछ बन सकता था, मैंने किया। इसलिए ऐसे महान् अस्त्रका प्रयोग करनेमें जल्दबाजी अथवा क्रोधसे काम नहीं लेना चाहिए। असहयोग आन्दोलन हर तरहसे आत्मप्रेरित होना चाहिए। इसलिए सब-कुछ मुसलमानोंपर ही निर्भर करता है। यदि उन्होंने अपनी सहायता आप की तो हिन्दुओंकी सहायता उन्हें अवश्य प्राप्त होगी और सरकारको, चाहे वह कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, अवश्य ही इस दुर्निवार शक्तिके सामने झुकना पड़ेगा। किसी राष्ट्रकी समस्त जनताके रक्तपात-विहीन विरोधका सामना सम्भवतः कोई भी सरकार नहीं कर सकती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९–६–१९२०

२२७. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

१३ जून, १९२०

खबर है कि दक्षिण आफ्रिकी आयोगने प्रवासियोंको स्वदेश वापस भेजनेकी एक योजनाकी सिफारिश की है और संघ-सरकारने उसे स्वीकार कर लिया है। ऐसा लगता है कि इस योजनाको आमतौरपर पसन्द किया गया है। लेकिन मैं लोगोंको नम्रतापूर्वक आगाह कर देना चाहूँगा कि वे प्रस्तावित योजनाको स्वीकार न करें।[2]

जनताके सामने आयोगकी अन्तरिम रिपोर्ट नहीं आई है। हम नहीं जानते कि स्वदेश वापसीकी शर्तें क्या हैं। जिस योजनाकी हमें ठीक और पूरी जानकारी ही नहीं है उसके सम्बन्धमें कोई विचार व्यक्त करनेमें मुझे तो बहुत खतरा दिखाई देता है। मोटे तौरपर कहें तो प्रवासियोंको स्वदेश लौटानेकी किसी भी योजनाको बहुत ही सन्देह और आशंकाकी दृष्टिसे ही देखना चाहिए, विशेषकर तब जब कि यह योजना उन लोगोंने बनाई हो जो भारतीयोंकी आकांक्षाओंके कट्टर विरोधी हैं। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय दक्षिण आफ्रिकामें इसलिए बने हुए हैं क्योंकि वे वहाँके अधिवासी हैं। मुझे तो बहुत डर है कि प्रस्तावित योजनामें ऐसी कोई बात होगी जिसके अनुसार भारतीयोंको स्वदेश लौटनेके प्रतिदानस्वरूप एक छोटी-सी रकम देकर उनसे उनके अधिवासका अधिकार छीन लिया जायेगा; इस रकममें भारत लौटनेके लिए जहाज़का खर्चा-भाड़ा और शायद थोड़ा-बहुत जेब-खर्च शामिल होगा। वैसे तो और भी बहुत-से कारण हैं जिनके चलते इस महत्त्वपूर्ण अधिकारको छोड़ा नहीं जा सकता, लेकिन अगर हम सिर्फ इस प्रतिदानकी दृष्टिसे ही देखें तो यह इस महत्त्वपूर्ण अधिकारके त्यागको देखते सर्वथा अपर्याप्त है। मैं तो स्वदेश वापसीके इस तरीकेको कभी भी विशुद्ध रूपसे स्वेच्छाप्रेरित नहीं मान सकता।

लेकिन यह तो प्रस्तावित योजनाके विरुद्ध जो आपत्तियाँ उठाई जा सकती हैं, उनमें से सिर्फ एक है। मैं तो निस्सन्देह सबसे अच्छा यह मानता हूँ कि जबतक हमारे परीक्षणके लिए पूरी योजना सामने नहीं आ जाती तबतक हम इसके

१. दक्षिण आफ्रिकामें प्रवासियोंकी स्थितिपर विचार करनेके लिए एक जाँच आयोग नियुक्त किया गया था जिसकी बैठक मार्च १९२० में शुरू हुई थी। गांधीजीने यह वक्तव्य इसी आयोगकी सिफारिशोंके सम्बन्धमें दिया था।

२. इंडिया इन १९२० नामक पुस्तकके अनुसार "अन्तरिम रिपोर्टमें सिफारिश की गई थी कि जो भारतीय स्वदेश वापस लौटनेके इच्छुक हैं उन्हें स्वदेश लौटनेको प्रोत्साहित करनेके लिए संघ-सरकार द्वारा सभी सुविधाएँ दी जानी चाहिए जिनमें जहाजोंकी व्यवस्था करना और स्वर्ण-निर्यात सम्बन्धी प्रतिबन्धमें ढील देना भी शामिल हो।"

सम्बन्धमें कोई राय देना स्थगित ही रखें। आशा है इस योजनाके सम्बन्धमें अपने निर्णय घोषित करनेसे पूर्व भारत सरकार इसपर जनताके विचार अवश्य जान लेगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४–६–१९२०

२२८. पत्र: एन० सी० केलकर और अन्य लोगोंको[1]

[१५ जून, १९२० के आसपास][2]

प्रिय श्री केलकर,

खेद है . . . कि मैं कांग्रेस संविधान . . . में शामिल नहीं हो सका। मैं अब आपको अपना मसविदा[3] भेज रहा हूँ। आप देखेंगे कि मेरा उद्देश्य इसे अधिकसे-अधिक सरल और प्रभावशाली बनानेका रहा है। साथ ही मैंने इस बातकी भी पूरी कोशिश की है कि एक ओर तो कांग्रेसमें सभी दलों और सभी प्रकारके विचारोंका प्रतिनिधित्व हो, लेकिन दूसरी ओर सबसे ऊँचा स्वर उस विचारका हो जो देशको सबसे अधिक ग्राह्य हो। आप यह भी देखेंगे कि इसके . . . अन्तर्गत कांग्रेस . . . प्रदर्शनात्मक प्रभाव अक्षुण्ण बना रहता है। इस मसविदेको आप विवेचनात्मक दृष्टिसे पढ़ जायें और जहाँ सहमत न हों, मुझे निस्संकोच बतायें।

जब मैंने खुद इतना समय ले लिया तो आपसे जल्दी करनेको कैसे कहूँ! लेकिन मैं जानता हूँ कि आप इस ओर यथासम्भव जल्दसे-जल्द ध्यान देंगे। अगर कोई . . . तब तो हमें मिलना ही होगा। आजकल मैं आमतौरपर बम्बईमें ही रहता हूँ, इसलिए

१. गांधीजीकी लिखावटमें पेंसिलसे तैयार किया गया उपलब्ध मसविदा ही इस पत्रका साधन-सूत्र है, लेकिन वह कई स्थलोंपर कटा-फटा है, जिससे बहुत-से शब्द पढ़े नहीं जा सके।

२. दिसम्बर १९१९ के कांग्रेस अधिवेशनमें गांधीजीसे कांग्रेसके संविधानमें सुधार करनेको कहा गया था। संशोधित मसविदा कांग्रेसके सामने कलकत्तेमें सितम्बर १९२० में पेश किया गया। केलकरको लिखे अपने २ जुलाई, १९२० के पत्रमें गांधीजीने केलकरके उस पत्रकी प्राप्तिकी सूचना दी है जिसमें उन्होंने गांधीजीके मसविदेकी आलोचना की थी। इसलिए यह पत्र, जिसके साथ केलकरको उक्त मसविदा भेजा गया था, उससे एकाध पखवारा पहले ही लिखा गया होगा। इसके अलावा जून महीनेमें गांधीजी अधिकांशतः बम्बईमें ही रहे, जहाँ वे बराबर चाहते रहे कि केलकर उनसे सम्पर्क स्थापित करें। इसलिए लगता है यह पत्र १९२० के मध्य जूनके आसपास ही लिखा गया होगा।

३. यह उपलब्ध नहीं है।

अगर हम लोग वहीं मिलें तो . . . समयकी बहुत बचत हो। मेरे लिए तो कोई भी दिन ठीक रहेगा।

हृदयसे आपका,

एन० सी० केलकर, पूना
रंगास्वामी आयंगर
'हिन्दू कार्यालय', मद्रास
श्री आई० बी० सेन
मार्फत—श्री सी० आर० दास
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७४२०) से।

२२९. कष्टसहन अनिवार्य

यातनाकी आगमें तपे बिना आजतक किसी भी राष्ट्रका उत्थान नहीं हो सका है। बच्चेकी रक्षाके लिए माता अनेक तरहकी यातनाएँ सहती है। अंकुर उगनेके लिए सबसे पहले बीजको सड़ना पड़ता है। मरणमें से ही जीवनकी उत्पत्ति होती है। क्या भारत कष्टसहन द्वारा शुद्धिकरणके इस प्राकृतिक नियमका पालन किये बिना गुलामीसे अपना उद्धार कर सकेगा ?

यदि मेरे सलाहकारोंकी धारणा सही हो, तब तो भारत बिना किसी कष्टसहनके ही अपनी अभिलाषा पूरी कर लेगा। उन लोगोंकी मुख्य चिन्ता यही है कि अप्रैल १९१९की घटनाओंकी पुनरावृत्ति न हो। वे असहयोगसे इसलिए डरते हैं कि उसमें बहुत लोगोंको कष्टसहन करना होगा। यदि हैम्डनने इस प्रकार सोचा होता तो उसने जहाजी बेड़ा-कर (शिप मनी) देनेसे इनकार न किया होता, और न टेलरने ही विद्रोह-का झण्डा खड़ा किया होता। इंग्लैंड और फ्रांसके इतिहास इस तरहके उदाहरणोंसे भरे हैं कि यातनाओं और अत्याचारोंकी परवाह न करके लोगोंने जो ठीक समझा, वे उसे करते रहे हैं। उन लोगोंने इस बातका क्षण-भरके लिए भी विचार नहीं किया कि कहीं उनके कारण निर्दोष लोगोंको अनचाहे ही कष्ट तो नहीं सहन करने होंगे। तो फिर हम अपना इतिहास दूसरी तरह लिखे जानेकी आशा क्यों करें? यह हो सकता है कि अगर हम अपने पूर्ववर्तियोंकी भूलों और त्रुटियोंसे लाभ उठाना चाहें तो उनसे लाभ उठाकर अच्छा कार्य करें, लेकिन यह असम्भव है कि कष्टसहनके नियमको ही बरतरफ कर दें, क्योंकि वह तो हमारे अस्तित्वका एक अपरिहार्य अंग है। अपने पूर्व-वर्तियोंसे ज्यादा बेहतर काम करनेका तरीका यह है कि यदि हम कर सकें तो अपनी ओरसे हिंसाको बचायें और इस प्रकार प्रगतिकी रफ्तार तेज करें तथा कष्टसहनके

तरीकोंमें ज्यादा शुद्धता लायें। अगर हम चाहें तो ऐसा कर सकते हैं कि अन्यायकर्त्ताको अपनी इच्छाके आगे झुकानेके लिए, अधीर होकर पशु-बलका प्रयोग न करें, जैसा कि आजकल सिन-फैन दलके लोग कर रहे हैं, और न हम अपने पड़ोसियोंको अपने तरीके अपनानेके लिए उनपर दबाव डालें जैसा कि पिछले वर्ष हड़तालके सिलसिलेमें हममें से कुछ लोगोंने किया था। कितनी प्रगति हुई, इसे इस प्रकार मापा जायेगा कि कष्टसहन करनेवालोंने कितना कष्टसहन किया। कष्टसहन जितना ही शुद्ध होगा उतनी ही अधिक हमारी प्रगति होगी। इसी कारण ईसामसीहका बलिदान दुःखसे भरे संसारको कष्ट-मुक्त करनेके लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ। अपने सिद्धान्तोंको लेकर आगे बढ़ते समय उन्होंने इस बातका विचार नहीं किया कि उनके पड़ोसियोंको स्वेच्छासे या अन्यथा कितनी यातना सहनी पड़ रही है। इसी तरह हरिश्चन्द्रने जो कष्ट सहे वे ही इस जगत्में पुनः सत्यका अटल साम्राज्य स्थापित करनेके लिए पर्याप्त सिद्ध हुए। उन्हें अवश्य ही यह विदित रहा होगा कि उनके सिंहासन त्यागसे उनकी प्रजाको अनचाहे ही कष्ट सहन करना पड़ेगा। पर उसकी उन्होंने परवाह नहीं की, क्योंकि यदि वे उस विचारमें पड़ जाते तो सत्यका पालन नहीं कर पाते।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मुझे जलियाँवाला बाग हत्याकाण्डका उतना दुःख नहीं है जितना कि हमने जो अंग्रेजोंकी हत्याकी और धन-सम्पत्तिको क्षति पहुँचाई, उसका है।[1] अमृतसर-काण्डकी भयंकरताने लोगोंका ध्यान लाहौरकी भयंकरतासे हटाकर अपनी ओर खींच लिया, हालाँकि लाहौरमें जो-कुछ हो रहा था वह अमृतसरसे भी अधिक भयंकर था, क्योंकि वहाँ लोगोंको धीरे-धीरे सर्वथा पुंसत्वहीन बना देनेका प्रयत्न किया जा रहा था। पर यदि हम अपना उत्थान चाहते हैं तो हमें इस तरहकी यातनाएँ तबतक भोगते रहना पड़ेगा, जबतक हम स्वेच्छापूर्वक कष्टसहन करना और उसीमें सुखका अनुभव करना नहीं सीख जायेंगे। मेरा पक्का विश्वास है कि लाहौरवालों पर जो अत्याचार किया गया, उसके वे पात्र नहीं थे।[2] न तो उन्होंने किसी अंग्रेजको कोई चोट पहुँचाई थी और न किसीकी सम्पत्तिको बरबाद किया था। वे तो सिर्फ दासताके कष्टकर जुएको अपने कंधोंसे उतार फेंकनेका प्रयत्न कर रहे थे, लेकिन एक स्वेच्छाचारी शासक उनके इस उत्साहको तोड़ देनेके लिए संकल्प किये बैठा था। और यदि मुझसे यह कहा जाये कि इन सबका कारण मेरी सत्याग्रहकी शिक्षा ही थी तो मेरा उत्तर है कि जबतक मुझमें साँस बाकी है, मैं इसका और जोरशोरसे प्रचार करूँगा और जनतासे कहूँगा कि अगली बार ओ'डायरी मदान्धताके जवाबमें आप अपनी दूकानें मालकी जबरन् बिक्रीके डरसे न खोलें बल्कि अत्याचारीको मनमानी कर लेने दें और अपना सारा माल बिक जाने दें — केवल अपनी आत्माको बचाये रखें, उसे न बेचें। प्राचीन समयके ऋषि लोग अपने शरीरको यातनाओंसे तपा डालते थे, ताकि उनकी आत्मा स्वतन्त्र हो सके, उनकी तपाई हुई कायामें कष्ट सहनकी उतनी क्षमता आ जाये कि उनसे अपनी बात मनवानेके लिए अत्याचारी लोग जो भी अत्या-

१ और २. देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५-३-१९२० ।

चार करें उसका उनपर कोई असर न हो। और यदि भारत अपने प्राचीन ज्ञानको पुनः प्राप्त करना चाहता है, यदि वह यूरोपकी बुराइयोंसे अपनी रक्षा करना चाहता है, यदि वह इस पृथ्वीपर स्वर्गकी स्थापना करना चाहता है और शैतानके राज्यका मूलोच्छेदन चाहता है, जिसने इस समय यूरोपको ग्रस रखा है, तो वह सुन्दर शब्दोंके या उन बौद्धिक बारीकियोंके जालमें न फँसे, जिसने उसे चारों ओरसे घेर रखा है; उसे जिन कष्टोंसे होकर गुजरना पड़ सकता है उनका खयाल करके डिग न जाये, बल्कि वह देखे कि यूरोपमें आज क्या हो रहा है। और उससे यह शिक्षा ग्रहण करे कि जैसे यूरोपको कष्टोंसे गुजरना पड़ा है वैसे ही उसे भी गुजरना है, लेकिन यूरोपसे भिन्न, उसे दूसरोंको कष्ट देनेसे बचना है। जर्मनी यूरोपपर अपना प्रभुत्व चाहता था और मित्र-राष्ट्र भी उसे पराजित करके वही प्राप्त करना चाहते थे। परिणाम क्या हुआ? जर्मनीका पतन हुआ पर यूरोपकी दशामें किसी तरहका सुधार नहीं हुआ। मित्र-राष्ट्र भी वैसे ही धोखेबाज, क्रूर, लोलुप और स्वार्थी निकले जैसा जर्मनी था या होता। कमसे-कम वह उस तरहकी ऊँची-ऊँची बातोंका दिखावा तो न करता जो मित्र-राष्ट्र अपने कार्योंमें कर रहे हैं।

जिन भूलोंके लिए मैंने गत वर्ष खेद प्रकट किया था, उनका सम्बन्ध जनताको दिये गये कष्टोंसे नहीं, बल्कि जनता द्वारा की हुई गलतियों, और सत्याग्रह सिद्धान्तको ठीकसे समझ न पानेके कारण उसने जो हिंसा की उससे था। तब कष्टसहनकी दृष्टिसे विचार करनेपर असहयोगका क्या अर्थ है? जो सरकार हम लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध हमपर शासन कर रही है, उसके साथ सहयोग न करनेके कारण हमें जो हानियाँ और असुविधाएँ उठानी पड़ें, उन्हें हम स्वेच्छापूर्वक सहन करें। थोरोने लिखा है कि बेईमान और अन्यायी सरकारके शासनमें समृद्ध और धनी होना पाप है, अधिकार शाप है; वहाँ तो निर्धन रहना ही गुण है। यह सम्भव है कि संक्रान्तिकी अवस्थामें हम लोग भूलें करें, हमें ऐसी यातनाएँ सहनी पड़ें, जिन्हें हम रोक सकते थे; पर राष्ट्रको पुंसत्वहीन होने देनेकी बनिस्बत मेरी समझमें इन यातनाओंको भोगना अच्छा है।

अन्याय करनेवालेको अपने अन्यायका भान हो और वह उसके निराकरणके लिए तैयार हो, उस समयतक हमें प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। इस भयसे कि हमारे इस तरहके आचरणसे हमें या अन्यको किसी तरहकी यातना भोगनी पड़ेगी, हमें उस अन्यायमें नहीं शामिल होना चाहिए। इसके विपरीत हमें अन्यायकर्त्ताके साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी भी रूपमें सहयोग न करके अन्यायका मुकाबला करना चाहिए।

यदि पिता अन्याय करता है तो पुत्रका यह धर्म है कि वह पिताका साथ छोड़ दे। यदि किसी स्कूलका प्रधानाध्यापक स्कूलको अनैतिक आधारपर चलाता है तो छात्रोंका धर्म है कि वे फौरन उस स्कूलको छोड़ दें। यदि किसी संस्थाका अध्यक्ष भ्रष्टाचारी है तो उस संस्थाके सदस्योंका धर्म है कि वे उस संस्थासे अलग हो जायें और उसके भ्रष्टाचारमें सहायक न हों। इसी तरह यदि कोई सरकार अन्याय करती है तो प्रजाका धर्म है कि वह सरकारको उस अन्यायसे विमुख करानेके लिये पूर्णतः या अंशतः उसके साथ जितना असहयोग करना जरूरी हो, करे। दोनों ही तरहके असह-

योगमें कष्ट-सहन एक आवश्यक तत्त्व है; चाहे यह कष्ट मानसिक हो या शारीरिक। इस प्रकार कष्ट-सहनके बिना स्वराज्य असम्भव है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-६-१९२०

२३०. मद्रासमें हिन्दी

मुझे पक्का विश्वास है कि किसी दिन हमारे द्रविड़ भाई-बहन गम्भीर भावसे हिन्दीका अध्ययन करने लगेंगे। आज अंग्रेजी भाषापर अधिकार प्राप्त करनेके लिए वे जितनी मेहनत करते हैं, उसका आठवाँ हिस्सा भी हिन्दी सीखनेमें करें, तो बाकी हिन्दुस्तान जो आज उनके लिए बन्द किताबकी तरह है, उससे वे परिचित होंगे और हमारे साथ उनका ऐसा तादात्म्य स्थापित हो जायेगा जैसा पहले कभी न था। मैं जानता हूँ कि इसपर कुछ लोग यह कहेंगे कि यह दलील तो दोनों ओर लागू होती है। द्रविड़ लोगोंकी संख्या कम है; इसलिए राष्ट्रीय शक्तिकी बचतकी दृष्टिसे, बजाय इसके कि द्रविड़-भारतसे समागमके लिए सारे द्रविड़ेतर भारतके लोग, तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ सीखें, द्रविड़ोंको ही शेष भारतकी आम भाषा सीखनी चाहिए। इसी हेतुसे पिछले अठारह महीनोंसे इलाहाबादके हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी देख-रेखमें मद्रास प्रान्तमें हिन्दी-प्रचारका काम जोरोंसे चल रहा है। पिछले हफ्ते बम्बईमें अग्रवाल मारवाड़ी सम्मेलन हुआ था। मेरी अपीलके जवाबमें इस सम्मेलनमें उपस्थित बम्बई और कलकत्तेके धनिक मारवाड़ियोंने वहींके-वहीं मद्रास प्रान्तमें पाँच सालतक हिन्दी-प्रचारका काम करनेके लिए ५०,००० रुपयेका चन्दा दे दिया। उन्होंने एक बार फिर यह दिखा दिया है कि हिन्दीका कार्य भारतके इस रईस व्यापारी-वर्गकी विशेषता है। इस उदारताके कारण इलाहाबादके सम्मेलनकी और उन द्रविड़ भाई-बहनोंकी जिम्मेदारी बढ़ जाती है, जो मेरी ही तरह यह मानते हैं कि राष्ट्रीयताके सम्पूर्ण विकासके लिए मद्रासवालोंको हिन्दी सीख लेनी चाहिए। कोई भी द्रविड़ यह न सोचे कि हिन्दी सीखना जरा भी मुश्किल है। अगर रोजके मनोरंजनके समयमें से नियमित ढंगसे थोड़ा समय निकालकर इस काममें लगाया जाये, तो कोई भी साधारण आदमी एक सालमें हिन्दी सीख सकता है। मैं तो यह भी सुझाऊँगा कि अब बड़ी-बड़ी नगर-पालिकाएँ अपने-अपने स्कूलोंमें वैकल्पिक विषयके रूपमें हिन्दीकी पढ़ाई आरम्भ कर दें। मैं अपने अनुभवसे यह कह सकता हूँ कि द्रविड़ बालक बहुत आसानीसे हिन्दी सीख लेते हैं। यह बात शायद ही कोई जानता हो कि दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले सभी तमिल-तेलुगु-भाषी लोग हिन्दीमें खूब अच्छी तरह बातचीत कर सकते हैं। इसलिए मैं यह आशा करता हूँ कि मारवाड़ियोंकी उदारतासे मुफ्त हिन्दी सीखनेकी जो सहूलियत हो गई है, मद्रासके नौजवान उसकी कद्र करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-६-१९२०

२३१. पत्र : खम्भाताको

वम्वई
१८ जून, १९२०

प्रिय श्री खम्भाता,

आपका कृपा पत्र मिला और उड़ीसा-संकट कोषके लिए सौ रुपये भी प्राप्त हुए — इसके लिए आपको धन्यवाद। मैं आपकी इस इच्छाका कि आपका नाम न छापा जाये, पालन करूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ७५३३) की फोटो-नकलसे।

२३२. पत्र : साकरलालको

लैबर्नम रोड
गामदेवी, वम्वई
शुक्रवार [१८ जून, १९२०][१]

भाईश्री साकरलाल,

अभी-अभी भाई व्रजलालके[२] विषयमें तार मिला। एक अकेले तुमने ही मणि-तुल्य भाई नहीं खोया है, हम सबने ही भाई समान अमूल्य साथीको खोया है। उनकी पवित्र आत्मा तो इस समय ऊँचे स्थानपर विराजमान है। पारमार्थिक जीवनका अर्थ भाई व्रजलालने [अपने उदाहरण द्वारा] अत्यन्त सुन्दर ढंगसे प्रदर्शित किया। आपको दुःख तो अवश्य ही होगा; लेकिन उनका जीवन सुन्दर था और आपके दुःखमें हम सब समभागी हैं — ऐसा समझ आप अपने मनके बोझको हलका कीजिएगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ८४३) से।

१. व्रजलालकी मृत्युके उपरान्त आनेवाला शुक्रवार १८ जून, १९२० को पड़ता था।
२. व्रजलालकी मृत्युकी घटनाके लिए देखिए "स्मरणांजलि", २६-६-१९२०।

२३३. पत्र : छगनलाल गांधीको

[१८ जून, १९२०][1]

चि० छगनलाल,

तुम्हारा तार मिला। भाई व्रजलालके[2] विषयमें तार पढ़कर मैं तो स्तब्ध रह गया। मेरी समझमें यह बात बिलकुल नहीं आती कि उनकी मृत्यु आकस्मिक दुर्घटनासे हो सकती है। वे तो सम्पूर्ण सुखकी स्थितिमें सिधार गये, किसीसे सेवा-शुश्रूपा नहीं करवाई। आजकल हमारे ऊपर दैवका प्रकोप होता रहता है। उनके भाईको पत्र लिखना; उसमें सबके हस्ताक्षर करवा लेना और साथका पत्र[3] भी भेज देना। अभी तो ज्यादा नहीं लिख सकता। मैं तुम्हारे ब्यौरेवार पत्रकी आशा करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ८४२) से।

२३४. आत्मत्यागका धर्म

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥[4]

—गीताजी

करहि जाइ तपु शैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी।
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुःखदोष नसावा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तप अस जियं जानी॥

—तुलसी रामायण

यज्ञके अनेक अर्थ किये जा सकते हैं, लेकिन सब धर्मके लोगोंके लिए इस यज्ञका एक ही अर्थ है और वह अर्थ है, वास्तविक उन्नतिके निमित्त प्राणार्पणतक करनेके लिए तैयार रहना। पार्वतीको शिवजी-जैसा पति चाहिए था, इससे उन्हें तप करनेका आदेश मिला। उन्होंने किस तरहके तप किये, यह जाननेकी जिसे इच्छा हो उसे तुलसीदासका अपूर्व ग्रन्थ देख जाना चाहिए। माँ स्वयं कष्ट भोगकर अपने बच्चेको जन्म देती है और उसका पालन-पोषण करती है। मृत्युसे ही जन्म होता है। अनाजका बीज पृथ्वीमें दबा-दबा जब सड़ जाता है और मर जाता है तभी उससे अन्न उत्पन्न

१, २ और ३. देखिए पिछला शीर्षक।

४. हे कुरुसत्तम! यज्ञसे बचा हुआ अमृत खानेवाले लोग ही सनातन ब्रह्मको पाते हैं। यज्ञ न करनेवालेके लिए यही लोक प्राप्त नहीं है, फिर परलोक तो हो ही कहाँसे सकता है? गीता, ४-३१।

होता है। हरिश्चन्द्रने अपना सत्य सिद्ध करनेके लिए अपार दुःख सहन किये, अपनोंका उद्धार करनेके लिए यीशुने काँटोंका मुकुट पहना, हाथ-पाँवोंमें कीलें ठुकवाईं और अन्ततः कष्ट सहकर प्राणोंका त्याग किया। यज्ञकी रीति अनादिकालसे चली आ रही है। यज्ञ विना पृथ्वी एक क्षण भी नहीं टिक सकती। टर्कीने कुस्तुन्तुनियापर अधिकार[1] करनेसे पहले असंख्य सिपाहियोंका होम किया और उनके शवोंका पुल वनाया। मुझे हमेशा यह खटका लगा रहता है कि हम कहीं यहाँ हिन्दुस्तानमें, आत्मत्यागके इस सनातन धर्मका त्याग करके तो अपने देशकी प्रगति नहीं करना चाहते।

हम स्वराज्य तो सम्पूर्ण चाहते हैं लेकिन जान एक भी खोना नहीं चाहते। पैसेका होम किये विना अगर काम चल सके तो चला लेना चाहते हैं। असंख्य लोगोंको असहकारका भय वना हुआ है। जव विचार करता हूँ कि इसका कारण क्या हो सकता है, तो मुझे दो कारण दिखाई देते हैं। एक तो यह कि लोग सोचते हैं कि यदि हम नौकरी छोड़ वैठे तो भूखों मरेंगे; और दूसरे यदि कहीं किसीसे भूल हो गई और सरकारने गोला-वारूद चलाया तो हजारोंकी जानें चली जायेंगी। कहनेका अभिप्राय यह है कि खिलाफत-जैसे जटिल और महान् प्रश्नको हम विना कोई कष्ट झेले सुलझाना चाहते हैं। असहकार एक प्रकारका सहलसे-सहल यज्ञ है, एक मामूली-सा तप है; उसमें वहुत थोड़ा आत्मवलिदान है। वीस-पच्चीस हजार अथवा लाख डेढ़ लाख व्यक्ति न्याय प्राप्त करनेकी खातिर, अन्यायमें सहयोग न देनेकी दृष्टिसे यदि अपनी नौकरियाँ छोड़ दें तो मैं इसमें दुःख नहीं मानूँगा, वल्कि मैं तो सुव्यवस्थित संस्थाओंका ऐसे दुःखोंको अपनाना स्वाभाविक मानता हूँ। लोगोंको इनसे भागना नहीं चाहिए वल्कि हर्षपूर्वक इनका आलिंगन करना चाहिए। खिलाफत-जैसे प्रश्नका सीधा हल प्राप्त करनेके लिए हजारों व्यक्ति मर मिटें तो मैं इसे विलकुल चिन्तनीय न मानूँ। उसे तो मैं धर्मभावनाकी कसौटी समझूँ। मेरा विश्वास है कि ऐसा दुःख झेले विना कदापि विजय नहीं मिलती तथा मैं यह भी मानता हूँ कि असंख्य व्यक्ति ऐसा दुःख उठायें तो विजय प्राप्त हुए विना नहीं रह सकती।

असहकारको लेकर सरकार हमें चाहे जितने कष्ट दे उससे मैं विचलित अथवा भयभीत होनेवाला नहीं हूँ। सरकारकी ओरसे दिये जानेवाले कष्टोंमें जितनी वृद्धि होगी, इस प्रश्नका निपटारा भी उतनी ही जल्दी होगा, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है।

भय सिर्फ एक ही वातका है। कहीं लोगोंकी ओरसे कोई भूल हो जाये, लोग कोई गलत काम कर वैठें और फिर वे उसकी सजा भोगें। यदि किसीने क्रोधमें आकर किसी अधिकारीको चोट पहुँचा दी अथवा उसका खून कर दिया तव तो आत्मत्यागके इस यज्ञमें शुद्ध धर्मको हानि पहुँचेगी और उसी हदतक इच्छित फलकी प्राप्तिमें कमी आ जायेगी। आहुति विशुद्ध वस्तुकी ही दी जाती है। हरिश्चन्द्रमें तनिक भी अपवित्रता होती और तव उसने राज-पाटका त्याग किया होता तो आज हम उसकी महिमाका गान न करते। ईसामें सम्पूर्ण निर्दोषताकी कल्पना करके ही ईसाई मतानुयायियोंने उसे तारनहारकी उपमा दी है। इस ढंगसे विचार करते हुए यदि खिलाफत अथवा

१. १४८७ में।

दूसरे किसी प्रश्नको लेकर हमारी ओरसे तनिक भी भूल होनेकी सम्भावना न हो तो असहकार [आन्दोलन] को हम तत्काल ही पूर्ण वेगसे चला सकते हैं। उसे विभिन्न चरणोंमें जो बाँटा गया है सो इसी विचारसे प्रेरित होकर तथा यह मानते हुए कि आत्मत्याग हिन्दुस्तानकी उन्नतिके लिए आवश्यक धर्म है। असहकारके सम्बन्धमें तनिक भी आशंका नहीं करनी चाहिए, वरन् हमें समझ लेना चाहिए कि असहकार अथवा इस तरहके अन्य किसी भी यज्ञ अथवा तपके बिना न तो हम खिलाफतके प्रश्नको सुलझा सकते हैं, न पंजाबके सम्बन्धमें न्याय प्राप्त कर सकते हैं और न ही स्वराज्यका उपभोग कर सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-६-१९२०

२३५. मैं क्या करूँ?

श्रीमती पोलकने मुझे एक चित्र भेजा है। अस्सी वर्षके श्री ग्लैडिंग नामके एक अंग्रेज सज्जन उसमें चरखेसे ऊन कात रहे हैं। यह धन्धा उन्होंने मन बहलावकी खातिर इस उम्रमें शुरू किया है। वे वृद्ध अपना सारा दिन बातोंमें नहीं बिता सकते, सारा दिन 'बाइबिल' भी नहीं पढ़ सकते, और इस उम्रमें घरमें खेले जानेवाले खेलोंमें भी वे क्या दिलचस्पी लें —— फिर खेलनेके लिए कोई साथी भी तो चाहिए और सबको साथी सुलभ नहीं हो पाते —— तब यदि मन बहलानेका कोई उपयोगी तरीका मिल जाये तो अच्छा हो, यह विचारकर ही इस वृद्धने चरखेको पसन्द किया होगा।

इस चित्रके मेरे हाथमें आनेसे पहले मेरे पास एक सज्जन, जो पहले कहीं अच्छे पदपर रह चुके हैं, आये थे। उनका समय किसी तरह भी व्यतीत नहीं होता था। सारा दिन वे माला जपनेमें बिता नहीं सकते थे और इसलिए वे किसी न किसी परोपकारी धन्धेकी तलाशमें थे। मुझे अनेक प्रवृत्तियोंवाला व्यक्ति समझकर वे मुझसे सलाह लेनेके लिए आये। मुझे तो विचार करनेपर उनकी अवस्थाके योग्य चरखेके अलावा दूसरा कोई धन्धा नहीं सूझा। मैंने उनसे विनयपूर्वक चरखा कातनेकी बात कही। किन्तु शायद मेरी बात उन्हें जँची नहीं। कदाचित्, उनके मनमें मेरे प्रति जो आदर-भाव था, उसे भी मैंने खो दिया।

कुछ लोग यह मानते हैं कि चरखा चलाना केवल स्त्रियोंका काम है। पुरुषोंके सम्मुख चरखेकी बात करना उनका अपमान करना है। मैं ऐसा नहीं मानता; मेरी तो यह धारणा है कि जन-समाजको पोषित करनेवाली सभी प्रवृत्तियाँ दोनोंके लिए हैं। स्त्रियोंसे पुरुषों जितनी शारीरिक मजूरी नहीं हो सकती तथा स्त्रियाँ पुरुषों जितनी स्वतन्त्रतासे बाहर जाकर काम नहीं कर सकतीं, इसलिए चरखेकी प्रवृत्तिको मुख्य रूपसे स्त्रियोंकी प्रवृत्ति माना गया है; और यह उचित भी है।

रसोईका काम मुख्यतया स्त्रियाँ करती हैं तथापि अनेक परिवारोंमें रसोईके लिए पुरुष ही नियुक्त होते हैं। वैसे ही यद्यपि सामान्यतया स्त्रियाँ ही चरखा चलाती हैं,

तो भी प्रसंगवश उस यन्त्रका उपयोग पुरुष भी कर सकते हैं। आज तो अनेक पुरुष चरखेमें सुधार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिए उपर्युक्त सज्जन-जैसे अन्य व्यक्तियोंको में अवश्य ही चरखा चलानेकी सलाह दूंगा।

वकील, डाक्टर क्लबोंमें जाकर ताश खेलते हैं अथवा बिलियर्ड खेलते हैं; उससे वे अपने मनको ताजगी प्रदान कर पाते हैं, इसमें मुझे शक है। यदि वे घर जाकर स्वच्छ हवादार कमरेमें बैठकर चरखा चलायें तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि उससे वे जितना निर्दोष आनन्द प्राप्त कर सकते हैं उतना उन्हें ताशसे नहीं मिल सकता। सर जॉन लवक[1] एक उपयोगी कामसे दूसरे काममें लग जानेको विश्राम मानते थे। चींटियोंकी प्रवृत्तिका अवलोकन करना उनके लिए मन बहलानेका साधन था। लॉर्ड सेलिसबरी-का मन रसायनके प्रयोग करके बहल जाता था। ग्लैडस्टन लकड़ियाँ काटकर कामन्स सभा [के अपने काम] का बोझा हल्का करते थे। ऐसे उपयोगी मन बहलावोंकी जितनी हमें आवश्यकता है उतनी अंग्रेजोंको नहीं है।

देशमें अनाज नहीं है, वस्त्र नहीं है और हैं भी तो बहुत मँहगे। दूध-घी तो बहुत लोगोंको छोड़ ही देना पड़ता है। ऐसे समय देशमें इन दो वस्तुओंका उत्पादन तथा संग्रह हमारा मुख्य धर्म है। दयाधर्मका समावेश तो इस बातमें है कि भूखोंका पेट भरने और वस्त्रहीनोंके अंग ढकनेपर ही हम खायें और पहनें। इसीसे उक्त मित्रके समान जितने भी व्यक्ति हैं मैं उन्हें नम्रतापूर्वक यह सलाह देता हूँ कि आप यदि अपने खाली समयमें खेती आदि करनेका शारीरिक श्रम न कर सकें तो चरखा लेकर सूत अवश्य ही कातें। उससे धर्म तथा अर्थ दोनोंकी उपलब्धि होगी।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥[2]

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २०–६–१९२०

२३६. पुरानी पूँजी

समाचारपत्रोंमें रिक्त स्थान भरनेके लिए सम्पादक प्रायः कुछ-न-कुछ तैयार ही रखते ह। इसे अंग्रेजीमें 'evergreen' अर्थात् 'सदा बहार' कहते हैं। जब प्रकाशित करना चाहें तभी इसे प्रकाशित किया जा सकता है। ऐसी ही एक चीज मुझे अनायास ही 'क्रॉनिकल' में दिखाई पड़ी। उसमें निम्नलिखित तथ्य दिये हुए हैं:

"दशमलव पद्धतिका आविष्कार भारतीयोंने किया था भूमिति और बीज-गणितकी भी पहले पहल भारतमें खोज हुई थी और त्रिकोणमितिकी भी।

१. सर जॉन विलियम लबक (१८०३–१८६५); अंग्रेज खगोलवेत्ता और गणितज्ञ।

२. इसमें किये गये आरम्भका नाश नहीं होता, कोई उलटा नतीजा नहीं निकलता। इस धर्मका थोड़ा-सा पालन भी महाभयसे बचा लेता है। गीता, २–४०।

संसारमें सर्व प्रथम पाँच अस्पताल भारतमें खोले गए थ। यूरोपके प्राचीन चिकित्सकोंने भारतकी औषधियोंका उपयोग किया था। ईसवी पूर्व छठी शताब्दीमें भारतीयोंने मानव शरीर-शास्त्रका अध्ययन किया और उसी समय शल्य-चिकित्साकी विद्या भी हस्तगत की। आज लोहेके जैसे स्तम्भ बनाये जा सकते हैं वैसे स्तम्भ बनानेकी कला भारत प्राचीन कालमें जानता था। गुफाएँ खोदनेका कौशल तो हिन्दुस्तानके ही पास था। जब सिकन्दर भारत आया तब उसे पंजाब और सिन्धमें प्रजातन्त्र राज्य मिले। प्राचीन हिन्दुस्तानमें हमारी स्त्रियोंको वे सब अधिकार प्राप्त थे जिन अधिकारोंके लिए आज यूरोपकी स्त्रियाँ लड़ रही हैं। चन्द्रगुप्तके राज्यकालमें नगरपालिकाएँ थीं। व्याकरण-विद्याको तो हिन्दुस्तानने ही सम्पूर्णतातक पहुँचाया था। आजतक 'रामायण', 'महाभारत' की होड़ कर सकनेवाले ग्रन्थोंकी रचना नहीं हो सकी है।"

ये सारे तथ्य किस हदतक सही हैं सो मैं नहीं जानता। लेकिन इतना अवश्य जानता हूँ कि यदि स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडे[1] आज जीवित होते तथा भारतकी प्राचीन गौरव-गाथाकी इन सारी बातोंको सुनते अथवा पढ़ते तो वे अवश्य ही कहते कि 'इससे क्या होता है।' वे कहते कि कोई राष्ट्र अपने स्वर्णिम अतीतको याद करके आगे नहीं बढ़ सकता। यदि उसे याद किया ही जाए तो सिर्फ आगे बढ़नेकी बातको ध्यानमें रखकर ही किया जाना चाहिए। आज 'रामायण'को लिखनेवाले व्यक्ति कहाँ हैं? प्राचीन कालकी नीति आज कहाँ है? उस समयकी कार्यदक्षता और कर्त्तव्यपरायणता कहाँ है? जिन औषधियोंकी सहस्रों वर्ष पूर्व खोज की गई थी, क्या उनमें हम कोई वृद्धि कर सके हैं? प्राचीन ग्रन्थोंमें जिन औषधियोंका वर्णन है, उनकी हमें पूरी जानकारी भी नहीं है। उसी तरह ऊपर उल्लिखित अन्य सब विभूतियोंके सम्बन्धमें अपना दारिद्रय स्पष्ट ही दिखाई दे रहा है। प्रत्येक वस्तु हम यूरोपसे उधार ले रहे हैं। मुझे तो लगता है कि जबतक हम अपने गौरवमय अतीतका वर्तमानकालमें पुनरुद्धार नहीं कर सकते तबतक पुरानी पूँजीके सम्बन्धमें चुप रहना ही बुद्धिमानी है। जिस पूँजीका हम कुछ लाभ नहीं उठा सकते, जिसको हम संसारके आगे नहीं रख सकते कि वह उसे परखकर देख ले तबतक वह हमें गौरवान्वित नहीं लज्जित करती है और केवल बोझस्वरूप है। प्राचीन कालमें उपर्युक्त विभूतियाँ हम लोगोंमें मौजूद थीं, यदि हम ऐसा मानते हों तो उन्हीं विभूतियोंको फिरसे प्रगट कर बतानेकी हममें शक्ति होनी चाहिए। हम [निस्सन्देह] वीर लोगोंकी सन्तानें हैं लेकिन यदि इस विरासतको शोभान्वित करनेकी हममें ताकत नहीं है तो इससे हमारा कुछ भी लाभ नहीं होगा। अगले अंकमें हम इसपर विचार करेंगे कि इस प्राचीन विरासतको हम कैसे गौरवान्वित कर सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-६-१९२०

१. महादेव गोविन्द रानडे (१८४२-१९०१); विद्वान् और समाज-सुधारक जिन्होंने गोखलेको उनके आरम्भिक जीवनमें प्रशिक्षित किया था।

२३७. टिप्पणियाँ

उड़ीसामें अकाल

उड़ीसाके सम्बन्धमें श्री अमृतलाल ठक्कर लिखते हैं कि उन्होंने और भी गाँवोंका[1] दौरा किया है और उसके आधारपर ऐसा जान पड़ता है कि अकालका क्षेत्र अनुमान-से अधिक व्यापक है। इस क्षेत्रमें आने-जानेके साधन कम हैं तथा लोग इतने गरीब हैं कि उनकी ओरसे कोई शिकायत नहीं आती; जान पड़ता है इसीलिए बाहरवालों को कुछ खबर नहीं मिली। ये बेचारे तो जो स्थिति होती है उसे भोगते चले जाते हैं। कोई व्यक्ति अपने-आप तरस खाकर उनके बीच जाये और उनकी स्थितिकी जाँच करे तभी खबर पड़े। हिन्दुस्तानमें ऐसी विषम स्थिति तो कितनी जगह होगी कौन कह सकता है। एक समाचारपत्रमें उक्त क्षेत्रके बारेमें यह बताया गया है कि इस भागका धरातल नीचा है और इसलिए वहाँ हर साल मध्य भारतकी ओरसे आनेवाली बाढ़का पानी भर जाता है। इसे रोकनेके लिए कुछ बाँधोंका निर्माण किया गया था; वे अब कमजोर पड़ गये हैं। कुछ-एक स्थानोंपर नए बाँध बाँधनेकी आवश्यकता है। जबतक यह नहीं होता तबतक वहाँ बाढ़से नुकसान होता ही रहेगा। इस पत्रमें इसका उपाय करनेके लिए यह सुझाव दिया गया है कि सरकार इंजीनियरोंको इकट्ठा करके उनकी राय ले और तदनुसार उचित कदम उठाये। हम आशा करते हैं, श्री अमृतलाल ठक्कर अवकाश मिलनेपर इस बातकी भी जाँच करेंगे कि अकाल रोकनेके लिए अन्य क्या कदम उठाये जाने चाहिए। वे इन अभागे लोगोंकी स्थायी निर्धनताके कारणोंकी भी जाँच करेंगे।

पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि श्री ठक्करके प्रयत्नोंसे तथा कलकत्ताके प्रसिद्ध गुजराती व्यापारी श्री करसनदासकी सहायतासे कलकत्तेमें भी अकालके लिए अठारह हजार रुपयेकी राशि इकट्ठी हो गई है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–६–१९२०

१. देखिए "उड़ीसामें संकट", १२–५–१९२०।

२३८. पत्र: सी० एफ० एण्ड्रचूजको

२० जून, १९२०

तुम खिलाफत और अन्य प्रश्नोंपर[1] अपने हृदयकी बात मुझे बराबर लिखते रहे हो, जब कि मैं तुमको कोई भी उत्तर नहीं दे सका। इसका कारण यह है कि आजकल मुझपर कामका दबाव बहुत रहता है। फिर भी तुम यह तो जानते ही हो कि तुम्हारा स्मरण मुझे सदैव रहता है। मैं जानता हूँ कि आध्यात्मिक प्रश्नोंको तुम कितनी गम्भीरतासे लेते हो। मैं आशा रखता हूँ कि तुम्हारा स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा होगा। तुमने मुझे लिखा था कि कलकत्तेसे लौटनेके बाद तुम्हारी तबीयत बहुत गिर गई थी।

मैं चाहता हूँ कि टर्कीके प्रश्नके बारेमें मेरी जो स्थिति है, उसकी तुम चिन्ता न करो। मुझपर इतना विश्वास करो कि मैं कुछ भी आँख मूँदकर नहीं करूँगा। टर्कीके प्रश्नपर मैं ऐसा जरा भी बँध नहीं गया हूँ कि उसकी स्थिति अनीतिमय साबित हो जानेपर भी अपना कदम वापस न ले सकूँ। मेरी स्थिति विषम इस प्रकार है कि लॉयड जॉर्जपर मुझे जरा भी भरोसा नहीं है। जैसे मुझे अरबके मामलेमें अविश्वास है, वैसे ही मुझे आर्मीनियाके मामलेमें भी कुछ अविश्वास है। मौजूदा ब्रिटिश कूटनीतिके विरुद्ध मेरे मनमें ऐसा सन्देह बैठ गया है कि आर्मीनिया, अरब, मेसोपोटामिया, फिलिस्तीन और सीरियाके मामलेमें मुझे किसी कुटिल राजनीतिज्ञका गन्दा हाथ होनेकी बू आ रही है। इसलिए इस वक्त मेरी स्थिति यह है कि ज्यों ही मेरा सन्देह दूर हो जायेगा त्यों ही मुझे अपना जो रवैया प्रतिपादनीय नहीं मालूम होगा, उसे मैं छोड़ दूँगा। मैं आर्मीनिया, मेसोपोटामिया, फिलिस्तीन और सीरियापर [टर्कीके सुलतानका] अधिराजत्व चाहता तो अवश्य हूँ, लेकिन कुछ उचित संरक्षणोंके साथ। तुम कहते हो, संरक्षणोंका मूल्य ही क्या है? इसमें मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ। मित्र-राष्ट्रोंके मनमें मैल हो और वे एक-दूसरेसे ईर्ष्या करते हों, तब हो सकता है, संरक्षणों-का मूल्य कुछ न हो। परन्तु उनके दिल साफ हों, तो संरक्षण अवश्य कारगर हो सकते हैं। ब्रिटेन ट्रान्सवालपर अधिराजत्वका दावा करता है, परन्तु उससे ट्रान्सवालके आन्तरिक व्यवहारमें कोई खलल नहीं पड़ता। यदि आर्मीनियाको भी उसके यहाँ टर्कीका रेजीडेंट रहनेके बावजूद पूरी आन्तरिक स्वतन्त्रता मिलती हो तो उसे क्यों शिकायत होनी चाहिए? यदि टर्कीके प्रति ब्रिटेनके इरादे अच्छे हों, तो सारी बात सन्तोषजनक ढंगसे निबटाई जा सकती है। टर्कीने यदि मित्र-राष्ट्रोंका साथ दिया होता, तो क्या ब्रिटेन उससे आर्मीनिया, अरब और मेसोपोटामिया छीन सकता? तब ब्रिटेन टर्कीपर विजेतावाली धौंस जमानेके बजाय मित्रताके ढंगपर दबाव डालकर क्या वहाँ सुधार करवानेकी कोशिश नहीं करता? ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल जो उद्धतता और

१. देखिए "पत्र: सी० एफ० एन्ड्र्यूज़को", २५-५-१९२०।

धूर्तता दिखा रहा है, और उतनी ही उद्धतता और धूर्तताके स्वरमें वाइसरायने जिस तरह उसका समर्थन किया[1] है, वह सचमुच एक असह्य चीज है।

तुम्हें मुहम्मद अलीकी अर्जी उस सन्धिके समान ही दूषित लगती है। जहाँतक उस अर्जीमें सन्धिकी भर्त्सनाका प्रश्न है, मैं तुम्हारी रायसे सहमत नहीं हूँ। मेरा खयाल है कि लगभग सारा भारत मुहम्मद अलीके साथ है। तुम यह कहो कि सन्धिकी भर्त्सना बुद्धियुक्त ढंगसे नहीं की गई है और वह जानकारीपर आधारित नहीं है, बल्कि उसका कारण ब्रिटेनके प्रति अविश्वासकी भावना है, तो इसमें मैं तुमसे सहमत हो सकता हूँ; फिर भी वह भर्त्सनीय तो है ही। आम तौरपर मैं अखबार नहीं पढ़ता, परन्तु 'लीडर' की कतरन भेज रहा हूँ। उसे देख लो। मुहम्मद अली निश्चय ही मानते हैं कि सन्धिकी भर्त्सना करनेमें सारा देश उनके साथ है। टर्कीके अधिराजत्वके उनके दावेके पीछे भी कोई बुरा हेतु नहीं है, क्योंकि उन्हें अपनी माँगकी सचाईमें पूर्ण विश्वास है। उन्होंने किसी भी प्रकारका वचन-भंग नहीं किया, क्योंकि उनका दावा तो जो उन्होंने अब किया है, उससे कहीं अधिक था; जब कि शान्ति-सन्धि निन्द्य है, ईश्वर और मनुष्यके प्रति किया गया अपराध है। यह भी याद रखो कि मित्र-राष्ट्र अर्थात् साफ-साफ कहें तो इंग्लैंड, अपने पाशविक बलके गुमानमें बातें करते हैं। बेचारे मुहम्मद अली तो जैसा वे स्वयं कहते हैं, एक दुर्बल राष्ट्रके प्रतिनिधि हैं और ऐसे पक्षकी वकालत कर रहे हैं जो पहले ही पूरी तरह परास्त और अपमानित किया जा चुका है। उनकी बातमें कुछ अतिशयोक्ति हो तो मैं उसे दरगुजर कर दूँगा। पर दूसरी तरफसे पशु-बलका जो निर्लज्ज प्रदर्शन किया जा रहा है, उसे बरदाश्त करनेको मैं जरा भी तैयार नहीं हूँ। विशुद्ध कष्टसहन अथवा आत्मपीड़नके साधनपर मेरा जो विश्वास है, वह यदि मैं भारतमें जाग्रत कर सकूँ तो इस घमण्डको एक क्षणमें चूर कर डालूँ और यूरोपके तमाम गोला-बारूदको निकम्मा बना दूँ।

इस सन्धिकी शर्तोंसे तो मैं विचलित हो ही उठा था, पर हंटर समितिकी रिपोर्टने तो ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और वाइसरायकी कौंसिलकी नेकनीयतीमें भी मेरा विश्वास बिलकुल खत्म कर दिया है। इस झंझटमें से श्री मॉण्टेग्यु भी बेदाग नहीं निकले हैं। उन्होंने ईश्वर और शैतान दोनोंको भजनेका प्रयत्न किया और बाबाजीकी दोनों दुनिया बिगड़ीं। अगर ब्रिटिश संविधान इस आघातसे बच निकले तो वह सिर्फ इसी कारण होगा कि उसके भीतर कोई जीवन-शक्ति होगी। वैसे, जिनके हाथोंमें आज राज्यकी बागडोर है, उन्होंने तो संविधानको मिट्टीमें मिला देनेमें कोई कसर नहीं रखी है। महादेव अभी मुझे याद दिला रहा है कि तुम्हारे जिस पत्रका मैं जवाब दे रहा हूँ उसे तो तुमने तार देकर रद कर दिया है। परन्तु उससे स्थितिमें फर्क नहीं पड़ता। मैं चाहता हूँ कि तुम या तो मेरी ही तरह ब्रिटिश शासनके दोहरे अपराधकी गम्भीरता स्वीकार करो, या फिर मेरी भूल हो तो मुझे बताओ ताकि मैं उसे सुधार सकूँ।

जाति-व्यवस्था-सम्बन्धी अपने विचारोंसे मैं तुम्हें परेशान नहीं करूँगा। इस मामलेमें भी मेरी नैतिक स्थितिके सम्बन्धमें तुम्हें चिन्ता नहीं होनी चाहिए। मेरे दृष्टि-

१. अनुमानतः गांधीजीका आशय उस सन्देशसे है जो वाइसरायने मुसलमानोंके नाम दिया था। यह सन्देश १४ मई, १९२० को भारत सरकारके असाधारण गज़टमें छपा था। देखिए परिशिष्ट २।

-कोणको तुमने ठीक समझा नहीं। किसी भी मनुष्यके प्रति घृणा-भावसे प्रेरित होकर, उसके साथ न खाना पाप है। परन्तु आत्मसंयमके कारण किसीके साथ न खाना एक गुण है। क्या तुम्हें पता है कि भारतमें कितनी ही माताएँ अपने परिवारके साथ भी भोजन न करनेका संयम बरतती हैं? मेरा खयाल है कि नरोत्तम सेठकी माँ परिवारके सामान्य भोजनालयमें भोजन नहीं करती। मेरी रायमें उनका आत्मसंयम अनावश्यक है। फिर भी, सम्भव है कि उसमें कुछ अच्छाई हो। उसमें पाप तो निश्चित ही नहीं है। इसी प्रकार पत्नीका चुनाव करनेका क्षेत्र मर्यादित रखना भी मैं एक अच्छाई मानता हूँ, वैसे ही जैसे अनेकके बजाय एक पत्नीकी मर्यादा रखना एक अच्छाई है। विषय-भोगमें मर्यादा बरतनेकी आवश्यकता और उसकी अच्छाई तो आप अवश्य स्वीकार करेंगे। पाप तब होता है जब मैं अपने सेवा या त्यागके क्षेत्रको मर्यादित करूँ। मेरे मनमें अक्सर ऐसा खयाल आता है कि हिन्दू-धर्म भले ही इस समय व्यवहारमें अधमताको प्राप्त हो गया हो, फिर भी हिन्दुत्वके सर्वांगपूर्ण सिद्धान्तोंकी भव्यता अभीतक तुम्हारी समझमें अच्छी तरह नहीं आई है।

मेरी तबीयत ठीक कही जा सकती है, परन्तु मैं पूर्ण शान्ति, विश्राम तथा एकान्तकी तीव्र इच्छा अनुभव कर रहा हूँ। मैंने अभी-अभी सुना है कि टर्कीके साथ सुलहकी सारी शर्तोंपर फिरसे विचार होगा। ऐसा हो जाये तब तो थोड़े दिन कहीं चुपचाप शान्तिपूर्वक रह सकनेकी आशा कर सकता हूँ।

सर जॉर्ज बार्न्जने[1] मुझे भी ब्रिटिश गियाना आनेका आमन्त्रण दिया है। मैंने उन्हें सूचित कर दिया है कि जबतक खिलाफत आन्दोलन जारी है, तबतक मैं कहीं बाहर नहीं जा सकता। तुम जा रहे हो या नहीं?

साम्राज्यीय नागरिक संघ (इम्पीरियल सिटीजनशिप एसोसिएशन) के[2] नाम तुम्हारा पूर्वी आफ्रिका सम्बन्धी पत्र पढ़ा। साफ दिखाई देता है कि तुमने वह पत्र बहुत ही तनावकी स्थितिमें लिखा है। उन्होंने उसकी कड़ी आलोचना की है। मैं मौन रहा, परन्तु इस आलोचनाके साथ मनमें सहानुभूतिका अनुभव किये बिना नहीं रह सका। तुम्हारा पत्र अधूरा-सा था और उसमें जानकारी बहुत ही थोड़ी थी। दक्षिण आफ्रिकाके मामलेमें तुमने अपनी रिपोर्ट अभीतक नहीं भेजी, इसकी भी वे बड़ी शिकायत कर रहे थे।[3] मेरा खयाल है कि तुम उनके प्रमाणित प्रतिनिधि बनकर वहाँ गये थे, इसलिए उन्हें पूरी रिपोर्ट देना तुम्हारा फर्ज था। कमसे-कम सौजन्यताके नाते तुम्हें सबसे पहले उन्हें लिखना चाहिए था। मैं चाहता हूँ कि अब भी तुम यह भूल भरसक सुधार लो।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

१. वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य (१९१६-२१)।
२. गांधीजीने बम्बईमें ११ जून, १९२० को एसोसिएशनकी बैठकमें भाग लिया था।
३. एण्ड्रयूज दिसम्बर १९१९ से मार्च १९२० तक आफ्रिकामें रहे थे।

२३९. पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको

लैबर्नम रोड
वम्बई
२२ जून, १९२०

प्रिय श्री हिगनेल,

मैं इस पत्रके साथ दो आवेदन पत्र संलग्न कर रहा हूँ। एकपर[1] मुसलमान प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर हैं, और दूसरेपर[2] मेरे। इन्हें वाइसराय महोदयके सामने प्रस्तुत करनेकी कृपा करें। मुसलमानोंवाले आवेदनपत्रपर मूल हस्ताक्षर नहीं हैं क्योंकि उसे भारतके विभिन्न भागोंमें अनुमोदनके लिए भेजा गया था और लोगोंने तार द्वारा अपना नाम शामिल करनेकी अनुमति भेजी है। कुछ हस्ताक्षर गन्दे या रद्दी कागजोंपर हैं, परन्तु उनमें से हरएकके सम्बन्धमें दिया गया हस्ताक्षर सम्बन्धी अधिकार केन्द्रीय खिलाफत-समितिके पास मौजूद है।

मैं आवेदनपत्रोंके बारेमें कुछ नहीं कहना चाहता; यही आशा व्यक्त करूँगा कि उनको परमश्रेष्ठ उचित महत्त्व देनेकी कृपा करेंगे। मैं आगामी बृहस्पतिवारकी शामको इनकी प्रतियाँ समाचारपत्रोंमें देनेका विचार कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया: होम, पोलिटिकल (ए), नवम्बर १९२०; सं० १९–३१

१. देखिए परिशिष्ट ६।
२. देखिए अगला शीर्षक।

२४०. पत्र : वाइसरायको[1]

२२ जून, १९२०

सेवामें
परमश्रेष्ठ परममाननीय लॉर्ड चेम्सफोर्ड
पी० सी०, जी० एम० एस० आई०, जी० सी० एम० जी०, जी० एम० आई० एफ०
भारतके वाइसराय और गवर्नर जनरल
शिमला

परमश्रेष्ठ,

चूँकि मुझे आपका थोड़ा-बहुत विश्वास प्राप्त रहा है और मैं अपने-आपको ब्रिटिश साम्राज्यका एक सच्चा शुभचिन्तक मानता हूँ; इसलिए आपको और आपके जरिये महामहिमके मन्त्री महोदयको यह बता देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि खिलाफतके सवालसे मेरा क्या सम्बन्ध है और उसके सम्बन्धमें मैं क्या-कुछ कर रहा हूँ।

युद्धकी बिलकुल प्रारम्भिक अवस्थासे ही, यानी जब मैं लन्दनमें भारतीय स्वयं-सेवकोंका आहत-सहायक दल तैयार कर रहा था[2] तभीसे, मैंने खिलाफतके सवालमें दिलचस्पी लेना शुरू किया। मैंने स्पष्ट देखा कि जब टर्कीने जर्मनीका पक्ष लेना तय किया,[3] उस समय लन्दनमें रहनेवाले मुसलमान किस तरह बेचैन हो उठे थे। जनवरी १९१५ में लौटकर भारत आनेपर यहाँ भी मैं जिस-किसी मुसलमानके सम्पर्कमें आया, उसे मैंने वैसी ही चिन्ता और आतुरतासे ग्रस्त पाया। और जब उन्हें गुप्त सन्धियोंकी[4] खबर लगी तो उनकी चिन्ता और भी बढ़ चली। ब्रिटेनकी नीयतके प्रति उनका मन अविश्वाससे भर उठा और वे बिलकुल हताश हो गये। उस समय भी मैंने अपने मुसलमान भाइयोंको यही सलाह दी कि आप लोग निराश न हों, बल्कि अपनी आशाओं और आशंकाओंको व्यवस्थित और अनुशासित ढंगसे प्रकट करें। और यह मानना पड़ेगा कि भारतके सभी मुसलमानोंने गत पाँच वर्षोंमें अद्वितीय आत्मसंयमका परिचय दिया है, और नेतागण अपनी जातिके उपद्रवी लोगोंको पूरी तरह नियन्त्रणमें रखनेमें सफल हुए हैं।

१. टर्कीके साथ शान्ति स्थापित करनेसे सम्बन्धित सन्धि-पत्र ११ मई, १९२० को पेरिसमें टर्की सरकारके शिष्टमण्डलको सौंपा गया। इस सन्धिकी शर्तें भारतमें १४ मई, १९२० को प्रकाशित की गईं और साथमें भारतीय मुसलमानोंके नाम वाइसरायका सन्देश भी। इसी सन्देशके परिणामस्वरूप गांधीजीने यह पत्र लिखा था।

२. अगस्त १९१४ में।

३. नवम्बर १९१४ में।

४. देखिए "खिलाफत", १२-५-१९२० की पाद-टिप्पणी ३।

सन्धिकी इन शर्तोंसे[1] और आपने उनके बचावमें जो-कुछ कहा है,[2] उससे भारतके मुसलमानोंको ऐसा लगा है, जिससे सँभल पाना उनके लिए बहुत कठिन होगा। इन शर्तोंसे मन्त्रियों द्वारा दिये वचन भंग होते हैं; इनमें मुसलमानोंकी भावनाओंका कोई खयाल नहीं रखा गया है। मैं समझता हूँ कि एक ऐसे कट्टर हिन्दूके नाते, जो अपने मुसलमान देशभाइयोंके साथ घनिष्ठतम मैत्री-सम्बन्ध रखनेका इच्छुक है, मैं यदि इस संकटकी घड़ीमें उनका साथ न दूं तो भारत-माताकी अयोग्य सन्तान सिद्ध होऊँगा। मेरी नम्र सम्मतिमें उनका पक्ष न्याय्य है। उनका कहना है कि अगर उनकी भावनाका खयाल रखना हो तो टर्कीको सजा नहीं देनी चाहिए। मुसलमान सिपाही [अंग्रेजोंके पक्षमें] इसलिए नहीं लड़े थे कि वे अपने ही खलीफाको सजा दिलायें या उन्हें अपने राज्य-प्रदेशसे वंचित कर दें। इन पाँच वर्षोंमें मुसलमानोंका रवैया बराबर एक-सा रहा है।

मुझे जिस साम्राज्यके प्रति वफादारी बरतनी है, उसके प्रति मेरा यह कर्त्तव्य है कि मुसलमानोंकी भावनाको पहुँचाये गये निर्मम आघातका विरोध करूँ।

जहाँतक मैं जानता हूँ, हिन्दू और मुसलमान दोनोंको अब ब्रिटेनकी न्याय-भावना और उसकी नेकनीयतीमें विश्वास नहीं रह गया है। और हंटर समितिकी बहुमत समर्थित रिपोर्ट, तत्सम्बन्धी आपके खरीते[3] और श्री मॉण्टेग्युके जवाबसे[4] उनका यह अविश्वास और बढ़ा ही है।

अब इस हालतमें मुझ जैसे आदमीके लिए यही एक रास्ता रह जाता है कि या तो वह निराश होकर ब्रिटिश शासनसे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ ले या अगर अब भी अन्य देशोंके संविधानोंकी तुलनामें ब्रिटिश संविधानकी सहज श्रेष्ठतामें उसका विश्वास शेष हो तो वह ऐसे उपायोंका सहारा ले जिनसे इस अन्यायका परिमार्जन हो सके और इस प्रकार खोया हुआ विश्वास लौट सके। पर मैंने ब्रिटिश संविधानकी सहज श्रेष्ठतामें अपना विश्वास नहीं खोया है और मुझे अब भी यह आशा है कि अगर हम कष्टसहनकी आवश्यक क्षमताका परिचय दें तो किसी-न-किसी तरह न्याय प्राप्त होगा ही। सच तो यह है कि मैंने उस संविधानको समझा ही इसी रूपमें है कि वह उन्हींकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। म यह नहीं मानता कि वह कमजोर लोगोंकी सुरक्षा करता है। इसके विपरीत जो शक्तिशाली हैं, उन्हें वह अपनी शक्ति कायम रखने, उसे बढ़ानेका पूरा अवसर देता है। लेकिन जो कमजोर हैं, उनके लिए उसके अन्तर्गत कोई स्थान नहीं है।

तो ब्रिटिश संविधानकी श्रेष्ठतामें अपने इसी विश्वासके आधारपर मैंने मुसलमान भाइयोंको सलाह दी है कि अगर शान्ति-सन्धिकी शर्तोंमें ऐसे परिवर्तन नहीं किये जाते जिनसे मन्त्रियों द्वारा दिये गये गम्भीर वचनोंका पालन हो सके और मुस्लिम

१. देखिए परिशिष्ट १।
२. देखिए परिशिष्ट २।
३. देखिए परिशिष्ट ४।
४. देखिए परिशिष्ट ५।

भावना तुष्ट हो सके, तो वे परमश्रेष्ठकी सरकारके साथ सहयोग करना बन्द कर दें और इसीके आधारपर हिन्दुओंसे भी अपने मुसलमान भाइयोंका साथ देनेको कहा है।

यह घोर अन्याय अगर सचमुच मुख्य रूपसे महामहिमके मन्त्रियोंके हाथों न भी हुआ हो तो भी इतना तो है ही कि इसमें वे भी शरीक रहे हैं; और इस अन्यायके प्रति अपना तीव्र विरोध प्रकट करनेके लिए मुसलमानोंके सामने तीन रास्ते थे :

(१) हिंसाका सहारा लेना।

(२) समस्त मुस्लिम जातिको सामूहिक रूपसे हिजरतकी सलाह देना।

(३) सरकारसे सहयोग करना बन्द करके इस अन्यायमें शरीक होनेसे इनकार करना।

आप जानते ही होंगे कि एक समय ऐसा भी था जब मुसलमानोंका सबसे साहसी वर्ग — हालाँकि यह वर्ग सबसे अधिक विचारहीन भी था — इस मामले में हिंसाका हामी था; और हिजरत अभी भी इस लड़ाईमें उनका नारा है।[1] लेकिन मैं नम्रताके साथ यह दावा करता हूँ कि मैंने हिंसाके इन पक्षपातियोंको धैर्यपूर्वक समझा-बुझाकर उस रास्तेसे विमुख करनेमें सफलता पाई है। हाँ, यह स्वीकार करता हूँ कि अगर मैं उन्हें इस रास्तेसे विमुख कर पाया हूँ तो नैतिक आधारपर नहीं बल्कि विशुद्ध व्यावहारिक आधारपर ही समझा-बुझाकर। वैसे उन्हें नैतिक आधारपर समझाने-की मैंने कोशिश भी नहीं की। जो भी हो, उसके परिणामस्वरूप फिलहाल तो हिंसा रुक ही गई है। इसी प्रकार हिजरतके हिमायतियोंने भी अगर अपनी गतिविधि बिलकुल बन्द न कर दी हो तो भी उनपर थोड़ा अंकुश तो लग ही गया है। अगर लोगोंके सामने पर्याप्त बलिदानकी अपेक्षा रखनेवाला, लेकिन साथ ही उसे बहुत सारे लोग स्वीकार कर लें तो सफलताका आश्वासन देनेवाला, सीधी कार्रवाईका तरीका प्रस्तुत नहीं किया जाता तो मेरी मान्यता है कि कठोरसे-कठोर दमनात्मक कार्रवाई भी हिंसाके विस्फोटको नहीं रोक सकती थी। ऐसी सीधी कार्रवाईका एक-मात्र सम्मानित और संवैधानिक तरीका असहयोग ही था, क्योंकि अनन्तकालसे प्रजाको यह अधिकार रहा है कि जिस शासकका शासन अन्यायपूर्ण हो उसे किसी प्रकारसे सहयोग-सहायता देनेसे वह इनकार कर दे।

साथ ही मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि बहुत अधिक लोगों द्वारा असहयोग करनेमें कुछ गम्भीर खतरे भी हैं। लेकिन भारतके मुसलमानोंपर आज जैसा संकट आया हुआ है वैसे संकटके समय ऐसी कोई कार्रवाई करके वांछित परिणाम सम्भवतया लाया भी नहीं जा सकता जिसमें अधिक खतरा न हो। अगर हम अभी कुछ खतरा उठानेको तैयार नहीं होते तो उसका मतलब अमन-चैनका पूरा खात्मा भले ही न हो, आज हम जिन खतरोंसे डर रहे हैं, उनसे बहुत बड़े खतरोंको आमन्त्रित करना तो होगा ही।

१. देखिए "पत्र: स्वामी श्रद्धानन्दको", २-५-१९२० की पाद-टिप्पणी १।

लेकिन असहयोगसे बचनेका अब भी एक उपाय है। मुसलमानोंने आपसे प्रार्थना की है कि जिस प्रकार आपके प्रसिद्ध पूर्ववर्ती [वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग] ने दक्षिण आफ्रिकी समस्याके सम्बन्धमें किया था ठीक उसी तरह आप स्वयं इस आन्दोलनका नेतृत्व करें। लेकिन अगर आप ऐसा नहीं कर सके और असहयोग अनिवार्य हो जाये तो मुझे आशा है, आप मानेंगे कि जिन लोगोंने इस मामलेमें मेरी सलाह स्वीकार की है, उन्होंने और मैंने भी किसी छोटी चीजके लिए नहीं, बल्कि अपनी कठोर कर्त्तव्य-भावनासे प्रेरित होकर ही यह आन्दोलन छेड़ा है।

आपका,
मो० क० गांधी

लैबर्नम रोड
गामदेवी
बम्बई

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया: होम, पोलिटिकल (ए), नवम्बर १९२०; सं० १९–३१

२४१. असहयोग समिति

३ जूनको इलाहाबादमें खिलाफत समितिने जिस असहयोग समितिकी नियुक्ति की, उसके विषयमें तरह-तरहके भ्रम और गलत अनुमान फैले दिखते हैं।[1] उस सभामें उपस्थित एक मित्र लिखते हैं कि यह समिति असहयोगको पूरी तरहसे कार्य-रूप देनेके उद्देश्यसे गठित की गई है और इसे असहयोगसे सम्बन्धित सारे मामलोंमें जो चाहे करनेका अधिकार दे दिया गया है—मानो यह अधिकारियोंके पास निवेदन आदि भेजनेके मामलेमें भी भारतकी सारी मुसलमान आबादीका प्रतिनिधित्व करती हो। समितिका अधिकार-क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है, यही दिखाना इस लेखका उद्देश्य है।

इस समितिकी स्थापनाका सुझाव देते हुए जैसा मैंने बताया था, इसका उद्देश्य असहयोगके सम्बन्धमें देशकी इच्छा जानना और उसे कार्यान्वित करना था। यद्यपि यह एक प्रतिनिधि संस्था है और इसे जो उचित लगे वह करनेका पूरा अधिकार है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह भारतके सभी अच्छे और प्रभावशाली मुसलमानोंकी प्रतिनिधि संस्था है, और न इसे ऐसा रूप देनेका कोई इरादा ही रहा है। उदाहरणके लिए, यह नवाब-जमींदार आदि वर्गके मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व नहीं करती। इसे जान-बूझकर उन्हींतक सीमित रखा गया है जो अपना सारा समय और ध्यान असहयोग आन्दोलनका संगठन करनेमें और ऐसा करते हुए यह सुनिश्चित करनेमें

१. देखिए "भाषण: खिलाफत समितिकी बैठकमें", ३–६–१९२०।

लगा सकें जिससे लोग विभिन्न हिदायतों, अनुशासन तथा अहिंसाका पालन करें। सो दरअसल यह कार्यकर्त्ताओंकी समिति है। यह आशा नहीं की जा सकती कि भारतके सभी मुसलमान असहयोगके सम्बन्धमें एक-सी तत्परता दिखायेंगे। कुछको इसकी प्रभावकारितामें सन्देह है, तो कुछ इसे बहुत हलका इलाज मानते हैं। इसी तरह कुछको भय है कि यह इलाज भारतके लिए बहुत सख्त है; उनका कहना है कि भारतमें अभी बलिदानकी भावना इतनी जाग्रत नहीं हुई है जिससे यहाँ असहयोगकी सफलता निश्चित मानी जा सके। इस प्रकारकी शंकाएँ उठानेवाले लोग, हो सकता है, इस समितिमें शामिल कई मुसलमानोंसे अन्यथा अधिक प्रभावशाली हों, लेकिन समिति न तो उनका प्रतिनिधित्व करती है और न उन्हें इसमें शामिल ही किया गया है। इसमें केवल ऐसे लोग ही शामिल किये गये हैं जिनका असहयोगमें अधिकसे-अधिक विश्वास है और जो असहयोगमें अपनी पूरी निष्ठा घोषित करनेके बावजूद इसकी गति इतनी तीव्र करनेकी कोशिश नहीं करेंगे कि औरोंसे इसका सम्बन्ध ही न रह पाये, बल्कि इसके विपरीत, जहाँतक सम्भव हो समस्त राष्ट्रको असहयोगके कार्यक्रममें साथ लेकर चलनेकी कोशिश करेंगे। दूसरी ओर ऐसा करते हुए वे स्वयं अधिकसे-अधिक साहसपूर्ण कदम उठानेमें नहीं हिचकेंगे और ऐसे लोगोंको भी साथ लेते जायेंगे जिनमें ऐसी निष्ठा और साहस हो। अतएव इस समितिको, जिसकी आज कोई ख्याति नहीं है, अपने कामके सुपरिणामोंके बलपर ख्याति प्राप्त करनी है, नाम कमाना है। अगर यह समिति काम करके नहीं दिखाती, या अपने कामके बावजूद कुछ सुपरिणाम नहीं दिखाती तो इसका अस्तित्व ही नहीं रह जायेगा। बाहरवालोंकी दृष्टिमें यह किसी तरह प्रतिनिधि संस्था नहीं है। उनके विचारसे शौकत अली स्वभावसे सरल तो हैं, लेकिन बिलकुल धर्मान्ध हैं और उनका किसीपर कोई प्रभाव नहीं है, हसरत मोहानी बेकारके आदमी हैं और उन्हें तो हमेशा स्वदेशीकी ही धुन लगी रहती है; डा० किचलू अभी कलके छोकरे हैं और उन्हें अमृतसरसे बाहरकी दुनियाका कोई अनुभव नहीं है। दूसरोंके बारेमें भी ऐसी ही बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं। मैं उनके विचारमें औरोंसे श्रेष्ठ तो हूँ, लेकिन आखिरकार एक सनकी आदमी हूँ और इस मामलेसे कोई सीधा सम्बन्ध न होते हुए भी इसमें जबरदस्ती टाँग अड़ानेको आ गया हूँ। उनके खयालसे इसके सदस्योंके हस्ताक्षरसे जो भी आवेदन जायेगा उसका जहाँतक इन हस्ताक्षरकर्त्ताओंके निजी प्रभावका सम्बन्ध है, कोई असर नहीं होगा। इसका यह मतलब नहीं कि यह कभी आवेदन देगा ही नहीं। जब फौरन किसी कार्रवाईकी जरूरत होगी या जब अन्य लोग नीतिवश या किसी दूसरे कारणसे आवेदनोंपर हस्ताक्षर करनेको तैयार नहीं होंगे तो यह अपने सदस्योंके हस्ताक्षरोंसे आवेदन अवश्य भेजेगी। हाँ, यह तो है ही कि महत्त्वपूर्ण आवेदनोंपर लोगोंसे हस्ताक्षर करानेके प्रयत्नके सिलसिलेमें लोकमतका अन्दाजा भी हो जायेगा और वह इस बातकी भी कसौटी होगा कि देशके गण्यमान्य लोग बलिदानके लिए कहाँतक तैयार हैं। लेकिन आज जनताके लिए और आन्तरिक कार्योंके लिए यह समिति पूर्ण रूपसे प्रतिनिधि संस्था है। मुस्लिम लोकमतका शौकत अली और हसरत मोहानीसे बढ़कर कोई दूसरा प्रतिनिधि मिल पाना मुश्किल ही

है। दूसरे लोग यद्यपि इन-जैसे प्रसिद्ध नहीं हैं लेकिन ऐसा माना जाता है कि उनमें उद्यमशीलता है, धैर्य है, शान्ति और सचाई है, कठिनाइयोंके बीच साहस कायम रखनेकी क्षमता है और बलिदानकी भावना है; और इन्हीं गुणोंके कारण उन्हें चुना गया है।

यह भी कहा गया है कि इस आन्दोलनका नेतृत्व मैं करूँगा। लेकिन यह बात अंशतः ही सच है, और मैं ऐसा सिर्फ विनयवश नहीं कह रहा हूँ बल्कि इसलिए कह रहा हूँ कि यह अक्षरशः सत्य है। अगर विश्वास जोर पकड़ गया कि इस आन्दोलनका नेतृत्व मैं कर रहा हूँ तो यह इसके लिए घातक सिद्ध हो सकता है। मैं इस आन्दोलनका नेतृत्व इस अर्थमें तो कर रहा हूँ कि मैं एक ऐसा सलाहकार हूँ जिसकी सलाह आज सबसे अधिक स्वीकार की जाती है और असहयोगके कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेके जिसके संकल्प-का कोई मुकाबला नहीं कर सकता। लेकिन मैं मुस्लिम लोकमतका प्रतिनिधित्व करने का झूठा दावा नहीं करता। मैं तो सिर्फ उसकी व्याख्या ही कर सकता हूँ। मैं अकेले खड़ा होकर मुसलमान जनताको अपने साथ ले चलनेकी आशा नहीं कर सकता। अगर किसी मिले-जुले मुस्लिम श्रोतृसमूहके सामने मैं धार्मिक मामलोंमें गण्यमान्य मुसल-मानोंके खिलाफ कुछ कहना चाहूँ तो लोग शायद मुझे बोलने भी नहीं देंगे और वह ठीक ही होगा। लेकिन अगर मैं मुसलमान होता तो मैं मुसलमानोंकी किसी सभामें प्रतिकूलसे-प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी अपनी बात कहनेमें नहीं हिचकता। मैं अपनेको एक बुद्धिमान कार्यकर्त्ता मानता हूँ और मेरी बुद्धिमत्ताका मतलब इसके अलावा और कुछ नहीं है कि मैं अपनी सीमाओंसे भली-भाँति परिचित हूँ। मेरा खयाल है, मैं इन सीमाओंका अतिक्रमण कभी नहीं करता। कमसे-कम जान-बूझकर तो मैंने ऐसा कभी नहीं किया है। हर समझदार मुसलमानोंको मेरी इन सीमाओं और मेरे कार्यक्षेत्रकी मर्यादाओंका ध्यान रखना चाहिए। किसी तरहका अज्ञान इस आन्दोलनकी सफलताके मार्गमें घातक सिद्ध हो सकता है। मैं इस आन्दोलनसे सम्बद्ध हूँ, इस कारण कार्यकर्त्ताओंको सुस्ती अथवा लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए। अगर इस आन्दोलनके साथ मेरे सम्बन्धसे कुछ अच्छे परिणाम निकलते हैं तो इस सम्बन्धका मतलब इतना ही समझना चाहिए कि लोगोंको अधिक सतर्क रहना है, दायित्वभावका अधिक अनुभव करना है, काम करनेकी अधिक क्षमता और इच्छा रखनी है तथा ज्यादा कुशलता दिखानी है। मैं योजनाएँ बना सकता हूँ, लेकिन उन्हें कार्यरूप देना सदैव मुसलमान कार्यकर्त्ताओंके हाथोंमें ही रहेगा। मेरे-जैसे मित्रोंकी सहायतासे, और जरूरत हो तो उनकी सहायताके बिना भी, यह आन्दोलन उन्हें ही चलाना है, इसका नेतृत्व उन्हें ही करना है। मुझसे ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए कि मैं असहयोग करनेवाले लोग तैयार करूँगा; यह तो मुसलमान नेता ही कर सकते हैं। मैं चाहे कितना ही बलिदान करूँ, यानी [मुसलमानोंके] इस धार्मिक मामलेमें कितना ही बलिदान करूँ, उससे मुस्लिम संसारमें असहयोगकी भावना नहीं आ सकती। जब मुसलमान नेता अपने आचरणमें यह चीज दिखायेंगे तभी जनसाधारणमें यह भावना विकसित होगी।

और अब इस प्रश्नका उत्तर देना बहुत आसान हो गया है कि समितिमें हिन्दू नेता क्यों नहीं शामिल किये गये हैं। सर्वोच्च समिति तो विशुद्ध रूपसे मुसलमानोंसे ही

बनी होनी चाहिए। उसमें मेरा शामिल रहना भी एक बुराई ही है, लेकिन मेरी योग्यताओंको देखते मेरा उसमें रहना एक ऐसी बुराई है जिसे टाला नहीं जा सकता। मैंने असहयोगका विशेष ज्ञान प्राप्त किया है। मैंने सफलतापूर्वक इसका प्रयोग करके देखा है। इस असहयोग-विषयक प्रस्तावकी[1] कल्पना दिल्ली सम्मेलनमें[2] मैंने ही की थी। अतएव मैं इस समितिमें विशेषज्ञकी हैसियतसे शामिल हूँ, हिन्दूकी हैसियतसे नहीं। अतः मेरा काम भी सिर्फ सलाहकारका काम है। हाँ, यह बात निस्सन्देह समितिके लिए लाभदायक है कि मैं एक ऐसा कट्टर हिन्दू हूँ जो असहयोगमें अपने मुसलमान भाइयोंका पूरी हदतक साथ देना प्रत्येक हिन्दूका कर्त्तव्य मानता है। लेकिन यह लाभ तो, मैं समितिमें होता या न होता, उसे यों भी प्राप्त ही रहता।

अब खिलाफतसे हिन्दुओंके सम्बन्धपर विचार करते समय किंचित् पुनरावृत्तिका खतरा उठाकर भी मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहूँगा। चूँकि मैं मुसलमानोंकी माँगोंको (धार्मिक दृष्टिकी बात अलग रखें तो भी) वास्तविक दृष्टिसे उचित मानता हूँ इसलिए मैं उसके साथ असहयोगमें पूरी हदतक चलनेको तैयार हूँ। और मैं इस चीजको भारतके साथ ब्रिटेनके सम्बन्धोंके प्रति मेरी जो निष्ठा है, उससे भी सर्वथा संगत मानता हूँ। लेकिन मैं किसी हिंसात्मक लड़ाईमें मुसलमानोंके साथ नहीं जाऊँगा। उदाहरणके लिए, अगर शान्ति-संधिकी शर्तोंको मुसलमानोंके लिए अधिक अनुकूल बनवानेके उद्देश्यसे अफगानिस्तानकी ओरसे या किसी और रास्ते भारतपर किसी आक्रमणको बढ़ावा देनेका प्रयत्न किया जाये तो मैं उसमें सहायता नहीं दे सकता।[3] मेरे विचारसे उपर्युक्त उद्देश्यसे किये गये किसी आक्रमणका विरोध करना भी उसी तरह प्रत्येक हिन्दूका कर्त्तव्य है जिस तरह यह कि वह असहयोग या कष्ट-सहनके किसी और तरीकेसे लाख मुसीबतें झेलकर भी अपने मुसलमान भाइयोंकी उचित और न्यायसंगत माँगोंको सरकारसे स्वीकार करवानेके प्रयासमें तबतक हाथ बँटाता रहे, जबतक कि उससे भारतकी स्वतंत्रताको कोई खतरा न हो। किसीके साथ हिंसा न की जाये। मैं पूरे मनसे असहयोग आन्दोलनमें कूद पड़ा हूँ — और किसी कारणसे नहीं तो कमसे-कम इसी कारणसे कि मैं ऐसे किसी सशस्त्र संघर्षको रोकना चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-६-१९२०

१. देखिए परिशिष्ट ३।

२. जो जनवरी १९२० के तीसरे सप्ताहमें हुआ था। यह १९ जनवरीको दिल्लीमें वाइसरायसे मुलाकात करनेवाले भारतीय खिलाफत शिष्टमंडलके सदस्योंका सम्मेलन था।

३. १ और २ जून, १९२० को इलाहाबादमें आयोजित हिन्दुओं और मुसलमानोंके संयुक्त सम्मेलनमें हिन्दू प्रतिनिधियोंने यह आशंका व्यक्त की थी कि अगर भारतीय मुसलमान अफगानिस्तानको भारतपर आक्रमणके लिए बढ़ावा देंगे तो उलझन पैदा हो सकती है। मुसलमान वक्ताओंने आश्वासन दिया कि अगर विशुद्ध रूपसे भारतको जीतनेके लिए इसपर कोई आक्रमण किया गया तो वे उसका प्रतिरोध करेंगे, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि इस्लामकी प्रतिष्ठा और न्यायके हकमें किये गये किसी भी आक्रमणके साथ उनकी पूरी सहानुभूति होगी, भले ही वे उसमें वास्तविक सहायता न दें।

२४२. पंजाबियोंका कर्त्तव्य

इलाहाबादका 'लीडर' श्री बॉसवर्थ स्मिथसे सम्बन्धित पत्र छापनेके लिए बधाईका पात्र है। ये श्री स्मिथ उन्हीं अधिकारियोंमें से एक हैं जिनके खिलाफ सैनिक कानूनके दौरान लोगोंके साथ दुराग्रहपूर्वक लगातार दुर्व्यवहार करनेकी सबसे ज्यादा शिकायत की गई है।[1] इस पत्रसे पता चलता है कि श्री स्मिथको बरखास्त करनेके बजाय तरक्की दे दी गई है। मालूम होता है, सैनिक कानून घोषित किये जानेसे कुछ दिनों पहले उनकी तनज्जुली कर दी गई थी। 'लीडर' के नाम उक्त पत्रका लेखक कहता है:

> अब उन्हें, जिस द्वितीय श्रेणीके डिप्टी कमिश्नरके पदसे तनज्जुल कर दिया गया था, फिर उसी पदपर प्रतिष्ठित कर दिया गया है। साथही उन्हें प्रक्रिया संहिताके खण्ड ३० की रूसे प्राप्त होनेवाली सारी सत्ता भी दे दी गई है। उनके आनेके बादसे अम्बाला छावनीके बेचारे भारतीय नागरिक त्रास और अत्याचारपूर्ण शासनमें रह रहे हैं।

पत्रलेखक आगे कहता है:

> मैंने उपर्युक्त दोनों विशेषणोंका प्रयोग जान-बूझकर उसी अर्थमें किया है जो अर्थ इनसे निकलता है।

मैं सारी स्थितिको बिलकुल खोलकर रख देनेवाले इस पत्रके कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ, जिनसे त्रास और अत्याचारका मतलब स्पष्ट हो जायेगा।

> निजी शिकायतोंके सम्बन्धमें वे शिकायत करनेवाले व्यक्तिका बयान कभी नहीं लेते। जब अदालत उठ जाती है तब पेशकार ऐसा बयान ले लेता है और फिर दूसरे दिन मजिस्ट्रेटसे हस्ताक्षर करवा लेता है। (ऐसी शिकायतोंके बारेमें) जो रिपोर्ट ली जाती है, वह चाहे शिकायत करनेवाले के अनुकूल हो या प्रतिकूल, मजिस्ट्रेट उसे कभी नहीं पढ़ता और बिना किसी उचित जाँच-प्रक्रियाके शिकायत रद कर दी जाती है। यह तो है निजी शिकायतोंका हाल। अब पुलिस चालानोंका किस्सा सुनिए। ऐसे मामलोंमें अभियुक्तोंके वकीलोंको पुलिसकी हिरासतमें बन्द विचाराधीन व्यक्तियोंसे मिलने नहीं दिया जाता। उन्हें वादी पक्षके गवाहोंसे जिरह नहीं करने दी जाती। . . . उनकी जाँच उनसे ऐसे प्रश्न करके की जाती है, जिनका उत्तर वे प्रश्नकर्त्ताके मनके मुताबिक दें। . . . इस प्रकार अभियोगका सारा किस्सा पुलिसके गवाहोंकी जबानी कहलवाया जाता है। बचाव पक्षके गवाहोंको यद्यपि अदालतमें बुलाया जाता है, किन्तु बचाव पक्षके वकीलको उनसे पूछताछ नहीं करने दी जाती। . . .

१. देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५-३-१९२०।

अगर अभियुक्त साहस करके अपने बचावमें कुछ कहना भी चाहता है तो उसे फटकारकर चुप कर दिया जाता है। . . . छावनीका कोई भी सरकारी कर्मचारी एक पुर्जेपर किसी भी नागरिकका नाम लिखकर दूसरे दिन उसे अदालतमें हाजिर होनेको मजबूर कर सकता है। उसका इतना-भर लिख देना ही सम्मनके बराबर है। . . . जिससे इस प्रकार अदालतमें हाजिर होनेको कहा जाता है वह अगर हाजिर नहीं होता तो उसकी गिरफ्तारीके लिए फौजदारी वारंट जारी कर दिया जाता है।

इस पत्रमें इसी तरहकी और भी बहुत सी बातें कही गई हैं जो उद्धृत करने लायक हैं। लेकिन जितना मैंने दे दिया है, उससे लेखकका आशय स्पष्ट हो जाता है। अब सैनिक कानूनके दौरान हम जरा इन अधिकारी महोदयके कारनामोंको देखेंगे। ये अधिकारी वही सज्जन हैं जिन्होंने अपने इजलासमें लोगोंको एक-एक करके नहीं, बल्कि समूहोंमें हाजिर करवाकर मुकदमेका नाटक करनेके बाद उन्हें सजा दी। गवाहोंका कहना है कि वे लोगोंको इकट्ठा करके उनसे झूठी शहादतें देनेको कहते थे, औरतोंके पर्दे-बुर्के उठवा देते थे, उन्हें "मक्खी, कुतिया और गधी" कहकर पुकारते थे और उनपर थूक देते थे। यही थे जिन्होंने शेखूपुराके निरीह वकीलोंपर अवर्णनीय जुल्म किये थे। श्री एण्ड्रयूज इस अधिकारीके विरुद्ध की गई शिकायतोंकी व्यक्तिशः जाँच करके इस निष्कर्षपर पहुँचे कि श्री स्मिथसे अधिक बुरा बरताव दूसरे किसी अधिकारीने नहीं किया है। इन्होंने शेखूपुराके लोगोंको इकट्ठा करके तरह-तरहसे उनका अपमान किया, उन्हें "सूअर लोग" और "गन्दी मक्खी" कहा। हंटर समितिके सामने उन्होंने जो गवाही दी उससे प्रकट होता है कि किस तरह उन्होंने सत्यका गला घोटा है। ये वही अधिकारी हैं जिनकी, अगर उक्त पत्र-लेखककी बातें सही हों तो, तरक्की कर दी गई है। लेकिन सवाल यह है कि वे अभीतक सरकारी सेवामें बने हुए ही क्यों हैं और बेगुनाह औरतों और मर्दोंको मारने-पीटने, उन्हें अपमानित करनेके अभियोगमें अबतक उनपर मुकदमा क्यों नहीं चलाया गया है।

देखता हूँ, लोगोंमें यह इच्छा बहुत प्रबल है कि जनरल डायर और सर माइकेल ओ'डायरपर महाभियोग लगाया जाये। यह व्यवहार्य है या नहीं, इसपर मैं यहाँ विचार नहीं करूँगा। लेकिन मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि जनरल डायरपर महाभियोग लगानेकी इस चीख-पुकारमें श्री शास्त्री[1] भी शामिल हैं। अगर अंग्रेज लोग स्वेच्छासे ऐसा करें तो मैं इसका स्वागत करूँगा। क्योंकि यह इस बातकी निशानी होगी कि उन्होंने जलियाँवाला बागकी नृशंसताको भर्त्सनीय माना है, लेकिन निश्चय ही, मैं इन दोनोंको दण्डित करवानेके निरर्थक प्रयत्नपर फूटी कौड़ी भी खर्च करना नहीं चाहूँगा। और इस सम्बन्धमें अंग्रेजोंका क्या खयाल है, जनताको तो

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री। ३ अप्रैल, १९२० को आयोजित बम्बई प्रान्तीय कान्फ्रेंसमें सर ओ'डायर तथा अन्य लोगोंपर महाभियोग लगाने और किसी न्यायाधिकरण द्वारा उनकी जाँच करके उन्हें दण्डित करनेकी माँग की गई थी।

इसका पर्याप्त अनुभव हो गया है। लगभग सारे अंग्रेजी अखबार मानवताके प्रति ऐसा घोर अपराध करनेवाले इन लोगोंके कारनामोंपर परदा डालनेकी साजिशमें शामिल हो गये हैं। इनपर सरकारी अथवा गैर-सरकारी तौरपर मुकदमा चलानेके लिए चीख-पुकार मचानेका मतलब है इन्हें 'हीरो' का दर्जा दे देना[1] और मैं ऐसे किसी प्रयासमें शामिल नहीं होऊँगा। अगर मैं भारतको सिर्फ इनकी पूरी बरखास्तगीकी माँग करनेके लिए राजी कर सकूँ तो इसे काफी समझूँगा। लेकिन सर माइकेल ओ'डायर और जनरल डायरकी बरखास्तगीसे ज्यादा जरूरी यह है कि कर्नल ओ'ब्रायन, श्री बॉसवर्थ स्मिथ, राय [साहब] श्रीराम तथा कांग्रेस उप-समितिकी रिपोर्टमें बताये गये[2] अन्य व्यक्तियोंपर अगर मुकदमा न भी चलाया जाये तो उन्हें कमसे-कम बिलकुल बरखास्त तो कर ही दिया जाये। जनरल डायरको तो मैं बुरा मानता ही हूँ, लेकिन श्री स्मिथको तो कहीं ज्यादा बुरा मानता हूँ और उनके अपराधोंको जलियाँ-वाला बागके कत्लेआमसे ज्यादा जघन्य समझता हूँ। जनरल डायर ईमानदारीके साथ ऐसा मानते थे कि एक सिपाहीके नाते लोगोंपर गोलियाँ चलाकर उन्हें भयभीत करना उनका कर्त्तव्य था। लेकिन श्री स्मिथने मनमाने तौरपर नृशंसता बरती, कमीनापन और नीचता दिखाई। अगर उनके खिलाफ कही गई सारी बातें सत्य हैं तो मानना पड़ेगा कि उनमें इन्सानियतका लेश भी नहीं है। जनरल डायरके विपरीत, उनमें अपने कियेको कबूल करनेकी हिम्मत नहीं है और जब उनसे कोई बात पूछी जाती है तो वे बगलें झाँकने लगते हैं। लेकिन आज भी यह अधिकारी लोगोंको — ऐसे लोगोंको जिन्होंने कभी उसका कुछ नहीं बिगाड़ा — तबाह करनेको, स्वतन्त्र है और जिस शासनका वह फिलहाल प्रतिनिधि बना हुआ है उसे कलंकित करनेकी उसे पूरी छूट मिली हुई है।

और इस हालतमें पंजाब क्या कर रहा है? क्या पंजाबियोंका यह स्पष्ट कर्त्तव्य नहीं है कि जबतक वे श्री स्मिथ और उन-जैसे अन्य लोगोंको बरखास्त न करवा लें तबतक चैनसे न बैठें? और अगर पंजाबके नेता[3] अपनी मुक्तिका उपयोग सर्वश्री बॉसवर्थ स्मिथ और उनके गुर्गोंके कारनामोंसे पंजाब-प्रशासनको छुटकारा दिलानेके लिए नहीं करते तो वे व्यर्थ ही जेलोंसे छूटकर आये। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि वे संकल्पके साथ एक आन्दोलन छेड़-भर दें तो सारा भारत उनके साथ होगा। मैं उन्हें यह सलाह दूँगा कि अगर जनरल डायरको कठघरेमें खड़ा करवाना है तो उसका सबसे अच्छा तरीका है, जिन अधिकारियोंके खिलाफ इतने सारे प्रमाण एकत्र करनेमें उन्होंने मदद दी वे अधिकारी आज भी जो शरारत और शैतानी किये जा रहे हैं,

१. इंग्लैंडके कुछ हल्कोंमें डायरका बड़ा सौहार्दपूर्ण स्वागत किया गया; उनकी सहायताके लिए एक सार्वजनिक कोष भी आरम्भ किया गया।

२. देखिए "पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट", २५-३-१९२०।

३. ये नेता सैनिक कानूनके अन्तर्गत गिरफ्तार किये गये थे और बादमें २३ दिसम्बर, १९१९ की राज-घोषणामें जो आम माफी दी गई थी उसके अन्तर्गत छोड़ दिये गये थे।

उसे रोकना। और मैं कहूँगा, यह काम अपेक्षाकृत अधिक आसान भी है और ज्यादा जरूरी भी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-६-१९२०

२४३. भाषण: बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके बारेमें

२३ जून, १९२०

कल माधव बाग, बम्बईमें एक सार्वजनिक सभा की गई, उसमें माननीय पंडित मदनमोहन मालवीयने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयपर एक भाषण दिया। ग्वालियर-नरेश महाराजा सिन्धिया अध्यक्ष थे। सभामें बड़ी संख्यामें लोग उपस्थित थे, जिनमें महाराजा बीकानेर, श्री मो० क० गांधी, मौलाना शौकतअली . . . भी थे।

श्री गांधीने अपने भाषणमें कहा कि हमारे मित्र पंडित मालवीयने विश्वविद्यालयके लिए जितने उत्साह और परिश्रमसे काम किया है उतना और किसीने नहीं।[1] जब-जब इस विषयपर बात करनेका मुझे अवसर मिला है तब-तब उन्होंने मुझे बताया कि विश्वविद्यालयके कामको और आगे बढ़ाना वे अपने जीवनका मुख्य कार्य मानते हैं। उन्होंने मुझसे यह भी कहा है कि यदि बन सका तो वे राजनीतिका क्षेत्र बिलकुल ही छोड़ देंगे और अपने आपको विश्वविद्यालयके काममें पूरी तौरसे लगा देंगे। बम्बई हमेशा इस बातके लिए प्रसिद्ध रहा है कि वह एक उचित उद्देश्यकी सहायताके लिए तुरन्त तत्परतासे आगे आता है और इस बातमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि बम्बई अपनी उसी परम्परागत उदारतासे काम लेगा और विश्वविद्यालयकी सहायता करेगा। केवल पंडित मालवीय ही नहीं, दो महाराजा भी आज आपके बीच नम्र याचकोंके रूपमें पधारे हुए हैं। अतएव आपका कर्त्तव्य है कि विश्वविद्यालय-कोषके लिए जितना भी दान दे सकें दें तथा यह दान तत्परताके साथ और इसी स्थलपर देना उचित होगा। श्री गांधीने महाराजा सिन्धियाको अध्यक्ष-पद ग्रहण करनेके लिए हार्दिक धन्यवाद देनेके उपरान्त अपना भाषण समाप्त किया।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २४-६-१९२०

१. मालवीयजीने १९१६ में विश्वविद्यालय स्थापना की थी; उसकी योजनापर कई वर्षोंतक काम किया और उसका खर्च चलानेके लिए एक करोड़ रुपयेका एक कोष संग्रह किया।

२४४. पत्र : एस्थर फैरिंगको

बम्बई
२५ जून, १९२०

रानी बिटिया,

तुम्हें पत्र लिखनेमें मैं नियमित नहीं रह पाया, यद्यपि चाहता अवश्य था। खिलाफत प्रश्नके सम्बन्धमें मैं बहुत व्यस्त रहा हूँ, परन्तु मैंने एम०[1] से मेरी ओरसे तुम्हें लिखनेको जरूर कहा था। तुम्हें 'यंग इंडिया' नियमित रूपसे मिलता ही होगा।

मैं आशा करता था कि तुम जहाजसे[2] समाचार भेजोगी। परन्तु अभीतक तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला है। मैंने तुम्हें एक पत्र[3] इस ढंगसे भेजा था कि वह तुम्हें जहाजपर मिल जाये और दूसरा[4] लंदनके पतेपर, टामस कुककी मार्फत भेजा था। आशा है कि तुम्हें दोनों पत्र अवश्य मिले होंगे।

फिलहाल मेरा बम्बईसे बाहर जाना असम्भव है। इस पत्रके साथ मैं वाइसराय-को लिखे गये अपने पत्रोंकी[5] प्रतियाँ भेज रहा हूँ। उनसे तुम्हें मेरी गतिविधिका एक अन्दाज हो जायेगा। देवदास मेरे साथ है।

अपने पिताजीसे तुम्हारी भेंटके बारेमें मैं जाननेको उत्सुक हूँ और यह भी जानना चाहता हूँ कि तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है। निश्चय ही मैं तुम्हारा पत्र नियमित रूपसे पानेकी आशा करता हूँ।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१. महादेव देसाई।
२. एस० एस० बर्लिन, जिससे एस्थर फैरिंगने डेनमार्ककी यात्रा की।
३. अनुमानतः उस पत्रसे मतलब है जिसका उल्लेख "पत्र: एस्थर फैरिंगको", २१-५-१९२० में है।
४. उपलब्ध नहीं है।
५. देखिए "पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको" तथा "पत्र : वाइसरायको", २२-६-१९२०।

२४५. स्मरणांजलि

आषाढ़ सुदी ११, १९७६ [२६ जून, १९२०]

स्वर्गीय भाई व्रजलालकी मृत्युके सम्बन्धमें लिखना मुझे मुश्किल लगता है। अभी-तक मैं उनकी आकृतिको भूल नहीं सका हूँ। मेरा मोह अभी गया नहीं है, इसलिए तटस्थ भावसे [कुछ] लिखना आसान नहीं है। जिस तरहसे उनकी मृत्यु हुई है उससे मुझे उनसे ईर्ष्या होती है। उन्हें तो मैं सौभाग्यशाली ही समझता हूँ। जिन्हें एक पल भी किसीसे सेवा नहीं करवानी पड़ी और जो दूसरोंकी सेवा करते-करते ही मर गये उनसे अधिक अच्छी मृत्युकी कल्पना कैसे की जा सकती है? जो ईश-स्मरण करते-करते स्वस्थ चित्तसे मर सकता है उसे हम पुण्यात्मा मानते हैं। भाई व्रजलाल प्रभुका काम करते-करते मृत्युको प्राप्त हुए हैं। मैं जानता हूँ कि मेरे इस कथनमें कुछ अति-शयोक्ति है। लेकिन भाई व्रजलालको मैं इतनी अच्छी तरह जानता था कि अगर उनसे कोई उनकी पसन्द पूछता तो जिस तरहसे उनकी मृत्यु हुई है वे उसे ही पसन्द करते[1]।

वे धर्मात्मा थे। उन्होंने मुझे अपने हृदयके गहनतम भावोंसे अवगत कराया था। जहाँतक मुझे याद है, एक बार उन्होंने मुझसे एकान्तमें मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी। उस अवसरपर उन्होंने मुझे अपने अन्तरतमके भावोंसे परिचित कराया था और अपने धर्म-संकटके सम्बन्धमें बताया था। उन्हें आश्रमका जीवन अत्यन्त प्रिय था, यह तो उनके आचरणसे ही स्पष्ट था। उन्हें मैं मुनि मानता था। वे कदाचित् ही बातचीत करना पसन्द करते थे, फिर भी उनका चेहरा हमेशा प्रफुल्लित रहता था। किसी भी कामको उन्होंने कभी भी तुच्छ नहीं माना और अपनी देहसे उन्होंने भरपूर काम लिया।

इस शान्त मूर्तिको भूल जाना कठिन है। भूलना पाप होगा। तो फिर हमेशाके लिए उनकी स्मृतिको हम कैसे बनाये रख सकते हैं? मुझे तो लगता है कि हमारे लिये एक ही रास्ता है और वह है उनके अनेक गुणोंका अनुकरण करना। मौन रहकर प्रफुल्ल चित्तसे सेवा करते रहना उन्होंने धर्म माना था। उनके धर्मको स्वीकार कर हम दृढ़तापूर्वक उसका पालन करें तथा इस तरह उनके जीवनको अपने जीवनमें उतार कर अमर बनायें।

[गुजरातीसे]

मधपुडो, खण्ड १, विशेषांक

१. श्री व्रजलाल किसीका बर्तन कुएँमें गिर जानेके कारण उसे लेनेके लिए उतरे थे। कुएँसे बाहर आते समय वे मूर्च्छित हो उसीमें गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गई।

२४६. भाषण: हंटर समितिकी रिपोर्टपर[1]

वम्बई
२६ जून, १९२०

इस प्रस्तावमें जो माँगें की गई हैं वे कांग्रेस समितिकी रिपोर्टमें उल्लिखित माँगोंसे इस वातमें अधिक आगे जाती हैं कि इनमें ओ'डायर और उनके साथी अधिकारियों-पर मुकदमा चलानेकी वात भी कही गई है। कांग्रेस उप-समिति इतनी दूरतक नहीं गई थी; तथापि अखिल भारतीय कांग्रेस समितिने यह माँग की है। मेरा निजी मत अभी उप-समितिकी रिपोर्टके अनुकूल ही है। फिर भी वहुमतको शिरोधार्य करके मैं इस प्रस्तावको पेश करता हूँ। मैं मानता हूँ कि हंटर रिपोर्टमें[2] स्पष्ट ही जान-बूझकर लीपा-पोतीकी गई है। उसमें जान-बूझकर पंजावके अधिकारियोंके दोपोंपर परदा डालनेका प्रयत्न किया गया है। मेरा वश चले तो मैं इसके विरुद्ध तो असहकार और सत्याग्रहका ही प्रस्ताव पेश करूँ, क्योंकि हम इसी रास्तेसे पार उतर सकते हैं। मैं यहाँ भापण देने नहीं आया हूँ, वल्कि इस सम्वन्धमें मेरी जो तीव्रतम भावनाएँ हैं, उन्हें व्यक्त करने आया हूँ। मैं आपके पास सिर्फ प्रस्ताव पास करानेके उद्देश्यसे यहाँ नहीं आया हूँ, वरन् उससे भी अधिक, कार्य करनेके लिए कहनेको आया हूँ। यदि आप लॉर्ड चेम्सफोर्डको इंग्लैंड वापस भेज सकें तो यह काम ओ'डायर अथवा डायरको फाँसीके तख्तेपर लटकानेकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माना जायेगा। जिस मनुष्यने लोकभावनाका सवसे अधिक अनादर किया है उसे सवसे पहले निकाला जाना चाहिए। मार्शल लॉके नायक वॉसवर्थ स्मिथ अभी अपने पदपर ही प्रतिष्ठित हैं। जनताका लक्ष्य डायर, ओ'डायर, लॉर्ड चेम्सफोर्ड आदिको उनके पदोंसे उतारना होना चाहिए। इस प्रस्तावमें हम लोगोंपर किए गये जुर्माने तथा नुकसान आदिका हर्जाना भी माँगते हैं। आप सम्भवतः इन जुर्मानोंकी भयंकरतासे अपरिचित हों! जबतक लोगोंपर किये गये ये भारी जुर्माने उन्हें वापस नहीं मिलते तवतक इन अधि-कारियोंको सजा देनेकी वात कहना व्यर्थ है। जवतक रौलट अधिनियम विधि-पुस्तिकामें है तवतक सत्याग्रह तो होगा ही और अगर जनता इस अस्त्रका प्रयोग करना सीख जाये तो सव दुःख ही टल जायें। मेरा तो सत्याग्रहमें अटूट विश्वास है। पंजावपर किये गये अन्यायका निराकरण अभी नहीं हो पाया है। उसके लिए हम उतने ही उत्तर-

१. यह सभा हंटर समितिकी रिपोर्टके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए वम्बई होमरूल लीग तथा नेशनल यूनियनके तत्त्वावधानमें की गई थी। इसकी अध्यक्षता एम० ए० जिन्नाने की थी। मुख्य प्रस्ताव गांधीजीने पेश किया था जिसमें हंटर समितिके वहुमत द्वारा दी गई रिपोर्ट तथा उसपर भारत-मन्त्री और भारत सरकार द्वारा दी गई स्वीकृतिके प्रति विरोध प्रकट किया गया था एवं पंजावके अन्यायपर कांग्रेस समितिने जो रिपोर्ट दी थी उसकी सिफारिशोंको लागू करनेका अनुरोध किया गया था।

२. २५ मई, १९२० को प्रकाशित हुई थी।

दायी हैं जितना कि अधिकारी-वर्ग। हमारी कमसे-कम तीन माँगे हैं: लॉर्ड चेम्स-फोर्डको वापस [इंग्लैंड] बुलाया जाये, जुर्माने वापस किये जायें तथा रौलट अधिनियम सदाके लिए रद कर दिये जायें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४–७–१९२०

२४७. खिलाफत

इस प्रश्नके सम्बन्धमें हम एक कदम आगे बढ़े हैं और वह कदम बहुत महत्त्व-पूर्ण है। हमने वाइसराय महोदयको नोटिस[1] दिया कि या तो आप हमारे पक्षका समर्थन करें नहीं तो हम शासन-प्रबन्ध चलानेमें आपकी मदद नहीं कर सकते। [हम कामना करते हैं कि] वाइसराय महोदयमें इतनी सुमति आये कि वे स्वयं जनताकी ओरसे संघर्ष करें। ब्रिटिश साम्राज्यके लिए ऐसा शुभ दिन अभीतक नहीं आया है। इसलिए हमें पहली अगस्तसे असहकार आन्दोलन करनेकी तैयारी करनी ही चाहिए। जिस असहकारके बारेमें बहुत शोर है, जिसको लेकर देशमें ढेरों कागज रँगा गया है, वह असहकार समीप आ गया है।

हमें एक माहके अन्दर असहकारकी तैयारी करनी है। इसमें मुसलमानों और हिन्दुओंकी परीक्षा होगी। लेकिन इस समय में तो हिन्दुओंके प्रति ही दो शब्द कहना चाहता हूँ। जबतक मुसलमान कुछ न करें तबतक खिलाफतके सम्बन्धमें हिन्दुओंके लिए कुछ करनेको नहीं रहता। लेकिन जब मुसलमान भाई असहकार आरम्भ करें तब हिन्दू क्या करें? इलाहाबादमें एक प्रमुख हिन्दू सज्जनने कहा कि यदि एक मुसलमान 'जस्टिस आफ पीस' के पदसे त्यागपत्र देता है तो तीन हिन्दू अपना पद छोड़नेके लिए तैयार रहेंगे। यदि इतना ही हो तो समझो कि हिन्दुओंने विशेष कुछ नहीं किया। मुसलमान सात करोड़ हैं जब कि हिन्दुओंकी जन-संख्या बाईस करोड़ है, अर्थात् मुसलमानोंसे हिन्दू इस देशमें तीन गुनासे भी ज्यादा हैं। यदि एक मुसलमानके साथ तीन हिन्दू खड़े हों तो दोनोंका समान योगदान माना जायेगा; यह मित्रताका सूचक है। किन्तु असलमें मित्रतामें हिसाबको अवकाश ही नहीं है। फिर भी इसका यह अर्थ तो नहीं कि मित्र अपने हिस्सेसे भी कम योग दे। मित्रताका सम्बन्ध ऐसा होता है अथवा होना चाहिए कि हमें अपने हिस्सेमें भी अधिक योग देकर ऐसा लगे कि हमने कुछ नहीं दिया। प्रश्न यह है कि हिन्दू मुसलमानोंकी सहायताके लिए इस दृष्टिसे खड़े होंगे अथवा नहीं। उस समय समस्त संसार हिन्दुओंकी ओर टकटकी लगाकर देख रहा होगा; क्योंकि मुसलमानोंकी विजयका आधार बहुत-कुछ हिन्दुओंकी स्थितिपर निर्भर करेगा। यदि हिन्दू उनका साथ देंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि उनके दुःखोंका शीघ्र अन्त हो जायेगा।

१. खिलाफत समिति द्वारा; जिसकी बैठक ९ जूनको इलाहाबादमें हुई थी।

हिन्दू दो तरहसे इस अवसरका लाभ उठा सकते हैं। एक तो वे मुसलमानों जितना त्याग करें और जिस पदको मुसलमान छोड़ें उसपर न जायें। एक मुसलमान नौकरीसे अलग हो जाये तो एक या तीन हिन्दू अपने पदोंसे त्यागपत्र दे दें, यह एक बात है। यदि हिन्दू ऐसा करें तो वह एक अच्छा काम होगा। मुसलमान जिस पदको त्यागें उस पदको हिन्दू ग्रहण न करें, यही दूसरी बात हुई; यह बात भी महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। जो हिन्दू, मुसलमान द्वारा रिक्त किये गये स्थानको भरने जाये तो समझो कि वह मुसलमान भाईके साथ शत्रुताका व्यवहार कर रहा है। इससे असहकार यद्यपि असम्भव तो नहीं पर कठिन अवश्य हो जायेगा। जो हिन्दू कुछ और नहीं कर सकता वह मुसलमानोंकी सभामें उपस्थित होकर उनके प्रति सहानुभूति प्रकट कर सकता है तथा उनके काममें बाधाएँ उपस्थित न करके कमसे-कम इतना तो सिद्ध कर सकता है कि वह स्वयं [मुसलमानोंका] शत्रु नहीं है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २७-६-१९२०

२४८. पुरानी पूँजी

जिस तरह कोई लड़का अपने पिताकी प्रतिष्ठाके बलपर बहुत दिनोंतक अपना काम नहीं चला सकता उसी तरह भारतीय जनता, भारतके स्वर्णिम अतीतके आधार-पर वैभव और समृद्धि प्राप्त नहीं कर सकती। गत सप्ताह हमने स्पष्ट किया था कि वैभव और समृद्धिके बदले आज हमपर कंगाली छाई हुई है।

इस अंकमें हम उसके कारणों तथा उपायोंपर विचार करेंगे।

अकबरके समय मुगल साम्राज्यका जो तेज था उसे उसके वारिस खो बैठे, क्योंकि अकबरके गुण उसके वारिसोंमें एक-एक करके लुप्त होते गये। जहाँगीरने एक, शाहजहाँने दो, औरंगजेबने बहुतसे और उसके बादके सम्राट् लगभग सारे गुण खो बैठे। इसलिए साम्राज्यकी बागडोर मुगलोंके हाथसे निकलकर अंग्रेजोंके हाथमें चली गई। ठीक वैसा ही भारतकी वर्तमान जनताने किया है।

इस बातको हम स्वीकार नहीं करना चाहते और इसलिए कहते हैं कि दोष सिर्फ अंग्रेजोंका है, उनकी दुष्टता और धूर्तताके कारण हम गिरे हैं, वे हमारा धन ले गये, हम इसीसे कंगाल हो गये हैं; उनकी अनुमतिके बिना हम साँस भी तो नहीं ले सकते; ऐसी हालतमें हमारी अवनतिमें हमारा क्या दोष है?

इस आरोपमें अतिशयोक्ति होनेपर भी कुछ सचाई है। किन्तु अंग्रेज हमपर इतने हावी हो गये, इसका क्या कारण है? क्या इसमें हमारा दोष नहीं हो सकता? ईस्ट इंडिया कम्पनीके रुपयोंका लालच किसने किया? इस व्यापारी कम्पनीने अपने स्वभावानुसार व्यापार किया, क्या इसमें उसका दोष है? क्या शराब पीनेवाला शराब बेचनेवालेको दोषी कह सकता है? सूदखोरोंको मैं मूलधन-जितना ही सूद देनेको तैयार हो जाऊँ तो क्या इसके लिए सूदखोर ही दोषी कहे जा सकते हैं? मैं तो

उनकी निन्दा नहीं कर सकता। एक लेखकने कहा है कि जबतक धोखा खानेवाले हैं तबतक धोखा देनेवाले तो मिलते ही रहेंगे।

अंग्रेजोंसे द्वेष करके, उनके दोष निकालकर हम कदापि आगे नहीं बढ़ सकते। जो दोष हममें थे और जिन्हें लेकर उन्होंने हमपर अधिकार जमा लिया, हम जबतक उन दोषोंको दूर नहीं करते तबतक गुलाम ही रहेंगे।

तथापि अंग्रेजोंसे हम उनके दोषोंकी बात कहते अवश्य आये हैं और कहते रहेंगे। कांग्रेसने मुख्यतया यही कार्य किया है। दोष बतानेवाले लोग तो वृक्षके पत्तोंके समान असंख्य मिल जाते हैं। इसीसे मैं उनपर दोषारोपण करनेकी अपेक्षा अपने दोषोंकी जाँच करनेकी बातको अधिक फलदायी मानता हूँ। 'आप भला तो जग भला' यह कहावत निरर्थक नहीं है। इसमें बहुत सार है। हम निर्दोष हों तो हमें कोई गिरा नहीं सकता। वैद्यक-शास्त्रका नियम है कि यदि हमारे रक्तमें विकार न हो तो बाहरकी विषैली हवाका हमपर असर नहीं पड़ सकता; इसीसे हम देखते हैं कि महामारीके समय कुछ लोगोंको उसकी छूत लगती है और कुछ लोगोंपर उसका कोई असर नहीं होता। इसी तरह यदि हममें दूसरोंसे प्रभावित होनेका अवगुण न होता तो ईस्ट इंडिया कम्पनी कुछ नहीं कर सकती थी और आजकी परिस्थितिमें भी सर माइकेल ओ'डायर-जैसे अधिकारी अपने पदोंसे वंचित होकर रहते।

तब हममें ऐसा क्या दोष है कि जिससे हम अपंग हो गये हैं और हम अपने देशसे बहकर जानेवाले अपार धनके इस प्रवाहको रोक नहीं पाते; हमारे बच्चोंको दूध नहीं मिलता, देशके तीन करोड़ व्यक्तियोंको एक ही बार खानेको मिलता है, दिन-दहाड़े खेड़ा जिलेमें लूटपाट हो जाती है, प्लेग, हैजा आदि रोगोंको जब और देशोंसे जड़से निर्मूल किया जा चुका है, हमारे देशमें यह नहीं हो पाता? क्या कारण है कि मदान्ध सर माइकेल ओ'डायर तथा उद्धत जनरल डायर हमें खटमलकी तरह मसल सकते हैं एवं शिमलेके एक पादरी महोदय हमारे सम्बन्धमें अशोभनीय बातें लिख सकते हैं? क्या कारण है कि हमारे साथ पंजाबमें असह्य अन्याय हुआ, खिला-फतके प्रश्नपर ब्रिटेनके प्रधान मन्त्रीने अपना वचन-भंग किया और हम इन दोनों विषयोंके सम्बन्धमें निरुपाय जान पड़ते हैं।

इसका कारण हमारी स्वार्थदृष्टि, हममें देशके लिए आत्मत्याग करनेकी असम-र्थता, हमारी कायरता, हमारा दम्भ और हमारा अज्ञान है। स्वार्थ तो सबमें कम-ज्यादा होता है, लेकिन हममें वह बहुत अधिक हो गया है। परिवारकी हदतक स्वार्थ-त्यागकी मात्रा थोड़ी अधिक पाई जाती है, लेकिन राष्ट्रीय मामलोंमें वह बहुत कम मात्रामें दिखाई देती है। हमारी गलियों, हमारे शहरों तथा हमारी रेलोंकी ओर देखें। अपने घरके आँगनमें से मैं गलीमें कचरा फेंकनेमें नहीं हिचकिचाता, मेरी खिड़की-के नीचेसे जानेवाले व्यक्तियोंको असुविधा होती है अथवा नहीं उसका विचार किये बिना मैं कचरा फेंकता और थूकता हूँ। अपना घर बनवाते समय मैं अपने पड़ोसीकी सुविधाका बहुत कम ध्यान रखता हूँ। शहरके नलको खुला छोड़ देता हूँ और उससे

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ३०-५-१९२०।

पानी बहता रहता है—वह मेरा नहीं है यह सोचकर लापरवाह रहता हूँ। रेलगाड़ीमें भी यही दृश्य देखनेमें आता है। जैसे-तैसे अपने बैठनेकी जगह बनाकर यथासम्भव दूसरोंको बैठनेसे रोकता हूँ। दूसरोंको दिक्कत महसूस तो नहीं होती यह सोचे बिना बीड़ी पीना शुरू कर देता हूँ। केले तथा गन्नेके छिलके में पड़ोसीके [घरके] सामने फेंकनेमें तनिक भी नहीं हिचकिचाता। नलपर पानी भरने जाता हूँ तो दूसरोंकी परवाह नहीं करता। स्वार्थके ऐसे अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

जहाँ इतना अधिक स्वार्थमय दृष्टिकोण हो वहाँ आत्म-त्यागकी आशा कैसे की जा सकती है? [क्या] व्यापारी देशकी खातिर अपना व्यापार ईमानदारीसे चलाते हैं? लाभकी एक पाई भी छोड़ते हैं? देशके निमित्त रुईके सट्टेको बन्द करते हैं? [क्या वे अपने नगरसे] बाहर बेचनेमें दूधसे होनेवाले अधिक लाभका विचार छोड़कर देशके हितमें उसके मूल्योंको कम रखनेका प्रयत्न करते हैं? छोड़नी पड़े तो देशके लिए कितने लोग नौकरी छोड़ते हैं? देशकी खातिर भोगोंको कम करके, सादगीको अपनाकर बचतके पैसोंका देशहितमें उपयोग कौन करता है? देशके अर्थ जेल जाना पड़े तो कितने लोग जानेको तैयार हैं?

हमारी अप्रामाणिकता तो हमारी नजरके सामन ही घूम रही है। व्यापारमें ईमानदारीसे कदापि काम नहीं चल सकता, ऐसा हम मानते हैं। जिन्हें अवसर मिलता है वे घूस लेनेसे नहीं चूकते। रेलवे विभागमें तो हद दर्जेकी अप्रामाणिकता दिखाई देती है। रेलवेके सिपाहीको, टिकट बाबूको, गार्डको रिश्वत देनेपर ही काम होता है। टिकट प्राप्त करनेतक में हमें या तो बेईमानीसे काम लेना पड़ता है अथवा उसकी ओरसे आँखें तो मूंदनी ही पड़ती हैं। रेलके सभी पार्सलोंमें तो नहीं बल्कि जिन्हें सहज ही खोलकर देखा जा सकता है ऐसे पार्सलोंमें से तो अवश्य ही कुछ-न-कुछ माल गायब मिलेगा।

हममें जो अहंकार है वह भी अंग्रेजोंकी अपेक्षा कदाचित् कुछ ही कम हो। इसका अनुभव प्रतिक्षण होता रहता है। सार्वजनिक आयोजनों और सब कार्योंमें हम जैसे नहीं हैं अपनेको वैसा दिखानेका प्रयत्न करते हैं।

हमारी कायरता तो हमारा विशेष गुण है। असहकारके अन्तर्गत खून-खराबी कोई नहीं करना चाहता, फिर भी हम खून-खराबी हो न जाये इस भयसे कुछ करना ही नहीं चाहते। सरकारके शस्त्र-बलसे हम इतने भयभीत हैं कि कोई कदम उठानेकी हमारी हिम्मत ही नहीं होती। इसीसे हम जहाँ-तहाँ अत्याचारको सहन कर रहे हैं और लुटेरे हमें दिन-दहाड़े लूटकर चले जाते हैं।

अपने अहंकारके सम्बन्धमें तो मैं क्या लिखूं? प्रत्यक क्षेत्रमें अहंकार बढ़ रहा है। जहाँ निर्बलता होती है वहाँ दम्भ रहता ही है। और फिर जहाँ लोग ईमानदार बनना चाहते हैं, मगर बन नहीं पाते वहाँ तो दम्भ बढ़ता ही है, क्योंकि ईमानदार न होनेपर भी वैसा दिखानेके लालचवश हम अनीतिमें ही वृद्धि करते चलते हैं। दम्भ हमारे धर्ममें भी पूरी तरहसे प्रवेश कर चुका है; यहाँतक कि तिलक, माला आदि हमारी पवित्रताकी निशानी होनेके बदले अपवित्रताके सूचक बन गये हैं।

इस सबका मूल अज्ञान ही है। हम अपने बलके बारेमें अन्धकारमें हैं, इसीसे दूसरे दोष भी आ जाते हैं। हमें अपने भीतर निहित आत्माके सम्बन्धमें ही शंका है, उसके गुणोंके प्रति हममें श्रद्धा नहीं है। यह अज्ञान केवल अक्षरज्ञानसे ही दूर होनेवाला नहीं है, विचार-परिवर्तनसे ही वह दूर हो सकता है। अक्षरज्ञानकी उस हद-तक ही जरूरत है जिस हदतक उससे हमारी विचार-शक्तिका विकास हो तथा हमें सारासारका निर्णय करना आ जाये।

इसलिए हम जबतक स्वार्थ छोड़कर परमार्थको ग्रहण नहीं करते, आत्म-त्याग करना नहीं जानते, सत्यका ही आश्रय नहीं लेते, भय छोड़कर धैर्यको नहीं अपनाते, दम्भका त्याग नहीं करते, अज्ञानको तिलांजलि नहीं देते तबतक देशकी वास्तविक उन्नति होना सम्भव नहीं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७–६–१९२०

२४९. टिप्पणियाँ

शिक्षित अन्त्यज

पिछले अंकमें दूसरी काठियावाड़ अन्त्यज परिषद्का वृत्तान्त प्रकाशित किया गया है। उसमें बम्बईके कुछ शिक्षित अन्त्यजोंकी आलोचना की गई है। मैंने यह भी सुना है कि वे आम बातचीतमें "आपके हिन्दू धर्ममें यह है", "आपके शास्त्र ऐसा कहते हैं", "ट्रेनमें कुछ हिन्दू थे", ऐसी भाषाका प्रयोग करते हैं। वे स्वयं हिन्दू नहीं हैं, ऐसी बात अन्त्यजोंको मनमें नहीं लानी चाहिए। हिन्दू धर्मका दावा करनेवाले उन्हें दुःख देते हैं, क्या इसीलिए उनका हिन्दू धर्मको तिरस्कृत करना उचित है? एक परिवार-में रहनेवाले व्यक्तिको यदि परिवारके दूसरे लोग दुःख दें तो इससे वह परिवारको त्याग नहीं देता, बल्कि परिवारके सुधारके लिए प्रयत्न करता है, वैसा ही शिक्षित अन्त्यजोंको भी करना चाहिए। शिक्षित अन्त्यजोंसे अभिप्राय उन बन्धुओंसे है जिन्होंने बम्बईमें रहकर शिक्षा प्राप्त की है और जो अन्त्यजोंके नेता होनेका दावा करते हैं। हमारा धर्म अपने धन्धेकी निन्दा करना भी नहीं है। जिसमें अप्रामाणिकता न हो ऐसा कोई धन्धा हीन नहीं कहला सकता। अन्त्यज सामान्यतया बुनाईका काम, खेतीका काम तथा मैला साफ करते हैं। पहले दो धन्धोंसे जनताको अन्न तथा वस्त्र मिलते हैं तथा तीसरे धन्धेके द्वारा लोगोंके स्वास्थ्यकी रक्षा होती है। इन तीनों धन्धोंके बिना जनताका निर्वाह हो ही नहीं सकता। इस धन्धेको नीच अथवा हलका कहनेका कारण केवल अज्ञान है। शिक्षा प्राप्त करके अपने धन्धेका त्याग करनेकी बजाय, उस धन्धेको पवित्र बनाने-की दिशामें हमारा प्रयत्न होना चाहिए। कहनेका तात्पर्य यह है कि हम सब अपना-अपना धन्धा करते हुए नीतिमान, शिक्षित तथा स्वच्छ बनें और दिखाई दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७–६–१९२०

२५०. मुसलमानोंका आवेदनपत्र[1]

मुसलमानोंके सामने जो संघर्ष उपस्थित है उसके लिए वे धीरे-धीरे परन्तु दृढ़तापूर्वक तैयार हो रहे हैं। उन्हें ऐसी कठिन परिस्थितियोंके विरुद्ध लड़ना है जो निःसन्देह दुर्गम हैं, परन्तु पैगम्बरके सामने जैसी विपरीत परिस्थितियाँ थीं, उनके मुकाबले तो ये कुछ भी नहीं हैं। उन्होंने अपने जीवनको कितनी बार खतरेमें नहीं डाला था? परन्तु ईश्वरमें उनका विश्वास अटूट था। वे निर्भयतापूर्वक आगे बढ़े, क्योंकि वे सत्यका प्रतिनिधित्व कर रहे थे और खुदा उनकी तरफ था। पैगम्बरको ईश्वरमें जैसी अडिग निष्ठा थी, यदि उनके अनुयायियोंमें उसकी आधी भी होगी और जैसी त्याग-भावना पैगम्बरकी थी उसकी आधी भी त्याग-भावना उनमें होगी तो जो प्रतिकूल परिस्थितियाँ हैं वे अनुकूल बन जायेंगी और कुछ ही दिनोंमें वे टर्कीको बरबाद करनेवालोंके ही खिलाफ हो जायेंगी। मित्र-राष्ट्रोंकी लूट-खसोट उनको हानि पहुँचाने ही लगी है। फ्रांसको अपना काम कठिन लग रहा है।[2] ग्रीस अपने अनुचित रूपसे पाये हुए लाभको पचा नहीं पा रहा है।[3] और इंग्लैंडके लिए मेसोपोटामिया एक कठिन समस्या बन गया है।[4] ब्रिटेनने मनमानी करके जो आग भड़काई है उसमें मोसलमें[5] निकलनेवाला तेल ईंधनका काम करेगा, और इस प्रकार ब्रिटेन स्वयं अपने हाथ जला बैठेगा। समाचारपत्रोंका कहना है कि अरबके लोग अपने यहाँ हिन्दुस्तानी फौजें पसन्द नहीं करते हैं। मुझे इसमें आश्चर्य नहीं। वे उग्र स्वभाववाले और वीर पुरुष हैं; वे यह नहीं समझ पाते कि भारतीय सिपाही मेसोपोटामियामें क्यों हों। असहयोगका परिणाम जो भी निकले, मैं चाहता हूँ कि एक भी भारतीय मेसोपोटामियाके लिए अपनी सेवाएँ अर्पित न करे। चाहे वह असैनिक विभागकी सेवा हो, अथवा सैनिक। हमें स्वयं विचार करना सीखना चाहिए और किसी नौकरीमें प्रविष्ट होनेके पूर्व यह देखना चाहिए कि वैसा करके कहीं हम अन्याय करनेके साधन तो नहीं बन रहे हैं। खिलाफतके सवालके अतिरिक्त, शुद्ध न्यायकी दृष्टिसे भी मेसोपोटामियापर कब्जा रखनेका अंग्रजोंको कोई हक नहीं। किसी भी रूपमें हमारी देशभक्तिका यह अंग नहीं कि हम साम्राज्य सरकारकी एक ऐसे काममें मदद करें जिसे साफ शब्दोंमें कहें तो दिन-दहाड़े की जानेवाली डाकाजनी है। अतएव यदि हम जीविका कमानेके लिए मेसोपोटामियामें सैनिक या असैनिक नौकरी करते हैं तो हमारा कर्त्तव्य यह देखना है कि उसका स्रोत तो दूषित नहीं है। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि असहयोगका नाम लेते ही बहुतसे लोग कतराने लगते हैं। असहयोगके समान स्वच्छ, हानिरहित और

१. यह आवेदनपत्र २२ जून, १९२० को सुन्नी मुसलमानों द्वारा वाइसरायके पास भेजा गया था। मूल पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ६।

२, ३ और ४. देखिए परिशिष्ट १।

५. मेसोपोटामियाका एक प्रदेश।

फिर भी इतना प्रभावशाली उपाय दूसरा कोई नहीं है। यदि सोच-विचारकर सावधानीसे इसका प्रयोग किया जाये तो इससे किसी प्रकारके बुरे नतीजेकी सम्भावना ही नहीं है। और इसकी तीव्रता लोगोंके त्यागकी ही क्षमतापर पूर्णतः निर्भर करेगी।

मुख्य बात तो असहयोगका वातावरण तैयार करना है। प्रत्येक समझदार प्रजाजनका निस्सन्देह यह अधिकार और कर्त्तव्य है कि वह कहे कि "हम आपके अन्यायमें आपको सहयोग नहीं देनेवाले हैं।" यदि हममें लाचारी और आत्मविश्वासकी कमी न होती तो हम निस्सन्देह इस साफ उपायको ग्रहण करते और उसका अत्यन्त प्रभावशाली उपयोग करते। अन्ततः तानाशाही सरकार भी शासितोंकी इच्छाके बिना नहीं बनी रह सकती और वह इच्छा बहुधा तानाशाह जबरदस्ती हासिल करता है। जैसे ही प्रजा तानाशाही ताकतसे डरना बन्द कर देती है वैसे ही उसकी ताकत खत्म हो जाती है। परन्तु ब्रिटिश सरकार कहीं भी पूरी तरह या मुख्यरूपसे ताकतके बलपर नहीं खड़ी है। वह शासितोंकी सद्भावना पानेकी पूरी-पूरी कोशिश करती है। परन्तु शासितोंकी स्वीकृति पानेके लिए दबाव डालनेमें वह गलत उपाय अपनानेसे नहीं झिझकती। "ईमानदारी ही सबसे अच्छी नीति है" वह इस विचारसे दूर नहीं गई है। इसलिए वह अपनी इच्छामें आपकी स्वीकृति पानेके लिए आपको रिश्वतके तौरपर खिताब, तमगे व फीते देती है, नौकरी देती है; अपनी श्रेष्ठ आर्थिक स्थिति और क्षमताके चलते वह अपने कर्मचारियोंके लिए अमीर बननेके नये क्षेत्र खोलती है और अन्तमें जब ये उपाय विफल हो जाते हैं तो ताकतका सहारा लेती है। यही सर माइकेल ओ'डायरने किया और यही हरएक ब्रिटिश प्रशासक यदि जरूरी समझेगा तो जरूर करेगा। तो यदि हम लोभी न हों, यदि हम खिताबों, तमगों और अवैतनिक सम्माननीय पदोंके पीछे न दौड़ें, जिनसे देशका कुछ भी भला नहीं होता, तो आधी लड़ाई फतह हो जायेगी।

मुझे सलाह देनेवाले यह बताते नहीं थकते कि यदि टर्की-शान्ति शर्तोंमें परिवर्तन[1] भी किया गया तो ऐसा असहयोगके कारण नहीं होगा। मैं उनसे यह कहना चाहता हूँ कि असहयोगका उद्देश्य शर्तोंको बदलवानेका ही नहीं है, उससे कहीं अधिक ऊँचा है। यदि मैं ब्रिटेनको शर्तोंमें परिवर्तन करनेके लिए बाध्य नहीं कर सकता तो कमसे-कम मुझे एक ऐसी सरकारको मदद देना जरूर बन्द कर देना चाहिए जो अपहरणमें साझेदार बनती है। मुझे इंग्लैंड सरकारमें इतना विश्वास है कि मैं जानता हूँ कि उस समय इंग्लैंड अपने मौजूदा निन्दित मन्त्रियोंको निकाल देगा और उनकी जगह दूसरे मन्त्री नियुक्त करेगा जो जाग्रत-प्रबुद्ध भारतकी सलाहसे वर्तमान संधिकी शर्तोंको खत्म कर देंगे, और ऐसी शर्तोंका मसौदा तैयार करेंगे जो ब्रिटेन और टर्की, दोनोंके लिए सम्मानजनक होगा और भारतको भी स्वीकार्य होगा।

परन्तु मैं अपने आलोचकोंको कहते सुनता हूँ: "भारतके पास उद्देश्य-बल नहीं है और इतने महान् लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए त्यागकी क्षमता नहीं है।" वे कुछ अंशोंमें सही हैं। भारतमें अभी ये गुण नहीं हैं; परन्तु हममें वे गुण नहीं हैं तो क्या

१. २७ जून, १९२० को टर्कीने सन्धिके अपने प्रस्ताव सामने रखे थे।

हम उन्हें अपनेमें पैदा नहीं करेंगे और राष्ट्रमें उन्हें नहीं फैलायेंगे? क्या ऐसा प्रयत्न करना मुनासिब नहीं? इतने बड़े उद्देश्यको पूरा करनेके लिए कोई भी त्याग क्या बहुत बड़ा है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०–६–१९२०

२५१. वक्तव्य : अखबारोंको नई कौंसिलोंपर

यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि [सुधार कानूनके अन्तर्गत गठित] नई कौंसिलोंके[1] बहिष्कारके प्रश्नपर मैं लाला लाजपतरायसे पूरी तरह सहमत हूँ। मेरे लिए तो उनका सुझाव असहयोग आन्दोलनके ही एक कदम-जैसा है, और चूँकि मैं पंजाबके प्रश्नके सम्बन्धमें भी उतनी ही उत्कटताके साथ विचार करता हूँ जितना कि खिलाफतके सवालपर; इसलिए लाला लाजपतरायके सुझावका मैं और भी स्वागत करता हूँ। मैं देखता हूँ कि ऐसा सुझाव एकसे अधिक क्षेत्रोंमें दिया गया है कि चुनावकी प्रक्रिया पूरी हो जानेके बाद सुधारोंके विरुद्ध असहयोग शुरू किया जाना चाहिए। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि स्पष्ट ही इन कौंसिलोंकी कार्यवाहियोंमें हिस्सा लेनेका हमारा इरादा ही नहीं है। तो फिर चुनावके ढकोसलेमें और खर्चमें पड़ना भूल है। इसके अलावा लोगोंके बीच शिक्षा सम्बन्धी बहुत-सा काम करना है। यदि मेरा वश चलता तो देशके प्रबुद्ध लोगोंको अपनी शक्ति चुनावोंके चक्करमें नष्ट न करने देता। यदि हम चुनाव लड़ें और बादमें इस्तीफा दें तो जनता असहयोगकी खूबी नहीं समझ पायेगी। परन्तु यदि मतदाताओंसे यह कहा जाये कि वे किसीको भी वोट न दें और यदि कोई उनका वोट माँगने आये तो उससे सब मतदाता एक स्वरसे यही कहें कि जबतक पंजाबका सवाल और खिलाफतका सवाल सन्तोषजनक ढंगसे हल नहीं हो जाता[2] तबतक यदि आप चुनाव लड़ते हैं तो आप हमारे प्रतिनिधि नहीं माने जायेंगे। मतदाताओंको यही अच्छी शिक्षा होगी। मैं आशा करता हूँ कि लाला लाजपतराय नई कौंसिलोंके बहिष्कारकी बात कहकर ही अपना काम समाप्त हुआ समझना नहीं चाहते।[3] यदि हम अपनेको एक स्वाभिमानी राष्ट्र कहलवाना चाहते हैं तो आवश्यकतानुसार असहयोगकी चारों मंजिलोंसे गुजरे बिना हमारा काम नहीं चलेगा, यह बात

१. १९१९ के सुधार कानूनके अन्तर्गत अक्तूबर १९२० तक इन नई कौंसिलोंके लिए उम्मीदवारोंके नाम घोषित होनेको थे। लाला लाजपतरायने अपने उर्दू समाचारपत्र **वंदेमातरम्**में घोषणा की थी कि वे चुनावमें खड़े नहीं होंगे।

२. जब नवम्बर १९२० में चुनाव हुए तो ६३७ में से ६ मामलोंमें उम्मीदवारके अभावमें चुनाव असम्भव रहा।

३. लाला लाजपतराय पहले गांधीजीके असहयोग कार्यक्रमसे सहमत नहीं थे; परन्तु दिसम्बर १९२० में, नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनमें उन्होंने अन्य बहुतसे लोगोंकी तरह गांधीजीका ही रास्ता अपना लिया।

स्पष्ट है। खिलाफतकी शर्तों और पंजाबके मामले दोनों ही से जाहिर होता है कि साम्राज्यकी कौंसिलोंमें भारतीय मत नगण्य माना जाता है। यह एक अपमानजनक स्थिति है। यदि हम चुपचाप अपमान सह लें तो सुधारोंका कुछ नहीं कर सकते। इसलिए मेरी नम्र रायमें वास्तविक प्रगतिके लिए पहली शर्त है अपने रास्तेकी इन दो कठिनाइयोंको दूर करना। और जबतक इस कामका कोई दूसरा रास्ता नहीं ढूँढ़ा जाता तबतक असहयोग ही को इसके लिए आगे आना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ३०–६–१९२०

२५२. भाषण : सत्याग्रह आश्रम, अहमदाबादमें

[जुलाई १९२० के पूर्व][1]

हम यहाँ एक नया ही प्रयोग करना चाहते हैं। यह प्रयोग ऐसा है कि मैं बीचमें न होऊँ, तो राष्ट्रीय शालाके शिक्षकोंकी अपने-आप यह प्रयोग करनेकी हिम्मत न हो।

हम यहाँ लड़के-लड़कियोंकी शिक्षा साथ-साथ चलाना चाहते हैं। एक बार मुझसे शिक्षकोंने पूछा कि "अब शालामें लड़कियोंकी संख्या बढ़ चली है और इसमें बड़ी लड़कियाँ भी हैं। तो क्या थोड़े दिनों बाद लड़कियोंका वर्ग अलग खोला जाये?" मैंने उस समय तो तुरन्त इनकार कर दिया और कह दिया कि लड़कियोंका वर्ग अलग करनेकी कोई जरूरत नहीं। किन्तु बादमें मुझे तुरन्त इसकी गम्भीरता समझमें आ गई और इस बातका खयाल हो आया कि इसमें कितनी जोखिम भरी है। मुझे ऐसा लगा कि इस बारेमें मैं तुम सब लड़कों, स्त्रियों और आश्रममें रहनेवाले अन्य लोगोंको कुछ नियम बता दूँ तो ठीक हो। मैं यहाँ जो-कुछ कहूँ, उस सबको कानून ही मत मान लेना। मैं सिर्फ अपने विचार बताऊँगा। शिक्षक लोग बादमें चर्चा करके इसमें फेरबदल कर सकते हैं।

लड़के और लड़कियाँ एक वर्गमें बैठें, परन्तु वहाँ उन्हें उचित मर्यादामें बैठना चाहिए। लड़के एक तरफ और लड़कियाँ दूसरी तरफ बैठ जायें। बड़े लड़के और बड़ी लड़कियाँ घुल-मिलकर न बैठें, क्योंकि इसमें स्पर्शदोष होनेकी सम्भावना होती है। अभी इनमें से कुछ लड़कियाँ बड़ी हो रही हैं और कुछ थोड़े समयमें हो जायेंगी। इस तरह लड़कियाँ बड़ी होती जा रही हैं और लड़के तो हमारे यहाँ बड़े हैं ही। इनका एक-दूसरेके साथ स्पर्शदोष नहीं होना चाहिए। स्पर्शदोष होनेसे ब्रह्मचर्यको नुकसान पहुँचता है। वर्गसे बाहर निकलनेके बाद लड़के आपसमें मिलें-जुलें, एक-दूसरेके साथ बातें करें, एक-दूसरेके साथ हँसी-मजाक करें, खेलें-कूदें; और लड़कियाँ भी आपस-

१. विद्यार्थियोंके समक्ष दिया गया यह भाषण आश्रमसे निकलनेवाली हस्तलिखित पत्रिका **मधपुडो**के जुलाई १९२० के अंकमें दिया गया था।

म वैसा ही वरताव करें। किन्तु लड़के और लड़कियाँ एक-दूसरेके साथ इस तरहका व्यवहार नहीं कर सकते। वे एक-दूसरेके साथ वातें नहीं कर सकते, हँसी-मजाक नहीं कर सकते और एक-दूसरेके साथ खानगी पत्रव्यवहार तो हरगिज नहीं कर सकते। वच्चोंके लिए कोई वात खानगी होनी ही नहीं चाहिए। जो आदमी अच्छी तरह सत्यका पालन करता है, उसके पास खानगी रखनेके लिए क्या होगा? वड़ोंमें भी ऐसा किसी तरहका पत्रव्यवहार होना एक तरहकी कमजोरी ही मानी जायेगी। तुम्हें अपने वड़ोंकी इस कमजोरीकी नकल नहीं करनी चाहिए, वल्कि वड़ोंके कहे अनुसार तुम्हें अपनी कमजोरी दूर कर लेनी चाहिए। आम तौरपर माता-पिता अपनी कमजोरी अपने वच्चोंको नहीं वताते और ऐसे मामलोंमें तो एक शब्द भी नहीं कहते। किन्तु यह उनकी गहरी भूल है। ऐसा करके वे अपने वच्चोंको विनाशके गहरे गड्ढेमें ढकेलते हैं। यदि सव माता-पिता यह खयाल रखें कि हमारी की हुई भूलको हमारे वच्चे न दोहरायें, तो इससे वच्चोंको जितना लाभ होगा उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मैं कहता हूँ कि किसीको कोई वात गुप्त नहीं रखनी चाहिए; इसका यह मतलव नहीं कि तुम्हें दूसरोंकी खानगी वातें भी जाननेका प्रयत्न करना चाहिए। यह तुम्हारा काम नहीं। यदि हम वड़े कहीं वैठे वातें कर रहे हों और तुमसे वहाँसे चले जानेको कहें तो तुम्हें चले ही जाना चाहिए। हमारी वातें जानकर तुम हमारी कमजोरी नहीं मिटा सकते। किन्तु तुम्हारा तो कोई भी पत्र या वात ऐसी न होनी चाहिए जिसे तुम वड़ोंके सामने वेधड़क होकर न रख सको। सवसे अच्छा तो यह है कि लड़के और लड़कियोंके वीच, वर्गमें या वर्गसे वाहर, किसी भी जगह वड़ोंकी गैर-हाजिरीमें वातचीत हो ही नहीं। लड़कोंके निजी कमरेमें जैसे कोई दूसरा लड़का जाकर वैठता है, पढ़ता है, चर्चा करता है वातें करता है, वैसे लड़की जाकर वातचीत, चर्चा या पढ़ाई नहीं कर सकती। वड़ोंकी मौजूदगीमें — जैसे प्रार्थनामें — लड़कियाँ लड़कोंको पानी पिलायें, उनसे वातें करें तो इसमें किसी भी तरहकी रुकावट नहीं हो सकती। वहाँ तो लड़कियोंका सवको पानी पिलाना फर्ज है। किन्तु वहाँ भी मर्यादा जरूर रखनी चाहिए। वहाँ यह सावधानी रखनी चाहिए कि स्पर्शदोष न होने पाये। वड़े लड़कोंके साथ वड़ी लड़कियोंके स्पर्शसे विषय-वासना जाग्रत हो उठनेकी वड़ी संभावना रहती है। इसलिए यह सावधानी रखनेकी वड़ी जरूरत है कि इस तरहका स्पर्शदोष कभी न होने पाये।

हमें यदि देशसेवा करनी ही है, तो मैं दिन-दिन यह अनुभव करता जा रहा हूँ कि वीर्यकी रक्षा वहुत जरूरी है। तुम्हारे इन सत्त्वहीन शरीरोंसे मैं क्या काम ले सकता हूँ? किसीके शरीरपर मांस तो मानो है ही नहीं। वीर्यकी रक्षा न करनेके कारण ही तुम्हारे शरीर इतने निर्वल हैं। तुम सव अपने वीर्यकी रक्षा करके अपना शरीर वनाओ। जवतक शरीर कमजोर है, तवतक ज्ञान ग्रहण नहीं किया जा सकता, तव फिर उसका उपयोग तो हो ही क्या सकता है? क्रोधी आदमी ज्ञान प्राप्त कर सकता है, झूठा आदमी भी कर सकता है; किन्तु जो ब्रह्मचर्य नहीं पालता, वह कभी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। हम पुराणोंसे जान सकते हैं कि वड़े-वड़े राक्षस जो

बादमें तो कामके पुतले ही बन गये थे, उन्हें भी ज्ञान-प्राप्तिके लिए ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी जरूरत पड़ी थी। ज्ञान प्राप्त करनेके लिए शरीर बढ़िया होना चाहिए, इसमें सिद्ध करने जैसी कोई बात ही नहीं है। इसलिए तुम्हारे शरीर तो मैं राक्षसों-जैसे ही बनाना चाहता हूँ। तुम्हारे शरीर सुधारनेका सबल प्रयत्न करते हुए भी मैं उन्हें शौकत अली-जैसे नहीं देख सकूँगा, क्योंकि इसमें हमारे बाप-दादोंका दोष है। परन्तु अब भी वीर्यकी रक्षा की जाये तो भारतमें फिर एक बार हनुमान पैदा हो सकते हैं। जिसका शरीर लकड़ी जैसा है, वह भला क्षमाका गुण क्या धारण कर सकता है? ऐसा आदमी तो डरके मारे दब जायेगा। मुझे अभी शौकत अली तमाचा मारें तो मैं उन्हें क्या माफी दूं? और यदि मैं कुछ न करूँ तो मैं दब गया माना जाऊँगा। मैं माफी तो रसिकको[1] दे सकता हूँ। इसलिए मैं तुमसे कहूँगा कि यदि तुम्हें क्षमावान और सत्यवादी वीर बनना हो, तो तुम्हें वीर्यकी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए। मैं जो अभी इक्यावन बरसका बूढ़ा होनेपर भी इतना जोर दिखा रहा हूँ, इसका कारण सिर्फ वीर्य रक्षा ही है। यदि मैं पहलेसे ही वीर्यकी रक्षा कर सका होता तो मेरी कल्पनामें भी नहीं आ सकता कि आज मैं कहाँ उड़ता होता। मैं यहाँ बैठे हुए सब माता-पिता और अभिभावकोंसे कहता हूँ कि आप अपने लड़के-लड़कियोंको वीर्यकी रक्षा करनेकी पूरी सुविधा दें। उनसे न रहा जाये और वे आपसे आकर कहें कि अब हमसे नहीं रहा जाता, आप हमारी शादी कर दीजिये, तभी आप उनकी शादी करें। यह बात नहीं है कि मनुष्य प्राचीन समयमें ही ब्रह्मचारी रह सकते थे। लॉर्ड किचनर ब्रह्मचारी था — अविवाहित था। मैं यह नहीं मानता कि वह और कहीं अपनी विषय-वासना तृप्त कर आता होगा। उसने ऐसा निश्चय कर लिया था कि फौजमें सब ब्रह्मचारी और अविवाहित लोग ही आयें — यानी गठे हुए शरीरके आदमी आयें; अविवाहित किन्तु व्यभिचारी नहीं। इसलिए मैं आप सब बड़ोंसे प्रार्थना करता हूँ कि इस डरके मारे कि बादमें जोड़ी नहीं मिलेगी, आप अपने लड़के-लड़कियोंकी शादी जल्दी न कर देना। वे स्वयं आपसे कहने आयें तबतक राह देखना। मुझे भरोसा है कि उस समय ईश्वर होगा और वह वरको योग्य कन्यासे और कन्याको योग्य वरसे मिला देगा।

लड़के-लड़कियोंसे एक बात और कह देना चाहता हूँ। और वह यह कि जिन लड़के-लड़कियोंका एक ही गुरु है, जिन्होंने एक ही गुरुके पास विद्याभ्यास किया है, वे भाई-बहन हैं। उन दोनोंको भाई-बहन होकर ही रहना चाहिए। इन दोनोंके बीच भाई-बहनके सिवा और किसी भी तरहका सम्बन्ध नहीं हो सकता। इस शाला और आश्रममें रहनेवाले तुम सब भाई-बहन हो। जिस दिन यह सम्बन्ध या नाता टूट जायेगा, उस दिन मुझे यह आश्रम या शाला समेट लेनेमें एक क्षणकी भी देर नहीं लगेगी, उस समय मैं लोक-लाजकी भी परवाह नहीं करूँगा। तुम मुझे विश्वास दिला दोगे कि तुम लोगोंमें भाई-बहनका नाता बना रहेगा, तो ही मैं यह प्रयोग निडर होकर चलाऊँगा; और तभी मैं दूसरी लड़कियोंको यहाँ लाऊँगा। अभी एक सज्जन यहाँ आना चाहते ह। उनकी एक बारह सालकी लड़की है। इतनी बड़ी लड़की तो

१. हरिलाल गांधीका पुत्र, गांधीजीका पौत्र।

हममें काफी उम्रकी मानी जाती है और उसका व्याह कर दिया जाता है। इसलिए यदि तुम मुझे निर्भय वना दो तभी मैं इन सज्जनको निर्भय कर सकता हूँ और कह सकता हूँ कि यहाँ आपकी लड़कीके शीलकी रक्षा होगी और आप उसे जैसी शिक्षा देना चाहेंगे वैसी दे सकेंगे। यह प्रयोग ऐसा है कि मैंने जो नियम वताये हैं वे अक्षरशः पाले जायें, तभी लड़कियोंके माता-पिता या अभिभावक निश्चिन्त रह सकते हैं और आश्रममें रहनेवाले वड़े आदमी और शिक्षक निडर होकर यह प्रयोग कर सकते हैं। ये लोग शंकित होकर लड़कियोंके पीछे-पीछे फिरते रहें तो यह दोनोंके लिए बुरा होगा।

जिसे ऐसा लगता हो कि अव मुझसे नहीं रहा जाता, मेरी विषय-वासना इतनी ज्यादा भड़क उठी है कि मैं उसे कावूमें नहीं रख सकता, उसे तुरन्त यहाँसे चले जाना चाहिए; परन्तु आश्रमको कलंक नहीं लगाना चाहिए और ऐसे पवित्र प्रयोगको खतम नहीं करना चाहिए। 'वाइविल' में तो यहाँतक कहा है कि 'तुम्हारी आँख वशमें न रहे, तो तुम उसमें सुई घुसेड़ देना।' मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरी ऐसी नौवत आयेगी। किन्तु मेरी ऐसी हालत हो जाये तो मैं हूँ और यह सावरमती है।

किसीकी विषय-वासना जाग गई हो या न जागी हो, सवको जो-कुछ मैंने कहा उसका अच्छी तरह मनन करके पालन करना चाहिए। ईश्वरने जो भेद कर दिया है, उसे हम मिटा नहीं सकते। इस भेदको कायम रखनेसे ही जिनकी विषय-वासना जाग्रत हो गई हो उनकी — और जिनकी न हुई हो उनकी तो और भी आसानीसे — विषय-भोगकी इच्छा कावूमें रह सकती है। मैंने कई वार कहा है, फिर भी एक वार उसे यहाँ दोहरा देता हूँ कि मुझे ब्रह्मचर्य पालनेमें वड़ा परिश्रम करना पड़ा है। इतना परिश्रम करके ब्रह्मचर्य पालनेवाला दूसरा कोई आदमी मेरे देखनेमें अभीतक नहीं आया। जिसने एक वार भी विषय-भोग कर लिया है, उसके लिए वीर्यकी रक्षा करना वहुत ही कठिन हो जाता है। इसलिए तुम शुरूसे ही विषय-भोगमें न पड़ना। जिन्हें ऐसा लगता हो कि हमारी इन्द्रियाँ जाग गई हैं उन्हें वहीं उनको दवा देना चाहिए। और जिनकी नहीं जागी हों उन्हें इसके लिए कोई खास परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। उन्हें सचेत रहना चाहिए कि इन्द्रियाँ जागने न पायें। जो वीर्यकी रक्षा करेंगे, वे ही देशसेवक वन सकेंगे; और लड़कियाँ भी उत्तमसे-उत्तम गृहिणी तो ब्रह्मचर्यका पालन करके ही वन सकेंगी। जो एक पतिकी ही नहीं वल्कि सारे देशकी, गरीव और दुःखी लोगोंकी सेवा करती है, उसे कौन अच्छीसे-अच्छी गृहिणी नहीं कहेगा?

दूसरी वात यह भी तुमसे कह देना चाहता हूँ कि सादी पोशाक ब्रह्मचर्यके पालनमें मददगार होती है। किन्तु यह मदद वहुत थोड़ी होती है। खादीके कपड़े पहनकर भी कोई आदमी खूव पाप करनेवाला हो सकता है, और यह भी हो सकता है कि खूव तड़क-भड़ककी पोशाक पहननेवाला मनुष्य शुद्धसे-शुद्ध ब्रह्मचारी हो। मैं ऐसे आदमीकी पूजा करूँगा, किन्तु खादीके कपड़े पहनकर कोई आदमी पाप करता हो और मेरे पास आये तो मैं उसे फटकार कर निकाल दूँगा। परन्तु हम भड़कीली पोशाक

पहनकर सुन्दर दीखनेका प्रयत्न हरगिज नहीं कर सकते। ब्रह्मचारीको यदि अपना बाहरी स्वरूप दिखाना है, तो सिवा ईश्वरके और किसीको नहीं दिखाना है। और ईश्वर हमें नंगी हालतमें भी देखता है। तो फिर अच्छे कपड़े पहनकर हमें सुन्दर दीखनेका क्यों प्रयत्न करना चाहिए? असली रूप तो अपने गुणोंसे ही झलकता है। गुणवान होकर अपनी छाप डालनी चाहिए, रूपवान होकर नहीं। कपड़े सिर्फ शरीरको ढकनेके लिए ही पहने जाने चाहिए; और मोटी खादीसे शरीर उत्तमसे-उत्तम ढंगसे ढक सकता है। बड़े यदि खुद खादीके कपड़े न पहन सकते हों, तो भी उन्हें बच्चोंको तो खादी ही पहननेकी आदत डलवानी चाहिए। जो माँ यह मानकर खुश होती है कि बच्चोंको अच्छेसे-अच्छे कपड़े पहनानेसे वे सुन्दर दीखते हैं, वह माँ मूर्ख है। अच्छे कपड़ेसे इतना ज्यादा रूप क्या निखरता है? और निखरता भी हो तो उससे फायदा क्या? मेरी लड़कीका रूप देखकर ही कोई उससे शादी करने आये तो मैं उसे धिक्कार-कर निकाल दूँगा। जो मेरी लड़कीके गुण देखकर शादी करने आयेगा, उसीसे मैं उसकी शादी करूँगा। यदि सुन्दर दिखाई देना है तो तुम्हें भड़कीले कपड़े नहीं पहनने चाहिए, बल्कि अपने गुणोंको बढ़ाना चाहिए। यदि तुम सद्गुणी बनोगे तो जरूर सुन्दर दिखोगे और जहाँ जाओगे वहीं तुम्हारा मान होगा।

अब मुझे नहीं लगता कि मेरे कहने लायक कोई बात रह गई है। मुझे जो-कुछ तुमसे कहना था वह मैंने कह दिया। जो कहा है वह अमूल्य है। मैंने तुमसे जो-कुछ कहा है वह तुम न समझे हो तो बड़ोंसे या शिक्षकोंसे समझ लेना; क्योंकि मैंने जो-कुछ कहा है, छोटे बच्चोंको भी अच्छी तरह समझकर उसे ध्यानमें रखना है। तुम सब उसपर खूब विचार करो, विचार करके जितना हो सके उसपर अमल करो और मुझे ऐसी सुविधा दो कि मैं निर्भय होकर लड़के-लड़कियोंको साथ-साथ पढ़ानेका प्रयोग सफल बना सकूँ।

[गुजरातीसे]

साबरमती, शरद् अंक १९२२: (एस० एन० ७१९५) से।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

टर्की-संधिकी शर्तें[1]

१. टर्कीकी सरहदें जैसी पहलेसे निश्चित हैं वैसी ही रहेंगी और जहाँ जरूरत होगी वहाँ एक सीमा आयोग नियुक्त करके, पुनर्विचार किया जायेगा। इस हदबन्दीके अनुसार थ्रेसका कुस्तुन्तुनियावाला भाग तथा एशिया माइनरके तुर्क प्रधान भाग टर्कीमें शामिल होंगे।

२. कुस्तुन्तुनियामें टर्की सरकारके अधिकारों और स्वत्वोंपर असर नहीं पड़ेगा, परन्तु यदि टर्की सन्धिका पालन ईमानदारीसे न करे तो उस दशामें इस व्यवस्थामें परिवर्तनका अधिकार सुरक्षित होगा।

३. मेडीटरेनियनमें डार्डानेल्सके मुहाने तथा काले समुद्रमें बॉस्फोरसके मुहानेके बीचके जलपर एक जलडमरुमध्य सम्बन्धी आयोगका अधिकार होगा और इनमें से प्रत्येक मुहानेके तीन मीलके दायरेमें जलपर तथा, जितनी दूरतक जरूरी हो, तटपर भी आयोगका अधिकार होगा। आयोगका कर्त्तव्य होगा कि वह युद्ध और शान्तिके समय नौ-परिवहनकी स्वतन्त्रताको सुरक्षित रखे।

४. कुर्दिस्तानके लिए एक स्थानीय स्वशासनकी योजना बनाई जायेगी जिसमें असीरियों-कैल्डियनों तथा अन्य अल्पसंख्यकोंके संरक्षणकी व्यवस्था होगी। बादमें राष्ट्र-संघ तय करेगा कि कुर्दिस्तानको टर्कीसे अलग कर दिया जाये या नहीं। यदि यह प्रमाणित हो गया कि अधिकांश कुर्दी लोग अलग होना चाहते हैं तो वैसा होगा।

५. स्मर्नाके कुछ भागोंकी एक अलग इकाई बनाई गई है जिसपर ग्रीसका प्रशासन होगा, टर्कीका प्रभुत्व तबतक जारी रहेगा जबतक कि स्मर्नाका स्वायत्त राज्य स्वयं अपना भाग्य निर्णय नहीं कर लेता।

६. कुस्तुन्तुनिया क्षेत्रको छोड़कर पूर्वी थ्रेस ग्रीसमें मिलाया जाता है और आड्रियानोपल नगरके लिए स्थानीय स्वशासनकी व्यवस्था की जा रही है।

७. टर्कीके आर्मीनियाई जिलोंके कुछ हिस्से मौजूदा आर्मीनिया गणतन्त्रमें जोड़ दिये गये हैं और कुछ जिलोंमें टर्की तथा आर्मीनियाके बीचकी सीमाका पंच फैसला संयुक्त राज्यके राष्ट्रपतिको सौंपा जा रहा है। इस सम्बन्धमें और आर्मीनियाके समुद्र प्रवेशकी किसी भी शर्तपर उनका निर्णय अन्तिम होगा।

८. सीरिया, मेसोपोटामिया और फिलस्तीनको अस्थायी तौरपर स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया है किन्तु जबतक वे अकेले खड़े होने योग्य नहीं हो जाते तबतक

१. ये शर्तें मित्र-राष्ट्रोंने टर्कीको भेजी थीं और भारतमें १४ मई, १९२० के असाधारण गज़टमें प्रकाशित की गई थीं।

एक संरक्षक शक्तिकी प्रशासनिक सलाह और मददके अधीन रहें। सीरियाका शासनाधिकार फ्रांसको और मेसोपोटामिया तथा फिलस्तीनका शासनाधिकार ब्रिटेनको सौंपा गया है। फिलस्तीनके शासनाधिकारमें ८ नवम्बर, १९१८ की घोषणाको कार्यान्वित करनेका उपबन्ध भी शामिल होगा। यह घोषणा यहूदी लोगोंके लिए एक राष्ट्रीय आगारकी स्थापनाके सम्बन्धमें है।

९. हेजाजको स्वतन्त्र और स्वाधीन राज्य माना गया है। हेजाजके बादशाह आश्वासन देते हैं कि हर देशके मुसलमान तीर्थयात्री मक्का और मदीनातक स्वतन्त्रतापूर्वक आसानीसे पहुँच सकेंगे।

१०. टर्की मिस्र, सूडान और साइप्रसके अपने सभी अधिकार और दावे छोड़ता है।

११. टर्की मोरक्को और ट्युनिसपर फ्रांसका संरक्षण स्वीकार करता है।

१२. टर्की एजियन समुद्रके कुछ द्वीपोंपर से अपना दावा छोड़ता है।

१३. टर्कीके मातहत जो स्थल, जल और वायुसेना होगी, उसमें निम्नलिखित शामिल होंगे: (१) कुस्तुन्तुनियामें सुलतानके अंग-रक्षक; (२) अन्तर्राष्ट्रीय अनुशासन और सुरक्षाको बनाये रखनेके लिए तथा अल्पसंख्यकोंके संरक्षणके लिए सशस्त्र पुलिसकी एक टुकड़ी; (३) सशस्त्र पुलिसको कुमुक पहुँचाने और अन्तमें सीमाओंके नियन्त्रणके लिए दूसरे दस्तेके विशेष अंश। अंग-रक्षकोंकी संख्या ७०० तक और विशेष अंशों सहित सशस्त्र पुलिसकी संख्या ५०,००० तक सीमित होगी। टर्कीके बन्दरगाहोंमें रोके गये सभी युद्धके जहाजोंका आत्मसमर्पण अन्तिम रूपसे घोषित कर दिया जायेगा। टर्की युद्ध पोतमें ६ तारपीडो नावें और सात छोटे जहाज रहेंगे।

किसी प्रकार भी स्थल, जल, वायुसेना या नियन्त्रित गतिवाला विभाग नहीं रखा जायेगा।

१४. टर्कीकी अर्थ-व्यवस्थापर तबतक नियन्त्रण रखा जायेगा जबतक कि यह भरोसा न हो जाये कि वह अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वको निभा सकेगा।

१५. नौ-परिवहन और परिवहनकी स्वतन्त्रता बनी रहेगी।

निम्नलिखित बन्दरगाह अन्तर्राष्ट्रीय घोषित किये गये हैं और प्रत्येकमें मुक्त [वाणिज्य] क्षेत्रोंकी व्यवस्था रहेगी: अलैक्जेंड्रा, बसरा, कुस्तुन्तुनिया, देदेगाह, हईफ, हेलावपाशा, स्मरना, और ट्रैबजॉन्ड।

१६. उपर्युक्तके अलावा और भी अनेक व्यवस्थाएँ हैं जो (क) राष्ट्रसंघ, (ख) अल्पसंख्यकोंके संरक्षण, (ग) छोड़े गये सम्पत्यधिकारकी पुनःस्थापना, (घ) युद्ध-बन्दियों, (ङ) मित्र-राष्ट्रोंके सिपाहियोंकी कब्रों, (च) युद्ध अपराधियोंको दण्ड, (छ) आर्थिक प्रश्न तथा रियायतों, (ज) श्रमसम्बन्धी करारों और (झ) पुरातत्वके सम्बन्धमें हैं। परन्तु इस विवरणमें उन्हें विस्तारसे देना आवश्यक नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

ऑल अबाउट द खिलाफत

परिशिष्ट २

भारतके मुसलमानोंको वाइसरायका सन्देश[1]

टर्कीके साथ शान्ति-सन्धिके सम्बन्धमें किये गये मित्र-राष्ट्रोंकी सर्वोच्च परिषद्के फैसले संसारको विदित करा दिये गये हैं। सभी देशोंके मुसलमानोंके आवेदनोंपर अत्यन्त गम्भीरता और सावधानीके साथ सोच-विचार करनेके बाद वे फैसले किये गये हैं और मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि सर्वोच्च परिषद्ने अपने इस मौजूदा फैसलेपर पहुँचनेसे पहले उन आवेदनोंपर भी विचार किया है जो सम्राट्की भारतीय मुसलमान प्रजाकी ओरसे आये थे। मेरी सरकार सन्धि-शर्तोंके साथ-साथ एक वक्तव्य भी जारी कर रही है जो प्रमुख फैसलों और उनके कारणोंपर प्रकाश डालता है। ये फैसले उन ऊँचे सिद्धान्तोंके अनुरूप हैं जो हालके युद्धमें ब्रिटेन और उसके मित्रोंके विरुद्ध लड़नेवाले अन्य सभी राष्ट्रोंके साथ हुई शान्ति-संधिमें प्रयुक्त हुए हैं। तथापि मुझे डर है कि उसमें ऐसी शर्तें भी हैं जो सभी मुसलमानोंको कष्टप्रद होंगी। दीर्घकालीन विलम्बके कारण आप एक वर्षसे भी अधिक समयतक चिन्ताग्रस्त रहे हैं। यद्यपि यह विलम्ब अपरिहार्य था फिर भी आपके लिए मुझे खेद हुआ है और अब इस संकट-कालमें मैं आपको एक सहानुभूति और प्रोत्साहनका सन्देश भेजना चाहता हूँ, जो मुझे विश्वास है कि आपको साहस प्रदान करेगा। साम्राज्यकी जरूरतके समय आपकी ओरसे अपने सम्राट् व देशकी पुकारपर बहुत अच्छी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई और वैसा करके आपने न्याय और मानवताके उन आदर्शोंकी विजयमें जिसके लिए मित्रराष्ट्रोंने युद्ध किया, बहुत योगदान दिया। साम्राज्य, जिसके आप एक अंग हैं, अब इन आदर्शों-पर दृढ़तासे स्थापित हो गया है, और भारतके उन मुसलमानोंके लिए जिन्होंने सदैव ही ब्रिटिश राज्यके अन्तर्गत पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रताका सुख पाया है, राजनैतिक प्रगति और लौकिक उन्नतिका उज्ज्वल भविष्य दिखाई दे रहा है। हालके विनाशकारी युद्धसे पूर्व ग्रेट ब्रिटेनके टर्कीसे हमेशा अच्छे मैत्री सम्बन्ध रहे और मुझे विश्वास है कि इस नई संधिके हो जानेपर वह मैत्री पुनः शीघ्र पनपेगी और टर्की पुनरुज्जीवित होकर आशा और शक्तिसे सम्पन्न होगा और भूतकालके समान ही भविष्यमें भी इस्लाम धर्मके स्तम्भके रूपमें स्थिर रहेगा। मैं समझता हूँ कि यह विचार आपको त्याग, साहस और धैर्यके साथ सन्धिकी शर्तें स्वीकार करने और सम्राट्के प्रति अपनी निष्ठा उज्ज्वल और निष्कलंक बनाये रखनेकी शक्ति देगा, जैसी कि वह कई पीढ़ियोंसे चली आ रही है।

भगवान् सम्राट्की रक्षा करे।

(हस्ताक्षर) चेम्सफोर्ड

[अंग्रेजीसे]

ऑल अबाउट द खिलाफत

१. यह भारतके १४ मई, १९२० के असाधारण **गज़ट**में प्रकाशित किया गया था।

परिशिष्ट ३

खिलाफत समितिकी बैठकमें पारित प्रस्ताव

इलाहाबाद
३ जून, १९२०

प्रस्ताव १

यह बैठक केन्द्रीय खिलाफत समिति द्वारा पूर्व स्वीकृत चार अवस्थाओंके अनुरूप असहयोग आन्दोलनपर पुनः विश्वास व्यक्त करती है और आन्दोलनको अविलम्ब कार्य-रूप देनेके लिए एक उप-समिति नियुक्त करती है जिसमें निम्नलिखित सज्जन होंगे :

महात्मा गांधी, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, मौलवी मुहम्मद अली, श्री अहमद, हाजी सिद्दीक खत्री, मौलाना शौकत अली, डा० किचलू और मौलाना हसरत मोहानी। समितिको अपनी संख्यामें वृद्धि करनेका अधिकार होगा :

प्रस्ताव २

यह बैठक निश्चय करती है कि स्वदेशी आन्दोलन पूरी ईमानदारीसे प्रारम्भ करना चाहिए और आन्दोलनको चलानेकी एक योजना बनानेके लिए निम्नलिखित सज्जनोंकी एक उप-समिति नियुक्त होनी चाहिए : श्री छोटानी, महात्मा गांधी, मौलाना हसरत मोहानी, डा० किचलू, मौलवी जफर अली खाँ, सर्वश्री आगा सफदर, सैयद अब्दुर्रऊफ, मुहम्मद यूसुफ, शरीफ, ताजुद्दीन, मसीहुल्मुल्क लाला शंकरलाल, मौलाना शाह सुलेमान, मौलाना शौकत अली, सर्वश्री उमर सोबानी, अब्दुल वदूद, अहमद, हाजी सिद्दीक खत्री, जहूर अहमद, नूर मोहम्मद शेख, अबुल कलाम आज़ाद, मौलवी अकरम खाँ, मौलवी मुनीरुज्ज़माँ, श्री याकूब हुसैन।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ७–६–१९२०

परिशिष्ट ४

हंटर समितिकी रिपोर्टके सम्बन्धमें भारत सरकारका खरीता

भारत सरकार, गृह-विभाग

राजकीय

सेवामें
परममाननीय एडविन मॉण्टेग्यु,
महामहिमके भारत-मन्त्री

शिमला
३ मई, १९२०

महोदय,

आपकी जानकारी और महामहिमकी सरकार जो आदेश देना चाहे उसे जारी करनेके लिए हम उपद्रव समिति द्वारा ८ मार्च, १९२० को दी गई रिपोर्ट पेश कर रहे हैं। साथ ही हम रिपोर्टपर अपना दृष्टिकोण और निष्कर्ष भी प्रस्तुत कर रहे हैं। साधारण रूपसे तो रिपोर्ट एक प्रस्तावके साथ भारत सरकारके गृह-विभागमें प्रकाशित कर दी जाती, परन्तु हम मामलेको इतना महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि आपसे बातचीतके बाद हमने फैसला किया है कि महामहिमकी सरकारकी जानकारीके लिए रिपोर्टपर अपने विचार और निष्कर्ष आपतक पहुँचा देना उत्तम होगा। हम यह भी कहना चाहते हैं कि हमारे विचार और निष्कर्ष सर्वसम्मत हैं। केवल कुछ मुद्दोंपर हमारे आदरणीय साथी श्री शफी असहमत थे; उनका स्पष्ट संकेत कर दिया गया है। हम यह भी कह दें कि हमारे आदरणीय साथी सर जॉर्ज लाउण्डेज़, जो अब छुट्टीपर हैं, उन सभी निष्कर्षोंसे सहमत थे जिनपर हम उनके जानेसे पहले पहुँच चुके थे।

२. १४ अक्तूबर, १९१९ के प्रस्ताव सं० २१६८ में, सपरिषद् गवर्नर जनरलने उपनिवेश-मन्त्रीकी सहमतिसे बम्बई, दिल्ली और पंजाबमें हुए उपद्रवों, उनके कारणों और उनसे निपटनेके लिए अपनाये गये उपायोंकी जाँचके लिए एक समिति नियुक्त की। माननीय लॉर्ड हंटर, जो हाल ही तक स्कॉटलैंडके महा न्यायाभिकर्त्ता (सॉलिसिटर जनरल) थे और जो अब स्कॉटलैंडमें कालेज ऑफ जस्टिसके सीनेटर हैं, समितिके अध्यक्ष नियुक्त किये गये थे। इस समितिमें निम्नलिखित सदस्य थे :

(१) माननीय न्यायाधीश श्री जी० सी० रैंकिन, कलकत्ता उच्च न्यायालयके न्यायाधीश।

(२) माननीय श्री डब्ल्यू० एफ० राइस, सी० एस० आई०, आई० सी० एस०, भारत सरकारके गृह-विभागके अतिरिक्त सचिव।

(३) मेजर-जनरल सर जॉर्ज बैरो, के० सी० बी०, के० सी० एम० जी०, आई० ए०, पेशावर डिवीजनके कमांडर।

(४) माननीय पण्डित जगतनारायण, वी० ए०, संयुक्त प्रान्तके लेफ्टिनेंट गवर्नरकी विधान-परिषद्के सदस्य।

(५) माननीय श्री टामस स्मिथ, संयुक्त प्रान्तके लेफ्टिनेंट गवर्नरकी विधान परिषद्के सदस्य।

(६) सर चिमनलाल हरिलाल सीतलवाड, नाइट, वम्वई उच्च न्यायालयके वकील।

(७) सरदार साहवजादा सुल्तान अहमदखाँ, मुंतजिमुद्दौला, एम० ए०, एल-एल० एम०, (कैन्टव), वार-एट-लॉ, अपील अदालतके सदस्य, ग्वालियर रियासत।

समितिने २९ अक्तूवर, १९१९ को अपनी वैठकें प्रारम्भ कीं और दिल्ली, लाहौर, अहमदावाद, और वम्वईमें गवाहियाँ लेनेके वाद मार्च १९२० के प्रथम सप्ताहमें अपना काम समाप्त किया। उसी समय समितिकी रिपोर्ट भारत सरकारको दे दी गई।

समितिके निष्कर्षोंपर विचार करनेसे पूर्व हम जाँच, क्षेत्र, गवाही दर्ज करनेमें समिति द्वारा अपनाये गये तरीकों और उसके निष्कर्षोंके सामान्य स्वरूपके वारेमें कुछ प्रारम्भिक वातें वता देना चाहते हैं।

३. उपद्रवों और जाँच-क्षेत्रके स्वरूपकी एक सामान्य झलक पानेके लिए उपद्रवके मुख्य केन्द्रोंकी सम्वन्धित भौगोलिक स्थितिको संक्षेपमें समझाना और कालानुसार घटनाक्रम निर्देश करनेवाली महत्त्वपूर्ण तारीखोंका उल्लेख करना उपयोगी होगा। दिल्लीमें — जो भारतकी राजधानी है और जो ऐतिहासिक तथा व्यावसायिक महत्त्वके कारण शेष उत्तर भारतके रुखको निश्चित करनेवाला एक अत्यन्त ठोस तत्त्व है — ३० मार्चको सवसे पहले उपद्रव हुए। वे इस तरहके थे जिनके विरुद्ध व्यवस्था स्थापित करनेके उद्देश्यसे सेनाके उपयोगकी आवश्यकता हुई। किन्तु शान्ति स्थापित होनेसे पूर्व भीड़पर दो वार गोली चलाना जरूरी हो गया। १० अप्रैलको पंजावमें अमृतसर तथा लाहौरमें और वम्वई महाप्रान्तमें अहमदावादमें हिंसक उपद्रव हुए और वम्वई तथा कलकत्ता जैसी दूरस्थ जगहोंमें भी थोड़े-वहुत परिमाणमें अशान्ति स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर हुई। लाहौर नगरकी जनसंख्या २३०,००० है; वह पंजावकी राजधानी है। अमृतसरकी जनसंख्या १,५०,०००से अधिक है और वह व्यावसायिक दृष्टिसे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नगर है। अहमदावादकी जनसंख्या मोटे तौरपर २,८०,००० है; यह औद्योगिक नगर है और यहाँ ७८ मिलें हैं। दिल्लीसे लाहौर, अमृतसर और अहमदावादकी दूरी, मोटे तौरपर क्रमशः ३००, २८० तथा ५४० मील है। १० अप्रैलके वाद पंजावमें हालत तेजीसे विगड़ी और १५ अप्रैलको लाहौर और अमृतसर जिलोंमें फौजी कानूनकी घोषणा कर दी गई और उसके वाद शीघ्र ही अन्य तीन जिलोंमें भी। इसके लगभग दो सप्ताह वाद सीमान्तपर तूफानी वादल घिर आये और ४ मईको अफगान युद्धके लिए लामवन्दी शुरू हो गई। इससे पंजावकी सामान्य स्थितिपर गहरा असर पड़ा और इसलिए सभी सम्वन्धित जिलोंसे १२ जूनसे पहले और रेलवे स्थलोंसे इसके वादतक फौजी कानून उठाना सम्भव नहीं पाया गया। संक्षेपमें

यही वे घटनाएँ हैं जिनके तथ्यों, कारणों और परिणामोंको समितिने अपनी जाँचका विषय बनाया।

४. दूसरा मुद्दा जिसका भारत सरकार उल्लेख करना चाहती है वह अखिल भारतीय कांग्रेस समितिका जाँच-समितिके समक्ष गवाही देनेसे अपनेको अलग रखनेका निर्णय है। समितिकी रिपोर्टको अग्रेषित करते हुए जैसा कि लॉर्ड हंटरने अपने ८ मार्चके पत्रमें स्पष्ट किया है, गवाही देनेके इच्छुक सभी व्यक्तियोंको अपने नाम और पते देनेके लिए कहा गया था और साथ ही उन मुद्दोंका संक्षिप्त विवरण देनेके लिए भी कहा गया था जिनपर वे गवाही देना चाहते थे। समिति किस प्रकारकी गवाही सुनेगी इसका फैसला करना उसीपर छोड़ दिया गया था। लॉर्ड हंटरने वे परिस्थितियाँ जिनके अन्तर्गत कांग्रेस समितिने १२ नवम्बरके बाद जाँच-समितिके सामने जाने और गवाही देकर आगे मदद करनेसे इनकार कर दिया और फिर बादमें ३० दिसम्बरको अपनी गवाही उपस्थित करने और पुनः जाँच प्रारम्भ करनेका सुझाव रखा तथा जिन कारणोंसे लॉर्ड हंटरने उस सुझावको अस्वीकार कर दिया उन सबका विवरण दिया है। हमारा विश्वास है कि मामलेका जो विवरण लॉर्ड हंटरने दिया है उससे सभी समझदार लोगोंको यकीन हो जायेगा कि उनका निर्णय पूरी तरह न्यायोचित था। तथापि हम जोर जिस मुद्देपर देना चाहते हैं — और जो लॉर्ड हंटरके दिमागमें भी मौजूद था — वह है कि समितिने अपने सामने प्रस्तुत की गई सामग्री और गवाहीकी ही जाँच पूर्ण रूपसे की। सरकारी गवाहोंने जिन घटनाओंमें हिस्सा लिया था उनके बारेमें जो कुछ वे जानते थे, उन्होंने पूरी तरह बताया और सारा पत्र-व्यवहार तथा अन्य तहरीरी सबूत जो उपद्रव शुरू होने, उसके दबाने, या फौजी-कानूनके अमलसे जरा भी ताल्लुक रखता था, समितिके सामने रखा। सरकारके लिए यह खेदका विषय है कि कांग्रेस-समितिने जो और गवाहियाँ इकट्ठी कीं उनसे इन सरकारी प्रमाणोंका समर्थन नहीं होता, और इसीलिए कांग्रेसने तबसे लेकर अबतक जो गवाही प्रकाशित की उसपर किसी निष्पक्ष न्यायालय द्वारा जाँच नहीं करवाई गई। यद्यपि इससे कुछ विशेष घटनाओंपर और प्रकाश पड़ सकता था फिर भी उन्हें इसमें सन्देह है कि इससे समितिके सामने जो सामान्य चित्र रखा गया था, उसमें कोई खास फर्क पड़ता। जलियाँवाला बागमें हुई उस गोलीबारीके बारेमें जिसपर यहाँकी और भारतकी जनताका ध्यान पिछले दिसम्बरसे इतना ज्यादा केन्द्रित रहा, निर्णय लेनेके लिए समितिके पास बहुत काफी सामग्री थी, इसलिए और ज्यादा गवाही तथ्योंसे सम्बद्ध उसकी जानकारीमें कुछ भी इजाफा नहीं कर सकती थी।

५. समितिने अब अपनी सिफारिशें बहुमत तथा अल्पमतकी रिपोर्टके रूपमें भेज दी हैं। बहुमतवाली रिपोर्टपर अध्यक्ष और समितिके चार सदस्य न्यायमूर्ति श्री रैंकिन, जनरल बैरो, और श्री राइस तथा श्री स्मिथने हस्ताक्षर किये हैं। अल्पमतवाली रिपोर्टपर सर सी० एच० सीतलवाड, पंडित जगतनारायण और साहबजादा सुल्तान अहमदखाँने हस्ताक्षर किये हैं। यद्यपि दो रिपोर्टें दी गई हैं फिर भी भारत सरकारके लिए सन्तोषका विषय है कि तथ्योंके विषयमें प्रायः सबका मत एक ही है; उनके

आधारपर मतभेदोंके बावजूद जो परिणाम निकले ह उनम भी पर्याप्त सहमति है। दिल्ली और बम्बई महाप्रान्तकी सारी घटनाओं तथा काफी हदतक पंजाबकी घटनाओंके विवरण तथा वहाँके उपद्रवोंके कारणोंपर सहमति है। पंजाबकी जाँचके परिणामोंमें जो अन्तर है वह सर्वथा मूलभूत नहीं है। वह अन्तर आंशिक रूपसे परिमाण और आंशिक रूपसे मूलभूत असहमतिका है। उपद्रवोंको दबानेके लिए और फौजी कानूनको अमलमें लानेके लिए अपनाये गये कुछ तरीकोंकी दोनों रिपोर्टोंमें निन्दा की गई है। किन्तु दोनों रिपोर्टोंमें निन्दा करते हुए जो कठोरता बरती गई है उसकी मात्रामें विभिन्नता है। यह कथन विशेष रूपसे जलियाँवाला बागमें गोली चलानेकी निन्दापर लागू होता है। मुख्य मतभेदका सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा पंजाबमें फौजी कानून लागू करनेसे सम्बद्ध है। जहाँ बहुमतका कहना था कि विद्रोहकी स्थिति वर्तमान थी, इसलिए फौजी कानूनका उपयोग आवश्यक या न्यायसंगत था, वहाँ अल्पमतका विचार था कि उपद्रव विद्रोहकी सीमातक नहीं पहुँचे थे, इसलिए असैनिक अधिकारियोंका नियन्त्रण हटाये बिना या असैनिक शक्तिकी मददके अलावा अन्य रूपमें फौजके बुलाये बिना भी उपद्रव दब सकते थे और शान्ति व्यवस्था कायम की जा सकती थी।

६. इस अवस्थामें रिपोर्टोंमें अपनाई गई व्यवस्थाको समझाना आसान होगा। बहुमतवाली रिपोर्टके पहले सात अध्यायोंमें दिल्ली, बम्बई महाप्रान्त और पंजाबके अमृतसर, लाहौर, गुजराँवाला, गुजरात और लायलपुर जिलोंके उपद्रवोंका विवरण दिया गया है। प्रत्येक मामलेमें बहुमत संक्षेपमें उपद्रवोंकी समीक्षा करता है, और उन्हें रोकने तथा व्यवस्था पुनः कायम करनेके लिए अपनाये गये तरीकोंके औचित्यपर अपने निष्कर्ष लिपिबद्ध करता है। अध्याय ८में उसने संचार साधनोंपर बड़े पैमानेमें किये गये उन हमलोंका विवरण दिया है जिनका उपद्रवोंके सामान्य स्वरूपसे महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। अध्याय ९में उसने उपद्रवोंके कारणकी चर्चा की है जिसमें पंजाबका विशेष रूपसे उल्लेख किया गया है। अध्याय १०में फौजी कानून लागू करनेकी अवस्थाओंका संक्षिप्त वर्णन है। अध्याय ११ में फौजी कानून लागू करने और जारी रखनेके कारणोंपर विचार किया गया है, जब कि अध्याय १२में फौजी कानूनके प्रशासनकी आलोचना की गई है।

अल्पमतवाली रिपोर्टमें अपनायी गई क्रमयोजना कुछ और ही ढंगकी है। अध्याय १में बताया गया है कि समितिके बहुमतके निष्कर्षोंसे किस हदतक अल्पमतकी सहमति या असहमति है। अध्याय २में उपद्रवोंके स्वरूप और कारणोंपर विचार किया गया है। अध्याय ३में पंजाबमें फौजी कानून लागू करने व जारी रखनेके औचित्यपर विचार किया गया है। अध्याय ४में जलियाँवाला बागमें गोली चलानेका विवरण दिया गया है। अध्याय ५में फौजी कानूनका अमल, अध्याय ६ में सशस्त्र रेलगाड़ियों व वायुयानोंके उपयोग और अध्याय ७में फौजी कानूनी अदालतोंकी कार्यविधिपर विचार किया गया है।

यद्यपि प्रारंभमें ही उपद्रवोंके कारण और स्वरूपके बारेमें समितिके निष्कर्षोंकी समीक्षा करना अधिक सुविधाजनक होता, फिर भी हम बहुमतवाली रिपोर्टकी सामान्य योजनासे अलग हटना नहीं चाहते, क्योंकि इस प्रकार अलग हटनेसे अल्पमतके निष्कर्षों-

के साथ इसके निष्कर्षोकी तुलना करनेमें कठिनाई बढ़ेगी। तदनुसार हम चाहते हैं कि एक-एक अध्यायको लेकर रिपोर्टकी जाँच की जाये, बहुमत तथा अल्पमतके निष्कर्षों-पर अपने निर्णयोंका उल्लेख किया जाये, विशेषकर जहाँ उनमें मतभेद रखते हैं, और अन्तमें अपने निर्णयके अनुसार रिपोर्टपर क्या कार्रवाई की जाये यह बताया जाये।

७. अध्याय १में दिल्लीके उपद्रवोंका विवरण है। समिति सर्वसम्मतिसे इस निष्कर्ष-पर पहुँची है कि अधिकारियोंने स्थितिको बड़े उचित और पर्याप्त ढंगसे काबू किया, फौजी ताकतका कोई उत्तेजनात्मक या अनावश्यक प्रदर्शन नहीं हुआ; तीन अवसरोंपर गोली चलाना उचित था क्योंकि उन अवसरोंपर इस अन्तिम उपायका सहारा लेना जरूरी समझा गया। भीड़ और पुलिसके बीचकी वास्तविक मुठभेड़ोंको सत्याग्रह आन्दो-लनका उग्र-परिणाम माना गया है। बहुमत मानता है कि पहले विस्फोटके बाद यदि श्री गांधीकी दिल्ली-यात्रा रोकी न जाती तो प्रशासकीय अधिकारियोंको गम्भीर परे-शानीका सामना करना पड़ता और शायद वह यात्रा बहुत बड़े खतरेका कारण साबित होती। अल्पमत जहाँ उन्हें अलग रखे जानेके औचित्यपर संदिग्ध विचार रखता है, और यह भी कि उनकी (गांधीजीकी) उपस्थितिसे शायद लाभकारी परिणाम होता, वहाँ वह जनताकी शान्तिको खतरेमें डालनेवाली घटनाओंकी सम्भावनासे भी इनकार नहीं करता। स्थानीय अधिकारियों द्वारा अपनाये गये तरीकोंकी समितिने जो एकमात्र आलोचना की है वह यह कि उपायुक्त (डिप्टी कमिश्नर) ने कुछ मुख्य नागरिकोंको विशेष पुलिस सिपाहियोंके रूपमें नियुक्त करनेकी भूल की; हालाँकि वे स्वीकार करते हैं कि इन लोगोंसे कुछ काम नहीं लिया गया।

हम इन निष्कर्षोंको स्वीकार करते हैं और समितिने स्थानीय अधिकारियों द्वारा स्थितिको संभालनेकी जो प्रशंसा की है उसे पढ़कर हमें सन्तोष हुआ है। हम नहीं समझते कि विशेष पुलिस सिपाहियोंकी नियुक्तिके लिए उपायुक्तपर कोई दोष लगता है, क्योंकि उन्होंने तो प्रचलित प्रथाके अनुसार ही वैसा किया था। तथापि, हमने स्थानीय सरकारोंसे यह पूछनेका फैसला किया है कि विभिन्न प्रान्तोंमें इस विषयपर जो आदेश उपलब्ध हैं उनमें सुधार या पुनर्विचारकी जरूरत है या नहीं। मालूम पड़ता है, दिल्लीके अलावा अन्य उपद्रवग्रस्त केन्द्रोंमें भी प्रमुख नागरिकोंको विशेष पुलिस सिपाही-के रूपमें नियुक्त किया गया था; इसलिए यह पूछ लेना और भी आवश्यक है।

भारत सरकारका विचार है कि इस अध्यायमें वर्णित घटनाएँ शेष सत्याग्रह आन्दोलनका प्रथम परिणाम थीं इसलिए वे शेष रिपोर्टसे महत्वपूर्ण सम्बन्ध रखती हैं। यह व्यवस्थाकी ताकतों और सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा आन्दोलनके अनुयायियोंकी पहली टक्कर थी। ३० मार्चको भीड़के जिस बरतावके कारण दो अवसरोंपर पुलिस और फौजके लिए गोली चलाना आवश्यक हो गया, उसे श्री गांधी या स्थानीय राज-नीतिज्ञोंके विरुद्ध उठाये गये किसी कदमका परिणाम नहीं कहा जा सकता। भीड़ने बादमें जो ज्यादतियाँ कीं उनके लिए ऐसे ही कार्योंको बहाना बनाया गया है। परन्तु दिल्लीमें उपद्रवोंके पहले विस्फोटके १० दिन बाद तक श्री गांधीके खिलाफ नजरबन्दीका आदेश नहीं दिया गया था।

८. अध्याय २ में बम्बई महाप्रान्तमें हुए उपद्रवोंका विवरण है। अहमदाबाद जिलेमें वे अहमदाबाद नगर और वीरमगाँवतक, खेड़ा जिलेमें नडियादतक तथा बम्बई शहर तक सीमित थे। वीरमगाम अहमदाबादसे ४० मील दूर २०,०००की आबादीवाला नगर है। और नडियाद जिसकी आबादी ३०,००० है, अहमदाबादसे २९ मील दूर है। उपद्रवका सबसे अधिक गम्भीर विस्फोट अहमदाबादमें हुआ जो श्री गांधीका घर है और जो सत्याग्रह आन्दोलनका जन्मस्थान कहा जा सकता है। १० अप्रैलको जैसे ही लोगोंने गांधीजीके विरुद्ध उठाये गये कदमके बारेमें सुना, वैसे ही उपद्रव प्रारम्भ हो गये और हालाँकि १० को दोपहरके बादसे फौजकी मदद भी प्राप्त कर ली गई थी, १४ तारीखतक उनपर पूरी तरह काबू नहीं पाया जा सका। उपद्रवोंके विस्तृत विवेचन और उनके शमनके तरीकोंके बारेमें यह आवश्यक नहीं है कि समितिकी रिपोर्टका अनुसरण किया जाये, किन्तु यह जानना महत्वपूर्ण है कि शहरमें दो दिनतक भीड़की मनमानी चलती रही। भीड़ने जो ज्यादतियाँ कीं उनमें दो नृशंस हत्याएँ, यूरोपीयों और सरकारी अधिकारियोंपर पाशविक हमले और अदालतों तथा अन्य सरकारी इमारतोंको मटियामेट कर देना शामिल है। फौजी कमांडर द्वारा जिला न्यायाधीशकी सहमतिसे १२ अप्रैलको सभी लोगोंको चेतावनी देते हुए यह घोषणा जारी की गई कि यदि किसी स्थानपर दससे अधिक लोग जमा हों तो उनपर गोली चला दी जायेगी; और यदि कोई अकेला व्यक्ति शामके सात बजे और सुबहके ६ बजेके बीच किसी घरके बाहर देखा गया और यदि वह ललकारनेपर रुका नहीं, तो उसे भी गोलीसे उड़ा दिया जायेगा। इससे पहले पुलिस तथा फौजके शहरको बचाने व व्यवस्था कायम करनेके प्रयत्न असफल रहे थे। फौजोंने १३ अप्रैलकी दोपहरको अन्तिम बार गोली चलाई और समितिका विचार है कि वास्तवमें बिना चेतावनीके कोई गोली नहीं चली, न किसी ऐसे व्यक्तिपर गोली लगी जो उपद्रव न कर रहा हो या उपद्रवियोंको न उकसा रहा हो। १४ अप्रैलको विस्फोट सहसा समाप्त हो गया और उसकी समाप्ति आंशिक रूपसे उक्त घोषणाका और आंशिक रूपसे श्री गांधीकी वापसीका परिणाम कही जाती है। यदि श्रेय देनेके लिए कहें तो गांधीजीने व्यवस्था कायम करनेमें अधिकारियोंकी मददके लिए जनतापर अपने प्रभावका उपयोग किया। उपद्रवोंके दौरान अहमदाबादमें आठ जगह और अन्य स्थानोंपर चौदह जगह टेलीग्राफके तार काटे गये और नौ लाखकी मूल्यवान सम्पत्ति नष्ट कर दी गई। सशस्त्र पुलिस और फौजने ७४८ गोलियाँ चलाईं, और उपद्रवियोंमें निश्चित हताहतोंकी संख्या २८ मृत और १२३ आहत रही। बहुमतकी रिपोर्टमें विस्फोट दबानेके लिए अपनाये गये उपायोंपर इस प्रकार टिप्पणी की गई है: "हमारी राय है कि उपद्रवोंको दबानेके लिए अधिकारियोंने जो तरीके अपनाये वे उपयुक्त थे। फौजका उपयोग अनिवार्य था और उपद्रवी ही हताहतोंके लिए जिम्मेवार हैं। शहरका नियन्त्रण दो दिनसे कम समयतक फौजके हाथमें रहा और इसका उल्लेख फौजी कानूनके कालके नामसे किया गया है। परन्तु व्यवस्था कायम करने और १२ अप्रैलको घोषणा जारी करनेके अतिरिक्त फौजी अधिकारियोंने प्रशासनिक मामलोंमें दखल नहीं दिया। तथाकथित फौजी कानूनी आदेश अत्यन्त कठोर

थे; परन्तु स्थिति भी अत्यन्त गम्भीर थी। जनताके ऐसा विश्वास करनेसे कि दससे अधिक लोगोंके किसी भी जमावपर वगैर चेतावनी गोली चला दी जायेगी, व्यवस्था कायम करनेमें काफी मदद मिली, और ऐसा लगता है कि वास्तवमें इस निर्देशको अक्षरशः अमलमें नहीं लाया गया। हमारे विचारमें फौजने एक संगीन परिस्थितिमें प्रशंसनीय संयमसे काम किया, और जो फौजी कार्रवाई की गई उसमें अति थी ही नहीं। बम्बई सरकारने हमें सूचना दी है कि जबतक फौज नगरमें रही उसका व्यवहार प्रशंसनीय रहा। हमारी जाँचसे भी यही निष्कर्ष निकलता है।

९. वीरमगाँवका उपद्रव भी आगजनी, हत्या, सरकारी सम्पत्तिका विनाश और रेल तथा टेलीग्राफके संचार साधनोंपर हमलेके कारण अहमदाबाद-जैसा ही उग्र था। भीड़का प्रचण्ड रोष श्री माधवलालकी नृशंस हत्यासे अपनी चरम सीमापर पहुँच गया। श्री माधवलाल मजिस्ट्रेटके कार्यालयके अधिकारी थे। उनका बेदर्दीके साथ पीछा किया गया और जिस घरमें वे छिपे थे वहाँसे उन्हें घसीटकर सड़कपर लाया गया और मिट्टीका तेल डालकर सरकारी फाइलोंके ढेरके नीचे जीवित जला दिया गया। उनका शरीर जलकर राख हो गया। १२ अप्रैलकी सुबहको उपद्रवकी शुरुआत हुई और वह पूरी तरहसे तबतक नहीं दब सका जबतक कि उस दिन शामको अहमदाबादसे फौज नहीं आ गई। समितिने पाया कि उपद्रवियोंकी कुल निश्चित हताहतोंकी संख्यामें छः मृतक थे और ११ घायल। भीड़ द्वारा नष्ट की गई सम्पत्ति दो लाख रुपयेसे ज्यादा मूल्यकी थी। समिति सशस्त्र पुलिसके आचरणकी प्रशंसा करती है। उसने सही भावनासे काम किया और छः घंटेतक भीड़को सरकारी अफसरोंसे दूर रखा। उसका विचार है कि सशस्त्र पुलिसने और श्री कैल्डीकटके आधीन सशस्त्र चपरासियोंने उपद्रवियोंके विरुद्ध जिस ताकतका इस्तेमाल किया वह निश्चय ही अत्यधिक नहीं थी और सच तो यह है कि यदि प्रारम्भमें अधिक ताकत इस्तेमाल की जा सकती तो शायद एक नृशंस हत्या और सम्पत्तिके अधिक विनाशको रोका जा सकता था। समिति खेद व्यक्त करती है कि श्री माधवलालके हत्यारोंको पर्याप्त शिनाख्तके अभावमें न्यायके सामने नहीं लाया जा सका।

१०. नडियादमें मुख्य घटना यह हुई कि एक रेलगाड़ीको, जिसमें ब्रिटिश फौज अहमदाबाद भेजी जा रही थी, नष्ट करनेका प्रयत्न किया गया। रेलगाड़ी पटरीसे उतार दी गई थी; आश्चर्य है कि उसे ढालू किनारेसे लुढ़कनेके पहले ही रोका जा सका। रेल और तारके संचार-साधनोंपर कई हमले किये गये, परन्तु जनता और एहतियातके तौरपर वहाँ भेजी गई फौजमें कोई मुठभेड़ नहीं हुई।

११. जब श्री गांधीको पंजाब और दिल्लीमें प्रवेश न करने देनेका समाचार मिला तब बम्बई शहरमें उपद्रव करनेके प्रयत्न किये गये। परन्तु पुलिस और फौजने स्थितिको ठीक तरहसे सँभाल लिया और श्री गांधीके आगमनसे उपद्रव शान्त हो गया। जैसा कि समितिको बम्बई सरकारने सूचित किया है कि "उपद्रवोंमें कोई घातक रूपसे आहत नहीं हुआ और न सरकारी या निजी सम्पत्तिका भारी विनाश हुआ। न तो प्रशासनका सामान्य प्रचलन ही ठप्प हुआ था और न कानून और व्यवस्थापर प्रशासकीय

नियन्त्रण ही। उपद्रवोंके दौरान हुए अपराधोंपर साधारण न्यायालयोंमें विचार किया गया। शहरका सामान्य जीवन लम्बे समयतक गम्भीर रूपसे अस्तव्यस्त नहीं हुआ।"

१२. बम्बई महाप्रान्तमें हुए उपद्रवोंके सम्बन्धमें अल्पमत बहुमतवाली रिपोर्टको स्वीकार करता है, हालाँकि उसका निश्चित मत है कि अहमदाबाद या अन्यत्र ये दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ यदि श्री गांधीके विरुद्ध आदेश जारी न होता तो कदाचित् न होतीं। अल्पमतकी रिपोर्ट साथमें यह भी कहती है कि सरकारी सबूतके अनुसार श्री गांधीके पहुँचनेपर उनका प्रभाव पूरी तरह कानून और व्यवस्थाके पक्षमें ही पड़ा। अहमदाबादके कलक्टर श्री चैटफील्डने भीड़के प्रकोपके अचानक और भयानक विस्फोटको सँभालनेमें जो विवेक और न्याय प्रदर्शित किया उसे वह (अल्पमत) स्वीकार करता है और स्थानीय सरकारकी इन शब्दोंमें सराहना करता है: "बम्बई सरकारने बम्बई और अहमदाबाद शहर तथा अन्य स्थानोंमें शान्ति और व्यवस्था कायम रखनेके लिए जहाँ दृढ़तासे पर्याप्त कदम उठाये और वहाँ उसने ऐसे कदम बचाये भी जिनसे जनताके भड़कनेकी और कटुता पैदा होनेकी सम्भावना थी, वहाँ उसने सराहनीय राजनीतिक कुशलताका प्रभाव भी हमारे मनपर डाला।"

१३. बम्बई महाप्रान्तके उपद्रवोंके सम्बन्धमें समितिके सर्वसम्मत निष्कर्षोंको हम स्वीकार करते हैं। स्थानीय अधिकारियोंकी मूल्यवान सेवाओंके बारेमें और उपद्रवोंके शमनमें लगी फौजोंके सराहनीय व्यवहारके बारेमें जो राय व्यक्त की गई है उसकी भी हम पुष्टि करते हैं। रिपोर्टमें उल्लिखित अनेक उपद्रवोंपर विस्तारसे नजर डालना इस खरीतेमें सम्भव नहीं है। भीड़की उस निर्दयताको समझनेके लिए जो सीधे ही यूरोपीयों और सरकारी मुलाजिमोंके विरुद्ध अपनाई गई उन दस्तावेजोंको गौरसे पढ़ना जरूरी है। हम उन सभी लोगोंके प्रति जिन्हें भीड़के हाथों कष्ट उठाना पड़ा और विशेष रूपसे मजिस्ट्रेटके सम्बन्धियों और दो पुलिस अधिकारियोंके प्रति जो अत्यन्त नृशंस ढंगसे मार डाले गये, अपनी हार्दिक सहानुभूति लिखित रूपमें व्यक्त करना चाहते हैं। इन व्यक्तियोंके आश्रितोंके लिए व्यवस्थाके बारेमें पहले ही कदम उठाये जा चुके हैं और उन अफसरों तथा अन्य लोगोंकी सेवाओंको मान्यता प्रदान करानेके लिए भी पहले ही कदम उठाये जा चुके हैं जिन्होंने इस गम्भीर विस्फोटमें अपनी मूल्यवान मदद दी।

१४. अध्याय ३ में समिति पंजाबकी ओर मुखातिब होकर पहले अमृतसर जिलेके उपद्रवोंपर विचार करती है। अमृतसर नगरमें १० अप्रैलको पहला उपद्रव प्रारम्भ हुआ। उससे पहले वहाँ जो क्षोभ और उत्तेजना मौजूद थी समिति अपना वर्णन उसीसे आरम्भ करती है। ९ तारीखको स्थानीय सरकारने उप-आयुक्तके पास डाक्टर किचलू तथा सत्यपालको धर्मशालामें निर्वासित करनेका हुक्म भेजा। उप-आयुक्त द्वारा इन हुक्मोंका चुपचाप और शीघ्रतासे पालन करनेके कार्यका अनुमोदन किया गया है और कोतवालीमें एहतियातन पचहत्तर सशस्त्र पुलिसके सिपाहियोंको तैनात करना बुद्धिमत्तापूर्ण कहकर सराहा गया है। बादको प्रबन्धमें जो गड़बड़ी हुई उसका कारण समितिने स्थानीय अधिकारियोंमें दूरदर्शिताका अभाव नहीं माना। फिर भी उसने निर्देश किया है कि स्त्रियों और बच्चोंको अन्यत्र हटानेकी सावधानीको देखते हुए शहरमें यूरो-

पीय निवासियोंको खतरेकी स्थितिकी चेतावनी न देना एक असंगत भूल लगती है। साथ ही वह यह भी मानती है कि यूरोपीयोंपर जितना घातक हमला वास्तवमें हुआ, पहलेसे उसकी कल्पना कर लेना असम्भव था।

जब डाक्टर किचलू और सत्यपालके निर्वासनके बारेमें पता लगा तब एक उत्तेजित और क्रुद्ध भीड़ने सिविल लाइनकी ओर बढ़नेका प्रयत्न किया। समितिकी राय है कि उस दिशामें आगे बढ़नेसे भीड़को उप-आयुक्तका रोकना और उस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए गोली चलानेका आदेश देना सर्वथा उचित था और अवसरकी आवश्यकताको देखते हुए वह किसी प्रकार भी ज्यादती नहीं थी। इसी प्रकार जब दूसरे मौकेपर हाल ब्रिजपर गोली चलानेका आदेश दिया गया, वहाँ भी समिति उसे उचित बताती है और मानती है कि अवसरको देखते हुए जितना आवश्यक था उससे अधिक गोलीवार नहीं किया गया।

१५. इसके बाद समिति, भीड़ द्वारा नगरमें किये गये हिंसापूर्ण उपद्रवोंका वर्णन करती है। नेशनल बैंकमें मैनेजर और असिस्टेंट मैनेजरको बर्बरतासे इतना पीटा गया कि वे मर गये और उनके शव फर्नीचर इकट्ठा करके जला दिये गये। बैंकको लूट कर इमारतमें आग लगा दी गई और वह जलकर राख हो गई। बैंकके गोदामका सामान भी लूट लिया गया। उसके बाद एलायंस बैंकपर हमला किया गया और उसके मैनेजरकी निर्दयतासे हत्या कर दी गई, उसे छज्जेसे सड़कपर फेंक दिया गया; और उसका शरीर फर्नीचरपर मिट्टीका तेल डालकर जला दिया गया। इमारतको शायद इसलिए अछूता छोड़ दिया कि वह भारतीयोंकी थी। कोतवालीपर तैनात पुलिस इन उपद्रवोंको रोकनेके लिए कदम उठानेमें असफल रही, इसके लिए समिति उसकी निन्दा करती है। उसका विचार था कि शायद जिम्मेदार अधिकारी उन्हें रोक सकते थे, परन्तु या तो वे अपनी जिम्मेदारी समझनेमें असमर्थ रहे या उसे निबाह नहीं सके। चार्टर्ड बैंकपर भी हमला हुआ परन्तु पुलिसके बीचमें आ जानेके कारण वह बच गया। टाउन हाल और डाकखाना जला दिये गये और तारघरपर भी हमला किया गया परन्तु स्टेशन गारदके जमादारने भीड़पर गोली चलाकर उसे बचा लिया। तारघरपर किये गये गोलीबारको समिति उचित मानती है। आगे चलकर समितिने मालगोदामकी लूट, गार्ड राबिन्सन और सार्जेन्ट रौलैंड्सकी हत्याओं, श्री बेनेट और कुमारी शेरवुडपर किये गये घातक हमलों, श्रीमती ईस्डनके खोज निकालनेकी जिद, भारतीय ईसाई गिरजाघर (ˈडियन क्रिश्चियन चर्च) सहित अन्य इमारतोंको जलाने और संचार साधनोंको लगातार नष्ट करनेका प्रयत्न करके अमृतसरका सम्बन्ध अन्य स्थानोंसे काट देनेका बयान किया है। भीड़की हिंसाको सरकार-विरोधी और यूरोपीय-विरोधी बताया गया है और स्थितिकी गम्भीरताको पूरी तरह स्पष्ट किया गया है। एक दिनके अन्दर सत्तरह लाख रुपयेकी सम्पत्ति नष्ट कर दी गई।

१६. उसी दिन बादको फौजके रूपमें और सहायता पहुँच गई और शामको विभाग (डिवीज़न) के आयुक्त (कमिश्नर) ने कमांडिंग अफसरको जबानी हिदायतें दीं कि स्थिति चूँकि असैनिक नियन्त्रणके बाहर हो गई है, वरिष्ठ फौजी अधिकारीके नाते,

उन्हें सैनिक दृष्टिसे आवश्यक कदम उठाना चाहिए। ११ तारीखकी शामको आयुक्त लाहौरके लिए रवाना हो गये और जनरल डायर अमृतसर पहुँच गये जहाँ उन्होंने फौजकी वागडोर अपने हाथमें ली। उप-आयुक्तने उसी दिन आधी रातको औपचारिक रूपसे कर्त्तव्य भार उन्हें सौंप दिया। साधारण तौरपर कहें तो समिति १३ अप्रैलसे पहले उठाये गये किसी भी कदममें आलोचनाके योग्य कोई गम्भीर आधार नहीं देखती। समितिका सामान्य निष्कर्ष यह है कि १० और १२ के बीच असैनिक अधिकारी शक्तिहीन हो गये थे और ११ को हालात इस तरहके होते जा रहे थे, जिनसे वस्तुतः फौजी कानूनकी स्थिति अनिवार्य हो गई और अधिकारियोंने उपद्रव दवानेके लिए जो कदम उठाये वे न्यायोचित थे। इन कदमोंमें विजली और पानीकी आपूर्ति काट देना भी शामिल था। और उन्होंने शहरके अन्दर नियन्त्रण पानेके लिए ११ और १२ को अधिक सख्त और दृढ़ कदम उठानेका प्रयत्न न करके बुद्धिमानी की।

१७. अल्पमतका कहना है कि सिवाय उन कुछ वातोंके जहाँ साफ तौरपर उसका मतभेद है, वह मोटे तौरपर उन तथ्योंसे सहमत है जो वहुमतवाली रिपोर्टके तीसरे अध्यायमें प्रस्तुत किये गये हैं। वह स्वीकार करता है कि १० अप्रैलका सारा गोलीवार उचित था। उसकी राय एक ही मुद्देपर भिन्न है। वहुमतका कहना है कि १० तारीखको भीड़ने जो उपद्रव किये उनका कारण पुलपरका गोलीवार कदापि नहीं था, किन्तु अल्पमतकी राय है कि यद्यपि उपद्रव सर्वथा अक्षम्य और अनुचित थे, फिर भी भीड़का पहलेसे ही उपद्रव करनेका निश्चित इरादा नहीं था; गोलीवारके वाद लोग वुद्धि खो वैठे और पागलपनमें आकर नृशंस कार्य करनेपर उतारू हो गये।

१८. इस स्थानपर हम अमृतसरकी १२ अप्रैल और उससे पहलेकी स्थिति तथा वहाँ अपनाये गये उपायोंका विवेचन करना चाहते हैं। हम समितिके इस निष्कर्षको सही समझते हैं कि स्थिति अत्यन्त विषम थी; और यह भी मानते हैं कि अधिकारियों द्वारा उठाये गये कदम सामान्य तौरपर उचित थे। फिर भी हमारे विचारमें यह खेदकी वात है कि फौजी कानूनकी घोषणासे पूर्व ही असैनिक अधिकारियोंने ऐसी शर्तोंके साथ फौजके हाथमें नियन्त्रण सौंप देना अत्यावश्यक समझ लिया, जिनका तात्पर्य यह निकलता था कि वे फौजी कमांडरके कामपर निगरानी रखने या रहनुमाई करनेका कोई इरादा नहीं रखते। इसका नतीजा यह हुआ कि फौजी कमांडर वड़ी कठिनाईमें पड़ गया और उसपर एक ऐसा गम्भीर उत्तरदायित्व आ गया, जिसके वारेमें भारत-सरकारकी राय थी कि असैनिक अधिकारियोंको कुछ और समयतक उसका हाथ वँटाते रहना चाहिए था। यह स्पष्ट नहीं कि वास्तवमें असैनिक सत्ताको पूरी तरह समाप्त करनेके लिए जिम्मेदार कौन था, परन्तु भारत-सरकार अभी इस मामलेकी और छानवीन करके जरूरी हुक्म जारी करना चाहती है।

१९. इसके वाद समितिने १३ तारीखको जलियाँवाला वागमें घटी घटनाओंपर विचार किया है। वह स्थानका वर्णन करती है और गोलीवारसे सम्वन्धित सारी तफसील और परिस्थितियोंका पूरा विवरण देती है। उसने चलाई गई गोलियोंकी संख्या —१६५०, मृतकोंकी संख्याका अनुमान ३७९ और आहतोंकी संख्या इससे तिगुनी

वताई है। वह इन दो आधारोंपर जनरल डायरकी आलोचना करती है: (१) कि उन्होंने विना चेतावनी दिये गोली चलवाई, (२) जब भीड़ तितर-बीतर होने लगी तब भी गोली चलाना जारी रखा। पहले मद्देपर उसका कहना है कि ऐसे मौकेपर ठीक तरहसे पूर्व सूचना देनी चाहिये या नहीं, इसका निर्णय कर सकनेवाला एकमात्र व्यक्ति सम्बद्ध सैनिक अधिकारी ही है। फिर भी समिति इंगित करती है कि जनरल डायरने आपत्कालीन स्थिति उत्पन्न हो जानेकी वात नहीं कही है कि जिससे विना चेतावनी दिये भीड़पर गोली चलानेका उनका फैसला उचित सिद्ध हो सकता। उन्होंने समितिके सामने कहा है कि उन्होंने आते समय फैसला कर लिया था कि यदि उनके आदेशोंका पालन नहीं किया गया तो वे तुरन्त गोली चलवा देंगे। समितिका विचार है कि विना गोली चलाये भीड़का तितर-वितर होना स्पष्ट रूपसे असम्भव था, क्योंकि अधिकांश उपस्थित लोग एक घोषणाका सीधा उल्लंघन करके आये थे। फिर भी उसका कहना है कि पूर्वसूचनासे घोषणाकी जानकारी न होनेपर जो लोग एकत्र हुए थे और अन्य कुछ लोगोंको भी सभा छोड़ देनेका अवसर मिल जाता। भीड़ जब तितर-वितर होने लगी तब भी उन्होंने वड़ी देरतक गोली चलाना जारी रखा जो समितिकी रायमें जनरल डायरकी एक भारी भूल थी, हालाँकि समितिकी राय है कि जो सूचना उस समय उनके सामने थी उसपर उन्होंने ईमानदारीसे विश्वास किया और उस समयकी सैनिक स्थितिका उन्होंने जो मूल्यांकन किया उसके कारण अपना कर्त्तव्य निभानेके लिए उन्हें यह कदम उठाना पड़ा। समिति यह भी निष्कर्ष निकालती है कि जनरल डायरका इरादा पूरे पंजावमें एक नैतिक असर पैदा करना था और वह कर्त्तव्य सम्बन्धी उनकी गलत धारणाके रूपमें इसकी निन्दा करती है। जनरल डायरने घायलोंकी मदद नहीं की; उसके वारेमें समितिका कहना है कि उनके पास वहुत ही कम सेना थी और जैसा कि उन्होंने वताया है, अस्पताल खुले थे और मददके लिए उनसे कोई अनुरोध नहीं किया गया। अन्तमें समिति इस विचारको स्वीकार नहीं करती कि जनरल डायरके कामने पंजावमें स्थितिको वचा लिया और गदरके पैमानेपर होनेवाले विद्रोहको रोक दिया।

२०. जलियाँवाला वागकी घटनाओंपर विचार करते हुए, अल्पमतका कहना है कि सभा करनेकी मनाही करनेवाली पूर्व सूचना ठीकसे प्रकाशित नहीं हुई और वह निम्नलिखित वातोंके लिए जनरल डायरकी कटु आलोचना करती है: (१) इस कथनके लिए कि यदि वहाँ मशीनगनोंका उपयोग किया जा सकता तो वे उनका उपयोग करते। (२) विना चेतावनी दिये गोली चलाने तथा भीड़ जब तितर-वितर होने लगी तो उसके वाद भी गोलियाँ समाप्त होने तक गोलीवार जारी रखनेके लिए। (३) केवल भीड़को तितर-वितर करनेके उद्देश्यसे नहीं वल्कि उसे सजा देने और पंजावमें एक नैतिक असर पैदा करनेके उद्देश्यसे भी गोली चलानेके लिए, (४) यह मानकर चलनेके लिए कि उनके सामनेकी भीड़में वे लोग हैं जिनपर १० तारीखको उपद्रव करनेका आरोप था। अल्पमतका विचार है, जनरल डायरका अपने कामको सही मान-कर करना, कोई महत्त्व नहीं रखता और यह तर्क कि वह एक फौजी जरूरत थी वात

नहीं बनती; क्योंकि नृशंस शासकोंकी ओरसे किये गये जुल्मोंका औचित्य सिद्ध करनेके लिए यह तर्क तो हमेशा ही दिया जाता है। अल्पमत बहुमतसे इस बातपर सहमत नहीं कि बहुत करके भीड़का बिना गोली चलाये तितर-बितर किया जाना सम्भव नहीं था। अल्पमतने अपने इस विचारकी पुष्टिके लिए स्वयं जनरल डायरको उद्धृत किया है और उनके कार्यको अमानवीय और अब्रिटिश बताया है क्योंकि इससे भारतमें ब्रिटिश शासनको काफी नुकसान पहुँचा है। उसकी रायमें उनका आचरण उनकी इस निश्चित धारणाका परिणाम है कि भारतका शासन तलवारके बलपर होना चाहिए। उनकी इस बातके लिए भी इसने निन्दा की है कि उन्होंने मृतकोंको हटानेका और घायलोंकी देखभालका प्रबन्ध नहीं किया। अन्तमें वह पंजाब सरकारकी आलोचना करता है कि वह अविलम्ब हताहतोंकी संख्या निश्चित नहीं कर सकी। यहाँपर यह कह देना उचित होगा कि सरकारी जाँचोंके अनुसार हताहतोंमें ३७९ मृतक और १९२ घायल थे। इन जाँचोंमें सेवा समिति (एक समाजसेवी संस्था) द्वारा एकत्र की गईं सूचनाकी पड़ताल भी शामिल है। यह प्रायः निश्चित है कि घायलोंकी संख्यामें उन लोगोंको नहीं गिना गया जिनपर हल्की चोटें आई थीं। लेकिन हत और गम्भीर रूपसे आहत लोगोंकी अनुमित संख्याके रूपमें ये संख्यायें, अनुपातके नियमपर आधारित किसी भी अन्य अनुमित संख्यासे — मसलन् जाँच-समितिके सामने अपनी गवाहीमें जनरल डायरने जिसे संभाव्य बताया है, उससे — सत्यके ज्यादा नजदीक मालूम होती हैं।

२१. बहुमत और अल्पमत द्वारा की गई जनरल० डायरकी निन्दाकी मात्रामें अन्तर होनेसे और इंग्लैंड तथा भारत दोनों देशोंमें जलियाँवाला बागकी घटनाओंकी ओर जो ध्यान आकर्षित हुआ उससे सरकारके लिए इस बातकी जाँच करना आवश्यक हो गया कि किस हदतक जनरल डायरको दोषी ठहराया जाये। जिन विशेष निष्कर्षोंके आधारपर उनके कार्यकी निन्दा की गई है, उन्हें देखते हुए हमारा विचार है कि सभाओंको निषिद्ध करनेवाले आदेशोंका व्यापक रूपसे प्रचार किया जाना चाहिए था और उन इश्तिहारोंको विशेष रूपसे जलियाँवाला बागमें लगवाना चाहिए था; क्योंकि राजनीतिक सभाएँ ज्यादातर वहीं होती हैं। वैसाखी मेलेमें भी सूचना दी जा सकती थी; वहाँ आसपासके गाँवोंसे बहुतसे लोग जमा हुए थे। साथ ही यह बात भी ठीक है कि स्वयं जनरल डायरकी मौजूदगीमें नगाड़े बजाकर घोषणा की गई थी और शहरमें १९ जगहोंपर नोटिस लगाये गये थे, इसलिए इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि सभामें उपस्थित होनेवाले अधिकांश अमृतसर निवासियोंको आदेशोंके बारेमें मालूम था और वे उनका उल्लंघन करनेके लिए एकत्र हुए थे।

भारत सरकार इस बातमें समितिसे सहमत है कि जनरल डायरको गोली चलानेसे पहले भीड़को चेतावनी देनी चाहिए थी। यह सच है कि उनके साथ बहुत थोड़ी फौज थी और इस परिस्थितिको देखते हुए तथा उपद्रवकारियोंकी पहलेकी सफलताओंको देखते हुए यह सर्वथा असम्भव था कि उत्तेजित और चुनौती देनेवाली भीड़ केवल चेतावनी देनेपर तितर-बितर हो जाती; परन्तु जिन्हें आदेशकी जानकारी नहीं थी, जिनमें वैसाखी मेला देखनेके लिए आये हुए ग्रामीण और अन्य लोग शामिल

थे, उन सबको, यदि उचित रूपसे पूर्व सूचना दी जाती तो वास्तवमें उन्हें सभा छोड़नेका अवसर मिल जाता। भारत सरकार इस विचारसे सहमत है कि ऐसा कोई आपत्काल उपस्थित नहीं हो गया था कि इतनी सावधानी वरतना सम्भव नहीं बचा था।

भीड़ छँटना शुरू होनेपर भी जनरल डायरका उसपर गोली चलाते जाना भारत सरकारकी निगाहमें असमर्थनीय है। उन्होंने लगातार दस मिनट गोली चलवाई और इस अवधिमें १६५० गोलियाँ चलीं। सम्भव है कि जनरल डायरके कार्यसे अमृतसर और पासके केन्द्रीय पंजावके जिलोंमें कानून भंग करनेवाले लोग वहुत डर गये और उन्होंने फिर अव्यवस्थाका प्रदर्शन नहीं किया। फिर भी भारत सरकार इसे लगातार गोली चलानेका उचित कारण स्वीकार नहीं कर सकती। यह गोलीवार अवसरकी आवश्यकतासे वहुत अधिक था। उस समय अमृतसरकी जो स्थिति थी उसे देखते हुए भीड़को तितर-वितर करना सचमुच जरूरी था और इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए कठोर उपायोंकी आवश्यकता थी। फिर भी हमारी रायमें और भी अधिक सीमित फौजी शक्ति इस कामको पूरा करनमें पर्याप्त हो सकती थी और इसमें कोई सन्देह नहीं कि जनरल डायरके कार्यने ऐसी कटुताकी भावना पैदा कर दी है कि उसे मिटनमें अब काफी समय लगेगा। निस्सन्देह उनके सामने एक अत्यन्त कठिन स्थिति उपस्थित थी। उन्हें आशंका थी कि अमृतसर अन्य स्थानोंसे कट जायेगा; और साथ ही १० अप्रैलकी भयानक घटनाओंके वाद भीड़का प्रभाव वने रहनेका खतरा भी था। इन सब वातोंपर पूरा ध्यान देते हुए, हम इस सुचिन्तित परिणामपर पहुँचे हें कि जनरल डायरने मामलेपर जरूरतसे ज्यादा कार्रवाई की और अपने कर्त्तव्यके वारेमें गलत धारणा वनाई जिसके परिणामस्वरूप शोचनीय और अनावश्यक हत्याएँ हुईं। यद्यपि हमें विवश होकर यह निर्णय करना पड़ता है, फिर भी हमें विश्वास है, जनरल डायरने अपने कामको सही मानकर ईमानदारीसे आचरण किया और हमारे विचारमें उस समय उनके कार्यके परिणामस्वरूप उपद्रव उस हदतक वढ़नेसे रुक गये जिसका आज अन्दाज लगा पाना कठिन है। पंजावके वहुत-से वुद्धिमान पर्यवेक्षकोंकी भी यही राय थी। अव जलियाँवाला वागमें गोलीकांडके वाद डाक्टरी सहायताके प्रवन्धके अभावका प्रश्न रह जाता है। यहाँ भी हमें अपना गहरा खेद व्यक्त करना चाहिए क्योंकि सैनिक या असैनिक अधिकारियोंने मृतकोंको हटाने या घायलोंको मदद देनेका कोई प्रवन्ध नहीं किया। जलियाँवाला वागमें उठाये गये कदमको सही वतानेके लिए अल्पमत सर माइकेल ओ'डायरकी आलोचना करता है। इस स्थानपर भूतपूर्व लेफ्टिनेंट गवर्नरने जिन परिस्थितियोंमें अपनी स्वीकृति भेजी थी उनके वारेमें दिये गये उनके विवरणमें भारत सरकार कुछ भी नहीं जोड़ना चाहती। किन्तु जिस कठिन स्थितिमें सर माइकेल ओ'डायर फँस गये थे, उसका पूरा ध्यान रखते हुए भारत सरकार समझती है कि यदि वे जनरल डायरके कार्यका अनुमोदन करनेसे पूर्व गोली चलानेके तथ्यों और परिस्थितियोंकी सही-सही और पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनेका उपाय कर लेते तो वह अधिक वुद्धिमत्तापूर्ण कार्य होता।

हम यहाँ यह भी कहना चाहते हैं कि हमारे माननीय सहयोगी श्री शफी सामान्य तौरपर अल्पमत द्वारा की गई अमृतसर सम्बन्धी तथ्योंकी खोज और उससे निकाले गये निष्कर्षोंसे, जहाँ भी वे बहुमत द्वारा निकाले गये निष्कर्षोंसे, भिन्न हैं, सहमत हैं। वे इस सिद्धान्तको अस्वीकार करते हैं कि जलियाँवाला बागमें जनरल डायरके कार्यने पंजाबकी स्थितिको सँभाला और गदरके पैमानेपर होनेवाले विद्रोहको रोका। उनकी रायमें १४ अप्रैल और उसके बाद गुजराँवाला, गुजरात और लायलपुर जिलोंमें हुए उपद्रव जलियाँवाला बागके मामलेसे उत्पन्न संक्षोभके परिणाम थे।

२२. इस दुर्घटनाकी बात हम इस आरोपका उल्लेख किये बिना समाप्त नहीं कर सकते कि इसके चारों ओर जानबूझकर गोपनीयताका आवरण डाल दिया गया था, और लाचार होकर जनताको यह अनुमान लगाना पड़ा था कि यह कुटिलतापूर्ण नीति पिछले दिसम्बरमें जाँच समितिके सामने जो तथ्य प्रकट हुए उनके कारण ही बाधित हुई। यह आक्षेप निराधार है। जब उपद्रव प्रारम्भ हुए तब तात्कालिक आवश्यकता उन्हें दबा देने और व्यवस्था कायम की जानेकी थी। अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्थामें ही परमश्रेष्ठ वाइसरायने फैसला किया कि सरकारको उपद्रवों और फौजी कानूनके प्रशासनकी जाँच करानी चाहिए। आप इस रायसे सहमत हुए और मईके तीसरे सप्ताहमें ब्रिटिश लोकसभामें भाषण देते हुए आपने यह घोषणा की :

> समय-समयपर प्रश्न और जाँचकी माँग किये जानेके कारण जिन उपद्रवोंका मैं विवरण देता आया हूँ, वाइसराय उनकी जाँचकी बात प्रारम्भसे ही सोच रहे हैं। इतने बड़े पैमानेपर उपद्रव हो जायें तो उनके कारणों और उनको दबानेके लिए अपनाये गये तरीकोंकी जाँचका न किया जाना असम्भव है। परन्तु अबतक जाँचकी कोई घोषणा इस कारण नहीं की गई कि आग बुझा देनेके बाद ही हम जाँचकी बात उठायें।

इस सुझावके साथ यह घोषणा बिलकुल मेल नहीं खाती कि उक्त घटनाओंके विवरणको दबाने या छिपानेके लिए भारत सरकार या उपनिवेश मन्त्रीकी तरफसे कोई षड्यन्त्र किया गया था।

इसके बाद हम लोगोंके बीच और भी पत्र-व्यवहार हुआ और उसके फलस्वरूप वर्तमान समिति नियुक्त की गई। समितिके गठनके प्रश्नपर बहुत सावधानीसे विचार किया गया क्योंकि सरकार इस संस्थाको प्रभावशाली बनानेके लिए कृतसंकल्प थी; वह चाहती थी कि इसमें ऐसे व्यक्ति हों जिन्हें उच्च कोटिका न्याय सम्बन्धी अनुभव हो, और जिनपर (इंग्लैंड तथा भारत) दोनों देशोंकी जनता पूरी तरह विश्वास कर सके। शाही विधान परिषद (इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल)के पिछले सितम्बरके वसन्तकालीन अधिवेशनमें समितिकी आसन्न नियुक्तिके बारेमें एक घोषणा की गई थी। इस प्रश्नपर भी सावधानीसे विचार किया गया कि समितिकी बैठक होने तक सामान्य जाँचके अलावा कुछ विशेष घटनाओंकी जाँच रोक ली जाये या नहीं, या उसकी प्रारम्भिक जाँच बैठकके पहले प्रारम्भ की जाये या नहीं। अन्तमें हमने आपकी सहमतिसे तय किया कि बैठकके पहले इस प्रकारकी प्रारम्भिक जाँच करना अनुपयुक्त होगा।

प्रारम्भिक जाँचके प्रश्नपर विचार करते समय जलियाँवाला वागके मामलेपर मुख्य रूपसे ध्यान दिया गया और निर्णय हो जानेपर तथ्य एकत्र किये जाने लगे। जलियाँवाला वागमें गोली चलानेकी भारत सरकारको उपलब्ध पहली रिपोर्टमें हताहतोंकी संख्या २०० वताई गई थी। इसके दो दिन वाद जो दूसरी रिपोर्ट मिली इसमें यही संख्या मृत व्यक्तियोंकी वताई गई थी। दोनों रिपोर्टें तुरन्त उपनिवेश-सचिवको भेज दी गईं। अधिक विस्तृत रिपोर्ट काफी वादतक नहीं प्राप्त हुई। अप्रैलके उत्तरार्धमें जनरल डायर समस्त उपद्रवग्रस्त-क्षेत्रमें सैनिक-संचरण कराते रहे। मईके विलकुल शुरूमें अफगान युद्ध छिड़ जानेसे वे कोहाट ब्रिगेडके कमांडर चुने गये। उस तारीखसे जुलाईके अन्ततक वे लगातार युद्ध क्षेत्रमें कार्य करते रहे; और अमृतसरमें फौजी कानूनके प्रशासन तथा जलियाँवाला वागमें गोली चलानेके वारेमें उनकी रिपोर्ट अगस्त मासतक नहीं मिल सकी। इसी वीच स्थानीय सरकार हताहतोंकी सही संख्याका पता लगानके लिए जाँच करवाती रही। अगस्तके अन्ततक प्राप्त सूचनासे जिसकी पुष्टि सेवासमिति द्वारा की गई निजी पड़तालके परिणामोंकी जाँचसे भी हुई, प्रकट हुआ कि उस समय निश्चित मृतसंख्या २९१ थी और यही संख्या ११ सितम्वरको शिमलामें हुई शाही विधान परिपद्की वैठकमें भी वताई गई। परिपदके इसी अधिवेशनमें पंजावमें हुई घटनाओंके पूरे व्यौरे दिये गये और जलियाँवाला वागकी कहानीपर विस्तारसे वहस हुई। वहसकी कार्यवाहीकी पूरी रिपोर्ट हमेशाकी तरह प्रकाशित की गई और भारतमें उसपर पूरा-पूरा ध्यान दिया गया। सरकारी जाँच जारी रही और चार महीने वाद पंजाव सरकारके मुख्य सचिवने समितिके सामने गवाही देते हुए वताया कि तवतक निर्धारित की गई मृत व्यक्तियोंकी संख्या कुल मिलाकर ३७९ थी। सेवासमिति द्वारा दी गई सूचनाकी पड़तालपर आधारित स्थानीय सरकारकी वादकी रिपोर्टमें घायलोंकी संख्या १९२ वताई गई है।

समिति नियुक्त करनके फैसलेके समयसे सरकार यही मुनासिव समझती रही कि जहाँतक हो सके उन वातोंपर कोई सार्वजनिक टिप्पणी न की जाये जिनकी जाँच करना समितिका कर्त्तव्य है और किसी अधिकारीके आचरणपर भी समितिकी रिपोर्ट प्राप्त होने तक कोई राय न दी जाये। यह आरोप उचित नहीं प्रतीत होता कि इन घटनाओंके घटनकी तारीखसे लेकर समितिके सामने जनरल डायरके वयान प्रकाशित होने तक, भारत सरकार जानवूझकर सच्चाईको दवानेकी नीति अपनाये रही। उपर्युक्त तथ्य इस आरोपका स्पष्ट रूपसे खंडन करते हैं।

निस्संदेह यह खेदका विषय है कि जो कुछ वास्तवमें हुआ उसके वारेमें पूरी जानकारी एक औपचारिक जाँचके पहले प्राप्त नहीं हो सकी। परन्तु अव यह काण्ड समाप्त हो चुका है और इंग्लैंड तथा भारत दोनों जगह सरकार और जनताको तथ्योंकी पूरी जानकारी हो गई है, इसलिए दोपारोपण और खेद प्रकाशनसे कोई लाभ नहीं होगा।

२३. अध्याय ४में लाहौर जिलेके उपद्रवोंपर विचार किया गया है। स्वयं राजधानीमें रौलट विधेयकके खिलाफ आन्दोलन और ६ अप्रैलकी पूर्ण हड़तालने जनताको

अत्यधिक उत्तेजित कर दिया था और श्री गांधीकी गिरफ्तारी और अमृतसरमें हुए उपद्रवोंके समाचारसे १०की शामको यह उत्तेजना चरम सीमापर पहुँच गई। शहरमें भीड़ जमा हो गई और जव पुलिसने उसे सिविल लाइन्सकी ओर बढ़नेसे रोका तो उसने पुलिसपर हावी होनेकी कोशिश की। समितिने उन परिस्थितियोंपर सावधानीसे विचार किया है जिनके अन्तर्गत जिला न्यायाधीश श्री फायसन और पुलिस सुपरिंटेंडेंट श्री ब्राडवेके हुक्मसे उसी दिन तीसरे पहरको भीड़पर तीन वार गोली चलाई गई। समिति इन दोनों अधिकारियोंके कामको पूरी तरह सही मानती है। भारत सरकार सोच भी नहीं सकती कि इसके सिवा कोई और निष्कर्ष निकालना सम्भव है। सिविल लाइन्सकी ओर वढ़ती हुई भीड़को अमृतसरमें हुए उपद्रवोंके वारेमें पता था; उसके प्रयत्नोंको विफल करनेकी कोशिश न करना घातक होता। भीड़को सिविल लाइन्समें घुसने देनेके बाद लाहौरकी स्थितिका विवरण समितिने इस प्रकार दिया है:

> "१० अप्रैलकी रातको और वादके कुछ दिनोंतक लाहौर शहर भयानक रूपसे विक्षोभकी स्थितिमें था। उस रातको सिविल स्टेशन और उसके आस-पासके इलाकेको बचानेके लिए फौजी उपाय किये गये। जिस स्थानसे पुलिस अस्थायी तौरपर हटा ली गई थी, वहाँ शहरमें कोई भी यूरोपीय सुरक्षित रूपसे प्रवेश नहीं कर सकता था। लगभग २ दिनतक शहरमें भीड़का राज्य रहा।

उसके वाद समिति ११ तारीखकी घटनाओंका वर्णन करती है, वादशाही मस्जिदमें हिन्दू-मुसलमानोंकी उत्तेजित भीड़के सामने आग भड़कानेवाले भाषण दिये गये, डंडा फौजके नामसे संगठित उपद्रवियोंका गिरोह लाठियोंसे लैस होकर शहरमें 'पंचम जॉर्ज मुर्दावाद' के नारे लगाते हुए घूमा और उसने महामहिम सम्राट् और सम्राज्ञीकी तसवीरें तोड़ीं। ११की सुवह किलेकी चहारदिवारी गिरा देनेके प्रयत्न किये गये। वहाँ कुछ उपद्रवियोंने रक्षा करनेवाले ब्रिटिश सिपाहियोंपर थूका और उन्हें "सफेद सूअर" कहा। उसी दिन रेलवे-कारखानेपर हमला किया गया और कर्मचारियोंकी हड़ताल करवानेके पूरे प्रयत्न किये गये। १२को वादशाही मस्जिदमें दूसरी सभा की गई और भीड़ने फौजदारी जाँच विभागके एक अधिकारीको वहुत अधिक पीटा। उसी दिन स्थितिपर पुनः नियन्त्रण प्राप्त करनेके लिए पुलिस और फौजके मिलेजुले दस्तेने शहरमें कूच किया। हीरामंडीमें जमा भीड़ने कूचमें रुकावट डाली। जव जिला मजिस्ट्रेटने उसे तितर-वितर होनेका निर्देश दिया तो उसने इनकार कर दिया और पुलिसके उस छोटे-से अग्रिम दस्तेपर जो मजिस्ट्रेटके साथ था, पत्थर चलाना शुरू कर दिया। श्री फायसनको गोली चलानेके लिए मजबूर होना पड़ा, फलतः एक आदमी मारा गया और वीस घायल हुए। समितिकी रायमें उस दिन भीड़को तितर-वितर करना जरूरी था। यदि पुलिस और फौज उस भीड़को तितर-वितर न करती तो लाहौरमें व्यवस्था कायम करनेकी सारी आशाएँ समाप्त हो जातीं। ये तथ्य कि गोलियाँ पुलिसने ही चलाईं; फौजी गोली-वारूदसे युक्त फौजके वजाय मोटे छर्रोंसे लैस पुलिसकी ही भीड़से मुठभेड़ कराई गई; पुलिसने वहुत कम गोलियाँ चलाईं और भीड़को चेतावनी दी गई,

समितिकी रायमें यह व्यक्त करते हैं कि पूरी-पूरी सावधानी बरती गई और यथासम्भव कमसे-कम शक्तिका उपयोग किया गया।

समिति लाहौरमें उपयोगमें लाये गये आग उगलनेवाले और विद्रोहात्मक इश्तिहारोंपर विशेष ध्यान आकर्षित कराती है। ये इश्तिहार महात्मा गांधीके नामपर पंजाबके वीरोंका आह्वान करते थे कि वे डंडा फौजमें शामिल हो जायें और अंग्रेजोंको, जिन्हें सूअर, बन्दर और काफिर बताया गया था, मार डालें। १३ अप्रैलको जिला राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम (सेडिशस मीटिंग्स ऐक्ट) के अधीन घोषित कर दिया गया। उसी दिन लगभग १४ मील दूर वागाह स्टेशन जलाकर लूट लिया गया, तारकी लाइनें काट दी गई, और फौज ले जानेवाली एक रेलगाड़ी पटरीसे उतार दी गई, सौभाग्यसे कोई हताहत नहीं हुआ। १४ तारीखको पंजाब सरकारने स्थानीय नेता रामभजदत्त, हरकिशनलाल, और दुनीचन्दको, जो आन्दोलनमें तथा अब भी हड़ताल जारी रखनेमें सक्रिय सहयोग दे रहे थे, निर्वासित कर दिया; बादमें इन सभी लोगोंपर युद्ध छेड़नेका अभियोग चलाया गया।

२४. अध्याय ४ के दूसरे भागमें, १२ अप्रैलको लाहौरसे ३७ मील दक्षिण-पूर्वमें स्थित एक छोटेसे उपनगर कसूरके बहुत ही गम्भीर उपद्रवोंका वर्णन है। उस दिन सुबह एक हिंसक भीड़ने रेलवे स्टेशनपर हमला किया और यथासम्भव मूल्यवान् सम्पत्तिको नष्ट करने और जला देनेके बाद अपना ध्यान उन तीन रेलगाड़ियोंकी ओर केन्द्रित किया जो स्टेशनके करीब रोक दी गई थीं। बहुत-से यूरोपीयोंपर घातक हमले किये गये जिनमें एक महिला और तीन बच्चे भी शामिल थे। ये लोग रेलगाड़ियोंमें सफर कर रहे थे; उनमें से कुछको भगवान्ने बचा लिया, परन्तु तीन आदमी सख्त घायल हुए और दो अभागे वारंट अफसरोंको तो इतना पीटा गया कि वे मर गये। अपनी सफलतासे प्रोत्साहित होकर भीड़ने उसके बाद डाकखाने और एक दीवानी अदालतको जला दिया। और उपसम्भाग (सब डिविजन)के दफ्तरोंपर हमला किया। सरकारी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए पुलिसको मजबूर होकर गोली चलानी पड़ी जिसके परिणामस्वरूप चार आदमी मारे गये और अनेक घायल हुए। भीड़पर गोली चलानेके निर्णयको समिति ठीक मानती है। उसके विचारमें तो गोली और पहले चलाई जानी चाहिए थी। १२ की शामको फीरोजपुरसे फौज आ गई और उपद्रव बढ़ नहीं पाया। लाहौर जिलेमें दो जगह और उपद्रव हुए, १२ को खेमकरनमें जहाँ रेलवे स्टेशनपर हमला करके उसे कुछ क्षति पहुँचाई गई। ११की रातको पट्टीमें टलीग्राफके तार काट दिये गये और १२को वहाँके डाकखाने और रेलवे स्टेशनपर हमला किया गया।

हम लाहौर जिलेके उपद्रवों और उन्हें दबानेके लिए अपनाये गये तरीकोंसे सम्बद्ध बहुमतके उन सभी निष्कर्षोंको, जिनसे कि अल्पमतकी भी सहमति है, स्वीकार करते हैं। हमारा विचार है कि सर्वश्री फायसन और ब्राडवेने लाहौर शहरकी कठिन स्थितिको जिस प्रकार सँभाला उसके लिए वे प्रशंसाके पात्र हैं।

२५. अध्याय ५में गुजराँवालामें हुए अत्यन्त गम्भीर उपद्रवोंपर विचार किया गया है। यह शहर लाहौरसे ३६ मील दूर उत्तरमें स्थित है और इसकी जन-संख्या

३०,००० है। यहाँ भी अन्य जगहोंकी तरह रौलट विधेयकके खिलाफ आम आन्दोलन हुआ और ६ अप्रैलको पूरी हड़तालकी गई परन्तु १३ तक कोई हिंसा नहीं हुई और न इसका किसीको कुछ गुमान ही था; किन्तु जब लाहौरमें हुई १० तारीखकी घटनाओंका समाचार वहाँ पहुँचा तब स्थानीय जनता उत्तेजित हो उठी। उस शाम अधिकारियोंको पता चला कि अगले दिन और प्रदर्शन करनेका इरादा किया जा रहा है। कार्यवाहक उप-आयुक्तने पुलिसको लेकर आवश्यक प्रबन्ध किया। समिति उन उपद्रवोंका जो शहरमें १४ तारीखको हुए थे और जिनमें एक रेलगाड़ीपर हमला, गुरुकुल-पुल तथा कई इमारतोंको जलाना और रेल तथा तार संचार-साधनोंको अनेक प्रकारसे क्षति पहुँचाना शामिल हैं, विस्तारसे वर्णन करती है। भीड़ने पूरी तरह आधिपत्य प्राप्त कर लिया था और सम्पत्तिका जो मूर्खतापूर्ण विनाश किया जा रहा था उसे रोकने या यूरोपीयों और राजभक्त लोगोंकी रक्षा करनेमें पुलिस असमर्थ हो गई थी। डाकखाना, राजस्व कार्यालय, गिरजाघर और जिला अदालत सब जला दिये गये। जेल और पुलिस लाइनपर हमला किया गया परन्तु पुलिसके गोली चलानेसे उनकी रक्षा हो गई। इसके बाद भीड़ रेलवे स्टेशनकी ओर मुड़ी। उसने इमारतों और मालगोदामोंमें आग लगा दी और उनका सामान लूट लिया। जिन यूरोपीय परिवारोंको एहतियातके तौरपर पहली शामको दूर नहीं भेजा गया था वे सुरक्षाके लिए खजानेमें इकट्ठे हुए। खजानेकी रक्षा एक छोटी पुलिस गारद कर रही थी। इस बीच हर तरफ यातायात अवरुद्ध कर दिया गया था; दिन खत्म होनेतक शहरके सामनेकी रेलवे पटरीके साथ लगे लगभग सारे तार कुछ मीलोंतक काट दिये गये थे। यातायातके इस अवरोधके कारण गुजराँवालाको साधारण फौजी मदद भेज सकना असम्भव हो गया। शहरको राहत पहुँचानेके लिए हवाई जहाजोंके उपयोगकी अनुमति ऐसी परिस्थितिमें दी गई थी। जब पुलिस प्रायः थक चुकी थी तब तीसरे पहर ३ बजेके करीब लाहौरसे शहरके ऊपर ३ हवाई जहाज पहुँचे। उस रात ९ बजेतक फौजका पहला दस्ता नहीं पहुँचा था।

गुजराँवालाकी घटनाओंके बारेमें बहुमतके महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष इस प्रकार हैं: (१) श्री हैरनका भीड़पर गोली चलानेका कार्य बिल्कुल सही है; (२) जब भीड़ने डाकखानेपर हमला किया, उस समय कार्यवाहक उप-आयुक्तका गोली चलानेकी अनुमति देनेसे इनकार करना, आलोचनाके योग्य है; (३) अमृतसरमें जो-कुछ किया गया था उसीको भीड़ यहाँ दोहराना चाहती थी; (४) उन परिस्थितियोंमें बमवाहक विमानोंका उपयोग करनेका फैसला उचित था, हालाँकि असैनिक उपद्रवोंमें विमानोंका उपयोग करनेका फैसला अत्यन्त आपत्कालके सिवा सही नहीं ठहराया जा सकता। और (५) मोटे तौरपर विमान अधिकारी मेजर कारबैरीका काम उचित था, परन्तु उनके निर्देश सदोष थे। इन सभी मुद्दोंपर भारत सरकार समितिसे पूर्णतया सहमत है और मेजर हैरनकी, जिन्होंने अत्यन्त कठिन परिस्थितियोंमें उपर्युक्त कार्य किया, प्रशंसा करना चाहती है। समितिका विचार है कि पास ही स्थित दो गाँवों और खालसा हाईस्कूलपर बम गिराना सही नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसमें दोष

मुख्य रूपसे उन निर्देशोंका है जो मेजर कारवैरीको दिये गये थे; उन्हें तत्क्षण आकाशमें जो फैसला करना पड़ा उसके लिए वे दोषी नहीं ठहरते। समितिका विचार है कि गुजराँवाला शहरमें उपद्रवी भीड़पर बम बरसाना न केवल उचित था, बल्कि उसकी रायमें वह बहुत उपयोगी भी था। काफी हदतक इसी कार्यके परिणामस्वरूप फौज आनेसे बहुत पहले उपद्रव समाप्त हो गये थे। समितिका कहना है कि १५ अप्रैलको आक्रामक कार्रवाईके लिए हवाई जहाजके उपयोगको सही सिद्ध करनेके लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं बताया गया है। और वह इस सिफारिशके साथ अपना कथन समाप्त करती है कि ऐसे अवसरोंपर वायुसेनाके अधिकारी कौन-सी पद्धति अपनाएँ इस सम्बन्धमें दी गई हिदायतोंपर वायुसेनाके प्रधान कार्यालयको सावधानीके साथ विचार करना चाहिए।

अध्याय ४ में जिसका शीर्षक "सशस्त्र रेलगाड़ियाँ और विमान" है, अल्पमत विमानोंके उपयोगकी चर्चा करता है। वह बहुमतके इस कथनसे सहमत है कि असैनिक उपद्रवोंको शान्त करनेमें जहाँतक हो सके विमानोंका प्रयोग रोकना चाहिए। वह खालसा हाईस्कूल तथा दो बाहरी गांवोंपर बम गिरानेके लिए मेजर कारवैरीकी निन्दा करता है और कहता है कि यद्यपि उन्हें दी गई हिदायतोंकी भाषा काफी सावधानीसे निश्चित नहीं की गई थी फिर भी उनका पालन करनेमें उन्होंने अपने विवेकका उपयोग बुद्धिमत्तापूर्वक नहीं किया। वह यह भी मानता है कि उन्होंने भीड़पर मशीनगनसे जो गोलियाँ चलाईं वे [जरूरतसे] बहुत अधिक थीं।

२६. जहाँतक गुजराँवालामें विमानोंके उपयोगके साधारण प्रश्नका सम्बन्ध है, भारत सरकार बहुमतके उस निष्कर्षको स्वीकार करती है जो मुनासिब तौरपर इस प्रकार व्यक्त किया गया है: "हम उपद्रवियोंको ऐसा पट्टा देनेको तैयार नहीं कि जब वे सरकारके दमन करनेवाले सामान्य साधनोंके अपने विरुद्ध किये गये उपयोगको रोकनेमें सफल हो जायें तो बचे हुए साधनोंके उपयोगसे भी उन्हें बरी रखा जाये।" हम उन अधिकारियोंकी, जिनका घटना विशेषके सिलसिलेमें उल्लेख किया गया है, निन्दा करना सही नहीं समझते क्योंकि जहाँ उनके कार्योंकी निन्दा की गई है वहाँ उसका कारण अधिकांशमें उनके निर्णयकी भूलकी अपेक्षा उनको मिले निर्देशोंकी अस्पष्टता बताया गया है। हमारी रायमें १५ तारीखको आक्रामक कार्रवाईके लिए विमानोंके उपयोगकी अनुमति देनेवाले निर्देशोंके साथ, उनका भेजा जाना उचित नहीं था; किन्तु हम यह ठीक नहीं मानते कि जिस अधिकारीने निर्देश पालन किया उसपर गम्भीर अपराधका दोप लगाया जाये। हमें यह जानकर सन्तोष होता है कि इस तारीखको की गई कार्रवाईसे कोई हताहत नहीं हुआ था। अन्तमें हम बहुमतकी इस सिफारिशको अमलमें लानेके लिए उचित कार्रवाई करनेका सुझाव देते हैं कि ऐसे अवसरोंपर वायुसेनाके अधिकारियोंको दिये जानेवाले निर्देश सावधानीसे दिये जायें।

२७. गुजराँवाला जिलेमें १५ अन्य स्थानोंपर उपद्रव हुए, परन्तु समिति उन्हीं उपद्रवोंकी चर्चा करती है जो गुजराँवालासे २० मील उत्तरमें स्थित २०,०००की आबादीवाले शहर वजीराबाद, अकालगढ़, हाफिजाबाद तथा शेखूपुरा सब डिवीजनमें

हुए। वजीराबादमें एक उपद्रवी भीड़ रेलवेकी इमारतसे हटाई गई, परन्तु उसने तार-प्रणालीको भारी नुकसान पहुँचाया। उसने रेलके पुलोंको भी आग लगाई। स्कॉटलैंड निवासी एक मिशनरीके बँगलेको जलाया और लूटा तथा डाक गाड़ीको नष्ट करनेका भी असफल प्रयत्न किया। अकालगढ़ और हाफिजाबादमें टेलीग्राफके तारोंको अत्यधिक हानि पहुँचाई गई। हाफिजाबादमें, मिलिटरी फार्म विभागका एक अधिकारी सौभाग्य-वश डरावनी भीड़के घातक इरादोंसे बच गया। शेखूपुरा उपसंभागमें चूहड़खाना, शेखूपुरा, साँगला और अन्य स्थानोंपर तार तथा रेल प्रणालीपर लगातार दृढ़ताके साथ हमले किये गये, कमसे-कम तीन रेलवे स्टेशन नष्ट हो गये और इसके साथ ही कुछ रेलवे तथा सरकारी कर्मचारियोंपर नृशंस हमले किये गये। लाहौरसे एक सशस्त्र रेल-गाड़ी सहायतार्थ भेजी गई और उस गाड़ीसे शारकपुरके अतिरिक्त सहायक आयुक्त रायसाहब लाला श्रीराम सूदके आदेशसे चूड़हखानामें गोली चलाई गई। समितिकी राय है कि इस अधिकारीने कठिन परिस्थितिमें मुस्तैदीके साथ निर्णय लेकर कार्य किया। अल्पमतकी दूसरी तरहकी राय है और वह उसकी निन्दा इस आधारपर करती है कि उसका इरादा दंड देनेका था, इसलिए गोली चलाना उचित नहीं था। इन स्थानोंके उपद्रवोंसे उत्पन्न होनेवाली सभी बातोंमें बहुमतकी राय और उसके इस कथनसे भारत सरकार सहमत है कि लाला श्रीराम सूदने अपने कर्त्तव्यपालनमें मुस्तैदी दिखाई और निर्णायक-बुद्धिका परिचय दिया।

२८. अध्याय ६ और ७में उन घटनाओंका वर्णन है जो क्रमशः गुजरात तथा लायलपुर जिलोंमें हुईं। इन क्षेत्रोंमें उपद्रवोंका मुख्य स्वरूप रेलवे संचार व्यवस्था तथा टेलीग्राफके तारोंपर हमला करना था। १५ अप्रैलको गुजरातमें उपद्रवी भीड़पर गोली चलानी पड़ी। कोई हताहत नहीं हुआ और भीड़ तितर-बितर कर दी गई। १७ अप्रैलको मलकवालमें एक रेलगाड़ी पटरीसे उतार दी गई जिसमें दो की मृत्यु हुई। लायलपुरमें अत्यन्त परेशान करनेवाली मुख्य बात थी उत्तेजनात्मक और अपराधात्मक इश्तिहारोंका लगातार प्रदर्शन। इनमें महात्मा गांधीके पुनीत नामपर धोखेबाज अंग्रेजोंके साथ आमरण युद्ध और अंग्रेज औरतोंको अपमानित करनेके लिए भारतीयोंका आह्वान किया गया था। कई दिनोंतक बड़ा तनाव रहा और १९०७ में हुए उपद्रवोंकी भूमिकाके कारण सरकारके लिए लायलपुरकी स्थिति चिन्ताका विषय बन गई। स्थिति इतनी गम्भीर हो गई थी कि शहरके सारे यूरोपीय, सुरक्षाके लिए सिविल लाइन्सके दो मकानोंमें इकट्ठे हो गये, परन्तु वास्तवमें कुछ स्थानोंपर टेलीग्राफके तार कटनेके सिवा और कोई हिंसा नहीं हुई। १७ अप्रैलको फौजके आ जानेसे और उपद्रव नहीं हो पाये।

समितिने पंजाबके बहुतसे अन्य नगरों और स्थानोंमें हुए हिंसापूर्ण कार्यों और उपद्रवोंका विस्तारसे वर्णन नहीं किया है परन्तु उन्हें रिपोर्टके साथ संलग्न तारीखवार विवरणमें दे दिया गया है। इसलिए उस समय जब कि फौजी कानूनकी घोषणा की गई, स्थानीय सरकारने स्थितिको जिस तरहसे देखा उसपर विचार करते हुए उक्त घटनाओंपर भी ध्यान देना जरूरी है।

२९. अध्याय ८में रेलवे तथा तार प्रणालीपर किये गये अनवरत और विस्तृत आक्रमणोंका वर्णन है। ये हमले १० अप्रैलसे लेकर लगभग महीनेके अन्ततक जारी रहे। तार विभागकी एक रिपोर्टके अनुसार तार ५५ बार काटे गये या उनमें अन्य कोई गड़बड़ी पैदा की गई। इसके अलावा रेलवेके टेलीग्राफोंपर अनेक हमले हुए। पंजाब सरकारके वक्तव्यके अनुसार गृह-सदस्य (होम मेम्बर) ने पिछले सितम्बरमें परिषद्की बैठकमें इस प्रकारके हमलोंकी कुल संख्या १३२ बताई थी। समितिका विचार है कि संचार-साधनोंपर हमलोंका कारण आंशिक रूपसे सरकार-विरोधी भावना और आंशिक रूपसे फौजी कार्रवाईको रोकनेकी इच्छा थी। उसने इस बातका भी उल्लेख किया कि हड़ताल करनेके लिए रेलवे कर्मचारियोंको प्रोत्साहित करनेके लगातार प्रयत्न किये गये। ऐसे नाजुक अवसरपर कर्मचारियोंके कुछ वर्गोंमें व्याप्त अशान्तिके कारण सरकार अत्यधिक चिन्ताग्रस्त थी।

फौजी कानून लागू करने और जारी रखनेके अधिकार क्षेत्रसे सम्बन्धित प्रश्नसे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण ही इस अध्यायका महत्त्व है। रेलवे और टेलीग्राफके तारोंके अवरोधोंके आँकड़ोंका महत्त्व रिपोर्टके साथ संलग्न नक्शोंमें दृढ़ताके साथ पूरी तरह सिद्ध किया गया है। ये नक्शे उस विस्तृत क्षेत्रको सूचित करते हैं जहाँ इस तरहके अपराध किये गये और इस सूचनासे कार्यके पूर्वनियोजित होनेका सन्देह पैदा होता है।

३०. अध्याय ९ में समिति उपद्रवोंके कारणपर विचार करती है। उसका कहना है कि पंजाबमें आम और विस्तृत उपद्रवोंका मूल जनतामें — विशेषकर बड़े नगरोंके लोगोंमें — सामान्य तौरपर फैले संक्षोभ और असन्तोषको समझना चाहिए। हालके वर्षों-में होमरूल आन्दोलनने राजनीतिक आन्दोलनोंमें जो रुचि बढ़ा दी थी, उसे आत्मनिर्णयके नये सिद्धान्तसे बड़ा बल मिला। इस बीच युद्धके चरम सीमापर पहुँच जानेके कारण भारत सुरक्षा अधिनियम (डिफेंस ऑफ इंडिया ऐक्ट) के अन्तर्गत लगाये गये प्रतिबन्ध और भी जरूरी होते जा रहे थे। इन प्रतिबन्धोंने यूरोपकी अपेक्षा भारतके सामान्य नागरिकके दैनिक जीवनपर कम प्रभाव डाला; किन्तु राजनीतिक आन्दोलनपर इनका लगाया जाना जरूरी होनेपर भी विशेषकर शिक्षितवर्गके लिए ये इस दृष्टिसे क्षोभकारक सिद्ध हुए कि उस समय भारतका राजनीतिक भविष्य विचाराधीन था। इस बीच साम्राज्य द्वारा फौजमें रंगरूट-भरतीके लिये की गई माँगको पंजाब अपने हिस्सेसे भी ज्यादा पूरी कर रहा था। यह मुख्यरूपसे देहाती जिलोंसे हो रही थी। इसलिए स्थानीय सरकार उन्हें सरकार विरोधी ऐसे किसी भी आन्दोलनसे बचाना जरूरी समझती थी जिससे भरतीके काममें बाधा पड़नेकी सम्भावना हो। नवम्बर १९१८ में युद्ध-विराम हो जानेपर शिक्षित वर्गमें बहुत आशा बढ़ी कि युद्धमें भारत द्वारा की गई सेवाओंको तुरन्त मान्यता दी जायेगी। परन्तु ये आशाएँ तुरन्त पूरी नहीं की गईं और महँगाई, गरीबी, खाद्य पदार्थ सम्बन्धी प्रतिबन्ध और शान्ति-समझौतेसे उत्पन्न चिन्ताएँ — विशेषकर उसका टर्कीपर जो प्रभाव पड़ा — इन सब परिस्थितियोंने मिलकर निराशा उत्पन्न कर दी।

इसके वाद समिति रौलट विधेयकके विरुद्ध चलाये गये आन्दोलनपर विचार करती है। उसका विचार है कि यह आंदोलन चाहे मुख्य रूपमें न सही किन्तु वहुत हदतक सरकारके विरुद्ध उस भावनाको जगानेके लिए जिम्मेदार था जिसके कारण इतने गम्भीर उपद्रव भड़के। उसने विधेयककी व्यवस्थाओंसे सम्वन्धित ऐसी अनेक झूठी अफवाहोंको उद्धृत किया है जिन्होंने जनभावनाको भड़काया। इसके वाद समितिने २४ फरवरीको श्री गांधी द्वारा प्रारम्भ किये गये सत्याग्रह आन्दोलनके इतिहास और उसकी प्रगतिपर प्रकाश डाला है। इस आन्दोलनके सभी पहलुओंपर सावधानीसे विचार करनेपर समितिको लगता है कि इससे वहुतसे लोगोंमें कानून-उल्लंघनके प्रति सहानुभूति और आकर्षण पैदा हुआ है और कानून पालन करनेवाली सहज प्रवृत्तियाँ, जो समाजको हिंसक उपद्रवोंसे दूर रखती हैं, ऐसे समय जब कि उनकी पूरी शक्तिकी आवश्यकता थी, दव गईं। भारतमें नरम विचारोंवाले प्रमुख नेताओंने प्रारम्भसे ही सत्याग्रह आन्दोलनकी इसलिए निन्दा की कि इससे व्यवस्था और शान्तिभंग होनेकी सम्भावना थी और वादमें इसके संघटनकर्त्ताने स्वयं स्वीकार किया कि जनान्दोलनको प्रारम्भ करते समय उन्होंने दुष्प्रवृत्तियोंकी गम्भीरताको कम आँका था। समितिका स्पष्ट निर्णय है कि पंजावमें भरती-अभियान तथा युद्ध-ऋणके लिए चन्दा उगाहनेकी कार्रवाईसे अशान्ति नहीं फैली। वह यह कहकर अपना वक्तव्य समाप्त करती है कि पंजावमें होनेवाले विस्फोटोंका कारण भारतमें ब्रिटिश सरकारका तख्ता वलपूर्वक पलट देनेका पूर्व नियोजित षड्यन्त्र था, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु सरकारके लिए विस्फोटको एक निश्चित संगठनका परिणाम न मानना कठिन और सम्भवतः असुरक्षापूर्ण होता। ब्रिटिश सरकारका तख्ता पलटनेके लिए वनाई गई गहरी नींववाली योजनाके विद्यमान होनेके अतिरिक्त यह वात भी है कि इस आन्दोलनकी शुरुआत दंगोंसे हुई, इन दंगोंने वगावतका रूप ले लिया और सम्भव था कि यह शीघ्र ही वढ़कर क्रान्तिमें परिवर्तन हो जाते।

३१. अपनी रिपोर्टके परिचयात्मक अध्यायमें अल्पमत कहता है कि उपद्रवोंके कारणोंके सम्वन्धमें वह वहुमतके निष्कर्षोंसे काफी हदतक सहमत है। वहुमतके सिर्फ इस निष्कर्षसे वह सहमत नहीं कि पंजावके अधिकारियोंका ऐसा मानना उचित था कि विस्फोट एक निश्चित संगठनके परिणामस्वरूप हुआ। वह इस कथनसे सहमत होनेमें असमर्थ है कि दंगे वगावतकी तरहके थे और ये घटनाएँ वढ़कर क्रान्तिमें परिवर्तित हो सकती थीं। सत्याग्रहका आन्दोलन और उसकी प्रशाखा — कानूनोंकी सविनय अवज्ञा — का वहुमतने जो मूल्यांकन किया है उससे वह पूरी तरह सहमत है। वह उपद्रवोंके वास्तविक स्वरूपपर, जिसमें उनके कारण भी शामिल हैं, अपनी रिपोर्टके दूसरे अध्यायमें विस्तारसे विचार करता है। यहाँपर वह १९१९के प्रारम्भमें जो परिस्थितियाँ विद्यमान थीं, युद्ध प्रयत्नोंसे भारतपर जो भार पड़ा था, महँगाईकी जो कठिनाइयाँ थीं, युद्धके कारण उत्पन्न जो असुविधाएँ और लगाए गए प्रतिवन्ध, युद्ध-विरामसे दुःख-निवारणकी जो उम्मीद जागी थी, और वादमें अकाल व महामारीसे जो निराशा पैदा हुई थी, पहलेसे अधिक सख्त आयकर अधिनियम, यह विश्वास कि सुधार योजनाके सम्वन्धमें भारत

सरकारके सुझाव अनुदार थे और उनका उद्देश्य उन्हें निरर्थक बना देनेका था, तथा टर्की-सन्धिमें जो देर हो रही थी इन सबका उल्लेख करता है। उसका तर्क है कि उपर्युक्त कारणोंमें से कईने पंजाबपर अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक असर डाला। वह अन्य विशेष कारणोंका भी उल्लेख करता है। उदाहरणके लिए जैसे युद्धसे ऊब, खाद्य पदार्थों तथा यातायातके प्रतिबन्ध, सर माइकेल ओ'डायरके भाषण, समाचारपत्रोंपर प्रतिबन्ध, बाहरके राजनीतिज्ञोंका प्रान्तमें प्रवेश निषिद्ध करनेवाले आदेश, ये सभी शिक्षित वर्गमें सामान्यतया क्षोभ पैदा करनेवाले थ। रौलट अधिनियमके गुण-दोषकी चर्चासे बचते हुए भी उसका विचार था कि भारतीय विरोधके बावजूद इसे प्रस्तुत करना और अधिनियम बनाना असन्तोषका जबरदस्त कारण था। यह असन्तोष अधिनियमके गलत ढंगसे प्रस्तुत किये जानेके कारण पंजाबमें और भी बढ़ा। वह इस बातको जोर देकर कहता है कि अधिनियमको गलत ढंगसे प्रस्तुत करनेके लिए भारतीय नेता उत्तरदायी नहीं थे। अल्पमत साथ ही सरकारकी निन्दा करता है कि वह ६ अप्रैलकी हड़ताल होनेतक अधिनियमके बारेमें आम जनताको समझानेमें असफल रही, बावजूद इसके कि उसे उस तारीखके पहलेसे ही गलत ढंगसे प्रस्तुत किया जा रहा था। बहुमतने सत्याग्रह आन्दोलनका जो मूल्यांकन किया है, उसे वह स्वीकार करता है, परन्तु वह इस मतको स्वीकार नहीं करता कि पंजाबके उपद्रवोंका कारण प्रान्तमें काम कर रहे संगठनों द्वारा सत्याग्रह सिद्धान्तका सक्रिय प्रस्तुतीकरण हो सकता है। उसका विचार है कि कोई संगठन ऐसा नहीं था जो उपद्रव कराता और अपने इस निष्कर्षकी पुष्टिके लिए वह विभिन्न सरकारी गवाहोंके बयान उद्धृत करता है। उसकी रायमें उपद्रव ब्रिटिश विरोधी और सरकार विरोधी भीड़में अचानक उत्पन्न पागलपनके परिणाम थे। इस तरह अल्पमतका निष्कर्ष है कि यद्यपि पंजाबमें किसी संगठित षड्यन्त्रका प्रमाण नहीं मिलता, फिर भी सैनिक और असैनिक अधिकारियोंने स्वयं ऐसी धारणा बना ली कि यह तो खुला विद्रोह है और उसीके अनुसार कार्यवाही की।

३२. भारत सरकार उपद्रवोंके कारणके सम्बन्धमें समितिके निष्कर्षको स्वीकार करती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस विषयपर अल्पमत काफी हदतक बहुमतसे सहमत है। जिन कारणोंकी अल्पमतने विशेष रूपसे चर्चा की है वह मानता है कि उनमें से महामारियाँ और नया आयकर अधिनियम अशान्तिके कारण थे, और व्यापारी वर्गकी आन्दोलनके प्रति जितनी सहानुभूति थी, हो सकता है कि उसका कारण आंशिक रूपसे आयकर अधिनियम रहा हो। सुधार प्रस्तावोंपर भारत सरकारके विचार प्रस्तुत करनेवाले खरीतोंको उपद्रवोंके काफी समय बादतक प्रकाशित नहीं किया गया और यदि, जैसा कि अल्पमतने कहा है, सरकारका अनुमानित रुख अशान्तिका कारण बना; किन्तु ऐसा अवश्यमेव उसे जान-बूझकर गलत ढंगसे प्रस्तुत करनेके कारण हुआ होगा। इसके अलावा जहाँतक हम जानते हैं, उपद्रवोंके वास्तविक रूपसे शुरू होनेके पहले न तो समाचारपत्रोंमें और न सार्वजनिक मंचोंपर ही इस प्रकारके आरोप लगाये गये थे। अल्पमतका कहना है कि विस्फोटोंसे पूर्व पंजाबमें फैली अशान्तिका एक कारण शिक्षित वर्गके प्रति सर माइकेल ओ'डायरका रुख था और उक्त वर्ग यह आरोप भी

लगाता है कि इसीसे उनमें नाराजगी पैदा हुई। युद्धके दौरान बड़े जमींदारों और प्रमुख व्यक्तियोंने ग्रामीण क्षेत्रोंमें रंगरूटोंकी अधिक भरतीके लिए जो प्रयत्न किये थे उनसे इन्हें प्रमुखता मिल गई और इन्हें स्थानीय सरकारसे वहुत सम्मान मिलने लगा। इससे तथा अन्य कारणोंसे ग्रामीण वर्गों और व्यापारी तथा पेशेवर वर्गोंके वीच फूट डालनेवाली प्रवृत्ति जाग गई। इन्हीं व्यापारी तथा पेशेवर वर्गोंसे वुद्धिजीवी वर्गकी निष्पत्ति है। इसलिए सम्भवतः इस द्वितीय वर्गमें ऐसा भाव पैदा हो गया हो कि उसका राजनीतिक प्रभाव कम किया जा रहा है। भारत सरकार समितिसे सहमत है कि रौलट अधिनियमको गलत ढंगसे प्रस्तुत करना उपद्रवोंका मुख्य कारण था। अधिनियम इस प्रकार गलत ढंगसे सव जगह खुलकर प्रस्तुत किया गया। इसका जो हानिप्रद असर हुआ उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। सरकार अप्रैलके प्रारम्भतक असत्यके इस प्रचारसे अनभिज्ञ थी। इसके वाद उसने असत्यका खण्डन करनेके लिए तुरन्त कार्रवाई की। दुर्भाग्यकी वात है कि जिन्होंने अधिनियमपर आक्रमण किया था उन्होंने इस गलत प्रस्तुतीकरणका प्रभाव मिटानेके लिए न तो समाचारपत्रोंमें प्रयत्न किया और न सार्वजनिक मंचपर ही। जैसा कि अल्पमतका कहना है कि पंजावके उपद्रवोंका कारण प्रान्तमें सत्याग्रह सिद्धान्तको सक्रिय रूपमें सामने लाना नहीं था, यह चाहे सही हो या गलत हम अपना यह विश्वास अवश्यमेव लिख देना चाहते हैं कि जो लोग सत्याग्रह आन्दोलनमें शरीक हुए, उनमें से वहुतसे तो इस इरादेसे शरीक हुए कि इसके जरिये उपद्रवोंको भड़काया जाये। अन्तमें हम यह कहना चाहते हैं कि उपद्रवोंके स्वरूपके सम्वन्धमें अल्पमतकी राय तथ्योंके उन निष्कर्षोंसे जो उसने स्वयं निकाले हैं, प्रभावहीन हो जाती है, जव कि वहुमतका यह निष्कर्ष कि वह आन्दोलन दंगोंसे शुरू होकर विद्रोह वन गया, सम्राट्के विरुद्ध युद्ध छेड़नेके अपराधमें लोगोंपर विभिन्न अदालतोंमें जो वहुत-से अभियोग चलाये गये उनमें दी गई सजाओंसे पुष्ट होता है। भारत सरकारकी रायमें ये मुकदमे उपद्रवोंके सही स्वरूपका निर्णय करनेमें वहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

सचाई जो-कुछ भी हो, उन कारणोंके सम्वन्धमें जिनसे ये उपद्रव प्रारम्भ हुए और इनके विस्फोटका स्वरूप और प्रभाव जितना गम्भीर था उसके सम्वन्धमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कुल मिलाकर भारतकी राजनिष्ठा अविचलित रही और पंजावमें भी जनताके अधिकतम भागने अपना यश अक्षुण्ण रखा। वह उस छूतकी वीमारीका शिकार नहीं वना जिसने उसके एक अंशपर भयानक रूपसे कब्जा जमा लिया था।

३३. उपद्रवोंके कारणोंपर विचार करते समय एक मुद्दा सामने आता है जिसपर भारत सरकार विस्तारसे लिखना चाहती है। यह कहा गया है कि भारत सरकारने श्री गांधी, डा० किचलू तथा डा० सत्यपाल-जैसे प्रमुख राजनीतिज्ञोंके विरुद्ध जो कार्रवाई की उसके कारण ये उपद्रव हुए; उनका साथ-साथ होना केवल संयोग नहीं है। यह वात पहले वताये गये इस तथ्यसे काफी हदतक गलत सावित हो चुकी है कि इस प्रकारकी कोई कार्रवाई करनेके काफी पहले सत्याग्रह आन्दोलनसे दिल्लीमें गम्भीर

उपद्रव हो चुके थे। परन्तु जिन परिस्थितियोंमें श्री गांधीको दिल्ली और पंजाबसे बाहर किया गया उनकी पूरी तरह जाँच करनेकी आवश्यकता है।

प्रायः मार्चके अन्तकी स्थितिका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। ३० मार्चको हुए उपद्रवोंके बाद कुछ दिनोंतक दिल्लीमें तनावकी जो तीव्र स्थिति रही उसने भारतके अन्य भागोंमें, जहाँ दिल्लीके दंगोंके समाचारसे काफी उत्तेजना फैल गई थी, सत्याग्रह आन्दोलनके खतरेकी सम्भावनाओंको अत्यधिक बढ़ा दिया। वस्तुतः उस दिनकी घटना-ओंने शायद आन्दोलनके प्रवर्तकोंको उन खतरोंकी जो उनके प्रचारके साथ मौजूद थे, भली-भाँति चेतावनी दे दी होगी। परन्तु वास्तविक रूपमें परिस्थिति जैसीकी तैसी बनी रही। बढ़ती हुई उत्तेजनाके साथ आन्दोलन बिना रोक-टोक सारे देशमें फैलता रहा।

इसी नाजुक समयमें हमें सूचना मिली कि श्री गांधीने कानूनोंके विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिरसे तेजीके साथ शुरू कर दिया है और ९ तारीखको हमने सुना कि वे कल शामको बम्बईसे दिल्लीके लिए रवाना हो गये हैं। यह समाचार पाते ही हमने तुरन्त पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर और दिल्लीके मुख्य आयुक्त (चीफ कमिश्नर)से सलाह की। इन दोनों अधिकारियोंने सोचा कि स्थिति गम्भीर हो चुकी है; इसलिए श्री गांधीको अपने अधिकार-क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना अत्यन्त खतरनाक होगा। वे निश्चित रूपसे वहाँ जाकर देशका कानून तोड़कर सत्याग्रह आन्दोलनके लिए अनु-यायियोंको जुटाना चाहते थे। पंजाबमें उन्हें गिरफ्तार करना और उनपर मुक़दमा चलाना सभी तरहसे विस्फोटका कारण बनता और उस प्रान्तमें आन्दोलनमें बड़ी संख्या-में उनके अनुयायियोंके भरती होनेसे प्रायः निश्चित था कि तुरन्त सक्रिय प्रतिरोध होता और उपद्रव होते। मुख्य आयुक्तने सोचा कि श्री गांधीका दिल्लीमें केवल प्रवेश रोकनेका आदेश बहुत खतरनाक होगा, क्योंकि उसे लागू करनेका एकमात्र तरीका उन्हें दिल्ली-प्रवेशपर कैद करना, रोकना और उस शहरमें अभियोग चलाना होगा। दूसरी तरफ, यदि उन्हें दिल्लीमें प्रवेश करनेकी अनुमति दे दी गई तो बहुत सम्भव है कि वहाँ वे कानून तोड़ें और तब उन्हें गिरफ्तार करके उस अपराधके लिए उनपर मुकदमा चलाना पड़े। परिणाम प्रायः निश्चत है कि हालके गम्भीर दंगोंकी पुनरावृत्ति होगी। इन परि-स्थितियोंमें भारत सरकारने पंजाब और दिल्लीकी स्थानीय सरकारोंको अधिकार दिया कि वे यह निर्देश देते हुए कि श्री गांधी बम्बई महाप्रान्तमें ही रहें, भारत रक्षा नियमोंमें नियम ३ (ख)के अन्तर्गत आदेश निकालें। भारत सरकारने उस समय सोचा और अब भी सोचती है कि श्री गांधी सरकारको ठप्प करनेके लिए चलाये गये आन्दोलनके प्रमुख संचालक थे, अतः इस तथ्यको दृष्टिमें रखते हुए यह मार्ग अपनाना बिलकुल सही था।

३४. इसी प्रकार यह भी इंगित किया गया है कि पंजाब सरकारने १० अप्रैल-को डाक्टर किचलू और डा० सत्यपालके निर्वासनका जो आदेश दिया वह एक भड़-कानेवाली कार्रवाई थी। इसीके कारण बादके उपद्रव हुए। उन्हें पहले ही आदेश जारी कर दिये गये थे कि वे सार्वजनिक भाषण न दें, और यह सच है कि उन्होंने ६ अप्रैलकी हड़तालसे तुरन्त पूर्व होनेवाली सभाओंमें खुले रूपसे हिस्सा नहीं लिया था।

478

परन्तु जैसा कि बादमें फौजी कानून आयोगके सामने ली गई गवाहियोंसे जाहिर होता है, उन्होंने उस तारीखके बाद गुप्त सभाएँ कीं और फौजदारी षड्यन्त्रके ढंगका आन्दोलन चलाना जारी रखा। इन्हीं परिस्थितियोंमें स्थानीय सरकारने उन्हें अमृतसरसे धर्मशाला हटा देनेका फैसला किया। यह बात सचमुच सही है कि जैसे ही निर्वासनका समाचार मिला, विस्फोट शुरू हो गये। परन्तु जब व्यापक रूपसे अत्यधिक उत्तेजना फैली हो उस समय यह निर्णय करना हमेशा ही कठिन होता है कि इस प्रकारके उठाये गये निवारक कदम आम वातावरणको शान्त करेंगे या उपद्रवोंको और भी प्रोत्साहित करेंगे। सम्भावना ऐसी ही थी कि उनसे पहला परिणाम उपलब्ध होगा।

३५. रिपोर्टके दसवें अध्यायमें उन तथ्योंका विवरण है जो कि फौजी कानूनको लागू करनेकी क्रमिक अवस्थाओंसे सम्बन्ध रखते हैं। ग्यारहवें अध्यायमें फौजी कानून लागू करने और जारी रखनेके औचित्यपर चर्चा की गई है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, समितिका बहुमत निश्चित रूपसे यह मानता है कि सरकारके विरुद्ध बगावतकी स्थिति मौजूद थी। वह विभिन्न घटनाओंपर विचार करता है; उपद्रवोंके विस्तृत स्वरूप, इक्का-दुक्का घटनाओंकी आलोचना करनेके खतरों तथा उनके महत्त्वकी ओर इंगित करते हुए उस समूची स्थितिकी जाँच करता है जो उस समय पंजाब सरकार और भारत सरकारके सामने थी। अन्तमें वह कहता है कि पंजाबमें स्थिति अत्यन्त गम्भीर थी और जिन क्षेत्रोंमें गम्भीर स्थिति बताई गई थी वहाँ फौजी कानून घोषित करके अधिकारियोंने उचित ही किया।

फौजी कानून जारी रखनेकी बुद्धिमत्तापर थोड़ी बहुत चर्चा की गई है और अफगान युद्धके विशेष सन्दर्भमें रेलवेपर उसे देरतक जारी रखनेकी जाँच की गई है। बहुमतका निष्कर्ष है कि फौजी कानून जारी रखनेके लिए जो जिम्मेदार थे उन्होंने उस प्रश्नपर सावधानीसे भली-भाँति सोच-विचार करनेके बाद निर्णय किया था और उसके अनुसार प्रान्तमें व्यवस्था पुनः स्थापित करने और कायम रखनेके लिए जितने समयतक उसकी आवश्यकता थी उससे अधिक समयतक उसे जारी नहीं रखा। सरकारके सामने जो जटिल समस्या थी, उसे देखते हुए समिति यह उचित नहीं समझती कि उस निर्णयकी विपरीत आलोचना की जाये। फौजी कानून लागू करने और जारी रखनेके प्रश्नपर अल्पमतका बहुमतसे बहुत अधिक मतभेद है। उसका विचार है कि फौजी कानून लागू करना जरूरी नहीं था, क्योंकि उसकी रायमें हर जगह व्यवस्था कायम कर दी गई थी और फौजी कानून लागू करनेसे पहले सरकारकी सत्ता पुनः प्रतिष्ठित हो चुकी थी। उसका विचार है कि असैनिक सत्ता द्वारा सेनाकी सहायतासे व्यवस्था पुनः कायम की जा सकती थी, किन्तु पंजाब सरकारने बिना विचारे स्वयं यह तय कर लिया कि फौजी कानून जरूरी है। अल्पमतने फौजी कानून जारी रखनेके तर्कोंकी भी जाँच की और उन्हें अस्वीकार कर दिया है। उसका कहना है कि मान लिया जाये, फौजी कानून लागू करना जरूरी था, फिर भी उसे कुछ ही दिन जारी रखना चाहिए था। उसका विचार है कि पंजाब सरकारने गलत ढंगसे प्रश्नको हाथमें लिया और भारत सरकारका मार्गदर्शन स्थानीय सरकारने ही किया।

३६. फौजी कानून घोषित करनेकी जरूरतपर विचार करते समय भारत सरकारके लिए निष्पक्ष विचार करना कठिन था। यह जरूर है कि स्थानीय सरकार द्वारा भेजी गई जानकारीसे हमारा पथप्रदर्शन हुआ। हमें पहले ही कई स्थानोंसे गम्भीर उपद्रवोंकी सूचनाएँ मिल चुकी थीं; और हम इस रायपर कायम हैं कि १३ अप्रैलकी शामको जब हमें बेतारसे निम्नलिखित सूचना मिली तब उस सूचनाको सामने रखते हुए हमने उस समय जो वास्तविक मार्ग अपनाया उसके अतिरिक्त हम और कोई मार्ग नहीं अपना सकते थे। सूचना इस प्रकार थी: "कसूर और अमृतसरके बीचके रेलवे स्टेशन लूट लिये गये हैं। कसूरमें एक ब्रिटिश-सिपाही मार डाला गया है और दो ब्रिटिश-अधिकारी घायल कर दिये गये हैं। सूचना है कि विद्रोहियोंके दल आगे बढ़ रहे हैं — कसूर और तरनतारनके खजानोंपर हमला किया गया है। लाहौर और अमृतसर जिलोंके कुछ भागोंमें खुले विद्रोहकी स्थिति है। लेफ्टिनेंट गवर्नर १६वीं डिवीजनके जनरल कमांडिंग अफसर और उच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीशकी सलाहसे सपरिषद् गवर्नर जनरलसे प्रार्थना करते हैं कि अमृतसर और लाहौर जिलोंमें साधारण फौजदारी अदालतोंको बन्द कर दिया जाये ताकि वहाँ फौजी कानून लागू हो सके और १८०४के खण्ड २२के विनियम १०के अधीन अपराधियोंपर मुकदमे चलानेका निर्देश दिया जाये। यहाँपर खंड ४को भी ध्यानमें रखना होगा। स्थिति नाजुक है। फिरोजपुरसे भेजा जानेवाला सैनिक दस्ता कल तोपोंके साथ सबसे खतरनाक रास्तेसे अमृतसरके लिए कूच आरम्भ करेगा।"

भारत सरकारकी कार्रवाई अब समितिके बहुमतके निष्कर्षोंसे उचित साबित हो चुकी है। बहुमत स्थानीय सरकारको भी सारे दोषोंसे मुक्त करता है। अल्पमत उपद्रवोंकी संख्या, दंगोंमें व्यस्त लोगोंकी कटुता, प्रयुक्त हिंसा और कितनी बार गोली चलानेकी जरूरत पड़ी उससे सम्बन्धित तथ्योंके निष्कर्षोंको स्वीकार करता है। वह यह भी कहता है कि जिन लोगोंने उपद्रवोंमें हिस्सा लिया उनमें से कुछके काम कानूनकी निगाहमें सम्राट्के खिलाफ युद्ध छेड़नेके माने जा सकते हैं यद्यपि यह बगावतके उस अर्थमें ठीक नहीं है जिसमें साधारणतया उसका उपयोग किया जाता है। भारत सरकारकी रायमें इन निष्कर्षोंसे उसके इस फैसलेका जोर कि फौजी कानून लागू करना जरूरी नहीं था, काफी कम हो जाता है। फौजी कानून जारी करनेके सम्बन्धमें भारत सरकारको बहुमतके निष्कर्षोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना है। उसे केवल इतना और कहना है कि यद्यपि अफगान युद्धके प्रारम्भ होनेके कारण फौजी कानूनको रेलवेपर काफी अर्सेतक कायम रखा गया, फिर भी जिलोंसे उसे हटा लेनेके बाद उसे वहाँ लागू करनेका कारण यह था कि यातायातपर नियन्त्रण रहे और रेलकी पटरियोंकी रक्षा हो।

इसके अलावा अप्रैल १९१९ में जिस प्रकारकी स्थिति थी उसमें एक बात ऐसी थी जिसकी उपेक्षा भारत सरकारकी रायमें सही निर्णयको क्षति पहुँचाये बिना नहीं की जा सकती। उस समय ब्रिटिश साम्राज्य जर्मनीके साथ युद्धमें संलग्न था। यहाँतक कि अभीतक हम सब दुश्मनोंसे सुलहकी दशामें नहीं हैं; और एक साल पहले जब जर्मनीके

साथ की जानेवाली शान्ति-सन्धिपर अभी दस्तखस्त भी नहीं हुए थे तब निश्चित ही युद्धकी स्थिति केवल कहने-भरकी वात नहीं थी। इस बीच अफगानोंके साथ एकाएक युद्ध छिड़नेसे हुई एक नई परेशानीका उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। इससे जो कठिनाइयाँ पैदा हुईं उन्हें सीमान्त जातियोंके रुखने और भी बढ़ा दिया। किन्तु इन स्थानीय कठिनाइयोंके साथ और उनसे होनेवाली परेशानीको बढ़ानेवाली एक चीज और भी थी — यह थी इस परम आवश्यकताकी प्रतीति कि साम्राज्यकी पुकारपर महामहिमके भारतीय राज्यके साधन तुरन्त नियोजित कर सकनेकी हमारी तैयारी कायम रहनी चाहिए। क्योंकि साम्राज्यकी जरूरतें युद्ध-विरामसे कम अवश्य हो गई थीं, परन्तु समाप्त नहीं हुई थीं। इस जरूरतके रहते हुए किसी ऐसी नीतिपर विचार करना असम्भव था जिससे सामान्य स्थिति वापस लाने या इन उपद्रवोंके प्रकोपको पुनः दबानेमें देरीका काफी खतरा हो सकता था जो कि शान्त हो गये-से जान पड़ते थे।

हम यहाँपर यह और कह देना चाहते हैं कि हमारे माननीय सहयोगी श्री शफी हमारे द्वारा स्वीकृत समितिके बहुमतके इस निष्कर्षसे कि फौजी कानूनकी घोषणा जरूरी थी, भिन्न राय रखते हैं। उनकी रायमें इन उपद्रवोंके पीछे ब्रिटिश शासनको पलटनेका पहलेसे नियोजित या सुचिन्तित कोई षड्यन्त्र नहीं था, सम्बद्ध पाँच जिलोंका विस्तृत ग्रामीण क्षेत्र शान्त और राजनिष्ठ बना रहा, उपद्रव केवल शहरी क्षेत्रोंमें कुछ जगहोंमें हुए और इन जगहोंमें भी वहाँके अधिकांश निवासियोंने उपद्रवोंमें कोई हिस्सा नहीं लिया, इसलिए जैसा कि आरोप लगाया गया है, खुला विद्रोह नहीं हुआ और ऐसी स्थितिमें फौजी कानून घोषित करना न्यायसंगत नहीं था। इसके अलावा इन जिलोंमें जिस तारीखको फौजी कानून वस्तुतः लागू किया गया उससे पहले ही फौजी मददसे उपद्रव शान्त किये जा चुके थे और इसके परिणामस्वरूप इन दिनों तथा इनके बाद फौजी कानून लागू करने और जारी रखनेकी कोई जरूरत नहीं थी। मामला इस प्रकार होनेके कारण श्री शफीकी राय है कि इतने लम्बे समयतक फौजी कानूनका जारी रखना अनावश्यक था।

३७. अध्याय १२ में फौजी कानूनके प्रशासन, जिसमें समरी अदालतोंकी कार्य-प्रणाली भी शामिल है, पर विचार किया गया है। समितिके बहुमतके विचारमें जो यह कहा गया है कि मुकदमे लम्बे, विस्तारसे और सावधानीके साथ किये गये हैं, सही है; और वह फौजी अदालतोंकी जगह भारत रक्षा अधिनियमके अन्तर्गत जिनकी व्यवस्था की गई है वैसी विशेष अदालतोंकी स्थापना करनेकी सराहना करता है। किन्तु उनकी राय है कि यद्यपि गिरफ्तारियाँ साधारण ढंगसे की गईं, फिर भी सम्भव है कि ऐसे मामले हुए हों जिनमें किसी पुलिस अधिकारीने गिरफ्तार किये गये व्यक्तियोंके साथ अनावश्यक सख्ती बरती हो। उसके विचारसे यद्यपि यह बात खेदपूर्ण है कि गिरफ्तार किये गये ऐसे लोगोंकी संख्या, जिनपर अभियोग नहीं चलाया गया, अधिक थी, और उनको नजरबन्द रखनेका समय असाधारण रूपसे लम्बा था, फिर भी कुल मिलाकर उनके साथ दुर्व्यवहार या उनपर अत्याचार नहीं किया गया। उपद्रव इतना अधिक विस्तृत और गम्भीर था कि तत्क्षण बनाई गई किसी भी प्रणालीपर उसका असर पड़ना

अनिवार्य था। फौजी कानूनी अदालतों द्वारा दी गई सजाओंके वारेमें समितिका निष्कर्ष है, कि आम तौरपर लोग उन्हें अनावश्यक रूपसे कठोर मानते थे; परन्तु सरकार द्वारा सजाओंको कम कर देनेसे यह भावना दूर हो गई। उसका कहना है कि छोटे-छोटे अपराधियोंपर गम्भीर अपराधोंका अभियोग नहीं लगाया जाना चाहिए था। उस हालतमें सजाओंमें वहुत कमी करनेकी जरूरत ही न पड़ती। समितिको दुःख है कि डाक्टर किचलू और डा० सत्यपालके जैसे कुछ मामले साधारण अदालतोंमें नहीं चलाये गये। भारत सरकारने इन विचारोंको स्वीकार किया है। पंजावसे वाहरके वकीलकी नियुक्तिका निषेध करनेवाले फौजी आदेशकी अविवेकपूर्ण कहकर आलोचना की गई है और भारत सरकारके इस कामकी प्रशंसा की गई है कि उसने इस आदेशपर मोहर नहीं लगाई।

३८. समिति काफी विस्तारसे पंजावमें फौजी कमांडरों द्वारा जारी किये गये फौजी कानूनके आदेशोंके स्वरूपकी जाँच करती है। वहुमतका निष्कर्ष है कि जारी किये गये कुछ आदेश गैरकानूनी थे और उनसे कोई उद्देश्य भी सिद्ध नहीं हुआ। जनरल डायर द्वारा दिये गये पेटके वल चलनेके आदेश (जिसे लेफ्टिनेंट गवर्नरने मालूम होते ही अस्वीकार कर दिया था) जनरल कैम्बेलके 'सलामी' के आदेश और कर्नल जॉन्सन द्वारा लाहौरके विद्यार्थियोंके लिए जारी किये गये 'हाजरी' के आदेशकी समितिने तीव्र आलोचना की है। भारत सरकार मानती है कि समितिने अपनी नापसन्दगीके साथ जो दृष्टान्त दिये हैं, उनमें उल्लिखित अधिकारियोंका कार्य न्यायसंगत नहीं था और कुछ मामलोंमें अनावश्यक रूपसे लोगोंका अपमान किया गया, जिससे एक दुर्भावना पैदा हुई और उसके कारण प्रशासनको गम्भीर उलझनका सामना करना पड़ा। किलेका अनुशासन (फोर्ट डिसिप्लिन) भंग करनेके अपराधमें छह व्यक्तियोंको — जिनपर कुमारी शेरवुडकी हत्या करनेका सन्देह था — जहाँ उक्त महिलापर हमला हुआ था वहाँ कोड़े लगाये जानेकी तीव्र आलोचना की गई है और भारत सरकार मानती है कि इस मामलेमें की गई कार्रवाई अत्यन्त अनुचित थी। समितिने सार्वजनिक रूपसे कोड़े लगवानेकी सजाओंपर विचार करते समय कहा है कि फौजी कानूनी प्रशासनमें सार्वजनिक रूपसे कोड़े लगानेकी सजा नहीं देनी चाहिए। इसके अलावा उसकी रायमें कोड़े लगानेकी सजाएँ वहुत अधिक लोगोंको दी गईं और यद्यपि यह तरीका फौजी कानून विनियमोंके छोटे-छोटे अतिक्रमणोंके तुरन्त निपटारेके लिए शायद सवसे अधिक प्रभावशाली और सुविधाजनक माना गया है फिर भी क्षेत्र-अधिकारियोंको इस तरहकी सजाएँ देनेके विवेकाधिकारपर नियन्त्रण रखना चाहिए था। किन्तु उसका कहना है कि कोड़े क्रूरतापूर्वक लगानेके कारण वहुतसे व्यक्ति अधमरे हो गये, इस आरोपका कोई आधार नहीं है। भारत सरकार समितिके इन निष्कर्षोंको पूरी तरह स्वीकार करती है। इसके वाद समिति समरी अदालतों द्वारा दी गई कुछ सजाओंका उल्लेख करती है जो कानून-सम्मत नहीं थीं। यद्यपि ये सजाएँ अनुपयुक्त थीं, फिर भी वे सामान्यतया गम्भीर नहीं थीं और इनकी तजवीज वहुधा अधिक कठोर कानूनी दण्डके स्थानपर की गई थी। फिर भी भारत सरकार इस तरहकी अजीव सजाओंको ठीक नहीं मानती और भविष्यमें ऐसी सजाएँ देनेपर रोक लगानेके लिए उसने आवश्यक कदम उठाये हैं।

३९. अल्पमतने फौजी कानूनी प्रशासनकी अधिक कठोर आलोचना की है। पहले जिन आलोचनाओंपर विचार किया जा चुका है, उनके अलावा उसका [अल्पमत] विचार है कि बहुतसे हुक्म केवल दण्ड देनेके उद्देश्यसे जारी किये गये थे। विशेषरूपसे वे उन आदेशोंका हवाला देते हैं जो लाहौरके प्रत्येक हलकेके प्रतिनिधियोंको यह निर्देश देते थे कि वे कमांडिंग अफसरके उस दिनके लिए दिये गये आदेशोंके बारेमें निश्चित रूपसे जाननेके लिए रोजाना उसके सामने उपस्थित हों। कर्फ्यू आर्डर, मूल्योंका नियंत्रण और भारतीयोंसे मोटरें, बिजलीकी रोशनी और पंखोंको छीन लेनेकी भी आलोचना की गई है। हम यह कहनेको तैयार नहीं हैं कि ये सब आदेश अनुचित थे, परन्तु हम मानते हैं कि लाहौरमें फौजी कानूनका प्रशासन कुछ मामलोंमें जरूरतसे ज्यादा सख्त था और उसने अपनी वाजिब सीमाओंका अर्थात् फौजी स्थिति और कानून तथा व्यवस्था कायम रखनेकी अपेक्षाओंका अतिक्रमण किया था। अल्पमत उस आदेशकी भी निन्दा करता है जो मकान-मालिकोंपर यह जिम्मेवारी डालता है कि वे फौजी कानूनके उन नोटिसोंकी रक्षा करें जो उनके मकानोंपर चिपकाये गये हैं। भारत सरकार उन परि-स्थितियोंमें दिये गये इस आदेशको अनुचित कहनेको तैयार नहीं है। अल्पमत इस बातको बहुत ही बुरा बताता है कि फौजी कानूनके कुछ नोटिस फाड़ दिये जानेके कारण सनातन धर्म कालेजके प्राध्यापकों तथा छात्रोंको बन्दी बनाया गया। भारत सरकार मानती है कि यह आदेश उक्त मामलेके सम्बन्धमें जरूरतसे ज्यादा कड़ा था। इसके बाद अल्पमत कुछ अधिकारियोंके आचरणकी आलोचना तथा भर्त्सना करता है, खास तौर पर फौजी कानूनके प्रशासन कालमें कर्नल ओ'ब्रायन, श्री बॉसवर्थ स्मिथ और जैकबने जो अनेक आदेश जारी किये थे उसने उनके लिए इन तीनोंकी आलोचना की है। भारत सरकार मानती है कि इन अधिकारियोंने उक्त अवसरोंपर अवैध और कुछ मामलोंमें अनुचित कार्य किया। यद्यपि इन सब मुद्दोंपर अल्पमतकी रिपोर्टके निष्कर्ष अत्यन्त निश्चयात्मक और कुछ मामलोंमें पूरी तरह न्यायसंगत हैं फिर भी यह याद रखना चाहिए कि फौजी कानून प्रशासनके संचालक अधिकारियोंसे ऐसी अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे असाधारण परिस्थितियोंमें भी उसी सावधानी और विवेकसे काम लें जिनसे साधारण परिस्थितियोंमें काम लेना सम्भव है। व्यवस्था स्थापित हो जानेपर शान्त वातावरणमें इनके कार्योंकी बादको की जानेवाली जाँचके लिए इस प्रकारके मापदण्डका सख्तीसे लागू किया जाना भी सम्भव नहीं है।

४०. अल्पमत फौजी कानूनके अन्तर्गत अदालतोंकी कार्य-प्रणालीपर एक अलग अध्यायमें विचार करता है। उसका लाहौरमें एक अतिरिक्त सहायक आयुक्त द्वारा एक बारातके कुछ लोगोंपर कोड़े लगवानेकी निन्दा करना ठीक है। पंजाब सरकारने सत्ताके इस दुरुपयोगके लिए उत्तरदायी अधिकारीके खिलाफ तुरन्त कार्रवाई की। समरी अदालतोंकी प्रक्रियाको असन्तोषजनक कहकर उसपर चोट की गई है। भारत सरकार नहीं मानती कि जब फौजी कानून लागू किया गया हो, उस समय ऐसी अदालतोंसे उम्मीद की जाये कि वे प्रक्रियाकी वही औपचारिकताएँ निबाहें जो साधा-रणतः निबाही जाती हैं। बहुमतकी अपेक्षा अल्पमतकी रिपोर्ट बहुत संख्यामें लोगोंकी

विना मुकदमा चलाये गिरफ्तारी और रिहाईकी कटुतर आलोचना करती है। भारत सरकारके विचारसे फौजी कानूनकी अवधिमें शान्ति कायम करनेके लिए गिरफ्तारी और थोड़े समयके लिए नजरबन्दी, निवारक उपायके रूपमें न्यायसंगत हैं। इसके अलावा गिरफ्तार लोगोंमें से बहुतोंपर बादमें अभियोग इसलिए नहीं चलाया गया कि यद्यपि सबूत उपलब्ध थे फिर भी उसी प्रकारके अपराधोंके लिए बड़ी संख्यामें लोगोंको सजा देनेके कारण जितना चाहिए था उतना असर हासिल हो ही चुका था। तथापि भारत सरकारकी राय है कि इतने लोगोंको खासकर डाक्टर केदारनाथ, श्री गुरदयाल सिंह, डाक्टर मनोहरलाल और गुरदासपुरके छः वकीलोंको, लम्बे अर्सेतक बन्दी रखना भारी भूल थी। वह परिस्थितिकी कठिनाइयोंको नजरन्दाज नहीं करती; फिर भी इन मामलोंमें की गई कार्रवाईपर अपनी असहमति व्यक्त करनेके लिए वह विवश है।

इस सिलसिलेमें पुलिस तथा अन्य सेवाओंके मातहत अधिकारियोंपर लगाये गये भ्रष्टाचार तथा बन्दियोंके साथ किये गये दुर्व्यवहारके आरोपोंके सम्बन्धमें जिनका कि दूर-दूरतक प्रचार किया गया है, हम मौन नहीं रह सकते। घटनाके काफी समय बाद लगाये गये आरोपोंकी जाँच-पड़तालमें आनेवाली कठिनाइयोंको हम समझते हैं, फिर भी हम जाँच-पड़ताल करने और जिन मामलोंमें निश्चित शिकायतें की गई हैं, और जिनपर अबतक कार्रवाई नहीं की गई है, उनपर मुनासिब कार्रवाई करनेके लिए स्थानीय सरकारोंको निर्देश देंगे।

४१. हम इस बातको स्वीकार करते हैं कि पंजाबमें फौजी कानूनका प्रशासन कुछ विशेष मामलोंमें सत्ताके दुरुपयोग, अनियमितताओं, और अन्यायपूर्ण तथा अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्योंके कारण दूषित हो गया था। इसके अलावा इस बातमें भी हमारी समितिसे एकराय है कि यद्यपि अन्ततोगत्वा [ऐसी परिस्थितिमें] फौजी अधिकारियोंको सर्वोपरि माननेके सिद्धान्तको दृष्टिमें रखना चाहिए, फिर भी व्यावहारिक रूपसे अधिकारियोंको भी ऐसी हिदायतें देते रहना चाहिए जो कर्त्तव्य निभानेमें उनका मार्गदर्शन करें। हमारी रायमें ऐसी हिदायतोंका न होना ही उन बुराइयोंका कारण था जो पंजाबके फौजी कानूनी प्रशासनमें पाई गई हैं। अनुभवहीनता, स्थानीय परिस्थितियोंके ज्ञानका अभाव और असाधारण स्थिति आनेपर मार्गदर्शनका अभाव, इन सबके कारण अधिकांश भूलें हुईं, सत्ताके दुरुपयोगके कारण नहीं। भारत सरकारका विचार है कि यदि भविष्यमें किसी क्षेत्रमें फौजी कानून लागू करना जरूरी हो जाये तो विभिन्न सैनिक अधिकारियोंके परामर्शदाताके रूपमें काम करनेके लिए उच्च असैनिक अधिकारियोंको नियुक्त किया जाना चाहिए। सैनिक अधिकारी अपने असैनिक परामर्शदाताकी राय माननेको मजबूर नहीं होगा; परन्तु यदि वह उस रायके विपरीत फैसला करे तो अपनी जिम्मेदारीपर करे। रिपोर्टके इस अंशसे हमें जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण शिक्षा ग्रहण करनी है वह यह कि भविष्यमें इन भूलों और अनियमितताओंको न दोहराया जाये। हमने तदनुसार हिदायतें जारी करनेका निर्णय किया है। ये हिदायतें इस उद्देश्यकी पूर्ति करेंगी और ऐसे मामलेमें विशेषकर सैनिक अधिकारियोंको साधारण प्रशासनमें, जरूरतसे ज्यादा हस्तक्षेप करनेसे विरत करेंगी।

४२. भारत सरकार फौजी कानूनके अन्तर्गत अदालतोंकी कार्यप्रणालीपर चर्चा समाप्त करनेसे पूर्व, स्थानीय सरकारकी उस कार्रवाईका उल्लेख कर देना चाहती है जो फौजी कानून हटा लिये जाने और व्यवस्था कायम हो जानेपर इन अदालतों द्वारा दी गई सजाओंका असर मिटानेके लिए की गई थी। जून और नवम्बर महीनोंके बीच ६३४ मामलोंमें सजाएँ कम कर दी गईं, ४५ मृत्युदण्ड कारावासमें परिवर्तित कर दिये गये और ४३ व्यक्तियोंको रिहा कर दिया गया। नवम्बरमें समरी अदालतों द्वारा दी गई, उन सजाओंपर जो अभी समाप्त नहीं हुई थीं, पुनर्विचारके लिए उच्च न्यायालयके न्यायाधीशोंकी नियुक्ति की गई। इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा भेजे जानेवाले ऐसे अन्य मामलोंपर भी विचार करनेके लिए न्यायाधीशोंसे कहा गया जिनकी सुनवाई फौजी कानून आयोगमें हो चुकी थी। दिसम्बरमें पुनर्विचार करनेवाले न्यायाधीशोंकी सिफारिशोंके परिणामस्वरूप, समरी अदालतों द्वारा दण्डित ९२ व्यक्ति रिहा कर दिये गये। आगे इसी तरहके और भी कदम उठाये जाते, लेकिन इसी महीनेकी २३को आम-माफीके सन्देश सहित शाही घोषणा प्रकाशित की गई और उसके अन्तर्गत ६५७ बन्दियों पर अनुकम्पा की गई और उन्हें रिहा कर दिया गया। फरवरी तक उपद्रवोंके सिलसिलेमें दण्डित १,७७९ व्यक्तियोंमें से जिनपर उपद्रवोंके सिलसिलेमें अभियोग चलाया गया था, केवल ९६ ऐसे घोर अपराधी ही जेलमें रह गये थे जिन्होंने हिंसाके गम्भीर अपराधोंमें हिस्सा लिया था और तबसे यह संख्या भी घटकर ८८ रह गई है। सारे पंजाबमें लेफ्टिनेंट गवर्नरकी उदारता और सहानुभूतिपूर्ण सिफारिशोंके अनुसार ही राजनीतिक बन्दियोंपर अनुग्रह किया गया। उन्होंने प्रान्तमें शान्तिपूर्ण वातावरण पुनः स्थापित करनेके लिए जो प्रयत्न किये उन्हें भारत सरकारने आभार सहित स्वीकार किया।

४३. अब भारत सरकारके लिए साम्राज्यके उन सैनिक अथवा असैनिक अधिकारियोंके आचरणका उचित मूल्यांकन करना शेष रह जाता है जो इन उपद्रवोंसे प्रभावित क्षेत्रोंमें तैनात किये गये थे। इसके अलावा समितिकी रिपोर्टको अन्तिम रूपसे निपटानेसे पहले सारी स्थितिका विचार करते हुए दो-चार बातें और कह देना भी आवश्यक मालूम पड़ता है। शान्ति और व्यवस्था कायम हो चुकनेके बाद शान्त वातावरणमें उन लोगोंके व्यवहारका उचित मूल्यांकन करना अत्यन्त कठिन है जो गम्भीर संकट-कालका मुकाबला करते समय तदनुसार तुरन्त निर्णय करनेके लिए बाध्य थे। साहस और पहल करनेके गुण उपद्रवकी प्रारम्भिक अवस्थामें अत्यन्त अमूल्य होते हैं; किन्तु बादकी अवस्थामें यदि उनका विवेकके साथ उपयोग न किया जाये तो वे हानिकर भी हो सकते हैं। ऐसे अवसरोंपर इस बातका निर्णय करना कि कब कोई कदम उठाया जाये और कब न उठाया जाये बहुत कठिन होता है। अतः सही मूल्यांकनके लिए इस कठिनाईका ख़याल रखना और सारी परिस्थितिपर सही दृष्टिकोणसे विचार करनेका प्रयत्न जरूरी है।

सौभाग्यकी बात थी कि जब अप्रैल १९१९ में उपद्रव शुरू हुए, पंजाब एक बहुत अनुभवी और साहसी लेफ्टिनेंट गवर्नरके शासनमें था। भारत सरकारका विचार है कि सर माइकेल ओ'डायरने महान् संकटकालमें दृढ़ता और साहससे काम लिया

और काफी हदतक वे ही ऐसे खतरनाक उपद्रवको शान्त करनेके लिए जिम्मेदार थे जिसका शेष भारतपर भी विस्तृत एवं भयानक असर पड़ सकता था।

सारी स्थितिपर विचार करते हुए हम उन सैनिकोंके सराहनीय आचरणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करना चाहते हैं, जिन्हें उपद्रवोंको दवानेके लिए नियुक्त किया गया था। कुछ वैयक्तिक उदाहरणोंको छोड़कर जिनका कि पहले ही जिक्र किया जा चुका है, अधिकारियों और सैनिकों, दोनोंने अत्यन्त गम्भीर परिस्थितियोंमें प्रशंसनीय संयमसे काम लिया है। इसलिए भारत सरकार उनकी उन सेवाओंके लिए जो उन्होंने देशमें उपद्रवोंको दवाने और पुनः शान्ति स्थापित करनेमें की, उनका अत्यन्त आभार मानती है और उनकी प्रशंसा करती है।

उपद्रवग्रस्त क्षेत्रोंमें सिविल प्रशासनके सभी श्रेणियों और पदोंके अधिकारियोंने आमतौरपर आचरण और कर्त्तव्यनिष्ठाका वैसा ही स्तर ऊँचा रखा है जिसकी कि भारत सरकार उनसे आशा रखती थी। न केवल वे लोग धन्यवादके पात्र हैं जिनका कि व्यवस्था पुनः कायम करनेसे सीधा सम्बन्ध था वरन् वे लोग भी जिन्होंने ऐसे उपद्रवके समय भी शान्ति और दृढ़ताके साथ अपना सामान्य कर्त्तव्य निभाकर जनताका विश्वास पुनः स्थापित करनेमें बड़ा काम किया। कुछ अधिकारियोंके नाम जिनकी विशेष प्रशंसा की गई है, पहले ही बताये जा चुके हैं, परन्तु यदि स्थानीय सरकारका विचार है कि और भी ऐसे अधिकारी हैं जिनके आचरण विशेष प्रशंसाके योग्य हैं, तो उनके नाम जल्दीसे-जल्दी हमारे ध्यानमें लाये जाने चाहिए।

गैर-सरकारी लोगोंमें से जिन्होंने उस आन्दोलनको रोकनेका पूरा प्रयत्न किया जो कि उन उपद्रवोंके साथ भयानक रूपसे सम्बद्ध था, या जिन्होंने अपने प्रभावसे और सहायता देकर व्यवस्था पुनः कायम करनेमें अधिकारियोंकी मदद की, भारत सरकार उनका पूरी तरह आभार मानती है और स्थानीय सरकारोंसे कहा जायेगा कि इस तरहकी वैयक्तिक सहायता अस्वीकृत या अपुरस्कृत न रहने पाये।

भारत सरकारको यह देखकर अत्यधिक सन्तोष होता है कि सभी वर्गों और धर्मोंके ऐसे अनेक लोग थे, जिन्होंने क्रुद्ध भीड़के सामने अपनी जान खतरेमें डालकर उपद्रवसे पीड़ित बेगुनाहोंकी मदद की, या उनके प्रति सहानुभूति दिखाई। यहाँपर हम पुनः चाहते हैं कि ऐसे सभी कार्योंको अत्यन्त निश्चित रूपसे स्वीकार किया जाये, या जिन मामलोंमें उचित हो उनमें आर्थिक पुरस्कार दिया जाये।

४४. जिन अधिकारियोंके कार्योंकी सही तौरपर आलोचना या निन्दा की गई है, उनके नाम इस खरीतेमें दिये गये हैं और स्थानीय सरकारोंसे प्रार्थना की जायेगी कि वे इस प्रकारका आवश्यक कदम उठायें जिससे इन मामलोंमें भारत सरकारकी नापसन्दगी जाहिर हो।

जनरल डायरके मामलेका अलगसे उल्लेख करना आवश्यक है। इस अधिकारी द्वारा जलियाँवाला बागमें की गई कार्रवाईपर हमने बहुत सतर्कतासे विचार किया है। हम इस निश्चयपर पहुँचे हैं कि उसका हेतु दूषित नहीं था और वह कठोर किन्तु भ्रान्त कर्तव्य-भावनासे प्रेरित थी। तथ्य अत्यन्त स्पष्ट हैं। जनरल डायरने दुःखद

घटनाके सम्बन्धमें अपनी जवाबदेही कम करने या अपने कार्य या उद्देश्यपर अनुकूल रंग चढ़ानेका कोई प्रयत्न नहीं किया है। उसके आचरणका औचित्य सिद्ध करनेके लिए केवल यही कहा जा सकता है कि उसके सामने तथा उसके अधिकारक्षेत्रमें आनेवाले इलाकेमें जो स्थिति थी उसके अनुसार सैनिक कार्रवाईकी आवश्यकता थी। जनरल डायरके सामने जो परिस्थिति थी उसमें किसी भी अधिकारीको अवश्य ईमानदारी और मुस्तैदीसे काम करना चाहिए परन्तु उसमें मामलेके मुताबिक मानवीय भावना भी होनी चाहिए। हम मानते हैं कि महान् संकटके समय सम्भव है कि अधिकारी अस्थायी तौरपर निर्णयकी अपनी शक्तिका सन्तुलन खो बैठे, इसलिए उतनी छूट इस मामलेमें भी होनी चाहिए। हम यह भी मानते हैं कि जनरल डायरके कार्यका अन्तिम परिणाम चाहे कितना ही घातक क्यों न रहा हो किन्तु उसका फल यह हुआ कि उपद्रवी शक्तियाँ तुरन्त निरुत्साहित हो गईं। हमने अपने उस प्रस्तावको भी नजरअन्दाज नहीं किया है जिसमें हमने उपद्रव दबानेके कष्टसाध्य कर्त्तव्यमें व्यस्त अधिकारियोंको पूरी स्वीकृति और सहायता देनेका वचन दिया था। तथापि इन सभी तथ्योंपर सावधानीके साथ विचार करते हुए हम इसके अलावा और किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते हैं कि जलियाँवाला बागमें जनरल डायरने मामलेके लिए जितनी आवश्यकता थी उससे अधिक तथा जितनी कोई भी समझदार व्यक्ति करना जरूरी समझ सकता था उससे भी अधिक कार्रवाई की। और उन्होंने उतनी भी मानवीय भावना नहीं दिखाई जितनी की उक्त मामलेमें दिखाई जा सकती थी। हम खेदसहित इस निर्णयपर पहुँचे हैं क्योंकि हम जनरल डायरकी उन विशिष्ट सेवाओंको जो उन्होंने सैनिककी हैसियतसे की हैं या उस राहतको जो उन्होंने हालके अफगान युद्धमें थाल स्थित सैन्य दलको बड़ी बहादुरीके साथ पहुँचाई थी, भूल नहीं सकते। फिर भी हमें निर्देश देना होगा कि उपर्युक्त निर्णय परमश्रेष्ठ प्रधान सेनापतिको भेज दिया जाये और उनसे प्रार्थना की जाये कि वे उक्त मामलेमें मुनासिब कार्रवाई करें।

४५. हमने पीछे कई बार यूरोपीयों तथा भारतीयोंकी उपद्रवोंमें हुई प्राणहानिके प्रति बहुत खेद व्यक्त किया है और जो इन दुःखद घटनाओंके शिकार हुए हैं उनके शोक-संतप्त कुटुम्बियोंके प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। हम एक बार फिर उन सबके प्रति जिन्हें इस प्रकार कष्ट उठाना पड़ा है, खेद और सहानुभूति व्यक्त करना चाहते हैं। उन लोगोंको, जो उसके कानूनन हकदार थे मुआवजा दिया गया है — यद्यपि सही तो यह है कि उनकी हानिकी ठीक पूर्ति तो हो नहीं सकती — और जो सरकारी कर्मचारी इन उपद्रवोंमें मारे गये हैं उनके आश्रितोंके लिए पर्याप्त व्यवस्था या तो कर दी गई है या कर दी जायेगी। पंजाब सरकारसे उन लोगोंके मामलोंपर विचार करनेके लिए भी कहा जायेगा जो अपने भरण-पोषणकर्त्ताओंके जलियाँवाला बागमें मारे जाने या उन्हें स्थायी रूपसे चोट पहुँचनेके कारण संकटमें पड़ गये हैं और यदि ऐसे लोगोंको स्थानीय दान-संगठनोंसे सहायता मिली हो तो जरूरत पड़नेपर उन्हें और सहायता दी जाये।

४६. अब हमने समितिके सभी निष्कर्षोंका सर्वेक्षण कर लिया है। हमारी रायमें अप्रैल १९१९की घटनाओंसे एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिक्षा ग्रहण करना शेष है।

इन उपद्रवोंकी स्मृतिको उस सविनय अवज्ञा आन्दोलनसे पृथक करना असम्भव होगा जो उपद्रवोंका मुख्य तात्कालिक कारण था। जब यह आन्दोलन शुरू किया गया था, तब —यद्यपि विचारशील व्यक्तियोंको यह बात स्पष्ट दिख रही थी, किन्तु—मालूम पड़ता है इसके प्रवर्तकोंको यह बात स्पष्ट दिखाई नहीं दी कि भारत प्रगतिकी जिस मंजिलसे आज गुजर रहा है उसमें (अन्य देशोंमें चाहे जो-कुछ हो) आम जनताको कुछ चुने हुए कानूनोंको तोड़नेकी सलाह देनेका फल यह होगा कि लोग अपना सन्तुलन खो देंगे और तब ऐसी स्थिति भी आ सकती है जिसमें सभी कानून टूट जायें और अव्यवस्था उत्पन्न हो जाये। पिछले वर्षके कटु अनुभवसे अब इस प्रश्नके उत्तरमें सन्देहकी गुंजाइश ही नहीं रहती और जो लोग आगे चलकर, चाहे किसी भी उद्देश्यसे हो, ऐसा आन्दोलन प्रारम्भ करते हैं उन्हें अब यह साफ समझमें आ जाना चाहिए कि जिन ताकतोंको वे अपने नियंत्रणमें नहीं रख सकते उन्हें उभाड़नेका परिणाम क्या होगा। हम केवल आशा ही कर सकते हैं कि यह चीज सदाके लिए सीख ली गई है। ऐसे आन्दोलन छेड़ना जान-बूझकर आगसे खेलनेके समान है और हम आशा करते हैं कि भविष्यमें सही ढंगसे विचार करनेवाले सभी लोग जान-बूझकर ऐसी आगसे खेलनेका दृढ़ताके साथ विरोध करेंगे।

अन्तमें हम यहाँ अपनी यह हार्दिक आशा व्यक्त करना चाहते हैं कि ऐसी घटनाओंसे ग्रहण करने योग्य शिक्षा केवल निषेधात्मक ही नहीं है। उस कालके प्रारम्भसे जिसकी यहाँ जाँच-पड़ताल की गई है भारतमें एक नये युगका प्रारम्भ हुआ है और नये युगके आगमनकी इस घटनाने सम्राट्को वह अनुग्रहपूर्ण घोषणा करनेका अवसर दिया है जिसे भारतमें उनकी समस्त प्रजाने मनसे पसन्द किया है। हम इस अवसरपर इस सन्देशकी मुख्य बातको दुहराते हैं; हमें विश्वास है सम्राट्की यह हार्दिक इच्छा कि उनकी प्रजा और सरकारी अधिकारियोंके बीच कटुताकी भावना बिलकुल समाप्त हो जानी चाहिए सफल होगी—लोग उसपर ध्यान देंगे और उसे पूरा करेंगे।

४७. अन्तमें हम लॉर्ड हंटर तथा उनकी समितिके सदस्योंको धन्यवाद देना चाहते हैं। उन्होंने जाँचका यह कार्य जो प्रारम्भसे ही अत्यन्त कठिन था और जिसके करनेमें प्रशंसाकी कोई आशा नहीं थी, अत्यन्त योग्यता और कठिन परिश्रमसे किया है और ऐसी रिपोर्ट दी है जिसने बहुतसे सन्देह और विवाद दूर किये और हमें उन अनेक मामलोंमें जो निर्णयकी अपेक्षा रखते थे सही निर्णय कर सकनेमें अत्यन्त सहायता दी।

आपके, आदि,
(हस्ताक्षर) चैम्सफोर्ड
सी० सी० मनरो
जी० एस० बार्न्ज
डब्ल्यू० एच० विन्सेंट
एम० शफी
डब्ल्यू० एम० हेली
टी० एच० हॉलैंड
ए० पी० मुड्डीमैन

परिशिष्ट ५

भारत सरकारके खरीतेके उत्तरमें मॉण्टेग्युका पत्र

इंडिया ऑफिस
लन्दन
२६ मई, १९२०

सं० १८८ पब्लिक

सपरिषद् गवर्नर-जनरल महोदयकी सेवामें

महानुभाव,

पिछले वर्षके प्रारम्भमें पंजाब तथा भारतके अन्य भागोंमें हुए उपद्रवोंपर लॉर्ड हंटरकी समितिकी रिपोर्टपर महामहिमकी सरकार विचार कर चुकी है। आपके ३ मईके पत्र और तार द्वारा मुझे भेजे गये उसके मूल पाठके अनुसार आपकी सरकार रिपोर्टकी छान-बीनके बाद जिन निष्कर्षोंपर पहुँची है, महामहिमकी सरकारको मैंने उनकी सूचना भी दे दी है। रिपोर्ट और आपके पत्रमें जिन सब बातोंकी चर्चा है, वह ठीक ही है किन्तु महामहिमकी सरकारने उनका उतने विस्तारसे सर्वेक्षण करना जरूरी नहीं समझा; परन्तु मामलेपर विचार करनेके अनन्तर वह रिपोर्टसे निष्पन्न कुछ अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नोंके सम्बन्धमें निश्चित निष्कर्षोंपर पहुँची है और चाहती है कि मैं आपके पत्रके जवाबमें आपको इन निष्कर्षोंका उनके द्वारा सोच-समझकर स्वीकार किया गया विवरण भेज दूँ। इस पत्रके २ से ८ तकके अनुच्छेदोंमें आप यह विवरण पायेंगे।

२. **सामान्य :**—लॉर्ड हंटरकी समितिकी रिपोर्ट, लम्बे अरसेतक धैर्यपूर्वक की गई जाँच-पड़तालके नतीजे प्रस्तुत करती है। यदि उसके अत्यन्त पूर्ण और सावधानीसे निकाले गये इन निष्कर्षोंका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं किया जाता तो समितिका श्रम व्यर्थ जायेगा। जो निष्कर्ष यहाँ कलमबन्द किये गये हैं वे मुख्यतः इस विश्वाससे प्रेरित हैं कि रिपोर्टका उपयोग करते समय महामहिमकी सरकार तथा भारत सरकारका मुख्य कर्त्तव्य यह ठहराना नहीं है कि जो गलतियाँ हुई हैं उनका दोष किसपर है और न उन्हें दण्डित करना है, बल्कि यह है कि यदि दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियोंके फलस्वरूप भारतमें फिर कभी वैसी ही हालत पैदा हो जाये जैसी कि सन् १९१९की वसन्तमें हो गई थी तो ऐसे दोषारोपण या पश्चात्तापके अवसर कदापि न आने दें।

३. **१३ अप्रैलको अमृतसरमें ब्रिगेडियर जनरल डायरका आचरण :**—१३ अप्रैल १९१९की शामको अमृतसरके जलियाँवाला बागमें हुई घटनाकी मुख्य बातें सुविदित हैं। लॉर्ड हंटरकी रिपोर्टमें उनका विस्तृत वर्णन किया गया है और लिखित तथा

मौखिक दोनों प्रकारके बयानोंमें, जो खुद ब्रिगेडियर जनरल डायरने समितिके सामने दिये और जिनका सम्पूर्ण और अधिकृत पाठ जनताको उपलब्ध नहीं है, उनका विगतवार पूरा विवरण मिल जाता है। तथ्योंके बारेमें कोई सन्देह नहीं है और न कोई विवाद ही है। जरूरत यहाँ केवल इतनी है कि संक्षेपमें उन्हें फिरसे उनके अनलंकृत रूपमें पेश कर दिया जाये। अप्रैल १३की सुबहको ब्रिगेडियर जनरल डायरने जो ११की रातको अमृतसर पहुँच गये थे, एक घोषणा जारी की। घोषणामें दूसरी बातोंके साथ-साथ शहरके अन्दर या बाहर जुलूस बना कर चलनेकी मनाही की गई थी और कहा गया था कि "ऐसा कोई भी जुलूस या चार व्यक्तियोंका एक जगह इकट्ठा होना गैर-कानूनी माना जायेगा और यदि जरूरत हुई तो उसे हथियारोंके बलपर तितर-बितर किया जायेगा।" इस घोषणाको सुनानेके लिए ब्रिगेडियर जनरल डायर सुबह ९ बजेके करीब अपने स्थानसे चले थे, और करीब डेढ़ बजे वापस लौटे थे। उनके नेतृत्वमें जब सेनाकी टुकड़ी सड़कोंसे होकर आगे बढ़ रही थी, उस समय यह घोषणा शहरके कई स्थानोंपर पढ़कर सुनाई गई थी। रामबागमें अपने डेरेपर वापस पहुँचनेसे करीब एक घंटा पूर्व ब्रिगेडियर जनरल यह सुन चुके थे कि उनकी घोषणाके बावजूद शामको साढ़े चार बजे लोग जलियाँवाला बागमें एक विशाल सभा करनेवाले हैं और ४ बजे उन्हें खबर मिली कि लगभग १,००० लोग वहाँपर इकट्ठा हो चुके हैं। शामको चार बजते ही ब्रिगेडियर जनरल डायरने प्रवेशरोधीदलोंके साथ अपने डेरे रामबागसे कूच कर दिया; (वे पहले ही शहरके मुख्य द्वारोंपर प्रवेशरोध करनेका निश्चय कर चुके थे;) उनके साथ दो बख्तरबन्द गाड़ियाँ और राइफलोंसे सज्जित ५० तथा केवल खुखरियोंसे सुसज्जित ४० भारतीय पैदल जवानोंका एक विशेष दल भी था। वे सीधे जलियाँवाला बागको चल पड़े। वे अपने प्रवेशरोधी दलोंको रास्तेमें छोड़ते गये और जलियाँवाला बाग पहुँचकर अपने जवानोंको एक संकरी गलीसे बागमें ले गये और उन्हें तुरन्त प्रवेश-स्थलके दाँयें-बाँयें तैनात कर दिया। गली बहुत संकरी होनेके कारण बख्तरबन्द गाड़ियोंको वे बाहर छोड़ आये थे। जवानोंको तैनात कर देनेके बाद ब्रिगेडियर जनरल डायरने तुरन्त गोली चलानेका हुक्म दे दिया और सामनेकी उस घनी भीड़पर (जिसमें उनके अपने अन्दाजसे कोई ५,००० लोग रहे होंगे) करीब दस मिनटतक लगातार गोलीबार जारी रखा, और यह क्रम गोलियोंका भंडार लगभग समाप्त होनेतक जारी रहा। गोलीबारमें ३०३ मार्क ६वाली गोलियोंके १६५० राउन्ड चलाये गये। परिणामस्वरूप अन्दाज है कि ३७९ व्यक्ति हत हुए, आहतोंकी संख्या ठीक-ठीक निर्धारित नहीं की जा सकी है, परन्तु हंटर समितिका अनुमान है कि वह मृतकोंकी संख्याका तीन गुना रही होगी। गोलीबार बन्द करनेका हुक्म देनेके तुरन्त बाद ब्रिगेडियर जनरल डायरने अपनी फौज वापस रामबाग कूच करवा दी। जनरल स्टाफ (१६वीं भारतीय डिवीजन)को दिये गये लिखित बयानमें, जो बादमें लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने रखा गया, जनरल डायरने देरतक इतना ज्यादा गोलीबार करानेका कारण इस प्रकार बताया है: "जबर्दस्त खतरेकी सम्भावना उत्पन्न होनेपर ही वीरताकी पूरी भावना जागृत हो सकती है। मैंने मामलेपर हर दृष्टिसे विचार किया था और कर्त्तव्य तथा

सैनिकवृत्ति दोनोंने मुझे गोलीवारके लिए प्रेरित किया। और इस विषयमें मेरे मनमें भी द्वन्द्व नहीं था। मैं बराबर यह सोच रहा था कि कल यह भीड़ 'डंडा फौज'[1] का रूप ले लेगी। इसलिए मैंने गोली चलाई और भीड़के तितर-वितर हो जानेतक उसे जारी रखा। मैं समझता हूँ कि आवश्यक नैतिक और व्यापक प्रभाव उत्पन्न करनेके लिए — और अपने कार्यका औचित्य सिद्ध करनेके लिए ऐसा प्रभाव उत्पन्न करना मेरा कर्त्तव्य था — कमसे-कम जितना गोलीवार आवश्यक था उतना ही किया गया। यदि और फौज सुलभ होती तो हताहतोंकी संख्या और भी अधिक होती। उस समय प्रश्न केवल भीड़को तितर-वितर करनेका नहीं था, बल्कि सैनिक दृष्टिसे न केवल उन लोगों-पर, जो मौजूद थे वरन् मुख्यतया समस्त पंजावमें पर्याप्त नैतिक असर पैदा करनेका था। जरूरतसे ज्यादा सख्ती का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।"

असैनिक सत्ताकी मददके लिए जब कभी सैनिक कार्यवाहीकी जरूरत पड़ती है तो सदा महामहिमकी सरकारकी नीति आवश्यकताके अनुसार कमसे-कम शक्तिका प्रयोग करनेके सिद्धान्तसे परिचालित रही है। महामहिमकी सरकारका निश्चय है कि जब भी दुर्भाग्यसे परिस्थितिवश ब्रिटिश साम्राज्यमें असैनिक उपद्रवको सैनिक बलसे दबाना जरूरी हो जाये तो नीतिका मुख्य अंग यही सिद्धान्त रहेगा।

हमें खेदपूर्वक किन्तु निश्चयपूर्वक यह कहना ही पड़ेगा कि जलियाँवाला बागमें ब्रिगेडियर जनरल डायरका कार्य इस सिद्धान्तके सर्वथा प्रतिकूल था। उनके सामने काम इतना ही था कि वे एक बड़ी किन्तु स्पष्ट ही निःशस्त्र सभाको, जो उनके आदेशकी अवज्ञा करके इकट्ठी हो गई थी, यदि जरूरी हो तो बल प्रयोगसे तितर-बितर कर देते। सम्भव है कि अपने अधीन सैनिक बल, भीड़की संख्या और शहरके रहनेवालोंकी सामान्य मनःस्थिति और रुखको देखते हुए, उन्हें थोड़ा गोलीवार करने और कुछको मारे बिना इसमें पूरी सफलता पानेकी सम्भावना दिखाई न दी हो। परन्तु यह निश्चित है कि जितना बल प्रयोग करनेकी आवश्यकता है उसका निश्चय करनेका उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया, और वास्तवमें जो बल प्रयोग उन्होंने किया, वह भीड़को तितर-बितर करनेके लिए जरूरी बलसे बहुत ज्यादा था और उससे नाहक ही लोगोंकी जानें गईं और उन्हें शोचनीय कष्ट हुए। इतना ही नहीं उनकी भूल इससे भी बड़ी थी। सभामें निःसन्देह ऐसे अनेक लोग थे, और उनमें से कई तो आसपासके गाँवोंसे शहरमें आये थे, जो उनकी घोषणा अथवा सभामें शरीक होनेके खतरेसे अनभिज्ञ थे। घोषणा शहरके एक भागमें ही प्रचारित हुई थी और यह भाग सभास्थलसे थोड़ा दूर था। गोली चलानेके पूर्व कोई चेतावनी नहीं दी गई थी। शहरकी हालत, मौसमकी गर्मी और शहरमें आनेके बादसे जनरल डायरकी इस फौजपर पड़नेवाले दबावको ध्यानमें रखते हुए पहले मुद्देपर बहुत जोर देना अनुचित होगा परन्तु गोली चलानेसे पहले चेतावनी न देना अक्षम्य है। इसके सिवा, उन्होंने आहत व्यक्तियोंको डाक्टरी मदद पहुँचानेका भी कोई प्रयत्न नहीं किया — जो स्पष्ट ही कर्त्तव्यकी एक बड़ी त्रुटि थी। परन्तु

१. लाहौरमें उन दिनों दंगाइयोंने अपना यही नाम रखा था।

ब्रिगेडियर जनरल डायरके विरुद्ध जो-कुछ कहा जा सकता है, उसमें सबसे गम्भीर बात तो उनके सामने उपस्थित परिस्थितियोंमें अपने कर्त्तव्यके विषयमें उनकी वह धारणा है जिसे उन्होंने खुद ही अपने बयानमें प्रस्तुत किया है।

उन्होंने जिस सिद्धान्तको अपने कार्यका आधार बनाया महामहिमकी सरकार उसका तीव्रतासे खण्डन करती है। उनके अपने वक्तव्यके अनुसार, यदि उनके पास और फौज होती, और यदि घटनास्थलपर सशस्त्र गाड़ियोंका प्रयोग सम्भव होता तो उनका यह कार्य और भी भयानक रूप धारण कर सकता था। सम्राट्की सरकारने भारतमें सामान्यतया अधिकारियोंके सामने तथा ब्रिगेडियर जनरल डायरके सामने विशेष रूपसे १३ अप्रैलको जो गम्भीर परिस्थिति थी, उसे नजरअन्दाज नहीं किया है और उन परिस्थितियोंमें ब्रिगेडियर जनरल डायरने जिस उत्तरदायित्वका अनुभव किया, उसकी गम्भीरताका भी उसे पूरा खयाल है। सम्राट्की सरकारके विचारसे यूरोपीयोंकी जान तथा ब्रिटिश और भारतीय फौजोंकी सुरक्षाको, समितिकी रिपोर्टसे जितना जाहिर होता है, उससे कहीं ज्यादा खतरा था। तीन दिन पहले अमृतसरमें ही बड़े बर्बर किस्मकी हत्याएँ और आगजनीकी घटनाएँ हो चुकी थीं और शहर लगभग उस समय भी भीड़के हाथोंमें था। चारों ओरके देहातोंसे भी हर घंटे उसी तरहकी घटनाओं और संचार-साधनोंपर हमलोंकी खबरें प्राप्त हो रही थीं और इन खबरोंमें (संचार-साधनोंपर हमलोंमें सफलताके कारण) जो कमी थी उसकी पूर्ति अफवाहोंसे हो रही थी। इन अफवाहोंकी सचाईकी जाँचका उपाय नहीं था और इसी तरह उनपर अविश्वास करनेका भी कारण नहीं था। इस उत्तरदायित्वको अपनी थोड़ी-सी फौजसे निभानेकी चिन्तामें स्वाभाविक था कि ब्रिगेडियर जनरल डायरके मनपर पंजाबकी आम हालतका ध्यान बना रहा। और उन्हें उस हालतको नजरमें रखकर अपनी योजना बनानेका हक था; परन्तु एक ऐसी निःशस्त्र भीड़को इतना जबर्दस्त दण्ड देनेका हक उन्हें नहीं था, जिसने उस समयतक हिंसाका कोई भी कार्य नहीं किया था; और जिसने ताकतसे उनका मुकाबला करनेकी कोई कोशिश नहीं की और जिसमें अनेक लोग इस बाततक से अनभिज्ञ थे कि उनके वहाँ इकट्ठा होनेसे जनरल साहबके आदेशका उल्लंघन हो रहा है।

ब्रिगेडियर जनरल डायरने अप्रैल १३ को जो-कुछ किया उसपर अपना निर्णय देते हुए उनके एक अन्य आदेशपर भी विचार करना जरूरी है। यह आदेश उन्होंने इसके ६ दिन बाद जारी किया था और लोगोंमें उसका नाम 'रेंगनेका आदेश' पड़ गया है। यहाँपर इस आदेशका स्वरूप अथवा जिन परिस्थितियोंमें यह निकाला गया था उन्हें दुहराना अनावश्यक है। यदि इस आदेशका पालन उन लोगोंसे दण्डरूपमें कराया जाता जो वास्तवमें उस अपराधके अपराधी थे, जिसकी दुष्टता और कायरताका भान करानेके लिए उसकी रचना की गई थी तो भी वह उचित न होता किन्तु उसका पालन ऐसे लोगोंसे कराया गया जिनका उस अपराधसे कोई सम्बन्ध नहीं था, और इसमें उद्देश्य यह था कि लोगोंको इस तरह अपमानित करके अमृतसरकी जनताके सामने उसके कुछ सदस्योंके द्वारा किये गये अपराधकी गम्भीरता प्रदर्शित की जाये — यह बात सभ्य शासन-तन्त्रके प्रत्येक नियमके प्रतिकूल है।

किसी विद्रोही देशमें फौजी कानूनपर अमल करनेवाले फौजी कमाण्डरपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है; किन्तु जब उसे ऐसी जनतापर उसका अमल करना पड़ता है जो वफादार है और जो स्वयं भी संरक्षणके लिए उसी सरकारकी ओर देखती है जिसकी सेवा वह कर रहा है, तब उसका यह उत्तरदायित्व अपरिमित रूपसे बढ़ जाता है। यदि सख्त नियम निर्धारित करके कार्य और निर्णयकी उसकी स्वतन्त्रता सीमित कर दी जाये अथवा संकटकाल बीत जानेपर उसने जो किया हो उसकी कड़ी आलोचना की जाये तो जनताकी जिस सुरक्षाको बनाये रखना उसका उत्तरदायित्व है, वह सुरक्षा ही खतरेमें पड़ जायेगी। जो परिस्थिति तत्त्वतः सैनिक है वह उदार दृष्टिकोण और सभी सम्भावनाओंकी समुचित परिकल्पनापर आधारित सैनिक व्यवस्थाकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर ही निपटाई जानी चाहिए। व्यवहारके कुछ ऐसे मापदण्ड हैं, जिनकी उपेक्षा कोई भी सभ्य सरकार नहीं कर सकती और सम्राट्की सरकार उनकी रक्षाके लिए कृतसंकल्प है। व्यवहारके उन मानदण्डोंकी समुचित रक्षा करते हुए फौजी कानूनपर अमल करनेवाला अधिकारी अपने प्राप्त कर्त्तव्यको उस तरीकेसे करनेको स्वतन्त्र होगा और अवश्य होना चाहिए जिसे उसकी निर्णयबुद्धि सर्वाधिक ठीक और प्रभावशाली बताये। और फिर काम पूरा हो चुकनेके बाद वह अपने वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा पूर्ण समर्थनका भरोसा रख सकता है।

ब्रिगेडियर जनरल डायरने उद्देश्यकी ईमानदारी और कर्त्तव्यकी अपनी धारणाके प्रति अडिग लगन दिखाई, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु जिन परिस्थितियोंमें वे थे उनमें महामहिमकी सरकार अपने कमीशन प्राप्त अफसरोंसे जिस कर्त्तव्यकी आशा करती है और जिसके पालनपर उन्हें बाध्य करना चाहती है उससे उनकी अपने कर्त्तव्यकी धारणा इतनी भिन्न है कि उन्हें जिस पद और दर्जेपर वे हैं उसका उत्तरदायित्व सौंपनेके योग्य मानना असम्भव है। आपने मुझे सूचना दी है कि कमांडर-इन-चीफने ब्रिगेडियर जनरल डायरको निर्देश दिया है कि वे ब्रिगेड कमांडरके पदसे इस्तीफा दे दें और उन्हें सूचित किया है कि वे भारतमें किसी पदपर नियुक्त नहीं रह सकेंगे और आपने भी इस निर्देशसे सहमति प्रकट कर दी है। मैं इस निर्णयको सही मानता हूँ। मामलेसे सम्बन्धित तथ्य फौजी परिषद् (आर्मी कौंसिल) के सामने भेज दिये गये हैं।

४. **फौजी कानून घोषित करने और जारी रखनेका औचित्य :**—हंटर समितिने बहुमतसे यह निर्णय किया है कि फौजी कानूनकी घोषणा और पंजाबके जिन जिलोंमें वह लागू किया गया उनमें साधारण अदालतोंका आंशिक रूपसे लोप कर दिया जाना सही था। (अध्याय ११, अंश १७) उसके इस निर्णयपर आपत्ति करनेके कोई कारण नहीं हैं। फौजी कानूनकी अवधि बढ़ा दिये जानेके सम्बन्धमें यह स्पष्ट है कि उसे लागू करनेमें यह तय करनेका उत्तरदायित्व भी निहित है कि कब उसे समाप्त किया जाये। साधारणतया यह स्पष्ट है कि फौजी कानून जितने समयतक सार्वजनिक सुरक्षाके लिए जरूरी हो, उससे ज्यादा समयतक न रहे; परन्तु इसके आगे फिर कोई ठोस कसौटी फैसला करनेके लिए नहीं है; और बादमें हुई घटनाओंके आधारपर टीका

करना ठीक नहीं होगा। फौजी कानून हटानेसे पूर्व प्रकट उपद्रव बन्द हो गये थे, यह सही है किन्तु सम्भव है कि ऐसा फौजी कानूनके कारण हुआ हो और उसको जल्दी हटानेसे शायद पुनः उनका सिलसिला शुरू हो जाता। घटनाओंका सिंहावलोकन करें तो कहा जा सकता है कि उसका और जल्दी हटाया जाना सम्भव था किन्तु यदि जिस तरह कुछ मामलोंमें फौजी कानून अमलमें लाया गया उसकी शिकायतका मौका न मिलता तो महामहिमकी सरकारको इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि इस बातपर जितना जोर दिया गया है उतना न दिया जाता। परन्तु उत्तरदायी अधिकारियोंने जो फैसला किया उसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि भविष्यकी कल्पनापर निर्भर रहनेके सिवा उनके पास कोई अन्य चारा नहीं था।

५. **१९१९ के अध्यादेश ४ का औचित्य जो फौजी कानून आयोगोंको ३० मार्च या उसके बाद किये गये किसी भी अपराधकी जाँचका अधिकार देता था:** — इसमें विवादका मुद्दा इस अध्यादेशकी वैधता नहीं है; वह प्रश्न प्रीवी कौंसिलकी न्याय समितिने हालमें निपटा दिया है। मार्शल लॉको घोषित करनेका तात्कालिक कारण तथा औचित्य यही था कि प्रकट रूपसे किये गये हिंसात्मक कार्योंके अभियुक्तोंको विशेष सैनिक न्यायाधिकरणों और अदालती कार्रवाईके अधिकारक्षेत्रमें लाया जा सके। इस कानूनको पीछेकी तारीखसे लागू करना वैधानिक रूपसे सम्भव था तो फिर ऐसा करनेके औचित्यपर भी सन्देहका कोई संगत कारण कैसे हो सकता है? मूल अध्यादेशके द्वारा जिसने लाहौर और अमृतसर जिलोंमें फौजी कानून आयोग स्थापित किये थे, उन आयोगोंको १३ अप्रैल या उसके बाद किये अपराधोंकी जाँच करनेका अधिकार दिया गया था। यदि यह तारीख अपरिवर्तित रही होती तो ऐसे व्यक्तियोंके खिलाफ, जिनपर १० अप्रैलको अमृतसरमें की गई हत्याओं, आगजनी और सम्पत्ति-विनाशमें सक्रिय रूपसे भाग लेने या १०, ११ व १२ अप्रैलको लाहौरमें दंगोंमें शरीक होने तथा १२ तारीखको कसूरमें की गई हत्याओंमें शामिल होनेका अभियोग लगाया गया था, दायर मुकदमोंकी सुनवाई आयोग नहीं कर सकता था। और यदि भारत सरकारने हाथमें कानूनी ताकत सुलभ रहते हुए भी इस असंगतिको सही करनेकी इस हदतक उपेक्षा की होती तो सामान्य स्थितिको शीघ्र पुनः स्थापित करनेके स्पष्ट और जरूरी कदम उठानेमें उससे चूक हो गई होती। लेकिन जिन लोगोंका अपराध मात्र इतना ही था कि उन्होंने अखबारोंमें अमुक लेख लिखा था या अमुक भाषण दिया — ये लेख और भाषण उपद्रवोंके तात्कालिक और प्रत्यक्ष कारण तो नहीं कहे जा सकते — उनके सम्बन्धमें मुकदमोंकी सुनवाईकी फौजी कानूनवाली पद्धतिका प्रयोग करनेके लिए इस अध्यादेश द्वारा दी गई सत्ताका उपयोग भिन्न प्रकारका है। हंटर समितिके अधिकांश सदस्योंने इस नीतिको 'दुर्भाग्यपूर्ण' और 'अदूरदर्शितापूर्ण' कहा है, उनकी यह आलोचना अतिरंजित नहीं है।

१९१९ के अध्यादेश ४ के अन्तर्गत किये गये कामोंको, जिन्हें स्वीकार करना असम्भव है, देखते हुए महामहिमकी सरकार इस सम्बन्धमें जरा भी सन्देह नहीं कर सकती कि स्वयं अध्यादेशका दायरा आवश्यकतासे अधिक विस्तृत था और भविष्यमें

जब ऐसा ही कोई अध्यादेश जरूरी हो तो उसे तैयार करनेमें उसके अमलकी उचित सीमा निर्दिष्ट करनेका ध्यान रखना जरूरी था।

६. फौजी कानूनका अमल :—एक सवाल है जिसके बारेमें इस निष्कर्षपर न पहुँचना कठिन है कि लॉर्ड हंटरकी समितिके अधिकांश लोग अपनी बात ऐसे शब्दोंमें कहनेमें असफल रहे हैं जिनका कहा जाना, दुर्भाग्यसे तथ्योंको देखते हुए औचित्यपूर्ण ही नहीं वरन् आवश्यक है। अपनी रिपोर्टके अध्याय १२ के अंश १६–२५में अधिकांश सदस्योंने साधारणतया उस 'उग्र' रूपके सम्बन्धमें जिसे फौजी कानूनने अख्तियार कर लिया था और अनुचित कठोरताके कुछ विशेष उदाहरणों और बेजा सजाओं या हुक्मोंपर विचार प्रकट किये हैं। समितिने जिन उदाहरणोंको अपनी दोनों रिपोर्टोंमें विस्तारके साथ गिनाया है न तो उनका फिरसे जिक्र करना आवश्यक है, और न दण्ड देनेके खयालसे उन अलग-अलग अधिकारियोंकी, जो इन आदेशोंके लिए उत्तरदायी थे, परन्तु अन्य प्रकारसे जिनका आचरण शायद निष्कलंक और सराहनीय तक रहा हो, सदोषता निर्धारित करनेका प्रयत्न करनेसे कोई लाभ निकलेगा। परन्तु सम्राट्की सरकार इन आदेशों और सजाओंके बारेमें अपनी तीव्र असहमति व्यक्त करती है और मुझसे यह काम आपपर छोड़ देनेके लिए कहा गया है कि जो अधिकारी उन बेजा हरकतोंके लिए उत्तरदायी हैं उनके कामोंके प्रति सरकारकी सख्त नाराजगी दिखाई जाये या अन्य किसी प्रकारसे जैसा आपको आवश्यक जान पड़े अपनी अप्रसन्नता प्रकट की जाये। समितिके द्वारा पेश किये गये उदाहरणोंसे इस कथनके लिए पर्याप्त आधार मिलता है कि पंजाबमें मार्शल लॉका प्रशासन ऐसी कुभावनाके कारण दूषित हो गया था जिसने साधारणतया तो नहीं परन्तु दुर्भाग्यसे कई बार ऐसे दण्डों और आदेशोंको लागू करनेको प्रेरित किया जिनका इरादा चाहे यह न रहा हो परन्तु जिनका परिणाम तो यही निकलनेवाला था कि—भारतीयोंको जातिके रूपमें अपमानित किया जाये, उन्हें नाहक ऐसी तकलीफें दी जायें जो प्रायः अन्यायकी श्रेणीमें आ जाती हो, शालीनता तथा मानवताके उन मापदण्डोंकी अवहेलना हो जिनकी अपेक्षा अपने शासकोंसे करनेका अधिकार न केवल भारतवासियोंको है अपितु साधारणतः समस्त सभ्य संसारके लोगोंको होता है। खेदका विषय है कि अधिकांश लोगोंके व्यवहारके बावजूद पंजाबमें कुछ ऐसे अधिकारी रहे, जो लगता है, इस तथ्यको भूल गये थे कि वे फौजी कानूनको एक ऐसे देशके निवासियोंको कुचलनेके लिए लागू नहीं कर रहे हैं जो युद्धके परिणामस्वरूप कुछ समयके लिए छीना गया शत्रु देश है, बल्कि ऐसे देशमें जिसमें सम्राट्के प्रति पूर्ण राजभक्ति रखनेवाली जनता रहती है उन लोगोंसे शीघ्रतापूर्वक निपटनेके लिए कर रहे हैं जिन्होंने उस राजभक्त जनताकी शान्ति भंग कर दी है। यह विश्वास करना कठिन है कि यदि असैनिक सत्ता मार्शल लॉके प्रशासनसे अधिक सम्पर्क बनाये रह पाती तो ऐसा होता, और सबसे ज्यादा महत्वकी बात तो यह है कि यदि दुर्भाग्यसे भविष्यमें फौजी कानूनका सहारा लेनेकी जरूरत फिर पड़े तो कोई ऐसा तरीका जरूर निकाला जाये जिससे इस प्रकारका सम्पर्क प्रभावशाली ढंगसे स्थापित हो सके।

मार्शल लॉके अन्तर्गत काम करनेवाले न्यायाधिकरणोंके तुरत-फुरतवाले तरीकों और परिणामोंका पर्यवेक्षण करना अनावश्यक होगा। फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि उससे होनेवाले नुकसानोंके प्रति तथा प्रस्तुत अभियोगोंको देखते हुए अभियुक्तोंको इन न्यायाधिकरणों द्वारा दी गई सजाओं और पुनर्विचार करनेवाले अधिकारियों द्वारा न्यायदृष्टिसे दी गई सजाओंके बीच जो बड़ा भारी अन्तर है, उसके प्रति बहुत ज्यादा ध्यान दिया गया है। आशा है कि इस तरह प्राप्त अनुभवके परिणामस्वरूप ऐसे तरीके निकाले जायेंगे जिनके द्वारा फौजी कानूनी अदालतोंमें; यदि उन्हें कभी पुनः स्थापित करना पड़े तो सुधार किया जा सके।

७. गुजराँवालामें बमवर्षक विमानोंका प्रयोग : — १४ अप्रैलको गुजराँवालामें बमवर्षक विमानोंको प्रयुक्त किये जानेके सम्बन्धमें लॉर्ड हंटरकी समितिके अधिकांश सदस्योंने अपने विचार इस तरह व्यक्त किये हैं "हमारा खयाल है कि बहुत जरूरतके अवसरोंको छोड़कर" और जब अन्य साधन उपलब्ध न हों विमानोंसे बम बरसानेका समर्थन शायद ही कोई करे, परन्तु उन अवसरोंपर भी यह काम बहुत कड़ी सीमाओंके अन्दर ही करना चाहिए। हमारे खयालसे इनमें से पहली दो बातें तो पूरी तरहसे मौजूद ही थीं। . . . हम दंगाइयोंके लिए अधिकार-पत्रके रूपमें यह आदेश अंकित करनेको तैयार नहीं हैं कि जब वे ऐसी स्थिति पैदा करनेमें सफल हो जायें जिसमें उन्हें दबानेके लिए सरकारके सामान्य साधनोंका उपयोग न हो सके तो फिर उनके खिलाफ बचे हुए साधनोंका प्रयोग नहीं होना चाहिए।" आगे चलकर वे कहते हैं कि सम्बन्धित उड़ान अधिकारियोंको आदेशोंका पालन करनेके लिए दोषी नहीं माना जा सकता परन्तु उन आदेशोंके अधीन जो काम उन्होंने किया उससे आदेशोंकी सदोषता प्रकट होती है। इस सम्बन्धमें अन्तमें उन्होंने यह सुझाव पेश किया है कि भविष्यमें इस प्रकारकी परिस्थितियोंमें उड़ान अधिकारियोंको दिये जानेवाले आदेश क्या हों, इस बातकी सावधानीके साथ जाँच-पड़ताल कर ली जानी चाहिए।

इन निष्कर्षोंको निश्चित रूप देते हुए महामहिमकी सरकार यह साफ तौरपर कह देना चाहती है कि उन देशोंमें जहाँ साधारणतया शान्तिपूर्ण स्थिति रहा करती है यदि अशान्ति देखनेमें आये तो हवाई जहाजोंका सामान्यतया इतना-भर उपयोग उचित है कि वे पर्यवेक्षण करें, खबरें लायें — ले जायें, प्रचारके लिए पर्चे आदि गिरायें और नैतिक असर उत्पन्न करें। परन्तु ऐसे विशेष अवसरोंकी कल्पना की जा सकती है जब दूरीके कारण या संचार-साधन क्षतिग्रस्त हो जानेके कारण या दोनों बातोंके फलस्वरूप और भीड़के बढ़ते हुए हिंसक उपद्रवों और आगजनी आदिको रोकनेका और कोई उपाय न रह जानेपर इस साधारण नियममें अपवाद करना उचित ही नहीं, आवश्यक है। सामान्यतया विशेष आदेशों द्वारा इस बातकी गारंटी देना असम्भव है कि बम या मशीनगनें केवल उसी जनसमुदायका संहार करेंगी जिनपर फौजके जमीनपर उपलब्ध होनेकी दशामें गोली चलाना औचित्यपूर्ण होता। परन्तु भविष्यमें इस प्रकारके संकटमय अवसरोंपर सशस्त्र विमानोंको प्रयोगमें लानेके लिए स्पष्ट आदेश होने चाहिए; ये आदेश असैनिक अधिकारी द्वारा लिखित रूपमें दिये

जाने चाहिए, और लोगोंके ऐसे दलोंको — जो एयरमैनको उसकी समझके अनुसार वास्तवमें हिंसात्मक अपराध करते दिखें — आतंकित करनेके लिए केवल परिमित मात्रामें ही बमवर्षा करने व मशीन-गनसे गोलियाँ चलानेकी अनुमति देनी चाहिए। सरकार यथासम्भव शीघ्र इस प्रकारके आदेश जारी कराये। साम्राज्य सरकार बड़े दुःखके साथ लॉर्ड हंटरकी समितिके इस विचारसे सहमति प्रकट करती है कि इस अवसरपर गुजराँवाला जानेवाले विमानोंको जो निर्देश दिये गये, वे साफ और सुनिश्चित नहीं थे।

८. **सर माइकेल ओ'डायर** — पहलेके अनुच्छेदोंमें जो-कुछ कहा जा चुका है, उससे यह स्पष्ट है कि इस जाँचसे उठनेवाले बहुतेरे मुद्दोंपर महामहिमकी सरकार सर माइकेल ओ'डायरको आलोचनासे मुक्त नहीं मानती। उदाहरणके लिए, उन्होंने अपर्याप्त जानकारीके ही आधारपर जलियाँवाला बागमें ब्रिगेडियर जनरल डायरके कामकी जो मुक्तभावसे तारीफ कर दी उसका अनुमोदन वह नहीं कर सकती। वह इस बातको दुर्भाग्यपूर्ण समझती है कि उस समय वे अपने मनकी इस प्रथम प्रतिक्रिया पर दृढ़ नहीं रहे कि यह एक ऐसा मामला है जिससे एक असैनिक अधिकारीके नाते वर्तमान परिस्थितियोंमें उनका कोई सीधा सरोकार नहीं है और इसलिए उन्हें इसके गुण-दोषके सम्बन्धमें अभी कुछ नहीं कहना चाहिए। जिन उद्देश्योंने स्पष्टतः उन्हें दूसरा रुख अख्तियार करनेको और बादमें पूरी जानकारी मिल जानेपर उस रुखपर डटे रहनेकी प्रेरणा दी, वे अपेक्षाकृत कम टीकास्पद हैं।

दूसरी बात यह है कि कुछ मुकदमोंके सम्बन्धमें फौजी कानूनी प्रक्रिया लागू करनेपर जो राय पहले व्यक्त की जा चुकी है उसे उस हदतक माइकेल ओ'डायरपर भी लागू समझना चाहिए, जिस हदतक वे इस कामके लिए व्यक्तिगत रूपसे उत्तरदायी थे। जहाँतक आम तौरपर फौजी कानूनके अमलका सम्बन्ध है, जाहिर है कि सर माइकेल ओ'डायरने ऐसी व्यवस्था सोच रखी थी कि जिससे असैनिक अधिकारी सैनिक प्रशासनके मामलेमें भली-भाँति राय दे सकते थे, और फौजी कानून संहितामें, जिसपर आपकी सरकार विचार कर रही है, इसका पूरा ध्यान रखा जाये कि भविष्यमें यह योजना अमलमें लाई जायेगी।

पंजाबमें सर माइकेल ओ'डायरके शासनके सामान्य प्रश्नसे अभी महामहिमकी सरकारका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। वह मानती है कि भारतमें यह बहुत बड़े विवादका विषय बन गया है और बहुत बड़े पैमानेपर लोगोंके मनमें यह विश्वास बैठा दिया गया है कि उनके नेतृत्वमें पंजाब-सरकार शिक्षित वर्गकी विरोधी हो गई थी और न केवल गैर-कानूनी वरन् कानून-सम्मत और वैधानिक राजनैतिक आन्दोलनको भी दबानेको कृतनिश्चय थी। सरकार हृदयसे मानती है कि इस वातावरणको दूर किया जा सकेगा, फिर भी उसे यह पूरी तरह मालूम है कि जो परिस्थितियाँ उनके सामने थीं, वे कैसी विषम थीं। षड्यन्त्र, दुश्मनोंके एजेंटोंकी गतिविधियाँ, रहन-सहनके खर्चमें वृद्धि, और भारतीय फौजके लिए बहुत बड़ी संख्यामें रंगरूटोंकी भरती, जिसकी साम्राज्यकी आवश्यकताओंको देखते हुए बड़ी जरूरत थी — ये सारी बातें उनके पूरे कार्यकालमें बराबर चिन्ताका कारण बनी रहीं, हालाँकि सौभाग्यसे इन बातोंमें पूरे

प्रान्तको निष्ठासे डिगा सकनेकी शक्ति नहीं थी। वह कार्यकाल अब पूरा हो गया है, भारतसे सुदीर्घ और सम्माननीय सम्बन्ध समाप्त हो गया है, और सम्राट्की सरकार असाधारण कठिनाईके समय सर माइकेल ओ'डायरने अपने काममें जिस अद्भुत स्फूर्ति, निर्णयबुद्धि और साहसका परिचय दिया उसके लिए उनका अभिवादन करना चाहती है और उनकी सेवाओंकी सराहना करनेकी इच्छुक है।

९. रिपोर्टसे उठनेवाले अन्य मामलोंके बारेमें आपकी सरकारने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनके सम्बन्धमें मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि जहाँतक उपर्युक्त अनुच्छेदोंमें कही गई बातें उनके विरुद्ध जाती हैं उनको छोड़कर अन्य सभी दृष्टियोंसे मैं आपके विचारोंसे सहमत हूँ, और इस समय मुझे इस सम्बन्धमें और कुछ नहीं कहना है। फिर भी, आपकी सरकार यह बात समझ जायेगी कि यह जरूरी नहीं कि इन दस्तावेजोंके, जिनमें कि इस देशकी और भारतकी भी जनता इतनी गहरी दिलचस्पी रखती है, प्रकाशन मात्रसे इस मामलेसे सम्बन्धित सभी बड़े-बड़े प्रश्नोंका समाधान हो ही जायेगा। विशेष रूपसे, मैं इस बातकी आशा करूँगा कि जो फौजी कानून संहिता आपके विचाराधीन है, उसके मसविदेको आप मेरी स्वीकृतिके लिए जल्दी मेरे पास भेज देंगे। मैं इस बातको सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मेरा हार्दिक विश्वास यही है कि ऐसे नियमोंको लागू करनेका अवसर फिर कभी नहीं आयेगा लेकिन इस जाँचसे एक बहुत बड़े उद्देश्यकी सिद्धि हो, अगर इसके परिणामस्वरूप ऐसे विनियमोंकी एक संहिताको कानूनका रूप दिया जा सके जिनके आधारपर, जहाँतक मनुष्यकी दूरदर्शिताकी पहुँच है उस हदतक, एक ऐसी शासनप्रणालीकी रचना की जा सके जो एक ओर तो उपद्रवोंका दमन करे और उपद्रवकारियोंको तत्काल उचित और उपयुक्त दण्ड दे, लेकिन साथ ही दूसरी ओर सर्वसाधारणके आम अधिकारों और जीवनक्रममें उससे अधिक व्यवधान न डाले जितना कि परिस्थितियोंको देखते हुए जरूरी हो, और असैनिक न्याय व्यवस्था तथा असैनिक शासन-प्रणालीकी मान्यताओंका निर्वाह करे। कारण, जो परिस्थितियाँ राज्यके अस्तित्वके लिए खतरा बन रही हैं, उनको ध्यानमें रखते हुए फौजी कानून एक आवश्यक उपाय है, परन्तु अगर इस उपायका प्रयोग बुद्धिमानी और विवेकके साथ न किया जाये तो उसका कोई महत्व नहीं रह जाता। अतएव यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम इसका दुरुपयोग करके इसका मूल्य घटने न दें। मेरे खयालसे यही बातें निर्वासन-दण्डपर भी लागू होती हैं। यह एक ऐसा उपाय है जिसे उसके वर्तमान रूपमें प्रयोगमें लानेमें बहुत अधिक कठिनाइयाँ हैं और जिसके परिणामोंके लिए कुछ ठीक कह पाना असम्भव है।

१०. फौजी कानूनको अमलमें लानेका काम जिन अधिकारियोंको सौंपा गया था उनके आचरणकी कड़े शब्दोंमें आलोचना करना सम्राट्की सरकारने आवश्यक समझा है और आपकी सरकारने ऐसा आभास दिया है कि पुलिसके तथा अन्य विभागोंमें काम करनेवाले मातहत अफसरोंके विरुद्ध अधिकारोंके दुरुपयोगके जो मामले साबित हो चुके हैं, उन सबपर पर्याप्त रूपसे गौर किया जायेगा। लेकिन अगर इन अपवादोंको

छोड़ दिया जाये तो महामहिमकी सरकारकी इच्छा है कि मैं आपको स्पष्ट शब्दोंमें बता दूँ कि सैनिक और असैनिक, ब्रिटिश और भारतीय, दोनों वर्गोंके जिन अधिकारियों और व्यक्तियोंपर भारतको, वह जिस राजनिष्ठा और व्यवस्थाप्रियताके लिए विख्यात है, उसे पुनः प्राप्त करनेमें मदद देनेकी भारी जिम्मेदारी आ पड़ी थी, उनकी आपने जो सराहना की है उससे महामहिमकी सरकार पूरी तरह सहमत है। इस प्रकार महामहिमकी ब्रिटिश और भारतीय फौजोंके अफसरों और जवानों तथा पुलिस और असैनिक कर्मचारियोंपर — जो एक लम्बे युद्धकी कठिनाइयाँ झेलकर अभी-अभी निकले थे और जिन्हें उन्होंने यद्यपि साहस और धैर्यके साथ झेला था फिर भी जिससे वे थक तो गये ही थे — जो भार आ पड़ा था वह बहुत जबरदस्त था। ये लोग अपन कर्तव्य-पालनमें अपने विभागोंकी महान् परम्पराओंके अनुरूप ही साबित हुए।

इसके साथ ही सम्राट्की सरकार इन उपद्रवोंमें हुई प्राणहानिके लिए, आपकी सरकारके समान ही, गहरा दुःख व्यक्त करना चाहती है और जिन लोगोंको उन घटनाओंके कारण अपने सगे-सम्बन्धियोंका वियोग सहना पड़ा है, उनके साथ गहरी सहानुभूति प्रकट करना चाहती है।

११. अन्तमें मुझे आपसे यह कहते हुए हर्ष होता है कि जिस ढंगसे आपने अपने महान उत्तरदायित्वका निर्वाह किया है उसके लिए सम्राट्की सरकार निजी तौरपर आपके प्रति अपनेको आभारी अनुभव करती है। भारतके गवर्नर-जनरलकी जिम्मेदारियाँ भी बहुत बड़ी होती हैं, परन्तु विश्वव्यापी परिस्थितियोंके फलस्वरूप आपके कन्धोंपर चिन्ताका ऐसा बोझ आ पड़ा है जैसा आपके पूर्ववर्ती किसी गवर्नर जनरल पर यदाकदा ही पड़ा होगा। सम्राट्की सरकार चाहती है कि आपको आश्वस्त करानेके लिए आपको यह बता दिया जाये कि आपके विवेकमें उसका पूरा-पूरा विश्वास बना हुआ है, क्योंकि उसे भरोसा है कि आपके विवेकके पीछे सदा एक ही बातकी प्रेरणा रही है कि जिन लोगोंका शासन आपके हाथोंमें सौंपा गया है, उनका कल्याण हो।

आपका,
(हस्ताक्षर) एडविन एस० मॉण्टेग्यु

[अंग्रेजीसे]

परिशिष्ट ६

वाइसरायके नाम मुसलमान नेताओंका आवेदनपत्र[1]

वम्बई

२२, जून १९२०

महोदय,

हम हस्ताक्षरकर्त्तागण सर्वाधिक सुन्नी मुसलमानोंके मतका प्रतिनिधित्व करनेका दावा रखते हैं। हमने टर्कीकी सन्धि शर्तोंको बहुत सावधानी और ध्यानसे पढ़ा है और हम उन्हें मुसलमानोंकी भावनाओंपर सीधी चोट करनेवाली मानते हैं। वे सुन्नियोंपर डाले गये (धार्मिक) उत्तरदायित्वका उल्लंघन करती हैं और सभी मुसलमानोंकी भावनाओंपर चोट करती हैं। वे ब्रिटिश मन्त्रियोंके वायदोंके विपरीत हैं। यह मानी हुई बात है कि उन्हीं वादोंके आधारपर युद्धके दौरान भारतमें मुसलमान रंगरूटोंकी भरती सम्भव हो पाई थी। हमारा विचार है कि ब्रिटिश साम्राज्य खिलाफतका प्रतिनिधित्व करनेवाले टर्की साम्राज्यके साथ, जो विश्वमें सबसे बड़ी मुसलमानी ताकत है, इस तरहका बरताव नहीं कर सकता जैसा कदाचित किसी पराजित शत्रुके प्रति किया जा सकता है। वास्तवमें हमारा विचार है कि कुछ मामलोंमें अन्य राष्ट्रोंकी अपेक्षा टर्कीके साथ अधिक बुरा व्यवहार किया गया है। हमारा सादर निवेदन है कि ब्रिटिश सरकार उसके साथ व्यवहार करते समय भारतीय मुसलमानोंकी भावनाओंका, जहाँतक वे अन्यायपूर्ण या अनुचित नहीं हैं, आदर करनेके लिए बाध्य है। हमारी रायमें भारतीय मुसलमानोंने जो स्थिति अपनाई है वह साफ है। वे इस विचारको सहन नहीं कर सकते कि जर्मनीका साथ देनेके दण्डस्वरूप सुल्तानकी राजसत्तापर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। सुल्तानने किन परिस्थितियोंमें जर्मनीका साथ दिया उनकी जाँच-पड़ताल करना यहाँ आवश्यक नहीं। परन्तु हमारी कदापि यह इच्छा नहीं है कि कोई ऐसी माँग की जाये जो आत्म-निर्णयके सिद्धान्तमें बाधा डाले। हमारी यह इच्छा भी नहीं है कि कोई भी कुशासन, जैसा कि टर्कीके बारेमें कहा जाता है, कायम रखा जाये। यूरोपमें हमारे प्रतिनिधियोंने आर्मीनियामें तुर्की सिपाहियों द्वारा की गई तथाकथित नृशंसताकी जाँच-पड़तालके लिए एक स्वतन्त्र जाँच आयोगकी माँग की है। टर्की और उसके साम्राज्यको दण्डस्वरूप छिन्न-भिन्न कर उसे नीचा दिखाया जाये इस बातकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। इसलिए हम परमश्रेष्ठसे तथा आपकी सरकारसे अनुरोध करेंगे कि आप महामहिमके मन्त्रियोंसे संधि शर्तोंपर पुनर्विचारके लिए कहें और उन्हें बतायें कि ऐसा करनेपर आपका हित भारतके लोगोंके हितसे एकरूप बन जायेगा। हम यह सुझाव इसलिए

१. ३, जून १९२० को इलाहाबादमें हुई केन्द्रीय खिलाफत समितिकी बैठकमें असहयोगके बारेमें जो फैसला हुआ उसके अनुसार यह आवेदनपत्र भेजा गया। इस पत्रपर भारत-भरके ९० सुन्नी मुसलमानोंने हस्ताक्षर किये थे जिनमें याकूब हसन, मजहरुल हक, मौलाना अब्दुल बारी, हसरत मोहानी, शौकत अली, डा० किचलू और मियाँ मुहम्मद छोटानी भी थे।

देते हैं कि परमश्रेष्ठने बार-बार यह घोषणा की है कि आपकी सरकारने दृढ़तापूर्वक और अक्सर जोर देकर महामहिमके मन्त्रियोंका ध्यान इसलिए भारतीय मुसलमानोंके मामलेकी ओर खींचा है, इस मामलेका मुसलमानोंकी बहुसंख्याके साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। अतएव हम महसूस करते हैं कि हमें आपसे यह कहनेका अधिकार है कि आप भारतके मुसलमानोंको पुनः आश्वासन दें कि उन्हें आपका सक्रिय सहयोग और उनके दावोंको हासिल करानेमें जोरदार समर्थन अब भी उपलब्ध है। आप यह आश्वासन भी दें कि यदि महामहिमके मन्त्री उपर्युक्त वादों और भावनाओंके अनुसार शर्तोंपर पुनर्विचार करनेके लिए तैयार नहीं होते तो आप अपने ऊँचे पदसे इस्तीफा तक दे सकते हैं। हम सादर निवेदन करते हैं कि यदि भारत पूर्ण स्वायत्त शासन प्राप्त उपनिवेश होता तो उसके उत्तरदायी मन्त्री शान्ति संधिकी शर्तोंके अन्तर्गत किये गये गम्भीर वचन-भंग तथा धार्मिक भावनाओंकी अवज्ञाके विरुद्ध इस्तीफा दे देते। यदि दुर्भाग्यसे परमश्रेष्ठ हमारा नम्र निवेदन स्वीकार नहीं करेंगे तो हम आगामी पहली अगस्तसे सरकारसे सहयोग बन्द करनेको और अपने धर्मभाइयों तथा हिन्दू भाइयोंसे भी वैसा ही करनेको कहनेके लिए बाध्य होंगे। हमारा परमश्रेष्ठसे निवेदन है कि हमारे इस कथनको आप धमकी या किसी भी प्रकार अनादरसूचक न समझें। हम दावा करते हैं कि हम सम्राट्के उतने ही वफादार प्रजाजन हैं जितना कि भारतमें कोई अन्य। परन्तु पार्थिव राजाके प्रति अपनी निष्ठाको हम इस्लामके प्रति अपनी निष्ठाका सहायक मानते हैं। इस्लामके प्रति हमारी निष्ठा प्रत्येक मुसलमानको आदेश देती है कि जो लोग केवल खिलाफतकी हैसियतपर चोट करना चाहते हैं उन्हें वह इस्लामका दुश्मन माने और उनका विरोध करे। हम मानते हैं कि सम्भव होनेपर भी जबतक हमारे पास अन्य उपाय हैं, हमें शस्त्रोंका सहारा नहीं लेना चाहिए। हम महसूस करते हैं कि एक मुसलमान इन परिस्थितियोंमें कमसे-कम यही कर सकता है कि वह उन लोगोंका साथ न दे जिनपर यह आरोप है कि वे खिलाफतको प्रायः विफल बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। अतएव यह हमारा दुःखद कर्त्तव्य होगा कि हम उस सरकारको सहयोग देनेसे इनकार कर दें जो सन्धि शर्तोंको स्वीकार करती है और हमें भी सलाह देती है कि हम उन्हें स्वीकार कर लें। हम आशा करेंगे कि असहयोग-जैसा गम्भीर कदम उठानेकी जरूरत नहीं होगी, परन्तु दुर्भाग्यवश यदि इस आशाके विपरीत हो जाये तो हम परमश्रेष्ठको आश्वासन देते हैं कि हम हिंसासे बचनेकी पूरी कोशिश करेंगे। हम अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह पहचानते हैं। हम जानते हैं कि हिंसाकी एक भी घटना उस शान्तिपूर्ण प्रदर्शनको जिसकी हम अपेक्षा करते हैं, हानि पहुँचायेगी और उसकी प्रगतिमें बाधा डालेगी; शांतिपूर्ण असहयोग हमारे लिए एक पवित्र उद्देश्य है और वह हमें प्राणोंकी तरह प्यारा है, इसलिए हम असहयोगका अमल उत्तरोत्तर बढ़ाते क्रमसे करेंगे, ताकि सरकारको आवश्यकतासे अधिक उलझन या परेशानी न हो और हम जनमतपर नियन्त्रण और अनुशासन रख सकें।

[अंग्रेजीसे]

ऑल अबाउट द खिलाफत

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया), नई दिल्लीमें सुरक्षित कागजात।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय: जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तक के भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'गुजराती': बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'टाइम्स ऑफ इंडिया': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'ट्रिब्यून': लाहौरसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नवजीवन' (गुजराती): १९१९–१९३१: अहमदाबादसे गांधीजी द्वारा सम्पादित साप्ताहिक जो कभी-कभी सप्ताहमें दो बार भी निकलता था; यह 'नवजीवन अने सत्य' (१९१५–१९१९) नामक मासिकका रूपान्तर था; इसका पहला अंक ७ सितम्बर, १९१९ को निकला। १९ अगस्त, १९२१ से इसका हिन्दी संस्करण भी प्रारम्भ हो गया था।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया': १९१८–३१; अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। सम्पादक, मो० क० गांधी; प्रकाशक, मोहनलाल मगनलाल भट्ट।

'लीडर': इलाहाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'मधपुडो': साबरमती आश्रमके विद्यालयकी हस्तलिखित पत्रिका।

बॉम्बे गवर्नमेंट रेकर्ड्स: जिनमें गृह-विभाग तथा बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्सके कागजात शामिल हैं।

'रिपोर्ट ऑफ द कमिश्नर्स एपाइंटेड बाई द पंजाब सब-कमिटि ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस' (अंग्रेजी): के० सन्तानम् द्वारा प्रकाशित, १९२०।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी: स्वराज्य आश्रम, बारडोली।

'ऑल अबाउट द खिलाफत' (अंग्रेजी): एम० एच० अब्बास, राय ऐंड राय-चौधरी, कलकत्ता।

'इंडिया इन १९२०' (अंग्रेजी): एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स, सुपरिन्टेंडेंट, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, इंडिया, कलकत्ता, १९२१।

'द स्टोरी ऑफ माई लाइफ', खण्ड १ (अंग्रेजी) : एम० आर० जयकर, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९५८।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'महादेवभाईनी डायरी', खण्ड ५, (गुजराती) : नरहरि द्वा० परीख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५१।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : एलिस एम० बार्न्ज द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

'लेटर्स ऑफ वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री' (अंग्रेजी) : टी० एन० जगदीशन, रॉक हाउस ऐंड सन्स लि०, मद्रास।

'स्वदेशी धर्म' (गुजराती) : द० बा० कालेलकर; स्वामी आनन्द द्वारा प्रकाशित, सत्याग्रह आश्रम, साबरमती अहमदाबाद, १९२०।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

फरवरी १: लाहौरमें डा० जोजेफ न्यूननसे गांधीजीकी भेंट। डा० न्यूनन ब्रिटिश गियानाके उस शिष्टमण्डलके नेता थे जो भारतीय प्रवासियोंकी भरती करनेके विचारसे आया हुआ था।

फरवरी ३: गांधीजीने पंजाब सरकारके मुख्य सचिवको राजनीतिक कैदियों और मार्शल लॉके दौरान गिरफ्तार किये गये कैदियोंकी रिहाईके बारेमें लिखा।

फरवरी ९: लाहौरमें दक्षिण आफ्रिकी आयोगके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंसे भेंट।

ब्रिटिश गियानाके शिष्टमण्डलने शाही परिषद्में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

फरवरी १३: गांधीजीने पंजाबके अत्याचारों और हिन्दू-मुस्लिम एकतापर सरगोधामें भाषण दिया।

फरवरी १४: जलियाँवाला बाग स्मारक कोषके लिए अपील।

फरवरी १५: पंजाब सरकारके मुख्य सचिवको पत्र लिखा और सरगोधामें भरती-अभियानके समय सरकारी अधिकारियों द्वारा किये गये अत्याचारोंकी जाँचकी माँग की।

पंजाबके दंगोंके सम्बन्धमें कांग्रेस जाँच समितिके साथ २३ जनवरीको शुरू किया गया पंजाबका दौरा समाप्त।

फरवरी १८: शाही परिषद्में राजधानीके परिवर्तनके बारेमें बहस।

फरवरी २०: कांग्रेस अध्यक्ष मोतीलाल नेहरूको पंजाबके उपद्रवोंपर कांग्रेसकी रिपोर्टका मसविदा भेजा गया।

फरवरी २१: गांधीजीने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंकी सभामें भाषण दिया।

फरवरी २५: अहमदाबादमें मजदूर संघकी स्थापनाके उद्देश्यसे आयोजित मजदूरोंकी सभामें भाषण।

'ईवनिंग स्टैन्डर्ड' के प्रतिनिधिसे भेंटके दौरान मॉण्टेग्युने कुस्तुन्तुनियापर टर्कीका अधिकार बने रहनेका जोरदार समर्थन किया।

जमशेदपुरके टाटा आयरन वर्क्समें हड़तालका समाचार।

फरवरी २६: गांधीजीने अहमदाबादमें मारवाड़ी युवक मण्डलके तत्त्वावधानमें रात्रि-पाठशालाके उद्घाटन समारोहकी अध्यक्षता की।

हाउस ऑफ कॉमन्समें टर्कीके भविष्यपर वाद-विवाद।

प्रथम भारतीय खिलाफत शिष्टमण्डल लन्दन पहुँचा।

फरवरी २७: गांधीजीने अदालतकी मानहानिके मुकदमेके सम्बन्धमें अपना तथा महादेव देसाईका वक्तव्य बम्बई उच्च न्यायालयको भेजा।

फरवरी २८: कलकत्तामें बंगाल प्रान्तीय खिलाफत सम्मेलनका आयोजन।

फरवरी २९: गांधीजीने खिलाफत सम्मेलनमें भाग लिया।

मार्च २: फिशरने लन्दनमें मॉण्टेग्युकी ओरसे भारतीय खिलाफत शिष्टमण्डलका स्वागत किया।

मार्च ३: गांधीजी अदालतकी मानहानिके मुकदमेकी सुनवाईके लिए बम्बई उच्च न्यायालयमें उपस्थित हुए; मुकदमेका फैसला मुल्तवी रखा गया।

खिलाफत सभामें भाषण।

मार्च ५: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें प्रेस अधिनियम रद्द करनेकी माँग की।

मार्च ६: राष्ट्र-संघ (लीग ऑफ नेशन्स) की परिषद्ने प्रस्ताव पास किया जिसमें कुस्तुन्तुनिया और सम्बन्धित खाड़ियोंपर लीगका नियन्त्रण होनेका समर्थन किया।

मार्च ७: 'डेली टेलीग्राफ' में ब्रिटिश सरकार द्वारा कुस्तुन्तुनियापर अधिकार करनेके निर्णयका समाचार।

गांधीजीने खिलाफतपर समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया।

मार्च १२: बम्बई उच्च न्यायालयने अदालतकी मानहानिके लिए चलाये गये मुकदमेमें गांधीजी और महादेव देसाईकी भर्त्सना की।

मार्च १४: बंगाल प्रान्तीय खिलाफत समितिके कार्यालयपर पुलिसका छापा।

मार्च १५: पुलिस और सेना द्वारा टाटा आयरन वर्क्सके हड़तालियोंपर गोलीबारी।

मार्च १७: लन्दनमें लॉयड जॉर्जने भारतीय खिलाफत शिष्टमण्डलसे भेंट की।

मार्च १९: खिलाफत दिवस। गांधीजीने बम्बईकी खिलाफत-दिवस सभामें भाषण दिया।

मार्च २१: शोलापुरकी मिलोंमें मजदूरोंने काम बन्द कर दिया।

मार्च २५: पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेस उप-समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित।

हाउस ऑफ कॉमन्समें एस्क्विथने कुस्तुन्तुनियापर टर्कीके अधिकारका विरोध तथा वहाँ सुलतानका शासन स्थापित करनेका समर्थन किया।

मार्च २९: भारत सरकारने इस बातकी पुष्टि की कि हजके तीर्थस्थान मुसलमानोंके स्वतन्त्र नियन्त्रणमें रहेंगे।

मार्च ३१: मित्र-राष्ट्रोंकी सर्वोच्च परिषद् (अलाइड सुप्रीम कौंसिल)ने राष्ट्र-संघ (लीग ऑफ नेशन्स)को आर्मीनियापर शासनाधिकार देनेका प्रस्ताव किया।

गांधीजीने अहमदाबादमें आयोजित चरखा पुरस्कार प्रतियोगितामें भाग लिया।

अप्रैल २: गांधीजी और रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अहमदाबादमें छठी गुजरात साहित्य परिषद् में भाग लिया। रवीन्द्रनाथने भाषण दिया।

साँझको गांधीजीका 'समाजके शिक्षणके लिए साहित्य' विषयपर भाषण हुआ।

शोलापुरमें नरसिंह चिन्तामण केलकरकी अध्यक्षतामें बम्बई प्रान्तीय सम्मेलनकी बैठकें शुरू।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर गांधीजीके साथ साबरमती आश्रममें ठहरे।

अप्रैल ३: बम्बई प्रान्तीय सभाने माँग की कि सर माइकेल ओ'डायर और अन्य लोगोंपर एक न्यायिक अधिकरणमें मुकदमा चलाया जाये और उन्हें सजा दी जाये।

अहमदाबादमें गांधीजीने छठी गुजरात साहित्य परिषद्में 'जन-समाजके शिक्षणके लिए साहित्य' विषयपर भाषण दिया।

सन्ध्या समय रवीन्द्रनाथने सार्वजनिक सभामें अंग्रेजीमें भाषण दिया। गांधीजीने भाषणका अनुवाद किया।

अप्रैल ४: बम्बई और बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनोंमें सुधार प्रस्तावपर बहस। एनी बेसेंट और अन्य लोगोंने नरम रुख अपनाया। तिलक और उनके साथी विपक्षमें रहे।

अप्रैल ६: निकोलस्क और हैवरोवस्कमें जापानियों और रूसियोंमें लड़ाई शुरू।

गांधीजीने बम्बईमें राष्ट्रीय सप्ताह सभामें भाषण दिया।

जलियाँवाला बाग स्मारक कोषके लिए पुनः अपील।

अप्रैल ७: टर्कीमें नये मन्त्रिमण्डलका संगठन।

नये सुधारोंके अनुसार ट्रावनकोरकी नवनिर्मित परिषद्की पहली बैठक।

अप्रैल ९: राष्ट्रीय सप्ताहके सिलसिलेमें केन्द्रीय खिलाफत समिति द्वारा बम्बईमें आयोजित सार्वजनिक सभामें गांधीजीका भाषण।

अप्रैल ११: गांधीजीने 'बॉम्बे क्रॉनिकल'को पत्र लिखा और जलियाँवाला बाग स्मारकके लिए चन्दा देनेकी फिरसे अपील की।

अप्रैल १३: राष्ट्रीय सप्ताह मनानेके लिए होमरूल लीग तथा नेशनल यूनियन द्वारा बम्बईमें आयोजित सभामें गांधीजीका भाषण। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने सभाके लिए सन्देश भेजा।

गांधीजीने वाइसरायके निजी सचिवको तार दिया कि वाइसराय उन्हें इंग्लैंड जाकर वहाँके मन्त्रियोंको खिलाफतके सवालपर मुसलमानोंकी भावनाओंसे अवगत करानेकी अनुमति दें।

अप्रैल १३के बाद: गांधीजीने भारत मन्त्रीको तार देकर खिलाफतके सम्बन्धमें इंग्लैंड जानेके लिए ब्रिटिश सरकारकी अनुमति माँगी।

अप्रैल १५: सुधार समितिकी शिमलामें बैठक।

अप्रैल १७: शौकत अलीकी अध्यक्षतामें मद्रास खिलाफत सम्मेलनकी कार्रवाई शुरू।

अप्रैल १८: गांधीजीने अहमदाबादके मिल-मजदूरोंके दूसरे वार्षिकोत्सवकी अध्यक्षता की।

अप्रैल २२: लन्दनमें खिलाफतके सम्बन्धमें सार्वजनिक सभाका आयोजन। सभाकी अध्यक्षता जॉर्ज लैन्सबरीने की।

अप्रैल २४: संयुक्त राज्यने स्वतन्त्र आर्मीनिया गणराज्यको विधिपूर्वक मान्यता दी।

अप्रैल २५: सैन रेमोमें मित्र देशोंके सम्मेलनने ब्रिटेनको मेसोपोटामिया और फिलिस्तीनका तथा फ्रांसको सीरियाका शासनाधिकार सौंपा।

अप्रैल २६: बी० जी० हॉर्निमैनके निष्कासनका विरोध करनेके लिए होमरूल लीग द्वारा अहमदाबादमें सभाका आयोजन। गांधीजीने अध्यक्षता की।

अप्रैल २८: गांधीजी होमरूल लीगके सदस्य बने और उसके अध्यक्ष निर्वाचित किये गये।

गांधीजीने एक वक्तव्य दिया जिसमें टर्कीके सम्बन्धमें सैन रेमोके निर्णयके प्रति भारतीय विरोध व्यक्त करनेके लिए असहयोग करनेकी सलाह दी।

मई १: मद्रास लिबरल लीगकी प्रथम वार्षिक बैठक।

मई २: अनवर पाशा द्वारा टर्कीके राष्ट्रीय आन्दोलनको अपने हाथमें लेनेका समाचार।

मई ६: हाउस ऑफ कॉमन्समें मॉण्टेग्युने जनरल डायरके त्यागपत्रपर वक्तव्य दिया।

मई ७: मिल-मजदूरों और मालिकोंके झगड़ोंके लिए पंच-निर्णयकी पद्धति तय करनेके सम्बन्धमें गांधीजीका दूसरे लोगोंसे विचार-विमर्श।

मई ९: गांधीजीने 'नवजीवन'में उड़ीसाके अकाल पीड़ितोंकी सहायताके लिए चन्दा देनेकी अपील करते हुए लेख लिखा।

मई ११: पेरिसमें टर्कीसे सम्बन्धित सन्धि-पत्र तुर्की प्रतिनिधियोंको सौंप दिया गया।

मई १२: गांधीजी द्वारा 'यंग इंडिया'में उड़ीसाके अकाल पीड़ितोंके लिए चन्दा देनेकी पुनः अपील।

गांधीजीने बम्बईमें खिलाफत समितिकी बैठकमें भाग लिया।

सेलममें मद्रास शिक्षा सम्मेलनका आयोजन।

मई १४: भारतीय मुसलमानोंके नाम वाइसरायके सन्देशके साथ टर्कीके साथ की गई सन्धिकी शर्तें 'इंडिया' में प्रकाशित हुई।

मई १५: असाधारण फौजी अदालतने मुस्तफा कमाल और उनके साथियोंको मौतकी सजा दी।

मई १६: गांधीजीने अहमदाबादमें मिल-मालिकों और मजदूरोंके झगड़ोंके लिए पंच-निर्णयकी पद्धति तय करनेके लिए आगे बातचीत की।

मई १७: बातचीत जारी।

मई १८: बातचीत जारी।

समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया जिसमें मित्र-राष्ट्रों द्वारा टर्कीके साथ की गई सन्धिकी शर्तें बदलनेकी माँग की।

मई १९: अहमदाबादमें गांधीजी द्वारा पंच-निर्णयकी पद्धतिपर बातचीत जारी।

मई २०: टर्की-सन्धिकी शर्तोंके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए याकूब हसनने मद्रास विधान परिषद्की सदस्यता और अन्य सरकारी संस्थाओंसे त्यागपत्र दे दिया।

मई २१: हैदराबादके निजामने फरमान जारी करके खिलाफत आन्दोलनमें भाग लेनेका निषेध किया।

मई २३: गांधीजीने अहमदाबादमें मिल-मजदूरोंकी सभामें हड़तालके फैसलेके सम्बन्धमें भाषण दिया।

तौफीक नसीम पाशाने टर्कीमें नया मन्त्रिमण्डल बनाया।

मई २८: भारत सरकार द्वारा नियुक्त हंटर समितिने अपनी रिपोर्ट भेजी और मॉण्टेग्युका उत्तर प्रकाशित किया गया।

मई ३० : असहयोग आन्दोलनपर विचार करनेके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बनारसमें बैठक। गांधीजीने भाग लिया।

जून १ : इलाहाबादमें हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त सम्मेलन शुरू। गांधीजीने भाग लिया।

जून २ : भारत सरकारके असाधारण 'गज़ट' में प्रान्तीय परिषदों, भारतीय विधान सभा और राज्य परिषद्के संशोधित नियमोंके प्रारूप प्रकाशित।
इलाहाबादमें हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त सम्मेलन जारी।

जून ३ : इलाहाबादमें अखिल भारतीय केन्द्रीय खिलाफत समितिकी बैठक; गांधीजीने असहयोगपर भाषण दिया।

जून ४ : गांधीजीने बम्बईमें खादी भण्डारका उद्घाटन किया।

जून ५ : नडियादमें स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन किया।

जून ११ : गांधीजीने बम्बईमें भारतीय साम्राज्यीय नागरिकता संघकी बैठकमें भाग लिया।

जून १३ : समाचारपत्रोंको दिये गये वक्तव्यमें दक्षिण आफ्रिकी आयोग द्वारा प्रवासियोंको स्वदेश वापस भेजनेकी योजनाका विरोध किया।

जून १९ : जवाहरलाल नेहरूको मसूरीसे चले जानेका आदेश वापस ले लिया गया।

जून २१ : टिनैवेलीमें मद्रास प्रान्तीय सम्मेलनका आयोजन; एस० श्रीनिवास आयंगारने अध्यक्षता की।

जून २२ : हाउस ऑफ कॉमन्समें पंजाबके उपद्रवोंपर प्रश्न पूछे गये। मॉण्टेग्युको प्रश्न आदि पूछकर परेशान किया गया।
गांधीजीने वाइसरायको पत्र लिखा और मित्र-राष्ट्रों द्वारा टर्कीके साथ की गई सन्धि-शर्तोंके विरोधमें असहयोग करनेके निर्णयकी सूचना दी और उसके साथ ही वाइसरायको इस विषयपर मुसलमानोंका प्रार्थनापत्र भी भेजा।

जून २५ : गांधीजीने बम्बईमें खिलाफत समितिकी सभामें भाग लिया।

जून २६ : गांधीजीने हंटर समितिकी रिपोर्टके प्रति विरोध व्यक्त करनेके लिए आयोजित सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

जून २७ : मित्र-राष्ट्रों द्वारा प्रस्तावित शर्तोंपर टर्कीने अपने प्रति-प्रस्ताव रखे।

जून २८ : हैदराबादके निजाम द्वारा 'मोहि-उल-मिल्लत वद्दीन' खिताबका त्याग।

जून ३० : गांधीजीने समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया जिसमें १९१९ के सुधार अधिनियमके अन्तर्गत विधान परिषदोंके चुनावमें भाग न लेनेका अनुरोध किया।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

५७४

सांकेतिका

अ

आ

इ

फ

ब

य

व

श